वाराही (बृहत्) संहिता

हिन्दी टीका सहित।

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन
बम्बई

श्रीमद्वराहमिहिराचार्यप्रणीता

वाराही (बृहत्) संहिता

पंडितसुखानन्दमिश्रात्मज, मुरादाबाद–निवासी पंडितवर
बलदेवप्रसादजी मिश्रकृत–भाषानुवादसहित

खे म रा ज श्री कृ ष्ण दा स प्र का श न
बम्बई

संस्करण : जनवरी २००८, सम्वत् २०६४

मूल्य ११० रुपये मात्र।

मुद्रक एवं प्रकाशक:

खेमराज श्रीकृष्णदास,™

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers :
Khemraj Shrikrishnadass,
Prop: Shri Venkateshwar Press,
Khemraj Shrikrishnadass Marg, 7th Khetwadi,
Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.Khe-shri.com
Email : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj For M/s. Khemraj Shrikrishnadass Proprietors Shri Venkateshwar Press, Mumbai - 400 004, at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate, Pune 411 013.

भूमिका

वाराहीसंहिता ज्योतिषका प्रधान ग्रंथ है। इसके रचयिता वराहमिहिराचार्य आदित्यदासके पुत्र थे जो कि अवन्तीनिवासी थे। वराहमिहिराचार्यने अपने पितासे समस्त शास्त्रको पढकर कपित्थनगरमें जाकर सूर्यभगवान्‌की तपस्या की और वर पाया। जो कुछ भी हो हमको इस ग्रंथकी भूमिकामें वराहमिहिर और सूर्यसिद्धांतके बनानेवाले समयका निर्णय करना है। क्योंकि इन लोगोंके समयका निरूपण हो जानेसे और भी अनेक ज्योतिर्विद्‌गणोंके समयका निरूपण हो जायगा वराहमिहिराचार्यने अपने पंचसिद्धात्मिका नामक ग्रंथमें लिखा है :–

आश्लेषार्द्धाद्दक्षिणमुत्तरायणं रवेर्धनिष्ठाद्यात्।
नूनं कदाचिदासीद्येनोक्तं पूर्वशास्त्रेषु ॥१॥
साम्प्रतमयनं सवितुः कर्कटाद्यान्मृगादितश्चान्यत्।
उक्ताभावे विकृतिः प्रत्यक्षपरीक्षणैर्व्यक्तिः ॥२॥
दूरस्थचिह्नवेधाद्वुदयेऽस्तमयेऽपिवा सहस्रांशोः।
छायाप्रवेशनिर्गमचिह्नैर्वा मण्डले महति ॥३॥
अप्राप्य मकरमर्को विनिवृत्तो हन्ति सापरान् याम्यान्।
कर्कटकमसम्प्राप्तो विनिवृत्तश्चोत्तरान् सैन्द्रीम् ॥४॥
उत्तरमयनमतीत्य व्यावृत्तः क्षेमस्य वृद्धिकरः।
प्रकृतिस्थश्चाप्येवं विकृतिगतिर्भयकृदुष्णांशुः ॥५॥

आश्लेषाके शेषार्द्धमें दक्षिणायन और धनिष्ठाकी आदिमें रविका उत्तरायण निश्चय किसी कालमें आरंभ होता था क्योंकि पूर्व शास्त्रमें इसी प्रकारका लेख है ॥१॥ संप्रति रविका दक्षिणायन कर्कटकी आदिमें और उत्तरायण मकरकी आदिमें आरंभ होता है अतएव प्राचीन अयनके अभावमें उसका परिवर्तन भली भांति मालूम होता है ॥२॥ (अयनके बदलको जाननेकी विधि) सूर्यके उदय व अस्तके समय दूरके चिह्न (नक्षत्रादि), से यह जाने, अथवा बृहन्मंडलकी (केन्द्रस्थ कीलककी) छायाके नियत चिह्नोंसे प्रवेश और निर्गम करके जाने ॥३॥ उत्तरायणमें मकरतक न जाकरके लौट आनेपर दक्षिण पश्चिमदिशा और दक्षिणायन में कर्कटतक न जाकर लौटनेसे उत्तर पूर्व दिशा नष्ट होती है ॥४॥ मकरकी आदिमें गमन करके लौट आनेसे सूर्य मंगलदायक होता है और यही उसकी सहजगति है, इससे विकृति गति हो तो सूर्य अमंगलदायक होता है ॥५॥

वराहमिहिराचार्यके पहले दो श्लोकोंसे हमको दो ज्योतिषियोंके समयको माननेमें सहायता मिलती है। प्रथम पूर्वशास्त्रकारी और दूसरे स्वयं वराहमिहिराचार्य। वराहके टीकाकार भट्टोत्पलने पूर्वशास्त्रके अर्थमें पराशरीसंहिताको लिखा है। इन्होंने उक्त शास्त्रसे ऋतुके अवस्थाविषयक वचनोंको भी टीकामें उद्धृत किया है।

यथा,–"धनिष्ठाद्यात् पौष्णार्द्धान्तं चरः शिशिरः। वसंतः पौष्णार्द्धात् रोहिण्यान्तम्। सौम्यादाश्लेषार्द्धान्तं ग्रीष्मः। प्रावृडाश्लेषार्द्धात् हस्तान्तम्। चित्राद्यात् ज्येष्ठार्द्धान्त शरत्। हेमन्तो ज्येष्ठार्द्धात् श्रवणान्तम्।

धनिष्ठाकी आदिसे रेवतीके पूर्वार्द्धतक शिशिर काल है। रेवतीके शेषार्द्धसे रोहिणीके शेषतक वसन्तकाल है। मृगशिराकी आदिसे आश्लेषाके पूर्वार्द्धतक ग्रीष्मकाल है। आश्लेषाके शेषार्द्धसे हस्तके शेषतक वर्षाकाल है। चित्राकी आदिसे ज्येष्ठाके पूर्वार्द्धतक शरत्काल है। ज्येष्ठाके शेषार्द्धसे श्रवणके शेषपर्यंत हेमंतकाल होता है।

राशिचक्रके सत्ताईस भाग हैं। प्रत्येक भागमें एक एक नक्षत्र Conste 11 ation रहता है, अतएव प्रत्येक नक्षत्रका व्याप्तिस्थान राशिचक्रके १३ अंश और २० कलाको आधे कम कर रहा है। वसंतकालमें राशिचक्रके जिस स्थानमें सूर्य रहते हैं तब दिनरात समान होता है। उसीको मेषराशिकी आदि मानो और उस स्थानमें हमारे ज्योतिषका योगतारा रेवती और पश्चिमी ज्योतिषका Piscum स्थित है. सूर्यसिद्धांतके मतसे योगतारा रेवती राशिचक्रकी ३५९०–५० कलामें रहता है। परंतु ब्रह्मगुप्तादिक मतसे रेवती ३६० अंशमें अर्थात् राशिचक्रके आदिमें रहता है। ज्योतिषियोंके निरूपित किये नक्षत्रोंके ध्रुवक अक्षांशादि यथास्थानमें प्रकाशित किये जायँगे।

नीचे लिखी हुई सूचीके देखनेसे प्रकाशित हो जायगा कि पराशरकी निरूपण की हुई समस्त ऋतुएं राशिचक्रके किस २ स्थानको अधिकार किये हुए थीं

आरंभ				शेष			ऋतु.	
२८३.	अंश	२०'	कलासे	३५३.	२०,	तक	शिशिर	उत्तरायण
३५३.	,,	२०'	,,	५३.	२०'	,,	वसन्त	
५३.	,,	२०'	,,	११३.	२०'	,,	ग्रीष्म	
११३.	,,	२०'	,,	१७३.	२०'	,,	वर्षा	
१७३.	,,	२०'	,,	२३३.	२०'	,,	शरत्	दक्षिणायन
२३३.	,,	२०'	,,	२९३.	२०	,,	हेमंत	

वराहमिहिरके समयमें सब ऋतु राशिकी आदिमें आरंभ होती थीं, अतएव राशिचक्रके २७० अंशतक होनेपर उनके समयमें शिशिरऋतुका आरंभ हुआ था। अर्थात् पराशरसंहिताके लिखनेवालेके समयसे वराहके समय तक अयन (२९३. २०–२७०) = २३ अंश २० कला पहले अग्रसर हुआ है। इसका अर्थ यह है कि संहिताकारके समय ऋतुका जो बदल होता था, वराहका समय उसकी अपेक्षा ऋतुके २३–२० पहले बदल रहा है। इस गतिको अंग्रेजीमें समरात्रिदिवबिन्दु या क्रांतिपातके पूर्वमें अग्रसरण कहते हैं। अंग्रेजी गणितके मतसे क्रांतिपातकी वात्सरिकगति ५०१ विकला है, अतएव २३–२० विकला आगेसे १६७६ वर्ष बीतते हैं इस कारण अंग्रेजी गणितके मतसे दोनों ज्योतिषियोंके बीचमें इतने वर्षकी संख्याका अंतर दिखाई देता है। वराहमिहिराचार्यका समय भलीभांतिसे निश्चय होनेपर जाना जायगा कि पराशर किस समय हुए थे।

अब यह देखना चाहिये कि वराहमिहिराचार्यके समयसे वर्त्तमानकालतक अयन कितने अंश पूर्वमें आगे बढा है। वंगदेशकी पंजिकाओंके देखनेसे ज्ञात होता है कि शक-

शब्द १८१५ के प्रारंभमें अयन–२०–५४–३६ विकला पूर्वमें आगे वढा है अर्थात् वर्त्तमान-समयमें समस्त ऋतु वराहके समयमें उक्त अंशपूर्वमें आरंभ होती हैं। वर्त्तमान राशियोंके निर्णीत हो जानेसे राशि और मासका परस्परमें संबंध हो गया है। अतएव अयनांशको राशियोंमें योग करनेसे वर्त्तमान समयका सूर्य स्पष्ट सिद्ध होता है।

वंगदेशकी पंजिका–साधित ऋतु इस प्रकारसे प्रकाश की जा सकती हैं।

प्राथ.	आरंभ.	ऋतु	मन्तव्य
१० पौष	मकर	शिशिर	Winter Solstice.
१० माघ	कुंभ		उत्तरायण.
१० फाल्गुन	मीन	वसंत	
१० चैत्र	मेष		क्रांतिपात Vernal Equinor.
१० वैशाख	वृष	ग्रीष्म	Summe Solstice.
१० ज्येष्ठ	मिथुन		
१० आषाढ	कर्क	वर्षा	दक्षिणायन,
१० श्रावण	सिंह		
१० भाद्रपद	कन्या	शरत्	क्रांतिपात Autumnal
१० आश्विन	तुला		
१० कार्तिक	वृश्चिक	हेमंत	Equinox,
१० मार्गशिर	धन		

अतएव वात्सरिकगति ५४ विकला रखनेसे बंगाली पत्रोंमें लिखे हुए अंश अग्रसरसे अयनके १३९४ वर्ष बीतते हैं, अतएव उपरोक्त पत्रोंके मतसे वराह और सूर्यसिद्धांतलेखकका समय ४२१ शकाब्द ज्ञात होता है। हमारे देशके पत्रोंमें भिन्न २ अयनांश दिये हैं। उनमेंसे किसीके मतसे वर्त्तमान वत्सरके अयनांश २२–५३ हैं। किसीके मतसे २२–३९ हैं। किसीका मत बंगाली पत्रोंसे मिलता है। बापूदेवशास्त्रीका पत्रा सब पत्रोंकी अपेक्षा शुद्ध है। इसके देखनेसे जाना जाता है कि वर्त्तमान वत्सरमें अयनांश २२–९–२४ विकला प्रवहमान हैं। अब क्रांतिपातकी वात्सरिकगति ५०।१ विकला स्थिर करके गणित करनेसे ज्ञात हुआ जाता है कि वर्त्तमान समयसे प्राय: १५९२ वर्ष पहले वराहमिहिराचार्य हुए. उपपत्तिका समर्थन करनेके लिये मैं विलायतके और मिसरदेशके विख्यात ज्योतिषी हिपार्कसका गगनदर्शन फल प्रकाशित करता हूं।

हिपार्कसने लिखा है कि मेरे समयमें चित्रानक्षत्र क्रांतिपातबिन्दुके ६ अंश पश्चिममें था और हार्सेल साहबने लिखा है कि १७५० ई. के आरंभमें उक्त नक्षत्र क्रांतिपातके

२० अंश २४ कला पूर्वमें अग्रसर हुआ है। अतएव हिपार्कसके समयसे हार्सेलके समयतक क्रांतिपातबिन्दु २६ अंश २४ कला पूर्वमें अग्रसर हुआ है। अतएव सूक्ष्म गणितके मतसे जाना जाता है कि हिपार्कसने हार्सेलसे १८९७ वर्ष पहले अर्थात् १४७ ई. सनसे पहिले आकाशका दर्शन किया था। हिपार्कसके समयमें चित्रानक्षत्र राशिचक्रके १७४ अंशमें स्थित था। परंतु सूर्यसिद्धांतके लेखक और वराहके समयमें वह ६ अंश पूर्वमें अग्रसर हुआ है अर्थात् क्रांतिपात और चित्रानक्षत्र राशिचक्रके एकस्थानमें अथवा १८० अंशमें स्थित था। अतएव अयनकी वात्सरिकगति ५०.१ विकला स्थिर करके गणित करनेसे जाना जाता है कि, सूर्यसिद्धांतलेखक और वराह हिपार्कसके ४३१ वर्ष पीछे अर्थात् सन २८४ ई. में उत्पन्न हुए। पहले ही कहा जा चुका है कि पराशरीलेखकने वराहसे १६७६ वर्ष पहलेही ऋतुके अवस्थानको प्रकाशित किया अतएव वह सन ईसवीसे १३९२ वर्ष पहले हुआ है।

अब यह प्रकाश किया जाता है कि सूर्यसिद्धांतको आदित्यदासने लिखाया नहीं। वराहमिहिराचार्यने वाराहीसंहिता और बृहज्जातकमें अपने पिताका नाम आदित्यदास लिखा है। बृहज्जातकके अंतमें यह श्लोक है:–

आदित्यदासनतनयस्तदवाप्तबोधः
कापित्थके सवितृलब्धवरप्रसादः।
आवन्तिको मुनिमतानवलोक्य सम्यग्
होरां वराहमिहिरो रुचिरं चकार ॥९॥
दिनकरमुनिगुरुचरणप्रणिपातकृतप्रसादमतिनेदम्।
शास्त्रमुपसंगृहीतं नमोऽस्तु पूर्वप्रणेतृभ्यः ॥

अवन्तीनिवासी वेदमें लब्धज्ञान आदित्यदासके पुत्र वाराहमिहिरने कापित्थ नगरमें सूर्यभगवान्के अनुग्रहको प्राप्त होकर ज्ञानियोंके मतको भली भांतिसे विचार मधुर होराशास्त्रको बनाया। सूर्य मुनि और गुरुचरणमें प्रणाम करनेसें जो अनुग्रह उत्पन्न हुआ है, वही शास्त्रके संग्रहमें मुख्य कारण है, अतएव उनको वारंवार नमस्कार है।

सूर्यसिद्धांतमें जो उस कालका नक्षत्रावस्थान दिया गया है उसके देखनेसे जाना जाता है कि वह वराहके समकालमें बनाया गया। अब हम इन सिद्धांतोंपर उपस्थित होते हैं–१ कदाचित् वराहजी स्वयंसिद्धांतको बनाकर अपने पिताके वा सूर्यके नामसे स्वयं उसका नामकरण करते हैं, अथवा २ उनके पितानेही उसको बनाया उसका नाम भी अपने आपही सूर्यसिद्धांत रक्खा। वराहजीने अपने पंचसिद्धान्तिका ग्रंथमें पंचसिद्धांतके अंतर्गत सौरसिद्धांतका नाम लिखा है, इस कारण भलीभांतिसे प्रकाशित होता है कि सूर्यसिद्धांत उनका बनाया हुआ नहीं है, अतएव यह जान पडता है कि उक्त ग्रंथ उनके पिता आदित्य-

दासजीका बनाया हुआ है। पाठकगणोंके अवलोकनार्थं सूर्यसिद्धांतका और ब्रह्मगुप्तका लिखा हुआ नक्षत्रावस्थान प्रकाशित किया जाता है।

× नक्षत्र.	कल्पित आकार	सूर्यसिद्धांतलिखित ध्रुवक पूर्वपश्चिम	ब्रह्मगुप्तलिखित ध्रुवक.	अक्षांश उत्तर वा दक्षिण	प्रत्येक नक्षत्रके आरंभसे योगतारेकी दूरता १	प्रत्येक नक्षत्रमें नक्षत्रसंख्या	संख्या एकादि क्रमसे.
अश्विनी	तुरंगमुख	८०	८	१० उ.	४८उ.	३	१
भरणी	योनि	२०	२०	१२उ.	४०द.	३	२
कृत्तिका	क्षुर	३७–३०	३७.२८.	४०–३०उ.	६५द.	६	३
रोहिणी	शकट	४९–३०	४९.२८.	४०–३०द.	५७पू.	५	४
मृगशिर	हरिणमुख	६३	६३	१०द.	५८उ.	३	५
आर्द्रा	रत्न	६७–२०	६७	११द.	मध्य ४	१	६
पुनर्वसु	गृह	९३.	९३	६उ.	७८द.	४	७
पुष्य	बाण	१०६	१०६	उत्तर	७६मध्य	७	८
आश्लेषा	चक्र	१०९	१०८	७.द.	१४पू.	५	९
मघा	गृह	१२९	१२९	०.द.	५४द.	४	१०
पूर्वाफाल्गुनी	शय्या	१४४	१४७	१२.उ.	४६उ.	२	११
उत्तराफाल्गुनी	शय्या	१५५	१५५	१३.उ.	५०उ.	२	१२
हस्त	हस्त	१७०	१७०	११.द.	६०	५	१३
चित्रा	मुक्ता व प्रदीप	१८०	१०३	२०.द.	४०	१	१४
स्वाती	प्रवाल	१९९	१९९	३७.उ.	७४	१	१५
विशाखा	तोरण	२१३	२१२.५	१३०.उ.	७८ उ.	४	१६
अनुराधा	बळि	२२४	२२४.५	१.४४.द.	६४मध्य	४	१७
ज्येष्ठा	कुन्तल	२२९	२२९.५	४–द. ३-३०द.	१४मध्य	३	१८

× नक्षत्रोंके अंगरेजी नाम क्रमानुसार,–आलफा, बेटा, ओनामा, आरिएटाआइ, मुस्का-एपसाइलनटराई वाल्पीयेतिस, आलफाटराई वा आलडेवोरन, लामडा, ओराइनिस, आल, फाओराइओनिस, वेटाजोमिनोरम, डेल्टाकोनसेराई, आल्फालेयोनिस वा रेगुलेस; डेल्टा लेयोनिस, वेटालेयोनिस, गामाबानूसेराइ, आल्फामार्जिनिस वा स्पाइका, आल्फाबुटिस वा आर्कुटरेस, आल्फासिरियाइ, डेल्टास्कर्पिओनिस, आल्फास्कर्पिओनिस, नूस्कर्पिओनि, सडेल्टासाजिटेरियाइ, आल्फालाइरी, आल्फाआकुइली, आल्फाडेल्फिनि, लामडाआकीयारि, सडेल्टासाजिटेरियाइ आल्फालाइरी, आल्फाआकुइली, आल्फाडेल्फिनि, लामडाआकोयारि-आल्फापेगेसाइ, आल्फाएन्ड्रोमेडी, जिटापाइसिकम् ।।

१. अंशके छः मागमें लिखा है ।

मूल	क्रोधितकेशरी	२४१	४२१	८–३०'द.	६पु.	११	१९
पूर्वाषाढा	शय्या	२५४	३५४	५०–३०द.	४३	४	२०
उत्तराषाढा	हस्तविलास	२६०	२६०	५द.	पूर्वाषाढका मध्यनक्षत्र उ.	२	२१
अभिजित	त्रिकोण	२६६.४०–२६५		६०उ.	पूर्वाषाढा शेषउज्ज्वल	३	
				६२ उ.			
श्रवण	त्रिविक्रम	२८०	२७८	३०उ.	उत्तराषाढके शेषमध्यमें	३	२२
अनिष्ठा	मृदंग	२९०	२९०	३६उ.	श्रवणका शेषपाद पश्चिम	४	२३
शतभिषा	वृत्त	३२०	३२०	० ०–३०'द.	८० उज्ज्वल	१००	२४
				० ०–१८.द.		१००	
				० ०–२०'द.			
पूर्वभाद्रपदा	यमल	३३६°	३२६	२४०उ.	३६ उत्तर	२	२५
उत्तरभाद्रपद	शय्या	३३७	३३७	२६° उ.	२२ उत्तर	२	२६
रेवती	मुरज	८५९.५०	३६०	३०	७९ द.	३२	२७

और २ प्रधान नक्षत्रोंके ध्रुवक व अक्षांश

नक्षत्र		अंगरेजी नाम.	सूर्यसिद्धांतके मतसे ध्रुवक ब्रह्मगुप्तके मतसे	सिद्धांतसार्वभौमके मतसे ध्रुवक.	ग्रहलाघवके मतसे ध्रुवक.	अक्षांक १ मतसे दक्षिण उत्तर.	अक्षांश २ मतसे द. वा. उ.	अक्षांश ३ मतसे द. वा. उ.
अगस्त		Conopus	९० / ८७	८५–५	८०	८०द. / ८७	७७०–६ द.	७३द.
लुब्धक		Sirius	८०	८९'७६	८०	४०द.	४०,'०'५द.	४०द.
अग्नि	वेटा	Tauri	५२	५७–४	४३	८उ.	८–१४	८उ.
ब्रह्महृदय		Capella	५२	५८.३६	५६	३०उ.	३०,४९.	३१उ.
प्रजापति	डेल्टा	Aurigi	५७	५६–५३	६१	३७उ.	३८,३०	३१उ.
आपस्वसे / आपः	डेल्टा	Virginis	१८०	१८०	१८३	३ / ९	३	३९उ. / ३उ.
ऋतु							५५ उ.	साकल्यसंहिताके मत से
पुलह							५० उ.	
अत्रि							५६ उ.	
अंगिरस							५७ उ.	
वशिष्ठ							६० उ.	
मरीचि							६० उ.	
पुलस्त्य							५० उ.	

ब्रह्मगुप्तके समयमें चित्रानक्षत्र १८३ अंशमें स्थित था अर्थात् सूर्यसिद्धान्तलेखक और वराहके समयसे चित्रानक्षत्र तीन अंश पूर्वमें अग्रसर हुआ है। अतएव ब्रह्मगुप्त, वराहमिहिराचार्यसे २१५ वर्ष पीछे अर्थात् शके ४२१ में उत्पन्न हुआ।

ऐसा कहते हैं कि पारसके शाह नौशेखांके यहां "बुजुर्गचेमेहर" नामक एक वजीर था। इस शाहने सन ५३४ ई० से लेकर सन ५९० ई० तक राज्य किया। इस नामके साथ वराहमिहिरके नामका कुछ २ मिलान होनेसे कोई २ अनुमान कर सकते हैं कि यह इस शाह नौशेखांके सभासद थे। यदि ऐसे आदमी इस बातको जान जायं तो उनकी यह धारणा दूर हो जायगी कि इसही मंत्रीकी आज्ञासे विष्णुशर्माके पंचतंत्रका फारसी भाषामें अनुवाद किया गया। इसके अतिरिक्त एक कारण यह भी है कि विष्णुशर्माजीने पंचतंत्रमें वराहमिहिराचार्यका नाम लिखा है फिर भला वराहमिहिराचार्य किस प्रकार नौशेखांके समयके हो सकते हैं।

वराहमिहिराचार्यने बृहज्जातकमें ऐसे बहुतसे ज्योतिर्विदोंका नाम लिखा है जो कि उनसे पहले हो गये थे। जैसे,—मय, यवन, मणित्थ, शक्ति, सत्य, बली, विष्णुगुप्त, देवस्वामी, सिद्धसेन, जीवशर्म्मा, पृथुयशा इत्यादि। वराहजीने भी मान लिया है कि ज्योतिषशास्त्रमें यवनोंको Ionians, Greeks विशेष दक्षता थी वह कहते हैं:—

"म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदंस्थितम्।
ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद्द्विजः॥"

म्लेच्छ (कदाचारी) यवनोंके मध्यमें इस शास्त्र (फलितज्योतिष) की विशेष आलोचना है. इस कारण वे भी ऋषितुल्य पूजनीय हैं, शास्त्रका जानने वाला ब्राह्मण हो तब तो बातही क्या है? इस वचनको देखकर अनुमान किया जाता है कि वराहजीसे मिसरनिवासी ज्योतिषियोंका भी मेल था।

आर्यभट्टका समय निश्चय करनेसे पहले अयनांशके विषयमें कुछ लिखना आवश्यक है। जिस प्रकार वर्षके परिमाण विषयमें हमारे ज्योतिषिगण एकमत नहीं हैं, वैसेही अयनांशके विषयमें उनका विचार एकसा नहीं है। पराशरीलेखक आदि मुख्य २ प्राचीन ज्योतिषिगणोंने भी अयनांशकी अवस्थाको दोदुल्यमान माना है। परंतु वशिष्ठसिद्धान्तके लेखक वष्णुचंद्रनेही सबसे पहले क्रांति पातका परिधिवत् परिभ्रमण प्रकाश किया।

आर्यभट्टके मतसे एक कल्पमें अर्थात् ४३२०००००० वर्षमें १५८२२३७५००००० नक्षत्रोंका उदय होता है अतएव इतने वर्षोंमें १५७७९१७५००००० दिन होते हैं। आर्यभट्टोंके निरूपण किये हुए वर्षोंके परिमाणको बहुतसे उन ज्योतिषियोंने जो पीछे हुए हैं, अपनी २ पुस्तकोंमें व्यवहार किया है ब्रह्मसिद्धान्तके लेखकने एक कल्पमें "प्ररिवर्ताखचतुष्टयशराब्धिरसगुणयमद्विवसुतिथयः।" अर्थात् १५८२२३६४५०००० नक्षत्रोंका उदय लिखा है। ब्रह्मस्फुटसिद्धांतलेखक ब्रह्मगुप्तनेभी यही लिखा है। यथाः।—

ब्रह्मोक्तं ग्रहगणितं महता कालेन यत्खिलीभूतम्।
अभिधीयते स्फुटं तत् जिष्णुसुतब्रह्मगुप्तेन॥
येऽज्ञानपटलारुद्धदृशोऽन्यद्ब्राह्माद्वदन्ति सिद्धान्तात्।
तेषां युगादिभेदाद्ये दोषास्तान् प्रवक्ष्यामि॥

चत्वारि शून्यानि पञ्चवेद रसाग्नि यमपक्षाष्टशरेन्दवः कल्पेन प्रति नक्षत्रोदयात् ।।

ब्रह्मकी बनाई हुई उक्त ग्रह गणना, प्राचीन होनेसे निकम्मी हो गई, इस कारण जिष्णुपुत्र ब्रह्मगुप्त उसका स्फुट लिखते हैं जो अज्ञानीलोग ब्रह्मसिद्धांतसे अलग होकर बात कहते हैं उनके युगादिभेदमें जो दोष है सो कहते हैं। एक कल्पमें १५८२२३६४५-०००० नक्षत्रोंका उदय होता है।

ब्रह्मगुप्तका अत्यन्त मान करनेवाले भास्कराचार्यने भी ब्रह्मगुप्तके निरूपण किये हुए वर्ष परिमाण और नक्षत्रावस्थानको अपनी शिरोमणिमें प्रकाश किया है।

सूर्यसिद्धान्तके लेखक व और मुख्य २ ज्योतिषियोंने अयनकी चपल अवस्थाकी कल्पना की है। परंतु भास्करने इस मतको खंडन करनेके इस लिये वास नाभाष्यमें लिखा है,–"यद्येवमनुपलब्धोऽपिसौरसिद्धांतैःत्वागमप्रामाण्येन भगण परिधिवत् कथं तैर्नोक्तः।" अर्थात् यदि सूर्यसिद्धान्तादिका समय अयनांशमें समस्तही था तो आगममें नर (वासिष्ठ-सिद्धांत) के मतानुसार नक्षत्रचक्रके परिधिवत् भ्रमणक रनेके मतको क्यों उन्होंने प्रकाश नहीं किया। परंतु इसका कारण यथार्थरूपसे विना जानेही भास्कराचार्यने इस प्रकारके मतको प्रकाश किया है सो पीछे लिखा जायगा सूर्यसिद्धांतमें लिखा है।

त्रिंशत्कृत्वो युगे भानां चक्रं प्राक् परिलम्बते ।
तद्गुणाद्भूदिनैर्भक्ताद् द्युगणाद्यदवाप्यते ।।
तद्दोस्त्रिघ्ना दशाप्तांशा विज्ञेया अयनाभिधा ।

एक महायुगमें नक्षत्रचक्र ६००(३० × २०) वार पूर्वमें अग्रसर होता है। अभिलषित दिन (अहर्गण) या वर्षोंको ६०० से गुणित करके युगके भूदिन या वत्सरसे हरण करके जो प्राप्त हो उसका भुज करके तीनसे गुणित करके दशसे हरण करनेपर अयनांश प्राप्त होंगे। इस श्लोकका लेख और अर्थ दोनों अत्यन्त जटिल हैं। मूल बात यह है कि, सुगम वस्तुके प्रकाश करनेमें इतना प्रयास क्यों किया जाय। अंकशास्त्रमें यह रीति प्रार्थनीय नहीं है, भास्कराचार्यने जो इसका और अर्थ समझा है सो पीछे लिखेंगे।

ज्योतिषके एक और प्रथम भी अयनांशनिरूपक श्लोकके शेष चरणका अर्थ जटिल हुआ है। यथा :–

युगे षट्शतकृत्वो हि भचक्रं प्राक् विलम्बते ।
तद्गुणो भूदिनैर्भक्तो द्युगणोऽयनखेचरः ।।

यहां पर "द्युगुण" शब्दका अर्थ अर्हगण न किया जाय तो किसी प्रकारसे पूर्व श्लोकके साथ सामंजस्य नहीं होता। डेंमिस साहबने भी इस श्लोकका अर्थ ठीक नहीं किया। उन्होंने लिखा है,– Multiply Ahargan (Number Of mean solar qays for which calculation in made) by 600 and divide the the prodnct by saven days in a yug, of quotient take sine and multipfy 3 and divide by 10 to get ayanansha.

जो कुछभी हो, पहले श्लोकसे अवगत हुआ जाता है कि सूर्यसिद्धांतके मतसे अयनका वात्सरिक गति ५४ विकला है।

पराशरका मत है कि; एक कल्पमें नक्षत्रचक्र ५८१७०९ वार चलायमान होता

है, आर्यभट्टके मतसे ५७८१५९ वार चलता है अतएव इन दोनोंके मतसे क्रमानुसार प्रतिवत्सर अयन ५२–३ और ५२–१ विकला पूर्वमें अग्रसर होता है। पराशरीसंस्तिाही आर्यभट्टके सिद्धांतकी मूलभीत है, उनकी पुस्तकके उद्धृतांशसे ऐसाही अनुमान होता है। अयनकी चलायमान अवस्थाका प्रथम प्रवर्त्तक पराशरीका लिखनेवाला है। उसके मतसे अयनचक्र मेषराशिके २७ अंश पूर्वमें और पश्चिमें इन दोनों बिन्दुओंके मध्यमें डोलता है। पराशरीयमें लिखे हुए गगनदर्शनके साथ आर्यभट्टने अपने बनाये हुए गगनदर्शनको मिलाया था व और २ वातोंमें भी अपनी बुद्धिको चलाया था। आर्याष्टशतिका ग्रंथमें उन्होंने अयनके विषयमें एक भिन्न मत लिखा है–उनके मतसे "चतुर्विशत्यंशैश्चक्रमुभयतो गच्छेत्" अर्थात् अयनचक्र दोनों और २४ अंश करके गमन करता है। उसने अपने परवर्ती ग्रंथ दशगीतिका में उक्त मतका निराकरण करके प्राचीन मतको ही बलवान् रक्खा है। इसने जो दो मत प्रकाशित किये इससे अनुमान किया जाता है कि उसने २४ अंश लिखकर अपने समयमें अनुमानसे अयनकी सीमाका निर्देश किया है। अतएव जाना जाता है कि जब अयनचक्र पश्चिमबिन्दुसे २४ अंश अग्रसर हुआ है तब वह उत्पन्न हुए। वराह और सूर्यसिद्धांतके लेखकके समयमें अयनचक्र पश्चिमबिन्दुसे २७ अंश अग्रसर हुआ था अतएव आर्यभट्टके समयमें अयनचक्र मेषके ३ अंश पश्चिममें था इस कारण वह वराहजीसे २१५ वर्ष पहले अर्थात् शकाब्दसे ९ वर्ष पहिले उत्पन्न हुए। बाबू अपूर्वचंद्र कहते हैं कि आर्यभट्ट युधिष्ठिरसे १६ शताब्दी पीछे हुए. कोलब्रुकसाहिबका मत है कि, ग्रीसीय बीजगणितके आविष्कारक डिओफानटुसके समयमें आर्यभट्ट वर्त्तमान थे। डिओफानटुस सन् ३१९ ई. के आगे पीछे किसी समयमें उत्पन्न हुआ था। पूना निवासी श्रीमान् बाल गंगाधर तिलक महोदयने 'orion' (मृगशिरा, आर्द्रा) नामक ग्रंथ प्रकाश करके वेदके प्रमाण देकर दिखाया है कि अयनकी चलायमान अवस्था गणितके मतसे अशुद्ध है।

गर्गसंस्तिा भी ज्योतिषका एक प्राचीन ग्रंथ है। वराहजीने वारंवार बृहत्संहितामें इस ग्रंथका नाम लिखा है। बृहत्संहिताका अंगरेजी अनुवाद करनेवाले अध्यापक कार्णने गर्गसंहितासे वचन उद्धृत करके लिखा है कि सन् ईसवीसे ४४ वर्ष पहले गर्गसंहिता बनी है। वह वचन यह है:–

ततः साकेतमाक्रम्य पंचालान् मथुरांस्तथा।
यवना दुष्टविक्रान्ता प्राप्स्यन्ति कुसुमध्वजम्॥
ततः पुष्पपुरे प्राप्ते कर्दमे प्रथिते हिते।
अकुला विषयाः सर्वे भविष्यन्ति न संशयः॥

दुष्टयवनगण साकेत, पंचाल और मथुराको आक्रमण करके पाटलीपुत्र (पटने) में जायँगे। कुसुमपुरमें जाकर उसको लूटेंगे और तहस नहस कर डालेंगे। कार्नसाहब कहते हैं कि व्याट्रीयरराजा मिनाएडरके समयमें इसवी सनसे १४४ वर्ष पहिले साकेतपर चढाई हुई थी। अतएव इस चढाईसे पीछेही गर्गसंहिताका लिखने वाला हुआ। गर्गजीने अयनके विषयमें जो कुछ लिखा है उससे जाना जाता है कि उन्होंने यह विषय पराशरीसे लिया। क्योंकि अयनका शुभाशुभ फल वर्णन करनेमें दोनोंने एक ही मत प्रकाशित किया है!

यथा, पराशरः –

यदा प्राप्तो वैष्णवान्तमुदङमार्गे प्रपद्यते।
दक्षिणेऽश्लेषां वा महाभयाय॥

गर्गजी लिखते हैं–

यदा निवर्त्तते प्राप्तः श्रविष्ठामुत्तरायणे ।
आश्लेषां दक्षिणोऽप्राप्तस्तावद्विद्यान्महद्भयम् ।।

दोनों श्लोकका एकही अर्थ है, धनिष्ठाके शेषतक गमन करनेसे सूर्यका उत्तरायण होता है और अश्लेषातक गमन करके दक्षिणायन आरंभ होनेपर महाभय की शंका करनी चाहिये। पराशरजीके लेखकी प्राचीनता उनके छंदसे ही प्रगट हो रही है।

क्रांतिपातका परिधिवत् परिभ्रमण हिन्दु ज्योतिषियोंके मध्यमें सबसे पहले वासिष्ठ-सिद्धान्तके लेखक विष्णुचंद्रने प्रकट किया, उनका मत है कि क्रांतिपात एक कल्पमें १८९४११ वार परिभ्रमण करता है, अतएव जाना जाता है यह उनके मतसे अयन प्रतिवर्ष ६०.०६ विकला करके पूर्वमें अग्रसर होता है कि यह मत ग्रीसवाले हिपार्कस और टेलिमी इन दो ज्योतिषियोंकी पुस्तकसे लिया गया है, अथवा स्वयम् आर्यज्योतिषियोंका प्रकाश किया हुआ है, इस बातको हम भली भांति निर्णय नहीं कर सकते हैं। परंतु दोनों ज्योतिषियोंकी निरूपण की हुई अयनकी वात्सरिक गतिको निहारकर जाना जाता है कि इसका विष्णु-चंद्रने निरपेक्षभावसे प्रगट किया। हिपार्कसके मतसे क्रांतिपात प्रायः ८५ वर्षमें एक अंश और टेलिमीके मतसे १०० वर्षमें एक अंश आगे बढता है।

भास्करने लिखा है–शिरोमणिका ६ अध्याय।

विषुवत्क्रान्तिवलययोः सम्पातः क्रान्तिपातः स्यात् ।
तद्भगणाः सौरोक्ता व्यस्ता अयुतत्रयं कल्पे ।।१७।।
अयनचलनं तदुक्तं मुञ्जलाद्यैः स एवायम् ।
तत्पक्षे तद्भगणः कल्पे गोऽङ्गर्तुनन्दगोचन्द्राः ।।१८।।

विषुव और क्रांतिमंडलके मिलनेको क्रांतिपात कहते हैं। सूर्यसिद्धांतके मतसे एक कल्पमें उसका भगण तीस हजार होता है। अयनचलन और क्रांतिपात एकही बात है मुंजलादिके मतसे एक कल्पमें अयनके १९९६६९ भगण होते हैं। शिरोमणिकी व्याख्या कहनेवाले मुनीश्वरने सूर्यसिद्धांतके साथ मेल करनेके लिये "व्यस्ता" का अर्थ–वि=विंशति +अस्ता गुणिता अर्थात् (२०×३००००) ६००००० छः लाख किया है, मुंजलादिके मतसे अयनकी वात्सरिकगति ५९०९ विकला है।

किसी २ ज्योतिषीके मतसे ४४४ शकाब्दमें अयनांशका आरंभ हुआ। इन ज्योतिषियों-का मत है कि अयन ६० वर्षमें एक अंश आगे बढ़ता है। उनका संकेत यह है:–

शको बेदाब्धिवेदोनः षष्ठिभक्तोऽयनांशकः ।
देयास्ते तु रवौ स्पष्टे चरलग्नादिसिद्धये ।।

शकाब्दसे ४४४ घटाकर ६० से भाग करो तो अयनांश प्राप्त होगा, निरयण रविमें उसको मिलानेसे सायन रविका चर और लग्न भी पाई जायगी। अनुमान किया जाता है कि भास्कराचार्यके कर्णकुतूहलसे पिछले ज्योतिषियोंने ऊपरके भ्रान्त मतको पाया है। कर्णकुतूहल ११०५ शकमें लिखा गया है उसमें ग्यारह (११) अयनांश लिखे हैं। अतएव ६० वर्षमें एक अंश हुआ इस अनुपातके मतसे ११ अंशके ६६० वर्ष होते हैं। परवर्त्ती ज्योतिषी लोगोंने ११०५ शकसे ६६० घटाकर अयनके आरंभको पाया है। परंतु भास्करा चार्यके मतको हम समीचीन नहीं समझते। भास्करने लिखा है :–

ब्रह्मगुप्तादिभिः स्वल्पान्तरत्वान्नः कृतः स्फुटः ।
स्थित्यर्द्धपरिलेखादौ गणितागत एव हि ॥
नक्षत्राणां स्फुटा एव स्थिरत्वात् पठिताः शराः ।
दृक्कर्मणायनेनैषां संस्कृताश्च तथा ध्रुवाः ।

अयनांशके बहुत थोडा होनेसे ब्रह्मगुप्तादि ज्योतिषियोंने स्फुटशर नहीं बनाया। ग्रहणके स्थित्यर्द्ध और परिलेख आदिमें गणित करके स्फुट पाया जाता है। नक्षत्र स्थिर रहता है (चलता नहीं) इसलिये नक्षत्रोंके स्पष्ट शरही पठित हैं, इसी प्रकार दृक्कर्म और अयन (Declination) संस्कृत नक्षत्रोंके स्फुट ध्रुवक भी पठित हैं। अतएव जान पडता है कि भास्करके दृक्कर्मकी (Odservation) लब्ध गणनामें २/१ अंशका भ्रम हुआ होगा। भास्करसे पहले बहुतसे ज्योतिषी हो चुके हैं। हंटर साहबको उज्जयिनीके पंडितोंने जो कई एक ज्योतिषियोंका समय बताया था वह नीचे लिखा जाता है।

वराहमिहिराचार्य	१२२	शकाब्द
*दूसरा	४२१	"
ब्रह्मगुप्त	५५०	"
भट्टोत्पल	८९०	शकाब्द.
श्वेतोत्पल	९३९	"
वरुणभट्ट	९६२	"
भोजराज	९६४	"
भास्कर	१०७२	"
कल्याणचंद्र	११०१	"

भोजराजकी एक शिलालिपिमें ९१९ संवत् और ७८४ शकाब्द लिखा हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि भारतवर्षमें कई एक भोजराज हुए हैं। इस कारण स्थिर दृष्टि रखकर प्रत्येक कार्यको करना चाहिये।

शतानंदने १०२१ शकाब्दमें भास्वतीनामक पुस्तकको बनाया। यह एक क्षुद्र करण ग्रंथ है इसमें सूर्यसिद्धांत और वराहजीका निरूपण किया हुआ गंणित चुम्बकभावसे लिखा हुआ है।

यथाः–"नत्वा मुरारेश्चरणारविनन्दं श्रीमान् शतानन्द इति प्रसिद्धः ।
तां भास्वतीं शिष्यहितार्थमाह शाके विहीने शशिपक्षखेके ॥
शाको नवाद्रीन्दुकृशानुयुक्तः कलेर्भवत्यब्दगणो व्यतीतः ।
वियन्नभोलोचनवेदहीनः शास्त्राब्दपिण्डः कथितः स एव ॥
कृतयुगाम्बरवह्निभिरुज्झितो गतकलिःकिलविक्रमवत्सराः ।
शरहुताशनचंद्रवियोजिता भवति शाक इहं क्षितिमण्डले ॥

* यह इस शकाब्दमें उत्पन्न हुआ। उसका प्रमाण बृहत्संहिताकी व्याख्या देखनेसे मालूम हो जाता है। व्याख्या पुस्तकके शेषमें देखिये। यथा–"फाल्गुनस्य द्वितीयायामसितायां गुरौ दिने। वस्वष्टाष्टमिते शाके कृतेयं विवृतिर्मया"॥

अथ प्रवक्ष्ये मिहिरोपदेशात् तत्सूर्यसिद्धान्तसमं समासात् ।
शास्त्राब्दपिण्डस्वरशून्यदिग्घ्नस्तानाग्नियुक्तोऽष्टशतैर्विभक्तः ॥

पुस्तकके शेषमें लिखा है–

ये खाश्विवेदाब्दगते युगाब्दे दिव्योक्तितः श्रीपुरुषोत्तमस्य ।
श्रीमान् शतानन्द इमां चकार सरस्वतीशं करयोस्तनूजः ॥

शतानंदके लिखे हुए "मिहिरोपदेशात्" वाक्यको देखकर श्रीयुक्त बेंटलि साहबने सिद्धांत किया है कि वराहमिहिरजी शतानन्दके गुरु थे इस कारण वह १०६० सन इसवीमें हुए, परंतु पाठकगण ! आप भलीभांतिसे याद रक्खें कि बेन्टलिने इसका अर्थ नहीं समझा ।

केशव सांवत्सरके पुत्र गणेश दैवज्ञने शकाब्द १४४२ में ग्रहलाघव वा सिद्धांत-रहस्यको बनाया । इन महाशयका लेख अत्यन्त जटिल है ।

यहांतक ज्योतिषियोंका समय निरूपण किया गया । यद्यपि हमको वराहमिहिराचार्यजीकाही समय निरूपण करता था, परंतु प्रसंग आपडनेसे कई बातोंकी समालोचना हो गई । बृहत्संहिता नामक ग्रंथ ऐसा है कि जिसके पढनेसे मनुष्य सब कार्योंमें कुशल हो जाता है, ऐसे उत्तमोत्तम ग्रंथकी हिन्दीटीका न होना और बंबईमें न छपना एक आश्चर्यकी बात थी, परंतु अब देशकालका विचार करके इस ग्रंथका सरल हिन्दीटीका अत्यंत परिश्रमके साथ किया और जिसको तत्काल हमारे परम हितकारी विष्णुभक्त सेठ गंगाविष्णु श्रीकृष्णदासजीने अपने लक्ष्मीवेंङ्कटेश्वर यंत्रालयमें मुद्रित कर प्रकाशित किया । उक्त सेठजीको इस भाषानुवादका संपूर्ण स्वत्व समर्पण किया गया है इस कारण कोई भी सज्जन इस अनुवादमेंसे काटने छाटनेका प्रयत्न न करें । हमारे पूजनीय अग्रज सुप्रसिद्ध विद्वद्वर विद्यावारिधि पं० ज्वालाप्रसादजी मिश्रने इस ग्रंथको आदिसे अंततक शुद्ध किया है इस कारण वारंवार उनको हार्दिक धन्यवाद दिया जाता है ।

इसके अनुवादकार्यमें कई पुस्तकोंसे सहायता मिली है जिनका उल्लेख नीचे किया जाता है यथाः–भट्टोत्पलकी संस्कृतटीका, वंगवासीकार्यालयसे प्रकाशित पंचाननतर्करत्नकी टीका, तथा, द्रविडदेशसे प्रकाशित अरुणोदय टीका । इनके प्रकाशक और अनुवादकोंको भी वारंवार धन्यवाद हुआ है । इस टीकाको पढकर यदि एक भी व्यक्तिके हृदयमें ज्ञानका संचार हुआ तो मैं अपने परिश्रमको सफल समझूंगा । मैं सहृदय पाठकगणोंसे निवेदन करता हूं कि इस ग्रंथके अनुवादको कृपादृष्टिसे निहार जाइये । इसके अतिरिक्त छिद्रान्वेषी गण तो सब अंगोंमें दोष देखेंगे ही । गोसाईं तुलसीदासजीने सत्यही लिखा है ।

जे परदोष लखहिं सहसाखी । परहित घृत उनके मन माखी ॥
पर अकाज लगि तनु परिहरहीं । जिमि हिमउपल कृषी दरि गरहीं
हरिहरयश राकेश राहुसे । पर अकाज लगि सहसबाहुसे ॥

जहां कहीं कुछ अशुद्धि रह गई हो वहां पाठकगणोंको शुद्ध करके पढना चाहिये ।

विनीत निवेदन–
बलदेवप्रसादमिश्र,
मुहल्ला दीनदारपुरा,
मुरादाबाद.

श्रीः

वाराहीसंहिताकी विषयानुक्रमणिका

इति विषयानुक्रमणिका समाप्ता।

श्रीः

अथ विद्वद्वरवराहमिहिराचार्यविरचिता

वाराहीसंहिता

हिन्दीटीकासहिता

प्रथमोऽध्यायः

जयति जगतः प्रसूतिर्विश्वात्मा सहजभूषणं नभसः। द्रुतकनकसदृशदश-शतमयूखमालार्चितः सविता ॥१॥ प्रथममुनिकथितमवितथमवलोक्य ग्रंथविस्तरस्यार्थम्। नातिलघुविपुलरचनाभिरुद्यतः स्पष्टमभिधातुम् ॥२॥ मुनिविरचितमिदमिति यच्चिरन्तनं साधु न मनुजग्रथितम्। तुल्येऽर्थेऽक्षरभेदादमंत्रके का विशेषोक्तिः ॥३॥ क्षितितनयदिवसवारो न शुभकृदिति यदि पितामहप्रोक्ते। कुजदिनमनिष्टमिति वा कोऽत्र विशेषो नृदिव्यकृते ॥४॥ आब्रह्मादि विनिःसृतमालोक्य ग्रंथविस्तरं क्रमशः। क्रियमाणकमेवैतत् समासतोऽतो ममोत्साहः ॥५॥ आसीत्तमः किलेदं तत्रापां तैजसेऽभवद्धैमे। स्वर्भूशकले ब्रह्मा विश्वकृदण्डेऽर्कशशिनयनः ॥६॥ कपिलः प्रधानमाह द्रव्यादीन् कणभुगस्य विश्वस्य। कालं कारणमेके स्वभावमपरे जगुः कर्म ॥७॥ तदलमतिविस्तरेण प्रसङ्गवादार्थ-निर्णयोऽतिमहान्। ज्योतिःशास्त्राङ्गानां वक्तव्यो निर्णयोऽत्र मया ॥८॥ ज्योतिःशास्त्रमनेकभेदविषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितं तत्कात्स्न्र्योपनयस्य नाम मुनिभिः संकीर्त्यते संहिता। स्कन्धेऽस्मिन् गणितेन या ग्रहगतिस्तन्त्राभिधानस्त्वसौ होरान्योऽङ्गविनिश्चयश्च कथितःस्कन्धस्तृतीयोऽपरः ॥९॥ वक्रानुवक्रास्तमयोदयाद्यास्ताराग्रहाणां करणे मयोक्ताः। होरागतं विस्तरतश्च जन्म यात्राविवाहैः सह पूर्वमुक्तम् ॥१०॥ प्रश्नप्रतिप्रश्नकथाप्रसङ्गान् स्वल्पोपयोगान् ग्रहसम्भवांश्च। संत्यज्य फल्गूनि च सारभूतं भूतार्थमर्थैः सकलैः प्रवक्ष्ये ॥११॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामुपनयनाध्यायः प्रथमः ॥१॥

जो संपूर्ण जगत्के उत्पत्तिस्थान हैं, जो संपूर्ण जगत्के आत्मारूप हैं, जो आकाशके स्वाभाविक आभूषणस्वरूप हैं, उन गलाये हुए सुवर्णके समान किरणोंकी माला करके शोभायमान श्रीसूर्यनारायण सर्वोत्कर्ष करके वर्त्तमान हों ॥१॥ प्रथम मुनि (ब्रह्माजी) करके विस्तारपूर्वक वर्णन किये हुए सत्यरूप शास्त्रको अवलोकन करके उसको ही अति-संक्षेप और अतिविस्ताररहित रचनाके द्वारा स्पष्ट रीतिसे वर्णन करनेके निमित्त मैं वराह मिहिराचार्य उद्यत हुआ हूं ॥२॥ यदि कहो कि जो मुनि (ब्रह्मादि) विरचित और प्राचीन हैं वे ही शास्त्र उत्तम हैं, और जो मनुष्यविरचित है वह शास्त्र उत्तम नहीं हो सकता,—तहां कहते हैं कि मंत्रसे भिन्न मुनि (ब्रह्मादि) के वाक्यसे मनुष्यचरित शास्त्रके

अर्थकी तुल्यता होय और अक्षरमात्रका भेद होय तो मनुष्यरचित वाक्यसे प्राचीन मुनि (ब्रह्मादि) रचित वाक्यमें क्या विशेषता हो सकती है ? जिस प्रकार ब्रह्माजीके रचना-किये हुए ग्रंथमें यह लिखा है, कि–"क्षितितनयवासरो न शुभकृत्–मंगलवार शुभकारक नहीं है" और मनुष्यकृत ग्रंथमें यह लिखा है कि–"कुजदिनमनिष्टम्–मंगलवार अनिष्टकारक, है" यहां पाठभेदके सिवाय मुनिकृतमें मनुष्यकृतसे क्या विशेषता है ! अर्थात् कुछ नहीं, ब्रह्मा आदिके रचना किये हुए संपूर्ण शास्त्रोंमें अतिविस्तार देखकर क्रमसे और संक्षेप रूपसे इस शास्त्रको प्रकाश करनेके निमित्त मेरा उत्साह है ।।३।।४।।५।। जिस समय कुछ सृष्टि नहीं थी उस समय यह संपूर्ण जगत् अंधकारमय था उस अंधकारके विषे ही जलमें एक तेजयुक्त सुवर्णका अंडा उत्पन्न हुआ उसके स्वर्ग और पृथिवीरूप दो टुकडे हुए। उन टुकडोंमेंसे ही सूर्य और चंद्रमा हैं नेत्र जिनके ऐसे ब्रह्माजी उत्पन्न हुए ।।६।। जगत्की उत्पत्ति होनेके विषयमें मुनियोंके अनेक प्रकारके मतभेद देखनेमें आते हैं, कपिल कहते हैं, कि प्रधान अर्थात् मूलप्रकृतिही विश्वका कारण है, कणाद मुनि कहते हैं कि द्रव्य आदि पदार्थ ही जगत्की उत्पत्तिका कारण है, कोई कालको कारण कहते हैं, और अपर (दूसरे) स्वभावको कारण कहते हैं और मीसांसक कहते हैं कि कर्मही जगत्का कारण है ।।७।। जगत्की उत्पत्तिका वर्णन करनेके विषयमें अधिक विस्तार करनेकी आवश्यकता नहीं है, इस प्रसंगका निर्णय करनेमें अनेक पदार्थोंका वर्णन करना पडेगा, और वह विषय भी थोडा नहीं इस कारण इसका विचार छोडकर हमको यहाँ केवल ज्योतिषशास्त्रोंके अंगोंका निर्णय करना है ।।८।। अनेक प्रकारके भेदवाला ज्योतिषशास्त्र तीन भागोंमें बँटा हुआ है, संहिता, तंत्र और होरा । जिसमें संपूर्ण ज्योतिषशास्त्रके विषयोंका वर्णन होय उसको संहितास्कन्ध कहते हैं और जिसमें गणितसे ग्रहोंकी गति वर्णन की जाती हो उसको तंत्रस्कन्ध कहते हैं और जिसमें अंगोंका निर्णय अर्थात् यात्रा विवाह आदिका वर्णन है उसे होरास्कन्ध कहते हैं ।।९।। मैंने अपने रचे हुए पञ्चसिद्धान्तिकानाम करण-ग्रंथमें तारा (भौमादि पञ्च) ग्रहोंके वक्र, मार्ग, अस्त और उदय आदि वर्णन किये हैं। और बृहज्जातक तथा बृहद्विवाहपटल आदि ग्रंथोंके विषे जन्म, यात्रा, विवाह आदि विस्तार-पूर्वक प्रथम ही वर्णन कर दिये हैं ।।१०।। अब गर्ग आदि मुनियोंके रचे हुए प्रतिशास्त्रोंके आरंभमें शिष्योंके किये हुए प्रश्न और गर्ग आदि मुनियोंके कहे हुए उत्तर और अनेक-प्रकारके कथा प्रसङ्ग तथा सूर्यादि ग्रहोंकी उत्पत्ति आदि असार वार्ताओंको और गोल विरुद्ध जो प्राचीन वार्त्ता प्राचीन संहिताग्रंथोंमें वर्णन की हैं उनका भी कार्य बहुत कम पडता है, इस कारण उन सब निःसार वार्ताओंको त्यागकर साररूप और भूतार्थ पदार्थोंको इस ग्रंथमें वर्णन करता हूं ।। ११ ।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीय-
मुरादाबादवास्तव्य–पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां
हिन्दीटीकायां शास्त्रोपनयनाध्यायः प्रथमः ।।१।।

द्वितीयोऽध्यायः

अथातः सांवत्सरसूत्रं व्याख्यास्यामः

तत्र सांवत्सरोऽभिजातः प्रियदर्शनो विनीतवेषः सत्यवागनसूयमः समः सुसंहतोपचितगात्रसन्धिरविकलश्चारुकरचरणनखनयनचिबुकदशनश्रवणललाटभ्रूत्तमाङ्गो वपुष्मान् गम्भीरोदात्तघोषः। प्रायः शरीराकारानुवर्त्तिनो हि गुणाश्च दोषाश्च भवति ॥१॥ तत्र गुणाः–शुचिर्दक्षः प्रगल्भो वाग्मी प्रतिभानवान् देशकालवित्सात्त्विको न पर्षद्भीरुः सहाध्यायिभिरनभिभवनीयः कुशलोऽव्यसनीशान्तिकपौष्टिकाभिचारस्नानविद्याभिज्ञो विबुधार्चनव्रतोपवासनिरतःस्वतन्त्राश्चर्योत्पादितज्ञानप्रभावः पृष्ठाभिधाय्यन्यत्रदैवात्ययाद्ग्रहगणितसंहिताहोराग्रंन्थार्थवेत्ता ॥२॥ तत्र ग्रहगणिते पौलिशरोमकवासिष्ठसौरपैतामहेषु पञ्चस्वेतेषु सिद्धान्तेषु युगवर्षायनर्तुमासपक्षाहोरात्रयाममुहूर्त्तनाडीविनाडीप्राणत्रुटित्रुटचवयवाद्यस्य कालस्य क्षेत्रस्य च वेत्ता ॥३॥ चतुर्णां च मासानां सौरसावननाक्षत्रचांद्राणामधिमासकावमसम्भवस्य च कारणाभिज्ञः ॥४॥ षष्टयब्दयुगवर्षमासदिनहोराधिपतीनां प्रतिपत्तिविच्छेदविद्। सौरादीनाश्च मानानां सदृशासदृशयोग्यायोग्यत्वप्रतिपादनपटुः। सिद्धान्तभेदेऽप्ययननिवृत्तौ प्रत्यक्षं सममण्डलरेखासम्प्रयोगाभ्युदितांशकानाञ्च छायाजलयंत्रदृग्गणितसाम्येन प्रतिपादनकुशलः। सूर्यादीनाञ्च ग्रहाणां शीघ्रमन्दयाम्योत्तरनीचोच्चगतिकारणाभिज्ञः। सूर्यचंद्रमसोश्च ग्रहणे ग्रहणादिमोक्षकालदिक्प्रमाणस्थितिविमर्दवर्ण देशानामनागतग्रहसमागमयुद्धानामादेष्टा। प्रत्येकग्रहभ्रमणयोजनकक्षाप्रमाणप्रतिविषययोजनपरिच्छेदकुशलो भूभगणभ्रमणसंस्थानाद्यक्षावलम्बकाहर्व्यासचरदलकालराश्युदयच्छायानाडीकरणप्रभृतिषु क्षेत्रकाल-करणेष्वभिज्ञो नानाचोद्यप्रश्नभेदोपलब्धिजनितवाक्सारो निकषसंतापाभिनिवेशैर्विशुद्धस्य कनकस्येवाधिकतरममलीकृतस्य शास्त्रस्यवक्ता तंत्रज्ञो भवति। उक्तञ्च न प्रतिबद्धं गमयति वक्ति न च प्रश्नमेकमपि पृष्टः। निगदति न च शिष्येभ्यः स कथं शास्त्रार्थविज्ज्ञेयः ॥ * ॥ ग्रथोऽन्यथान्यथार्थः करणं यच्चान्यथा करोत्यबुधः। स पितामहमुपगम्य स्तौति नरो वैशिकोऽनार्याम् ॥*॥ तंत्रे सुपरिज्ञाते लग्ने छायाम्बुयंत्रसंविदिते। होरार्थे च सुरूढे नादेष्टुर्भारती वंध्या ॥*॥ उक्तञ्चार्यविष्णुगुप्तेन। अप्यर्णवस्य पुरुषः प्रतरन् कदाचिदासादयेदनिलवेगवशेन पारम्। न त्वस्य कालपुरुषाख्यमहार्णवस्यगच्छेत् कदाचिदनृषिर्मनसापि पारम् ॥ * ॥ होराशास्त्रेऽपि राशिहोराद्रेक्काणनवांशकद्वादशभागत्रिंशद्भागबलाबलपरिग्रहो ग्रहाणां दिक्स्थानकालचेष्टाभिरनेकप्रकारबलनिरर्धारणं प्रकृतिधातुद्रव्यजातिचेष्टादिपरिग्रहोनिषेकजन्मकालविस्मापनप्रत्यादेशसद्योमरणायुर्दायदशान्तर्दशाष्टकवर्गराजयोगचंद्रयोगद्विग्रहादियोगानां नाभसादीनाञ्च योगानां फलान्याश्रयभावावलोकननिर्याणगत्य नूकानि तात्कालिकप्रश्नशुभाशुभनिमित्तानि विवाहा-

दीनाञ्च कर्मणां करणम्। यात्रायां च तिथिदिवसकरणनक्षत्रमुहूर्तं विलग्नयोगदेहस्पन्दनस्वप्नविजयस्नानग्रहयज्ञगणयागाग्निलिङ्गहस्त्यश्वेङ्गितसेनाप्रवादचेष्टादिग्रहषाड्गुण्यापायमंगलामंगलशकुनसैन्यनिवेशभूमयोऽग्निवर्णामन्त्रिचरदूताटविकानां यथाकालं प्रयोगाः परदुर्गलम्भोपायाश्चेत्युक्तं चाचार्यैः। जगति प्रसारित मिवालिखितमिव मतौ निषिक्तमिव हृदये। शास्त्रं यस्य भगणं नादशा निष्फलास्तस्य ॥५॥ संहितापारगश्च दैवचिन्तको भवति। यत्रैते संहितापदार्थाः। दिनकरादीनां ग्रहाणां चारास्तेषुच तेषांप्रकृतिविकृतिप्रमाणवर्णकिरणद्युतिसंस्थानास्तमनोदयमार्गमार्गांतर वक्रानुवक्रर्क्षग्रहसमागमचारादिभिः फलानिनक्षत्रकूर्मविभागेनदेशेष्वगस्तिचार सप्तर्षिचारो ग्रहभक्तयो नक्षत्रव्यूहग्रहश्रृङ्गाटकग्रहयुद्धग्रहसमागमग्रहवर्षफलगर्भलक्षणरोणीस्वात्याषाढीयोगाः सद्योवर्षकुसुमलतापरिधिपरिवेषपरिघपवनोल्कादिग्दाहक्षितिचलनसंध्यारागगंधर्वनगररजोनिर्घातार्घकांडसस्य जन्मेन्द्रध्वजेन्द्रचापवास्तुविद्याङ्गविद्यवायसविद्यान्तरचक्रमृगचक्राश्वचक्रवात चक्रप्रासादलक्षणप्रतिमालक्षणप्रतिष्ठापनवृक्षायुर्वेदोदगार्गलनीराजनखञ्जनोत्पातशांतिमयूरचित्रकघृतकम्बलखड्गपट्टकृकवाकुकूर्मगोऽजाश्वेभपुरुषस्त्रीलक्षणान्यंतः पुरचिन्तापिटकलक्षणोपानच्छेदवस्त्रच्छेदचामरदण्डशय्यासनलक्षणरत्नपरीक्षा दीपलक्षणं दन्तकाष्ठाद्यश्रितानिशुभाशुभानि निमित्तानिसामान्यानिच जगतः प्रतिपुरुषं पार्थिवे च प्रतिक्षणमनन्यकर्माभियुक्तेन दैवज्ञेन चिन्तयितव्यानि। नचैकाकिना शक्यन्तेऽहर्निशमवधारयितुं निमित्तानि। तस्मात् सुभृतेन दैवज्ञेनान्ये तद्विदश्चत्वारो भर्तव्याः। तत्रैकेनैन्द्री चाग्नेयी च दिगवलोकयितव्या। याम्या नैर्ऋती चान्येनैवं वारुणी वायव्या चोत्तरा चेति। यस्मादुल्कापातादीनि निमित्तानि शीघ्रमुपगच्छन्तीति। तेषां चाकारवर्णस्नेहप्रमाणादिग्रहर्क्षाभिघातादिभिः फलानि भवन्ति ॥६॥ उक्तञ्च गर्गेण महर्षिणा। कृत्स्नाङ्गोपाङ्गकुशलं होरागिणतनैष्ठिकम्। यो न पूजयते राजा स नाशमुपगच्छति ॥ ७ ॥ वनंसमाश्रिता येऽपि निर्ममा निष्परिग्रहाः। अपि ते परिपृच्छन्ति ज्योतिषां गतिकोविदम् ॥८॥ अप्रदीपा यथा रात्रिरनादित्यं यथा नभः। तथाऽसांवत्सरो राजा भ्रमत्यन्ध इवाध्वनि ॥ ९ ॥ मुहूर्त्तं तिथिनक्षत्रमृतवश्चायने तथा। सर्वाण्येवाकुलानि स्युर्न स्यात् सांवत्सरो यदि ॥ १० ॥ तस्माद्राज्ञाभिगन्तव्यो विद्वान् सांवत्सरोऽग्रणीः। जयं यशः श्रियं भोगान् श्रेयश्च समभीप्सता ॥ ११ ॥ नासांवत्सरिके देशे वस्तव्यं भूतिमिच्छता। चक्षुर्भूतो हि यत्रैष पापं तत्र न विद्यते ॥१२॥ न सांवत्सरपाठी च नरकेषूपपद्यते। ब्रह्मलोकप्रतिष्ठाश्च लभते दैवचिन्तकः ॥१३॥ ग्रंथतश्चार्थतश्चैतत् कृत्स्नं जानाति यो द्विजः। अग्रभुक् स भवेच्छ्राद्धे पूजितः पंक्तिपावनः ॥१४॥ म्लेच्छा हि यवनास्तेषु सम्यक् शास्त्रमिदं

स्थितम् । ऋषिवत्तेऽपि पूज्यन्ते किं पुनर्दैवविद्द्विजः ।। १५ ।। कुहकावेशपिहितैः कर्णोपश्रुतिहेतुभिः । कृतादेशो न सर्वत्र प्रष्टव्यो न स दैववित् ।।१६।। अविदित्वैव यः शास्त्रं दैवज्ञत्वं प्रपद्यते । स पंक्तिदूषकः पापो ज्ञेयो नक्षत्रसूचकः ।। १७ ।। नक्षत्रसूचकोद्दिष्टमुपवासं करोति यः स व्रजत्यन्धतामिस्रं सार्धमृक्षविडंबिना ।।१८।। नगरद्वारलोष्टस्य यद्वत् स्यादुपयाचितम् । आदेशस्तद्वदज्ञानां यः सत्यः स विभाव्यते ।।१९।। सम्पत्त्या योजितादेशस्तद्विच्छिन्नकथाप्रियः । मत्तः शास्त्रैकदेशेन त्याज्यस्तादृङ् महीक्षिता ।।२०।। यस्तु सम्यग्विजानाति होरागणितसंहिताः । अभ्यर्च्यः स नरेन्द्रेण स्वीकर्तव्यो जयैषिणा ।।२१।। न तत्सहस्रं करिणां वाजिनां वा चतुर्गुणम् । करोति देशकालज्ञो यदेको दैवचिन्तकः ।।२२।। दुःस्वप्नदुर्विचिन्तितदुष्प्रेक्षितदुष्कृतानि कर्माणि । क्षिप्रं प्रयान्ति नाशं शशिनः श्रुत्वा भसंवादम् । २३ ।। न तथेच्छति भूपतेः पिता जननी वा स्वजनोऽथवा सुहृत् । स्वयशोऽभिविवृद्धये यथा हितमाप्तः सबलस्य दैववित् ।।२४।।

इतिश्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां सांवत्सरसूत्रं नाम द्वितीयोऽध्यायः ।।२।।

तहां प्रथम सांवत्सर अर्थात् ज्योतिषीका यह लक्षण कहा है–कि सुंदर कुलमें उत्पन्न हो, देखनेमें प्रिय हो, विनीतवेष, हो, सत्यवादी हो, औरोंके गुणोंमें दोष न निकालता हो, और सर्वाङ्गसुंदर हो, अङ्गहीन न हो और उसके हाथ, पैर, नख, नेत्र, ठोडी, दन्त, कान, मस्तक, भी और शिर यह सब अंग श्रेष्ठ लक्षणों–करके युक्त हों, शरीर स्थूल और रमणीय हो, गंभीर शब्द बोलनेवाला हो वह ज्योतिषी नामका पूरा अधिकारी होता है, क्योंकि प्रायः गुण और दोष सब शरीर और आकारके अनुसार होते हैं ।।१।। पवित्र, चतुर, प्रगल्म अर्थात् सभामें खूब बोलनेवाला, वार्त्ता करनेमें चतुर, तुरतबुद्धि, देशकालका जाननेवाला, चित्त में कपट न रखनेवाला, सभामें भयभीत न होनेवाला, सहाध्यायियोंसे तिरस्कार प्राप्त न होनेवाला, चतुर और सब प्रकारके व्यसनोंसे रहित, शांतिक, पौष्टिक, अभिचार और स्नान (आदि) विद्याके विषयोंको जानवेवाला, देवपूजन व्रत और उपवास करनेमें तत्पर, अपने किये हुए ग्रहगणितसे आश्चर्य उत्पन्न करके प्रतापको फैलानेवाला, प्रश्न करनेपर फल कहनेवाला, अनेक प्रकारके उत्पातोंसे उत्पन्न होनेवाले अशुभरूप दैवात्यय को निवारण करनेके लिये विना पूछे भी शांतिक आदिका बतलानेवाला, ग्रहगणित, संहिता और होरा आदि संपूर्ण ग्रंथोंके अर्थको जाननेवाला ज्योतिषी होना चाहिये ।।२।। ग्रहगणित अर्थात् पौलिश, रोमक, वाशिष्ट सौर और पैतामह इन पांचों सिद्धांत शास्त्रोंके विषे जो युग, वर्ष, अयन, ऋतु, मास, पक्ष, अहोरात्र, प्रहर, मुहूर्त्त, घडी, पल, प्राण, त्रुटि और त्रुटिके अवयव आदि कालको जाननेवाला, तथा कला, विकला, अंश और राशि क्षेत्रको जाननेवाला ज्योतिषी होना चाहिये ।।३।। सौर, सावन, नक्षत्र और चान्द्ररूप चारों प्रकारके मास, अधिमास और क्षयमास आदिके कारणोंको जाननेवाला ज्योतिषी होना चाहिये ।।४।। साठ जो प्रभव, विभवादिक संवत्सर हैं, उनमें जो बारह युग 'युगं

भवेद्वत्सरपञ्चकेन' होते हैं मास, दिन, होरा इन्होंके स्वामीकी प्रतिपत्ति विच्छेद (होने न होने) को जो जानता हो। सौर, चान्द्रादि दिनादिक प्रमाण जो शास्त्रमें भिन्न भिन्न लिखे हैं उनमें कौन ठीक है और कौन बेठीक है इसके विचारमें पटु हो। यदि सिद्धांत-ग्रंथोंमें सौरादि मानमें भेद दीखै तो अयन (याम्यायन, सौम्यायन) बदलते समय प्रत्यक्ष सममण्डल (पूर्वापरवृत्त) के आधारसे जितने अंशपर उपलब्ध हो उसको छाया, जलयंत्रसे दृग्गणित (गणित द्वारा प्रत्यक्ष) करनेमें कुशल हो। तथा सूर्यादि ग्रहोंके शीघ्रगति, मंद-गति, दक्षिणगति, उत्तरगति नीच और उच्च गतिके कारणको जानता हो। सूर्य और चंद्रमाके ग्रहणमें स्पर्श, मोक्षकाल और स्पर्श, मोक्षकी दिशा, ग्रहणकी स्थिति विमर्द (स्पार्शिक विमर्द और मौक्षिक विमर्द) वर्ण, देश और आगामी ग्रह समागम तथा ग्रह-युद्धको बतानेवाला हो। प्रत्येक ग्रहोंके भ्रमण करनेकी योजना स्थिरत्वादी, अक्षांश, लम्बांश द्युज्या, चरखण्डकाल, राशियोंके उदय मान, छाया, नाडी, करण आदिमें क्षेत्र, काल, कारण को जानता हो। नाना प्रकारके प्रश्नोत्तर कहनेमें सत्यवाक् हो। कसौटीसे घिसे, अग्निसे तपाये और शाणद्वारा शुद्ध सुवर्ण सदृश स्वच्छ शास्त्रका वक्ता तंत्रज्ञ हो सकता है। कहा भी है कि जो निश्चित अर्थ नहीं कह सके, प्रश्न पूछनेपर उत्तर न देसके, और विद्यार्थीको भी पढा न सके वह शास्त्र जानता है यह कैसा समझा जाय। जो अज्ञपुरुष ग्रंथ तो कुछ है और अर्थ कुछ करता है, और करण ग्रंथको उलट पटल करता है वह लम्पट मनुष्य मानो ब्रह्माजीके समीप जाकर वेश्याकी स्तुति करता है। जो तंत्रको जानता हो, छाया, जल, यंत्र आदि द्वारा लग्नको जान सकता हो और होराशास्त्रमें निपुण हो ऐसे पुरुषको वाणी कदाचित् भी मिथ्या नहीं हो सकती। आर्य विष्णुगुप्तने कहा भी है कि कदाचित् कोई पुरुष समुद्रको तैरकर पार होना चाहे तो वायुके वेगसे तैरकर पार हो सकता है परंतु यह कालपुरुषका रूप जो ज्योतिष शास्त्र समुद्र है उसको ऋषिमित्र मनुष्य मनसे भी पार नहीं हो सकता है। होरा शास्त्रमें भी राशि, होरा, द्रेक्काण, नवांश, द्वादशांश, त्रिशांश और बलाबल, परिग्रह स्थान, काल और चेष्टा आदि अनेक प्रकारसे ग्रहबलका निर्द्धारण है, प्रकृति, धातु, द्रव्य, जाति और चेष्टा आदिका परिग्रह, निषेक, जन्मकाल, विस्मापन, प्रत्यय (विश्वास), आदेश, शीघ्रमरण, आयुर्दाय, दशा, अंतर्दशा, अष्टवर्ग राजयोग, चंद्रयोग, द्विग्रहादियोग और नाभसादि सब योगोंका फल, आश्रय, भाव, दृष्टि, निर्याण, गति और अनूकादि व तिस कालके सब प्रश्नोंका शुभाशुभ कारण, सबही विवाहादि कर्म समूहोंका हेतु यात्राका वर्णन तिथि, दिवस, करण नक्षत्र मुहूर्त्त, लग्न, योग, शरीरके अंगोंका फडकना, स्वप्न, विजय, स्नान, ग्रहयज्ञ, गणयात्रा, अग्निलिंग, हाथी घोडेके संकेत, सेना प्रवादकी चेष्टा इत्यादि षड्गुण्य उपाय, मंगल अमंगलके शकुन सेनाके वास करनेकी भूमियें, अग्नियोंका वर्ण, मंत्री, चर, दूत और वनचारियोंका काला नुसार प्रयोग, परदुर्गोपालम्भका उपाय सब यात्राओंका हेतु स्वरूप, यह सब बातें होरा-शास्त्रोंमें कही हैं। आचार्योंने कहा है, जगत्में प्रचार हुए के समान, बुद्धिमें लिखे हुएके समान, हृदयमें ढाले हुए के समान भगणसहित शास्त्र अर्थात् इस ज्योतिषशास्त्रको जो भलीभाँतिसे जानता है, उसका आदेश कभी निष्फल नहीं होता है ।।५।। ज्योतिषशास्त्रकी-संहिताओंमें चतुर पुरुषही दैवज्ञ हो सकते हैं। क्योंकि संहिताओंमें इन सब बातोंका निरू-पण होता है, यथा,—सूर्यादिग्रहकी चाल, तिनमें सूर्यादि सब ग्रहोंका स्वभाव, विकार,

प्रमाण, वर्ण, किरण, ज्योति, संस्थान, उदय, अस्त, मार्ग, पृथक् मार्ग, वक्र, अनुवक्र और नक्षत्र, ग्रह व समागमादिसे कालका निरूपण करना, नक्षत्रविभाग और कूर्मविभागसे सब देशोंमें उसका फल, अगस्त्यकी चाल, सप्तर्षियोंकी चाल, ग्रहभक्ति, नक्षत्रव्यूह, ग्रहशृंगाटक, ग्रहयुद्ध, ग्रहसमागम, ग्रहण, वर्षाका फल, गर्भलक्षण, रोहिणीयोग, स्वातीयोग, आषाढीयोग, शीघ्र वर्षाका होना, कुसुम, लता, परिधि (घेरा), परिवेष, परिघ, वायु, उल्का, दिग्दाह, भौंचाल, संध्याका फूलना, गंधर्वनगर, धूरि, निर्घात, वस्तुओंका महंगा हो जाना, नाजका उत्पन्न होना, इंद्रध्वज, इंद्रधनुष, वास्तुविद्या (राजगीरी थवई आदि) अंगविद्या, वायसविद्या, अंतरचक्र, मृगचक्र, अश्वचक्र, वातचक्र, प्रासादलक्षण, प्रतिभालक्षण, प्रतिभाप्रतिष्ठा, वृक्षआयुर्वेद, वृक्षदोहद, उदगार्गल, नीरांजन (विसर्जन), खंजन उत्पातशांति, मयूरचित्रक, घृतलक्षण कम्बललक्षण, खड्गलक्षण, पट्टलक्षण, कृकवाकु (कुक्कुट) लक्षण, कूर्मलक्षण गोलक्षण, अजालक्षण, कुर (कुत्ता) लक्षण, अश्वलक्षण, हस्तिलक्षण, पुरुषलक्षण, स्त्रीलक्षण, अन्तःपुरचिन्ता, पिटक (वेदादिसे बना हुआ पिटारा) लक्षण, मोतीके लक्षण, वस्त्रच्छेदलक्षण, चामरलक्षण, दण्डलक्षण, शय्यालक्षण, आसनलक्षण, रत्नपरीक्षा, दीपलक्षण और दन्तकाष्ठादि आश्रित समस्त शुभाशुभनिमित्त इस संहितासे प्रगट हो जाते हैं। दैवज्ञलोगोंको उचित है कि दूसरे कार्योंमें मन न लगाकर संसारमें और प्रत्येक पुरुषके लिये समस्त पार्थिव बातोंमें साधारण, असाधारण, समस्त शुभाशुभको सर्वदा विचारें। परंतु दिनरात इन बातोंका शुभाशुभ निर्णय करना अकेल आदमीका काम नहीं है, अत एव सुभृत दैवज्ञके साथ इस प्रकारके शास्त्र जाननेवाले और भी चार आदमियोंको राजा नियत करे। तिनमेंसे एक आदमीको पूर्व और अग्निकोणकी बातें देखनी चाहिये। दूसरेको दक्षिण और नैर्ऋतकी, तीसरेको पश्चिम और वायुकोणकी, चौथेको उत्तर और ईशाणकोणकी बातें देखना चाहिये कि जिससे उल्कापातादि निमित्त शीघ्र मालूम हो जाय। क्योंकि इन उल्कापातादिका फल आकार, वर्ण, स्नेहप्रमाणादि और ग्रह नक्षत्र व अभिघातादिके सहितही होता है। गर्गाचार्यने कहा है—साङ्गोपांग कुशल, होरा और गणितविषयमें चतुर दैवज्ञको जो राजा नहीं पूजता है वह शीघ्रही नाशको प्राप्त हो जाता है ॥६॥७॥ वनवासी, ममताहीन और कुछ न ग्रहण करनेवाले पुरुष भी, ग्रह नक्षत्रादिकी गति जाननेवाले पंडितोंसे सब बातें पूंछा करते हैं ॥८॥ दीपकहीन रात्रि और सूर्यहीन आकाशके समान दैवज्ञहीन राजा भी शोभायमान नहीं होता, वरन् वह अंधेके समान कुपंथमें घूमा करता है ॥९॥ विना दैवज्ञके मुहूर्त्त, तिथि, नक्षत्र, ऋतु और अयनादि सब उलट पलट हो जायँ ॥१०॥ इस कारण जय, यश, श्री, भोग और मंगलार्थी राजाका विद्वान् और अग्रणी दैवज्ञके निकट जाना अर्थात् सब कुछ जान लेना उचित है ॥११॥ जिस देशमें दैवज्ञ न रस्ता होय उस देशमें वास करना उचित नहीं है, क्योंकि सब बातोंका नेत्ररूप दैवज्ञ जहां वास करता है वहां पर कोई भी पाप नहीं रहता है ॥१२॥ दैवज्ञके पास पढ़नेसे या दैवज्ञको पढ़ानेसे नरकमें नहीं जाना पडता, वरन् दैवचिन्तक होनेसे ब्रह्मलोकमें प्रतिष्ठा मिलती है ॥१३॥ जो ब्राह्मण इस विषयको ग्रंथके अनुसार वा अर्थ के अनुसार भलीभांति जान लेते हैं, वह श्राद्धमें प्रथम भोजन करनेवाले और पंक्तिपावन होकर सब जगह पूजे जाते हैं ॥१४॥ म्लेच्छ या यवनके पास भी जो यह शास्त्र हो तो ऋषिलोगोंके समान उनकी भी पूजा करना चाहिये, फिर दैवचिन्तक ब्राह्मणके लिये इससे अधिक

विशेष क्या कहा जाय ॥१५॥ किसी प्रकारसे कुहक (माया धोखा, जालसाजी) गर्वसे ढका हुआ अथवा कानोंसे श्रवण करनेके हेतु विशिष्ट अर्थात् निन्दाभाजन होनेपर दैवज्ञसे कोई बात न पूछे और दैवज्ञ भी न कहे ॥१६॥ जो पुरुष विना शास्त्रके जाने हुए दैवज्ञ हो जाय, उस पंक्तिदूषक पापात्माको "नक्षत्र सूचक" (पडिया) जाने ॥१७॥ नक्षत्रसूचकके उपदेश किये हुए उपवासादिको जो पुरुष करता है, वह आदमी उस नक्षत्र-सूचकके साथ अंधतामिस्र नामक नरकमें पडता है ॥१८॥ नगरद्वारलोष्टकी प्रार्थनाके (षष्ठीशालग्रामादि होनेसे अभिलाषके) समान, अज्ञानी पुरुषका आदेश कभी सत्य भी हो जाता है ॥१९॥ सम्पत्तियुक्त अर्थात् अनेक प्रकारके अर्थको बतानेवाले, अथवा सम्पत्ति-हीन बातें जिसको अत्यन्त प्यारी हों और थोड़ेसेही ज्ञानसे मतवाले होनेवाले दैवज्ञको राजा त्याग देवे ॥२०॥ होरा, गणित और संहितामें उत्तम ज्ञान रखनेवाले दैवज्ञको जीतकी इच्छा करनेवाला राजा लोग पूजें और उसको अंगीकार करें ॥२१॥ एक देश-कालका जाननेवाला दैवचिंतक जो काम करनेका सामर्थ्य रखता है उस कार्यको हजार हाथी या चार हजार घोड़े नहीं कर सकते ॥२२॥ दैवज्ञके मुखसे चंद्रका नक्षत्रसंवाद श्रवण करनेसे बुरे स्वप्न, बुरे देखे हुए और बुरे कर्म इनका शीघ्रही नाश हो जाता है ॥२३॥ दैवज्ञलोग अपना यश बढानेके अर्थ बलवाले राजाका इस प्रकार हित करते हैं कि जिस प्रकार उस राजाके पिता, माता, स्वजन और भाई बंधु भी नहीं कर सकते ॥२४॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः

आश्लेषार्धाद्दक्षिणमुत्तरमयनं धनिष्ठाद्यम् । नूनं कदाचिदासीद् येनोक्तं पूर्वशास्त्रेषु ॥ १ ॥ साम्प्रतमयनं सवितुः कर्कटकाद्यं मृगादितश्चान्यत् । उक्ता भावो विकृतिः प्रत्यक्षपरीक्षणैर्व्यक्तिः ॥२॥ दूरस्थचिह्नवेधादुदयेऽस्तमयेऽपि वा सहस्रांशोः । छायाप्रवेशनिर्गमचिह्नैर्वा मण्डले महति ॥ ३ ॥ अप्राप्य मकरमर्को विनिवृत्तो हन्ति सापरां याम्याम् । कर्कटकमसम्प्राप्तो विनिवृत्तश्चोत्तरां सैन्द्रीम् ॥४॥ उत्तरमयनमतीत्य व्यावृत्तः क्षेमसस्यवृद्धिकरः । प्रकृतिस्थश्चाप्येवं विकृत-गतिर्भयकृदुष्णांशुः ॥ ५ ॥ सतमस्कं पर्व विना त्वष्टा नामार्कमण्डलं कुरुते । स निहन्ति सप्त भूपान् जनांश्च शस्त्राग्निदुर्भिक्षैः ॥ ६ ॥ तामसकीलसंज्ञा राहुसुताः केतवस्त्रयस्त्रिंशत् । वर्णस्थानाकारैस्तान् दृष्ट्वार्के फलं ब्रूयात् ॥७॥ ते चार्कमण्डलगताः पापफलाश्चान्द्रमण्डले सौम्याः । ध्वाङ्क्षकबंधप्रहरणरूपाः पापाः शशाङ्केऽपि ॥ ८ ॥ तेषामुदये रूपाण्यम्भः कलुषं रजोवृतं व्योम । नगतरुशिखरविमर्दी सशर्करो मारुतश्चण्डः ॥ ९ ॥ ऋतुविपरीतास्तरवो दीप्ता मृगपक्षिणो दिशां दाहः । निर्घातमहीकम्पादयो भवन्त्यत्र चोत्पाताः ॥१०॥ न पृथक् फलानि तेषां शिखिकीलकराहुदर्शनानि यदि । तदुदयकारणमेषां केत्वादीनां फलं ब्रूयात् ॥ ११ ॥ यस्मिन् यस्मिन् देशे दर्शनमायान्ति सूर्यबिम्बस्थाः ।

तस्मिंस्तस्मिन् व्यसनं महीपतीनां परिज्ञेयम् ॥ १२ ॥ क्षुत्प्रम्लानशरीरा मुनयोऽप्युत्सृष्टधर्मसच्चरिताः। निर्मांसबालहस्ताः कृच्छ्रेणायान्ति परदेशान् ॥१३॥ तस्करविलुप्तवित्ताः प्रदीर्घनिःश्वासमुकुलिताक्षिपुटाः। सन्तः सन्नशरीराः शोकोद्भवबाष्परुद्धदृशः ॥ १४ ॥ क्षामा जुगुप्समानाः स्वनृपतिपरचक्रपीडिता मनुजाः। स्वनृपतिचरितं कर्म च पराकृतं प्रब्रुवन्त्यन्ये ॥१५॥ गर्भेष्वपि निष्पन्ना वारिमुचो न प्रभूतं वारिमुचः। सरितो यान्ति तनुत्वं क्वचित् क्वचिज्जायते सस्यम् ॥१६॥ दण्डे नरेन्द्रमृत्युर्व्याधिभयं स्यात् कबन्धसंस्थाने। ध्वाङ्क्षे च तस्करभयं दुर्भिक्षं कीलकेऽर्कस्थे ॥ १७ ॥ राजोपकरणरूपैश्छत्रध्वजचामरादिभिर्विद्धः। राजान्यत्वकृदर्कःस्फुलिङ्गधूमादिभिर्जनहा ॥ १८ ॥ एकोर्दुर्भिक्षकरो द्व्याद्याः स्युर्नरपतेर्विनाशाय। सितरक्तपीतकृष्णैस्तैर्विद्धोऽकोऽनुवर्णघ्नः ॥ १९ ॥ दृश्यन्ते च यतस्ते रविबिम्बस्योत्थिता महोत्पाताः। आगच्छति लोकानां तेनैव भयं प्रदेशेन ॥ २० ॥ ऊर्ध्वंकरो दिवसकरस्ताम्रः सेनापतिं विनशयति। पीतो नरेन्द्रपुत्रं श्वेतस्तु पुरोहितं हन्ति ॥२१॥ चित्रोऽथवापि धूम्रो रविरश्मिर्व्याकुलां करोति महीम्। तस्करशस्त्रनिपातैर्यदि सलिलं नाशु पातयति ॥ २२ ॥ ताम्रः कपिलो वाकः शिशिरे हरिकुंकुमच्छविश्च मधौ। आपाण्डुकनकवर्णो ग्रीष्मे वर्षासु शुक्लश्च ॥२३॥ शरदि कमलोदराभो हेमन्ते रुधिरसन्निभः शस्तः। प्रावृट्काले स्निग्धः सर्वर्तुनिभोऽपि शुभदायी ॥ २४ ॥ रूक्षः श्वेतो विप्रान् रक्ताभः क्षत्रियान्विनाशयति। पीतो वैश्यान् कृष्णस्ततोऽपरान् शुभकरः स्निग्धः ॥ २५ ॥ ग्रीष्मे रक्तोभयकृद्वर्षास्वसितः करोत्यनावृष्टिम्। हेमन्ते पीतोऽर्कःकरोत्यचिरेण रोगभयम् ॥२६॥ सुरचापपाटिततनुर्नृपतिविरोधप्रदः सहस्रांशुः। प्रावृट्काले सद्यः करोति विमलद्युतिर्वृष्टिम् ॥२७॥ वर्षाकाले वृष्टिं करोति सद्यः शिरीषपुष्पाभः। शिखिपत्रनिभः सलिलं न करोति द्वादशाब्दानि ॥२८॥ श्यामेऽर्के कीटभयं भस्मनिभे भयमुशन्ति परचक्रात्। यस्यर्क्षे सच्छिद्रस्तस्य विनाशः क्षितीशस्य ॥२९॥ शशरुधिरनिभे भानौ नभस्तलस्थे भवन्ति संग्रामाः। शशिसदृशे नृपतिवधः क्षिप्रं चान्यो नृपो भवति ॥३०॥ क्षुन्मारकृद्घटनिभः खण्डो नृपहा विदीधितिर्भयदः। तोरणरूपः पुरहा छत्रनिभो देशनाशाय ॥३१॥ ध्वजचापनिभे युद्धानि भास्करे वेपने च रूक्षे च। कृष्णा रेखा सवितरि यदि हन्ति नृपं ततः सचिवः ॥३२॥ दिवसकरमुदयसंस्थितमुल्काशनिविद्युतो यदा हन्युः। नरपतिमरणं विद्यात् तदान्यराजप्रतिष्ठां च ॥ ३३ ॥ प्रतिदिवसमहिमकिरणः परिवेषी संध्ययोर्द्वयोरथवा। रक्तोऽस्तमेति रक्तोदितश्च भूपं करोत्यन्यम् ॥३४॥ प्रहरणसदृशैर्जलदैः स्थगितः संध्याद्वयेऽपि रणकारी। मृगमहिषविहगखरकरभसदृशरूपैश्च भयदायी ॥३५॥ दिनकरकराभितापादृक्षमवाप्नोति सुमहतीं पीडाम्।

भवति च पश्चाच्छुद्ध कनकमिव हुताशपरितापात् ।। ३६ ।। विवसक्कृतः प्रतिसूर्यो जलकृदुदग्दक्षिणे स्थितोऽनिलकृत् । उभयस्थः सलिलभयं नृपमुपरि निहन्त्यधो जनहा ।।३७।। रुधिरनिभो वियत्यवनिपान्तघरो न चिरात् । परुषरजोऽरुणीकृततनुर्यदि वा दिनकृत ।। ३८ ।। असितविचित्रनीलपरुषो जनघातकरः । खगमृगभैरवखररुतैश्च निशाद्यमुखे ।। ३९ ।। अमलवपुरवक्रमण्डलः स्फुटविपुलामलदीर्घदीधितिः । अविकृततनुवर्णचिह्नभृज्जगति करोति शिवं दिवाकरः ।। ४० ।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामादित्यचारस्तृतीयोऽध्यायः ।।३ ।।

निश्चयही किसी समयमें आश्लेषा नक्षत्रके अर्द्धभागसे दक्षिणायन और धनिष्ठाके प्रथमसे उत्तरायण प्रचलित था, नहीं तो पहिले शास्त्रोंमें इसका वर्णन क्यों होता ? परंतु सूर्यका जो अयन इस समयमें प्रचलित है वह कर्कटकी आदि और मकरके प्रथमसे ही आरंभ होता है इस विषयके अभावकोही विकृति कहते हैं, प्रत्यक्ष परीक्षा करनेसे जो ठीक होगा उसकोही प्रकाशित किया जायगा ।।१।।२।। सूर्यके उदय वा अस्तकानमें महामंडलकी दूरीके चिह्नोंके वेधसे अथवा महामण्डलमें छायाके प्रवेश और छायाके निकलनेके चिह्नोंसे अयनकी परीक्षा होती है ।।३।। सूर्य विना मकरराशिमें गये यदि लौट आवें तो दक्षिण पश्चिम दिशाका नाश करते हैं, और जो विना कर्कराशितक गये लौट आवें तो पूर्व–उत्तर दिशाको नष्ट करते हैं, यदि उत्तरायणको लांघकर लौट आवें तो मंगल होता है, धान्यकी वृद्धि होती है, इसको ही प्रकृतिस्थ सूर्य कहते हैं, सूर्यकी गति विकृत होनेसे भय होता है ।।४।।५।। यदि विना पर्वकालके सूर्य अपने मंडलको राहुयुक्त करे तब सात राजाओंकी मृत्यु होगी और शस्त्र अग्नि वा दुर्भिक्ष आदिसे मनुष्योंका नाश होगा ।।६।। तामस और कीलकादि नामवाले राहुके पुत्र केतु तेतीस प्रकारके हैं, वर्ण स्थान और आकारादिसे सूर्यमंडलमें उनको देखकर फल निर्णय करना चाहिये ।।७।। वह यदि सूर्यमंडलमें जाय तो अमंगलकारक है, परंतु चंद्रमंडलमें जाय तो शुभफलको देते हैं, जो यह चंद्रमंडलमें काक, कबंध या शस्त्रके रूपसे प्रकाशित होवें तो अमंगलदायक हैं ।।८।। इन केतुओंका उदय होनेसे सबहीमें उथल पुथल हो जाती हैं, जल मलीन हो जाता है, आकाशमें धूरी छा जाती है, पर्वत और वृक्षोंके शिखरको मर्दन करनेवाला प्रचण्ड पवन चला करती है, वृक्ष ऋतुसे विपरीत हो जाते हैं, मृग और पक्षी इत्यादि प्रदीप्त[1] दिशाओंकी ओर दौडते या शब्द करते हैं, दिग्दाह, निर्घात और भौंचाल आदि बड़े २ उत्पात होते हैं ।।९।।१०।। इन राहुके पुत्रोंमें यदि बाण या साम्भादि रूपवाले राहुका दर्शन होय तो पहिलेके समान फल कहना चाहिये, इस प्रकारसे उनके उदयका कारण और केतु आदिका फलाफल निर्णय करे ।।११।। सूर्यबिम्बवाले केतु जिन जिन देशोंमें दिखाई दे, उन्हीं २ देशोंके राजाका अमंगल होगा ।।१२।। इनके उदय होनेसे मुनिलोग भी भूंखसे थकित देहवाले और स्वधर्म व श्रेष्ठ चरित्रसे हीन होकर मांसहीन बालकोंको हाथमें लेकर अतिकष्टसे दूसरे देशोंमें जायँगे ।।१३।। साधुओंके वित्तको तस्कर चुरा लेंगे, इस कारण वह लम्बे लम्बे सांस छोडते हुए नेत्रोंसे आंसू बहाते व्याकुल देहसे शोकके मारे गद्गद

१ दीप्ता इत्यादि दिशाओंका वर्णन शकुनाध्यायमें करेंगे ।

कंठ होकर रहेंगे ॥१४॥ तिस कालमें मनुष्य अपने राजा या दूसरे राजचक्रसे अत्यन्त दुबले होकर निन्दाकारी हो जायँगे, कोई स्वदेशीय राजाके चरित्र या पराकृत कर्म भी निन्दा करेंगे ॥१५॥ मेघ गर्भयुक्त होकरही रहेंगे, बहुतसा जल नहीं देंगे, नदियें कम जलवाली हो जायँगी, धान कहीं कहीं उत्पन्न होगा ॥१६॥ सूर्यमण्डलमें दण्डाकार केतु दिखाई देनेसे राजाका मरण होता है, कबंध दिखलाई देनेसे व्याधिका भय उत्पन्न होता है, ध्वांक्षाकार दिखलाई देनेसे चोरभय और स्तम्भका आकार दीखनेसे अकाल होता है ॥१७॥ राजाके उपकरणरूप छत्र, ध्वज. चामरादि चिह्न यदि सूर्यमण्डलमें विधे हुए हों तो राज्यकी बदली होती है और चिनगारी या धूमादिसे ढक जानेपर सब मनुष्योंकी मृत्यु होती है ॥१८॥ पूर्वश्लोकोक्त छत्रादि एक चिह्नके सूर्य विद्ध होवे तो दुर्भिक्ष होता है, दो आदिसे विद्ध होवे तो राजाका नाश होता है, सपेद, लाल, पीला और काला इन वर्णवाले पूर्वोक्त चिह्नसे विद्ध होनेपर क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रका नाश होता है ॥१९॥ उत्पन्न हुए यह महाउत्पात रविबिम्बमें जहां कहीं दिखाई देंगे, उस देशके रहनेवाले सब लोगोंको भय होगा ॥२०॥ सूर्यके ऊपर भागकी किरण जो ताम्ररंगकी हो तो सेनापतिका नाश होता है, पीतरंगकी हो तो राजपुत्रका और श्वेतवर्णकी हो तो राजपुरोहितका नाश होता है ॥२१॥ सूर्यका किरणमण्डल यदि अनेक रंगोंसे रंगा हुआ होय अथवा धूम्रवर्ण होय, यदि शीघ्र वर्षा न हो तो चोरोंसे या शस्त्रनिपातादिसे समस्त पृथिवी व्याकुल होगी ॥२२॥ सूर्यमण्डल शिशिरकालमें ताम्रवर्ण या कपिलवर्ण, वसंतकालमें हरित कुमकुमके समान, ग्रीष्मकालमें कुछ एक पाण्डुवर्ण (श्वेत और पीत मिला हुआ) और स्वर्णके समान, वर्षाकालमें शुक्लवर्ण, शरदकालमें कमलके गर्भकी छबिके समान और हेमन्तकालमें रक्तवर्ण होनेपर शुभकारक है परंतु वर्षाकालमें स्निग्ध होनेपर अशुभ होता है ॥२३॥२४॥ रूखा या श्वेतवर्ण होनेसे ब्राह्मणोंका नाश होता है, रक्तकी आभामुक्त होनेपर क्षत्रीका नाश, पीतवर्णसे वैष्यका और काला वर्ण होनसे शूद्रका नाश होता है, सूर्यके इन सब रंगोंमें चमक हो तो शुभ होता है ॥२५॥ ग्रीष्मकालमें सूर्यका मण्डल लाल होवे तो प्राणियोंको भय होता है, वर्षाकालमें कृष्णवर्ण हो तो अनावृष्टि होती है और हेमन्तकालमें पीतवर्ण हो तो शीघ्रही रोगभय होता है ॥२६॥ जो सूर्यमण्डल वर्षाके समय इन्द्रका चाप सन्मुख आ पडनेसे खण्डित देहवाला दिखाई दे तो राजाओंमें विरोध होता है, यदि निर्मल किरणवाला दीखे तो शीघ्र ही वृष्टि होती है ॥२७॥ यदि वर्षाकालमें सूर्यबिम्ब शिरीषके फूलके समान आभावाला ज्ञात हो तो शीघ्र वर्षा होगी, परंतु मोरकी पूंछके समान आभादार दिखाई दे तो बारह वर्षतक अनावृष्टि होगी ॥२८॥ सूर्यका बिम्ब श्यामवर्णवाला हो तो (देशमें) कीटभय, राखके समान वर्णवाला हो तो परराष्ट्रसे भय होता है और जिस राजाके जन्मनक्षत्रमें विराजमान सूर्यमें छिद्र दिखाई दे तो उस राजाका नाश हो जाता है ॥२९॥ जो सूर्यका रंग खरहेके रंगके समान शोणित हो तो युद्ध होता है और चंद्रमाके समान रंगवाला दिखाई दे तो शीघ्र ही उस देशके राजाका नाश होकर दूसरा राजा हो जाता है ॥३०॥ जो सूर्यमण्डल घडेके आकारसा दिखाई दे तो (प्राणिगण) क्षुधाकी ज्वालासे प्राण छोडें, खण्डाकार होनेपर राजाका नाश होता है. किरणहीन होनेपर भय होता है, तोरण (फाटक) रूप होनेपर नगरका नाश होता है, छत्राकार होनेपर देशविनाश होता है ॥३१॥ जो

सूर्यका बिम्ब कम्पायमान रूखा अथवा धनुष या ध्वजके समान हो तो संग्राम होता है, यदि सूर्यमण्डलमें काली रेखा दिखाई दे तो मंत्रीसे राजाका नाश होता है ॥३२॥ उल्का-वज्र या बिजली जो उदयकालमें सूर्यको टक्कर दे तो वर्तमान राजाका नाश होकर दूसरे राजाकी प्रतिष्ठा होती है ॥३३॥ जिस देशमें सूर्यदेव प्रतिदिन प्रातःकालमें और संध्याकालमें परिधिवाले (पौषयुक्त) होते हैं अथवा लाल रंगको धारण करके उदय होते और छिपते हैं उस देशमें निश्चयही दूसरा राजा होता है ॥३४॥ यदि प्रातःकाल और संध्याकालमें सूर्यबिम्ब शस्त्रके समान आकारवाले बादलोंसे घिर जाय तो युद्ध होगा और मृग, महिष, पक्षी, गधे और हाथीके समान मेघोंसे ढक जाय तो अत्यन्त भय होगा ॥३५॥ जैसे अग्निके तापसे सुवर्ण अत्यन्त पीडाको प्राप्त होकर पीछेसे शुद्ध हो जाता है वैसेही समस्त नक्षत्र सूर्यकी किरणोंके संतापसे कष्ट पाकर फिर शुद्ध होते हैं ॥३६॥ सूर्यदेवकी उत्तर दिशामें यदि प्रति[१]सूर्य दिखाई दे तो वृष्टि होगी, दक्षिणदिशामें दिखाई देनेसे आंधी तूफान होगा, सूर्यकी दोनों ओर दिखाई देनेसे जलभय, नीचे दीखनेसे लोक-विनाश और ऊपर दीखनेसे राजाका विनाश होता है ॥३७॥ यदि आकाशके ऊपर भागमें सूर्य लालरंगका दिखलाई दे, या भयंकर धूरीकी राशिसे लाल वर्णका दिखलाई दे तो शीघ्रही राजाकी मृत्यु होती है ॥३८॥ जो सूर्यका बिम्ब कृष्णवर्ण, विचित्रवर्ण अथवा नीलवर्ण होकर भयंकर आकार धारण करे और जो संध्याकालमें पक्षी और मृगोंका शब्द गधेके शब्दके समान भयंकर हो तो सब लोगोंका विनाश हो जाता है ॥३९॥ जो सूर्य निर्मल देहवाला, गोलमण्डलवाला, साफ २ अत्यन्त निर्मल दीर्घ किरणवाला हो और उसकी देह विकाररहित हो रंग भी विकार रहित हो व सूर्यमंडलमें यदि किसी प्रकारका चिह्न न हो तो सूर्य भगवान् जगत्का मङ्गल करनेवाले होते हैं ॥४०॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवा-स्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः

नित्यमधःस्थस्येन्दोर्भाभिनोः सितं भवत्यर्धम् । स्वच्छाययान्यदसितं कुम्भस्येवातपस्थस्य ॥ १ ॥ सलिलमये शशिनिरवेर्दोधितयो मूर्च्छितास्तमो नैशम् । क्षपयन्ति दर्पणोदरनिहता इव मन्दिरस्यान्तः ॥ २ ॥ त्यजतोऽर्कतलं शशिनः पश्चादवलम्बते यथा शौक्ल्यम् । दिनकरवशात्तथेन्दोः प्रकाशतेऽधःप्रभृत्युदयः ॥ ३ ॥ प्रतिदिवसमेवमर्कात् स्थानविशेषेन शौक्ल्यपरिवृद्धिः । भवति शशिनोऽपराह्णे पश्चाद्भागे घटस्येव ॥ ४ ॥ ऐन्द्रस्य शीतकिरणो मूलाषाढाद्वयस्य वा यातः । याम्येन बीजजलचरकाननहा वह्निभयदश्च ॥ ५ ॥ दक्षिणपार्श्वेन गतः शशी विशाखानुराधयोः पापः । मध्येन तु प्रशस्तः पित्र्यस्य विशाखयोश्चापि ॥ ६ ॥ षडनागतानि पौष्णाद् द्वादश रौद्राच्च मध्ययोगीनि । ज्येष्ठाद्यानि नवर्क्षाण्युडु-

---

१ सूर्यके उदयकालमें जो रक्तवर्ण सूर्यके समान पदा दीखता है उसको ही प्रति-सूर्य कहते हैं।

पतिनातीत्य युज्यन्ते ॥ ७ ॥ उन्नतमीषच्छृङ्गं नौसंस्थाने विशालता चोक्ता । नाविकपीडा यस्मिन् भवति शिवं सर्वलोकस्य ॥ ८ ॥ अर्द्धोन्नते च लांगलमिति पीडा तदुपजीविनां तस्मिन् । प्रीतिश्च निर्निमित्तं मनुजपतीनां सुभिक्षं च ॥ ९ ॥ दक्षिणविषाणमर्द्धोन्नतं यदा दुष्टलांगलाख्यं तत । पाण्ड्यनरेश्वरनिधनकृद्योगकरं बलनां च ॥ १० ॥ समशशिनि सुभिक्षक्षेमवृष्टयः प्रथमदिवससदृशाः स्युः । दण्डवदुदिते पीडा गवां नृपश्चोग्रदण्डोऽत्र ॥ ११ ॥ कार्मुकरूपे युद्धानि यत्र तु ज्या ततो जयस्तेषाम् । स्थानं युग मिति याम्योत्तरायतं भूमिकम्पाय ॥ १२ ॥ युगमेव याम्यकोट्यांकिञ्चित्तुंगंस पार्श्वशायीति । विनिहन्ति सार्थवाहान् वृष्टेश्चविनिग्रहं कुर्यात् ॥१३॥ अभ्युच्छ्रायादेकं यदि शशिनो वाङमुखं भवेच्छृंगम् । आवर्जितमित्यसुभिक्षकारितद्गोधनस्यापि ॥ १४ ॥ अव्युच्छिन्ना रेखा समन्ततो मण्डला च कुण्डाख्यम् । अस्मिन्माण्डलिकानां स्थानत्यागो नरपतीनाम् ॥ १५ ॥ प्रोक्तस्थानाभावादुदगुच्चः सस्यवृद्धिवृष्टिकरः । दक्षिणतुंगश्चन्द्रो दुर्भिक्षभयाय निर्दिष्टः ॥१६॥ भृंगेणैकेनेन्दुं विलीनमथवाप्यवाङमुखमभृंगम सम्पूर्णं चाभिनवं दृष्ट्वैको जीविताद् भ्रश्येत् ॥१७॥ संस्थानविधिः कथितो रूपाण्यस्माद्भवन्ति चन्द्रमसः । स्वल्पो दुर्भिक्षकरो महान् सुभिक्षावहः प्रोक्तः ॥१८॥ मध्यतनुर्वज्राख्यः क्षुद्भयदः संभ्रमाय राज्ञां च । चन्द्रो मृदंगरूपः क्षेमसुभिक्षावहो भवति ॥ १९ ॥ ज्ञेयोविशालमूर्तिर्नरपतिलक्ष्मीविवृद्धये चंद्रः । स्थूलः सुभिक्षकारीप्रियधान्य करस्तु तनुमूर्तिः ॥ २० ॥ प्रत्यन्तान् कुनृपांश्च हन्त्युडुपतेः श्रृंगेकुजेनाहते शस्त्रक्षुद्भयकृद्यमेन शशिजेनावृष्टिदुर्भिक्षकृत् । श्रेष्ठान् हन्ति नृपान्महेन्द्रगुरुणा शुक्रेण चाल्पान्नृपान् शुक्ले याप्यमिदं फलं ग्रहकृतं कृष्णे यथोक्तागमम् ॥ २१ ॥ भिन्नः सितेन मगधान्यवनान् पुलिन्दान् नेपालभृंगिमरुकच्छसुराष्ट्र मद्रान् । पाञ्चालकैकयकुलूतकपूरुषादान् हन्यादुशीनरजनानपि सप्तमासान् ॥ २२ ॥ गान्धारसौवीरकसिन्धुकीरान् धान्यानि शैलान्द्रविडाधिपांश्च । द्विजांश्च मासान् दश शीतरश्मिः सन्तापयेद्वाक्पतिना विभिन्नः ॥२३॥ उद्युक्तान् सह वाहनैर्नरपतींस्त्रैगर्तकान्मालवान् कौलिन्दान् गणपुंगवानथ शिबीनायोध्यकान् पार्थिवान् हन्यात् कौरवमत्स्यशुक्त्यधिपतीन् राजन्यमुख्यानपि प्रालेयांशुरसृग्ग्रहे तनुगते षण्मासमर्यादया ॥२४॥ यौधेयान् सचिवान् सकौरवान् प्रागीशानथ चार्जुनायनान् । हन्यादर्कजभिन्नमण्डलः शीतांशुर्दशमासपीडया ॥ २५ ॥ मगधान्मथुरां च पीडयेद् वेणायाश्चतटंशशाङ्कजः । अपरत्र कृतं युगं वदेद् यदि भित्त्वा शशिनं विनिर्गतः ॥ २६ ॥ क्षेमारोग्यसुभिक्षविनाशी शीतांशुः शिखिना यदि भिन्नः । कुर्यादायुधजीविविनाशं चौराणामधिकेन च पीडान् ॥ २७ ॥ उल्कया यदा शशी ग्रस्त एव हन्यते तदा नृपो यस्य जन्मनि स्थितः ॥ २८ ॥ भस्मनिभः

पुरुषोऽरुणमूर्तिः शीतकरः किरणैः परिहीणः। श्यावतनुः स्फुटितः स्फुरणो वा क्षुत्समरामयचौरभयाय ॥२९॥ प्रालेयकुन्दकुमुदस्फटिकवदातो यत्नादिवाद्रिसुतया परिमृज्य चन्द्रः। उच्चैः कृतो निशि भविष्यति मे शिवाय यो दृश्यते स भविता जगतः शिवाय॥ ३०॥ यदि कुमुदमृणालाहारगौरस्तिथिनियमात् क्षयमेति वर्धते वा। अविकृतगतिमण्डलांशुयोगी भवति नृणां विजयाय शीतरश्मिः॥ ३१॥ शुक्ले पक्षे सम्प्रवृद्धे प्रवृद्धिं ब्रह्मक्षत्रं याति वृद्धिं प्रजाश्च। हीने हानिस्तुल्यता तुल्यतायां कृष्णे सर्वं तत्फलं व्यत्ययेन॥ ३२॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां चन्द्रचारश्चतुर्थोऽध्यायः॥ ४॥

एक घडेको सूर्यकी धूपमें रख देनेसे जैसे उसका वह अर्ध भाग जो सूर्यके सम्मुख रहता है सूर्यकी किरणसे धौला हो जाता है और दूसरा आधा भाग जैसे अपनी छायासे काला रहता है, तैसे ही सूर्यके निचले भागमें विराजित चंद्रमाका आधा भाग प्रतिदिन सूर्यकी किरणसे प्रकाशित होता है और आधा भाग अपनी छायासेही कृष्णवर्ण रहता है ॥१॥ जैसे दर्पणके ऊपर सूर्यकी किरणोंका आत्मा गिरकर अँधियारे घरके भीतर घुसकर अपने प्रतिबिंबसे घरके भीतरका अंधकार नाश करता है वैसेही जलमय चंद्रमाके ऊपर सूर्यकी किरणें गिरकर रात्रिके अंधकारसमूहका नाश करती हैं ॥२॥ सूर्यका निचला भाग छोडते २ चंद्रमाका पश्चिमभाग सूर्यके किरणके वशसे जितनी शुक्लवर्णता धारण करता है नीचे आदिमें वह उतना २ ही प्रकाशित होता जाता है ॥ ३॥ इसी भांति प्रतिदिन स्थानविशेषके वशसे तीसरे प्रहरके समय घडेके समान पिछले भागमें सूर्य करके चंद्रमाकी शुक्लता बढा करती है ॥ ४॥ ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा व उत्तराषाढा नक्षत्रके दाहिने भागमें जब चंद्रमा जाता है तब बीज, जल व वनकी हानि होती है और अग्निभय उपस्थित होता है ॥५॥ जब विशाखा और अनुराधा नक्षत्रके दाये भागमें चंद्रमा चला जाता है तब उसको पापचंद्रमा कहते हैं परंतु विशाखा अनुराधा और मघा नक्षत्रके मध्यभागमें चंद्रमाके रहनेसे शुभफल होता है ॥६॥ रेवतीसे लेकर मृगशिरतक छः नक्षत्र अनागत होकर चंद्रमाके साथ मिलते हैं, आर्द्रासे लेकर अनुराधातक बारह नक्षत्र मध्यभागमें चंद्रमाके साथ मिलते हैं और ज्येष्ठासे लेकर उत्तराभाद्रपदतक नव तारे अतिक्रांत होकर चंद्रमाके साथ मिलते हैं ॥७॥ यदि चंद्रमाका शृङ्ग कुछेक ऊंचा होकर नावके समान विशालताको प्राप्त हो तो नाविक लोगोंको पीडा हो और सब लोगोंका शुभ होता है ॥८॥ आधे उठे हुए चंद्रमाके शृंगको लांगल कहते हैं, उससे हलजीवी मनुष्योंको पीडा होती है, राजालोग बिना कारण के भी हर्षित रहते हैं और सुभिक्ष होता है ॥९॥ जो चंद्रमाका दक्षिण शृङ्ग आधा ऊंचा उठा हुआ हो तो उसको दुष्टलांगल शृङ्ग कहते हैं इस चंद्रमाका यह फल है कि पांडयदेशके राजाकी सेना अपने राजाके मारनेका यत्न करे ॥१०॥ जो समानभावसे चंद्रमा उदय हो तो पहले दिनकी नांई सुभिक्ष, मंगल और वर्षा होती है, दंडके समान चंद्रमाके उदय होनेपर गाय बैलोंको पीडा होती है और राजालोग उग्र दण्डधारी होते हैं ॥११॥ जो धनुषके आकारका चंद्रमा उदय हो तो शुद्ध होता है परंतु जिस देशमें इस धनुषकी मौर्वी रहती है उस देशकी जय होती है, जो यह

शृङ्ग दक्षिण और उत्तरमें फैला हुआ हो तो उसको स्थान वा युग कहते हैं, इससे भौंचाल होता है ॥१२॥ यही 'युग' नामक शृङ्ग जो दक्षिण ओरका कुछेक ऊँचा हो तो इसको 'पार्श्वशायी' शृङ्ग कहते हैं, उससे वणिक अर्थात् वनज व्यापार करने वालोंका नाश होता है और वर्षा नहीं होती ॥१३॥ बाडके कारणसे जो चंद्रमाका कोई शृङ्ग नीचेको मुखवाला हो तो उसको 'आवर्ज्जित' शृङ्ग कहते हैं, इससे गाय ढोरोंके लिये दुर्भिक्ष होता है, अर्थात् घास आदि नहीं उपजती ॥१४॥ जो चंद्रमण्डलके चारों ओर आच्छिन्न (अखण्डित) गोलाकार रेखा (लकीर) दिखलाई दे तो 'कुण्ड' नामक शृङ्ग होता है, उससे द्वादशमंडलके राजाओंका स्थान छूट जाता है ॥१५॥ पहले कहे हुए स्थानोंके न होनेसे जो चंद्रमाका शृंग उत्तरदिशाको कुछेक ऊंचा हो तो धान्यकी वृद्धि होती है, वर्षा भली होती है दक्षिणकी ओरको कुछेक ऊंचा हो तो दुर्भिक्ष होता है ॥१६॥ एक शृङ्गवाला नीचेको मुखवाला, शृङ्गहीन अथवा संपूर्ण नये प्रकारका चंद्रमा दीखनेसे देखनेवालों में से एककी मृत्यु होती है ॥१७॥ चंद्रमाकी देहका संस्थान कहा गया इससे ही चंद्रमाके अनेक प्रकार रूप होते हैं, छोटा चंद्रमा हो तो दुर्भिक्ष और बडा हो तो सुभिक्ष होता है ॥१८॥ मध्यम (अर्थात् न बहुत बडा न बहुत छोटा) चंद्रमाके उदित होनेसे उसको वज्र कहा जाता है, इससे प्राणियोंको क्षुधा बहुत लगे और राजालोगोंमें खलबली मचे मृदङ्गरूपी चंद्रमाके उदय होनेसे मंगल और सुभिक्ष होता है ॥१९॥ जो चंद्रमाकी मूर्ति अत्यंत विशाल हो तो राजा लोगोंके यहां लक्ष्मी बढती है, स्थूल हो तो सुभिक्ष होता है, रमणीय हो तो उत्तम धान्य होता है ॥२०॥ जो नक्षत्रपति चंद्रमाके शृंगको मंगलगृह ताडना करता हो तो म्लेच्छदेशके कुत्सित राजाओंका नाश होता है, जो चंद्रमाका शृंग शनिग्रहके द्वारा आहत होता हो तो शस्त्रभय और क्षुधाका भय होता है, बुधसे चंद्रमाका शृंग भिन्न होता हो तो अनावृष्टि और दुर्भिक्ष होता है, बृहस्पतिसे होता हो तो श्रेष्ठ राजाओंका नाश और शुक्रसे होता हो तो साधारण राजाओंका नाश होता है, परंतु शुक्लपक्षमें ग्रहसे चंद्रमाका शृंग भिन्न होता हो तो भी थोडा सा यही फल होता है और कृष्णपक्षका फल नीचे कहा जाता है ॥२१॥ जो कृष्णपक्षमें चंद्रमाका शृंग शुक्रसे पीडित हो तो मगध, यवन, पुलिन्द, नेपाल भृंङ्गि, मरु, कच्छ, सूरत, मद्रास, पंजाब, काश्मीर, कुलूत, पुरुषाद और उशीनर देशमें सात महीनेतक मरी पडती है ॥२२॥ जो बृहस्पतिसे चंद्रमाका शृंग भिन्न होता हो तो गान्धार (कन्धार), सौवरिक, सिन्ध, कीर, द्राविड, पहाडी देशके ब्राह्मणगण और तिस देशके समस्त धान्य दशमासतक सन्तापित होते हैं ॥२३॥ जो चंद्रमाकी देह मंगलसे भिदती हो तो वाहनोंके सहित उद्योगी, त्रिगर्त, मालव, कौलिन्द, गणपति, शिबि और अयोध्यादेशके श्रेष्ठ राजाओंको और कुरु मत्स्य व शुक्तिदेशके श्रेष्ठ क्षत्रियोंको छः मासतक पीडित करके नाश करता है ॥२४॥ जो चंद्रमाका मण्डल शनैश्चरसे भिदता हो तो पूर्वदेशके रहनेवाले अर्जुनवंशीय और कुरुवंशीय राजाओंको उनके मंत्रियोंको योधाओंके साथ दशमासतक पीडित करके नाश कर देता है ॥२५॥ जो बुध ग्रह चंद्रमाको भेद करके निकलता हो तो मगध, मथुरा और वेणा नदीके किनारे बसे हुए देशोंको पीडित करता है और पश्चिम देशमें सतयुगकी उत्पत्ति होती है ॥२६॥ जो केतुसे चंद्रमा पीडित होता हो तो अमंगल, व्याधि, दुर्भिक्ष व शस्त्र से जीविका करनेवालोंका नाश होता है और तस्कर लोगोंको अत्यंत पीडा होती है ॥२७॥

राहु या केतुसे ग्रस्त चंद्रमाके ऊपर उल्का गिरे तो जिस राजाके जन्मनक्षत्र पर चंद्रमा हो उस राजाकी मृत्यु होती है ॥२८॥ जो चंद्रमाका देह भस्मतुल्य रूखा. अरुणवर्ण, किरणहीन, श्यामवर्ण, फूटा हुआ अथवा कम्पमान दिखाई दे तो क्षुधा, संग्राम रोग अथवा चोरोंका भय होता है ॥२९॥ मानो कि रात्रिकालमें हमारे लिये यह अत्यन्त सुखदायक होगा इस विचारसे हिमाचलसुता पार्वतीजीके द्वारा यत्नसहित मार्जित होकर बढनेसे जो चंद्रमा हिमकर्ण, कुन्दपुष्प, कुमुदकुसुम अथवा स्फटिक (बिल्लौर) के समान शुभ्रवर्ण-वाला होता है, वह चंद्रमाही जगत्को शुभदायी है ॥३०॥ जो शीतरश्मि चंद्रमा कुमुद, मृणाल या हारके समान शुभ्रवर्णवाला होकर तिथिके नियमानुसार घटता बढता है, जिसके मण्डलमें विकार नहीं आता, जो गति और किरणोंसे युक्त होता है, उससे सब मनुष्योंकी विजय होती है ॥३१॥ शुक्लपक्षमें किसी तिथिके बढ जानेसे पक्ष बढ जाय और चंद्रमा अतिशय वृद्धिको प्राप्त हो तो ब्राह्मण, क्षत्री और प्रजागण अत्यन्त बढते हैं, जो ऐसे ही चंद्रमा हीन हो सबकी हानि होती है, सम हो तो सबको समता प्राप्त होती है. परंतु कृष्णपक्षमें हो तो इसका फल विपरीत होता है ॥३२॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद-वास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

पञ्चमोऽध्यायः

अमृतास्वादविशेषाच्छिन्नमपि शिरः किलासुरस्येदम् । प्राणैरपरित्यक्तं ग्रहतां यातं वदन्त्येके ॥ १ ॥ इन्द्वर्कमण्डलाकृतिरसितत्वात् किल न दृश्यते गगने । अन्यत्र पर्वकालाद् वरप्रदानात् कमलयोनेः ॥ २ ॥ मुखपुच्छविभक्ताङ्गं भुजङ्ग-माकारमुपदिशन्त्यन्ये । कथयन्त्यमूर्तमपरे तमोमयं सैंहिकेयाख्यम् ॥ ३ ॥ यदि मर्तो भवचारी शिरोऽथवा भवति मण्डली राहुः । भगणार्धेनान्तरितो गृह्णाति कथं नियतचारः ॥ ४ ॥ अनियतचारः खलु चेदुपलब्धिः संख्यया कथं तस्य । पुच्छाननाभिधानोऽन्तरेण कस्मान्न गृह्णाति ॥ ५ ॥ अथ तु भुजगेन्द्ररूपः पुच्छेन मुखेन वा स गृह्णाति । मुखपुच्छान्तरसंस्थं स्थगयति कस्मान्न भगणार्धम् ॥ ६ ॥ राहुद्वयं यदि स्याद् ग्रस्तेऽस्तमितेऽथवोदिते चन्द्रे । तत्समगति नान्येन ग्रस्तः सूर्योऽपि दृश्येत ॥ ७ ॥ भूच्छायां स्वग्रहणे भास्कर-मर्कग्रहे प्रविशतीन्दुः । प्रग्रहणमतःपश्चान्नेन्दोर्भानोश्च पूर्वार्धात् ॥ ८ ॥ वृक्षस्य स्वच्छाया यथैकपार्श्वेन भवति दीर्घा च । निशि तद्वद्भूमेरावरणवशा-द्दिनेशस्य ॥ ९ ॥ सूर्यात् सप्तमराशौ यदि चोदग्दक्षिणे न नातिगतः । चन्द्रः पूर्वाभिमुखश्छायामौर्वी तदाविशति ॥ १० ॥ चन्द्रोऽधःस्थः स्थगयति रविमम्बु-दवत्समागतः पश्चात् । प्रतिदेशमतश्चित्रं दृष्टिवशाद्भास्करग्रहणम् ॥ ११ ॥ आवरणं महादिन्दोः कुण्ठविषाणस्ततोऽर्धसञ्छन्नः । स्वल्पं रवेर्यतोऽतस्तीक्ष्णविषाणो रविर्भवति ॥ १२ ॥ एवमुपरागकारणमुक्तमिदं दिव्यदृग्भिराचार्यैः । राहुः

कारणमस्मिन्नित्युक्तिः शास्त्रसद्भावः ।। १३ ।। योऽसावसुरो राहुतस्य वरो ब्रह्मणायमाज्ञप्तः । आप्यायनमुपरागे दत्तहुतांशेन ते भविता ।। १४ ।। तस्मिन् कालेसान्निध्यमस्य तेनोपचर्यते राहुः । याम्मोत्तरा शशिगतिर्गणितेऽप्युपचर्यते तेन ।। १५ ।। न कथञ्चिदपि निमित्तैर्ग्रहणं विज्ञायते निमित्तानि । अन्यस्मिन्नपि काले भवन्त्यथोत्पातरूपाणि ।। १६ ।। पञ्चग्रहसंयोगान्न किल ग्रहणस्य सम्भवो भवति । तैलञ्च जलेऽष्टम्यां न विचिन्त्यमिदं विपश्चिद्भिः ।। १७ ।। अवनत्यार्के ग्रासो दिग् ज्ञेया वलनयावनत्या च । तिथ्यवसानाद्वेला करणे कथितानि तानि मया ।। १८ ।। षण्मासोत्तरवृद्धया पर्वेशाः सप्त देवताः क्रमशः । ब्रह्मशशीन्द्रकुबेरा वरुणाग्नियमाश्च विज्ञेयाः ।। १९।। ब्राह्मे द्विजपशुवृद्धिक्षेमारोग्याणि सस्यसम्पच्च । तद्वत्सौम्ये तस्मिन् पीडा विदुषामवृष्टिश्च ।। २० ।। ऐन्द्रे भूपविरोधः शारदसस्यक्षयो न च क्षेमम् । कौबेरेऽर्थपतीनामर्थविनाशः सुभिक्षं च ।। २१ ।। वारुणमवनीशाशुभमन्येषां क्षेमसस्यवृद्धिकरम् । आग्नेयं मित्राख्यं सस्यारोग्याभयाम्बुकरम् ।। २२ ।। याम्यं करोत्यवृष्टिं दुर्भिक्षं संक्षयं च सस्यानाम् । यदतः परं तदशुभं क्षुन्मारावृष्टिदं पर्व ।। २३ ।। वलाहीने पर्वणि गर्भविपत्तिश्च शस्त्रकोपश्च । अतिवेले कुसुमफलक्षयो भयं सस्यनाशश्च ।। २४ ।। हीनातिरिक्तकाले फलमुक्तं पूर्वशास्त्रदृष्टत्वात् । स्फुटगणितविदः कालः कथञ्चिदपि नान्यथा भवति ।। २५ ।। यद्येकस्मिन् मासे ग्रहणं रविसोमयोस्तदा क्षितिपाः स्वबलक्षोभैः संक्षयमायान्त्यतिशस्त्रकोपश्च ।। २६ ।। ग्रस्ताउदितास्तमितौ शारद धान्यावनीश्वरक्षयदौ । सर्वग्रस्तौ दुर्भिक्षमरकदौ पापसंदृष्टौ ।। २७ ।। अर्धोदितोपरोक्तो नैर्ऋतिकान् हन्ति सर्वयज्ञांश्च । अग्न्युपजीविगुणाधिकविप्राश्रमिणोऽयुगाभ्युदितः ।। २८ ।। कषकपाषण्डिवणिक्क्षत्रियबलनायकान् द्वितीयेऽशे । कारुकशूद्रम्लेच्छान् खतृतीयांशे समन्त्रिजनान् ।। २९ ।। मध्याह्ने नरपतिमध्यदेशहा शोभनश्च धान्यार्घः । तृणभुगमात्यान्तः पुरवैश्यघ्नः पञ्चमे खांशे ।। ३० ।। स्त्रीशूद्रान् षष्ठेंऽशे दस्युप्रत्यन्तहास्तमयकाले । यस्मिन् खांशे मोक्षस्तत्प्रोक्तानां शिवं भवति ।। ३१ ।। द्विजनृपतीनुदगयने विट्छूद्रान् दक्षिणायने हन्ति । राहुरुदगादिदृष्टः प्रदक्षिणं हन्ति विप्रादीन् ।। ३२ ।। म्लेच्छान् विदिक्स्थितो यायिनश्च हन्याद्धुताशसक्तांश्च । सलिलचरदन्तिधातो याम्येनोदग्गवामशुभः ।। ३३ ।। पूर्वेण सलिल पूर्णां करोति वसुधां समागतो दैत्यः । पश्चात्कर्षकसेवकबीजविनाशाय निर्दिष्टः ।। ३४ ।। पञ्चालकलिङ्गशूरसेनाः काम्बोजौड्रकिरातशस्त्रवार्ताः जीवन्ति च ये हुताशवृत्त्या ते पीडामुपयान्ति मेषसंस्थे ।। ३५ ।। गोपाः पशवोऽथ गोमिनो मनुजा ये च महत्त्वमागताः । पीडामुपयान्ति भास्करे ग्रस्ते शीतकरेऽथवा वृषे ।। ३६ ।। मिथुने प्रवराङ्गना नृपा नृपमात्रा बलिनः कलाविदः । यमुनातटजाः सबाह्लिका मत्स्याः

सुह्मजनैः समन्विताः ।। ३७ ।। आभीराञ्छबरान् सपह्लवान्मल्लान् मत्स्यकुरुञ्छकानपि । पाञ्चालान्विकलांश्च पीडयत्यन्नं चापि निहन्ति कर्कटे ।। ३८ ।। सिंहे पुलिन्दगणमेकलसत्त्वयुक्तान् राजोपमान् नरपतीन् बनगोचरांश्च । षष्ठें तु सस्यकविलेखकगेयसक्तान् हन्त्यश्मकत्रिपुरशालियुतांश्च देशान् ।। ३९ ।। तुलाधरेऽवन्त्यपरान्त्यसाधून् वणिग्दशार्णान्मरुकच्छपांश्च । अलिन्यथोदुम्बरमद्रचोलान्द्रुमान् सयौधेयविषायुधीयान् ।। ४० ।। धन्विन्यमात्यवरवाजिविदेहमल्लान् पाञ्चालवैद्यवणिजो विषमायुधज्ञान् । हत्यान्मृगे तु झषमंत्रिकुलानि नीचान् मंत्रौषधीषु कुशलान् स्थविरायुधीयान् ।। ४१ ।। कुम्भेऽर्तगिरिजान् सपश्चिमजनान् भारोद्वहांस्तस्करान् आभीरान्दरदार्यसिंहपुरकान् हन्यात्तथा बर्बरान् । मीनेसागरकूलसागरजलद्रव्याणिमान्यान् जनान् प्राज्ञान्वार्युपजीविनश्च भफलं कूर्मोपदेशाद्वदेत् ।। ४२ ।। सव्यापसव्यलेहग्रसननिरोधावमर्दनारोहाः । आघ्रातं मध्यतमस्तमोऽन्त्य इति ते दश ग्रासाः ।। ४३ ।। सव्यगते तमसि जगज्जलप्लुतं भवति मुदितमभयञ्च ।। अपसव्ये नरपतितस्करावमर्दैः प्रजानाशः ।। ४४ ।। जिह्वेव लेढि परितस्तिमिरनुदो मण्डलं यदि स लेहः । प्रमुदितसमस्तभूता प्रभूततोया च तत्र मही ।। ४५ ।। ग्रसनमिति यदा त्र्यंशः पादो वा गृह्यतेऽथवाप्यर्द्धम् । स्फीतनृपवित्तहा निः पीडा च स्फीत देशानाम् ।। ४६ ।। पर्यन्तेषु गृहीत्वा मध्ये पिण्डीकृतं तमस्तिष्ठेत् । स निरोधो विज्ञेयः प्रमोदकृत् सर्वभूतानाम् ।। ४७ ।। अवमर्दनमिति निःशेषमेव सञ्छाद्य यदि चिरं तिष्ठेत् । हन्यात् प्रधानदेशान् प्रधान्भूपांश्च तिमिरमयः ।। ४८ ।। वृत्ते ग्रहे यदि तमस्तत्क्षणमावृत्य दृश्यते भूयः । आरोहणमित्यन्योऽन्यमर्दनैर्भयकरं राज्ञाम् ।। ४९ ।। दर्पण इवैकदेशे सबाष्पनिः श्वासमारुतोपहतः । दृश्येताघ्रातं तत् सुवृष्टिवृद्ध्यावहं जगतः ।। ५० ।। मध्ये तमः प्रविष्टं वितमस्कं मण्डलं च यदि परितः । तन्मध्यदेशनाशं करोति कुक्ष्यामय भयं च ।। ५१ ।। पर्यन्तेष्वतिबहुलं स्वल्पं मध्ये तमस्तमोऽन्त्याख्ये । सस्यानामीतिभयं भयमस्मिंस्तस्करणां च ।। ५२ ।। श्वेते क्षेमसुभिक्षं ब्राह्मणपीडां च निर्दिशेद्राहौ । अग्निभयमनलवर्णे पीडा च हुताशवृत्तीनाम् ।। ५३ ।। हरिते रोगोल्बणता सस्यानामीतिभिश्च विध्वंसः । कपिले शीघ्रगमसत्त्वमलेच्छध्वंसोऽथ दुर्विक्षम् ।। ५४ ।। अरुणकिरणानुरूपे दुर्भिक्षावृष्टयो विहगपीडा । आधूम्रे क्षेमसुभिक्षमादिशेन्मन्दवृष्टिं च ।। ५५ ।। कापोतारुणकपिलश्वावाभे क्षुद्भयं विनिर्देश्यम् । कापोतः शूद्राणांव्याधिकरः कृष्णवर्णश्च ।। ५६ ।। विमलकमणिपीताभो वैश्यध्वंसो भवेत् सुभिक्षाय । सार्चिष्मत्याग्निभयं गैरिकरूपे तु युद्धानि ।। ५७ ।। दूर्वाकाण्डश्यामेहारिद्रे वापि निर्दिशेन्मरकम् । अशभयसम्प्रदायी पाटलिकुसुमोपमो राहू

॥ ५८ ॥ पांशुविलोहित रूपः क्षत्रध्वंसाय भवति वृष्टेश्च । बालरविकमलसुर-
च परूपभृच्छस्त्रकोपाय ॥५९॥ पश्यन् ग्रस्तं सौम्यो घृतमधुतैलक्षयाय राज्ञां
च । भौमः समरविमर्दं शिखिकोपं तस्करभयं च ॥६०॥ शुक्रः सस्यविमर्दं नाना-
क्लेशांश्च जनयति धरित्र्याम् । रविजः करोत्यवृष्टिं दुर्भिक्षं तस्करभयं च ॥६१॥
यदशुभमवलोकनाभिरुक्तं ग्रहजनितं ग्रहणे प्रमोक्षणे वा सुरपतिगुरुणावलोकिते
तच्छमनुपयाति जलरिवाग्निरिद्धः ॥ ६२ ॥ ग्रस्ते क्रान्निममित्तैः पुनर्ग्रहो मास
षट्कपरिवृद्धया । पवनोल्कापातरजः क्षितिकम्पतमोऽशनिपातैः ॥ ६३ ॥
आवन्तिका जनपदाः कावेरीनर्मदातटाश्रयिणः । दृप्ताश्चमनुजपतयः पीडयन्ते
क्षितिसुते ग्रस्ते ॥ ६४ ॥ अन्तर्वेदीं सरयूं नेपालं पूर्वसागरं शोणम् । स्त्रीनृपयो-
धकुमारान् सह विद्वाद्भिर्बुधो हन्ति ॥ ६५ ॥ ग्रहणोपगते जीवे विद्वन्नृप-
मन्त्रिगजहयध्वंसः । सिन्धुवासिनामप्युदग्धिशं संश्रितानां च ॥ ६६ ॥ भृगुतनये
राहुगते दसेरकाः कैकयाः सयौधेयाः । आर्यावर्त्ताः शिवयः स्त्रीसचिवगणाश्च
पीडयन्ते ॥ ६७ ॥ सौरे मरुभवपुष्करसौराष्ट्रा धावतोऽर्बुदान्त्यजनाः ।
गोमन्तपारियात्राश्रिताश्च नाशं व्रजन्त्याशु ॥६८॥ कार्तिक्यामानलोपजीविमगधान्
प्राच्याधिपान् कोशलान् कल्माषानथ शूरसेनसहितान् काशींश्च सन्तापयेत ।
हन्याच्चाशु कलिङ्गदेशनृपतिं सामात्यभृत्यं तमो दृष्टं क्षत्रियातापदं जनयति क्षेमं
सुभिक्षान्वितम् ॥ ६९ ॥ काश्मीरकान् कौशलकान् सपुण्ड्रान् मृगांश्च हन्याद-
परान्तकांश्च । ये सोमपास्तांश्च निहन्ति सौम्ये सुवृष्टिकृत् क्षेमसुभिक्षकृच्च
॥ ७० ॥ पौषे द्विजक्षत्रजनोपरोधः ससैन्धवाख्याः कुकुरा विदेहाः । ध्वंसं
व्रजन्त्यत्र च मन्दवृष्टिं भयं च विद्यादसुभिक्षयुक्तम् ॥ ७१ ॥ माघे तु मातृपितृ-
भक्तवसिष्ठगोत्रान् स्वाध्यायधर्मनिरतान् करिणस्तुरङ्गान् । बङ्गाङ्गकाशिमनु-
जांश्च दुनोति राहुर्वृष्टिं च कर्षकजनानुमतां करोति ॥ ७२ ॥ पीडाकरं
फाल्गुनमासि पर्व वङ्गाश्मकावन्तकमेकलानाम् । नृत्तज्ञसस्यप्रवराङ्गनानां धनुष्कर-
क्षत्रतपस्विनां च ॥७३॥ चैत्रे तु चित्रकरलेखकगेयसक्तान् रूपोपजीविनिगमज्ञ-
हिरण्यपण्यान् । पौण्ड्रौड्रकैकयजनानथ चाश्मकांश्च तापः स्पृशत्यवरपोऽत्र विचित्र-
वर्षो ॥ ७४ ॥ वैशाखमासे ग्रहणे विनाशमायान्ति कार्पासतिलाः समुद्गः ।
इक्ष्वाकुयौधेयशकाः कलिङ्गाः सोपद्रवाः किन्तु सुभिक्षमस्मिन् ॥ ७५ ॥ ज्येष्ठे
नरेन्द्रद्विजराजपत्न्यः सस्यानि वृष्टिश्च महागणाश्च । प्रध्वंसमायान्ति नराश्च
सौम्याः साल्वैः समेताश्च निषादसंघाः ॥७६॥ आषाढपर्वण्युदपानवप्रनदीप्रवाहान्
फलमूलवार्त्तान् । गान्धारकाश्मीर पुलिन्दचीनान् हतान् वदेन्मण्डलवर्षमस्मिन्
॥ ७७ ॥ काश्मीरान् सपुलिन्द चीनयवनान् हन्यात् कुरुक्षेत्रकान् गान्धारानपि
मध्यदेशसहितान् दृष्टो ग्रहः श्रावणे । काम्बोजैकशफांश्च शारदमपि त्यक्त्वा

यथोक्तानिमानन्यत्र प्रचुरान्नत्हृष्टमनुजैर्धात्रीं करोत्यावृताम् ॥ ७८ ॥ कलिङ्ग-वङ्गान् मगधान् सुराष्ट्रान् म्लेच्छान् सुवीरान् दरदाञ्छकांश्च। स्त्रीणां च गर्भानसुरो निहन्ति सुभिक्षकृद्भाद्रपदेऽभ्युपेतः ॥ ७९ ॥ काम्बोजचीनयवनान् सह शल्य हृद्भिर्वाह्लीकसिन्धुतटवासिजनांश्च हन्यात्। आनर्तपौण्ड्रभिषजांश्च तथा किरातान् दृष्टोऽसुरोऽश्वयुजि भूरिसुभिक्षकृच्च ॥ ८० ॥ हनुकुक्षिपायुभेदाद्द्विद्विः सञ्छर्दनं च जरणं च। मध्यान्तयोश्च विदरणमिति दश शशिसूर्ययोर्मोक्षाः ॥ ८१ ॥ आग्नेय्यामपगमनं दक्षिणहनुभेदसंज्ञितं शशिनः। सस्यविमर्दो मुख रुग् नृपपीडा स्यात् सुवृष्टिश्च ॥ ८२ ॥ पूर्वोत्तरेण वामो हनुभेदो नृपकुमार-भयदायी। मुखरोगं शस्त्रभयं तस्मिन् विद्यात् सुभिक्षं च ॥ ८३ ॥ दक्षिणकुक्षि-विभेदो दक्षिणपार्श्वेन यदि भवेन्मोक्षः। पीडा नृपपुत्राणामभियोज्या दक्षिणा रिपवः ॥ ८४ ॥ वामस्तु कुक्षिभेदो यद्युत्तरमार्गसंस्थितो राहुः। स्त्रीणां गर्भ-विपत्तिः सस्यानि च तत्र मध्यानि ॥ ८५ ॥ नैर्ऋतवायव्यस्थौ दक्षिणवामौ तु पायुभदौ द्वौ। गुह्यरुगल्पा वृष्टिर्द्वयोस्तु राज्ञीक्षयो वामे ॥ ८६ ॥ पूर्वेण प्रग्रहणं कृत्वा प्रागेव चापसर्पेत। सच्छर्दनमिति तत् क्षेमसस्यहार्दिप्रदं जगतः ॥ ८७ ॥ प्राक्प्रग्रहणं यस्मिन् पश्चादपसर्पणं तु तज्जरणम्। क्षुच्छस्त्रभयोद्विग्नाःक्व शरण-मुपयान्ति तत्र जनाः ॥८८॥ मध्ये यदि प्रकाशः प्रथमं तन्मध्यविदरणंनाम। अन्तः कोपकरं स्यात् सुभिक्षदं नातिवृष्टिकरम् ॥८९॥ पर्यन्तेषु विमलता बहुलं मध्ये तमोऽन्तदरणाख्ये। मध्याख्यदेशनाशः शारदसस्यक्षयश्चास्मिन् ॥ ९० ॥ एते सर्वे मोक्षा वक्तव्या भास्करेपिऽकिन्त्वत्र। पूर्वादिक् शशिनि यथा तथा रवौ पश्चिमा कल्प्या ॥९१॥ मुक्ते सप्ताहान्तः पांसुनिपातोऽन्नसङ्क्षयं कुरुते। नीहारो रोगभयं भूकंपः प्रवरनृपमृत्युम् ।९२॥ उल्का मंत्रिविनाशं नानावर्णा घनाश्च भयमतुलम्। स्तनितंगर्भविनाशं विद्युन्नृपदंष्ट्रिपरिपीडाम् ॥ ९३ ॥ परिवेषो रुक्पीडां दिग्दाहो नृपभयं च साग्निभयम्। रूक्षो वायुः प्रबलश्चौरसमुत्थं भयं धत्ते ॥९४॥ निर्घातः सुरचापं दण्डश्च क्षुद्भयं सपरचक्रम्। ग्रहयुद्धं नृपयुद्धं केतुश्च तदेव संदृष्टः ॥ ९५ ॥ अविकृतसलिलनिपाते सप्ताहान्तः सुभिक्षमादेश्यम्। यच्चाशुभं ग्रहणजं तत् सर्वं नाशमुपयाति ॥ ९६ ॥ सोमग्रहे निवृत्ते पक्षान्ते यदि भवेद् ग्रहोऽर्कस्य। तत्रानयः प्रजानां दम्पत्योर्वैरमन्योन्यम् ॥ ९७ ॥ अर्कग्रहात्तु शशिनो ग्रहणं यदि दृश्यते ततो विप्राः। नैकक्रतुफलभाजो भवन्ति मुदिताः प्रजाश्चैव ॥९८॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां राहुचारः पंचमोऽध्यायः ॥५॥

कोई २ पण्डित कहते हैं कि राहुनामक असुरका यह मस्तक कट जानपर भी अमृत पीनेके विशेष हेतुकरके प्राणहीन न होकर (राहुरूप) ग्रहपनको प्राप्त हुआ है, परंतु सूर्यमण्डल और चंद्रमण्डलके समान आकृतिवाला राहु कृष्णवर्ण होनेसे ब्रह्माजीके

वरदान हेतुकरके ग्रहण समयके अतिरिक्त और किसी समय आकाशमें दिखाई नहीं देता ॥१॥२॥ कोई २ पंडित कहते हैं कि यह राहु मुंह और पूंछ वाला सर्पाकारसा है, और पंडित कहते हैं कि इस राहुका कोई भी आकार नहीं है बरन् यह अंधकारमय है ॥३॥ यह आकाशमें घूसनेवाला राहु जो शरीरधारी या मस्तकाकार अथवा मंडलमय होता तो यह नियत गतिवाला राहु भगणार्ध अर्थात् छः राशिके अंतरपर होकर भी किस प्रकारसे ग्रहण करता है ॥४॥ यदि राहुकी गतिमें किसी प्रकारकी स्थिरता न होती तो गणितके द्वारा किस प्रकारसे उसका ज्ञान हो सकता और यदि यह मुख पूंछवाले आकारका होता तो अमावस्या या पूर्णिमाके सिवाय और समय ग्रहण क्यों नहीं होता ॥५॥ जो इसका आकार सर्पके समान होता तो कभी मुखसे और कभी पूंछसे भी ग्रहण हो जाया करता और कभी मध्यस्थलद्वाराभी ग्रहणकी संभावना हुआ करती ॥६॥ यदि कोई कहे कि दो राहु हैं, तो एक राहुसे चंद्रमा ग्रस्त होता, उदय होता, अथवा छिप जाता, तब यह दिखाई देता कि उसके समान चलनेवाले दूसरे राहुसे सूर्य भी ग्रसित हो गया है ॥७॥ जो कुछ भी हो, चंद्रग्रहणके समय चंद्रमा पृथ्वीकी छायामें प्रवेश करता है और सूर्यग्रहणके समय सूर्यमंडलमें प्रवेश करता है, यही कारण है कि पश्चिम दिशासे चंद्रग्रहण और पूर्व दिशासे सूर्यग्रहणका आरंभ नहीं होता ॥८॥ जिस प्रकार किसी एक वृक्षकी छाया सूर्यका आवरण करके एक ओरहीको फैलती है, वैसेही सूर्यके आवरण होनेके कारण पृथ्वीकी छाया भी प्रतिदिन दीर्घ होती है ॥९॥ जिस समय चंद्रमा सूर्यकी सातवीं राशिमें रहकर उत्तर दक्षिणको अधिक दूर नहीं गमन करता, तब चंद्रमा पूर्वमुखमें आगमन करके पृथ्वीकी छायामें प्रवेश करता है ॥१०॥ (सूर्यग्रहणके समय) सूर्यके नीचे स्थित हुआ चंद्रमा, पश्चिम दिशासे आकर मेघके समान सूर्यबिंबको ढक लेता है, यही कारण है कि सूर्यका ग्रहण दृष्टिसे वश होकर प्रति देशमें अनेक प्रकारसे होता है ॥११॥ इस प्रकार चंद्रमाका आवरण अधिक होनेसे अर्द्धग्रस्त चंद्रमाका शृंग अतिशय कुंठित होता है और सूर्यका आवरण बहुतही कम होता है, इसी कारणसे सूर्यका शृंग अत्यन्त तीक्ष्ण होता है ॥१२॥ दिव्य दृष्टिवाले आचार्य लोगोंने इस प्रकारसे ग्रहणका कारण बताया है, परंतु ग्रहण होनेके विषयमें राहुको कारण कहना शास्त्रका सद्भाव मात्र है ॥१३॥ राहुनामक असुरको ब्रह्माजीने ऐसा वर दिया था कि, "लोग ग्रहणके समय जो होम करेंगे उसकेही अंशसे तुम तृप्त होगे" ॥१४॥ इसी कारणसे ग्रहणके समय राहुका सान्निध्य होता है और इसीसे गणितमें चंद्रमाकी गति भी उत्तरदक्षिणमें होती है, बस, और किसी समयमें ग्रहण नहीं हो सकता। यदि और किसी समयमें ग्रहणका लक्षण निरूपित किया जाय तो वह उत्पातका रूप गिना जाता है ॥१५॥१६॥ पांच ग्रहोंके इकट्ठे मेलसे भी ग्रहण नहीं हो सकता और अष्टमीके दिन जलमें तेल डालना.[१] जो शास्त्रमें लिखा है इस लिखेनेका भी पंडित लोगोंको विश्वास न करना चाहिये ॥१७॥ अवनतिके द्वारा सूर्यका ग्रास और वलन व अवनतिके द्वारा दिक् और तिथिके अवसानानुसार समयका जिस प्रकार निरूपण करना चाहिये सो हम अपने बनाये करण ग्रंथमें कह आये हैं ॥ १८ ॥ ब्रह्मा, चंद्र, इन्द्र, कुबेर, वरुण,

१ शास्त्रमें लिखा है कि अष्टमीके दिन पानीमें तेल डालनेसे वह तेल जिस दिशामें न फैले उसी दिशामें ग्रहणकी मुक्ति होगी, तिसकी विपरीत दिशामें ग्रास होगा। तथा च गर्गः–"तत्राष्टम्यां, जले तैलं क्षिप्त्वा स्थानं विनिर्दिशेत्" इत्यादि।

अग्नि और यम ये सात देवता षण्मासोत्तर वृद्धिके अनुसार ग्रहणके मालिक हैं ॥१९॥ जिस ग्रहणमें ब्रह्मा मालिक है उस समयमें द्विज और पशुओंकी वृद्धि होती है, मंगल आरोग्य और धान्यसम्पत्ति होती है। चंद्रमाके समयमें भी ऐसा ही होता है और पंडितोंको पीडा व अनावृष्टि होती है ॥२०॥ ग्रहणमें इंद्रके मालिक होनेके समय राजाओंमें विरोध होता है, शरदऋतुके धान्यका नाश होता है, अमंगल होता है, कुबेरके समय धनियोंके धनका नाश होता और सुभिक्ष होता है ॥ २१ ॥ वरुणके समयमें राजाओंका अशुभ होता है, लोगोंका मंगल होता है, धान्यकी वृद्धि होती है. अग्निके स्वामी होनेको मित्र कहते हैं. इसके समयमें धान्य, आरोग्य, अभय और श्रेष्ठ वर्षा होती है ॥२२॥ जिस समयमें ग्रहणका मालिक यम होता है, उस समयमें ग्रहण होनेसे अनावृष्टि, दुर्भिक्ष और धान्यकी हानि होती है. इसके अतिरिक्त और समयमें ग्रहण होनेसे क्षुधा, महामारी और अनावृष्टि होती है ॥२३॥ वेलाहीन अर्थात् गणितके बताये हुए कालके पहले ग्रहण होनेसे गर्भोंको भय होता है शस्त्रोंका कोप होता है और अतिवेला अर्थात् गणितके नियत किये कालके पीछे ग्रहण होनेसे फलपुष्पोंका नाश, भय और धान्यका नाश होता है ॥२४॥ हीन अथवा अतिरिक्त कालमें ग्रहणका फल पहले शास्त्रोंको देखकर इस प्रकार निरूपित हुआ, परंतु स्पष्ट गणितका जाननेवाला जो समय बतावेगा वह किसी प्रकारसे झूठ नहीं हो सकता ॥२५॥ यदि एक महीनेमें सूर्य चंद्रमा दोनोंका ग्रहण हो तो राजा लोग अपनी सेनामें हलचली मच जानेसेही क्षयको प्राप्त होते हैं और शस्त्रकोप अत्यन्तही होता है ॥२६॥ जो सूर्य चंद्रमा पापग्रहसे देखे जाते हुए ग्रस्त अवस्थामें उदय हों या अस्त हो जायँ तो शरदऋतुके धान्य और राजाका नाश होता है और ऐसेही पाप ग्रहसे देखे जाते हुए सर्व ग्राससे ग्रसित होनेपर दुर्भिक्ष और मरी पडती है ॥२७॥ जो सूर्य या चंद्रमा आधा उदय होते हुए राहुसे ग्रहण हो जाय तो नैकृतिक (अतिकष्टसे किये हुए वा निषाददेशीय) समस्त यज्ञोंका नाश करता है और यदि अयुग्म १।३।५।७ [1]आकाशांशमें ग्रहणका आरंभ हो जाय तो अग्निसे जीविका करनेवाले सुनार भुरजी आदि, गुणाधिक ब्राह्मण और आश्रममें रहनेवालोंका नाश करता है ॥२८॥ जो आकाशके दूसरे अंशमें ग्रहणका आरंभ हो जाय तो किसान, पाखण्डी, वणिक, क्षत्री और सेनाके स्वामीका नाश हो जाता है, जो आकाशके तीसरे अंशमें ग्रासका आरंभ हो तो कारुक (शिल्पसे जीविका करनेवाले), शूद्र, म्लेच्छ और मंत्रियोंका नाश हो जाता है ॥२९॥ जो आकाशके बीच भागमें अर्थात् मध्याह्न कालमें ग्रहण आरंभ हो तो राजाका मध्यदेश नष्ट होता है, धान्यका मूल्य सुहाता हुआ होता है। आकाशके पंचम भागमें ग्रहणका आरंभ होनेसे तृणभोजन करनेवाले, मंत्री, अन्तःपुर और वैश्योंका नाश होता है ॥३०॥ आकाशके छठे भागमें ग्रहण होनेसे स्त्री, शूद्र और सप्तम भागमें अर्थात् अस्तकालमें ग्रहणका आरंभ होनेसे चोर और गह्वर आदि म्लेच्छदेशवासियोंका नाश होता है परंतु आकाशके जिस अंशमें मोक्ष अर्थात् ग्रहणका शेष होता है, उस २ भागके कहे हुए देशोंका और वहांके प्राणियोंका शुभ होता है ॥३१॥ उत्तरायणमें ग्रहण होनेसे ब्राह्मण और क्षत्रियोंकी हानि होती है, दक्षिणायनमें होनेसे वैश्य और शूद्रोंकी हानि होती है और उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम इन

---

१ ग्रहण होनेके दिनके रात्रिमान या दिनमानके सात भाग करनेसे जो हो वही रात्री वा दिनका सातवां भाग और आकाशका सातवां भाग है।

चारों दिशाओंमेंसे जो किसी दिशामें राहु दिखाई दे तो दक्षिण पर्यायक्रमसे ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्रजातिकी हानि है ।।३२।। ईशानकोणमें दिखाई दे तो म्लेच्छ जाति, अग्निकोणमें दिखाई दे तो पथिक, दक्षिणमें जलचर और हस्ती, उत्तरमें गायढोरोंका अशुभ होता है ।।३३।। राहु पूर्वदिशासे आवे तो पृथ्वी जलसे पूर्ण हो जाय, पश्चिम दिशासे आवे तो किसान सेवक और बीजोंका नाश होता है ।।३४।। यदि मेषराशिमें राहुका दर्शन हो तो पंजाब, कलिंग, शूरसेन, काम्बोज, औड्र, किरात और शस्त्रवार्त्त (शस्त्रधारी) आदि समस्त देश और जो अग्निसे आजीविका करनेवाले हैं वे सबही अत्यन्त पीडित होते हैं ।।३५।। सूर्य चंद्रमा जो वृषराशिमें राहुसे ग्रसे जायँ तो गोप, पशु, अधिक करके गाय ढोर पालनेवाले लोक और अत्यन्त गुणी लोग अत्यन्तही पीडित होवें ।।३६।। मिथुनराशिमें ग्रहण हो जाय तो श्रेष्ठ रमणी (स्त्री राजा, साधारण राजा (जमीदार), बलवान् आदमी, नाचने गाने और बजानेवाले, यमुनाके किनारेपर रहनेवाले और बाह्लीकदेश, मत्स्यदेश और सुह्म देशवासी मनुष्योंको पीडा होती है ।।३७।। जो कर्कटराशिमें चंद्रमा या सूर्यका ग्रहण हो तो आभीर, शबर जातिके पुरुष और पह्लव, मल्ल, मत्स्य, कुरु, शक, पाञ्चाल और विकलदेश पीडित हों, अन्नोंका नाश हो ।।३८।। सिंहराशिमें ग्रहण होनेसे पुलिन्दगण, मेकल, बलिष्ठ राजा, राजाके समान पुरुष और वनचारियोंका नाश होता है, कन्याराशिमें ग्रहण हो तो कवि, लेखक, गीत गाकर आजीविका करनेवालोंका नाश होता है, धान्य नष्ट होते हैं और अश्मक, त्रिपुर व शालि इन प्रधान देशोंका ध्वंस होता है ।।३९।। जो तुलाराशिमें सूर्य या चंद्रमाका ग्रहण हो तो अवन्ती देश, पश्चिम समुद्रके निकटका देश, दशार्ण देश; साधु पुरुष, वणिक और मच्छकच्छदेशके राजाका नाश हो, वृश्चिकराशिमें ग्रहण हो तो उदुम्बर, मद्र और चौलदेशके अदमी, वृक्ष श्रेष्ठ योधा और विष देनेवाले आदमियोंका नाश हो जाता है ।।४०।। धनराशिमें ग्रहण होवे तो मंत्री श्रेष्ठ अश्व, विदेह, मल्ल, और पांचाल देश, वैद्य, वणिक, और विषम अस्त्रोंके जाननेवाले पुरुषोंका नाश हो जाता है। मकरराशिमें सूर्य ग्रहण होनेसे मत्स्य, मंत्रिकुल, नीच. सलाह व औषधि जानने या बनानेमें निपुण और वृद्ध अस्त्रधारी पुरुषोंका नाश होता है ।।४१।। कुम्भराशिमें ग्रहण होवे तो पहाडी आदमी पाश्चात्य, बोझा ढोनेवाले, तस्कर, अहीर और दरद आर्य और सिंहनगर तथा बर्बर देशके लोगोंका नाश हो जाता है। मीनराशिमें ग्रहण होनेसे समुद्रतीरके और समुद्रजलसे उत्पन्न हुए द्रव्य, मान्यपुरुष, पंडित और जलसे आजीविका करनेवाला मच्छीमार, मल्लाहादिकोंका नाश हो जाता है। इस प्रकार कूर्मोपदेशके वशसे अर्थात् कूर्मसंस्थानके अनुसारसे ग्रहणका फल कहा जाता है। ।।४२।। चंद्रसूर्यके ग्रहणमें दश प्रकारके ग्रास हैं यथाः—१ सव्य, २ अपसव्य, ३ लेह, ४ ग्रसन ५ निरोध, ६ अवमर्द, ७ आरोह, ८ अघ्रात, ९ मध्यतम और १० तमोन्त्य हैं ।।४३।। जो राहु सव्यमें गमन करे अर्थात् सव्य नामक ग्रहण हो तो संसार जलसे पूर्ण हो जाय; हर्षित होकर भयहीन हो. अपसव्यग्रासमें राजा या चोरोंको पीडा देनेसे प्रजाका नाश हो ।।४४।। यदि राहु जीभके समान चंद्रमण्डल को चाटे तो उस ग्रहणको लेह कहते हैं. इस ग्रहण के होनेसे पृथ्वीके प्राणिगण हर्षित होते हैं और पृथ्वीपर बहुतसा जल वर्षता है ।।४५।। जब ग्रहमण्डलका एकपाद, अर्द्धभागवा त्रिपाद ग्रस्त हो जाता है तब उसको ग्रसन कहते हैं. इससे गर्वित राजाके धनका नाश होता है और गर्वित देशोंको

पीडा होती है ।।४६।। सूर्य वा चंद्र मण्डल तक देश अर्थात् पिछली सीमातक ग्रस करके जो राहु मध्यस्थानमें पिण्डाकारके समान विराजमान हो तो उसको निरोध कहते हैं इससे समस्तही प्राणियोंको हर्ष होता है ।।४७।। जो राहुबिम्ब मण्डलको भलीभांति पूर्णतासे ढककर अधिक कालतक विराजमान रहे तो उसको अवमर्द्दन कहते हैं, इससे प्रधान देश और प्रधान व प्रधानराजाका नाश होता है और अंधकारका भय होता है ।।४८।। जो गोलाकार ग्रहमण्डलको राहु ढककर अर्थात् ग्रहण होकर जो राहु फिर तत्काल दिखाई दे तो उसको आरोहण कहते हैं, इससे राजाओंको परस्पर युद्धका अत्यन्त भय होता है ।।४९।। बाफयुक्त सांसकी पवनसे जिस प्रकार दर्पण मलीन हो जाता है वैसेही यदि राहुसे चंद्र या सूर्यका मंडल एक ओरको मलीन दीख पडे तो उस ग्रासको आघात कहते हैं, इससे जगत्में सुवृष्टि होती है और सब जगत्की वृद्धि होती है ।।५०।। यदि चंद्रमाके बिचले भागमें राहु प्रवेश कर आवे और चंद्रमण्डलके चारों ओर यदि निर्मल रहे तो इस ग्रासको मध्यतम कहते हैं; यह मध्यदेश नाशक और कोखके रोगोंको करने वाला है ।।५१।। जो चंद्रमण्डलकी पिछली सीमामें राहु अत्यन्त बहुतायतसे और बीचके भागमें थोडासा ज्ञात हो तो इसको तमोऽन्त्यनामक ग्रास कहते हैं, इससे धान्योंको ईति करनेवाला भय होता है और चोरोंका भय होता है ।।५२।। राहु श्वेतवर्ण हो तो मंगल सुभिक्ष और ब्राह्मणोंको पीडा होती है, अग्निवर्ण होनेसे अग्निभय और अग्निसे जीविका करनेवाले लुहारादिको पीडा होती है ।।५३।। हरे रंगका राहु होवे तो रोगकी अधिकाई और नाजका ईतिसे नाश होता है। कपिलवर्णका राहु हो तो शीघ्र चलनेवाले प्राणी म्लेच्छोंका नाश और दुर्भिक्ष होगा ।।५४।। राहुका वर्ण अरुण दिखाई दे तो दुर्भिक्ष, अवृष्टि और पक्षियोंको पीडा होती है। कुछेक धूमकेसा वर्ण हो तो मंगल सुभिक्ष और वृष्टि कम होती है ।।५५।। कपोत, अरुण, कपिल वा कपिश वर्णका राहु दिखाई दे तो क्षुधाका भय होता है और कबूतरके वर्णका या काले रंगका हो तो शूद्रोंको पीडा होती है ।।५६।। जो राहु निर्मलमणिके समान पीत वर्ण हो तो वैश्योंका नाश और सुभिक्ष होता है, अग्निकी शिखाके समान हो तो अग्निभय और गेरूके समान दिखाई दे तो युद्ध होता है ।।५७।। दूर्वादलके समान श्यामवर्ण या हलदीके समान राहु दिखाई दे तो मरी पडती है। पाटलफूलके समान राहुका रंग होवे तो वज्र गिरनेका डर रहता है ।।५८।। धूरिके समान या लाल वर्णका दिखाई दे तो वर्षा होती है और क्षत्रियोंका नाश होता है। प्रभात कालीन सूर्यके समान, कमल या इन्द्रधनुषके समान राहुका वर्ण हो तो शस्त्रकोप होता ।।५९।। अब दृष्टिफल कहते हैं– ग्रस्तग्रहमंडलमें बुधकी दृष्टि हो तो घी, शहद, तेल तेज हों और राजाओंका भय होता है। मंगलकी दृष्टि हो तो युद्धमें मर्द्दन-अग्निकोप और चोरोंका भय होता है ।।६०।। शुक्रकी दृष्टि हो तो पृथ्वीमें धान्योंका नाश होता है, अनेक प्रकारके उपद्रव होते हैं। शनिकी दृष्टि होवे तो दुर्भिक्ष, अवृष्टि और चोरभय होता है ।।६१।। ग्रहणके आरभसमयमें या मोक्षसमयमें दर्शनादिके द्वारा जो अशुभफल कहे गये वे समस्त बृहस्पतिकी दृष्टिसे इस तरह शांत हो जाते हैं जैसे जलराशिसे बढी हुई आग ।।६२।। वायु, उल्कापात, धूरि वर्षना भोंचाल. अंधकार और वज्रपात निमित्तद्वारा बहुधा छः मासके पीछे ग्रहण होता है ।।६३।। मंगलका ग्रहण हो तो अवन्तीदेश. कावेरी और नर्मदाके निकटके देश और सब गर्वित राजाओंका नाश होत

है ॥६४॥ जो बुधग्रहसे राहुका ग्रहण हो तो अन्तर्वेदी, सरयू, नेपाल, पूर्वसागर और शोणादिदेशोंकी स्त्रियें राजा, योद्धा, पंडित और बालकोंका नाश होता है ॥६५॥ बृहस्पतिका ग्रहण होवे तो विद्वान् राजमंत्री, हाथी और घोडोंका नाश होता है सिन्धुनदीके निकट रहनेवाले या उत्तर दिशाके रहनेवाले पुरुषोंका नाश होता है ॥६६॥ शुक्रका ग्रहण हो तो दासेरक, काश्मीर, यौधेय, आर्यावर्त, शिबि आदि देशको व स्त्रियों और मंत्रियोंको पीडा होती है ॥६७॥ जो शनिग्रह राहुसे ग्रस्त हो तो मरुभाव पुष्कर, सौराष्ट्र आदि देशके लोग, पैदल, अर्बुदादि अन्त्यजाति, गोमन्त और परियात्रा पहाडके रहनेवाले शीघ्र नाशको प्राप्त हो जाते हैं ॥६८॥ जो राहु कार्तिक महीनेमें दिखाई दे तो अग्निसे आजीविका करनेवाले पुरुष अर्थात् सुनार, लुहार और मगध, कोशल, कल्माष, शूरसेन व काशिआदि देशोंके रहनेवाले प्राणि पिडित होते हैं और इस प्रकार क्षत्रियोंको ताप देनेवाले राहुके दिखाई देनेपर मंत्री और नौकर चाकरोंके साथ कलिग देशके राजाका नाश हो जाता है और मंगल व सुभिक्ष होता है ॥६९॥ अग्रहायणमहीनेमें ग्रहण होवे तो काश्मीर, कोशल, पुण्ड्र आदि देश, पश्चिम और दक्षिण देशके मृग और समस्त सोम पीनेवालोंका नाश हो जाता है और अच्छी वर्षा मंगल और सुमिक्ष भी होता है ॥७०॥ पौष मासमें ग्रहण हो तो ब्राह्मण और क्षत्रियोंमें उपद्रव हो. सैन्धव, कुकुर और विदेहदेशके रहनेवालोंका ध्वंस होता है और अकाल पडता है ॥७१॥ माघमासमें ग्रहण होवे तो वसिष्ठगोत्रमें उत्पन्न हुए मातापिताकी भक्ति करनेवाले लोग, स्वाध्याय और अपने धर्म कर्मको करनेवाले लोग, बहुतही ऊंचे हाथी और बंगाल, अंग और काशी आदि देशमें उत्पन्नहुए मनुष्योंको दुःख होता है, परंतु वर्षा किसानोंकी मनमानी होती है ॥७२॥ फाल्गुन मासमें ग्रहण होवे तो बंगाल, अश्मक, अवन्ती और मेकलादि देशोंके लोगोंको पीडा होती है, नाचनेवाली उत्तम धान्य तथा उत्तम स्त्री धनुषधारी क्षत्रिय और तपस्वियोंको पीडा होती है ॥७३॥ चैत्रमासमें ग्रहण होवे तो चित्रकार (मुसौविर), लेखक, गानेमें आसक्त, रूपोपजीवी (वेश्या आदि) और निगम (शास्त्र) को जाननेवाले पुरुष, सुवर्णादि व्यापार के द्रव्य और पौण्ड ओङ्ग, अश्मक व काश्मीरादि देशके आदमी अत्यन्त दुःखी होते हैं, वर्षा अच्छी होती है ॥७४॥ जो वैशाखमासमें ग्रहण होवे तो कपास, तिल और मूंगका नाश होता है इक्ष्वाकु, यौधेय, शक और कलिंगदेशमें उपद्रव होता है, परंतु इससे सुभिक्ष होता है ॥७५॥ ज्येष्ठमासमें ग्रहण होवे तो रानी, ब्राह्मणी, नाज, वर्षा, महागण अर्थात् महासमुद्र, सुंदरपुरुष, शाल्वेदेशके रहनेवाले मनुष्य और निषाद लोगोंका नाश होता है ॥७६॥ जो आषाढ मासमें ग्रहण होवे तो कूवा, वापी, नदीप्रवाह, फलमूलसे आजीविका करनेवाले पुरुष अर्थात् माली, बागवान् और गान्धार, काश्मीर, पुलिन्द, चीनादि देशोंका नाश हो जाता है और देवराज इन्द्र मण्डलपर वर्षा करता है ॥७७॥ श्रावण मासमें ग्रहण होवे तो काश्मीर, पुलिन्द, चीन, यवन, कुरुक्षेत्र और मध्यदेशका नाश होता है और काम्बोज, एकशफ, शारद व पहिले कहे हुए देशोंके सिवाय और देशोंके लोग बहुतसे अन्नको पाकर हर्षित हो समस्त पृथ्वीको ढक लेते हैं ॥७८॥ भाद्रपद मासमें ग्रहण होवे तो कलिङ्ग, बंगाल, मगध, सूरत, म्लेच्छ, सुवीर, दरद और शकदेशोंका नाश होता है, स्त्रियोके गर्भोका नाश होता है और सुभिक्ष होता है ॥७९॥ आश्विन मासमें ग्रहण होवे तो काम्बोज, चीन, यवन, धान्यके चुरानेवाले, बाह्लीक और सिन्धुनदके किनारे

रहनेवाले पुरुष और आनर्त्त व पौण्ड्देश के रहनेवाले वैद्य और किरात लोगोंका नाश होता है और अत्यन्त सुभिक्ष होता है ॥८०॥ चंद्र और सूर्यके ग्रहणमें मोक्ष दश प्रकारका होता है, यथा,-(१-२) द्विविध हनुभेद, (३-४) द्विविध कुक्षिभेद (५-६) द्विविध वायुभेद (७) संछर्दन (८) जरण (९) मध्यविदारण और (१०) अन्तविदारण ॥८१॥ जो चंद्रग्रहण अग्निकोणसे मोक्ष होवे तो उसको दक्षिणहनुभेद नामक मोक्ष कहते हैं, इससे क्षान्यनाश, मुखरोग, राजपीडा और अच्छी वर्षा होती है ॥८२॥ पूर्वोत्तरकोणसे मोक्ष होनेपर वाम हनुभेद मोक्ष होता है, इससे राजा और राजकुमारोंको भय, मुखरोग, शस्त्र-भय और सुभिक्ष होता है ॥८३॥ दक्षिण ओरसे मोक्ष होनेपर दक्षिणकुक्षिभेद नामक मोक्ष होता है जिससे राजकुमारोंको पीडा और दक्षिणके शत्रुओंमें झगडा होता है ॥८४॥ जो राहु उत्तरपक्षमें स्थापित होवे तो वामकुक्षिभेद मोक्ष होता है, इससे स्त्रियोंके गर्भको विपत्ति और धान्य मध्यम होता है ॥८५॥ नैर्ऋत्य कोणसे मोक्ष होवे तो उसको दक्षिण-वायुभेद कहते हैं, यह दोनों प्रकारकी मोक्ष साधारण गुह्यपीडा और सुवृष्टि करती है और वामवायुभेदसे रानीकी क्षय होती है ॥८६॥ राहु यदि ग्राह्य मंडलमें पूर्व भागसे ग्रास करना आरंभ करके पूर्व दिशाकोही चला आवे तो उसको संछर्दन नामक मोक्ष कहते हैं, इससे संसारका मंगल और धान्यसुख होता है ॥८७॥ जिसमें पूर्वदिशासे ग्रहणका आरंभ होकर पश्चिम देशोंमें मोक्ष होवे उसको जरण नामक मोक्ष कहते हैं, जरण नामक मोक्ष होनेसे मनुष्य क्षुधा और शस्त्रभयसे घबडाकर न जाने कहां जाकर शरण प्राप्त होते हैं? ॥८८॥ मध्यस्थल प्रथमही प्रकाशित होनेपर उसको मध्यविदारण नामक मोक्ष कहते हैं, यह प्राणियोंको मानसिक कोप करानेवाली और सुभिक्षदायक होनेपर भी श्रेष्ठ वर्षा इसमें नहीं होती, राज्यमें खलबलाहट मचती है ॥८९॥ यदि चंद्रग्रहणमें बिंबके चारों ओर निर्मलता हो व मध्यमें गाढी श्यामलता रहे तो वह अंतदरण नामक मोक्ष होता है, इससे मध्यदेश और शरदऋतुकी खेतीका नाश होता है ॥९०॥ यह संपूर्ण चंद्रग्रहणकी मोक्ष कही है, इन सबके विषयको सूर्यग्रहणमें भी कल्पना करना उचित है परंतु जिस प्रकार चंद्रग्रहणमें जहां पूर्वदिशा कही, उस जगहपर सूर्यग्रहणमें पश्चिम दिशाका लगाना ठीक है ॥९१॥ मोक्ष होनेके उपरांत यदि सात दिनके भीतर धूरि वर्षे तो अन्नका नाश हो, कुहर हो जाय तो रोगका भय होवे, भूकंप होनेसे श्रेष्ठ राजाकी मृत्यु होती है, उल्कापात मंत्रीका नाश करता है और वर्णवर्णके मेघ संध्याकालके विना दिखाई दे तो महाभय होता है, मेघगर्जन, गर्भनाशक कारण होता है, विद्युत्पात राजा, डाढवाले सर्प शूकर आदि लोगोंको पीडादायक होता है, परिवेष होनेसे रोगकी पीडा होती है, दिग्दाह होनेसे राजभय और अग्निभय होता है, अतिप्रचण्ड तथा रूक्ष पवनके चलनेसे चोरभय होता है, निर्घात शब्द होनेसे और इंद्रधनुषके दिखाई देने तथा पवनका संघात होनेसे दुर्भिक्ष और दूसरे राजाकी सेनासे भय होता है, ग्रहयुद्ध होनेसे राजाओंका परस्पर युद्ध होता है. केतुके दर्शनसे भी युद्ध होता है, ग्रहण मोक्ष होनेके पश्चात् सात दिनके भीतर यदि विना विकारके भली भांति वर्षा हो जाय तो सुभिक्ष होता है और ग्रहणका संपूर्ण अशुभ फल भी नाशको प्राप्त हो जाता है ॥९२॥॥९३॥९४॥९५॥॥९६॥ चंद्रग्रहणके पीछे यदि बहुत दिनके भीतर सूर्यग्रहण हो जाय तो प्रजामें दुर्नय होता है और स्त्रीपुरुषोंमें परस्पर वैरभाव होता है ॥९७॥ और यदि सूर्यग्रहणसे एक पक्ष परे चंद्रग्रहण हो तो

ब्राह्मणगण अनेक यज्ञोंका फल पावें और वे बहुत यज्ञोंको करते हैं, प्रजा हर्षित होती है ॥९८॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद-वास्तव्य पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥५॥

अथ षष्ठोऽध्यायः

भौमचारः

यद्युदयर्क्षाद्वक्रं करोति नवमाष्टसप्तमर्क्षेषु । तद्वक्रमुष्णमुदये पीडाकरमग्नि-वार्त्तानाम् ॥ १ ॥ द्वादशदशमैकादशनक्षत्राद्वक्रिते कुजेऽश्रुमुखम् । दूषयति रसा-नुदये करोति रोगानवृष्टिञ्च ॥ २ ॥ व्यालं त्रयोदशर्क्षाच्चतुर्दशाद्वा विपच्यते-ऽस्तमये । दंष्ट्रिव्यालमृगेभ्यः करोति पीडां सुभिक्षं च ॥ ३ ॥ रुधिराननमिति वक्रं पञ्चदशात् षोडशाच्च विनिवृत्ते । तत्कालं मुखरोगं सभयं च सुभिक्षमा वहति ॥ ४ ॥ असिमुशलं सप्तदशादष्टादशतोऽपि वा तदनुवक्रे । दस्युगणेभ्यः पीडां करोत्यवृष्टिं सस्त्रभयम् ॥ ५ ॥ भाग्यार्यमोदितो यदि निवर्त्तते वैश्वदेवते भौमः । प्राजापत्येऽस्तमितस्त्रीनपि लोकान्निपीडयति ॥ ६ ॥ श्रवणोदितस्य वक्रं पुष्ये मूर्धाभिषिक्तपीडाकृत् । यस्मिन्नृक्षेऽभ्युदितस्तद्दिग्व्यूहान् जनान् हन्ति ॥ ७ ॥ मध्येन यदि मघानां गतागतं लोहितः करोति ततः पाण्ड्यो नृपो विनश्यति शस्त्रोद्योगाद्भयमवृष्टिः ॥ ८ ॥ भित्त्वा मघां विशखां भिन्दन् भौमः करोति दुर्भिक्षम् । मरकं करोति घोरं यदि भित्त्वा रोहिणीं याति ॥९॥ दक्षिणतो रोहिण्याश्चरन् महीजोऽर्घवृष्टिनिग्रहकृत् । धूमायन् सशिखो वा विनिहन्यात् पारियात्रस्थान् ॥ १० ॥ प्राजापत्येश्रवणे मूले तिसृषूत्तरासु शाक्रे च । विरचन् घननिवहानामुपघातकरः क्षमातनयः ॥ ११ ॥ चारोदयाः प्रशस्ताः श्रवणमघादित्यमूलहस्तेषु । एकपदाश्विविशाखाप्राजापत्येसु च कुजस्य ॥१२॥ विपुलविमलमूर्तिः किंशुकाशोकवर्णः स्फुटरुचिरमयूखस्तप्तताम्रप्रभाभः । विचरति यदि मार्गं चोत्तरं मेदिनीजः शुभकृदवनिपानां हार्दिदश्च प्रजानाम् ॥१३॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृत्संहितायां भौमचारः षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

जिस नक्षत्रमें मंगलग्रहका उदय होता है, उस उदय नक्षत्रके सप्तम, अष्टम वा नवम नक्षत्रमें मंगलग्रह यदि वक्री हो तो उस वक्रको 'उष्ण' कहते हैं, इस उष्ण वक्रके उदयकालमें अग्निसे आजीविका करनेवाले लोगोंको पीडा होती है ॥१॥ उदयनक्षत्रके दशम, एकादश अथवा द्वादश नक्षत्रसे मंगल यदि वक्री हो तो उस वक्रको 'अश्रुमुख' वक्र कहते हैं, इसके उदय होनेके समयमें समस्त रस दूषित हो जाते हैं और रोग व अनावृष्टि होती है ॥२॥ ऐसेही जिस नक्षत्रमें मंगल अस्त हो जाय, उस अस्त होते हुए नक्षत्रके तेरहवें या चौदहवें नक्षत्रमें यदि मंगलका निपाक अर्थात् वक्र हो तो इस

वक्रका नाम 'व्यांल' है, इसमें दंष्ट्री, व्याल और मृगसे पीडा होती है और सुभिक्ष होता है ।।३।। अस्तमन नक्षत्रके पंचदश या षोडश नक्षत्रसे मंगलका वक्र हो तो 'रुधिरानन नामक वक्र होता है, उस समयमें लोगोंको मुखरोग और भय होता है और सुमिक्ष हुआ करता है ।।४।। अस्त होते हुए नक्षत्र के सत्रहवें या अठारहवें नक्षत्रमेंसे मंगलका अनुवक्र हो तो 'असिमुशल' नामक वक्र होता है इससे चोरभय, शस्त्रभय और अनावृष्टि होती है ।।५।। यदि मंगलग्रह पूर्वाफाल्गुनी वा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें उदित होकर उत्तराषाढा नक्षत्रमें निवृत्त अर्थात् वक्री होकर रोहिणी नक्षत्रमें अस्त हो तो स्वर्ग, मृत्यु पाताल इन तीन लोकोंको भी पीडा होती है ।।६।। मंगल श्रवण नक्षत्रसे उदित होकर यदि पुष्य नक्षत्रमें वक्री हो तो मूर्द्धाभिषिक्त (क्षत्रीजाति) को पीडा होती है, और नक्षत्रमें उदय हो और वह नक्षत्र जिस दिशामें हो उस दिशाके रहनेवाले लोगोंका नाश हो जाता है ।।७।। जो मघा नक्षत्रमें भी मंगलका आवागमन हो तो पाण्डयराजाका विनाश, शस्त्र-भय और अवृष्टि होती है ।।८।। मंगल मघा नक्षत्रको भेदकर यदि विशाखा नक्षत्रका भेद करे तो दुर्भिक्ष होता है और रोहिणीको भेद करके गमन करे तो अत्यन्त मरी पडती है। जो पृथ्वी पुत्र मंगल रोहिणी नक्षत्रके पार्श्वमें विचरण करे तो महंगी होती है और वृष्टिका नाश होता है। और यदि धूमसे ढके हुएके समान शिखायुक्त मालुम पडे तो पारियात्र पूर्वके रहवासियोंका नाश हो जाता है ।।९।।१०।। रोहिणी, श्रवण, मूल, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा या ज्येष्ठानक्षत्रमें मंगलका विचरण हो तो मेघोंका नाश होता है ।।११।। श्रवण, मघा, पुनर्वसु, मूल, हस्त, पूर्वाभाद्रपदा, अश्विनी विशाखा और रोहिणी नक्षत्रमें मंगलका विचरना वा उदय होना अच्छा है ।।१२।। बडा और निर्मल मूर्तिवाला, टेसू या अशोकफूलके समान रंगवाला, स्वच्छ मनोहर किरणवाला, तपाये हुए तांबेके समान कांतिवाला मंगलग्रह जो उत्तर पथ (उत्तर क्रांति) में विचरे तो राजाओंको शुभ और प्रजाओंको सुख होता है ।।१३।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां षष्ठोऽध्यायः ।।६।।

अथ सप्तमोऽध्यायः

बुधचारः

न त्पातपरित्यक्तः कदाचिदपि चंद्रजो व्रजत्युदयम् । जलदहनपवनभयकृद्धा-न्यार्घक्षविवृद्धयै वा ।। १ ।। विचरञ्छ्रावणधनिष्ठाप्राजापत्येन्दुविश्वदैवानि । मृद्नन् हिमकरतयनः करोत्यवृष्टिं सरोगभयाम् ।। २ ।। रौद्रादीनि मघान्तान्यु-पाश्रिते चंद्रजेप्रजापीडा । शस्त्रनिपातक्षुद्भयरोगानावृष्टिसन्तापैः ।। ३ ।। हस्तादीनि विचरन् षड्क्षाण्युपपीडयन् गवामशुभः । स्नेहरसार्घविवृद्धिं करोति चोर्वीं प्रभूतान्नाम् ।। ४ ।। आर्यम्णं हौतभुजं भद्रपदामुत्तरां यमेशंच । चन्द्रस्य सुतो निघ्नन् प्राणभृतां धातुसंक्षयकृत् ।। ५ ।। आश्विनवारुणमूलान्युपमृद्नन् रेवतीं च चन्द्रसुतः । पण्यभिषग्नौजीविकसलिलजतुरगोपघातकरः ।। ६ ।।

पूर्वाद्यृक्षत्रितयादेकमपीन्दोः सुतोऽभिमृद्नीयात् । क्षुच्छस्त्रतस्करामयभयप्रदायी चरन् जगतः ॥ ७ ॥ प्राकृतविमिश्रसंक्षिप्ततीक्ष्णयोगान्तघोरपापाख्याः । सप्त पराश तन्त्रे नक्षत्रैः कीर्तितागतयः ॥ ८ ॥ प्राकृतसंज्ञा वायव्ययाम्यपैतामहानि बहुलाश्च । मिश्रा गतिः प्रतिष्ठा शशिशिवपितृभुजगदैवानि ॥ ९ ॥ संक्षिप्तायां पुष्यः पुनर्वसुः फल्गुनीद्वयं चेति । तीक्ष्णायां भाद्रपदाद्वयं सशाक्राश्वयुक् पौष्णम् ॥ १० ॥ योगान्तिकेति मूलं द्वे चाषाढे गतिः तस्येन्दोः । घोरा श्रवणस्त्वाष्ट्रं वसुदेवं वारुणं चैव ॥ १ ॥ पापाख्यं सावित्रं मैत्र शक्राग्निदैवतं चेति । उदयप्रवासदिवसैः स एव गतिलक्षणंप्राह ॥ १२ ॥ चत्वारिंशत्त्रिंशद् द्विसमेता विंशतिर्द्विनवकं च । नव मासार्द्धं दश चैकसंयुताः प्राकृताद्यानाम् ॥ १३ ॥ प्राकृतगत्यामारोग्यवृष्टिसस्यप्रवृद्धयःक्षेमम् । संक्षिप्तमिश्रयोर्मिश्रमे-तदन्यासु विपरीतम् ॥ १४ ॥ ऋज्व्यतिवक्रा वक्रा विकला च मतेन देवलस्यैताः । पञ्चचतुद्वर्यकाहा ऋज्व्यादीनां षडभ्यस्ताः ॥ १५ ॥ ऋज्वी हिता प्रजानामतिवक्राथं गतिर्विनाशयति । शस्त्रभयदा च वक्रा विकला भयरोगसञ्जननी ॥ १६ ॥ पौषाषाढश्रावणवैशाखेष्विन्दुजः समाघेषु । दृष्टो भयाय जगतः शुभफलकृत् प्रोषितस्तेषु ॥ १७ ॥ कार्त्तिकेऽश्वयुजि वा यदि मासे दृश्यते तनुभवः शिशिरांशोः । शस्त्रचौरहुतभुग्गदतोयक्षुद्भयानि च दा विदधाति ॥१८॥ रुद्धानि सौम्येऽस्तमिते र्राणि यान्युद्गते तान्युपयांति मोक्षम् अन्ये तु पश्चादुदिते वदन्ति लाभः पुराणां भवतीति तज्ज्ञाः ॥ १९ ॥ हेमकान्तिरथवा शुकवर्णः सस्यकेन मणिना सदृशो वा । स्निग्धमूर्तिरलघुश्च हिताय व्यत्यये न शुभकृच्छशिपुत्रः ॥२०॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां बुधचारः सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

चंद्रकुमार बुध उत्पातरहित होकर उदित नहीं होता है. बुधका उदय होनेके समय धान्यादिका मोल कमती या बढती करनेके लियेही बहुधा जल, अग्नि या आंधी आती है ॥१॥ श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी, मृगशिरा वा उत्तराषाढा नक्षत्रोंको मर्दित करके बुधके विचरनेसे रोग भय और अनावृष्टि होती है ॥२॥ आद्रासे लेकर मघातक जिस किसी नक्षत्रमें बुध होगा; उसमेंही शस्त्रपात, भूख, भय, रोग, अनावृष्टि और संतापसे पुरुषोंको पीडा होगी ॥३॥ हस्तसे लेकर ज्येष्ठातक छः नक्षत्रमें जो चंद्रका पुत्र बुध विचरण करे तो ढोरोंको पीडा. तैलादिकोंका मूल्य बढ़ता है और अनेक प्रकारके द्रव्योंसे पृथ्वी पूर्ण होती है ॥४॥ उत्तराफाल्गुनी, कृतिका, उत्तराभाद्रपदा और भरणी नक्षत्र बुधद्वारा निहत हो तो प्राणियोंकी धातुका क्षय होता है ॥५॥ यदि चंद्रमाका पुत्र बुध अश्विनी. शतभिषा मूल और रेवती नक्षत्रको भेदे तो बाजारू पदार्थ, वैद्य, नौकाजीवी, जलजपदार्थ और, घोड़ोंके लिये उपद्रव होता है ॥६॥ पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढा और पूर्वाभाद्रपदा इन तीन नक्षत्रोंमेंसे किसी नक्षत्रको भेद कर जो बुधग्रह विचरण करे तो संसारमें क्षुधा, शस्त्र तस्कर रोग और भय होता है ॥७॥ पराशर मुनिके रचे हुए ज्योतिषीय तंत्रशास्त्रमें

नक्षत्रके द्वारा बुधकी सात प्रकारकी गति कही है यथा–१ प्राकृत, २ विमिश्र, ३ संक्षिप्त, ४ तीक्ष्ण, ५ योगान्त, ६ घोर. ७ पाप ॥८॥ स्वाती, भरणी, रोहिणी और कृतिका नक्षत्रमें बुध हो तो इस गतिको प्राकृत कहते हैं, मृगशिरा, आर्द्रा, मघा और अश्लेषा नक्षत्रीय बुधकी गतिको मिश्रा कहते हैं ॥९॥ पुष्य, पुनर्वसु, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनीमें संक्षिप्ता और पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, ज्येष्ठा, अश्विनी और रेवतीमें बुधकी गतिको तीक्ष्णा कहते हैं ॥१०॥ मूल, पूर्वाषाढा व उत्तराषाढा नक्षत्रमें जो बुधकी गति होती है. उसको योगान्तिका कहते हैं और श्रवण, चित्रा, धनिष्ठा और शताभिषामें जो गति होती है उसको घोरा कहते हैं ॥११॥ जब बुध हस्त, अनुराधा या ज्येष्ठा नक्षत्रमें रहता है तब उसकी गतिका नाम पापा है, इस प्रकार पराशर मुनिने उदय के अस्तदिवसके द्वारा बुधकी गति व लक्षणोंका निरूपण किया है ॥१२॥ प्राकृतगति ४० दिन, मिश्रा ३० दिन, संक्षिप्ता २२ दिन, तीक्ष्णा १८ दिन, योगान्ता ९ दिन, घोरा १५ दिन और पापा गति ११ दिन तक रहती है ॥१३॥ बुधकी प्राकृत गतिमें आरोग्य, वृष्टि धान्यकी वृद्धि और मंगल होता है, संक्षिप्ता और मिश्रा गतिमें मिश्रफल अर्थात् न बहुत अच्छा न बहुत बुरा फल होता है और दूसरी गतियोंमें विपरीत फल होता है ॥१४॥ देवलके मतसे बुधकी गति चार प्रकारकी है, यथा–ऋज्वी, अतिवक्रा, वक्रा और विकला इन सब गतियोंका यथाक्रमसे विद्यमान काल ३० दिन, २४ दिन, १२ दिन और केवल ६ दिनतक है ॥१५॥ ऋज्वीगति प्रजाओंको हितकारी है, अतिवक्रा गति धनका नाश, करनेवाली है, वक्रगतिमें शस्त्रभय और विकलामें भय व रोग होता है ॥१६॥ पौष आषाढ, श्रावण, वैशाख वा माघमासमें जो बुध ग्रह दिखाई दे तो संसारको भय हो यदि इस समय में अस्त होवे तो शुभ होता है ॥१७॥ जो चंद्रमाका पुत्र बुध कार्तिक या आश्विन मासमें दिखाई दे तो शस्त्र, चोर, अग्नि, रोग जल और क्षुधाका भय होता है ॥१८॥ बुधके चारमें भलीभांति सब कुछ जाने हुए पंडित लोग कहते हैं कि, बुधके अस्तकालमें जो नगर रुक जाते हैं, फिर बुधके उदय होनेके समयमें वह सब नगर छूट जाते हैं, कोई कोई कहते हैं कि, पश्चिम दिशामें बुध उदय हो तो उस ओरके सब पुर लाभवाले होते हैं ॥१९॥ जब कि चंद्रमाके पुत्र बुधका रंग सुवर्णके समान या तोते पक्षीके समान अथवा सस्यकमणिके समान हो और जब बुध निर्मल मूर्ति और बडा हो तब सबकाही मंगल होता है, ऐसा न होनेपर अशुभही होता है ॥२०॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अथाष्टमोऽध्यायः

बृहस्पतिचारः

नक्षत्रेण सहोदयमुपगच्छति येन देवपतिमंत्री । तत्संज्ञं वक्तव्यं वर्षं मासक्रमेणैव ॥१॥ वर्षाणि कार्तिकादीन्याग्नेयाद्भद्वयानुयोगीनि । क्रमशस्त्रिभं तु पञ्चममुपान्त्यमन्त्यं च यद्वर्षम् ॥२॥ शकटानलोपजीवकगोपीडा व्याधिशस्त्रकोपश्च । वृद्धिस्तु रक्तपीतककुसुमानां कार्त्तिके वर्षे ॥३॥ सौम्येऽब्देऽनावृष्टिमृंगा-

खुशल्भाण्डजेश्च सस्यवधः। व्याधिभयं मित्रैरपि भूपानां जायते वैरम् ॥ ४ ॥ शुभकृज्जगतः पौषो निवृत्तवैराः परस्परं क्षितिपाः। द्वित्रिगुणो धान्यार्घः पौष्टिककर्मप्रसिद्धिश्च ॥ ५ ॥ पितृपूजापरिवृद्धिर्माघे हार्दिश्च सर्वभूतानाम्। आरोग्यवृष्टिधान्यार्घसम्पदो मित्रलाभश्च ॥ ६ ॥ फाल्गुनवर्षे विद्यात् क्वचित् क्वचित् क्षेमवृद्धिसस्यानि। दौर्भाग्यं प्रमदानां प्रबलाश्चोग्राः ॥७॥ चैत्रे मन्दा वृष्टिः प्रियमन्नं क्षेममवनिपा मृदवः। वृद्धिस्तु कोशधान्यस्य भवति पीडा च रूपवतान् ॥८॥ शाखे धर्मपरा विगतभयाः प्रमुदिताः प्रजाः सनृपाः। यज्ञ क्रिया प्रवृत्तिर्निष्पत्तिः सर्वसस्यानाम् ॥ ९ ॥ ज्येष्ठे जातिकुलाधनश्रेणीश्रेष्ठा नृपाः सधर्मज्ञाः। पीडयन्ते धान्यानि च हित्वा कंगुं शमीजातिम् ॥१०॥ आषाढे जायन्ते सस्यानि क्वचिदवृष्टिरन्यत्र। योगक्षेमं मध्यं व्यग्राश्च भवन्ति भूपालाः ॥ ११ ॥ श्रावणवर्षे क्षेमं सम्यक् सस्यानि पाकमुपयान्ति। क्षुद्रा ये पाषण्डाः पीडयन्ते ये च तद्भक्ताः ॥१२॥ भाद्रपदे वल्लीजं निष्पत्तिं याति पूर्वसस्यं च। न भवत्यपरं सस्यं क्वचित् सुभिक्षं क्वचिच्च भयम् ॥१३॥ आश्वयुजेऽब्देऽजस्रं पतति जलं प्रमुदिताः प्रजाः क्षेमम्। प्राणचयः प्राणभृतां सर्वेषामन्नबाहुल्यम् ॥१४॥ उदगारोग्यसुभिक्षक्षेमकरो वाक्पतिश्चरन् भानम्। याम्ये तद्विपरीतो मध्येन तु मध्यफलदायी ॥१५॥ विचरन् भद्वयमिष्टस्तस्तत्सार्धवत्सरेण मध्यफलः। सस्यानां विध्वंसी विचरेदधिकं यदि कदाचित् ॥१६॥ अनलभयमनलवर्णे व्याधिः पीते रणागमः श्यामे। हरिते च तस्करेभ्यः पीडा रक्ते तु शस्त्रभयम् ॥ १७ ॥ धूमाभेऽनावृष्टिस्त्रिदशगुरौ नृपवधो दिवा दृष्टे। विपुलेऽमले सुतारे रात्रौ दृष्टे प्रजाःस्वस्थाः ॥१८॥ रोहिण्योऽनलभं च वत्सरतनुर्नाभिस्त्वषाढद्वयं सार्पं हृत्पितृदैवतं च कुसुमं शुद्धैः शुभं तैः फलम्। देहे क्रूरनिपीडितेऽग्न्यनिलजं नाभ्यां भयं क्षुत्कृतं पुष्ये फमूलफलक्षयोऽथ हृदये सस्यस्य नाशो ध्रुवम् ॥ १९ ॥ ह्वतानि वर्षाणि शकेन्द्रकालाद्धतानि रुद्रैर्गुणयेच्चतुर्भिः। नवाष्टपञ्चाष्टयुतानि कृत्वा विभाजयेच्छून्यशरागरामैः ॥२०॥ फलेन युक्तं शकभूपकालं संशोध्य षष्ट्या विषयैर्विभज्य। युगानि नारायण पूर्वकाणि लब्धानि शेषाः क्रमशः समाः स्युः ॥२१॥ एकैकमब्देषु नवाहतेषु दत्त्वा पृथग्द्वादशकं क्रमेण। हृत्वा चतुर्भिर्वसुदेवताद्यान्युडूनि शेषांशकपूर्वमब्दम् ॥२ ॥ विष्णुः सुरेज्यो बलभिद्धुताशस्त्वष्टोत्तरप्रोष्ठपदाधिपश्च। क्रमाद्युगेशाः पितृविश्वसोमाः शक्रानलाख्याश्विभगाः प्रतिष्टाः ॥ २३ ॥ संवत्सरोऽग्निः परिवत्सरोऽर्क इदादिकः शीतमयूखमाली। प्रजापतिश्चाप्यनुवत्सरः शैलसुतापतिश्च ॥ २४ ॥ वृष्टिः समाद्ये प्रमुखे द्वितीये प्रभूततोया कथिता तृतीये। पश्चाज्जलं मुञ्चति यच्चतुर्थं स्वल्पोतदकं पञ्चममब्दमुक्तम् ॥ २५ ॥ चत्वारि मुख्यानि युगान्यथैवांविष्णिवन्द्रजीवानलदै-

वतानि। चत्वारि मध्यानि च मध्यमा नि चत्वारि चान्त्यान्यधमानि विद्यात् ॥२६॥ आद्यं धनिष्ठांशमभिप्रपन्नो माघे यदायात्युदयं सुरेज्यः। षष्ठ्यब्द-पूर्वः प्रभवः स नाम्ना प्रवर्त्तते भूतहितस्तदाब्दः ॥ २७ ॥ क्वचित्त्ववृष्टिः पवनाग्निकोपः सन्तीतयः श्लेष्मकृताश्च रोगाः। संवत्सरेऽस्मिन् प्रभवे प्रवृत्ते न दुःखमाप्नोति जनस्तथापि ॥२८॥ तस्माद् द्वितीयो विभवः प्रदिष्टःशुक्रस्तृतीयः-परतः प्रमोदः। प्रजापतिश्चेति यथोत्तराणि शस्तानि वर्षाणि फलानि चैषाम् ॥२९॥ निष्पन्नशालीक्षुयवादिसस्यां भयैर्विमुक्तामुपशान्तवैराम्। संहृष्टलोकां-कलिदोषमुक्तां क्षत्रं तदा शास्ति च भूतधात्रीम् ॥३०॥ आद्योऽङ्गिराः श्रीमुख-भावसाह्वौ युवाथ धातेति युगे द्वितीये। वर्षाणि पञ्चैव यथाक्रमेण त्रीण्यत्र शस्तानि समे परे द्वे ॥३१॥ त्रिष्वङ्गिराद्येषु निकामवर्षी देवो निरातंकभयाश्च लोकाः। अब्दद्वयेऽन्त्येऽपि समा सुवृष्टिः किन्त्वत्र रोगाः समरागमश्च ॥ ३२ ॥ शाक्रे युगे पूर्वमथेश्वराख्यं वर्षं द्वितीयं बहुधान्यमाहुः। प्रमाथिनं विक्रममप्यतोऽन्य दृषं च विद्याद्गुरुचारयोगात् ॥ ३३ ॥ आद्यं द्वितीयं च शुभे तु वर्षे कृतानुकारं कुरुतःप्रजानाम्। पापः प्रमाथी वृषविक्रमौ तु सुभिक्षदौ रोगभयप्रदौ च ॥३४॥ श्रेष्ठं चतुर्थस युगस्य पूर्वं यच्चित्रभानु कथयन्ति वर्षम्। मध्यं द्वितीयं तु सुभानुसंज्ञं रोगप्रदं मृत्युकरं न तच्च ॥३५॥ तारणं तदनुभूरिवारिदं सस्यवृद्धि-मुदितं च पार्थिवम्। पञ्चमं व्ययमुशन्ति शोभनं मन्मथप्रबलमुत्सवाकुलम् ॥३६॥ त्वाष्ट्रे युगे सर्वजिदाद्य उक्तः संवत्सरोऽन्यः खलु सर्वधारी। त माद्विरोधी विकृतः स्वरश्च शस्तो द्वितीयाऽत्र भयाय शेषाः ॥ ७ ॥ नंदनोऽथ विजयो ज स्तथा मन्मथोऽस्य परतश्च र्मुखः। कान्तमत्र युग आदितस्त्रयं मन्मथः समफलोऽधमोऽपरः ॥३८॥ हेमलम्ब इति सप्तमे युगे स्याद्विलम्बिपरप्रो विकारि च। शर्वरीति तदनु प्लवः वत्सरो गुरुवशेन पञ्चमः ॥ ३९ ॥ ईतिप्रायः प्रचुर-पवनाः वृष्टिरब्दे पूर्वे मन्दं सस्यं न बहुसलिलं वत्सरेऽतो द्वितीये। अत्युद्वेगः प्रचुरसलिलः स्यात्तृतीयश्चतुर्थो दुर्भिक्षाय प्लव इति ततः शोभनो भूरितोयः ॥४०॥ वैश्वे युगे क्षोभकृदित्यथाद्यः संवत्सरोऽतः शुभकृद्वितीयः। क्रोधी तृतीयः परतः क्रमेण विश्वावसुश्चेतिपराभवश्च ॥४१॥ पूर्वापरौ प्रीतिकरौ प्रजानामेषां तृतीयो बहुदोषऽब्दः। अन्त्यौ समौ किन्तु पाराभवेऽग्निः शस्त्रामयार्त्तिर्द्विजगोभयञ्च ॥४२॥ आद्यः प्लवङ्गो नवमे युगेऽब्दः स्यात्लोकीलकोऽन्यः परतश्च सौम्यः। साधारणो रोधकृदित्यथाब्दः शुभप्रदौ कीलकसौम्यसंज्ञौ ॥४३॥ कष्टः प्लवङ्गौ बहुशः प्रजानां साधारणेऽल्पं जलमीतयश्च। यः पञ्चमो रोध दित्यथाब्दश्चित्रं जलं तत्र च सस्यसम्पत् ॥४४॥ इन्द्राग्निदैवं दशमं युगं यत् तत्राद्यमब्दं परिधा-विसंज्ञम्। प्रमाद्यथानन्दमतः परं यत् स्याद्राक्षसंचानलसंज्ञितं च ॥ ४५ ॥

परिधाविनि मध्यदेशनाशो नृपहानिर्जलमल्पमग्निकोपः । अलसस्तु जनः प्रमादिसंज्ञे डमरं रक्तकपुष्पबीजनाशः ॥४६॥ त्यरः सकललोकनन्दन राक्षसः क्षयकरोऽनलस्तथा । ग्रीष्मधान्यजननोऽत्रराक्षसो वह्निकोपनरकप्रदोऽनलः ॥४७॥ एकादशे पिङ्गलकालयुक्तसिद्धर्थरौद्राः खलु दुर्मतिश्च ॥ आद्ये तु वृष्टिर्महती सचौराश्वासो हनूकम्पयुतश्च कासः ॥४८॥ यत्कालयुक्तं तदनेकदोषं तद सिद्धाश्वसंज्ञे बहवो गुणाश्च । रौद्रोऽतिरौद्रः क्षयकृत्प्रदिष्ठो या दुर्मतिर्मध्यमवृष्टिकृत्सः ॥४९॥ भाग्ये युगे दुन्दुभिसंज्ञमाद्यं सस्यस्यवृद्धिमहतीं करोति । उदगारिसंज्ञं तदनु क्षयाय नरेश्वराणां विषमा च वृष्टिः ॥५०॥ रक्ताक्षमब्दं कथितं तृतीयं यस्मिन भयं दंष्ट्रिकृतं गदाश्च । क्रोधं बहुक्रोधकरं चतुर्थं राष्ट्राणि शून्यीकुरुते विरोधः ॥५१॥ क्षयमिति युगस्वान्त्यं बहुक्षयकारकं जनयति भयं तद्विप्रणां कृषीवलवृद्धिदम् । उपचयकरं विट्छूद्राणां परस्वहृतां तथा कथितमखिलं षष्टचब्दे यत्तदत्त समासतः ॥५२॥ अकलुषांशुजटिलः पृथुमूर्त्तिः कुमुदकुन्दकुसुमस्फटिकाभः । ग्रहहतो न यदि सत्पथवर्त्ती हितकरोऽमरगुरुर्मनुजानाम् ॥५३॥ इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां बृहस्पतिचारोऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

इन्द्रके मंत्री अर्थात् बृहस्पति जिस मासके जिस नक्षत्रमें उदय होवे, उस नक्षत्रके अनुसार ही महीनेके नामकी नाई वह वर्ष कहलाता है ॥१॥ बारह मास होनेसे इस प्रकार कुल बारह वर्ष होंगे, उनमें कृत्तिका नक्षत्रसे आरंभ करके दो दो नक्षत्रोंमें कार्तिकादि वर्ष होगा, परंतु इन वारह वर्षोंके मध्यमें पञ्चम, एकादश और द्वादश वर्ष तीन २ नक्षत्रोंका होगा, जैसे कृत्तिका वा रोहिणी नक्षत्रमें बृहस्पतिका उदय होनेपर कार्तिक नामक वर्ष होगा ॥२॥ (१) कार्तिक नामक वर्ष होवे तो शकटद्वारा आजीविका करनेवाले बनजारे इत्यादि, अग्निसे आजीविका करनेवाले लोगोंको और गायढोरोंको पीडा होती है, लोगोंके ऊपर व्याधि और शस्त्रका कोप होता है, लाल और पीले रंगके फूल बढते हैं ॥३॥ (२) सौम्य नामक वर्ष हो तो अनावृष्टि होती है और मृग, चूहे, शलभ (टीडी) व पक्षी आदि अंडज जंतुओंसे नाजकी हानी होती है. मनुष्योंको व्याधिभय होता है और मित्रोंके संग भी राजाओंकी शत्रुता हो जाती है ॥४॥ (३) पौष नामक वर्षमें जगत्का शुभ होता है, राजा लोग आपसका वैरभाव छोड देते हैं धान्यका मूल्य दुगुना वा तिगुना हो जाता है और पौष्टिक कार्यकी वृद्धि होती है ॥५॥ (४) माघ नामक वर्षमें पितृलोगोंकी पूजा बढ़ती है, सब प्राणियोंका मंगल होता है, आरोग्य, सुवृष्टि, धान्यका मोल नीका, श्रेष्ठ संपत्ति और मित्रलाभ होता है ॥६॥ (५) फाल्गुन नामवाले वर्षमें किसी स्थानके बीच मंगल होता है वह नाज बढता है, स्त्रियोंका कुभाग्य, चोरोंकी प्रबलता और राजा-

ओंमें उग्रता होती है ।।७।। (६) चैत्र नामक वर्षमें साधारण वृष्टि होती है, प्रिय अन्नका शुभ होता है, राजाओंमें मीठापन, कोष और धान्यकी वृद्धि व रूपवान् आदमियोंको पीडा होती है ।।८।। (७) वैशाख नामक वर्षमें राजा प्रजा दोनोंही धर्ममें तत्पर रहते हैं, भयशून्य और हर्षित रहते हैं, यज्ञ करते हैं और समस्त धान्य भलीभांतिसे होते हैं ।।९।। (८) ज्येष्ठ नामक वर्षमें राजालोग धर्मज्ञ पुरुषोंके साथ जाति, कुल, धन और श्रेणीमें श्रेष्ठ मानकर गिने जाते हैं, और कंगनी वा शमीजातिके सिवाय सब धान्य पीडित होते हैं ।।१०।। (९) आषाढ नामक वर्षमें समस्त धान्य उपजते हैं, परंतु किसी स्थानमें अनावृष्टि होती है, योगक्षेम (अलब्ध वस्तुका लाभ और लब्धकी रक्षा) मध्यम और राजालोग अत्यन्त व्यग्र होते हैं ।।११।। (१०) श्रावण नामक वर्षमें धान्य आनंदसे पक जाते हैं, परंतु साधारण पाखण्डी आदमी और उनके भक्त मनुष्य अत्यंत पीडित होते हैं ।।१२।। (११) भाद्रपद नामक वर्षमें लताजातीय समस्त पूर्व धान्य भलीभांति पक जाते हैं, और धान्य नहीं होते और कहीं सुभिक्ष होता है और कहीं भय होता है ।।१३।। (१२) आश्वयुज अर्थात् आश्विन नामक वर्षमें अत्यंत जल गिरता है, प्रजा हर्षित होती है, प्राणियोंके प्राण मुखमें रहते हैं और सबके पास बहुतसा अन्न रहता है ।।१४।। जब बृहस्पति सब नक्षत्रोंके उत्तरमें घूमता है तब सबके लिये आरोग्य, सूवृष्टि और मंगल होता है. दक्षिण दिशामें बृहस्पति हो तो कहे हुए फलसे विपरीत फल होता है, मध्यभागमें विचरण करता हो तो मध्यम फल हुआ करता है ।।१५।। यदि बृहस्पति एक वर्षमें दो नक्षत्रोंके मध्य विचरण करे तो शुभकारक हैं, ढाई नक्षत्रमें विचरण करे तो मध्यम फल होता है और यदि संवत्सरमें तिससे अधिक नक्षत्रमें कभी विचरण करे तो धान्यका नाश होता है ।।१६।। जो बृहस्पतिका रंग अग्निके समान हो तो अग्निका भय होता है, पीतवर्ण हो तो व्याधि, श्यामवर्ण हो तो युद्ध होगा, हरा होनेसे चोरोंके द्वारा पीडा होगी, लाल होनेसे शस्त्रभय और धूमका रंग होनेसे अनावृष्टि होती है, दिनमें बृहस्पति दिखाई दे तो मनुष्योंका नाश होता है, जो सुंदर तारेके समान बडा और निर्मल रात्रिकालमें दिखाई दे तो प्रजाको सुख होता है ।।१७।।१८।। कृत्तिका और रोहिणी नक्षत्र वर्षकी देह है, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा नक्षत्र वर्षकी नाभि है, आश्लेषा हृदय और मघा नक्षत्र वर्षका कुसुम है, यह शुद्ध होवें तो शुभ फल होता है, (बृहस्पतिके अवस्थाकालमें) संवत्सरका देहनक्षत्र यदि पापग्रहसे पीडित होवें तो अग्नि और पवनसे भय होता है. नाभि नक्षत्र पीडित हो तो क्षुधाका भय होता है, पुष्य-नक्षत्रमें मूल अर्थात् मूली आदि और फलोंका क्षय होता है, और हृदयनक्षत्र पापग्रहसे पीडित हो तो निश्चय ही धान्यका नाश होता है ।।१९।। शकादित्य (शालिवाहन) राजाके समयसे जितने वर्ष बीते हैं, उनको दो स्थानोंमें रखकर एक स्थानके अंकोंको ११ संख्यासे गुणा करे, तदुपरान्त इस गुण फलको फिर चार संख्यासे गुणा करे, फिर इस गुणफलके

साथ ८५८९ को मिलावे। इस योगज फलको ३७५० से भाग देवे + फिर दूसरे स्थानके शकवर्षीय अंकोंके साथ इस भागफलको मिलावे, इस योग फलमें ६० का भाग देय (जो शेष रहे तिनसे प्रभवादि वत्सर जाने जायँगे) जो बचे उसमें ५ का भाग देना उचित है, इस भाग करनेसे जो कुछ प्राप्त हो, उस लब्धांक संख्यामें नारायण (विष्णु) आदि युग और हूए बचे अंकोंसे उस युग नुवर्ती उतनी संख्याके वर्ष चलते हैं यह जानना ॥२०॥२१॥ उक्तवत्सरोंकी संख्याको १२ से भाग करे. भागफल इस नवगुणित अंकमें मिलाकर ४ का भाग करनेपर जो लब्ध हो, उतनी संख्याके नक्षत्रमें बृहस्पतिकी विद्यमानता जानो, परंतु गणनाके समय २४ वें नक्षत्रसे गणना करे * अर्थात् १ लब्ध होनेसे

+ इस भागके लब्ध वर्ष और जो कुछ बचेगा, उसको १२ से गुण करके ३७५० का भाग देनेसे मास प्राप्त होंगे, फिर बाकीको तीससे गुणा करे, गुणफलमें पूर्वोक्त भाजक ३७५० का भाग करनेपर दिन प्राप्त होंगे फिर अवशिष्टको ६० से गुणा करनेपर यह भाजकको ३७५० से भाग करनेपर दण्ड प्राप्त होंगे और लब्धशेषको फिर ६० से गुणा करके उसमें ३७५० का भाग देनेपर पलादि प्राप्त होंगे, इस प्रकारसे जबतक निरशेष न हो जाय तबतक ६० गुणे और ३७५० भाजकसे भाग करता जाय यह सब नियमपूर्वक स्थापन करके फिर दूसरे स्थानके अंकोके साथ मिला दे।

$$\frac{(\text{शक} \times ११ \times ४) + ८५८९}{३७५०} + \text{शकः} \div ६० \text{ बार्हस्पत्यवर्षादिफल।}$$

क्रिया यथा—शक—शक—१८१३ सौरवर्षमें—

$$\frac{(१८१३ \times ११ \times ४) \times ८५८९}{३७५०} + \text{शक} \div ६० \text{ बार्हस्पत्यवर्षादिफल।}$$

१८१३×११×४=७९७७२।७९७७२+८५८९=८८३६१। ८८३६१÷३७५० = वर्षादि २३।६।२२।२९।२१।३६।१८१३+२३।६।२२।२९।२१।३६=१८३६।६।२२।२९।२१। ३६॥ १८३६। ६। २२ २६९। २१। ३६÷६०=३० (अवशिष्ट—बार्हस्पत्यवर्ष) अवशिष्ट। ३६ ६।२२।२९। २१। ३६, इसको पांचसे ाभाग करनेपर ७ (लब्धभागफल—युग) इससे जाना गया कि, प्रभवादि ६० वत्सरके ३६ नं. वर्ष गत होकर ३७ नं. वर्षके ६ मास, २२ दिन, २९ दण्ड, २१ पल, ३६ विपल बीते हैं, और पञ्च लब्धफल ७ हैं, इसमें विष्णु-आदि युगके ७ नं. युग बीतकर ८ नं. युग वर्त्तमान और यही युगके ११।६।२२।२९। २१।३६। वर्षादि बीते हैं। यह १८१३ शाकेमें वैशाखके प्रारंभका गणित है।

* $$\frac{\text{षष्टयब्द} \times ९ \times (\text{षष्टयब्द} + १२)}{४} = \text{बृहस्पतिका भोग्यमान नक्षत्र।}$$

क्रिया यथा—३६ ।६।२२।२९।२१।३६ । बार्हस्पत्य षष्टयब्दादि।

$$\frac{३६ \times ९ + (३६ \div १२)}{४} = ३६+९=३२४।३६\div १२=३।३२४+३।३२७।३२७\div ४=८१\tfrac{३}{४}$$

२७ नक्षत्रमें भचक्र होनेसे २७+८१ अवशिष्ट ३ हैं बस जाना गया कि, इस समय—

समझना पड़ेगा कि २५वां नक्षत्र अर्थात् पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र है, २ होवे तो २६वां उत्तराभाद्रपदा इत्यादि ।।२२।। प्रभवादि षष्टि संवत्सरमें सब समेत ११ युग होते हैं, बस पांच-पांच वर्षका एक एक युग होता है। इस द्वादश युगोंके यथाक्रमसे अधिपति, १ विष्णु २ सुरेज्य, ३ बलभित, ४ अग्नि, ५ त्वष्टा, ६ उत्तरप्रोष्ठपद, ७ पितृगण, ८ विश्व, ९ सोम, १० शक्रानल, ११ अश्वि और १२ भग। इन युगाधिपतियोंके नामानुसारही इन युगोंका नाम होता है, यथा नारायण, बृहस्पति, इन्द्र, अग्नि इत्यादि ।।२३।। यह युग सबके अन्तर्वर्ती पांच २ वर्षमें फिर पांच संज्ञान्तर्युक्त पांच वर्ष हैं+ यह साठ संवत्सरके अंतर्गत नहीं है) उनके नामान्तर और उनके अधिपतियोंके नाम यथा;–१ संवत्सर, २ परिवत्सर, ३ इदावत्सर, ४ अववत्सर ५ इद्वत्सर । अधिपति १ अग्नि, २ सूर्य, ३ चंद्र, ४ प्रजापति, ५ महादेव ।।२४।। यह जो संवत्सरादि पांच वर्षका वर्णन किया गया इसके प्रथम वर्षमें वृष्टि होती है, दूसरे वर्षके आरंभमें वृष्टि होती है, तीसरे वर्षमें अतिवृष्टि होती है, चतुर्थके शेषमें वृष्टि होती है, पञ्चम वर्षमें साधारण वृष्टि होती है ।।२५।। पहिले जो बारह युगका वर्णन कर आये हैं, इसके मध्यमें जो प्रथम चार युग हैं जिनके पति विष्णु, इन्द्र, बृहस्पति और अग्नि हैं यह चार युग सबसे अच्छे हैं। तिसके पीछेके अर्थात् बीचके चार युग मध्यम हैं और अंतके चार युगका मध्यम फल जानना ।।२६।। जिस, समय बृहस्पति धनिष्ठा नक्षत्रके प्रथमांशमें प्राप्त होकर माघमासमें उदित होंगे तिस कालही षष्टि संवत्सरके प्रथम प्रभवनामक वर्षका आरंभ होगा। यह वर्ष प्राणियोंका हितकारक है ।।२७।। प्रभवनामक वर्षके वर्त्तमान होनेपर यद्यपि किसी स्थानमें अनावृष्टि होती है किसी २ स्थानमें वायु वा अग्निका कोप होता है, किसी स्थानमें ईतिभय और किसी स्थानमें श्लेष्माकी पीडा होती है, तथापि इस वर्षमें प्राणियोंको विशेष दुःख नहीं होता ।।२८।। दूसरे वर्षका नाम विभव है, तीसरा शुक्ल, चौथा प्रमोद और पञ्चम वत्सरका नाम प्रजापति है। यह समस्त वर्ष उत्तरोत्तर शुभफलके देनेवाले हैं। इन वर्षोंमें राजालोग इस प्रकारसे पृथ्वीका पालन करते हैं कि, उनके शासनके गुणसे पृथ्वी धान्य, ईख और यवादि नाजकी फलनेवाली और भयशून्य शत्रुताहीन और हर्षित मनुष्योंसे युक्त हो कलियुगके दोषोंसे छूट जाती है ।।२९।।३०।। दूसरे युगमें (बृहस्पति युगमें) जो पांच वत्सर हैं उनके नाम–अंगिरा, श्रीमुख, भाव, युवा और धाता। तिनमें प्रथमके तीन वर्ष कुछ एक अच्छे हैं और दो समभाववाले हैं ।।३१।। अंगिरा आदि तीन वर्षोंमें देवतालोग भली भांति जल वर्षाते हैं और आदमी निरांतक व निर्भय होते हैं, पिछले दो वर्षमें यद्यपि कृषि समभावसे होती है परंतु रोग और समर होना है ।।३२।। बृहस्पतिके विचरणसे

–बृहस्पति २४ वें नक्षत्रमें वर्त्तमान हैं और लब्ध ८१ होकर ३ बचे थे इस कारण २४ वें नक्षत्रके तीसरे पादमें उत्तीर्ण होकर चौथे चरणमें वर्त्तमान हैं यह स्थूल है, कभी २ विस्तारभयसे यहां नहीं लिखा। ।

+ वराहमिहिरके मतसे युगारम्भसेही यह वत्सरारम्भ होता है. प्रसिद्ध स्मार्त रघुनन्दनभट्टाचार्यके मतसे वैशाखमासके प्रारंम्भसे ही यह वर्ष आरंभ होता है. उनके मतसे इन वर्षोंमें तिलादिका दान करना चाहिये, "सवत्सरे तथा दान" इत्यादि मलमासतत्त्व बल्लालसेन प्रणीत दानसागर ग्रंथका भी यही मत है।।

ऐन्द्रनामक जो तीसरा युग होता है उसके प्रथम वर्षका नाम १ ईश्वर २ बहुधान, ३ प्रमाथी, ४ विक्रम और पांचवेंका नाम वृष है ।।३३।। इसमें पहला और दूसरा वर्ष शुभदायी है, वरन प्रजाके लोगोंको तो मानो सतयुगही हो जाता है। प्रमाथी वर्ष अत्यन्त पापदायक है। विक्रम और वृष नामक दो वर्ष सुभिक्षदायक तो हैं परंतु रोग और भयके करनेवाले हैं ।।३४।। चतुर्थ (हुताश नामक) युगका प्रथम वर्ष जिसका नाम चित्रभानु है, अत्युत्तम फलको देनेवाला है। दूसरा वर्ष सुभानु मध्यमफली है अर्थात् रोगदायी है। परंतु मृत्युदायक नहीं है। पांचवें वर्षका नाम तारण है (किसी किसीके मतसे दारुण) इसमें अत्यंत वृष्टि होती है। चौथे वर्षका नाम पार्थिव है, इसमें धान्य बढनेसे हर्ष होता है। पांचवें वर्षका नाम व्यय है, इस वर्षमें प्राणियोंको काम उद्दीप्त होता है, वह उत्सव-युक्त होकर शोभायमान होते हैं ।।३५।। ।।३६।। त्वाष्ट्र नामक पञ्चम युगके प्रथम वर्षका नाम सर्वजित् २ सर्वधारी, ३ विरोधी, ४ विकृत, ५ खर इन पांच वर्षोंमें दूसरा वर्ष मंगलकारी है और शेष भयके कारण हैं ।।३७।। प्रोष्ठप्रद नामक छठे युगमें प्रथम वर्षका नाम नन्दन है, २ विजय, ३ जय, ४ मन्मथ और पांचवां दुर्मुख है। इन पांच वर्षोंमें प्रथमसे लेकर तीन मनोहर हैं, मन्मथ वत्सर समफली और पञ्चम वत्सर अत्यंत अधम हैं ।।३८।। बृहस्पतिकी गतिके वशसे सप्तम (पितृ) युगका प्रथम वर्ष हेमलम्ब, २ विलम्बी, ३ विकारी ४ शर्वरी, ५ प्लव है। इसके प्रथम वर्षमें ईतिभय और झंझा-वायुका भय होता है, झंझावायुके साथमें पानीभी वर्षता है तदुपरान्त दूसरे वर्षमें धान्य और वृष्टिकी अल्पता होती है। तीसरे वर्षमें अत्यन्त घबड़ाहट और अत्यन्त वर्षा होती है. चौथे वर्षमें दुर्भिक्षका भय और प्लव वर्षमें अत्यन्त सुवृष्टि व शुभ होता है ।।३९।। ।।४०।। वैश्व युगमें प्रथम वर्षका नाम क्षोभकृत् २ शुभकृत् ३ क्रोधी, ४ विश्वावसु, ५ पराभव इसका प्रथम और दूसरा वर्ष प्रजाओंको प्रसन्न करनेवाला, है,. तीसरा वर्ष बहुत दोषोंका देनेवाला है और शेष दो संवत्सर समफली है, परंतु पराभव वर्षमें अग्नि, शस्त्र, रोग पीडा और गौ ब्राह्मणोंको पीडा होती है ।।४१।।४२।। नवम (सौम्य) युगमें प्रथम वर्षका नाम प्लवंग, २ कीलक. ३ सौम्य, ४ साधारण, पञ्चम रोधकृत् है. तिसमें कीलक और सौम्य वत्सर अत्यंत शुभदाई हैं ।।४३।। प्लवंग वर्षमें प्रजाओंको अत्यन्त कष्ट होता है. साधारण वत्सरमें साधारण वृष्टि और ईतिभय होता है ! और पञ्चम वर्ष जिसका नाम रोधकृत् है, इसमें सुंदर वृष्टि और धान्यकी सम्पत्ति होती है ।।४४।। शक्राग्निदैवत जो दशम युग हैं, तिसके प्रथम वर्षका नाम परिधावी, दूसरा प्रमादी, ३ आनंद, ४ राक्षस. ५ अनल है, तिसमें परिधावी नामक वत्सरमें मध्यदेशका नाश, राजाकी हानि, साधारण वृष्टि और अग्निका भय होता है, प्रमादी वर्षमें लोग अत्यन्त आलसी होते हैं. उलट पुलट होता है. लालवर्णके फूलोंके बीजका नाश हो जाता है, आनंदवर्ष आनंदका देनेवाला और राक्षस वा अनल वत्सरमें क्षय होती है, परंतु विशेषता यह है कि राक्षस वर्षमें ग्रीष्मकालके धान्य उत्पन्न होते हैं, और अनलवर्ष अग्नि कोपका दाता और नरकदाई है ।।४५।। ४६।।४७।। एकादश (अश्वि) युगमें १ पिंगल, २ कालयुक्त, ३ सिद्धार्थ, ४ रौद्र, ५ दुर्मति ये पांचवर्ष होते हैं, इनमेंसे पहिले वर्षमें अत्यन्त वर्षा, चोरभय, श्वास और ठोडीको कम्पायमान करनेवाली खांसी होती है। कालयुक्त वर्ष अत्यन्त दोषकारी है। सिद्धार्थवर्षमें अनेक गुण होते हैं। रौद्रवर्ष अत्यंत रौद्र और क्षयकारी है। और दुर्मतिवर्ष

मध्यम वृष्टिका करनेवाला है ।।४८।।४९।। भगाधिदैवत बारहवें युगमें प्रथम वर्षका नाम दुंदुभि है, यह धान्यका अत्यन्त बढानेवाला है। तदुपरान्त दूसरा उद्गारी नामक वर्ष (दूसरे मतसे रुधिरोद्गारी) राजाका क्षय और असमान वृष्टि होती है। तीसरे वर्षका नाम रक्ताक्ष है, इस वर्षमें डसनेका भय और रोग होता है। चौथे अब्दका नाम क्रोध है। यह क्रोधकारी है और झगडे कराकर जनपदोंको शून्य कर देता है। इस बारहवें युगके पिछले वर्षका नाम क्षय है, यह क्षयकारक है, ब्राह्मणोंको भयदायी, खेतीके बलको बढानेवाले, पराये धनके हरनेवाले, वैश्य और शूद्रोंकी वृद्धि करता है. इस प्रकार संक्षेपसे साठ संवत्सर का समस्त फल कहा गया ।।५०।।५१।।५२।। देवताओंके गुरु बृहस्पतिजी जो निर्मल किरणवाले हों, स्थूलमूर्ति, कुमुद, कुन्दपुष्प, वा बिल्लौरे पत्थरके समान कांतिवाले हों किसी ग्रहसे भेदित न होकर श्रेष्ठ मार्गमें चलते हों तो मनुष्योंको हितकारी होते हैं ।।५३।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां वृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायामष्टोऽध्यायः ।।८।।

अथ नवमोऽध्यायः

शुक्रचारः

नागगजैरावतवृषगोजरद्गवमृगाजदहनाख्याः । अश्विन्याद्याः कैश्चित् त्रभाःक्रमाद्वियः कथिताः ।। १ ।। नागा तु पवनयाम्यानलानि पैतामहात्त्रिभात्तिस्रः । गोवीथ्यामश्विन्यः पौष्णं द्वे चापि भद्रपदे ।। २ ।। जारद्गव्यां श्रवणात्त्रिभं च मैत्राद्यम् । हस्तविशाखात्वाष्ट्राण्येजेत्यषाढाद्वयं दहना ।। ३ ।। तिस्रस्तिस्रस्तासां क्रमादुदङमध्ययाम्यमार्गस्थाः । तासामप्युत्तरमध्यदक्षिणावस्थितैकैका ।।४।। वीथीमार्गानपरे कथयन्ति यथा स्थिता भमार्गस्य । नक्षत्राणां तारा यम्योत्तरमध्यमास्तद्वत् ।।५।। उत्तरमार्गो याम्यादि निगदितो मध्यमस्तु भाग्याद्यः । दक्षिणमार्गोऽषाढादि कैश्चिदेवं कृता मार्गाः ।। ६ ।। ज्योतिषमागमशास्त्रं विप्रतिपत्तौ न योग्यस्माकम् । स्वयमेव विकल्पयितुं किन्तु बहूनां मतं वक्ष्ये ।।७।। उत्त (उत्तरवीथिषु शुक्रः सुभक्षशिवकृद्गतोऽस्तमुदयं वा मध्यासु मध्यफलदः कष्ट दक्षिणस्थासु ।।८।। अत्युत्तमोत्तमोनं सममध्यन्यूनमधमकष्टफलम् । कष्टतमं सौम्याद्यासु वीथिषु यथाक्रमं ब्रूयात् ।।९।। भरणी पूर्वं मण्डलमृक्षचतुष्कं सुभिक्षकरमाद्यम् । वङ्गाङ्गहिषबाह्लिककलिङ्गदेशेषु भयजननम् ।।१०।। अत्रोदतमारोहेद्ग्रहोऽपरो यदि सितं ततो हन्यात् । भद्राश्वशूरसेनकयौधेयककोटिवर्षनृपान् ।।११।। भचतुष्टयमार्द्राद्यं द्वितीयममिताम्बुसस्यसम्पत्त्यै । विप्राणामशुभकरं विशेषतः क्रूरचेष्टानाम् ।।१२।। अन्येनात्राक्रान्ते म्लेच्छाटविकाश्वजीविगोमन्तात् । गोनर्दनीचशूद्रान् वैदेहांश्चानयः स्पृशति ।।१३।। विचरन् मघादिपञ्चकमुदितः सस्यप्रणाशकृच्छुक्रः । क्षुत्तस्करभयजननो नीचोन्नतिसंकरकरश्च ।।१४।। पित्र्याद्येऽवष्टब्धो हन्त्यन्ये नाविकाञ्छब-

रशूद्रान्। पुण्ड्रापरान्त्यशूलिकवनवासिद्रविडसामुद्रान् ॥१५॥ स्वात्याद्यं भत्रितयं मण्डलमेतच्चतुर्थमभयकरम्। ब्रह्मक्षत्रसुभिक्षाभिवृद्धये मित्रभेदाय ॥१६॥ अत्राक्रान्ते मृत्युः किरातभर्तुः पिनष्टि चेक्ष्वाकून्। प्रत्यन्तावन्तिपुलिन्दतङ्गणाञ्छूरसेनांश्च ॥१७॥ ज्येष्ठाद्यं पञ्चर्क्षं क्षुतस्कररोगदं प्रबाधयते। काश्मीराश्मककत्स्यान् सचारुदेवीमवन्तींश्च ॥१८॥ आरोहेऽत्राभीरान् द्रविडाम्बष्ठत्रिगर्तसौराष्ट्रान्। नाशयति सिन्धुसौवीरकांश्च काशीश्वरस्य वधः ॥१९॥ षष्ठं षण्नक्षत्रं शुभमेतन्मण्डलं धनिष्ठाद्यम्। भूरिधनगोकुलाकुलमनल्पधान्यं क्वचित् सभयम् ॥२०॥ अत्रारोहे शूलिकगान्धारावन्तयः प्रपीडयन्ते। वैदेहवधः प्रत्यन्तयवनशकदास परिवृद्धिः ॥ २१ ॥ अपरस्यां स्वात्याद्यं ज्येष्ठाद्यं चापि मण्डलं शुभदम्। पित्र्याद्यं पूर्वस्यां शेषाणि यथोक्तफलदानि ॥२२॥ दृष्टोऽनस्तगतेऽर्के भयकृत् क्षुद्ररोगकृत् समस्तमहः। अर्धदिवसं च सेन्दुर्नृपबलपुरभेदकृच्छुक्रः ॥२३॥ भिन्दन् गतोऽनलर्क्षं कूलातिक्रान्तवारिवाहाभिः। अव्यक्ततुङ्गनिम्ना समा सरिद्भिर्भवति धात्री ॥२४॥ प्राजापत्ये शकटे भिन्नेकृत्वेव पातकं वसुधा। केशास्थिशकलबला कापालमिवव्रतं धत्ते ॥ २५ ॥ सौम्योपगतो रसस्यङ्क्षयायोशना समुद्दिष्टः। आर्द्रागतस्तु कोशलकलिङ्गहा सलिलनिकरकरः ॥२६॥ अश्मकवैदर्भाणां पुनर्वसुस्थे सिते महाननयः। पुष्ये पुष्टा वृष्टिर्विद्याधरगणविमर्दश्च ॥२७॥ आश्लेषासु भुजङ्गमदारुणपीडावहश्वरञ्छुकः। भिन्दन् मघां महामात्रदोषकृद्भूरिवृष्टिकरः ॥२८॥ भाग्ये शबरपुलिन्दप्रध्वंसकरोऽम्बुनिवहमोक्षाय। आयम्णे कुरुजाङ्गलपाञ्चालघ्नः सलिलदायी ॥२९॥ कौरवचित्रकराणां हस्ते पीडाजलस्य च निरोधः। कूपकृदण्डजपीडा चित्रास्थे शोभना वृष्टिः ॥ ३० ॥ स्वातौ प्रभूतवृष्टिर्दूतवणिगूनाविकान् स्पृशत्यनथः। ऐन्द्राग्नेऽपि सुवृष्टिर्वणिजां च भयंविजानीयात् ॥ ३१ ॥ मैत्रे क्षत्रविरोधो ज्येष्ठायां क्षत्रमुख्यसन्तापः। मौलिकभिषजां मूले त्रिष्वपि चैतेष्वनावृष्टिः ॥ ३२ ॥ आप्ये सलिलजपीडा विश्वेशे व्याधयः प्रकुप्यन्ति। श्रवणे श्रवणव्याधिः पाषण्डिभयं धनिष्ठासु ॥ ३३ ॥ शतभिषजि शौण्डिकानामजैकपे द्यूतजीविनां पीडा। कुरुपाञ्चालानामपि करोति चास्मिन् सितः सलिलम् ॥ ३४ ॥ अहिर्बुध्न्ये फलमूलतापकृद्यायिनां च रेवत्याम्। अश्विन्यां हयपानां याम्ये तु किरातयवनानाम् ॥ ३५ ॥ चतुर्दशे पञ्चदशे तथाष्टमे तमिस्रपक्षस्य तिथौ भृगोः सुतः। यदा व्रजेद्दर्शनमस्तमेति वा तदा मही वारिमयीव लक्ष्यते ॥ ३६ ॥ गुरुर्भृगुश्चापरपूर्वकाष्ठयोः परस्परं सप्तमराशिगौ यदा। तदा प्रजा रुग्भयशोकपीडिता न वारि पश्यन्ति पुरन्दरोज्झितम् ॥ ३७ ॥ यदास्थिता जीवबुधारसूर्यजाः सितस्य सर्वेऽग्रपथानुवर्तिनः। नृनागविद्याधरसङ्गरास्तदा भवन्ति वाताश्च समु-

च्छ्रुतान्तकाः ।। ३८ ।। न मित्रभावे सुहृदो व्यवस्थिताः क्रियासु सम्यङ् न रता द्विजातयः न चाल्पमप्यम्बु ददाति वासवो भिनत्ति वज्रेण शिरांसि भूभृताम् ।। ३९ ।। शनैश्चरे म्लेच्छबिडालकुञ्जराःखरा महिष्योऽसितधान्यशूकराः । पुलिन्दशूद्राश्च सदक्षिणापथाः क्षयं व्रजन्त्यक्षिमरुद्गदोद्भवैः ।। ४० ।। निहन्ति शुक्रःक्षितिजेऽग्रतःप्रजा हुताशशस्त्रक्षुदवृष्टितस्करैः चराचरं व्यक्तमथोरापंथं दिशोऽग्निविद्युद्रजसा च पीडयेत् ।। ४१ ।। बृहस्पतौ हन्ति पुरःस्थिते सितः सितं समस्तं द्विजगोसुरालयान् । दिशं च पूर्वां करकासृजोऽम्बुदा गले गदा भूरि भवेच्च शारदम् ।। ४२ ।। सौम्योऽस्तोदययोः पुरो भृगुसुतस्यावस्थिततत्तोयकृद् रोगान् पित्तजकामलां च कुरुते पुष्णाति च ग्रैष्मिकम् । हन्यात् प्रव्रजिताग्निहोत्रिक-भिषग्रङ्गोपजीव्यान् हयान् वैश्यान् गाः सह वाहनैर्नरपतीन् पीतानि पश्चाद्दिशम् ।।४३।। शिखिभयमनलाभे शस्त्रकोपश्च रक्ते कनकनिकषगौरे व्याधयो दैत्यपूज्ये । हरितकपिलरूपे श्वासकासप्रकोपः पतति न सलिलं खाद्भस्मरूक्षामिताभे ।। ४४ ।। दधिकुमुदशशांककान्तिभृत् स्फुटविकसत्किरणो बृहत्तनुः ।। सुगतिरविकृतो जया-न्वितः कृतयुगरूपकरः सिताह्वयः ।। ४५ ।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां शुक्रचारो नवमोऽध्यायः ।। ९ ।।

कोई कोई पंडित कहते हैं कि अश्विनी आदि तीन तीन नक्षत्रोंमें एक एक [1]वीथि होती है. यह वीथिमें नौ भागोंमें बांटी गई है, यथा–१ नाग, २ गज, ३ ऐरावत, ४ वृषभ, ५ गौ, ६ जरद्गव, ७ मृग, ८ अज और ९ दहन है ।।१।। किसीके मतसे स्वाती, भरणी और कृतिका नक्षत्रमें नागवीथि होती है. गज, ऐरावत और वृषभ नामक जो तीन वीथि हैं, यह रोहिणीसे उत्तराफाल्गुनी तक तीन तीन नक्षत्रमें हुआ करती हैं और अश्विनी, रेवती, पूर्वाभाद्रपदा और उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रमें गोवीथि हुआ करती है ।।२।। श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा नक्षत्रमें जारद्गवी वीथि होती है, अनुराधा, ज्येष्ठा और मूल नक्षत्रमें मृगवीथि होती है; हस्त, विशाखा और चित्रा नक्षत्रमें अजवीथि और पूर्वाषाढा व उत्तराषाढा नक्षत्रमें दहना वीथि हुआ करती है ।।३।। इस प्रकार सताईस [2]नक्षत्रमें नौ वीथि होनेपर प्रत्येक वीथिही तीन वार होती है; इस कारण इन सब वीथियोंमें तीन तीन वीथि सूर्यमार्गके उत्तर, मध्य और दक्षिण मार्गमें विराजमान हैं, फिर उनमें एक एक यथाक्रमसे उत्तर, मध्य और दक्षिणपथमें विराजमान हैं, जैसे तीन नागवीथि हैं, तिनमें उत्तरमार्गस्था, दूसरी मध्यस्था और तीसरी दक्षिणमार्गमें स्थित है ।।४।। कोई कोई महात्मा कहते हैं कि सब नक्षत्रोंके नक्षत्र मार्गवर्ती योग तारागण उत्तर, मध्य और दक्षिणभागमें जैसे विराजमान हैं, समस्त वीथिमार्ग भी वैसेही विराजमान हैं ।।५।। किसी किसी पंडितके मतसे भरणीसे उत्तरमार्ग, पूर्वाफाल्गुनीसे मध्यममार्ग और पूर्वाषाढासे

---

१ गतिके अनुसार पन्थविशेषका नाम वीथि है ।

२ किस नक्षत्रमें कितने योगतारे हैं सो नक्षत्रगुणाध्यायमें कहेंगे ।

दक्षिणमार्गका आरंभ होता है ॥६॥ ज्योतिष आगमशास्त्र अर्थात् संदेहपूर्वक किसी बातकी मीमांसा करना मेरी (मुझ सरीखे आदमीके) सामर्थ्यसे बाहर है, इस कारण (ऋषिलोगोंमें किसीके मतको दोष देकर या किसीके मतकी पोषकता न करके) बहुतोंके मतको प्रकट करूँगा ॥७॥ जिस समय शुक्राचार्य उत्तरवीथिमें विराजमान होकर उदय या अस्त होंगे, तबही सूभिक्ष या मंगल होगा, मध्यवीथिमें होनेसे मध्यम फल और दक्षिणवीथिमें होनेसे कष्टकारी फल होता है ॥८॥ आर्द्रा नक्षत्रसे आरंभ करके मृगशिरातक जो नौ वीथियें हैं तिनमें शुक्रका उदय या अस्त होनेसे यथा क्रमसे अत्युतम, उत्तम, ऊन. सम, मध्य, न्यून, अधम, कष्ट और कष्टतम फल उत्पन्न होता है ॥९॥ भरणीसे लेकर चार नक्षत्रमें जो मंडल अर्थात् वीथि हो उसकी प्रथम वीथिमें शुक्रका उदय या अस्त होनेसे सुभिक्ष होता है, परंतु अंग, वंग, महिष बाह्लिक और कलिंग देशमें भय होता है ॥१०॥ इस प्रथम मण्डलमें उदित शुक्राचार्यके ऊपर जो कोई ग्रह हो तो भद्राश्च, शूरसेनक, यौधेयक और कोटिवर्ष देशके राजाका नाश होता है ॥११॥ आर्द्रासे लेकर जो चार नक्षत्र हैं उनको दूसरा मंडल कहते हैं. (इनमें शुक्रका उदय या अस्त होनेसे) इससे बहुतसा जल वर्षता है और यह धान्य संपत्तिका निमित्त है. परंतु ब्राह्मणोंको अशुभ होता है, विशेष करके जो लोग क्रूर चेष्टावाले हैं उनकी विशेष हानि है ॥१२॥ दूसरे मंडलवाले शुक्र को यदि कोई आक्रमण करे तो म्लेच्छ, आटविका, अश्वजीवी अर्थात् बनजारे इत्यादि, गोमन्त (कुत्तोंसे आजीविका रखनेवाले), बहुतसी गायें रखनेवाले नीच शूद्र और विदेह-देशके रहनेवालोंको अनीति स्पर्श करती है ॥१३॥ मघासे लेकर चित्रातक पांच नक्षत्रमें घूमते २ यदि शुक्राचार्य उदय होवें तो समस्त धान्यका नाश होता है. क्षुधाभय और चोर भय होता है. नीचोंकी उन्नति और वर्णसंकरजातिकी उत्पत्ति होती है ॥१४॥ इन मघादि तीसरे मंडलके दैत्यगुरु यदि और किसी ग्रहसे रुक जाय तो पेडोंके समूह शबर, शूद्र, पुण्ड्र, पश्चिमकी सीमाका अन्न, शूलिक, वनवासी, द्रविड, समुद्रके पुरुषोंका नाश हो जाता है ॥१५॥ स्वाती, विशाखा और अनुराधा नक्षत्रमें चौथा मण्डल होता है. इसमें शुक्राचार्यके प्रयाण करनेसे अभय होता है, ब्राह्मण और क्षत्री जातिके लिये सुभिक्ष होता है, परंतु मित्रोंमें परस्पर भेद हो जाता है ॥१६॥ यह चौथा मंडल आक्रांत हो जाय तो किरातराजाकी मृत्यु होती है और इक्ष्वाकुवंशवाले और प्रत्यन्त वा अवन्तिदेशके रहने वाले, पुलिन्द, तंगण और शूरसेनवासी लोग पोषित होते हैं ॥१७॥ ज्येष्ठासे लेकर श्रवणतक जो पांच नक्षत्र हैं तिनमें पांचवां मण्डल है, इसमें क्षुधा, चोर, और रोगकी बाधा होती है, जो भृगुके पुत्र इसमें आरोहण करें तो काश्मीर, अश्मक, मत्स्य, चारुदेवी और अवन्तीदेशके रहनेवाले मनुष्य, आभीरजाति, द्रविड, अम्बष्ठ, त्रिगर्त्त, सौराष्ट्र, सिन्धु और सौवीर देशके पुरुष और काश्मीरके राजाका विनाश होता है ॥१८॥१९॥ धनिष्ठासे लेकर अश्विनीतक जो छः नक्षत्र हैं उनको छठा मंडल कहते हैं, ये शुभकारक हैं. इसमें समस्त लोग बहुतसे धन धान्य और गायढोरोंसे युक्त होकर अत्यंत सुखी होते हैं परंतु कोई स्थान सभय होता है, इसमें शुक्रका आरोहण होनेपर शूलिक, गांधार और अवन्तीके रहनेवाले लोग पीडित होते हैं; विदेह नरपतिका नाश और प्रत्यन्तदेशके यवन, शक और दासलोगोंकी वृद्धि होती है ॥२०॥२१॥ जिन छः मण्डलोंका वर्णन किया गया उनमें स्वाती नक्षत्रादि और ज्येष्ठानक्षत्रादि जो दो मण्डल होते हैं, यह दोनों मण्डल

पश्चिमदिशामें होनेसे शुभकारक हैं और मघानक्षत्रादि जो एक मण्डल है वह पूर्व दिशाम होनेपर अत्यंत शुभदायी हैं। शेष मण्डल यथोक्त फलके देनेवाले हैं ॥२२॥ सूर्य अस्त होनेके पहिले शुक्रके दृष्टि आनेसे भय होता है, सारे दिन दिखाई देनेसे क्षुधा और रोग होता है आधे दिन दिखाई देनेसे वा चंद्रमाके साथ दिखाई देनेसे राजा लोगोंका, सेनाका और नगरका भेद होता है ॥२३॥ कृत्तिकानक्षत्र भेदकरके शुक्राचार्य गमन करें तो कुलातिक्रांत जलराशिवाहिनी नदियोंके द्वारा पृथ्वीके ऊंचे नीचे स्थान अप्रकाशित होकर समान हो जाते हैं अर्थात् बडी भारी बाढ आती है ॥२४॥ शुक्रसे रोहिणी नक्षत्र वा शंकट[1] भिन्न हो (पापी लोग जिस प्रकार पापका प्रायश्चित्त करनेके लिये कापालिक व्रत धारण करते हैं तैसेही) तो पृथ्वी केश और अस्थियोंके टुकडोंसे अनेक रंगोंको धारण करके मानो पाप करनेके उपरांत कपाल व्रत धारण करती अर्थात् अत्यंत मरी पडती है ॥२५॥ उतना मृगशिरा नक्षत्रमें आवे तो जल और धान्यका नाश हो। आर्द्रा नक्षत्रमें गमन करे तो कौशल और कलिंग देशका नाश होता है। परंतु वृष्टि बहुत होती है ॥२६॥ पुनर्वसु नक्षत्रमें शुक्राचार्यके गमन करने पर अश्मक और विदर्भ देशके रहनेवाले मनुष्योंमें अत्यन्त अनीति आती है। पुष्य नक्षत्रमें गमन करनेपर अनेक वृष्टि होती है परंतु विद्याधरोंमें विमर्द हुआ करता है ॥२७॥ आश्लेषा नक्षत्रमें सूर्यके गमन करनेसे सर्पभय और अत्यन्त पीडा होती है। मघानक्षत्र भेद करनेपर हस्तिपक लोगोंसे दुष्ट करता है और अत्यन्त वृष्टि होती है ॥२८॥ पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र शुक्रसे भिन्न हो तो शबर पुलिन्दगण नाशको प्राप्त होते हैं। वृष्टि बहुत होती है, उत्तराफाल्गुनी भिन्न हो तो वर्षा होती है और कुरुजांगल व पांचालदेशका नाश हो जाता है ॥२९॥ यदि हस्त नक्षत्र शुक्रसे भिन्न हो तो कौरव और चित्रकारोंको पीड़ा होती है., जल नहीं वर्षता। चित्रा नक्षत्र शुक्रसे भिन्न हो तो कूपकारक और अण्डजोंको पीडा होती है; वृष्टि शोभती हुई होती है ॥३०॥ स्वाती नक्षत्रमें शुक्र आवे तो वर्षा हो और दूत, वणिक् और नाविक लोगोंको अत्यन्त अनीति स्पर्श करे। विशाखामें शुक्र हो तो सूवृष्टि और बनियोंको भय होता है ॥३१॥ अनुराधामें क्षत्रीवध, ज्येष्ठामें प्रधान क्षत्रियोंको संताप, मूलमें प्रधान वैद्योंको पीडा होती है, और जितने दिनतक इन तीन नक्षत्रोंमें शुक्र रहता है तबतक अनावृष्टि होती है ॥३२॥ जो पूर्वाषाढा नक्षत्रमें शुक्र गमन करे तो जलसे उत्पन्न हुए जीवोंको पीडा होती है, उत्तराषाढामें व्याधि, श्रवणमें कर्णपीडा और धनिष्ठामें पाखण्डियोंको भय होता है, ॥३३॥ शतभिषा नक्षत्रमें शुक्रका गमन हो तो कलवार लोगोंको पीडा होती है, पूर्वाभाद्रपदामें ज्वारियोंको, कुरुपांचालोंको पीडा और वृष्टि होती है ॥३४॥ उत्तराभाद्रपदामें फल और मूल, रेवतीमें पदातिक, अश्विनीमें अश्वपालक और भरणीमें किरात व यवन लोगोंको ताप होता है ॥३५॥ कृष्णपक्षकी चतुर्दशी पञ्चदशी वा अष्टमी तिथिमें जो शुक्रका उदय या अस्त हो तो पृथ्वीपर बहुतही जल वर्षता है ॥३६॥ यदि गुरु और शुक्र पूर्व पश्चिममें परस्परसा तवीं राशिमें गति हो तो रोग और भयसे प्रजागण अत्यन्त पीडित होती है, वृष्टि नहीं होती है ॥३७॥ बृहस्पति, बुध, मंगल और

---

१ "वृषे सप्तदशे भागे यस्य याम्योऽशकद्वयात्। विज्ञेयोऽभ्यधिको भिन्द्याद् रोहिण्याः शकटं तु सः। सूर्यसिद्धांते नक्षत्रग्रहयुत्यधिकारे ॥

शनि यह सब ग्रह यदि शुक्रके आगेके मार्गमें चलें तो मनुष्य, नाग और विद्याधरोंमें युद्ध होता है, और वायुसे विनाश होता है, बंधु लोग परस्पर मित्रभाव नहीं रखते, द्विजाति लोग अपनी क्रियाको छोड देते हैं, इंद्रसाधारण जलभी नहीं वर्षता वरन वज्र गिराकर पर्वतोंके मस्तक फोड देता है ॥३८॥३९॥ जब शनैश्चर शुक्रके आगे चले तो म्लेच्छ-जाति, बिलावजाति हाथी, गधा, भैंस, काले धान, शूकर, पुलिन्द जाति, शूद्रगण और दक्षिणदेश नेत्र और वायुसे उत्पन्न हुए रोगोंसे नाशको प्राप्त हो जाते हैं ॥४०॥ यदि शुक्रके आगे मंगल गमन करता हो तो अग्नि, शस्त्र क्षुधा, अवृष्टि और तस्करोंसे समस्त प्रजाको पीडा होती है, उत्तरदिशा नाशको प्राप्त हो जाती है, और अग्नि, बिजली और धूरिसे सब दिशा पीडित होती हैं ॥४१॥ शुक्रके आगे मार्गमें जो बृहस्पतिका गमन हो सो समस्त मधुर पदार्थ, ब्राह्मण, ढोर, देवताओंके स्थान और पूर्वदिशा नाशको प्राप्त हो जाती है, मेघ ओले बरसाते हैं, सब लोगोंके गलेमें पीडा होती है और शारदीय समस्त धान्य उत्पन्न होते हैं ॥४२॥ शुक्रके उदय या अस्तकालमें शुक्रके आगेके मार्गमें जब बुध रहता है तब वर्षा और रोग होते हैं, परंतु तिसमें पित्तसे उत्पन्न हुए रोग तथा कामला रोग अधिक होता है, ग्रीष्म ऋतुमें उत्पन्न होनेवाले सब द्रव्य अधिकाईसे उत्पन्न होते हैं, संन्यासी, अग्निहोत्री, वैद्य नृत्यसे आजिविका करनेवाले, अश्व, वैश्व, गौ वाहनोंके साथ राजा, पीले वर्णके पदार्थोंका और पश्चिम दिशाका नाश हो जाता है ॥४३॥ जिस समय अग्निके समान शुक्रका वर्ण हो तब अग्निभय, रक्तवर्ण हो तो शस्त्रकोप और कसौटीपर घिसे हुए सुवर्णकी रेखाकी नांई गौरवर्ण हो तो व्याधि होती है, यदि शुक्र हरित और कपिलवर्ण हो तो दमा और खांसीका रोग होता है, और भस्मके समान रूखा या काला रंग हो तो आकाशसे वर्षा नहीं होती है ॥४४॥ दैत्योंके गुरु शुक्राचार्य जब दही, कुमुद या चंद्रमाके समान कांतिवाले हों, कांति स्वच्छरूपसे झलकनी हो किरणें फैली हुई हों उत्तम गतिवाला, विकाररहित और जययुक्त हो तो सब प्राणियोंके लिये मानो सतयुगही आ जाता है ॥४५॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां नवमोऽध्यायः ॥९॥

अथ दशमोऽध्यायः

शनैश्चरचारः

श्रवणानिलहस्तार्द्रा भरणी भाग्योपगः सुतोऽर्कस्या । प्रचुरसलिलोपगूढां करोति धात्रीं यदि स्निग्धः ॥ १ ॥ अहिवरुणपुरन्दरदैवतेषु सुक्षेमकृन्न चतिजलम् । क्षुच्छस्त्रावृष्टिकरो मूले प्रत्येकमपिवक्ष्ये ॥ २ ॥ तुरगतुरगोपचारककविवैद्यामात्यहार्कजोऽश्विगतः । याम्ये नर्त्तकवादकगेयज्ञक्षुद्रनौकृतिकान् ॥३॥ बहुलास्थे पीडयन्त सौरेऽन्युपजीविनश्चमूपाश्चारोहिण्यां कोशलमद्रकाशिपांचाल शाकटिकाः ॥ ४ ॥ मृगशिरसि वत्सयाजकयजमानार्यजनमध्यदेशाश्च । रौद्रस्थे पारतरामठतैलिकरजकचौराश्च ॥ ५ ॥ आदित्ये पञ्चनदप्रत्यन्तसुराष्ट्रसिन्धुसौवीराः । पुष्ये घाण्टि-

कधोषिकयवनवणिक्किकतवकुसुमानि ।। ६ ।। सार्पे जलरुहसर्पाः पित्र्ये बाह्लीकचीनगान्धाराः । शूलिकपारतवैश्याः कोष्ठागाराणि वणिजश्च ।। ७ ।। भाग्ये रसविक्रयिणः पण्यास्त्री कन्यका महाराष्ट्राः । आर्यम्णे नृपगुडलवणभिक्षुकाम्बूनि तक्षाशला ।। ८ ।। हस्ते नापितचाक्रिकचौरभिषक्सूचिकद्विपग्राहाः । बन्धक्यः कौशलका मालाकाराश्च पीडचन्ते ।। ९ ।। चित्रास्थे प्रमदाजनलेखकचित्रज्ञचित्रभाण्डानि । स्वातौ मागधचरदूतसूतपोतप्लवनटाद्याः ।। १० ।। ऐंद्राग्नाख्ये त्रैगर्तचीनकौलतकुङकुमं लाक्षा । सस्यान्यथ माञ्जिष्ठं कौसुंभं च क्षयं यान्ति ।। ११ ।। मैत्रे कुलूततङ्गणखसकाश्मीराः समन्त्रिचक्रचराः । उपतापं यान्ति च घाण्टिका विभेदश्च मित्राणाम् ।। १२ ।। ज्येष्ठासु नृपपुरोहितनृपसत्कृतशूरगणकुलश्रेण्यः । मूले तु काशिकोशलपाञ्चालफलौषधीयोधाः ।। १३ ।। आप्येऽङ्गवङ्गकौशलगिरिव्रजमागधपुंड्रमिथिलाश्च । उलपापं यांति जना वसन्ति ये ताम्रलिप्त्यां च ।।१४।। विश्वेश्वरेऽर्कपुत्रश्चरन्दशार्णान्निहन्ति यवनांश्च । उज्जयनीं शवरान् पारियात्रिकान् कुन्तिभोजांश्च ।। १५ ।। श्रवणे राजाधिकृतान्विप्राग्र्यभिषक्सपुरोहितकलिङ्गान् वसुभे मगधेशजयो वृद्धिश्च धनेष्वकृतानाम् ।। १६ ।। साजे शतभिषजिभिषक्कविशौण्डिकपण्यनीतिवार्त्तानाम् । आहिर्बुध्न्ये नटचो यानकराः स्त्री हिरण्यं च ।।१७।। रेवत्यां राजभृताः क्रौञ्चद्वीपाश्रिताः शरत्सस्यम् । शबराश्च निपीडचन्ते यवनाश्च शनैश्वरे चरति ।। १८ ।। यदा विशाखासु महेन्द्रमन्त्री सुतश्च भानोर्दहनर्क्षयातः । तदा प्रजानामनयोऽतिघोरः पुरप्रभेदो गतयोर्भमेकम् ।। १९ ।। अण्डजहा रविजो यदि चित्रः क्षुद्भयकृद्यदि पीतमयूखः । शस्त्रभयाय च रक्तसवर्णो भस्मानिभो बहुवैरकरश्च ।। २० ।। वैडूर्यकान्तिरमलः शुभदः प्रजानां बाणातसीकुसुमवर्णनिभश्चय शस्तः । पञ्चापि वर्णमुपगच्छति तत्सवर्णान् सूर्यात्मजः क्षपयतीति मुनिप्रवादः ।। २१ ।।

इति श्रीवराहमिहिरःतौ बृहत्संहितायां शनैश्चरचारो दशमोऽध्यायः ।। १० ।।

जो सूर्यका पुत्र शनि श्रवण, स्वाती, हस्त, आर्द्रा, भरणी और पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र विराजमान होकर मनोहर वर्णवाला हो तो पृथ्वीपर बहुतही जल वर्षता है ।।१।। आश्लेषा शतभिषा वा ज्येष्ठा नक्षत्रमें शनि विचरण करे तो सुमंगल होता है, अत्यन्त वर्षा नहीं होती। मूल नक्षत्रमें विचरण करे तो क्षुधा, शस्त्रभय और अनावृष्टि होती है। यह तो साधारण फल कहा गया। अब प्रत्येक नक्षत्रमें शनिके विचरण करनेसे जो फल होता है वह कहा जाता है ।।२।। शनि अश्विनी नक्षत्रमें विचरण करे तो अश्व, अश्वसादी, कवि वैद्य और मंत्रियोंकी हानि होती है। भरणी नक्षत्रमें विचरण करे तो नाचनेवाले, बजानेवाले, गानेवाले और छोटी नावोंसे जीविका निर्वाह करनेवाले पुरुषोंकी हानि होती है ।।३।। कृत्तिका नक्षत्रमें शनि हो तो अग्निसे आजीविका करनेवालोंको और राजालोगोंको पीडा होती है। रोहिणी नक्षत्रमें शनि विराजमान हो तो कोशल, मद्र, काशी, पांचाल

देश और छकडोंसे जीविकाका निर्वाह करनेवाले पुरुषोंको पीडा होती है ॥४॥ मृगशिर नक्षत्रमें शनि हो तो वत्सदेश, याजक, यजमान, आर्यपुरुष और मध्य देशके लोगोंको पीडा होती है। आर्द्रा नक्षत्रमें शनि हो तो रामठदेश, तेली, धोबी, रंगरेज और चोर अत्यन्त पीडित होते हैं ॥५॥ पुनर्वसु नक्षत्रमें शनि हो तो पंजाब, प्रत्यन्त, सुराष्ट्र, सिन्धु और सौवीर देशको अत्यन्त पीडा होती है। षुष्य नक्षत्रमें शनिका सहवास हो तो घंटा बजाने-वाले, घोषिक (ढंढेरा फेरनेवाले) यवन, वणिक खल और सब पुष्पोंको पीडा होती है ॥६॥ आश्लेषा नक्षत्रमें शनि हो तो पद्म और सर्पोंको, मघा नक्षत्रमें हो तो बाह्लीक, चीन, गान्धार, शूलिका, पारत, वैश्य, धनागार और बनियोंके लिये विघ्न होता है ॥७॥ पूर्वा-फाल्गुनी नक्षत्रमें शनि रहता हो तो रस बेचनेवाले लोग, वेश्या, कन्या और महाराष्ट्र-देशको विघ्न होता है। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें शनि हो तो राजा, गुड, लवण भिक्षु जल और तक्षशिला नगरीको विघ्न होता है ॥८॥ हस्त नक्षत्रमें शनि हो तो नाई, चाक्रिक (चक्रशिल्पी), चोर वैद्य, दर्जी, द्विपग्राह (हाथी पकडनेवाले), बंधकी, कौशली और माला बनानेवालोंको पीडा होती है ॥९॥ यदि शनि चित्रा नक्षत्रमें हो तो स्त्री, लेखक, चित्र विद्याको जाननेवालों (मुसौविर को और अनेक प्रकारके द्रव्य पीडाको प्राप्त होता हैं। यदि स्वाती नक्षत्रमें शनि हो तो मागध, दूत, चर, सारथि, नावपर चलनेवाले और नटा-दिकोंको पीडा होती है ॥१०॥ जो विशाखा नक्षत्रमें शनि विचरण करता हो तो त्रिगर्त्त चीन और कुलूत देश, कुमकुम, लाख, धान्य, मजीठ और कुसुम्भ क्षयको प्राप्त होते हैं ॥११॥ अनुराधा नक्षत्रमें शनि हो तो कुलूत, तंगण खस, और काश्मीर देशके, घंटा बजानेवाले, मंत्री, चक्रचर अर्थात् तेली कुम्हारादि और चोरलोगोंको संताप होता है, मित्रोंमें भेद हो जाता है ॥१२॥ ज्येष्ठा नक्षत्रमें शनि हो तो राजपुरोहित, राजासे आदर पाया हुआ शूर और गणकुलश्रेणी (संन्यासीके मठ) को पीडा होती है। मूल नक्षत्रमें शनि हो तो काशी, कोशल और पांचाल देशके फल, औषधी और योद्धा लोगोंको विघ्न होता है ॥१३॥ पूर्वाषाढा नक्षत्रमें शनि हो तो अंग, वंग, कोशल, गिरि वज्र मगध, पुण्ड्र, मिथिला और ताम्रलिपी देश रहनेवाले संतापित होते हैं ॥१४॥ उत्तराषाढा नक्षत्रमें शनि विचरण करता हो तो उज्जयनी, परियात्रिक और कुन्तिभोज देशके रहनेवाले लोग वा यवन, शबरजातिके लोग सन्तापित होते हैं ॥१५॥ यदि शनि श्रवण नक्षत्रमें हो तो राजाके अधिकारी, ब्राह्मण, श्रेष्ठ वैद्य, पुरोहित और कलिङ्ग देशके लोगोंको अत्यन्त संताप होता है, धनिष्ठा नक्षत्रमें शनि हो तो मगधेश्वरकी जय और धनाधिकारीकी वृद्धि, होती है ॥१६॥ शतभिषा और पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रमें जो शनि विचरण करता हो तो वैद्य, कवि, कलवार (मद्य बेचनेवाला), पण्यजीवी और नीतिकुशल आदमियोंके लिये विघ्न होता है, उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रमें शनि विचरण करता हो तो नटी सवारी बनानेवाले, स्त्री सुवर्णका नाश होता है ॥१७॥ जब शनि रेवती नक्षत्रोमें विचरण करे तो राजसेवक, क्रौंचद्वीपके रहनेवाले मनुष्य, शरदऋतुका धान्य, शबरजातिके पुरुषगण और यवनलोग पीडाको प्राप्त होते हैं ॥१८॥ जिस समय बृहस्पति विशाखा नक्षत्रमें हो उस समय शनि यदि कृत्तिकामें हो तो प्रजाओंमें अत्यन्त अनीति होती है और जो दोनोंही एक नक्षत्रमें हों तो सब नगरोंका भेद हो जाता है ॥१९॥ यदि शनिका वर्ण अनेक रंगवाला दिखाई दे तो अंडज प्राणियोंका नाश होता है। पीतवर्ण होनेसे क्षुधा और भय होता है। रक्तवर्ण

होनेपर शस्त्रभय और भस्मके समान रंग होनेसे अत्यन्त शुभता होती है ॥२०॥ मुनिलोग कह गये हैं कि, शनि यदि वैडूर्यमणिके समान कांतिमान् और निर्मल हो तो प्रजाओंको अत्यन्त शुभ होता है। बाणपुष्प या अतसीकुसुमके समान कांति हो तो अच्छा है। श्वेत, रक्त, पीत, कृष्ण और नानावर्ण हो इन पांच रंगोंमें शनि जिस रंगवाला जब ज्ञात हो तो उसके समान रंगका अर्थात् ब्राह्मण क्षत्री, वैश्य, शूद्र और वर्ण संकर जातिके समस्त पुरुषोंका नाश होगा ॥२१॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां दशमोऽध्यायः ॥१०॥

अथैकादशोऽध्यायः

केतुचारः

गार्गीयं शिखिचारं पराशरमसितदेवलकृतं च। अन्यांश्च बहून्दृष्ट्वा क्रियतेऽयमनाकलश्चारः ॥ १ ॥ दर्शनमस्तमयो वा न गणितविधिनास्य शक्यते ज्ञातुम्। दिव्यान्तरिक्षभौमास्त्रिविधाः स्युः केतवो यस्मात् ॥ २ ॥ अहुताशेऽनलरूपं यस्मितत् केतुरूपमेवोक्तम्। खद्योतपिशाचालयमणिरत्नादीन् परित्यज्य ॥ ३ ॥ ध्वजस्त्रभवनतरुतुरगकुञ्जराद्येष्वथान्तरिक्षास्ते। दिव्य नक्षत्रस्था भौमाः स्युरतोऽन्यथा शिखिनः ॥ ४ ॥ शतमेकाधिकमेके सहस्रमपरे वदन्ति केतूनाम्। बहुरूपमेकमेव प्राह मुनिर्नारदः केतुम् ॥ ५ ॥ यद्येको यदि बहवः किमनेन फलं तु सर्वथा वाच्यम्। उदयास्तमयैः स्थानैः स्पर्शैराधूमनैर्वर्णैः ॥ ६ ॥ यावन्त्यहानि दृश्यो मासास्तावन्त एव फलपाकः। मासैरब्दांश्च वदेत् प्रथमात्पक्षत्रयात् परतः ॥ ७ ॥ ह्रस्वस्तनुः प्रसन्नः स्निग्धस्त्वृजुरुचिरसंथितः शुक्लः उदितो वाप्यभिदृष्टः सुभिक्षसौख्यावहः केतुः ॥ ८ ॥ उक्तविपरीतरूपो न शुभकरो धूमकेतुरुत्पन्नः। इन्द्रायधानुकारी विशेषतो द्वित्रिचूलो वा ॥ ९ ॥ हारमणिहेमरूपाः किरणाख्याःपञ्चविंशतिः सशिखाः। प्रागपरदिशोर्दृश्या नृपतिविरोधावहा रविजाः ॥ १० ॥ शुकदहनबन्धुजीवकलाक्षा क्षतजोपमा हुताशसुताः। आग्नेय्यां दृश्यन्ते तावन्तस्तेऽपि शिखिभयदाः ॥ ११ ॥ वक्रशिखा मृत्युसुता रूक्षाः कृष्णाश्च तेऽपि तावन्तः। दृश्यन्ते याम्यायां जनमरकावेदिनस्तेच ॥ १२ ॥ दर्पणवृत्ताकारा विशिखाः किरणान्विताः धरातनयाः। क्षुद्भयदा द्वाविंशतिरैशान्यामम्बुतैलनिभाः ॥ १३ ॥ शशिकिरणरजतहिमकुमुदकुन्दकुसुमोपमाः सुताः शशिनः। उत्तरतो दृश्यन्ते त्रयः सुभिक्षावहाः शिखिनः ॥ १४ ॥ ब्रह्मसुत एक एव त्रिशिखो वर्णैस्त्रिभिर्युगान्तकरः। अनियतदिक्सम्प्रभवो विज्ञेयो ब्रह्मदण्डाख्यः ॥ १५ ॥ शतमभिहितमेकसमेतदेकेन विरहितान्यस्मात्। कथयिष्ये केतूनां शतानि नव लक्षणैः स्पष्टैः ॥ १६ ॥ सौम्येशान्योरुदयं शुक्रसुता

यान्ति चतुरशीत्याख्याः । विपुलसिततारकास्ते स्निग्धाश्च भवन्ति तीव्रफलाः ॥ १७ ॥ स्निग्धाः प्रभासमेता द्विशिखाः षष्टिः शनैश्चराङ्गरुहाः । अतिकष्ट-फला दृश्या सर्वत्रैते कनकसंज्ञाः ॥ १८ ॥ विकचा नाम गुरुसुताः सितैकताराः शिखापरित्यक्ताः । षष्टिः पञ्चभिरधिका स्निग्धायम्याश्रिताः पापाः ॥ १९ ॥ नातिव्यक्ताः सूक्ष्मा दीर्घाः शुक्लाः यथेष्टदिक्प्रभवाः । बुधजास्तस्करसंज्ञाः पापफलास्त्वेकपञ्चाशत् ॥ २० ॥ क्षतजानलानुरूपास्त्रिचूलताराः कुजात्मजाः षष्टिः । नाम्ना च कौङकुमास्ते सौम्याशासंस्थिताः पापाः ॥ २१ ॥ त्रिंशत्र्यधिका राहोस्ते तामसकीलका इति ख्याताः । रविशशिगा दृश्यन्ते तेषां फल मर्कचारोक्तम् ॥ २२ ॥ विंशत्याधिकमन्यच्छतमग्निविश्वरूपसंज्ञानाम् । तीव्रानलभयदानां ज्वालामाला कुलतनूनाम् ॥ २३ ॥ श्यामारुणाविताराश्चामरूपा विकीर्णदीधितयः । अरुणाख्या वायोः सप्तसप्ततिः पापदाः पुरुषाः ॥ २४ ॥ तारापुञ्जनिकाशा गणका नाम प्रजापतेरष्टौ । द्वे च शते चतुरधिके चतुरस्रा ब्रह्मसन्तानाः ॥ २५ ॥ कंका नाम वरुणजा द्वोत्रिशद्वंशगुल्म संस्थानाः । शशिवत् प्रभासमेतास्तीव्रफलाः केतवः प्रोक्ताः ॥ २६ ॥ षण्णवतिः कालसुताः कबन्धसंज्ञा कबन्ध संस्थानाः । चण्डा भयप्रदाः स्यू रूपताराश्च ते शिखिनः ॥ २७ ॥ शुक्लविपुलैकतारा नव विदिशां केतवः समुत्पन्नाः । एवं केतुसहस्रं विशेषमेषामतो वक्ष्ये ॥ २८ ॥ उदगायतो महान् स्निग्धमूर्तिरपरोदयी वसाकेतुः । सद्यः करोति मरकं सुभिक्षमप्युत्तमं कुरुते ॥ २९ ॥ तल्लक्षणोऽस्थिकेतुः स तु रुक्षः क्षुद्भयावहः प्रोक्ताः । स्निग्धस्तादृक् प्राच्यां शस्त्राख्यो डमरमरकाय ॥ ३० ॥ दृश्योऽमावास्यायां कपालकेतुः सधूम्ररश्मि शिखः । प्राङ्नभसोऽर्ध्वविचारीक्षुन्मरकावृष्टिरोगकरः ॥ ३१ ॥ प्राग्वैश्वानरमार्गे शूलाग्रः श्यावरूक्ष-ताम्रार्चिः । नभसस्त्रिभागगामी रौद्र इति कपालतुल्यफलः ॥ ३२ ॥ अपरस्यां चलकेतुः शिखया याश्याग्रया गुलोच्छ्रितया । गच्छेद्यथा यथोदक् तथा तथा दैर्घ्यमायाति ॥ ३३ ॥ सप्तमुनीन् संस्पृश्य ध्रुवमभिजितमेव च प्रतिनिवृत्तः । नभसोऽर्द्धमात्रमित्वा याम्येनास्तं समुपयाति ॥ ३४ ॥ हन्यात् प्रयागकूलाद् यावदवन्तीं च पुष्कराख्याम् । उदगपि च देविकामपि भूयिष्ठं मध्यदेशाख्यम् ॥ ३५ ॥ अन्यानपि च स देशान् क्वचित् क्वचिद्धन्ति रोगदुर्भिक्षैः । दश मासान् फलपाकोऽस्य कैश्चिदष्टादश प्रोक्तः ॥ ३६ ॥ प्रागर्द्धरात्रदृश्यो याम्याग्रः श्वेतकेतुरन्यश्च । क इति युगाकृतिपरपरे युगपत्तौ सप्तदिनदृश्यौ ॥ ३७ ॥ स्निग्धौ सुभिक्षशिवदावथाधिकं दृश्यते कनामा यः । दश वर्षाण्युपतापं जनयति शस्त्रप्रकोपकृतम् ॥ ३८ ॥ श्वेत इति जटाकारो रुक्षः श्यावो वियत्त्रिभागगतः । विनिवर्ततेऽपसव्यं त्रिभागशेषाः प्रजाः कुरुते ॥ ३९ ॥ आधूम्रया तु शिखया

दर्शनमायाति कृत्तिकासंस्थः । ज्ञेयः स रश्मिकेतुः श्वेतसमानं फलं धत्ते ।। ४० ।। ध्रुवकेतुरनियतगतिप्रमाणवर्णाकृतिर्भवति विष्वक् । दिव्यान्तरिक्षभौमो भवत्ययं स्निग्ध इष्टफलः ।। ४१ ।। सेनाङ्गेषु नृपाणां गृहतरुशैलेषु चापि देशानाम् । गृहिणामुपस्करेषु विनाशिनां दर्शनं याति ।। ४२ ।। कुमुद इति कुमुदकान्तिर्वारुण्यां प्राक्छिखो निशामेकाम् । दृष्टः सुभिक्षमतुलं दश किल वर्षाणि स करोति ।।४३।। सकृदेकयामदृश्यः सुसूक्ष्मतारोऽपरेण मणिकेतुः । ऋज्वी शिखास्य शुक्लास्तनोद्गता क्षीरधारेव ।। ४४ ।। उदयन्नेव सुभिक्षं चतुरो मासान् करोत्यसौ सार्द्धान् । प्रादुर्भावं प्रायः करोति च क्षुद्रजन्तूनाम् ।। ४५ ।। जलकेतुरपि च पश्चात् स्निग्धः शिखयापरेण चोन्नतया । नव मासान् स सुभिक्षं करोति शान्तिं च लोकस्य ।।४६।। भवकेतुरेकरात्र दृश्यः प्राक् सूक्ष्मतारकः स्निग्धः । हरिलाङ्गूलोपमया प्रदक्षिणावर्त्तया शिखया ।। ४७ ।। यावत एव मुहूर्त्तान् दर्शनमयाति निर्दिशेन्मासान् । तावदतुल सुभिक्षं रूक्षे प्राणान्तिकान् रोगान् ।। ४८ ।। अपरेण पद्मकेतुर्मृणालगौरो भवेन्निशामेकाम् । सप्त करोति सुभिक्षं वर्षाण्यतिहर्षयुक्तानि ।। ४९ ।। आवर्त्त इति निशार्धे सव्यशिखोऽरुणनिभोऽपरे स्निग्धः । यावत्क्षणान् स दृश्यस्तावन्मासान् सुभिक्षकरः ।। ५० ।। पश्चात् सन्ध्या काले संवर्त्तो नाम धूम्रताम्रशिखः । आक्रम्य वियत्त्र्यंशं शूलाग्रावस्थितो रौद्रः ।।५१।। यावत एव मुहूर्तान् दृश्यो वर्षाणि तावन्ति । भूपाञ्छस्त्रनिपातैरुदयर्क्षं चापि पीडयति ।। ५२ ।। ये शस्तास्तान् हित्वा केतुभिराधूमितेऽथवा स्पृष्टे । नक्षत्रे भवति वधो येषां राज्ञां प्रवक्ष्ये तान् ।। ५३ ।। अश्विन्यामश्मकपं भरणीषु किरातपार्थिवं हन्यात् । बहुलासु कलिङ्गेशं रोहिण्यां शूरसेनपतिम् ।। ५४ ।। औशीनरमपि सौम्ये जलजाजीवाधिपं तथार्द्रासु । आदित्येऽश्मकनाथं पुष्ये मगधाधिपं हन्ति ।। ५५ ।। असिकेशं भौजङ्गे पित्र्येऽङ्गं पाण्डयनाथमपि भाग्ये । औज्जयनिकसार्यम्णे सावित्रे दण्डकाधिपतिम् ।। ५६ ।। चित्रासु कुरुक्षेत्राधिपस्य मरणं समादिशेत्तज्ज्ञः । काश्मीरककाम्बोजौ नृपती प्राभञ्जने न स्तः ।। ५७ ।। इक्ष्वाकुरत्नकनाथौ हन्येते यदि भवेद्विशाखासु । मैत्रे पुण्ड्राधिपतिर्ज्येष्ठास्वथ सार्वभौमवधः ।। ५८ ।। मूलेऽन्ध्रमद्रकपती जलदेवे काशिपो मरणमेति । मौधेयकार्जुनायनशिबिचैद्यान् वैश्वदेवे च ।। ५९ ।। हन्यात् कैकयनाथं पाञ्चनदं सिहलाधिपं वाङ्गम् । नैमिषनृपं किरातं श्रवणादिषु षट्स्विमान् क्रमशः ।। ६० ।। उल्काभिताडितशिखः शिखी शिवः शिवतरोऽभिवृष्टो यः । अशुभः स एव चोलावगाणसितहूणचीनाम् ।। ६१ ।। नम्रा यतः शिखिशिखाभिसृता यतो वा ऋक्षं च यत् स्पृशति तत्कथितांश्च देशान् । दिव्यप्रभावनिहतान् स यथा गरुत्मान् भुंक्ते गतो नरपतिः परभोगिभोगान् ।। ६२ ।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां केतुचार एकादशोऽध्यायः ।। ११ ।।

गर्गाचार्य, पराशर, असित, देवलमुनि वा और भी पंडितगण केतुचारके विषयमें जो जो कह गये हैं, उन सबको देखकर यह निश्चित केतुचार कहा जाता है ॥१॥ केतुओंका उदय वा अस्त गणितके द्वारा किसी प्रकार नहीं जाना जा सक्ता, क्योंकि दिव्य अन्तरिक्ष और भौमनामसे केतु तीन प्रकारके हैं ॥२॥ खद्योत, पिशाचालय, मसि (रोशनाई) और रत्नादिके सिवाय जो पदार्थ अग्निके समान चमकदार नहीं हैं, उन सब पदार्थोंका अग्निके समान रूप हो जानाही केतुरूप कहाता है ॥३॥ ध्वज शस्त्र, गृह, वृक्ष, अश्व और हस्ती आदिमें जो केतुरूपका दर्शन होता है, सो अंतरिक्ष केतु हैं. और नक्षत्रोंमें जो दिखाई देता है, उसको दिव्य केतु कहते हैं, और तिसके सिवाय सबही भौमकेतु हैं ॥४॥ कोई कोई पण्डित कहते हैं कि केतुकी संख्या १०१ है, कोई कहते हैं एक सहस्र हैं। नारदजी केवल एक केतु बताते हैं, और कहते हैं यह एकही बहुरूपी है ॥५॥ एक केतु हो, या अनेक हों, इससे कुछ नहीं आता जाता, परंतु इनका उदय, अस्त, अवस्थान, स्पर्श और कुछ एक धूम्रता इत्यादि वर्णभेदसे जो समस्त फल होते हैं, उनकोही सब प्रकारसे कहना उचित है ॥६॥ यह केतु जितने दिनतक दिखाई देगा, उतने मास तक उसके फलका परिपाक होगा किन्तु ४५ दिनके पश्चात् केतुका फल होना आरंभ होता है अर्थात् उदयसे अस्ततक जितने दिनतक वह दिखाई दे तिसके बाद ४५ दिनकी विलम्बसे फल होना आरंभ होगा ॥७॥ जो केतु छोटा, निर्मल, चिकना, सरल, रुचिर और शुक्लवर्ण होकर उदित या दिखाई देगा वह अत्यन्त सुभिक्षदायी और सुखदायक होगा ॥८॥ इससे विपरीत रूपवाले केतु शुभदायी नहीं होते, परंतु उनका नाम धूमकेतु होता है। विशेष करके इद्रधनुषके समान अनेक रंगवाले अथवा दो या तीन चोटीवाले केतु अशुभ कारक होते हैं ॥९॥ हार मणि या सुवर्णके समान रूप धारण करनेवाले और चोटीदार केतु जो पूर्व या पश्चिम दिशामें दिखाई देते हैं और रविज अर्थात् सूर्यसे उत्पन्न हुए केतु हैं, इनका किरण नाम है, और गिनतीमें यह पच्चीस हैं। इनके उदय होनेसे राजाओंमें विरोध होता है ॥१०॥ तोता, अग्नि, दुपहरियाका फूल, लाख या रक्तके समान जो केतु अग्निकोणमें दिखाई दे, वे अग्निसे उत्पन्न हुए हैं, और संख्यामें वे भी पच्चीस हैं। (२५+२५=५०) इनके उदय होनेसे अग्निभय होता है ॥११॥ जो पच्चीस (५०+केतु २५=७५) टेढी चोटीवाले हैं, रूखे और कृष्णवर्ण होकर दक्षिण दिशामें दिखाई देते हैं, सो यमसे उत्पन्न हुए हैं इनके उदय होनेसे मरी पडती है ॥१२॥ दर्पणके समान गोल आकारवाले, शिखारहित, किरणयुक्त और सजल तेलके समान कांतिवाले जो बाईस केतु (७५+३२=९७) ईशान दिशामें दृष्टि आते हैं सो पृथ्वीसे उत्पन्न हुए हैं इनके उदय होनेसे दुर्भिक्ष व भय होता है ॥१३॥ चंद्रकिरण, चाँदी, हिम, कुमुद या कुन्दपुष्पके समान जो तीन (९७+३=१००) केतु हैं यह चंद्रमाके पुत्र हैं, और उत्तरदिशामें दिखाई देते हैं। इनके उदय होनेसे सुभिक्ष होता है ॥१४॥ औंर ब्रह्मदण्ड नामक युगान्तकारी ब्रह्मासे उत्पन्न हुआ एक केतु है। (१००+१=१०१) यह तीन चोटीवाला और तीन रंगका है, यह चाहे जिस दिशामें दिखाई देगा इसका कोई नियम नहीं है ॥१५॥ इस प्रकार एकशत एक केतुका वर्णन लिखा है। अब स्पष्टलक्षणसे ८९९ केतुओंका वर्णन किया जाता है ॥१६॥ शुक्रतनय नामक जो चौरासी केतु हैं सो उत्तर और ईशान दिशामें

दृष्टि आते हैं यह बृहत् शुक्लवर्ण तारकाकार, चिकने और तीव्रफलयुक्त हैं ॥१७॥ शनिके पुत्र जो साठ (८४+६०=१४) केतु हैं, यह कांतिमान्, दो शिखावाले और कनकसंज्ञक हैं। यह सब ओर दिखाई देते हैं, इनके उदय होनेसे अतिकष्ट होता है ॥१८॥ चोटीहीन, चिकने, शुक्ल वर्ण, एकतारेके समान दक्षिण दिशाको आश्रित किये पैंसठ (१४४+६५=२०९) विकच नामक जो केतु हैं, यह बृहस्पतिके पुत्र हैं, इनका उदय होनेसे पृथ्वीके लोग पापी हो जाते हैं ॥ १९ ॥ जो केतु वह साफ दिखाई नहीं देते, सूक्ष्म, दीर्घ, शुक्ल-वर्ण, चाहे जिस दिशामें रहनेवाले और तस्कर नामक हैं सो बुधके पुत्र हैं। इनकी गिनती इक्यावन (२०९+५१=२६०) है और ये अत्यन्त पापफलवाले हैं ॥२०॥ रक्त या अग्निके समान जिनका रंग है, तीन जिनके शिखा हैं, तारेके समान हैं, सो गिनतीमें साठ हैं (२६०+६०=३२०) उत्तर दिशामें स्थित और कौंकुम नामक जो मंगलके पुत्र केतु हैं, सो भी पापफलके देनेवाले हैं ॥२१॥ तामसकीलक नामक जो तेंतीस (३२०+३३=३५३) राहुके पुत्र केतु हैं, जो चंद्रसूर्यगत होकर दिखाई देते हैं उनका फल सूर्य-चारमें कहा गया है ॥२२॥ जिनका शरीर ज्वालाकी मालासे युक्त हो रहा है ऐसे अग्निविश्वरूप नामक जो एकशत वीस (३५३+१२०=४७३) केतु हैं, वे तीव्र अनलभय दायक हैं ॥२३॥ जो केतु श्यामारुणवर्ण हैं चमरके समान जिनकी किरणें फैली रहती हैं, जो रूखे होते हैं, जो पवनसे उत्पन्न हुए और गिनतीमें सतहत्तर (४७३ + ७७ = ५५०) हैं, उनके उदय होनेसे पापभय होता है ॥२४॥ तारापुंजके समान आकारवाले प्रजापति पुत्र जो आठ (५५०+८=५५८) केतु हैं उनका नाम गणक है। चौकोन आकारवाले ब्रह्मसंतान नामक जो केतु हैं तिनकी संख्या दो सो चार है॥ (५५८+२०४=७६२) ॥२५॥ गुल्म अर्थात् लताके गुच्छेके समान जिनका आकार है ऐसे बत्तीस (७६२+३२=७९४) कंक नामक जो केतु हैं, सो वरुणजीके पुत्र हैं, चंद्रमाके समान कांतिवाले और अत्यन्त अशुभ फल देनेवाले हैं ॥२६॥ कबन्धके समान आकारधारी जो छियानवें (७९४+९४=८९०) कबन्ध नामक केतु हैं सो कालके पुत्र, यह भयंकर, भय-दाई हैं और इनमें कुरूपवाले तारे लगे हुए हैं ॥२७॥ बडे बडे एक एक तारेदार जो नौ (८९०+९=८९९) केतु हैं, सो विदिशसमुत्पन्न हैं, इस प्रकार (पहिले एक शत एक १०१ और वर्त्तमान ८९९ कुल १०००) एक सहस्र केतुका वर्णन किया गया, अब इसमें विशेष विशेष कहे जाते हैं ॥२८॥ जो केतु पश्चिम दिशामें उदय होते हैं और उत्तर दिशामें फैलते हैं, बडे बडे और स्निग्धमूर्ति हैं इनको वसाकेतु कहते हैं इनके उदय होनेसे मरी पडती है और उत्तम सुभिक्ष होता है ॥२९॥ पहिले के समान लक्षणवाले, रूखे और चिकने जो केतु उदय होता है उनका शस्त्र नाम है इनके उदय होनेसे क्षुधा-भय, डमर (उलटपुलट) और मरी पडती है ॥३०॥ अमावस्याके दिन आकाशके पूर्वार्द्धमें सहस्ररश्मि और हजार शिखावाला जो केतु दिखाई देता है उसका नाम कपाल केतु है, इससे क्षुधा, मरी, अनावृष्टि और रोगभय होता है ॥३१॥ आकाशके पूर्वदक्षिण-मार्गमें शूलके अग्रभागके समान, कपिश, रूक्ष, ताम्रवर्णकी किरणोंसे युक्त जो केतु आकाश के तीन भागतकमें गमन करता है उसको रौद्रकेतु कहते हैं, इसका फल कपालकेतुके समान है ॥३२॥३३॥ जो धूम्रकेतु पश्चिम दिशामें उदय होता है, दक्षिणकी ओरको एक अंगुल ऊंची शिखा करके युक्त होता है, और उत्तरदिशाकी तरफ क्रमानुसार बढता रहता है,

उसको चलकेतु कहते हैं। यह चलकेतु इस प्रकार क्रमशः दीर्घ होकर यदि उत्तरध्रुव सप्तर्षिमण्डल वा अभिजित नक्षत्रको स्पर्श करता हुआ आकाशके एक भाग जाकर दक्षिण दिशामें अस्त हो जाय तो प्रयागके निकटसे लेकर अवन्तीतक पुष्करदेश और उत्तर देविका नदीतक बडे भारी मध्यदेशका नाश हो जाता है और किसी किसी समय रोग या दुर्भिक्षसे और देशोंका भी नाश होता है इसका फल दशमासमें पकता है, कोई कोई पण्डित कहते हैं कि, अठारह मासमें इसका फल होता है ॥३४॥ ॥३५॥३६॥ दो पहर रातके समय आकाशके पूर्व भागमें दक्षिणके आगे जो केतु दिखाई दे उसको धूमकेतु कहते हैं। और (क) नामक जो केतु है जिसका आकार गाडीके जुएके समान है, युग बदलनेके समय वह सात दिनतक दिखाई देता है ॥३७॥ और (क) नामक धूमकेतु यदि अधिक दिनतक दिखाई दे तो दश वर्षतक बराबर शस्त्रकोपसे उत्पन्न हुआ संताप हुआ करता है ॥३८॥ श्वेत नामक केतु यदि जटाके समान आकारवाला, रूखा, कपिशवर्ण और आकाश-के तीन भागतक जाकर लौट आवे तो तिहाई प्रजाका नाश हो जाता है ॥३९॥ जो केतु कुछेक धूमवर्णकी चोटीसे युक्त होकर कृत्तिका नक्षत्रको स्पर्श करके दिखाई दे, उसको रश्मिकेतु कहते हैं, इसका फल श्वेतनामक केतुके समान है ॥४०॥ ध्रुवनामक एक प्रकारका केतु है, इसका आकार, वर्ण, प्रमाण स्थिर नहीं, न गति स्थिर है, यह दिव्य, अन्तरिक्ष और भौम तीन प्रकारका ही होता है, यह स्निग्ध और अनियत फलदाता है ॥४१॥ यह ध्रुवकेतु विनाशशाली राजाओंकी सेनाके अंगमें, विनाश होनेवाले देशके वृक्षोंमें या विनाशशाली गृहस्थोंके यहां बहुधा दृष्टि आता है ॥४२॥ जिस केतुकी कांति कुमुदके समान हो चोटी पूर्वकी ओरको फैल रही हो उसको कुमुदकेतु कहते हैं, यह बराबर दशवर्ष तक सुभिक्षका देनेवाला, है, जो केतु सूक्ष्म तारेके समान आकारवाला हो, और पश्चिम दिशामें एक पहरतक दिखाई दे, उसका नाम मणिकेतु है, स्तनके ऊपर दाब देनेसे जिस प्रकार दूधकी धार निकलती है, यह शिखाभी तैसेही सरल और शुक्ल वर्णवाली होती है ॥४३॥४४॥ इसके उदय होनेसे साढेचार मासतक सुभिक्ष होता है, परंतु बहुधा छोटे छोटे जंतुओंके ऊपर इसका प्रभाव होता है ॥४५॥ जो केतु और दिशामें ऊंची शिखा करके पिछले भागमें चिकना हो उसको जलकेतु कहते हैं, जलकेतु उदय होनेसे नौ मास-तक सुभिक्ष होता है और प्राणियोंको शांति मिलती है ॥४६॥ सिंहकी पूंछके समान उसकी शिखा दक्षिणावर्त होती है और एक स्निग्ध सूक्ष्म तारा पूर्वदिशामें रातको दिखाई देता है सो भवकेतु है ॥४७॥ यह भवकेतु जितने मुहूर्ततक दिखाई देगा तितने मासतक अतुल सुभिक्ष होगा। यदि यह रूखा होगा तो प्राणान्तक रोग होते हैं ॥४८॥ पहिलेके समान आकारवाला और मृणालके समान जो गौरवर्णका केतु पश्चिम दिशामें एक राततक दिखाई दे उसका नाम पद्मकेतु इससे सात वर्षतक हर्षसहित सुभिक्ष होता है ॥४९॥ जो केतु आधी रातके समयमें सव्य शिखावाला अरुणकीसी कांतिवाला चिकना दिखाई देता है उसे आवर्त कहते हैं, यह केतु जितने क्षणतक दिखाई दे उतने मासतक सुभिक्ष होता है ॥५०॥ जो केतु धूम या ताम्रवर्णकी शिखावाला है, भयंकर है और आकाशके तीन भागतकको आक्रमण करता हुआ शूलके अग्रभागके समान आकारवाला होकर संध्या-कालमें पश्चिमकी ओर दिखाई दे उसको संवर्तकेतु कहते हैं ॥५१॥ यह केतु जितने मुहूर्त तक दिखाई देगा, तितने वर्षतक शस्त्रपातसे राजा लोग पीडित होते हैं और उदयकालमें

जो नक्षत्र वर्तमान रहता है उस नक्षत्रमें जिसका जन्म है, वह पुरुषभी पीडित होता है ।।५२।। जिस जिस नक्षत्रके केतुसे आधूमित या छुए जानेसे जिस जिस राजाका वध होता है वह कहा जाता है ।।५३।। केतुसे अश्विनी नक्षत्र आधूमित हो वा छुवा जाय तो अश्मक देशके राजाका विनाश होता है। भरणीमें किरातपति, कृत्तिकामें कलिङ्गराज, रोहिणीमें शूरसेनापति, मृगशिरामें उशीनरराज, आर्द्रामें मत्स्यराज, पुनर्वसुमें अश्मकनाथ, पुष्यनक्षत्रमें मगधाधिपति, आश्लेषामें असिकेश्वर, मघानक्षत्रमें अंगराज, पूर्वाफाल्गुनीमें पाण्ड्यनरपति, उत्तराफाल्गुनीमें उज्जयिनीस्वामी, हस्तमें दण्डकाधिपति, चित्रामें कुरुक्षेत्र-राज, स्वाती नक्षत्रमें काश्मीर और काम्बोजराज, विशाखामें इक्ष्वाकु और रत्नकपति, अनुराधा नक्षत्रमें पुण्ड्रदेशका राजा और ज्येष्ठा नक्षत्रमें चक्रवर्ती राजा मर जाता है ।।५४।।५५।।५६।।५७।।५८।। केतुसे मूलनक्षत्र आधूमित या स्पर्श होनेसे अंध्र और मद्रराज मृत्युको प्राप्त होते हैं। पूर्वाषाढामें काशीपति उत्तराषाढा नक्षत्रमें योधराज, अर्जुनायनराज शिविनरपति और वैद्यराज नाशको प्राप्त होते हैं। और श्रवणसे लेकर छः नक्षत्र पीडित होनेपर क्रमानुसार केकय, पंजाब, सिंहल, वंग, नैमिषारण्य और किरातदेशके राजाका नाश होता है ।।५९।।६०।। केतुकी शिखा उल्कासे भेदित हो तो शुभ होता है। सब प्रकारसे वृष्टियुक्त हो तो अत्यंत मंगल होता है परंतु इससे ही चोल, अफगान, सित और चीन देशका अमंगल होता है ।।६१।। केतुकी शिखायें जिन देशोंसे अलग वा नम्र हो या जिन देशोंसे किसी नक्षत्रको स्पर्श करे तदुक्त (तन्नक्षत्राक्रांत) सब देश मानो दिव्यप्रभावसे नाश, होते हैं, बस गरुडजी जिस प्रकार साँपके फनका भोग लगाकर सुखी होते हैं, राजा लोग उन देशोंपर चढाई करके वैसेही सुखी होते हैं ।।६२।।

इति श्रीबराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायामेकादशोऽध्यायः ।।११।।

अथ द्वादशोऽध्यायः

अगस्त्यचारः

भानोर्वर्त्मविघातवृद्धशिखरो विन्ध्याचलः स्तम्भितो वातापिर्मुनिकुक्षिभित् सुररिपुर्जीर्णश्च येनासुरः। पीतश्चाम्बुनिधिस्तपोऽम्बुनिधिना याम्या च दिग्भूषिता तस्यागस्त्यमुनेः पयोद्युतिकृतश्चारःसमासादयम् ।। १ ।। समुद्रोऽन्तःशैलैर्मकरनख-रोत्खातशिखरैः कृतस्तोयोच्छित्त्या सपदि सुतरां येन रुचिरः। पतन्मुक्तामिश्रैः प्रवर मणिरत्नाम्बुनिवहैः सुरान् प्रत्यादेष्टुं सितमुकुटरत्नानिव पुरा ।। २ । येन चाम्बुहरणेऽपिविद्रुमैर्भूधरैः समणिरत्नविद्रुमैः। निर्गतैस्तदुरगैश्च राजितः-सागरोऽधिकतरं विराजितः ।।३।। प्रस्फुरत्तिमिजले भजिह्मगः क्षिप्तरत्ननिकिरो महोदधिः। आपदां पदगतोऽपि यापितो येन पीतसलिलोऽमरश्रियम् ।। ४ ।। प्रचलत्तिमिशुक्तिशंखचितः सलिलेऽपहतेऽपि पतिः सरिताम्। सतरङ्गसितोत्पल-हंसभृतः सरसः शरदीव बिभर्ति रुचम् ।। ५ ।। तिमिसिताम्बुधरं मणितारकं स्फटिकचंद्रमनम्बुशरद्द्युति । फणिफणोपलरश्मिशिखिग्रहं कुटिलगेशवियच्च

चकार यः ॥ ६ ॥ दिनकररथमार्गविच्छित्तयेऽभ्युद्यतं यच्चलच्छृङ्गमुद्भ्रान्त विद्याधरांसावसक्तप्रियाव्यग्रदत्तांकदेहावलम्बाम्बराभ्युच्छ्रितोद्धूयमानध्वजैःशोभितम् । करिकटमदमिश्ररक्तावलेहानुवासानुसारिद्विरे फावलीनोत्तमाङ्गैः कृतान्बाणपुष्पैरिवोत्तंसकान् धारयद्भिर्मृगेन्द्रैः सनाथीकृतांतर्दरीनिर्झरम् । गगनतलमिवोल्लिखत्तंप्रवृद्धैर्गजाकृष्टफुल्लद्रुमत्रासविभ्रान्तमत्तद्विरेफावलीगीतमन्द्रस्वनैः शैलकूटैस्तरक्षर्क्षशार्दूलशाखामृगाध्यासितैः रहसिमदनसक्तयारेवया कान्तयेवोपगूढं सुराध्यासितो द्यानमम्भोऽशनानन्नमूलानिलाहारविप्राविन्वतं विन्ध्यमस्तम्भयद्यश्चतस्योदयः श्रूयताम् ॥ ७ ॥ उदये च मुनेरगस्त्यनाम्नः कुसुमायोगमलप्रदूषितानि । हृदयानि सतामिव स्वभावात् पुनरम्बूनि भवन्तिनिर्मलानि ॥८॥ पार्श्वद्वयाधिष्ठितचक्रवाकामापुष्णती सस्वनहंसपंक्तिम् । ताम्बूलरक्तोत्कषिताग्रदन्ती विभाति योषेव सरित्सहासा ॥९॥ इन्दीवराब्जसितोत्पलान्विता सरिद्भ्रमत्षट्पदपंक्तिभूषिता । सभ्रूलताक्षेपकटाक्षवीक्षणा विदग्धयोषेव विभाति संस्मर ॥१०॥ इन्दोः पयोदविगमोपहितां विभूतिं द्रष्टुं तरंगवलाया कुमुदं निशासु । उन्मीलयत्यलिनिलीनदलं सुपक्ष्म वापीविलोचनमिवासिततारकान्तम् ॥११॥ नानाविचित्राम्बुजहंसकोककारण्डवापूर्णतडागहस्ता । रत्नैः प्रभूतैः कुसुमैः फलैश्च भूर्यच्छतीवार्घमगस्त्यनाम्ने ॥ १२ ॥ सलिलममरपाज्ञियोंज्झितं यद्घनपरिवेष्टितमूर्तिभिर्भुजंगैः । फणिजनितविषाग्निसम्प्रदुष्ट भवति शिवं तदगस्त्यदर्शनेन ॥१३॥ स्मरणादपि पापमपाकुरुते किमुत स्तुतिभिर्वरुणाङ्गरुहः मुनिभिःकथितोऽस्य यथार्घविधिः कथयामि तथैव नरेन्दहितम् ॥१४॥ संख्याविधानात् प्रतिदेशमस्य विज्ञाय सन्दर्शनमादिशेज्ज्ञः । तच्चोज्जयन्यामगतस्य कन्यां भागैः स्वराख्यैः स्फुटभास्करस्य ॥१५॥ ईषत्प्रभिन्नेऽरुणरश्मिजालैर्नैशेऽन्धकारे दिशिदक्षिणस्याम् । सांवत्सरावेदितदिग्विभागे भूपोऽर्घमुर्व्यां प्रयतः प्रयच्छेत् ॥१६॥ कालोद्भवैः सुरभिभिः कुसुमैः फलैश्च रत्नैश्च सागरभवैः कनकाम्बरैश्च । धेन्वा वृषेण परमान्नयुतैश्च भक्ष्यैर्दध्यक्षतैः सुरभिधूपविलेपनैश्च ॥१७॥ नरपतिरिममर्घं श्रद्दधानो दधानः प्रविगतगददोषो निर्जितारातिपक्षः । भवति यदि च दद्यात् सप्त वर्षाणि सम्यग् जलनिधिरसनायाःस्वामितां याति भूमैः ॥१८॥ द्विजो यथालाभमुपाहृतताघः प्राप्नोति वेदान् प्रमदाश्च पुत्रान् । वैश्यश्च गां भूरिधनं च शूद्रो रोगक्षयं धर्मफलं च सर्वे ॥१९॥ रोगान् करोति परुषः कपिलस्त्ववृष्टिं धूम्रो गवामशुभकृत् स्फुरणो भयाय । मञ्जिष्टरागसदृशः क्षुधमाहवांश्च कुर्यादणुश्च पुररोधमगस्त्य नामा ॥२०॥ शातकुम्भसदृशः स्फटिकाभस्तर्पयन्निव महीं किरणौघैः । दृश्यते यदि ततःप्रचुरान्ना भूर्भवत्यभयरोगजनाढ्या ॥२१॥ उल्कया विनिहतः शिखिना वा क्षुद्भयं मरकमेव च धत्ते । दृश्यते स किल हस्तगतेऽर्के रोहिणीमुपगतेऽस्त मुपैति ॥२२॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामगस्त्यचारो द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

सूर्य भगवान्‌का मार्ग रोकनेके लिये बढे हुए शिरवाले विन्ध्याचलको जिन्होंने थाम दिया था, देवताओंके शत्रु और मुनियोंके कोंखके भेदन करनेवाले वातापि नामक असुरको जिन्होंने पचा डाला था, जो समुद्रको पान कर गये थे और तपरूप समुद्रद्वारा जिन्होंने दक्षिण दिशाको विभूषित किया था, मुकुट और रत्नधारी देवताओंको मानो तिरस्कार, देनेके लिये जिन करके पूर्वकालमें हठात् जलराशिके विनाशित होनेसे, मकरगणोंके नखरोंसे उत्खात शिखर जलान्तर्वर्ती शैलद्वारा और श्रेष्ठ मणि वा रत्नराजि करके निकले हुए गिरते हुए मोती मिले। जलराशिसे जलनिधि अधिक रुचिर हुआ था, नदीपति समुद्र, जिसके द्वारा जलहीन होकर भी वृक्षहीन पर्वत, मणि, रत्न, विद्रुम और तहांसे निकले हुए सर्पोंके द्वारा शोभित होकर भी अत्यन्त विराजमान हुआ था, प्रस्फुरणशाली अर्थात् कूदते हुए नाके वा जलहस्तियोंके द्वारा टेढा चलता हुआ महोदधि समुद्रका जलजिसने पान करलिया, आपदाका आस्पद होकर भी जो समुद्र स्वर्गीय शोभाको प्राप्त हुआ था और जिस कालमें जलके हरे जाने परभी तैरते हुए नाके सीपियें और शंखोंसे व्याप्त हुआ सरितपति, शरत्कालमें तरंग युक्त, शुभ्रवर्ण, कमल व हंसशोभित पुष्करणीकी शोभाको धारण करता था जिस आकाशमें तिमिरूप श्वेतवर्ण मेघ मणिरूप तारा, स्फटिकरूपचंद्र और सर्पोंके फणपर स्थित मणियेंही जिसमें किरणदार धूमकेतु रूपसे विराजमान हुई थीं उस निर्जल शरत्कालके शोभायमान समुद्ररूप आकाशको जिन्होंने उत्पन्न किया था, जल-राशिके निर्मल करनेवाले उन अगस्त्यका विवरण यहाँ संक्षेपसे कहा जाता है ॥१॥२॥३॥४॥५॥६॥ सूर्यके रथका मार्ग रोकनेके लिये विन्ध्यपर्वत बराबर बढता जाता था, उस समय उसके शिखरोंके बढनेकी चेष्टासे जो फडक रहे थे उसके शिखरोंपर रहनेवाले विद्याधरगण भ्रमचकित और गिरनेके निकट हुए थे इस कारण उनके कंधोंपर स्थित हुई सुंदरियोंने घबडाकर आकाशकी गोदीमें देहको लम्बमान कर दिया था, उस कालके समय उनकी गोदिमें और देहके समस्त वस्त्र उडती हुई पताकाके समान शोभायमान होने लगे, बस वह उन्नत ध्वजायमान विद्याधरगण विन्ध्यपर्वतको शोभायमान कर रहे थे. विन्ध्य-पर्वतकी कन्दरा और झरनोंमें मृगेंद्र (सिंह) वास करते थे, सिंहोंके मस्तकपर, बाण-कुसुमसे गुंध शिरपर धारण करने योग्य मालाके समान, मदजल मिलनेसे हाथीके कुंभकी रुधिरके स्वादिष्ट गंधसे अनुगामी होकर भ्रमरपांति शोभायमान हो रही थी। अति बडे-हाथियों करके प्रफुल्ल वृक्षोंके खींचनेसे त्रासके मारे अत्यन्त घबडाये मतवाली भ्रमरपां-तिका गंभीर संगीत ध्वनियुक्त और जरख, रीछ, व्याघ्र और शाखामृग (वानर) करके शब्दायमान शैलकूट (छोटा शृंग) द्वारा विन्ध्यपर्वत मानो आकाशमें कुछ लिख रहा था, विन्ध्यपर्वतके वनोंमें देवतालोग रहते हैं। जल पीनेवाले, अन्नत्यागी, मूलभोजी और पवनाहारी बहुतसे ब्राह्मणों करके युक्त, और मदसे आसक्त हुई रमणीकी समान रेवा (नर्मदा) नदी करके निर्जलमें आलिंगित उस विन्ध्यपर्वतको जिन्होंने रोक दिया था, उनके ही उदयका कुछ एक वर्णन श्रवण करो ॥७॥ जिस प्रकार बुरे लोगोंके समागम-रूप मलसे दूषित हृदयवाला साधुका दर्शन करतेही स्वभावसेही निर्मल हो जाता है वैसेही वर्षाकालीन मट्टीके योगवशसे कीचड मिला हुआ जल अगस्त्यमुनिका उदय होतेही स्वभावसे-ही निर्मल हो जाता है ॥८॥ जिस प्रकार सुंदरी स्त्रीके हंसनेके समय ताम्बूलरागरंजित अतएव रक्तवर्ण ओष्ठाधरके मध्यभागमें श्वेतन्तपांति विराजमान होती है, वैसेही अगस्त्य

जीके उदयसे दोनों पार्श्वमें अधिष्ठित दो लालवर्ण चक्रवाकोंके बीचमें विराजमान शब्दायमान हंसावली द्वारा नदियां शोभायमान होती हैं ॥९॥ अगस्त्य मुनिके उदय होनेसे नदियां नीलपद्मके निकटस्थित श्वेतपद्मयुक्त और उसके ऊपर भ्रमण करती हुई भ्रमरपांतिसे शोभित होनेसे मानो भावोंके साथ कटाक्षको चलाने वाली कामके वश हुई विदग्धस्त्रीके समान शोभायमान होती हैं ॥१०॥ तरंगरूप कंगण धारण करनेवाली, दीर्घिका रूप कामिनी रात्रिकालमें मेघ चले जानेसे बढे हुए चंद्रमाकी विभूतिको दर्शन करनेहीके लिये मानो अंतर्गत भ्रमरयुक्त कुमुदरूप कृष्णतारेवाले श्रेष्ठ पलकदार नेत्रोंको खोलती हैं ॥११॥ अनेक प्रकारके मनोहर पद्म, हंस, चक्रवाक और कारण्डवादिद्वारा परिपूर्ण, तडागरूप हस्तयुक्त पृथ्वी मानो बहुतसे रत्न, पुष्प और फलोंसे मुनि अगस्त्यजीको अर्घ देती है ॥१२॥ इन्द्रकी आज्ञासे वरषा हुआ जल, मेघपरिवेष्टित मूर्ति सर्पोंके फणोंसे निकली विषरूप अग्निद्वारा पुष्ट होने पर भी अगस्त्यमुनिके दर्शनसे शुभदाई हो जाती है ॥१३॥ जिनका स्मरण करतेही पापसमूह दूर हो जाते हैं, उन बरुण कुमार अगस्त्यजीकी स्तुति करनेका फल हम कहां तक कहें, मुनिलोगोंने उन *अगस्त्यजीके अर्घकी विधि जिस प्रकारसे कही है, राजाओंकी हितकारी वह व्यवस्था अब कही जाती है ॥१४॥ पण्डितलोग गणितके नियमानुसार अगस्त्य जीका उदय गिनकर सब देशोंमें आदेश करेंगे। जब सूर्यका स्पष्ट कन्याराशिका सात अंश कम अर्थात् ४।२३ चार राशि २३ अंश होगा। यह प्रायः भाद्रमासके २२-२३-२४ दिन तक होता है) तब उज्जयिनीनगरीमें अगस्त्यमुनिका उदय होगा ॥१५॥ सूर्यनारायनकी किरणोंसे जब रात्रिका अंधकार कुछ एक नाशको प्राप्त हो जाता है (भोरकी बेला) तब दैवज्ञके द्वारा प्रकाशित दिशाओंका विभाग ("यह दक्षिण दिशा है, इस दिशामें भगवान् अगस्त्यजीको अर्घ्य दो" इस प्रकार दैवज्ञकी आज्ञा पाय) राजाको उचित है कि दक्षिणदिशामें यथाकालमें उत्पन्न हुए अर्थात् शरत्कलके पुष्प, फल, समुद्रके निकले हुए रत्न, सुवर्ण, वस्त्र, धेनु वृषभ, परमान्नयुक्त, भक्ष्य, दही, अक्षत, सुगंधि धूप और चंदनादिद्वारा विरचित अर्घ्य पृथ्वी ऊपर देय ॥१६॥१७॥ यदि राजा श्रद्धावान् होकर इस प्रकार अर्घ्य धारण करे तो निरोग होकर समस्त शत्रुओंको जीते। और यदि इसी प्रकारसे सात वर्ष तक अर्घ्य देता रहे तो समुद्ररशना पृथ्वीका स्वामी अर्थात् चक्रवर्ती हो जाय ॥१८॥ जो ब्राह्मणलोग जितनी वस्तु मिले उससेही अगस्त्यजीको अर्घ्य दे तो चारों वेदोंके अधिकारी हों और सुंदरी स्त्री व पुत्रलाभ करें। बनियें भी यदि यथालब्ध वस्तु (अर्थात् जितनी वस्तु मिले) उससे अगस्त्यको अर्घ्य दें तो गाय ढोर और अधिक धनको प्राप्त करते हैं ॥१९॥ अगस्त्य नक्षत्र यदि पुरुष अर्थात् रूखा दिखाई दे तो रोग होता है, कपिल वर्ण होनेसे अनावृष्टि, धूम्र वर्ण होनेसे गाय ढोरोंका अशुभ, स्फुरण अर्थात् कम्पनशाली होनेसे भय, मंजीठके समान रंग होनेसे क्षुधा युद्ध और

---

* "अशीतिभागैर्याम्यायामगस्त्यो मिथुनान्तः।" मिथुनराशिकी पिछली सीमामें और ८० अंश दक्षिण विक्षेपमें दिखाई देनेवाला ताराही अगस्त्य है। "स्वात्यगस्त्यमृगव्याधचित्राज्येष्ठाः पुनर्वसु। अभिशिद् ब्रह्महृदयं त्रयोदशभिरंश ॥" स्वाती, अगस्त्य, मृग व्याध चित्रा, ज्येष्ठा, पुनर्वसु, अभिजित् और ब्रह्महृदयं नामक समस्त नक्षत्र १३ अंशशकालांशमें उदय या अस्त होते हैं। सूर्य सिद्धांत ॥

सूक्ष्म होनेसे नगरका रोध (रुकना होता है ।।२०।। अगस्त्य नक्षत्र यदि शातकुंभ * अर्थात् चांदीके समान वा स्फटिक (विल्लौर, के समान शुभ्रवर्ण होकर किरणोंसे पृथ्वीको तृप्त करे तो पृथ्वी बहुत अन्नवाली होकर भय और रोग रहित जनोंसे परिपूर्ण हो जाती है ।।२१।। यदि अगस्त्यजी उल्का या केतुसे आहत हो तो सुधाभय और मरी पडती है, जब सूर्य हस्तनक्षत्रमें गमन करे तो अगस्त्य नक्षत्र सब प्रदेशोंमें दिखाई देता है और रोहिणीमें सूर्य गमन करे तो सब देशोंमें अस्त हो जाते हैं ।।२२।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्सहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां द्वादशोऽध्यायः ।।१२।।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

सप्तर्षिचारः

सैकावलीव राजती ससितोत्पलमालिनी सहासेव । नाथवतीव च दिग्यैः कौबेरी सप्तभिर्मुनिभिः ।।१।। ध्रुवनायकोपदेशान्नरिनर्त्तीवोत्तरा भ्रमद्भिश्च । यैश्चारमहं तेषां कथयिष्ये वृद्धगर्गमतात् ।।२।। आसन्मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ । षड्द्विकपञ्चद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च ।।३।। एकैकस्मिन्नृक्षे शतं शतं ते चरन्ति वर्षाणाम् । प्रागुत्तरतश्चैते सदोदयंते समाध्वीकाः ।।४।। पूर्वे भागे भगवान् मरीचिरपरे स्थितो वसिष्ठोऽस्मात् । तस्याङ्गिरास्ततोऽत्रिस्तस्यासन्नः पुलस्त्यश्य ।।५।। पुलहः क्रतुरिति भगवानासन्नानुक्रमेण पूर्वाद्याः । तत्र वसिष्ठं मुनिवरमुपाश्रितारुन्धती साध्वी ।।६।। उल्काशनिधूमाद्यैर्हता विवर्णा विरश्मयो ह्रस्वा । हन्युः स्वं स्वं वर्गं विपुलाः स्निग्धाश्च तद्वृद्धये ।।७।। गंधर्व देवदानव-मंत्रोषधिसिद्धयक्षनागानाम् । पीडाकरो मरीचिर्ज्ञेयो विद्याधराणां च ।।८।। शक-यवनदरदपारतकाम्बोजांस्तापसान् वनोपेतान् । हन्ति वसिष्ठोऽभिहतो विवृद्धिदो रश्मिसंम्पन्नः ।।९।। अङ्गिरसो ज्ञानेयुता धीमन्तो ब्राह्मणाश्च निर्दिष्टाः । अत्रेः-कान्तारभवा जलजान्यम्भोनिधिः सरितः ।।१०।। रक्षःपिशाचदानवदैत्यभुजङ्गाः स्मृताः पुलस्त्यस्य पुलहस्य तु मूलफलं क्रतोस्तु यज्ञाः सयज्ञभृतः ।।११।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां सप्तर्षिचारस्त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

श्वेतकमलकी माला पहरे कामिनीके समान उत्तरदिशा, जो सप्तर्षि × मण्डलसे, एक लडीकी माला पहिरनेसे शोभायमान, मंद मुसुकानयुक्त और सनाथासी जान पडती है और ध्रुव नक्षत्ररूप नायकके उपदेशसे इधर उधर भ्रमण करनेवाले सप्तर्षियोंके साथ उत्तर दिशा मानो वारम्वार नाचती है, वृद्ध गर्गजोके मतानुसार उनकी गतिका विषय कहा जायगा ।।१।।२।। जब राजा युधिष्ठिर पृथ्वीका राज्य करते थे, तब मघानक्षत्रमें

---

* "भातकुम्भशब्दः सुवर्णरौप्ययोर्द्वयोरपि वाचकः अत्र तु रूप्यवाचक." इति महोत्पलः।

× श्रीमद्भागवतटीकामें श्रीधरस्वामीके मतके साथ इस सप्तर्षिमण्डलसंस्थानका भेद है।

सप्तर्षि थे, शकाब्द अंकके साथ २५२६ मिलानेसे युधिष्ठिरका समय जानता ।।३।। वह एक २ नक्षत्रमें शत २ वर्षतक विचरण करते हैं। यह उत्तर-पूर्वदिशामें सदा साध्वी अरुन्धतीके साथ उदय होते हैं ।।४।। पूर्वभागमें भगवान् मरीचि मरीचिकी पश्चिम दिशामें वसिष्ठ, उनके पीछे अंगिरा तदनन्तर अत्रि, उनके निकट पुलस्त्य, पुलह और भगवान् ॠतु क्रमानुसार पूर्व दिशामें विराजमान हैं, उनमें साध्वी अरुन्धती, मुनीश्रेष्ठ वसिष्ठजीका आश्रय लिये हुए हैं ।।५।।६।। उल्का, वज्र वा धूमादिसे हत, विवर्ण, ज्योतिहीन और ह्रस्व होनेपर वह अपने २ वर्गका नाश करते और विपुल वा स्निग्ध होने पर अपने अपने वर्गको बढाते हैं। ।७।। मरीचि किसी प्रकारसे पीडित हो तो गंधर्व, देव, दानव, मंत्रौषधि, सिद्ध, यक्ष, नाग और विद्याधरोंको पीडादायक होते हैं ।।८।। वसिष्ठजी पीडित हों तो शक, यवन, दरद, पारत, काम्बोज और वनवासी तपस्वियोंका नाश करते हैं परंतु किरणयुक्त होकर वृद्धि करते हैं ।।९।। अंगिरा हत होकर ज्ञानी, बुद्धिमान् पुरुष और ब्राह्मणोंका नाश करता है। अत्रिका व्याघात हो तो कान्तारजात, जलजात, जलनिधि और नदियोंका नाश होता है ।।१०।। पुलस्त्यजीके विघ्नसे राक्षस पिशाच, दानव, दैत्य, भुजंगगण; पुलहका भेद होनेसे मूल, फल और ऋतुमुनिका विघ्न होनेसे यज्ञ करने वालोंको विघ्न होता है ।।११।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायापश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ।।१३।।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

कूर्मविभाग

नक्षत्रत्रयवर्गैराग्नेयाद्यैर्व्यवस्थितैर्नवधा । भारतवर्षे मध्यात् प्रागादिविभाजिता देशाः ।।१।। भद्रारिमेदमाण्डव्यसाल्वनीपोज्जिहानसंख्यताः । मरुवत्सघोषयामुनसारस्वत-मत्स्यमाध्यमिकाः ।।२।। माथुरकोपज्योतिषधर्मारण्यानिशूरसेनाश्च । गौरग्रीवोद्दे-हिकगुडाश्वत्थपाञ्चालाः ।।३।। साकेतकंककुरुकालकोटिकुकुराश्च पारियात्रनगः । औदुम्बरकापिष्ठलगजाह्वयाश्चेति मध्यमिदम् ।।४।। अथ पूर्वस्यामञ्जनवृषभध्व-जपद्ममाल्यवद्गिरयः । व्याघ्रमुखसूक्ष्मकर्वटचान्द्रपुराः शूर्पकर्णाश्च ।।५।। खसमग-धशिबिरगिरिमिथिलसमतटौड्राश्ववदनदन्तुरकाः । प्राग्ज्योतिषलौहित्यक्षीरोदसमु-द्रपुरुषादाः ।।६।। उदयगिरि भद्रगौडकपौण्ड्रोत्कलकाशिमेकलाम्बष्ठाः । एकपदता-म्रलिप्तिककोशलका वर्द्धमानश्च ।।७।। आग्नेय्यां दिशि कोशलकलिंगवङ्गोपवङ्ग-जठराङ्गाः । शौलिकविदर्भवत्सान्ध्रचेदिकाश्चोर्ध्वकण्ठाश्च ।।८।। वृषनालिकेरचर्म-द्वीपा विन्ध्यान्तवासिनस्त्रिपुरी । श्मश्रुधरहेमकूटव्यालग्रीवा महाग्रीवाः ।। ९ ।। किष्किन्धाकण्कस्थलनिषादराष्ट्राणि पुरिकदाशार्णाः । सह नग्नपर्णशबरैराश्लेषाद्ये त्रिके देशाः ।।१०।। अथ दक्षिणेन लंका कालाजिनसौरिकीर्णतालिकटाः । गिरिनग-रमलकदर्दुरमहेन्द्रमालिन्द्यामरुकच्छाः ।।११।। कंकटटंकणवनवासिशिबिकफणिका-

रकोंकणाभीराः। आकरवेणावन्तकदशपुरगोनर्दकेरलकाः ॥१२॥ कर्नाटमहाटविचित्रकूटनासिक्याकोल्लगिरिचोलाः। क्रौंचद्वीपजटाधरकावेर्यो ऋष्यमूकश्च ॥१३॥ वैडूर्यशंखमुक्तात्रिवारिचरधर्मपट्टनद्वीपाः। गणराज्यकृष्णवेल्लूरशिपिकशूर्पाद्रिकुसुमनगाः ॥१४॥ तुम्बवनकार्मणेयकयाम्योदधितापसाश्रमा ऋषिकाः। काञ्ची मरुचीपट्टनचेर्यार्यकसिंहला ऋषभाः ॥१५॥ बलदेवपट्टनं दण्डकावनतिमिंगिलाशना भद्राः। कच्छोऽथ कुञ्जरदरी सताम्रपर्णीति विज्ञेयाः ॥१६॥ नैर्ऋत्यां दिशि देशाः पह्लवकाम्बोजसिंधुसौवीराः। वडवामुखारवाम्बष्ठकपिलनारीमुखानर्त्ताः ॥१७॥ फेणगिरियवनमाकरकर्णप्रावेयपाराशरशूद्राः ॥ बर्बरकिरातखण्डक्रव्याश्याभीरचंचूकाः ॥१८॥ हेमगिरिसिन्धुकालकरैवतकसुराष्ट्रबादरद्रविडाःस्वात्याद्ये भत्रितये ज्ञेयश्चमहार्णवोऽत्रैव ॥१९॥ अपरस्यां मणि। मान् मेघवान् वनौघः क्षुरार्पणोऽस्तगिरिः। अपरान्तकशान्तिकहैहयप्रशस्ताद्रिवोक्काणाः ॥२०॥ पञ्चनदरमठपारततारक्षितिजृंगवैश्यकनकशकाः। निर्मर्यादा म्लेच्छा ये पश्चिमदिक्स्थितास्ते च ॥२१॥ दिशि पश्चिमोत्तरस्यां माण्डव्यतुषारतालहल मद्राः। अश्मककुलूतलहडस्त्रीराज्यनृसिंहवनखस्थः ॥२२॥ वेणुमती फल्गुलुका गुरुहा मरुकुत्सचर्मरङ्गाख्याः। एकविलोचनशूलिकदीर्घग्रीवास्यकेशाश्च ॥ २३ ॥ उत्तरतः कैलासो हिमान्वसुमान् गिरिर्धनुष्मांश्च। क्रौञ्चो मेरुः कुरवस्तथोत्तराः क्षुद्रमीनाश्च ॥२४॥ कैकयवसातियामुनभोगप्रस्थार्जुनायनाग्नीध्राः। आदर्शान्तद्वीपित्रिगर्त्ततुरगाननाश्वमुखाः ॥२५॥ केशधरचिपिटनासिकदासेरकवाटधानशरधानाः। तक्षशिलापुष्कलावतकैलांवतकण्ठधानाश्च ॥ २६ ॥ अम्बरमद्रकमालवपौरवबच्छादण्डपिङ्गलकाः। माणहलहूणकोहलशीतिकमाण्डव्यभूतपुराः ॥ २७ ॥ गांधारयसोवतिहेमतालराजन्यखचरगव्याश्च। यौधेयदासमेयाः श्यामकाः क्षेमधूर्त्ताश्च ॥२८॥ ऐशान्यां मेरुकनष्टराज्यपशुपालकीरकाश्मीराः। अभिसारदरदतङ्गणकुलूतसैरिन्ध्रवनराष्ट्राः ॥ २९ ॥ ब्रह्मपुरदार्वडामरवनराज्यकिरातचीन कौणिन्दाः। भल्लापलोलजटसुरकुनठखसघोषकुचिकाःख्याः ॥३०॥ एकचरणानुविश्वाः सुवर्णभूर्वसुवनं दिविष्ठाश्चपौरवचीरनिवसनत्रिनेत्रमुञ्जाद्रिगन्धर्वाः ॥३१॥ वर्ग्रैराग्नेयाद्यै। क्रूरग्रहपीडितैः क्रमेण नृपाः। पाञ्चालो मागधिकः कालिगश्च क्षयं यान्ति ॥३२॥ आवर्न्तोऽथानर्तो मृत्युं चायाति सिन्धुसौवीरः। राजा च हारहौरो भद्रेशोऽन्यश्च कौणिन्दः ॥३३॥

इति श्रीवराहमिहिरकृत बृहत्संहितायां कूर्मविभागश्चतुर्दशोध्यायः ॥१४॥

तीन २ नक्षत्रोंका एक एक वर्ग होता है। इस प्रकारसे नौ वर्ग हैं। इन सब वर्गोंका आरंभ कृत्तिका नक्षत्रसे होता है। भारतवर्षके बीचमें प्रदक्षिणाके क्रमानुसार सब देश इसके द्वारा विभाजित हुए हैं ॥१॥ मध्यदेश, भद्र, अरिमेद, माण्डव्य, साल्व, नीप,

उज्जिहान, संख्यात, मरु, वत्सघोष, यामुन, सारस्वत, मत्स्य, माध्यमिक, माथुर, उपज्योतिष, धर्मारण्य, शूरसेन, सौरग्रीव, उद्देहिक, पाण्डुगुड, अश्वत्थ, पांचाल, साकेत, कंक कुरु, कालकोटि, कुकुर, परियात्र नग, औदुम्बर, कपिष्ठल और हस्तिनादेश (३) (४) (५) नक्षत्रमें विराजमान है ॥२॥३॥४॥ अनन्तर पहिले अंजन, वृषभध्वज, पद्म, माल्यवद्गिरि, व्याघ्रमुख, सूक्ष्म, कर्वट, चान्द्रपुर, शूर्पकर्ण, खस, मगध, शिबिरगिरि, मिथिल, समतट, ओड्र, अश्वदन, दन्तुरक, प्राग्ज्योतिष, लौहित्य, क्षीरोद समुद्र, पुरुषाद, उदयागिरि, भद्रगाडैक, पौण्ड्र, उत्कल, काशी, मेकल, अम्बष्ठ, एकपद, ताम्रालिप्तिक, कोशलक और वर्धमान ये सब देश (६) (७) (८) नक्षत्रमें विराजमान हैं ॥५॥ ६॥७॥ अग्निकोणमें कोशल कलिंग, वंग, उपवंग, जठर, अंग, शौलिक, विदर्भ, वत्स, अंध्र, चेदिक, ऊर्ध्वकण्ठ, वृष नालिकेर, चर्मद्वीप विन्ध्याचलके निकट, त्रिपुरी, श्मश्रुधर, हेमकूट, व्यालग्रीव, महाग्रीव किष्किन्धा, कण्टकस्थल, निषादराष्ट्र, पुरिक, दशार्ण नग्नपण और शबर ये सब देश आश्लेषादि तीन नक्षत्रोंमें (९) १०) (११) विराजमान हैं ॥८॥९॥१०॥ तदन्तर दक्षिणमें, लंका, कालाजिन, सौरिकीर्ण, तालिकट, गिरिनगर, मलय, दर्दुर, महेन्द्र, मरुकच्छ, कंकट, टंकण वनवासी, शिबिक, फणिकार, कोंकण, आभीर, आकार, वेण, आवन्तक, दशपुर, गोनर्द, केरल, कर्णाट, महाटवी, चित्रकूट, नासिक्य, कोल्लागिरि, चोल, क्रौंचद्वीप, जटाधर कावेरी, ऋष्यमूक, वैदूर्य शंखमुक्ताकर देश अत्र्याश्रम, वारिचर, धर्मपुरद्वीप, गणराज्य, कृष्णावेल्लूर, पिशिक, शूर्पाद्रि, कुसुम, नग, तुम्बवन, कार्मणेयक, दक्षिणसमुद्र, तापसाश्रम ऋषिक, काञ्ची, मरुचीपतन, चेय, आर्यक, सिंहल, ऋषभ, बलदेव, पत्तन, दण्डकावन तिमिङ्गिलाशन, भद्रकच्छ, कुञ्जरदरी, और ताम्रपर्णी आदि देश (१२) (१३) (१४) नक्षत्रमें विराजमान हैं ॥११॥१२॥१३॥१४॥१५॥१६॥ नैऋतकोणमें पह्लव, काम्बोज, सिन्धु, सौवीर, वडवामुख, अरव, अम्बष्ठ, कपिल, नारीमुख, आनर्त, फेणगिरि, यवन, माकर, कर्णप्रावेय, पराशर, शूद्र, बर्बर, किरातखण्ड, क्रव्याद, आभीर, चंचूक, हेमगिरि सिन्धुकालक, रैवतक, सुराष्ट्र, बादर और द्रविडादिदेश और समुद्र स्वाती आदि तीन नक्षत्रमें (१५) (१६) (१७) विराजमान हैं ॥१७॥१८॥१९॥ पश्चिमदिशामें मणिमान् मेघवान् वनौघ, क्षुरार्पण, अस्तगिरि, अपरान्तक, शांतिक, हैहय, प्रशस्ताद्रि, वोक्काण, पञ्चनद, रामठ, पारत, तारक्षिति, जृंग, वैश्य, कनक, शक और जो लोग मर्यादाहीन पश्चिमदिशाके रहनेवाले हैं वे लोक (१८) (१९) (२०) नक्षत्रमें रहते हैं ॥२०॥ ॥२१॥ पश्चिमोत्तर दिशामें माडव्य, तुषार, ताल, हल, मद्र, अश्मक, कुलूत, लहड, स्त्रीराज्य, नृसिंहवन, खस्त, वेणुमति, फल्गुलुका, गुरुहा, मरुकुत्स, चमरंग एकविलोचन, शूलिक, दीर्घग्रीव और आस्यकेश ये सब देश (२१) (२२) (२३) नक्षत्रमें विद्यमान हैं। उत्तरदिशामें कैलास, हिमवान्, वसुमान्, धनुष्मान्, क्रौंच, मेरुगिरि, उत्तरकुरु, क्षुद्रमीन, कैकय, वसाति, यामुन, भोगप्रस्थ, अर्जुनायन, अग्नीध्र, आदर्श, आन्तद्वीपी, त्रिगर्त, तुरगानन, अश्वमुख, केशधर, चिपिटनासिक, दासेरक, वाटधान, सरधान, तक्षशिल, पुष्कलावत, कैलावत, कण्ठ, धान, अम्बर, भद्रक, मालव, पौरव, कच्छार, दन्तपिंगलक, मान, हल, हूण, कोहल, शीतल, माण्डव्य, भूतपुर, गान्धार, यशोवति, हेमताल, राजन्य, खचर, गव्य, यौधेय. दासमेय, श्यामक और क्षेमधूर्तादि देश (२४) (२५) (२६) नक्षत्रमें विराजमान हैं ॥२२॥२३॥२४॥२५॥२६॥२७॥२८॥ ईशानकोणमें मेरुक, नष्टराज्य, पशुपाल, कीर,

काश्मीर, अभिसार, दरद, तंगण, कुलूत, सैरिन्ध्र, वनराष्ट्र, ब्रह्मपुर, दार्वडामर, वनराज्य, किरात, चीन, कोणिन्द, भल्लाप, लोलजट, सुरकुनठ, खस, घोष, कुचिक, एकचरण, अनुविश्व, सुवर्णभू, वसुवन, दिविष्ठ, पौरव , चीरनिवसन, त्रिनेत्र, मुञ्जाद्रि और गन्धर्वादि समस्त देश (२७) (१) (२) नक्षत्रमें रहते हैं ॥२९ ॥ ३० ॥ ३१॥ आग्नेयादि समस्त वर्ग पापग्रहादिसे पीडित होनेपर यथाक्रमसे पांचाल, मागधिक, कालिङ्ग, आवन्त आनर्त, सिन्धुसौवीर, हारहौर, भद्र और कोणिन्द देशके राजाओंका नाश होता है ॥३२॥३३

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पंचदशोऽध्यायः

नक्षत्रव्यूहः

आग्नेये सितकुसुमाहिताग्निमंत्रज्ञसूत्रभाष्यज्ञाः । आकरिकनापितद्विजघटकारपुरोहिताब्दज्ञाः ॥ १ ॥ रोहिण्यां सुव्रतपण्यभूपधनियोगयुक्तशाकटिकाः । गोवृषजलचरकर्षकशिलोच्चयैश्वर्यसम्पन्नाः ॥ २ ॥ मृगशिरसि सुरभिवस्त्राब्जकुसुमफलरत्नवनचरविहंगाः । मृगसोमपीथिगान्धर्वकामुका लेखहाराश्च ॥ ३ ॥ रौद्रे वधबन्धानृतपरदारस्तेयशाठ्यभेदरताः । तुषधान्यतीक्ष्णमंत्राभिचारवेतालकर्मज्ञाः ॥४॥ आदित्येसत्यौदार्यशौचकुलरूपधीयशोऽर्थयुताः । उत्तमधान्यं वणिजः सेवाभिरताः सशिल्पिजनाः ॥ ५ ॥ पुष्ये यवगोधूमाः शालीक्षुवनानि मन्त्रिणो भूपाः सलिलोपजीविनः साधवश्च यज्ञेष्टिसक्ताश्च ॥६॥ अहिदेवे कृत्रिमकन्दमूलफलकीटपन्नगविषाणि । परधनहरणाभिरतास्तुषधान्यंसर्वभिषजश्च ॥ ७ ॥ पित्र्ये धनधान्याढ्याः कोष्ठागाराणिपूर्वताश्रायिणः । पितृभक्तवणिक्शूराः क्रव्यादाःस्त्रीद्विषो मनुजाः ॥ ८ ॥ प्राक्फल्गुनीषु नटयुवतिसुभगगान्धर्वशिल्पिपण्यानि । कर्पासलवणमाक्षिकतैलानि कुमारकाश्चापि ॥९॥ आर्यम्णेमार्दवशौचविनयपाषण्डिदानशास्त्ररताः । शोभनधान्यमहाधनधर्मानुरताः समनुजेन्द्राः ॥ १० ॥ हस्ते तस्करकुञ्जररथिकमामात्रशिल्पिपण्यानि । तुषधान्यं क्षुतयुक्ता वणिजस्तेजोवायुताश्चात्र ॥ ११ ॥ त्वाष्ट्रे भूषणमणिरागलेख्य गान्धर्वगन्धयुक्तिज्ञाः । गणितपटुतन्तुवायाः शालाक्या राजधान्यानि ॥१२॥ स्वातौ खगमृगतुरगा वणिजो धान्यानि वातबहुलानि । अस्थिरसौहृदलघुसत्त्वतापसाः पण्यकुशलाश्च ॥ १३ ॥ इन्द्राग्निदैवते रक्तपुष्पफलशाखिनः सतिलमुद्गाः । कार्पासमाषचणकाः पुरन्दरहुताशभक्ताश्च ॥१४॥ मैत्रे शौर्यसमेता गणनायकसाधुगोष्ठियानरताः । ये साधवश्च लोके सर्वं च शरत्समुत्पन्नाम् ॥ १५॥ पौरैन्द्रेऽतिशूराः कुलवित्तयशोऽन्विताः परस्वहृतः । विजि गीषवो नरेन्द्राः सेनानां चापि नेतारः ॥१६॥ मूले भेषजभिषजो गणमुख्याः कुसुममूलफलवार्त्ताः । बीजान्य-

तिधनयुक्ताः । फलमूलैर्ये च वर्तन्ते ।। १७ ।। आप्ये मृदवो जलमार्गगामिनः सत्यशौचधनयुक्ताः । सेतुकरवारिजीवकफल कुसुमान्यम्बुजातानि ।। १८ ।। विश्वेश्वरे महामात्रमल्लकतरितुरगदेवताभक्ताः । स्थावरयोधाभोगान्विताश्चये-चौजसायुक्ताः ।। १९ ।। श्रवणेमायापटवोनित्योद्युक्ताश्च कर्मसु समर्थाः । उत्साहिनःसधर्मा भागवताः सत्यवचनाश्च ।।२०।। वसुभे मानोन्मुक्ताःक्लीबाश्च-लसौहृदाःस्त्रियां द्वेष्याः दानाभिरता बहुवित्तसंयुताःशमपराश्चनराः ।। २१ ।। वरुणेशेपाशिकमत्स्यबन्धजलजानि जलचरा जीवाः । सौकरिकरजकशौण्डिकशा-कुनिकाश्चापि वर्गेऽस्मिन् ।।२२।। आजे तस्करपशुपालहिंस्रकीनाशनीचशठचेष्टाः । धर्मव्रतैर्विरहितानियुद्धकुशलाश्च मनुजाः ।।२३।। आहिर्बुध्न्ये विप्राः क्रतुदानतपो युता महाविभवाः । आश्रमिणः पाषण्डा नरेश्वराःसारधान्यं च ।। २४ ।। पौष्णे सलिलजफलकुसुमलवणमणिशंखमौक्तिकाब्जानि । सुरभिकुसुमानि गंधा वणिजा नौकर्णधाराश्च ।।२५।। अश्विन्यामश्वहराः सेनापतिवैद्यसेवकास्तुरगाः । तुरगारोहाश्च वणिग्रुपोपेतास्तुरगरक्षाः ।। २६ ।। याम्येऽसृक्पिशितभुजः क्रूरा वधबन्धताडनासक्ताः । तुषधान्यं नीचकुलोद्भवा विहीनाश्च सत्त्वेन ।। २७ ।। पूर्वात्रयं सानलमग्रजानां राज्ञां तु पुष्येण सहोत्तराणि । सपौष्णमैत्रं पित्र्यदैवतं च प्रजापतेर्भं च कृषीवलानाम् ।।२८।। आदित्यहस्ताभिजिदाश्विनानि वणिग्जनानां प्रवदन्ति भानि । मूलत्रिनेत्रानिलवारुणानि भान्युग्रजातेः प्रभविष्णुतायाम् ।।२९।। सौम्येन्द्रचित्रासुदैवतानि । सेवाजनस्वाम्यमुपागतानि सार्पं विशाखा श्रवणोभ-रण्यश्चण्डालजातेरिति निर्दिशन्ति ।।३०।। रविरविसुतभोगमागतं क्षितिसुतभेदन-वक्रदूषितम् । ग्रहणगतमथोल्कयाहतं नियतमुषाकरपीडितं च यत् ।। ३१ ।। तदुपहतमिति प्रचक्षते प्रकृतिविपर्ययमातमेव वा । निगदितपरिवर्गदूषणं कथितविपर्ययगं समृद्धये ।।३१।।३२।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां नक्षत्रव्यूहः पञ्चदशोऽध्यायः ।१५।।

सफेद फूल, अग्निहोत्री, मंत्र जाननेवाले, सूत्रकी भाषा जाननेवाले, आकारिक, ताई द्विज, कुंमार, पुरोहित और अब्दज्ञ (वर्षके फलका जाननेवाला कृत्तिका) नक्षत्रके आधीन हैं ।।१।। सुव्रत, पण्य, राजा, धनी, योगी, शाकटिक, गाय, बैल, जलचर, किसान, पर्वत और सम्पत्तिमान् पुरुष रोहिणीके अधिकारमें हैं ।।२।। सुरभिवस्त्र, पद्म, कुसुम, फल, रत्न, वनचर, विहंग, मृग, यज्ञमें सोमरस पीनेवाले, गंधर्व, कामी और पत्रवाहकगण (डाँकिये) मृगशिराके वश हैं ।।३।। आर्द्रा नक्षत्रके वशमें, वध, बंध, मिथ्या, परदारहरण शाठ्य और भेद घरानेवाले पुरुष, भूसीधान्यसे तीक्ष्ण मंत्रकरके उच्चाटन मारणादि अभि-चार और वेतालकर्म जाननेवाले वर्त्तमान हैं ।।४।। पुनर्वसुमें उत्तम धान्य, सत्य, उदारता, शौच कुलरूप, बुद्धि, यश अर्थयुक्त सेवानियुक्त शिल्पजनसमन्वित बनिये विराजमान हैं ।।५।। जौ, गेहूं, सब प्रकारकी शाली, गन्ने, मंत्र जाननेवाले, सब राजा, जलसे आजीविका

करनेवाले और यज्ञकी क्रियामें आसक्त हुए साधुलोग पुष्यनक्षत्रमें हैं ॥६॥ आश्लेषाके अधिकारमें बनाये हुए कन्द, मूल, फल, कीडे, पन्नग (सर्प), विष, तुषधान्य, पराये धनको हरण करनेवाले पुरुष और समस्त वैद्य है ॥७॥ मघानक्षत्रके अधिकारमे धान्यागार और समस्त ग्रह, धन धान्ययुक्त पर्वतके रहनेवाले पितृभक्त बनिये, शूर, क्रव्याद और स्त्रियोंसे द्वेष करनेवाले मनुष्यगण हैं ॥८॥ नट युवती सुभगगायक, शिल्पी (कारीगर), कपास, नोन मधु, तेल और कुमारकगण पूर्वाफाल्गुनीके वश हैं ॥९॥ उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रके अधिकारमें मृदुता, पवित्रता, विनय, नास्तिकपन, दान और शास्त्ररत पुरुष राजा, सुन्दर धान्य और स्वधर्मानुरागी महाजन लोग विराजमान हैं ॥१०॥ तस्कर, कुंजर, रथी, मंत्री, शिल्पी, पण्य, तुषधान्य, वेदज्ञ और ज्योतिष जाननेवाले, वणिक् हस्तनक्षत्रके वशमें हैं ॥११॥ चित्राके वशमें भूषण, मणि, अंगराग लेख्य, गंधर्व, व्यवहार, गंधयुक्त जाननेवाले विज्ञानी, गणनामें निपुण लोग और जुलाहे वर्तमान हैं ॥१२॥ स्वातीमें खग, मृग, घोडे, धान्य, बहुतसी हवावाले स्थान, पण्यकुशल बनिये और जिनकी मित्रता स्थिर नहीं है ऐसे लघुस्वभाववाले तपस्वी लोग वास करते हैं ॥१३॥ विशाखानक्षत्रमें लाल फूल फलवाली शाखायें, तिल, मूंग, कपास, उर्द, चने, इंद्र और अग्निके भक्त (पारसी) हैं ॥१४॥ अनुराधामें शूरतासंपन्न, गणनायक साधुसमूहमें बैठनेवाले साधुलोग वर्त्तमान हैं और शरद ऋतुके उत्पन्न हुए समस्त द्रव्य हैं ॥१५॥ ज्येष्ठानक्षत्रके अधिकारमें कुल वित्त यशवाले, पराया धन हरण करनेवाले, अति शूरगण, विजयकी इच्छा करनेवाले राजा और समस्त सेनापति लोग हैं ॥१६॥ मूलमें औषध, वैद्य गणमुख्य लोग, फूल, फल, मूल, पत्ते, बीज और फल मूलसे जिविका करनेवाले और अतिधनवान् पुरुष विद्यमान हैं ॥१७॥ पूर्वाषाढामें मृदु जलपथगामी और सत्यशौचधनयुक्त मनुष्य, पुल बनानेवाले नहर काटनेवाले, सेवक फल समस्त कुसुम और समस्त पद्म हैं ॥१८॥ मंत्री, मल्लयोधा, हाथी, घोडे, तुरंग और देवताके भक्त, भोगवान्, तेजयुक्त, स्थावर, वीर लोक लोग उत्तराषाढामें ह ॥१९॥ श्रवणके वशमें माया जाननेमें चतुर, नित्य उद्योग करनेवाला कर्ममें सामर्थ्य रखनेवाला उत्साहयुक्त; धर्मपराण, भगवद्भक्त और सत्यवादी लोग हैं ॥२०॥ धनिष्ठामें मान छोडे हुए हीजडे, चंचल सुहृदतावाले स्त्रिद्वेशी दानरत, बहुतसे धनवाले और शांतिपरायण राजालोग वर्त्तमान हैं ॥२१॥ शतभिषामें व्याधे मत्स्यबन्ध-जलचरोंसे आजीविका करनेवाले शूकर पालनेवाले, धोबी, कलवार और शाकुनिकगण हैं ॥२२॥ तस्कर, पशुपालकह हिंसा करनेवाले, कीनाश, नीच और शठ चेष्टावाले, धर्मव्रतहीन, मल्लयुद्ध करनेमें चतुरलोग वास करते हैं ॥२३॥ उत्तराभाद्रपदानक्षत्रमें यज्ञ दान और तपवान् महाविभववाले, आश्रमी, राजा लोग, ब्राह्मण, पाखण्डी और श्रेष्ठ धान्य विराजमान हैं ॥२४॥ रेवतीके अधिकारमें जलसे उत्पन्न हुए फल, फूल, लवण, मणि, शंख मुक्ता, पद्म, सर्व प्रकारके सुगन्धित फूल, गन्ध, द्रव्य वनिये और नावके खेवट लोग हैं ॥२५॥ आश्विनीमें अश्वहर लोग, सेनापति वैद्य, सेवक, घोडे, घुडसवार, रईस, बनिये और रूपवान् पुरुष हैं ॥२६॥ भरणीके वशमें तुषधान्य रक्त मांस खानेवाले, क्रूर, वध, वन्ध ताडना करनेमें आसक्त और सद्गुणहीन लोक रहते हैं ॥२७॥ पूर्वाफाल्गुनी पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपदा और कृत्तिकानक्षत्र ब्राह्मणका अधिकारी है, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा और पुष्पनक्षत्र ब्राह्मणका अधिकारी है, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा उत्तरा-

भाद्रपदा और पुष्यनक्षत्र क्षत्रियोंका है. रेवती, अनुराधा, मघा और आश्विनी नक्षत्र बनियोंका अधिकारी कहा जाता है, मूल, आर्द्रा, स्वाती और शतभिषा उग्रजातिके प्रभु हैं ॥२८॥ ॥२९॥ मृगशिरा, ज्येष्ठा, चित्रा और धनिष्ठा नक्षत्र सेवकोंके स्वामी हैं। आश्लेषा, विशाखा, श्रवण और भरणी चाण्डाल जातिके स्वामी हैं ॥३०॥ जो नक्षत्र रवि और शनिसे मुक्त हैं, मंगलके भेदन या वक्रसे दूषित हैं, ग्रहणगत या उल्कासे हत हैं, अथवा सूर्यकिरणसे सदा पीडित होते हैं, वह उपहत अथवा प्रकृति विपर्ययगत या वारिवर्गदूषण अथवा विपर्ययगत कहलाते हैं ॥३१॥३२॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां पंचदशोऽध्यायः ॥१५॥

अथ षोडशोऽध्यायः

प्राङ्नर्मदार्धशोणोड्रवंगसुह्माः कलिंगबाह्लीकाः। शकयवनमगधशबरप्राग्ज्योतिषचीनकाम्बोजाः ॥ १ ॥ मेकलकिरातविटकाबहिरन्तः शैलजाः पुलिन्दाश्च। द्रविडानां प्रागर्द्धं दक्षिणकूलं च यमुनायाः ॥ २ ॥ चम्पोदुम्बरकौशाम्बिचेदिविन्ध्याटवीकलिंगाश्च। पुंड्रा गोलांगूलश्रीपर्वतवर्द्धमानाश्च ॥ ३ ॥ इक्षुमतीत्यथ तस्करपारतकान्तारगोपबीजानाम्। तुषधान्यकटुकतरुकनकदहनविषसमरशूराणाम् ॥ ४ ॥ भेषजभिषक्चतुष्पदकृषिकरनृपहिंस्रयायिचौराणाम् व्यालारण्ययशोयुततीक्ष्णानां भास्करः स्वामी ॥५॥ गिरिसलिलदुर्गकोशलमरुकच्छसमुद्ररोमकतुषाराः। वनवासितंगणहलस्त्रीराज्यमहार्णवद्वीपाः ॥ ६ ॥ मधुररसकुसुमफलसलिललवणमणिशंखमौक्तिकाब्जानाम् । शालियवौषधिगोधूमसोमपाक्रन्दविप्राणाम् ॥ ७ ॥ शृङ्गिनिशाचरकर्षकयज्ञविसितसुभगतुरगरतिकरयुवतिचमूनाथभोज्यवस्त्राणाम्। दांचाधिपश्चन्द्रः ॥ ८ ॥ शोणस्य नर्मदाया भीमरथायाश्च पश्चिमार्द्धस्थाः। निर्विन्ध्या वेत्रवतीशिप्रा गोदावरी वेणा ॥ ९ ॥ मन्दाकिनी पयोष्णी महानदी सिन्धुमालतीपाराः । उत्तरपाण्डचमहेन्द्राद्रिविन्ध्यमलयोपगाश्चोलाः ॥ १० ॥ द्रविडविदेहान्ध्राश्मकभासापुरकौंकणाः समन्त्रिषिकाः कुन्तलकेरदलण्डककान्तिपुरम्लेच्छसंकरजाः ॥ ११ ॥ नासिक्यभोगवर्द्धनविराटविन्ध्याद्रिपार्श्वगा देशाः। ये च पिबन्ति सुतोयां तापीं ये चापि गोमतीसलिलम् ॥१२॥ नागरकृषिकरपारतहुताशना जीविशस्त्रवार्त्तानाम् । आटविकदुर्गकर्बटवधकनृशंसावलिप्तानाम् ॥ १३ ॥ नरपतिकुमारकुञ्जरदाम्भिकडिम्भाभिघातपशुपानाम्। रक्तफलकुसुमविद्रुमच मूपगुडमद्यतीक्ष्णानाम् ॥ १४ ॥ कोशभवाग्निहोत्रिकधात्वाकरशाक्यभिक्षुचौराणाम् । शठदीर्घवैरबह्वाशिनां च वसुधासुतोऽधिपतिः ॥१५॥ लौहित्यः सिन्धुनदः सरयूर्गम्भीरिका रथाह्वा च। गङ्गाकौशिक्याद्याधिपतिः सरितो वैदेहकाम्बोजाः ॥१६॥ मथुरायाः पूर्वार्द्धं हिमवद्गोमन्तचित्रकूटस्थाः। सौमराष्ट्रसेतु

जलमार्गपण्यबिलपर्वताश्रयिणः ॥ १७ ॥ उदपानयन्त्रगान्धर्वलेख्यमणिरागगन्धयुक्तिविदः । आलेख्यशब्दगणितप्रसाधकायुष्यशिल्पज्ञाः ॥ १८ ॥ चरपुरुषकुहकजीवकशिशुकविशठसूचकाभिचाररतः। दूतनपुंसकहास्यज्ञभूततन्त्रेन्द्रजालज्ञाः॥१९॥ आरक्षकनटनर्तकघृततैलस्नेहबीजतिक्तानि । व्रतचारिरसायनकुशलवेसराश्चन्द्रपुत्रस्य ॥ २० ॥ सिन्धुनदपूर्वभागो मथुरापश्चार्धभरतसौवीराः । स्रुघ्नोदीच्यविपाशासरिच्छतद्रुरमठसाल्वाः ॥२१॥ त्रैगर्तपौरवाम्बष्ठपारतावाटधानयौधेयाः । सारस्वतार्जुनायनमत्स्यार्द्धग्रामराष्ट्राणि ॥२२॥ हस्त्यश्वपुरोहितभूपमन्त्रिमाङ्गल्यपौष्टिकासक्ताः । कारुण्यसत्यशौचव्रतविद्या दानधर्मयुताः ॥ २३ ॥ पौरमहाधनशब्दार्थवेदविदुषोऽभिचारनीतिज्ञाः । मनुजेश्वरोपकरणं छत्रध्वजचामराद्यं च ॥२४॥ शैलेयकमांसीतगरकुष्ठरससैन्धवानि वल्लीजम् । मधुररसमधूच्छिष्टानि चोरकश्चेति जीवस्य ॥२५॥ तक्षशिलमार्तिकावसबहुगिरिगान्धारपुष्कलावतकाः। प्रस्थलमालवकैकयदाशार्णोशीशीनराः शिबयः ॥२६॥ ये च पिबन्ति वितस्तामिरावतीं चन्द्रभागसरितं च । रथरजताकरकुञ्जरतुरगमहामात्रधनयुक्ताः ॥ २७ ॥ सुरभिकुसुमानुलेपनमणिवज्रविभूषणाम्बुरुहशय्याः । वरतरुणयुवतिकामोपकरणमृष्टान्नमधुरभुजः ॥ २८ ॥ उद्यानसलिलकामुकयशः सुखौदार्यरूपसम्पन्नाः । विद्वदमात्य वणिग्जनघटकृच्चित्राण्डजास्त्रिफलाः ॥ २९ ॥ कौशेयपट्टकम्बलपत्रोर्णिकरोध्रपत्रचोचानि । जातीफलागुरुवचापिप्पल्यश्चन्दनं च भृगोः ॥ ३० ॥ आनर्तार्बुदपुष्करसौराष्ट्राभीरशूद्ररैवतकाः । नष्टा यस्मिन्देशे सरस्वती पश्चिमो देशः ॥ ३१ ॥ कुरुभूमिजाः प्रभासं विदिशा वेदस्मृती महीतटजाः । खलमलिननीचतैलिकविहीनसत्त्योपहतपुंस्त्वाः ॥ ३२ ॥ बंधनशाकुनिकाशुचिकैवर्तविरूपवृद्धसौकरिकाः । गणपूज्यस्खलितव्रतबरपुलिन्दार्थपरिहीनाः ॥३३॥ कटुतिक्तरसायनविधवायोषितो भुजगतस्करमहिष्यः । खरकरभचणकवातुलनिष्पावाश्चार्कपुत्रस्य ॥ ३४ ॥ गिरिशिखरकन्दरदरीविनिविष्टा म्लेच्छजातयशूद्राः । गोमायुभक्षशूलिकबोक्काणाश्वमुखविकलाङ्गाः ॥ ३५ ॥ कुलपांसनहिंस्रकृतघ्नचौरनिःसत्यशौचदानाश्च । खरचरनियुद्धवित्तीव्ररोषगर्भाशया नीचाः ॥ ३६ ॥ उपहतदाम्भिकराक्षसनिद्राबहुलाश्च जन्तवः सर्वे । धर्मेण च सन्त्यक्ता माषतिलाश्चर्कशशिशत्रोः ॥ ३७ ॥ गिरिदुर्गपह्लवश्वेतहूणचोलावगाणमरुचीनाः । प्रत्यन्तधनिमहेच्छव्यवसायपराक्रमोपेताः ॥ ३८ ॥ परदारत्रिवादरताः पराण्डककुतूहला मदोत्सिक्ताः । मूर्खा धार्मिकविजिगीषवश्च केतोःसमाख्याताः ॥ ३९ ॥ उदयसमये यः स्निरधांशुर्महान् प्रकृतिस्थितो यदि च न हतो निर्घातोल्कारजो ग्रहमर्दनैः । स्वभवनगतः स्वोच्चप्राप्तः शुभग्रहवीक्षितः स भवति शिवस्तेषां येषां प्रभुः परिकीर्तितः ॥ ४० ॥ अभिहितविपरीतलक्षणैः क्षयमुपगच्छति तत्परिग्रहः ।

डमरभयगदातुरा जना नरपतयश्च भवन्ति दुःखिताः ।। ४१ ।। यदि न रिपुकृतं भयं नृपाणां स्वसुकृतं नियमादमात्यजं वा । भवति जनपदस्य चाप्यवृष्टया गमनमपूर्वपुराद्रिनिम्नगासु ।। ४२ ।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां ग्रहभक्तयो नामषोडशोऽध्यायः ।। १६ ।।

नर्मदाके पूर्वार्द्ध, शोण, ओड्र, वंग, सुह्म, बाह्लीक, शक, यवन, मगध, शबर, प्राग्ज्योतिष, चीन, काम्बोज, मेकल, किरात, विटक, पर्वतका विचला और बाहेरी पुलिन्द, द्रविडका पूर्वार्ध, यमुनाका दाहिना किनारा, चम्पा, उदंबर, कौशाम्बि, चेदि, विन्ध्याटवी, कलिंग, पुण्ड्र, गोलांगूल, श्रीपर्वत, वर्द्धमान और इक्षुमति ये समस्त देश और तस्कर, पारत, कान्तार, गोपबीज, तुष्ठधान्य, कटुक वृक्ष, कनक अग्नि, विष समरशूर, औषध, वैद्य, चतुष्पद, किसान, नृप, हिंसक पैदल, चोर, कालासर्प, और दंशवान् तीक्ष्ण अरण्यद्रव्योंका स्वामी सूर्य है ।।१।।२।।३।।४।।५।। पर्वत, जल, दुर्ग, कोशल, मरुकच्छ, समुद्र, रोमक, तुषार वनवासी, तंगण, हल, स्त्रीराज्य, महार्णवद्वीप, मधुररस कुसुम, फल, जल, लवण, शंख, मुक्ता, पद्म, शालि, यव (जौ), दवा, गेहूं, यज्ञमें सोमपान करनेवाले, राजाके वंश हुए ब्राह्मणगण, सितसुभग तुरंग, रतकरी युवती, सेनापति, भोज्य, वस्त्र शृंगी, पशु निशाचर, किसान और यज्ञ जाननेवालोंका स्वामी चंद्रमा है ।।६।।७।।८।। शोण, नर्मदा और भीमरथाके आधी पश्चिम दिशाके सब राजा, निर्विंध्या, वेत्रवती, गोदावरी, शिप्रा, वेणा, मन्दाकिनी, पयोष्णी, महानदी, सिन्धु, मालती, पारादिनदी, उत्तर आरण्य, महेन्द्राद्रि, विन्ध्य, मलयका निकटवर्ती भाग, चोल, द्रविड, विदेह, अन्ध्र, अश्मक, भासापुर, कोंकण, समन्त्रिषिक, कुंतल, केरलु, दण्डक, कांतिपुर, म्लेच्छ; संकरज, नासिक्य, भोगवर्द्धन, तर्कराट, विन्ध्याचलके, निकटके देश लोग तापती और गोमती नदीका मधुर जल पीते हैं, नगरवासी, किसान, पारत अग्निसे आजीविका करनेवाले, शस्त्रसे आजीविका करनेवाले, वनचारी, दुर्ग, क्षुद्रनगर, घातक, गर्वित, नरपतिं, कुमार, हस्ती, दांभिक, वालक, अभिघात, पशुपालक, रत्नफल और फूल, मूंगा, सेनापति, गुण, मद, तीक्ष्णकोश, भवन, अग्निहोत्री लोग, धातुओंकी आकर, जन भिक्षु, चोर, शठ, दीर्घवैर और भोजन, बहुतसा करनेवालोंका स्वामी मंगल है ।।९।।१०।।११।।१२।।१३।।१४।।१५।। लौहित्य और सिन्धुनद, सरयू, गंभीरिका, रथाह्वा, गंगा और कोशिकी आदि सब नदियें, काम्बोज, वैदेह, मथुराका पूर्वार्द्ध, हिमालय, गोमन्त और चित्रकूटके सब राज्य, सेतु, जलमार्ग, पण्य बिल और पहाडी जीवगण, कुआ, पंडित, चित्र, शब्द और गणितका जाननेवाला, चरपुरुष, कुहकजीवक, बालक, कवि, शठ, सूचक (ढंढोरची) अभिचाररत, दूत, हीजडा, मसखरा, भूततंत्र और इन्द्रजालका जाननेवाला, रक्षक, नट नाचनेवाला, घी, तेल, स्नेह, बीज, तिक्त, व्रतचारी, रसायन, कुशल पुरुष और खिच्चड इन सबका स्वामी बुध है ।।१६।। ।।१७।।१८।।१९।। ।।२०।। सिन्धुनदका पूर्वभाग, मथुराका पिछला आधा भाग, भरत, सौवीर, स्रुघ्नकी उत्तर दिशा, विपाशा और शतद्रनदी, रामठ, शाल्व, त्रैगर्त, पौख, अम्बष्ठ, पारत, वाटधान, यौधेय, सारस्वत, आर्जुनायन और मध्यप्रदेशके अर्धभागके गांव और सब राज्य, हाथी, घोडा, पुरोहित, राजा, मंत्री, मंगली और पौष्टिक संबंधमें आसक्त जन और महाधन,

शब्दार्थ, वेद जानेवाले, अभिचार और नीतिज्ञ छत्र, ध्वज, चामरादि राजाके सन्मानद्रव्य, शैलज (शिलाजीत), जटामांसी (बालछड), तिगर, कूट, पारा, सेंधा, लतासे उत्पन्न हुए द्रव्य, मधुर रस और मोम और चोरक इन सबका स्वामी बृहस्पति है ।।२१।।२२।। २३।।२४।।२५।। तक्षशिल, मार्तिकावत, बहुगिरि, गान्धार, पुष्क शलावत, प्रस्थूल, मालव, कैकल, दाशार्ण, उशीनर और शिबिविदेश, जो लोग वितस्ता, इरावती और चंद्रभागा नदीका जल पीते हैं रथ, चांदी, खानि, कूंजर, घोडा महावत, धनयुक्त सुगंधिवान् फूल, उबटन, मणिवज्रादि, विभूषण, पद्म शेज, उत्तम नवीन युवती, कामके समान, शोधित अन्न, मधुर द्रव्य खानेवाले पुरुष, बगीचे, जल, कामी लोग, यश सुख उदारता और रूपवान् विद्वान्, मंत्री, बनियां, कुंभार, चित्राण्डज, त्रिफला (हर्र, बहेडा, आमला), रेशमीन कपडे, कम्बल, शण, पत्र, ऊन, लोधके पत्ते, चोच, जायफल, अगर, वच और चन्दन यह सब शुक्रके आधीन हैं ।।२६।।२७।।२८।।२९।।३०।। आनर्त, अर्बुद, पुष्कर, सौराष्ट्र, आभीरशूद्र, रैवतक, जिस देशमें सरस्वती नदी दिखाई नहीं देती, पश्चिमदेश कुरुक्षेत्र, प्रभास, विदिशा, वेदस्मृती, महीके किनारेवाले, सब द्रव्य, दुष्ट, मलीन, नीच, तेली सत्वहीन, जिसका पुरुषपन नष्ट हो गया है, बंधक, व्याध, अपवित्र कैवट कुरूप वृद्ध, सुअरपाल, गणपूज्य, जिनका व्रत छूट गया है, शवर, पुलिन्द, दरिद्र कटु, तिक्त, रसायन विधवा स्त्री, सर्प, तस्कर, भैंस, गधा, करभ, चना, मटर और कडंगर भुस्सी ये सब वस्तुयें शनिके स्वाधीन हैं ।।३१।।३२।।३३।।३४।। पर्वतके शिखर, कन्दर दरियोंमें रहनेवाली म्लेच्छजातियां, शूद्र, गोमायु, भक्ष, शूली, वोक्काण, अश्वमुख, विकलांग, कुलांगार, हिंसक, कृतघ्न, चोर, सत्य, शौच और दानरहित, खच्चर, मल्लयुद्ध जाननेवाले, तीव्रदोष युक्त, नीच, उपहत, दंभी राक्षस बहुत सोनेवाले और धर्महीन, जन्तु, उर्द, और तिल राहुके वश हैं ।।३५।। ।।३६।।३७।। पहाडी किला, श्वेत, हूण, चोल, अफगान, मरु, चीन, प्रत्यन्तदेश, धनी, महेच्छका व्यापार करनेवाले, पराक्रमयुक्त, पराई स्त्रीमें रत झगडालू, पराण्डक, कुतूहली, मदगर्वित, मूर्ख, और धार्मिक, विजयकी इच्छा करनेवाले, केतुके आधीन हैं ।।३८।।३९।। जो ग्रह स्वाभाविक महान्, स्निग्धांशु और निर्घात, उल्का, धूरि या ग्रहमर्दनसे हत नहीं हैं, स्वभवनगत, स्वोच्चप्राप्त और शुभग्रहसे देखे जाकर उदय होते हैं, वह जिनके स्वामी कहलाते हैं उनका मंगल करते हैं, ।।४०।। उक्त विपरीत लक्षणों करके ग्रहोंके अधिकार किये सब द्रव्य क्षयको प्राप्त होते हैं, और उस कालमें आक्रमण करनेमें डरपोक गदातुर जन और राजा अत्यन्त दुःखित होते हैं ।।४१।। यदि राजाओंको शत्रुका अपने पुत्रका या मंत्रीका किया हुआ अभय न हो अथवा पृथ्वीमें अनावृष्टि न हो तो नियमके वशसे अपूर्व पुर पर्वत और नदियोंमें गमन करना उचित है ।।४२।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां षोडशोऽध्यायः ।।१६।।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

ग्रहयुद्धम्

युद्धं यथा यदा वा भविष्यदादिश्यते त्रिकालज्ञैः। तद्विज्ञानं करणे मया कृतं सूर्यसिद्धान्तात् ॥ १ ॥ वियति चरतां ग्रहाणामुपर्युपर्यात्ममार्गसंस्थानाम्। अतिदूराद्दृग्विषये समतामिव सम्प्रयातानाम् ॥ २ ॥ आसन्नमयोगाद्भेदोल्लेखांशुमर्दनापसव्यैः। युद्धं चतुष्प्रकारं पराशराद्यैर्मुनिभिरुक्तम् ॥ ३ ॥ भेदे वृष्टिविनाशो भेदः सुहृदां महाकुलानां च। उल्लेखे शस्त्रभयं मंत्रिविरोधः प्रियान्नत्वम् ॥ ४ ॥ अंशुविरोधे युद्धानि भूभृतां शस्त्ररुक्क्षुदवमर्दाः। युद्धे चाप्यपसव्ये भवन्ति युद्धानि भूपानाम् ॥ ५ ॥ रविराक्रन्दो मध्ये पौरः पूर्वेऽपरे स्थितो यायी। पौरा बुधगुरुरविजा नित्यं शीतांशुराक्रन्दाः ॥ ६ ॥ केतुकुजराहुशुक्रा यायिन एते हता ग्रहा हन्युः। आक्रन्दयायिपौरान् जयिनो जयदाः स्ववर्गस्य ॥ ७ ॥ पौरे पौरेण हते पौराः पौरान् नृपान् विनिघ्नन्ति। एवं याय्याक्रन्दौ नागरयायिग्रहाश्चैव ॥ ८ ॥ दक्षिणदिक्स्थः परुषो वेपथुरप्राप्य सन्निवृत्तोऽणुः। अधिगूढो विकृतो निष्प्रभो विवर्णश्च यः स जितः ॥ ९ ॥ उक्तविपरीतलक्षणसंपन्नो जयगतो विनिर्दिष्टः। विपुलः स्निग्धो द्युतिमान् दक्षिणदिक्स्थोऽपि जययुक्तः ॥ १० ॥ द्वावपि मयूखपृक्तौ विपुलौ स्निग्धौ समागमे भवतः। तत्रान्योऽन्यप्रीतिर्विपरीतावात्मपक्षघ्नौ ॥ ११ ॥ युद्धं समागमो वा यद्यव्यक्तौ तु लक्षणैर्भवतः। भुवि भूभृतामपि तथा फलमव्यग्रं विनिर्देश्यम् ॥ १२ ॥ गुरुणा जितेऽवनिसुते बाह्लीका यायिनोऽग्निवार्त्ताश्च। शशिजेन शूरसेनाःकलिङ्गसाल्वाश्च पीड्यन्ते ॥ १३ ॥ सौरेणारे विजिते जयन्ति पौराः प्रजाश्च सीदन्ति। कोष्ठागारम्लेच्छक्षत्रियतापाश्च शुक्र जिते ॥ १४ ॥ भौमेन हते शशिजे वृक्षसरित्तापसाश्मकनरेन्द्राः। उत्तरदिक्स्थाः ऋतुदीक्षिताश्च सन्तापमायान्ति ॥ १५ ॥ गुरुणा बुधे जिते म्लेच्छशूद्रचौरार्थयुक्तपौरजनाः। त्रैगर्तपार्वतीयाः पीड्यन्ते कम्पते च मही ॥१६॥ रविजेनबुधे ध्वस्ते नाविकयोधाब्जसधनगर्भिण्यः। भृगुणा जितेऽग्निकोपः सस्याम्बुदयायिविध्वंसः ॥ १७ ॥ जीवे शुक्राभिहते कुलूतगान्धारकैकया मद्राः। शाल्वावत्सा वङ्गा गावः सस्यानि नश्यन्ति ॥ १८ ॥ भौमेन हते जीवे मध्यो देशो नरेश्वरा। गावः सौरेण चार्जुनायनवसातियौधेयशिबिविप्राः ॥ १९ ॥ शशितनयेनापि जिते बृहस्पतौ म्लेच्छसत्यशस्त्रभृताःउपयान्ति मध्यदेशश्च संक्षयं यच्च भक्तिफलम् ॥ २० ॥ शुक्रे बृहस्पतिहते यायी श्रेष्ठो विनाशमुपयाति। ब्रह्मक्षत्रविरोधः सलिलं च न वासवस्त्यजति ॥ २१ ॥ कोशलकलिङ्गवङ्गवत्सा मत्स्याश्च मध्यदेशयुताः। महतीं व्रजन्ति पीडां नपुंसकाः शूरसेनाश्च ॥ २२ ॥ कुजविजिते भृगुतनये बलमुख्यवधो नरेन्द्रसंग्रामाः। सौम्येन पार्वतीयाः

क्षीरविनाशोऽल्पवृष्टिश्च ।। २३ ।। रविजेन सिते विजिते गणमुख्याः शस्त्रजीविनः क्षत्रम् । जलजाश्च निपीड्यन्ते सामान्यं भक्तिफलमन्यत् ।। २४ ।। असिते सितेन निहतेऽर्घवृद्धिरहिविहगमानिनां पीडा । क्षितिजेन टंकणान्ध्रौड्रकाशिबाह्लीकदेशानाम् ।। २५ ।। सौम्येन पराभूते मन्देऽङ्गवणिग्विहङ्गपशुनागाः । सन्ताप्यन्ते गुरुणा स्त्रीबहुला महिषकशकाश्च ।। २६ ।। अयं विशेषोऽभिहितो हतानां कुजज्ञवागीशसितासितानाम् । फलं तु वाच्यं ग्रहभक्तितोऽन्यद्यथा तथा घ्नन्ति हताः स्वभक्तीः ।। २७ ।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां ग्रहयुद्धः सप्तदशोऽध्यायः ।।१७।।

त्रिकालज्ञानी पंडितलोग जिस समयमें होनहार ग्रहयुद्धके विषयमें आज्ञा देते हैं। मैं करणग्रंथमें (पंचसिद्धान्तिका) सूर्यसिद्धांतके मतसे सो कह आया हूं सो ।।१।। एकके ऊपर एक अलग २ अपने मार्गमें स्थित ग्रहोंकी जो अतिदूरसे दर्शनके विषयमें समानता होती है, उसको पंडित लोग ग्रहयुद्ध कहते हैं ।।२।। पराशरादि मुनियोंने आसन्न क्रमयोगसे भेद, उल्लेख, अंशुमर्दन और अपसव्य यह चार प्रकारके ग्रहयुद्ध कहे हैं ।।३।। भेदयुद्धमें वर्षाका नाश सुहृद व कुलीनोंमें भेद होता है, उल्लेख युद्धमें शस्त्रभय, मंत्रिविरोध और दुर्भिक्ष होता है ।।४।। अंशुमर्दन युद्धमें राजा लोगोंमें युद्ध, शस्त्र, रोग, भूखसे पीडा और अवमर्दन होता है, अपसव्य युद्धमें राजागण युद्ध करते हैं ।।५।। सूर्य दोपहरमें आक्रन्द होता है, पूर्वाह्णमें पौरग्रह तथा अपराह्णमें पापी ग्रह आक्रन्द संज्ञक होते हैं, बुध, गुरु और शनि यह सदा पौर हैं। चंद्रमा नित्य आक्रन्द है ।।६।। केतु, मंगल, राहु और शुक्र यायी हैं। इन ग्रहोंके हत होनेसे आक्रन्दयायी और पौर क्रमानुसार नाशको प्राप्त होते हैं, जयी होनेपर स्ववर्गको जय देते हैं ।।७।। पौरग्रहसे पौरग्रहके टकरानेपर पुरवासी गण और पौर राजाओंका नाश होता है इस प्रकार यायी और आक्रन्दग्रह या पौर और यायी ग्रह परस्पर हत होनेपर अपने १ अधिकारियोंको नष्ट करते हैं ।।८।। जो ग्रह दक्षिणदिशामें रूखा, कम्पायमान अप्राप्त होकर भलीभांतिसे निवृत्त अर्थात् टेढा, क्षुद्र, और किसी ग्रहसे ढका हुआ, विकराल, प्रभाहीन और विवर्ण जान पडे वह ग्रह पराजित होगा और इसके विपरीत लक्षणवाला ग्रह जयी कहता है, परंतु बडे मंडलवाला चिकना और द्युतिमान् होकर दक्षिणदिशामें भी हो तो उसको जययुक्त कहा जाता है ।।९।।१०।। ग्रहयुद्धकालमें यदि दो ग्रह किरणयुक्त बडे मंडलवाला और चिकने हों तो इसको अन्योन्य प्रीति कहा जायगा. ऐसा हो तो पृथ्वीमें राजा लोगोंकी भी युद्धकालमें बराबरी होगी, इसके विपरीत होनेसे आत्मपक्षका नाक्ष होगा ।।११।। जो युद्ध या समागम लक्षणसे जाना जाय तो पृथ्वीमें राजा लोगोंका फलभी वैसाही जाना जायगा ।।१२।। बृहस्पतिजी मंगलको जीत ले तो बाह्लीक, यायी और अग्निसे आजीविका करनेवाले पीडा पाते हैं। बुध मंगलको जीते तो शूरसेन, कलिंग और शाल्वदेशको पीडा होती है ।।१३।। शनिके द्वारा मंगल जीता जाय तो पुरवासियोंकी जय होती है, प्रजा व्याकुल होकर नष्ट हो जाती

है। शुक्र[1] मंगलको जीत ले तो कोष्ठा गार, म्लेच्छ और क्षत्रियोंको ताप होता है ॥१४॥ मंगलके द्वारा बुध हत हो तो वृक्ष, नदी, तपस्वी, अश्मक, नरेन्द्र और उत्तरदिशाके यज्ञमें दीक्षित हुए संताप पाते हैं ॥१५॥ गुरु करके बुध जीत लिया जाय तो म्लेच्छ, शूद्र, चोर अर्थयुक्त पौरजन, त्रैगर्त्त और पहाडी आदमियोंको पीडा होती है, पृथ्वी कंपायमान होती है ॥१६॥ शनिके द्वारा बुध ध्वंस हो तो मल्लाह, योधा, जलज, धनी व गर्भिणियें और शुक्रसे बुध जीता जाय तो अग्निकोप होकर धान्य, मेघ व यायिगण विध्वंस होते हैं ॥१७॥ शुक्रसे बृहस्पतिजी आहत हों तो कुलूत, गांधार, कैकय, मद्र, शाल्व, वत्स, वंगगण और गोसमूह व धान्य नाशको प्राप्त होता है ॥१८॥ मंगलसे गुरु हत हो तो मध्यदेश, राजालोग और गाय, बैल शनि करके हत हो तो आर्जुनायन, वसाति, यौधेय, शिबि और विप्रगण और बुध करके बृहस्पति जीता जाय तो म्लेच्छ, सत्य और शस्त्रसे आजीविका करनेवाले और मध्यदेश ये सब क्षयको प्राप्त होते हैं। परंतु ग्रहभक्तके मतसे फलको निरूपण करना चाहिये ॥१९॥२०॥ बृहस्पतिसे शुक्र हत हो तो श्रेष्ठ यायी विनाशको प्राप्त हो, ब्राह्मण और मंत्रियोंसे विरोध हो और इन्द्र जल नहीं वर्षाता ॥२१॥ कोशल, कलिंग, वंग, वत्स, मत्स्य, और मध्यदेशके वासी. शूरसेनगण और नपुंसकगण महापीडाको भोग करते हैं ॥२२॥ मंगलसे शुक्र जीत लिया जाय तो सेनापतियोंका वध और राजाओंका युद्ध होता है। बुधसे शुक्र जीत लिया जाय तो सब पहाडी देशोंमें कष्ट होता है. दुग्धकी हानि और अल्प वृष्टि होती है ॥ २३ ॥ शनिसे शुक्र विजित हो जाय तो गणश्रेष्ठ शस्त्रजीवी, क्षत्रिय लोग और जलज पीडित होते हैं और अन्न साधारण होता है, यह ग्रहभक्तका फल है ॥२४॥ शुक्रसे शनि ग्रह निहत हो तो महंगी, सर्प, पक्षी और मानियोंको पीडा होती है। मंगलसे शनि निहत हो तो टंकण, अन्ध्र, ओड्र काशी और बाह्लीक देशवालोंको पीडा होती है ॥२५॥ बुधसे शनि पराजित हो तो अंगदेश, वणिक् विहंग, पशु और सर्पगण संतापित होते हैं और बृहस्पतिके द्वारा हत होनेपर स्त्रियें, महिष और शकजातिके पुरुष सन्तापित होते हैं ॥२६॥ मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र और शनि इन ग्रहोंके परस्पर हननका यह विशेष फल कहा गया और स्थलोंमें अर्थात् साधारण नक्षत्रादिके साथ जो ग्रहादिका युद्ध होगा वह भक्ति नामक पूर्व अध्यायमें उसका जो फल कहा है उसके अनुसार कहना चाहिये परंतु ग्रह अनेक स्थानोंमें हत होकर अपने २ नियत पदार्थोंका नाश करते हैं ॥२७॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

---

१ यह लक्षण केवल शुक्रके लिये है क्योंकि युद्धप्रकरणमें लिखा है कि शुक्रके सिवाय कोई ग्रह जयी होकर दक्षिण दिशामें नहीं जाता और इसका जानना उचित है कि शुक्र उत्तरमें हो या दक्षिणमेंही बहुधा युद्धमें जयी होगा, "उदवस्थो दक्षिणास्थो वा भार्गवः ग्रायशो जयी" ॥२॥ ग्रहोंके परस्पर मिलनेको युद्ध समागम और अस्तमन कहते हैं, सूर्यसिद्धांतग्रहयुत्यधिकार. मंगलादि पंच ग्रहोंके साथ मंगलादि पंच ग्रहोंके मिलनेको युद्ध चंद्रमाके साथ योगको समागम और सूर्यके साथ साथ योग होनेको अस्तमन कहते हैं ॥

अथाष्टादशोध्यायः

चन्द्रग्रहसमागमः

भानां यथासम्भवमुत्तरेणं यातो ग्रहाणां यदि वा शशांकः। प्रदक्षिणं तच्छुभकृन्नराणां याम्येन यातो न शिवः शशांकः ॥ १ ॥ चंद्रमा यात्युदक्पार्वतीयबलशालिनां जयः। क्षत्रियाःप्रमुदिताः सयायिनो भूरिधान्यमुदिता वसुन्धरा ॥ २ ॥ उत्तरतः स्वसुतस्य शशांकः पौरजयाय सुभिक्षकरश्च। सस्यचयं कुरुते जनहार्दि कोशचयं च नराधिपतीनाम् ॥ ३ ॥ बृहस्पतेरुत्तरगे शशांके पौरद्विजक्षत्रियपण्डितानाम्। धर्मस्य देशस्य च मध्यमस्य वृद्धिः सुभिक्षं मुदिताः प्रजाश्च ॥ ४ ॥ भार्गवस्य यदि यात्युदक् शशी कोशयुक्तगजवाजिवृद्धिदः। यायिनां च विजयो धनुष्मतां सस्यसम्पदपि चोत्तमा तदा ॥ ५ ॥ रविजस्य शशी प्रदक्षिणं कुर्याच्चेत् पुरभूभृतां जयः। शकबाह्लिकसिन्धुपह्लवानामुद्भाजो यवनैः समन्विताः ॥ ६ ॥ येषामुदग्गच्छति भग्रहाणां प्रालेयरश्मिर्निरुपद्रवश्च। तद्द्रव्यपौरेतरभक्तिदेशान् पुष्णाति याम्ये न निहन्ति तानि ॥ ७ ॥ शशिनि फलमुदक्स्थे यद्ग्रहस्योपदिष्टं भवति तदपसव्ये सर्वमेव प्रतीपम्। इति शशिसमवायाः कीर्तिताभग्रहाणां न खलु भवति युद्धं साकमिन्दोर्ग्रहर्क्षैः ॥ ८ ॥

इतिश्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहि० शशिग्रहसमागमोऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

यदि चंद्रमा नक्षत्रोंके या ग्रहोंके यथासंभव उत्तरमें गमन करे तो उस चंद्रको 'प्रदक्षिण' कहते हैं यह मनुष्योंका शुभकारी है, परंतु उसका दक्षिणमें गमन करना मनुष्योंको शुभदायी नहीं है ॥१॥ जो चंद्रमा मण्डल ग्रहके उत्तरमें जाय तो बलवान् पहाडियोंकी जय होती है, पापी गणोंके साथ क्षत्री लोग हर्षित होते हैं और पृथ्वी बहुतसे धान्यसे 'युक्त होकर प्रसन्न हो जाती है ॥२॥ चंद्रमा बुधके उत्तरमें जाय तो पौर जयहेतु सुभिक्षकारी, धान्यवर्द्धक, मनुष्योंको आनंददायी और राजाओंका कोशसंचारी होता है ॥३॥ बृहस्पतिके उत्तरमें चंद्रमा जाय तो पौर, क्षत्रिय, ब्राह्मण, पंडित और मध्यदेशके धर्मकी वृद्धि होती है, सुभिक्ष होता है, प्रजा संतुष्ट होती है ॥४॥ यदि शुक्रके उत्तरमें चंद्रमा गमन करे तो कोश, गज हाथी) और घोडोंकी वृद्धि हो, यायी और धनुषधारी लोगोंकी विजय हो और उत्तम धान्य संपत्ति प्राप्त हो ॥५॥ जो चंद्रमा शनिके दक्षिणमें गमन करे तो पौर राजाओंकी जय और शक, बाह्लीक, सिन्धु, पह्लव और यवन लोग आनंदित होते हैं ॥६॥ जो शीतल किरणवाला चंद्रमा नक्षत्रोंके उत्तरमें गमन करे तो निरुपद्रव होकर निजद्रव्य पौर वा ग्रहभक्ति मत हो देशवासियोंको पोषण करे, परंतु दक्षिणमें गमन करके उनको हनन करता है। ग्रहोंके उत्तरमें चंद्रमाके होनेका फल कहा गया, दक्षिण ओर होनेसे इसका विपरीत फल होता है। ग्रह वा नक्षत्रोंके साथ चंद्रमाका मिलन कहा गया। चंद्रमाका युद्ध ग्रह वा नक्षत्रोंके साथ कभी नहीं होता ॥७॥८॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायामष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

अथैकोनविंशोऽध्यायः

ग्रहवर्षफलम्

सर्वत्र भूर्विरलसस्ययुता वनानि दैवाद्धिभक्षयिषुदंष्ट्रिसमावृतानि । स्यन्दन्तिनैव च प्रचुरं स्रवन्त्यो रुग्भेषजानि न तथातिबलान्वितानि ।। १ ।। तीक्ष्णं तपत्यदितिजः शिशिरेऽपि काले नात्यम्बुदा जलमुचोऽचलसन्निकाशाः । नष्टप्रभर्क्षगणशीतकरं नभश्चसीदन्ति तापसकुलानि सगोकुलानि ।। २ ।। हस्त्यश्वपत्तिमदसह्यबलैरुपेता बाणासनासिमुसलातिशयाश्चरन्ति । घ्नन्तो नृपा युधि नृपानुचरैश्च देशान् संवत्सरे दिनकरस्य दिनेऽथ मासे ।। ३ ।। व्याप्तं नभः प्रचलिताचलसन्निकाशैर्व्यालाञ्जनालिगवलच्छविभिःपयोदैः । गां पूरयद्भिरखिलाममलाभिरद्भिरुत्कण्ठकेन गुरुणाध्वनितेन चाशाः ।।४।। तोयानि पद्मकुमुदोत्पलवन्त्यतीवफुल्लद्रुमाण्युपवनान्यलिनादितानि । गावः प्रभूतपयसो नयनाभिरामा रामा रतैरविरतं रमयंति रामान् ।।५।। गोधूमशालियवधान्यवरेक्षुवाटा भूः पाल्यते नृपतिभिर्नगराकराढ्या । चित्यंकिता ऋतुपरेष्टिविघुष्टनादा संवत्सरे शिशिरगोरभिसम्प्रवृत्ते ।।६।। वातोद्धतश्चरति वह्निरतिप्रचण्डो ग्रामान् वनानि नगराणि च सन्दिधक्षुः । हाहेति दस्युगणपातहता रटन्ति निस्वीकृता विपशवो भुविमर्त्यसंघाः ।। ७ ।। अभ्युन्नता वियति संहतमूर्तयोऽपि मुञ्चन्ति न क्वचिदपः प्रचुरं पयोदाः । सीम्नि प्रजा तमपि शोषमुपैति सस्यं निष्पन्नमप्यविनयादपरे हरन्ति ।। ८ ।। भूपा न सम्यगभिपालनसक्तचित्ताः पित्तोत्थरुक्प्रचुरता भुजगप्रकोपः । एवं विधैरुपहता भवति प्रजेयं संवत्सरेऽवनिसुतस्य विपन्नसस्या ।। ९ ।। मायेन्द्रजालकुहकाकरनागराणां गांधर्वलेख्यगणितास्त्रविदां च वृद्धिः । पिप्रीषयाः नृपतयोऽद्भुतदर्शनानि दित्सन्ति तुष्टिजननानि परस्परेभ्यः ।। १० ।। वार्ता जगत्यवितथा विकला त्रयी च सम्यक् चरत्यपि मनोरिव दण्डनीतिः । अध्यक्षरं स्वभिनिविष्टधियोऽत्रकेचिदान्वीक्षिकीषु च परं पदमीहमानाः ।।११।। हास्यज्ञदूतकविबालनपुंसकानां युक्तिज्ञसेतुजलपर्वतवासिनां च । हार्दि करोत मृगलाञ्छनजः स्वकेऽब्दे मासेऽथ वा प्रचुरतां भुवि चौषधीनाम् ।। १२ ।। ध्वनिरुच्चरितोऽध्वरे द्युगामी विपुलो यज्ञमुषां मनांसि भिन्दन् । विचरत्यनिशं द्विजोत्तमानां हृदयानन्दकरोऽध्वरांशभाजाम् ।।१३।। क्षितिरुत्तमसस्यवत्यनेकद्विपपत्त्यश्वधनोरुगोकुलाढ्या । क्षितिपैरभिपालनप्रवृद्धा द्युचरस्पर्धिजना तदा विभाति ।। १४ ।। विविधैर्वियदुन्नतैः पयोदैर्वृतमुर्वी पयसाभितर्पयद्भिः । सुरराजगुरोः शुभेऽत्र वर्षे बहु सस्या क्षितिरुत्तमर्द्धियुक्ता ।। १५ ।। श्रीमत्सरोरुहशालीक्षुमत्यपि धरा धरणीधराभधाराधरोज्झितपयःपरिपूर्णवप्रा । ततताम्बुतडागकीर्णा योषेव भात्यभिनवाभरणोज्ज्वलाङ्गी ।। १६ ।। क्षत्रं क्षितौ

क्षपितभूरिबलारिपक्षमुद्घुष्टनैकजयशब्दविराविताशम् । संहृष्टशिष्टजनदुष्टविनष्टवर्गां गां पालयन्त्यवनिपा नगराकराढयाम् ।। १७ ।। पेपियते मधु मधौ सह कामिनीभिर्जेगीयते श्रवणहारि सवेणुवीणम् । बोभुज्यतेऽतिथिसुहृत्स्वजनैः सहान्नमब्दे सितस्य मदनस्य जयावघोषः ।। १८ ।। उद्वृत्तदस्युगणभूरिरणाकुलानि राष्ट्राण्यनेकपशुवित्तविनाकृतानि । रोरूयमाणहतबन्धुजनैर्जनैश्च रोगोत्तमाकुलकुलानि बुभुक्षया च ।। १९ ।। वातोद्धताम्बुधरवर्जितमन्तरिक्षमारुग्णनैकविटपं च धरातलं द्यौः । नष्टार्कचन्द्रकिरणातिरजोऽवनद्धा तोयाशायाश्च विजलाः सरितोऽपि तन्व्यः ।।२०।। जातानि कुत्रचिदतोयतया विनाशमृच्छन्ति पुष्टिमपराणि जलोक्षितानि । सस्यानि मन्दमभिवर्षति वृत्रशत्रौ वर्षे दिवाकरसुतस्य सदा प्रवृत्ते ।।२१।। अणुरपटुमयखो नीचगोऽन्यैर्जितो वा न सकलफलदाता पुष्टिदोऽतोऽन्यथा यः । यदशुभमशुभेऽब्दे मासजं तस्य वृद्धिः शुभफलमपि चैवं याप्यमन्योऽन्यतायाम्।।२२।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां ग्रहवर्षफलमेकोनविंशोऽध्यायः ।।१९।।

यदि सूर्य वर्षका स्वामी, मासका स्वामी, दिनका स्वामी हो तो सब जगह पृथ्वी पर धान्य थोडा हो, वनमें जगह २ वृक्षोंमें कीडे लग जायँ, नदियोंमें बहुतसा जल न रहे, मारे पीडाके औषधियोंमें अत्यन्त बल न रहे, शीतकालमें भी सूर्य तीक्ष्ण धूप करे, पर्वतके समान मेघगण अधिक जल नहीं वर्षावें, आकाशमें चंद्रमा और तारोंकी दीप्ति जाती रहे, गाय और तपस्वी कुलको शोक हो, हाथी, घोडे, पदातिकरूप सहनीय बलयुक्त राजा लोग बहुतसे बाण, धनु, असि और मुसल लेकर अपने अनुचरोंको साथ ले युद्ध करके समस्त देशोंको ध्वंस करते हुए घूमें ।।१।। ।।२।।३।। जो चंद्रमा वर्षका मालिक हो तो चलायमान पर्वतके समान काले सर्प अंजन, भ्रमर और महिषीकी नाईं काली द्युतिवाले मेघवृन्द आकाशको व्याप्त करत हैं, उत्कण्ठासूचक भारी शब्द करके समस्त दिशाओंको पूण करत हुए अमल जलसे पृथ्वीको पूर्ण करते हैं, सरोवरोंमें, कमल कुमुद और उत्पल फूल जाते हैं, उपवन (बाग) प्रफुल्ल वृक्षयुक्त और भ्रमरोंके शब्दसे शब्दायमान होते हैं, गाय दूध्र बहुतसा देती हैं, नेत्रोंको आनंद देनेवाली स्त्रियां आशक्तिसे अविरत पुरुषोंका रमण कराती हैं, ईख, शाट्टी, जौ, धान्य श्रेष्ठ और युक्त समूह समृद्धि युक्त चैत्य अर्थात् छोटे २ देवमंदिरोंसे अंकित और यज्ञ व होमके पवित्र शब्दसे शब्दायमान् होकर पथ्वी राजाओंसे पाली जाती है ।।४।।५।।६।। मंगल वर्षका स्वामी हो तो वायुसे उठी हुई अतिप्रचंड अग्नि ग्राम, वन और नगरोंको जलानेकी इच्छा करती है, पृथ्वीके मनुष्य चोरोंसे मार डाले जाकर सहायहीन और पशुहीन होकर हाहाकार करते हुए विचरण करते हैं; मेघकुल शून्यमें कम ऊँचा और संहत पूर्ति होकर भी कहीं बहुतसा जल नहीं वर्षाते, पका हुआ धान्य लगभग सूखही जाता है और किसी प्रकारसे निवटकर भी अविनयके हेतुसे दूसरे आदमी उसको हरण कर लेते हैं, मंगलके संवन्सरमें राजा लोग भलीभांतिसे प्रजाको नहीं पालते, पित्तसे उत्पन्न हुए रोगोंकी अधिकता होती है,, सर्पोंका कोप होता है, इस प्रकार प्रजाके लोग बिना नाजके दीन हीन और मृतकवत् हो जाते हैं ।।७।।८।।९।। बुध वर्षका स्वामी हो तो माया. इन्द्रजाल और भानमती करनेवाले मनुष्य और गंधर्व.

लेख्य, गणित व अस्त्र जाननेवालोंकी वृद्धि होती है, राजालोग प्रीतिकी कामनासे अद्भुतदर्शन और तुष्टिकर द्रव्य, परस्पर एक दूसरेको दान करनेकी इच्छा करते हैं, जगत्में वार्ता और त्रयी शास्त्र अविकल और सत्य रहता है, मनुके समान दंडनीति भली भांतिसे विराजमान रहती है, कोई शास्त्रज्ञानमें अपनी बुद्धिको लगाता है, कोई २ आन्वीक्षिकी शास्त्रसे परम पदके पानेकी चेष्टा करता है, बुधग्रह अपने वर्षमें अथवा मासमें इस प्रकारसे पृथिवीको हास्यज्ञ दूत कवि, बालक नपुंसक, युक्ति जाननेवाले, सेतु, जल और पर्वतवासियोंकी की तृप्ति करता है और पृथ्वीपर औषधियां बहुतायतसे होती हैं ॥१०॥११॥१२॥ बृहस्पति वर्षका स्वामी हो तो यज्ञमें उच्चारण की हुई विपुल आकाश गामी वेदध्वनि, यज्ञध्वंस करनेवालोंके मनको विदीर्ण कर श्रेष्ठ ब्राह्मणोंके और यज्ञांश भागियोंके हृदयको आनंद कराकर भ्रमण करती हैं, उत्तम सत्यवती और अनेक हस्ती, घोडे, चतुरंग सेना, महाधन, गोकुल और धनयुक्त पृथ्वी राजाओंसे पाली जाकर और वर्धित होकर मानो स्वर्गवासियोंके समान स्पर्द्धा करनेवालोंके साथ विराजमान होती है, आसमानी पानीसे तृप्तिकारक विविध रंगके बादल पृथ्वीको ढक लेते हैं, इन देवतानाथके गुरु बृहस्पतिजीके शुभवर्षमें इस प्रकारसे पृथ्वी बहुतसे धान्यवाली और ऋद्धियुक्त होती है ॥१३॥१४॥१५॥ शुक्र वर्षका स्वामी हो तो पर्वताकार बादलोंकरके छोडे हुए जलसे परिपूर्ण हुए पृथ्वी सुंदर कमलोंसे जिनका जल ढका हुआ है ऐसे तडागोंसे आकीर्ण होकर नये नये गहनोंसे सजी हुई उज्ज्वल अंगवाली नारीके समान शोभा पाता है, और शाट्ठी व ईख पैदा करती है, शत्रुओंको क्षय करनेवाले और पोषण करते हुए जयशब्दसे दिशाओंको शब्दायमान करते हुए राजा लोग शिष्ट जनोंको संतोष और दुष्टोंका नाश करके नगर व खानिके सहित ऋद्धिशाली पृथ्वीका पालन करते हैं, वसन्त ऋतुमें मनुष्यगण कामिनियोंके साथ बारंबार मधुपान करके वेणुवीणाके साथ वारंवार श्रवणसुख कर गान किया करते हैं और अतिथि सुहृद व भाई बंधुओंके साथ अन्नभोजन किया करते हैं, शुक्रके वर्षमें इस प्रकारसे कामदेवकी जय हुआ करती है ॥१६॥१७॥१८॥ जब शनि वर्षका स्वामी होता है तब खोटे व्रतवाले चोर और बहुतसे संग्रामोंके होनेसे समस्त राज्य आकुल होते हैं, बहुतोंका पशु धन जाता रहता हैं, बंधुओंका वियोग होनेसे मनुष्यगण बहुतही रोते हैं. क्षुधाके मारे और रोगोंके मारे बहुतही व्याकुल होते हैं, आकाशमें जैसेही बादल आते हैं वैसेही पवन उनको उड़ा देता है, पृथ्वीपर एक पत्ता भी तो आरोग्य नहीं रहता, आकाशमें सूर्य चंद्रमाकी किरणें धूरिसे बंध जाती हैं, जलाशय जलहीन और नदियां कृशांग हो जाती हैं, कहीं पर नाज जलके अभावसे नष्ट हो जाता है, कहीं जल भरी हुई भूमिमें फल जाता है। इस प्रकार जिस वर्षमें शनि स्वामी होता है तब इन्द्र मन्द मन्द धान्यका देनेवाला जल वर्षाता है ॥१९॥२०॥२१॥ जो ग्रह क्षुद्र, अपटुकिरण, नीचगामी या किसीसे विजित हो जाता है, वह समस्त फलका दाता और पुष्टिकारी नहीं हो सकता। जो अशुभ ग्रह वर्षका स्वामी या मासका स्वामी होता है तो उसके भारसे उत्पन्न हुए फलकी प्राप्ति होती है, अन्यथा होवे तो शुभ फल भी प्राप्त हो जाता है ॥२२॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

अथ विंशोऽध्यायः

ग्रहश्रृंङ्गाटकः

यस्यां दिशि दृश्यन्ते विशंन्ति ताराग्रहा रविं सर्वे। भवति भयं दिशि तस्यामायुधकोपक्षुधातंकैः ॥ १ ॥ चक्रधनुःश्रृङ्गाटकदण्डपुरप्रासवज्रसंस्थानाः। क्षुदवृष्टिकरा लोके समराय च मानवेन्द्राणाम् ॥ २ ॥ यस्मिन् खांशे दृश्या ग्रहमाला दिनकरे दिनान्तगते। तत्रान्यो भवति नृपः परचक्रोपद्रवश्च महान् ॥३॥ यस्मिन्नृक्षे कुर्युः समागमं तज्जनान् ग्रहा हन्युः। अविभेदनाः। परस्परम-मलमयूखाः शिवास्तेषाम् ॥४॥ ग्रहसंवर्तसमागमसम्मोहसमाजसन्निपाताख्याः। कोशश्चेत्येषामभिधास्ये लक्षणं सफलम् ॥५॥ एकर्क्षे चत्वारः सह पौरैर्यायिनोऽथवा पञ्च। संवर्तो नाम भवेच्छिखिराहुयुतःस सम्मोहः ॥ ६ ॥ पौरः पौर-समेतो यायी सह यायिना समाजाख्यः। यमजीवसङ्गमेऽन्यो यद्यागच्छेत्तदा कोशः ॥७॥ दितः पश्चादेकः प्राक् चान्यो यदि स सन्निपाताख्यः। अविकृततनवः स्निग्धा विपुलाश्च समागमे धन्याः ॥ ८ ॥ समौ तु संवर्तसमागमाख्यौ सम्मोहकोशो भयदौ प्रजानाम्। समाजसंज्ञः सुसमः प्रदिष्टो वैरप्रकोपः खलु सन्निपाते ।९॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां ग्रहश्रृङ्गाटकं नाम विंशतितमोऽध्यायः॥२०॥

जिस दिशामें ताराग्रह रविमें प्रवेश करते हुए देखे जाते हैं, उसी दिशाके वासियोंको अस्त्रकोप, क्षुधा और आतंकसे भय होता है ॥१॥ ग्रहसंस्थान जब चक्र धनु, श्रृंगाटक (चतुष्पथ), दण्डपुर, ग्रास या वज्रके समान दिखाई दे तब लोगोंको क्षुधा, अवृष्टि और राजाओंका समर हुआ करता है ॥२॥ सूर्य भगवानके दिनके अंतमें चले जाने पर जिस देशके आकाशके अंशमें ग्रहमाला दिखलाई दे वहां पर दूसरे राजाका अधिकार होता है और परचक्रका महान् उपद्रव होता है ॥३॥ जिस नक्षत्रमें ग्रह आया कहते हैं, उस नक्षत्रके वशीभूत जनोंका विनाश करते हैं, परस्पर वर्जित विभेदन और निर्मल किरण होने पर वहांके मनुष्योंका मंगल होता है ॥४॥ ग्रहोंका संवर्त्त, समागम, सम्मोह, समाज सन्निपात और कोशनामक रोग हुआ करता है इन सबके सबल लक्षण कहे जाते हैं ॥५॥ एक नक्षत्रमें पौर ग्रहोंके साथ चार या पांच यायि ग्रहोंके मिलनेसे संवर्त्त कहा जाता है, राहुकेतुका सम्मोह कहलाता है ॥६॥ पौरके साथ पौरका वा यायिगणोंके साथ यायीका संयोग होनेपर समाज नाम होता है, शनि और बृहस्पतिके संगमें यदि कोई और ग्रह आ जाय तो वह कोश कहा जायगा ॥७॥ यदि पश्चिममें एक और पूर्वमें दूसरा उदय हो तो उसको सन्निपात कहते हैं, समागममें अर्थात् चंद्रमाके मिलनमें ग्रहगण विकाररहित, स्निग्ध, विपुल और धन्य होते हैं ॥८॥ सहंवर्त्त और समागमका फल समता है, सम्मोह और कोशमें प्रजाओंको भय होता है; समाज संज्ञामें उत्तम समता और सन्निपातमें वैर और कोप होता है ॥९॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां विंशोऽध्यायः ॥२०॥

अथैकविंशोऽध्यायः

गर्भलक्षणम्

अन्नं जगतः प्राणाः प्रावृट्कालस्य चान्नमायत्तम् । यस्मादतः परीक्ष्यः प्रावृट्कालः प्रयत्नेन ॥ १ ॥ तल्लक्षणानि मुनिभिर्यानि निबद्धानि तानि दृष्टेदम् । क्रियते गर्गपराशरकाश्यपवात्स्यादिरचितानि ॥ २ ॥ दैवविदवहितचित्तो द्युनिशं यो गर्भलक्षणे भवति । तस्य मुनेरिव वाणी न भवति मिथ्याम्बुनिर्देशे ॥ ३ ॥ किं वातः परमन्यच्छास्त्रं ज्यायोऽस्ति यद्विदित्वैव । प्रध्वंसिन्यपि काले त्रिकालदर्शी कलौ भवति ॥ ४ ॥ केचिद्वदन्ति कार्त्तिकशुक्लान्तमतीत्य गर्भदिवसाः स्युः । न तु तन्मतं बहूनां गर्गादीनां मतं वक्ष्ये ॥ ५ ॥ मार्गशिरशुक्ल पक्षप्रतिपत्प्रभृति क्षपाकरेऽषाढाम् । पूर्वां वा समुपगते गर्भाणां लक्षणं ज्ञेयम् ॥६॥ यन्नक्षत्रमुपगते गर्भश्चन्द्रे भवेत् स चंद्रवशात् । पञ्चनवते दिनशते तत्रैव प्रसवमायाति ॥७॥ सितपक्षभवाः कृष्णे शुक्ले कृष्णा द्युसंभवा रात्रौ नक्तं प्रभवाश्चाहनि संध्याजाताश्च संध्यायाम् ॥८॥ मृगशीर्षाद्या गर्भा मन्दफलाः पौषशुक्लजाताश्च । पौषस्य कृष्णपक्षेण निर्दिशेच्छ्रावणस्य सितम् ॥ ९ ॥ माघसितोत्था गर्भाः श्रावणकृष्णे प्रसूतिमायान्ति । माघस्य कृष्णपक्षेण निर्दिशेद्भाद्रपदशुक्लम् ॥ १० ॥ फाल्गुनशुक्लसमुत्था भाद्रपदस्यासिते विनिर्देश्याः । तस्यैव कृष्णपक्षोद्भवास्तु ये तेऽश्वयुक्शुक्ले ॥ ११ ॥ चैत्रसितपक्षजाताःकृष्णेऽश्वयुजस्य वारिदा गर्भाः । चैत्रासितसम्भूताः कार्त्तिकशुक्लेऽभिवर्षन्ति ॥१२॥ पूर्वोद्भूता पश्चादपरोत्थाः प्राग्भवन्ति जीमूताः। शेषास्वपि दिक्ष्वेवं विपर्ययो भवति वायोश्च ॥ १३ ॥ ह्लादि मृदुदक्षिणशक्रदिग्भवो मारुतो वियद्विमलम् । स्निग्धसितबहुलपरिवेषपरिवृतौ हिममयूखार्कौ ॥ १४ ॥ पृथुबहुलस्निग्धघनं घनसूचीक्षुरकलोहिताभ्रयुतम् । काकाण्डमेचकाभं वियद्विशुद्धेन्दुनक्षत्रम् ॥ १५ ॥ सुरचापमन्द्रगर्जितविद्युत्प्रतिसूर्यकाः शुभा संध्या । शशिशिवशक्राशास्थाः प्रशान्तरवाः पक्षिमृगसंघाः ॥ १६ ॥ विपुलाः प्रदक्षिणचराः स्निग्धमयूखा ग्रहा निरुपसर्गाः । तरवश्च निरुपसृष्टांकुरा नरचतुष्पदा हृष्टां ॥ १७ ॥ गर्भाणां पुष्टिकराः सर्वेषामेव योऽत्र तु विशेषः । स्वर्तुस्वभावजनितो गर्भविवृद्धौ तमभिधास्ये ॥ १८ ॥ पौषे समार्गशीर्षे सन्ध्यारागोऽम्बुदाः सपरिवेषाः । नात्यर्थं मृगशीर्षे शीतं पौषेऽतिहिमपातः ॥१९॥ माघे प्रबलो वायुस्तुषारकलुषद्युती रविशशांकौ । अतिशीतं सघनस्यच भानोरस्तोदयौ धन्यौ ॥२०॥ फाल्गुनमासे रूक्षश्चण्डः पवनोऽभ्रसंप्लवाः स्निग्धः । परिवेषाश्चासकलाः कपिलस्ताम्रो रविश्च शुभः ॥२१॥ पवनघनवृष्टियुक्ताश्चैत्रे गर्भाः शुभाः सपरिवेषाः । घनपवनसलिलविद्युत्स्तनितैश्च हिताय

वैशाखे ॥ २२ ॥ मुक्तारजतनिकाशास्तमालनीलोत्पलाञ्जनाभासः । जलचरसत्त्वाकारा गर्भेषु घनाः प्रभूतजलाः ॥ २३ ॥ तीव्रदिवाकर किरणाभितापिता मन्दमारुता जलदाः । रुषिता इव धाराभिर्विसृजन्त्यम्भः प्रसवकाले ॥ २४ ॥ गर्भोपघातलिङ्गान्युल्काशनिपांसुपातदिग्दाहाः । क्षितिकम्पस्वपुरकीलककेतुग्रहयुद्धनिर्घाताः ॥ २५ ॥ रुधिरादिवृष्टिवैकृतपरिघेन्द्रधनूंषि दर्शनं राहोः । इत्युत्पातैरेभिस्त्रिविधैश्चान्यैर्हतो गर्भः ॥ २६ ॥ स्वर्तुस्वभावजनितैः साभान्यैर्यैश्चलक्षणैर्वृद्धिः । गर्भाणां विपरीतैस्तैरेव विपर्ययो भवति ॥२७॥ भाद्रपदाद्वयविश्वाम्बुदैवपैतामहेष्वथर्क्षेषु । सर्वेष्वृतुषु विवृद्धो गर्भो बहुतोयदो भवति ॥२८॥ शतभिषगाश्लेषार्द्रास्वातिमघासंयुतः शुभो गर्भः । पुष्णाति बहून्दिवसान् हन्त्युत्पातैर्हतस्त्रिविधैः ॥२९॥ मृगमासादिष्वष्टौ षट् षोडश विंशतिश्चतुर्युक्ता । विंशतिरथ दिवसत्रयमेकतमर्क्षेण पञ्चभ्यः ॥३०॥ क्रूरग्रहसंयुक्ते करकाशनिमत्स्यवर्षदा गर्भाः । शशिनि रवौ वा शुभसंयुतेक्षिते भूरिवृष्टिकराः ॥३१॥ गर्भसमयेऽतिवृष्टिर्गर्भाभावाय निर्निमित्तकृता । द्रोणाष्टांशेऽभ्यधिके वृष्टे गर्भः स्रुतो भवति ॥३२॥ गर्भः पुष्टः प्रसवे ग्रहोपघातादिभिर्यदि न वृष्टः । आत्मीयगर्भसमये करकामिश्रं ददात्यम्भः ॥३३॥ काठिन्यं याति यथा चिरकालधृतं पयः पयस्विन्याः । कालातीतं तद्वत्सलिलं काठिन्यमुपयाति ॥३४॥ पञ्चनिमितैः शतयोजनं तदर्धार्धमेकहान्यातः । वर्षति पञ्च समन्तात्तद्रूपेणैव यो गर्भः ॥३५॥ द्रोणः पञ्चनिमित्ते गर्भे त्रीण्याढकानि पवनेन । षड् विद्युता नवाभ्रैः स्तनितेन द्वादश प्रसवे ॥३६॥ पवनसलिलविद्युद्गर्जिताभ्रान्वितो यः स भवति बहुतोयः पञ्चरूपाभ्युपेतः । विसृजति यदि तोयं गर्भकालेऽतिभूरि प्रसवसमयमित्वा शीकराम्भः करोति ॥३७॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां गर्भलक्षणमेकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

अन्नही जगत्का प्राण है और अन्न वर्षाकालके वशमें है इस कारण इस करके यत्नके सहित वर्षाकालकी परीक्षा करनी चाहिये ॥१॥ मैंने गर्ग, पराशर, काश्यप और वात्स्यादि मुनियोंके द्वारा रचे हुए और बांधे हुए वर्षाके समस्त लक्षण देखकर यह गर्भलक्षण बनाया है ॥२॥ जो दैवका जाननेवाला पुरुष रात दिन गर्भलक्षणमें मन लगाय सावधान चित्तसे रहते हैं, उनके वाक्य मुनियोंके समान मेघगणितमें कभी मिथ्या नहीं होते ॥३॥ इससे कौनसा श्रेष्ठ शास्त्र है, कि किसे श्रेष्ठ शास्त्रको जानकर विध्वंसी कलिकालमें भी लोग त्रिकालदर्शी होते हैं ॥४॥ कोई २ कहते हैं कि कार्तिकमासके शुक्लपक्षको लांघकर गर्भके दिन होते हैं; किन्तु यह बात सर्वसंमत नहीं है इसलिये गर्गादि बहुतसे ऋषियोंका मत प्रकाश करता हूं ॥५॥ अग्रहायण मासके शुक्ल पक्षकी प्रतिपदासे जिस दिन चंद्रमा पूर्वाषाढा नक्षत्रमें होता है उस दिनसेही सब गर्भोंका लक्षण जानना चाहिये ॥६॥ चंद्रमाके जिस नक्षत्रमें प्राप्त होनेसे । मेघको गर्भ होता है, चंद्रमाके वशसे १९५

दिनमें वह गर्भ प्रसवके कालको प्राप्त होगा ॥७॥ शुक्लपक्षका पैदा हुआ गर्भ कृष्णपक्षमें और कृष्णपक्षका पैदा हुआ गर्भ शुक्लपक्षमें, दिनका गर्भ रात्रिकालमें, रात्रिका गर्भ दिनके किसी भागमें और संध्याका गर्भ विपरीत संध्याकालमें प्रसव कालको पाता है, ॥८॥ मृगशीर्षादिमें पैदा हुए गर्भ और पौषशुक्लजात गर्भ मन्दफलयुक्त हैं, पौषकृष्णपक्षके द्वारा श्रावणका शुक्लपक्ष बताना चाहिये ॥९॥ माघमासके शुक्लपक्षका गर्भ श्रावणके कृष्णपक्ष में प्रसवकालको प्राप्त होता है, माघके कृष्ण पक्षद्वारा भाद्रमासका शुक्लपक्ष निश्चय होता है ॥१०॥ फाल्गुनके शुक्लपक्षजात गर्भ भाद्रमासके कृष्णपक्षमें प्रसव होने चाहिये, फाल्गुनके कृष्णपक्षजात जो गर्भ हैं, वह आश्विनमासके शुक्लपक्षमें प्रसूत होते हैं ॥११॥ चैत्रके श्वेत-पक्षजात गर्भ आश्विनके कृष्णपक्षमें जल देते हैं; और चैत्रके शुक्लपक्ष सम्भूत गर्भ कार्तिकके शुक्लपक्षमें जल वर्षाते हैं ॥१२॥ पूर्वदिशाके मेघ पश्चिममें उडते हैं और पश्चिमके मेघ पूर्वदिशामें उदित होते हैं, ऐसे ही शेष दिशाओंमें भी बादल और पवनका अदल बदल होता है ॥१३॥ उत्तर, ईशानकोण और पूर्वदिशाकी वायुमें आकाश निर्मल, आनंदकर, मृदु होता है। चद्रमा और सूर्य स्निग्ध, सफेत और बहुत करके घेरेदार होता है ॥१४॥ स्थूल, बहुत चिकने मेघोंसे युक्त अथवा काकके अण्डके समान और मोरके पंखोंके समान आकाशके होनेपर नक्षत्र और चंद्रमा विमल ज्योतिवालेही होते हैं ॥१५॥ इन्द्रधनुष और गंभीर गर्जनयुक्त, सूर्याभिमुख, बिजलीका प्रकाश करनेवाले उत्तर, ईशान और पूर्वदिशामें स्थित मेघोंके होनेपर और पक्षी व मृगकुलके शांत शब्द करनेपर संध्याकाल रमण ठीक होता है ॥१६॥ जो प्रदक्षिणा करते हुए बहुतसे ग्रह उपद्रवहीन और चिकनी किरणवाले हो, वृक्ष व्याधिके अंकुरोंसे हीन और नर व चौपाये हर्षित दृष्टि आवें तो गर्भोंकी पुष्टता होती है, परंतु वह निज ऋतु और स्वाभाविक गर्भके विषयमें कहा है ॥१७॥१८॥ अग्र-हायण और पौषमें मेघोंके संध्यारागरंजित और मण्डलदार होनेसे आग्रहायण मासमें अति शीत और पौषमें अत्यंत हिमपात होनेसे गर्भ पुष्ट नहीं होता ॥१९॥ माघमें यदि प्रबल वायु, चंद्र, सूर्यकी किरण तुषारके समान कलुषित और अत्यन्त शीतल हो तो मेघयुक्त भानुका अस्त और उदय वांछनीय ॥२०॥ जो फाल्गुनके महीनेमें पवन रूखी और प्रचंड बहै, चिकने बादल इकट्ठे हों, यदि वे संपूर्ण हों सूर्य अग्निके समान पिंगल और ताम्रवर्ण हो तो शुभ होता है ॥२१॥ यदि चैत्रमें सब गर्भ पवन, मेघ, वृष्टियुक्त और परिवेषयुक्त हो तो शुभ है। जो वैशाखमें मेघ, वायु, जल और शब्दायमान बिजलीसे युक्त हो तो गर्भसे हितसाधन होता है ॥२२॥ मोती या चांदीके समान वा तमाल, नील उत्पल और अंजनकी द्युतिके समान या जलचर प्राणियोंके समान आकारवाले मेघ बहुतसा जल वर्षावे और सूर्यकी किरणसे गर्भ तपे और मद २ पवनके चलनेसे बादल प्रसव-कालमें मानो रुषित होकर जलधारा वर्षावे ॥२३॥२४॥ उल्का, वज्र, धूरिका गिरना, दिग्दाह, भोंचाल गंधर्वनगर, कीलक, केतु, ग्रहयुद्ध, निर्घात, रुधिरादिके वर्षनेसे विकारपन-परिघ इन्द्रधनुष, राहुदर्शन इन सब उत्पातोंसे व और तीन उत्पातोंसे गर्भका नाश हो जाता है ॥२५॥ ऋतुके स्वभावसे साधारण लक्षणद्वारा जो गर्भ बढते हैं, उनके विपरीत लक्षणोंसे उनका बदल हो जाता है ॥२६॥ सब ऋतुओंमें ही पूर्वाभाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा पूर्वाषाढा उत्तराषाढा और रोहिणीनक्षत्रमें बढे हुए गर्भ बहुतसा जल देते हैं ॥२७॥ शतभिषा, आश्लेषा, आर्द्रा, स्वाती और मघासंयुक्त गर्भ शुभदायी और बहुत दिनतक पोषण

करते हैं तीन उत्पातोंसे हने हुए हो तो हनन करते हैं ।।२८।। जब चंद्रमा इन पांच नक्षत्रोंमेंसे किसी एक नक्षत्रमें रहता है तब अग्रहायणसे वैशाखतक छः मासमें क्रमानुसार ।।८।।६।।१६।।२०।।२४।। और ३ दिनतक बर बर वर्षा हुआ करती है ।।२९।। क्रूर-ग्रहसंयुक्त होनेपर समस्त गर्भ ओले, अशनि और मछली वर्षाया करते हैं और चंद्रमा या सूर्य शुभग्रहयुक्त या शुभग्रहसे देखे जानेपर बहुत ही वर्षा करते हैं ।।३०।। यदि गर्भ-समयमें अकारण ही बहुतसी वर्षा होवे तो गर्भका अभाव होता है, द्रोणके अष्टांशसे भी अधिक वर्षण करनेपर गर्भ नष्ट हो जाता है ।।३१।। जो पुष्टगर्भ ग्रहोपघातादिसे न वर्षे तो प्रसवकालमें आत्मीय गर्भके समय ओलेका मिला हुआ जल वर्षाते हैं ।।३२।। जिस प्रकार गायोंका बहुत कालतक धरा हुआ दूध कडेपनको प्राप्त हो जाता है, वैसे ही गर्भ अनेक दिन वीतनेपर कठिनताको प्राप्त हो जाता है ।।३३।। जो गर्भ पांच प्रकारके निमित्तसे पुष्ट होता है वह गर्भ शतयोजनतक फैलकर वर्षा करता है, उसे एक २ निमित्तके अभावमें, शत योजनके अर्द्धार्द्धकी हानि होकर वर्षा होती है ।।३४।। अर्थात् चतुर्निमित्तका गर्भ ५० योजन (२०० कोश), त्रिनिमित्तक २५ योजन (१०० कोश), द्विनिमित्तक १२।। योजन (५० कोश) और एक निमित्तकगर्भ ५ योजन (२० कोश) तक जल वर्षाता है, पांचनिमित्तकगर्भ एक द्रोणजल वर्षाता है, पवननिमित्तक तीन (३) आढक और विद्युन्नि-मित्तक ६ आढक जल वर्षाता है ।।३५।। जो गर्भ पवन, जल, बिजली, गर्जित और मेघ रूप पंचनिमित्त युक्त है सो बहुतसा जल देता है, यदि गर्भकालमें बहुतसा जल वर्षे तो प्रसवकालको लांघकर जलकण वर्षा करते हैं ।।३६।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायामेकविंशोऽध्यायः ।।२१।।

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

गर्भधारणम्

ज्येष्ठसितेऽष्टम्याश्चत्वारो वायुधारणादिवसाः । मृदुशुभपवनाः शस्ताः स्निग्धघ-नस्तगितगगनाश्च ।।१।। तत्रैव स्वात्याद्ये वृष्टे भचतुष्टये क्रमान्मासाः । श्रावण-पूर्वा ज्ञेयाः परिश्रुता धारणास्ताः स्युः ।।२।। यदिताः स्युरेकरूपाः शुभास्ततः सान्तरास्तु न शिवाय । तस्करभयदाःप्रोक्ताः श्लोकाश्चाप्यत्र वासिष्ठाः ।।३।। सविद्युतः सपृषतः सपांसूत्करमारुताः । सार्कचन्द्रपरिच्छन्ना धारणाः शुभधारणाः ।।४।। यदा तु विद्युतः श्रेष्ठाःशुभा शाप्रत्युपस्थिताः । तदापि सर्वसस्यानां वृद्धिं ब्रूयाद्विचक्षणः ।।५।। सपांसुवर्षाः स।पर्श्च शुभाबालक्रीया अपि । पक्षिणां सुस्वरा वाचः क्रीडा पांशुजलादिषु ।।६।। रविचंद्रपरि वेषाः स्निग्धा नात्यन्तदूषिताः । वृष्टिस्तदापि विज्ञेया सर्वसस्याभिवृद्धये ।।७।। मेघाः स्निग्धा संहताश्च प्रदक्षिण-गतिक्रियाः । तदा स्यान्महती वृष्टिः सर्वसस्यार्थसाधिका ।।८।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां मेघगर्भधारणं नाम द्वाविंशोऽध्यायः ।।२२।।

ज्येष्ठमासके शुक्लपक्षकी अष्टमी आदिको चार दिनतक वायुसे गर्भधारण ज्ञान होनेके दिन हैं। सो मृदु शुभ वायुयुक्त होनेपर या चिकने मेघसे ढके हुए बादलके होनेपर श्रेष्ठ है ॥१॥ उसमें स्वाती आदि चार नक्षत्रोंके वर्षा हो तो क्रमसे श्रावणादि महीनेमें गर्भधारण परिस्रुत जानना अर्थात् वर्षा न होगी ॥२॥ यदि यह चारों दिन एकसे हों तो शुभ होता है, जो इससे विपरीत हो तो मंगलदायी नहीं होते, बरन् तस्करोंका भय होता है। वसिष्ठजीके कहे हुए श्लोक इस विषयमें कहे हैं यथा ॥३॥ दामिनी; जलकण और धूरि मिला हुआ पवन चले, चंद्रमा वा सूर्यका मेघोंसे ढके रहना इस प्रकारका जो गर्भ धारण है सो श्रेष्ठ है ॥४॥ जिस समय श्रेष्ठ बिजली शुभ दिशाओंमें दमके तब बुद्धिमान् पुरुषको कहना चाहिये कि धान्यकी वृद्धि होगी ॥५॥ जो बालक खेलते २ जल या धूरिको वर्षावे या पक्षियोंका मधुर २ शब्द हों, पक्षी धूल या जलादिमें किलोलें करें तो शुभ होता है ॥६॥ चंद्रमा सूर्यके मण्डल स्निग्ध है और अत्यंत दूषित नहीं हो तो इस कालकी वर्षा ही सब धान्योंको बढानेवाली है ॥७॥ मेघ चिकने, गाढे और प्रदक्षिण गतिसे परिक्रमा करते हुए चलते हों तो सर्व धान्य और अर्थकी साधन करनेवाली बडी भारी वर्षा होती है ॥८॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

प्रवर्षणम्

ज्यैष्ठ्यां समतीतायां पूर्वाषाढादिसम्प्रवृष्टेन। शुभमशुभं वा वा वाच्यं परिमाणं चाम्भसस्तज्ज्ञैः ॥१॥ हस्तविशालं कुण्डकमधिकृत्याम्बुप्रमाणनिर्देशः। पञ्चाशत्पलमाढकमनेन मिनुयाज्जलं पतितम् ॥२॥ येन धरित्री मुद्रा जनिता वा बिन्दवस्तृणाग्रेषु। वृष्टेन तेन वाच्यं परिमाणं वारिणः प्रथमम् ॥३॥ केचिद्यथाभिवृष्टं दशयोजनमण्डलं वदन्त्यन्ये। गर्गवसिष्ठपराशरमतमेतद्द्वादशान्न परम् ॥४॥ येषु च भेष्वभिवृष्टं भूयस्तेष्वेव वर्षति प्रायः। यदि नाप्यादिषु वृष्टं सर्वेषु तदा त्वनावृष्टिः ॥५॥ हस्ताप्यसौम्यचित्रापौष्णधनिष्ठासु षोडश द्रोणाः। शतभिषगैन्द्र स्वातिषु चत्वारः कृत्तिकासु दश ॥६॥ श्रवणे मघानुराधाभरणीमूलेषु दश चतुर्युक्ताः फल्गुन्यां पञ्चकृतिः पुनर्वसौ विंशतिद्रोणाः ॥७॥ ऐन्द्राग्नाख्ये वैश्वे विंशतिः सार्पभे च दशत्र्यधिकाः। आहिर्बुध्न्यार्यम्णप्राजापत्येषु पञ्चकृतिः ॥८॥ पञ्चदशाजे पुष्ये कीर्तिता च वाजिभे दश द्वौ च। रौद्रेऽष्टादश कथिता द्रोणा निरुपद्रवेष्वेषु ॥९॥ रविरविसुतकेतुपीडिते भे क्षितितनयत्रिविधाद्भुताहतेच। भवति हि न शिवं न चापि वृष्टिःशुभसहिते निरुपद्रवे शिवं च ॥१०॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां प्रवर्षणं नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

ज्येष्ठकी पूर्णिमाके भलीभांति वर्ष जानेपर यदि पूर्वाषाढादि नक्षत्रमें वर्षा हो तो जलका परिमाण और शुभाशुभ बुद्धिमानोंको कहना उचित है ॥१॥ एक हाथ लम्बे

और एक हाथ चौडे कुण्डको धारण करके जलका प्रमाण कहना चाहिये यह पानीसे भर जाय तो उस वर्षे हुए जलको तोलकर वर्षाका परिणाम कहे। उक्त पात्रका परिणाम पचास पल है। यह जलसे भर जाय तो वर्षे हुए जलका परिणाम एक आढक होता है ।।२।। जिसके गिरनेसे पृथ्वीपर चिह्न पड जाय यातृणोंकी नोकोंपर पानीकी बूंदें ठहर जायँ, उस वर्षासे ही जलका प्रथम परिणाम कहना चाहिये ।।३।। कोई २ कहते हैं कि जहांतक देखा जाय वहां तकही वर्षा होती है; कोई २ ऊपर कहे हुए लक्षणसे दश योजन मण्डलमें वर्षाका होना कहते हैं, परंतु गर्ग, वसिष्ठ और पराशरके मतसे बारह योजन अर्थात् ४८ कोशके आगे वर्षा नहीं होती ।।४।। जिन नक्षत्रोंमें वर्षा होती है, बहुधा प्रसवकालके समय उन्हीं सब नक्षत्रोंमें वर्षा हुआ करती है, परंतु यदि पूर्वाषाढासे लेकर मूलनक्षत्रतक किसी नक्षत्रमें वर्षा न हो तो सब नक्षत्रोंमें अनावृष्टि होती है ।।५।। जो उपद्रवहीन चंद्रमा हस्त पूर्वाषाढा, मृगशिर, चित्रा, रेवती और धनिष्ठामें हो तो सोलह द्रोण, शतभिषा, ज्येष्ठा और स्वातीमें ४ द्रोण, कृत्तिकामें १० दश, श्रवण, मघा, अनुराधा, भरणी और मूलमें चतुर्दश, फाल्गुनीमें पच्चीस, पुनर्वसुमें २० वीस, विशाखा और उत्तराषाढा नक्षत्रमें बीस, आश्लेषा नक्षत्रमें तेरह, उत्तराभाद्रपदा, उत्तरफाल्गुनी और रोहिणीमें पच्चीस, पूर्वाभाद्रपदा, पुष्य और अश्विनी नक्षत्रमें बारह और आर्द्रामें अठारह द्रोण जल वर्षाता है ।६।।७।।८।।९।। यदि सब नक्षत्र सूर्य, शनि वा केतुसे पीडित हों और मंगल करके त्रिविध अद्भुत द्वारा आहित हों तो वर्षा नहीं होती, परंतु सुखके साथ निरुपद्रव होनेपर शुभ होता है ।।१०।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद वास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां त्रयोविंशोऽध्यायः ।।२३।।

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

रोहिणीयोगः

कनकशिलाचयविवरजतरुकुसुमासङ्गिमधुकरानुरुते । बहुविहगकलहसुरयुवतिगीतमन्द्रस्वनोपवने ।।१।। सुरनिलयशिखरिशिखरे बृहस्पतिर्नारदाय यानाह । गर्गपराशरकाश्यपमयाश्च याञ्छिष्यसङ्घेभ्यः ।।२।। तानवलोक्य यथावत् प्राजापत्येन्दुसम्प्रयोगार्थान् । स्वल्पग्रन्थेनाहं तानेवाभ्युद्यतो वक्तुम् ।। ३ ।। प्राजेश माषाढतमिस्रपक्षे क्षपाकरेणोपगतं समीक्ष्य । वक्तव्यमिष्टं जगतोऽशुभं वा शास्त्रोपदेशाद्ग्रहचिन्तकेन ।।४।। योगो यथानागत एव वाच्यः स धिष्ण्ययोगः करणे मयोक्तः । चंद्रप्रमाणद्युतिवर्णमार्गैरुत्पातपातैश्च फलं निगद्यम् ।। ५ ।। पुरादुदक्पूर्वतोऽपि वा स्थलं त्र्यहोषितस्तत्र हुताशतत्परः । ग्रहान् सनक्षत्रगणान् समालिखेत् सधूपपुष्पैर्बलिभिश्च पूजयेत् ।।६।। सरत्नतोयौषधिभिश्चतुर्दिशं तरुप्रवालापिहितैः सुपूजितैः । अकालमूलैः कलशैरलंकृतं कुशास्तृतं स्थण्डिलमावसद्विजः ।।७।। आलभ्य मंत्रेण महाव्रतेन बीजानि सर्वाणि निधाय कुम्भे । प्लाव्यानि चामीकर-

दर्भतोयैर्होमो मरुद्वारुण सौम्यमंत्रैः ॥ ८ ॥ श्लक्ष्णां पताकामसितां विदध्याद्दण्ड-
प्रमाणां त्रिगुणोच्छ्रितां च । आदौ कृते दिग्ग्रहणेनभस्वान् ग्राह्यस्तया योगगते
शशाङ्के ॥ ९ ॥ तत्रार्धमासाः प्रहरैर्विकल्प्या वर्षानिमित्तं दिवसास्तदंशैः । सव्येन
गच्छञ्छुभदः सदैव यस्मिन्प्रतिष्ठा बलवान् स वायुः ॥१०॥ वृत्ते तु योगेऽङ्कुरि-
तानि यानि सन्तीह बीजानि धृतानि कुम्भे । येषां तु योंऽशोंऽकुरितस्तदंशस्तेषां
विवृद्धि समुपैति नान्यः ॥११॥ शान्तपक्षिमृगराविता दिशो निर्मलं वियदनिन्दि-
तोऽनिलः । शस्यते शशिनि रोहिणीयुते मेघमारुतफलानि वच्म्यतः ॥ १२ ॥
क्वचिदसितसितैः सितैः क्वचिच्च क्वचिदसितैर्भुजगौरिवाम्बुवाहैः । वलितजठर-
पृष्ठमात्रदृश्यैः स्फुरिततडिद्रसनैर्वृतं विशालैः ॥ १३ ॥ विकसितकमलोदरावदा-
तैररुणाकरद्युतिरञ्चितोपकण्ठैः । छुरितमिव वियद्धनैर्विचित्रैर्मधुकरकुंकुमकिंशु-
कावदातैः ॥ १४ ॥ असितघननिरुद्धमेव वा चलिततडित्सुरचापचित्रितम् ।
द्विपमहिषकुलाकुलीकृतं वनमिव दावपरितमम्बरम् ॥ १५ ॥ अथवाञ्जनशैल-
शिलानिचयप्रतिरूपधरैः स्थगितं गगनम् । हिममौक्तिकशंखशशांककरद्युतिहारि-
भिरम्बुधरैरथवा ॥ १६ ॥ तडिद्धेमकक्षैर्बलाकाग्रदन्तैः स्त्रवद्वारिदानैश्चलत्प्रांत-
हस्तैः । विचित्रेन्द्रचापध्वजोच्छ्रायशोभैस्तमालालिनीलैर्वृतं चाब्दनागैः ॥ १७ ॥
संध्यानुरक्तेनभसिस्थितानामिन्दीवरश्यामरुचां घनानाम् । वृन्दानि पीताम्बरवे-
ष्टितस्य कान्ति हरेश्चोरयतां यदा वा ॥ १८ ॥ सशिखिचातकदर्दुरनिःस्वनैर्यदि-
विमिश्रितमन्द्रपटुस्वनाः । खमवतत्य दिगन्तविलम्बिनः सलिलदाः सलिलौघमुचः
क्षितौ ॥ १९ ॥ निगदितरूपैर्जलधरजालैस्त्र्यहमवरुद्धं द्व्यहमथवाहः । यदि
वियदेवं भवति सुभिक्षं मुदितजना च प्रचुरजला भूः ॥२०॥ रूक्षैरल्पैर्मारुताक्षिप्त-
देहैरुष्ट्रध्वांक्षप्रेतशाखामृगाभैः । अन्येषां वा निंदितानांसरूपैर्मूकैश्चाब्दैर्नोशिवंनापि
वृष्टिः ॥ २१ ॥ विगतघने वा वियति विवस्वानामृदुमयूखः सलिलकृदेवम् । सर
इव फुल्लं निशि कुमुदाढ्यं खमुडुविशुद्धं यदि च सुवृष्ट्यै ॥ २२ ॥ पूर्वोद्भूतैः
सस्यनिष्पत्तिरब्दैराग्नेयाशासम्भवैरग्निकोपः । याम्ये सस्यं क्षीयते नैर्ऋतेऽर्धं पश्चा-
ज्जातैः शोभना वृष्टिरब्दैः ॥ २३ ॥ वायव्योत्थैर्वातवृष्टिः क्वचिच्च पुष्टा वृष्टिः
सौम्यकाष्ठासमुत्थैः श्रेष्ठं सस्यं स्याणुदिक्सम्प्रवृद्धैर्वायुश्चैवं दिक्षु धत्ते फलानि
॥ २४ ॥ उल्कानि पातास्तडितोऽशनिश्च दिग्दाहनिर्घातमहीप्रकम्पाः । नावा
मृगाणां सपतत्त्रिणां च ग्राह्या यथैवाम्बुधरास्तथैव ॥ २५ ॥ नामांकितैस्तैरुदगा-
दिकुम्भैः प्रदक्षिणं श्रावणमासपूर्वैः । पूर्णैः स मासः सलिलस्य दाता स्रुतैरवृष्टिः-
परिकल्प्यमूनैः ॥ २६ ॥ अन्यैश्च कुम्भैर्नृपनामचिह्नैर्देशाङ्कितैश्चाप्यपरैस्तथैव ।
भग्नैः स्रुतैर्न्यूनजलैः सुपूर्णैर्भाग्यानि वाच्यानि यथानुरूपम् ॥२७॥ दूरगो निकटगोऽ-

थवा शशी दक्षिणे पथि यथातथा स्थितः । रोहिणीं यदि युनक्ति सर्वथा कष्टमव जगतो विनिर्दिशेत् ।। २८ ।। स्पृशन्नुदग्याति यदा शशांकस्तदा सुवृष्टिर्बहुलोपसर्गाः । असंस्पृशन्योगमुदक्समेतः करोति वृष्टिं विपुलां शिवं च ।। २९ ।। रोहिणीशकटमध्यसंस्थिते चन्द्रमस्यशरणीकृता जनाः । क्वापि यान्ति शिशुयाचिताशनाः सूर्यतप्तपिठराम्बुपायिनः ।। ३० ।। उदितं यदि शीतदीधितिं प्रथमं पृष्ठत एति रोहिणी । शुभमेव तदा स्मरातुराः प्रमदाः कामिवशे च संस्थिताः ।। ३१ ।। अनुगच्छति पृष्ठतः शशी कामी वनितामिव प्रियाम् । मकरध्वजबाणखेदिताः प्रमदानां वशगास्तदा नराः ।। ३२ ।। आग्नेय्यां दिशि चंद्रमा यदि भवेत्तत्रोपसर्गो महान् नैर्ऋत्यां समुपद्रुतानि निधनं सस्यानि यान्तीतिभिः । प्राजेशानिलदिक्स्थिते हिमकरे सस्यस्य मध्यश्चयो याते स्थाणुदिशं गुणाः सुबहवः सस्यार्घवृद्ध्यादयः ।। ३३ ।। ताडयेद्यदि च योगतारकामावृणोति विपुषा यदापि वा । ताडने भयमुशन्ति दारुणं छादने नृपवधोऽङ्गनाकृतः ।।३४।। गोप्रवेशसमयऽग्रतो वृषो याति कृष्णपशुरेव वा पुरः । भूरि वारि शबले तु मध्यमं नो सितेंऽम्बु परिकल्पनापरैः ।। ३५ ।। दृश्यते न यदि रोहिणीयुतश्चन्द्रमा नभसि तोयदावृते । रुग्भयं महदुपस्थितं तदा भूश्च भूरिजलसस्यसंयुता ।।३६।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ।। २४ ।।

सुमेरुपर्वतके शिखरपर लगे हुए वृक्षोंके फूलोंपर आसक्त हुए भ्रमरोंके गुंजारसे अनेक प्रकारके पक्षियोंकी चहकारसे और देवाङ्गनाओंके मृदु गंभीर गीतोंके स्वरसे परिपूर्ण, पर्वतकी चोटीपर स्थित रमणीक उपवनोंमें बृहस्पतिजीने नारदजीसे जो रोहिणी योग कहा था और गर्ग, पराशर, काश्यप, ऋषियोंने और मयअसुरने अपने शिष्योंसे जो कहा था, उसको देखकर इस छोटेसे ग्रंथमें उसी रोहिणी और चंद्रमाके योगका अर्थ यथार्थ २ वर्णन करनेको हम उत्साही हुए हैं ।।१।।२।।३।। आषाढ मासके कृष्णपक्षमें रोहिणीका चंद्रमाके साथ मेल देखकर जगत्का इष्ट या अनिष्ठ शास्त्रके उपदेशानुसार दैवज्ञ कह सकता है ।।४।। मेल होनेसे पहले ही उनका योग जिस प्रकारसे होना चाहिये, करण (पंचसिद्धान्तिका) में वह धिष्ण्ययोग हमारे द्वारा कहा जा चुका है, चंद्रमाका प्रमाण द्युति, वर्ण, मार्ग और उत्पातके द्वारा ही फल कहना चाहिये ।।५।। ग्रहसंस्थानके जाननेवाला नगरकी पूर्व उत्तरदिशामें नक्षत्रसहित ग्रहोंको लिखकर धूप, फूल और बलिसे पूजा करे ।।६।। चारों ओरमें वृक्ष और कौंपलसे ढका हुआ रत्नसहित जल और औषधियुक्त, तिसकी तलीका भी न हो ऐसे पूजनीय कलशके द्वारा कुश बिछे हुए यज्ञस्थानमें ब्राह्मणको-बैठना चाहिये ।।७।। महाव्रत नामके मंत्रोंसे अभिमंत्रित कर सब प्रकारके बीज घडेमें डालकर सुवर्ण और दर्भयुक्त जलसे उसको प्लावित करे और मारुत, वरुण और सौम्य मंत्रसे होम करे ।।८।। चंद्रमाका योग होनेपर दंडके समान बारह हाथ ऊंचे बांसपर ४ हाथ लम्बी काले रंगकी पताका धारण करे। पहले दिन निर्णय करके उस पताकासे कितने क्षणतक कौन दिशामें हवा चलती है सो जाने ।।९।। एक प्रहरतक एक दिशामें

हवा चले तो १५ दिन तक वर्षा होगी फिर इस प्रकार वायु बहनके कालसे दिवस के अंशको निर्णय करे (श्रावणसे कार्तिकतक इन चार मासके आठ पक्षका एक २ पक्ष एक एक अंशसे निर्देश करना चाहिये) बांयी दिशामें वायु गमन करे तो शीघ्र ही शुभदायी होती है और जो एक नियतलक्ष्यमें अर्थात् एक दिशामें ही गमन करे तो वह वायु प्रतिष्ठावान् और बलवान् होता है ॥१०॥ इस योग के चले जानेपर घडेमें धरे हुए बीजोंमेंसे जो जो अंकुरित हों उनका वही २ अंश ही वृद्धिको प्राप्त होगा, और अंश नहीं ॥११॥ रोहिणीके साथ चंद्रमाका मेल होनेपर यदि सब दिशाएँ शांत हो जायँ, पक्षीगण या मृगगण उनमें मनोहर शब्द करे, आकाश निर्मल और वायु आनंदित हो तो भूमिकी श्रेष्ठ सिद्धि होती है। इसके उपरांत मेघ मारुतके फल क्रमानुसार कहे जाते हैं ॥१२॥ आकाशमें कहीं कालेसे मिला हुआ श्वेत, कहीं श्वेत, कहीं कृष्ण वर्ण, कहीं वलित जठर, पृष्ठ मात्र दृश्य अर्थात् कुण्डली मारकर सर्पके मारनेसे जैसे जिनकी पीठ और पेट दीख पडती हों, चमकती हुई बिजलीके समान जीभवाले और शब्दयुक्त विशाल भुजंगाकार मेघोंके द्वारा जो आकाश घिर जाय, खिले हुए कमलके समान निर्मल व अरुण है समीपभाग जिनका, मधुकर, कुंकुम, टेसूके फूलके समान निर्मल विचित्र मेघोंसे रंगनेके समान जो आकाश शोभायमान हो, काले मेघोंसे रंगनेके समान जो आकाश शोभायमान हो, काले मेघोंसे ढका हुआ हो या चमकती हुई बिजली और इन्द्रधनुषके द्वारा चित्रित आकाश मानो हाथी और भैसोंके द्वारा आकुल किया हुआ दावानलयुक्त वनके समान दिखलाई दे या अञ्जन पहाडके काले पत्थरोंके समान मेघोंसे आकाश छा जाय, अथवा हिम, मुक्ता, शंख और चंद्रकिरणोंकी ज्योति हरण करनेवाले बादलोंसे जो आकाशमण्डल ढक जाय, या बिजलीरूप हैमकक्षासंपन्न वायुका रूप अग्रदन्तरूप जलरूप मद चुआता प्रांतरूप कर चलानेवाला, विचित्र इन्द्रका रूप ऊंची ध्वजासे शोभायमान और तमाल वा भ्रमरके समान नीलवर्ण हाथीरूप बादलसे सब आकाश छा जाय, जो सांझके रागसे रँगे हुए आकाशमें स्थित नीले पद्मके समान मेघ बृंद पीतांबर पहरे हुए हरिकी कान्तिको हरण करे और मोर चातक व मेंढकोंके शब्दके साथ यदि मेघका गंभीर शब्द मिल जाय तो दिशाओंमें फैले हुए आकाशव्यापी बादल पृथ्वीपर बहुतसा जल वर्षाते हैं ॥१३॥१४॥१५॥ ॥१६॥१७॥१८॥१९॥ इस उक्त प्रकारके बादलोंसे आकाश दो या तीन दिन घिरे रहे तो सुभिक्ष हो, मनुष्य प्रसन्न हों और पृथ्वीपर बहुतसा जल वर्षे ॥२०॥ रूखे और अल्पपवनसे जिनका देह फैल गया है, ऊंट, काग, प्रेत किंवा वानरोंके समान या अन्य निन्दित आकारवाले शब्दरहित मेघ जो उदय हों तो शुभ नहीं होता, न वर्षा होती है ॥२१॥ अथवा आकाश मेघशून्य हो, यदि सूर्यकी किरणें तीक्ष्ण हों तो जल वर्षेगा और रात्रिकालमें आकाश निर्मल नत्रत्रोंके साथ कुमुद सरोवरके समान प्रफुल्ल हो तो वृष्टि अच्छी होती है ॥२२॥ पूर्वदिशाके उत्पन्न हुए मेघोंसे धान्य भलीभांति पक जाता है, आग्नेय कोणके उठे हुए मेघोंसे अग्निका कोप होता है, दक्षिण दिशाके उत्पन्न मेघोंसे धान्यका क्षय होता है, नैर्ऋतसे उठे बादलों करके महँगी होती है और पश्चिमके उठे हुए मेघोंसे सुंदर वर्षा होती है ॥२३॥ वायुकोणके उठे हुए मेघोंसे वायु और कहीं भी वर्षा होती है, उत्तर दिशाके उत्पन्न हुए मेघोंसे पुष्ट वर्षा होती है और ईशानकोणके उठे हुए मेघोंसे श्रेष्ठ धान्य होता है, चारों ओरकी वायुमें भी ऐसा ही फल होता है

।।२४।। जो रोहिणीयोगके दिन उल्का गिरे, विजली, वज्रपात, दिग्दाह, निर्घात, पृथ्वीका कंपायमान होना और मृग व पक्षियोंका कोलाहल शब्द हो तो बादलके लक्षणके समान फल ग्रहण किया जाता है ।।२५।। रोहिणीयोगके दिन वृष्टि गिरनेके समय उत्तर आदि चार दिशाओंमें श्रवण, भादों, क्वार, कार्तिक इन चारोंके नामके चार घडे प्रदक्षिणाके क्रमसे स्थापित करे, जो जो घडा जलसे पूर्ण होगा वही श्रावणादि मासका क्रमानुसार जलदाता होगा जिस घडेका जल टपक जाय तो अवृष्टि होगी, घट जाय तो जल कम वर्षेगा ।।२६।। इसी भांतिसे और घडे राजाओंके नामके और देशोंके नामके प्रदक्षिणाके भावसे स्थापन करे, फिर दूसरे दिन उनको देखे. जो टूट जाय, टपक जाय, जिसका जल कम हो जाय या जो पूर्ण रहे, उसका वैसा ही भाग्य निर्णय करना चाहिये ।।२७।। चंद्रमा दूर स्थित होकर रहे या निकट स्थित रहे; पर दक्षिणमार्गमें यदि रोहिणीयुक्त हो तो सर्व प्रकारसे संसारको कष्टदायी होता है ।।२८।। जब चंद्रमा रोहिणीके उत्तर दिशावाले नक्षत्रको स्पर्श करता हुआ हो तो बहुतसे उपद्रवोंके साथ अच्छी वर्षा होती है और विना योग स्पर्श किये उत्तर दिशाके नक्षत्रमें जाय तो भी बहुतसी वर्षा होती है और मंगल होता है ।।२९।। जो चंद्रमा रोहिणीके शकटमें (आकाशमें शकटके आकारके पांच तारे हैं) विराजमान हो तो आदमी शरणरहित, क्षुधातुर, बालयुक्त और सूर्य करके तपाई हुई हांडीके जलको पीते हुए समय बिताते हैं ।।३०।। पहले चंद्रमा उदय हो और जिसके पीछे ही रोहिणी उदय हो तो कामदेववसे व्याकुल हुई स्त्रियां कामी पुरुषके वश हो जाती हैं ।।३१।। प्यारी भार्याके पीछे कामी जनके समान यदि चंद्रमा रोहिणीके पीछे चले तो मनुष्यगण पञ्चबाणके बाणोंसे पीडित होकर औरतोंके वशमें हो जाते हैं ।।३२।। जो अग्निकोणमें चंद्रमा विराजमान हो तो बडे २ उपद्रव होते हैं, नैर्ऋतकोणमें हो तो समस्त धान्य ईतिसे ग्रसित होकर नष्ट हो जाते हैं, पश्चिम और वायुकोणमें चंद्रमा हो तो खेतीका मध्यम संग्रह होता है, ईशानकोणमें हो तो अनेक गुण होते हैं और धान्यका मूल्य भी बढ जाता है इत्यादि ।।३३।। जो चंद्रमा योगतारेको ताडना करे या शरीरसे ढक ले तो क्रमानुसार दारुण भय और स्त्रीके द्वारा राजाका वध होता है ।।३४।। संध्याके समय जब गायें वनसे चरकर आवें (और उस समय चंद्रमाके प्रवेशका समय हो) और तिस समय उनके आगे बैल या काला पशु आवे तो बहुतसी वर्षा होती है। शुक्ल पशुके आगे आनेसे मध्यम वर्षा होती है। जो अनेक रंगवाला पशु आगे हो तो वर्षाऊ बादल भी मेघ नहीं वर्षाते ।।३५।। यदि मेघसे ढके हुए आकाशमें चंद्रमा रोहिणीसे युक्त न दिखलाई पडे तो रोगका बडा भारी भय आता है और पृथ्वीपर बहुतसा जल और धान्य होते हैं ।।३६।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ।।२४।।

अथ पंचविंशोऽध्यायः

स्वातियोगः

यद्रोहिणीयोगफलं तदेव स्वातावषाढासहिते च चन्द्रे। आषाढशुक्ले निखिलं विचिन्त्य योऽस्मिन् विशेषस्तमहं प्रवक्ष्ये ॥ १ ॥ स्वातौ निशांशे प्रथमेऽभिवृष्टे सस्यानि सर्वाण्युपयान्ति वृद्धिम्। भागे द्वितीये तिलमुद्गमाषा ग्रैष्मं तृतीयेऽस्ति न शारदानि ॥ २ ॥ वृष्टेऽह्नि भागे प्रथमे सुवृष्टिस्तद्वद्द्वितीये तु सकीटसर्पा। वृष्टिस्तु मध्यापरभागवृष्टे निश्छिद्रवृष्टिर्द्युनिशं प्रवृष्टे ॥ ३ ॥ सममुत्तरेण तारा चित्रायाः कीर्त्यते ह्यपांवत्सः। तस्यासन्ने चन्द्रे स्वातेर्योगः शिवो भवति ॥ ४ ॥ सप्तम्यां स्वातियोगे यदि पतति हिमं माघमासान्धकारे वायुर्वा चण्डवेगः सजलजलधरो वापि गर्जत्यजस्रम्। विद्युन्मालाकुलं वा यदि भवति नभो नष्टचन्द्रार्कतारं विज्ञेया प्रावृडेषा मुदितजनपदा सर्वसस्यैरुपेता ॥ ५ ॥ तथैव फाल्गुने चैत्रे वैशाखस्यासितेऽपि वा। स्वातियोगं विजानीयादाषाढे च विशेषतः ॥ ६ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां स्वातियोगो नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

जैसे चंद्रमाके साथ रोहिणीयोगका फल है स्वाती और आषाढ नक्षत्रके साथ चंद्रमाके योगका फल भी वैसा ही है। आषाढमासके शुक्लपक्षमें इसका भलीभांति विचार करके इसमें जो विशेषता है सो कही जाती है ॥१॥ स्वाती नक्षत्रमें रात्रिके पहले अंशमें वर्षा हो तो सर्व प्रकारके धान्य बढते हैं, दूसरे भागमें तिल, मूंग और उर्द और तिसरे भागमें ग्रीष्मकालका धान्य होता है। परंतु शरद ऋतुकी खेती नहीं होती ॥२॥ दिनके पहले भागमें वृष्टि होनेसे सुवृष्टि होती है, दूसरे भागमें होनेसे सर्प और कीडे होते हैं, मध्य और अपरभागमें वृष्टि हो तो सुवृष्टि और रातदिन वर्षनेसे उस वर्षमें बहुतसी वृष्टि होती है ॥३॥ चित्राके उत्तर ओरका तारा अपांवत्स[1] कहा जाता है, उसके निकट हुए चंद्रमाके साथ स्वातीका योग होनेपर मंगल होता है ॥४॥ यदि माघ मासकी कृष्णपक्षीय सप्तमी तिथिमें स्वातियोगसे हिम गिरे या प्रचंड वेगसे पवन चले, जलयुक्त बादल गर्जता रहे और आकाश यदि बिजली की रेखाओंसे यूक्त हो, चंद्रमा, सूर्य और ताराओंकी ज्योति रहे तो वर्षाकालमें जनपद आनंदित और सब धान्योंसे युक्त होते हैं ॥५॥ फाल्गुन चैत्र या वैशाखको कृष्णपक्षमें भी ऐसा ही स्वातीका योग होता है, परंतु आषाढ मासमें स्वातियोगको विशेषरूपसे जानना ॥६॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य पंडितबदेलवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां पंचविंशोऽध्यायः ॥२५॥

---

१ "अपांवत्सस्तु चित्रायामुत्तरेंऽशैस्तु पञ्चभिः" चित्रा नक्षत्रके पांच अंश उत्तरविक्षेपमें अर्थात् तीन अंश स्फुट होनेके बाद विक्षेपमें जो एक बडा तारा दिखाई देता है सोई "अपांवत्स" है। सूर्यसिद्धांतनक्षत्रग्रहयुत्यधिकार ॥

अथ षड्विंशोऽध्यायः

आषाढीयोगः

आषाढ्यां समतुलिताधिवासितानामन्येद्युर्यदधिकतामुपैति बीजम् । तद्वृद्धिर्भवति न जायते यदूनं मन्त्रोऽस्मिन् भवति तुलाभिमन्त्रणाय ॥१॥ स्तोतव्या मंत्रयोगेन सत्या देवी सरस्वती । दर्शयिष्यसि यत्सत्यं सत्ये सत्यव्रता ह्यसि ॥ २ ॥ येन सत्येन चन्द्रार्कौ ग्रहा ज्योतिर्गणस्तथा । उत्तिष्ठन्तीह पूर्वेण पश्चादस्तं व्रजन्ति च ॥ ३ ॥ यत्सत्यं सर्ववेदेषु यत् सत्यं ब्रह्मवादिषु । यत् सत्यं त्रिषु लोकेषु तत् सत्यमिह दृश्यताम् ॥ ४ ॥ ब्रह्मणो दुहितासि त्वमादित्येति प्रकीर्तिता । कश्यपी गोत्रतश्चैव नामतो विश्रुता तुला ॥ ५ ॥ क्षौमं चतुःसूत्रकसन्निबद्धं षडङ्गुलं शिक्यकवस्त्रमस्याः । सूत्रप्रमाणं च दशांगुलानि षडेव कक्षोभयशिक्यमध्ये ॥ ६ ॥ याम्ये शिक्ये काञ्चनं सन्निवेश्यं शेषद्रव्याण्युत्तरेऽम्बूनि चैवम् । तोयैः कौप्यैः स्यन्दिभिः सारसैश्च वृष्टिर्हीना मध्यमा चोत्तमा च ॥ ७ ॥ दन्तैर्नागा गोहयाद्याश्च लोम्ना हेम्ना भूपाः सिक्थकेन द्विजाद्याः । तद्वद्देशा वर्षमासा दिशश्च शेषद्रव्याण्यात्मरूपस्थितानि ॥ ८ ॥ हैमी प्रधाना रजतेन मध्या तयोरलाभे खदिरेण कार्या । विद्धः पुमान्येन शरेण सा वा तुला प्रमाणेन भवेद्वितस्तिः ॥ ९ ॥ हीनस्य नाशोऽभ्यधिकस्य वृद्धिस्तुल्येन तुल्यं तुलितं तुलायाम् । एतत्तुलाकोशरहस्यमुक्तं प्राजेशयोगेऽपि नरो विदध्यात् ॥ १० ॥ स्वातावषाढास्वथ रोहिणीषु पापग्रहा योगगता न शस्ताः । ग्राह्यं तु योगद्वयमप्युपोष्य यदाधिमासो द्विगुणीकरोति ॥ ११ ॥ त्रयोऽपि योगाः सदृशाः फलेन यदा तदा वाच्यमसंशयेन । विपर्यये यत्त्विह रोहिणीजं फलं तदेवाभ्यधिकं निगद्यम् ॥१२॥ निष्पत्तिरग्निकोपो वृष्टिर्मन्दाथ मध्यमा श्रेष्ठा । बहुजलपवना पुष्टा शुभा च पूर्वादिभिः पवनैः ॥ १३ ॥ वृत्तायामाषाढ्यां कृष्णचतुर्थ्यामजैकपादर्क्षे । यदि वर्षति पर्जन्यः प्रावृट् शस्ता न चेन्न ततः ॥ १४ ॥ आषाढ्यां पौर्णमास्यां तु यद्यैशानोऽनिलीभवेत् । अस्तं गच्छति तीक्ष्णांशौ सस्यसम्पत्तिरुत्तमा ॥ १५ ॥

इति श्रीवराहमिहि० बृहत्संहितायामाषाढीयोगो नाम षड्विंशोध्यायः ॥ २६ ॥

आषाढी पूनमके दिन जब उत्तराषाढामें चंद्रमा चला जाय तब सभी अन्नका बीज (बीहन) बराबर तोलकर रख दे और दूसरे दिन जिस धान्यका बीज बहुतायतको प्राप्त हो अर्थात् बढ जाय उसकी वृद्धि होती है, जो धान्य कमती हो वह भलीभांति नहीं होता, इसमें तुला अभिमंत्रका मंत्र पढना चाहिये ॥१॥ सत्यात्मिका देवी सरस्वतीकी इस मंत्रसे इस प्रकार स्तुति करनी चाहिये, हे देवी सरस्वती ! आप सत्य संबंधमें सत्यव्रतवाली हैं, इसलिये जो सत्य है तिसको आप दिखा दें ॥२॥ इस संसारमें जिस सत्यके बलसे चंद्रमा

सूर्य ग्रह और ज्योतिर्गण पूर्वमें उदित होते और पश्चिममें अस्त हो जाते हैं, सर्व वेदमें जो सत्य है, ब्रह्मवादियोंमें जो सत्य है और त्रिलोकमें जो सत्य है वह सत्य यहां पर आप दिखा दें, क्योकि आप ब्रह्माकी पुत्री आदित्या नामसे विख्यात हैं, आप गोत्रमें काश्यपी और तुला नामसे विख्यात हैं ॥३–४॥ शनकी बनी हुई चार डेरियोंमें बंधी हुई छः अंगुलकी विस्तारवाली तखडी है, उसकी चारों डोरियोंका प्रमाण दश २ अंगुल होना चाहिये इस प्रकार दोनों पल्लोंके बीचमें छः अंगुलके परिमाणकी कक्षा रखनी चाहिये (जिस सूत्रको पकडकर उठाते हैं, उसे कक्षा कहते हैं) ॥५॥ दायीं ओरके पल्लेमें कांचन रखना चाहियें, ऊपरके पल्लेमें शेष द्रव्य और जल रखना चाहिये, कूप, सरोवर या नदीके जलसे यह कार्य करनेसे क्रमानुसार हीन, मध्यम और उत्तम वर्षा होती है, अर्थात् कुए का जल यदि पहले दिन की अपेक्षा दूसरे दिन कुछ अधिक भारी हो जाय तो वर्षा न होगी. यदि वृष्टिका जल अधिक भारी हो जाय तो मध्यम वर्षा होगी और नदी या कुण्डका जल अधिक भारी हो जाय तो उचित जल वर्षता है, सब जल बढै तो अतिवृष्टि और सब जल घटे तो अनावृष्टि होती है ॥७॥ दन्तसे नागगण, लोभसे गो, अश्वादि पशुगण, स्वर्गसे राजालोग सिक्थ अर्थात् एक ग्रास प्रमाण मोमसे द्विजाति लोगोंकी वृद्धि-हानि जानी जाती है, तथा मध्यदेश, वर्ष, मास और दिग्मंडल तथा शेष द्रव्य (धान्यादि) आत्मरूपसे अर्थात् जिस वस्तुकी हानि वृद्धि जाननी हो उसीको मापकर फल कहना. सुवर्णका बना हुआ तुलादण्ड ही अच्छा है, चांदीका मध्यम है, यह न हो तो खैरकी लकडीकी दण्डी बनानी चाहिये। अथवा जिस शरसे पुरुष विद्ध हो जाते हैं वैसे ही आकारकी और वितस्तिके प्रमाणकी दण्डी बनानी चाहिये ॥८॥९॥ तराजूके साथ तोल करनेमें हीनकी उन्चता और अधिककी वृद्धि (नीचता) होती है, यह तुलाकोशरहस्य कहा गया। मनुष्य रोहिणीयोगमें भी इसको धारण करते हैं ॥१०॥ स्वाती, रोहिणी और आषाढनक्षत्रमें पापग्रहयोग अच्छा नहीं है, परंतु जिस वर्ष अधि[1]मास हो अर्थात् आषाढमास हो, उस वर्षमें पहले कहे हुए दोनों योग ग्रहण किये जायेंगे ॥ ११ ॥ यदि तीनों (रोहिणी, स्वाती और आषाढी) योगोंका फल समान हो तो निसन्देह होकर शुभ या अशुभ फल जैसा हो सो कहना और अदलबदल होनेपर रोहिणीसे उत्पन्न हुआ जो फल है, वही अधिक कहा जाता है ॥१२॥ यदि पूर्वाई हवा चले तो धान्य भलीभांति निवट जाता है, अग्निकोण की हवा चलनेपर अग्निका कोप होता है, ऐसेही यदि दक्षिणादिकी प्रदक्षिणानुसार मंदवृष्टि, मध्यवृष्टि, उत्तमवृष्टि, झंझावृष्टि, पुष्टवृष्टि, और शुभवृष्टि होती है ॥१३॥ आषाढी पूर्णिमाके पीछे कृष्णचतुर्थीमें और पूर्वाषाढानक्षत्रमें जो बादल वर्षा करे तो वर्षा अच्छी है, नहीं तो नहीं ॥१४॥ आषाढी पौर्णिमासीको सूर्य अस्त होनेके समय यदि ईशानकोणकी पवन चले तब पृथ्वीपर धान्य उत्तम होता है ॥१५॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां षड्विशोऽध्यायः ॥२६॥

---

१ जिस चंद्रमाससे रविसंक्रमण नहीं होता उसको अधिमास या मलमास कहते हैं। "असंक्रात्तिना सोऽधिमासः स्फुटं स्यात्।" (सिद्धांन्तशिरोमणिः)

अथ सप्तविंशोऽध्यायः[1]

वातचक्रम्

पूर्वः पूर्वसमुद्रवीचिशिखरप्रस्फालनाघूर्णितश्चन्द्रार्कांशुसटाभिघातकलितो वायुर्यदाकाशतः। नैकान्तस्थितनीलमेघपटलां शारद्यसंवर्धितां वासन्तोत्कटसस्य मण्डिततला विद्यात्तदा मेदिनीम् ॥ १ ॥ यदाग्नेयो वायुर्मलयशिखरास्फालन पटुःप्लवत्यस्मिन् योगे भगवति पतङ्गे प्रवसति । तदा नित्योद्दीप्ता ज्वलन-शिखरालिङ्गिततला स्वगात्रोष्मोच्छ्वासैर्वमति वसुधा भस्मनिकरम् ॥ २ ॥ तालीपत्रलतावितानतरुभिः शाखामृगान्नर्तयन् योगेऽस्मिन् प्लवति ध्वनन् सुप-रुषोवायुर्यदा दक्षिणः। सर्वोद्योगसमुन्नताश्च गजवत्तालाङ्कुशैर्घट्टिताः कीनाशा इव मन्दवारिकणिकान्मुञ्चन्ति मेघास्तदा ॥ ३ ॥ सूक्ष्मैलालवलीलवङ्गनिचयान् व्याघूर्णयन् सागरे भानोरस्तमये प्लवत्यविरतो वायुर्यदा नैर्ऋतः । क्षुत्तृष्णामृतमा-नुषास्थिशकलप्रस्तारभारच्छदा मत्ता प्रेतवधूरिवोग्रचपला भूमिस्तदा लक्ष्यते ॥ ४ ॥ यदा रेणूत्पातैः प्रविकटसटाटोपचपलः प्रवातः पश्चार्धे दिनकरकरापात-समये । तदा सस्योपेता प्रवरनृपराबद्धसमरा धरा स्थाने स्थानेष्ववितरवसामांस-रुधिरा ॥५॥ आषाढीपर्वकाले यदि किरणपतेरस्तकालोपपत्तौ वायव्यो वृद्धवेगः प्लवति घनरिपुः पन्नगादानुकारी । जानीयाद्वारिधाराप्रमुदितमुदितां मुक्तमण्डूककण्ठां सस्योद्भासैकचिह्नां सुखबहुलतया भाग्यसेनामिवोर्वीम् ॥ ६ ॥ मेरुग्रस्तमरीचिमण्डलतले ग्रीष्मावसाने रवौ वात्यामोदिकदम्बगन्धसुरभिर्वायु-र्यदा चोत्तरः। विद्युद्भ्रान्तिसमस्तकान्तिकलनामत्तास्तदा तोयदा उन्मत्ता इव दृष्टचन्द्रकिरणां गां पूरयन्त्यम्बुभिः ॥ ७ ॥ ऐशानो यदि शीतलोऽमरगणैः संसेव्यमानो भवेत् पुन्नागागुरुपारिजातसुरभिर्वायुः प्रचण्डध्वनिः। आपूर्णोदकयौ-वनावसुमती सम्पन्नसस्याकुला धर्मिष्ठाः प्रणतारयो नृपतयो रक्षन्ति वर्णांस्तदा ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौबृहत्संहितायां वातचक्रं नाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

आषाढीयोगके दिन जब सूर्य अस्त हो तब आकाशसे पूर्वाई पवन पूर्वसमुद्रके तरंग शिखरको स्पर्श करता हुआ घूमता और चंद्रमा सूर्यके किरणरूप जटाके अभिघातसे बंध जाता है तब समस्त पृथ्वी एकांतमें स्थित नीले बादलोंके समूहोंसे और वृद्धिको प्राप्त हुए शरदऋतुके फल धान्यसे युक्त होकर समस्त वसन्ती धान्यसे शोभायमान हो जाती है ॥१॥ भगवान् सूर्यके अस्ताचलपर गमन करनेपर जब मलयपर्वतके शिखरपर अखंडित आग्नेय

---

१ अत्र "केचिद्वातचक्रं" (अध्यायं) पठन्ति तद्वराहमिहिरकृतं न भवति। यतो निष्पत्तिरग्निकोपो वृष्टिर्मन्दाथ मध्यमा श्रेष्ठा। बहुजलपवना पुष्टा शुभा च पूर्वादिभिः पवनैः॥" इत्यनेन पौनरुक्त्यं भवति। बहुष्वादर्शेषु दृश्यतेऽतोऽस्माभिः सरसत्वाद् व्याख्यायते। यत। इति टीकाकृताभट्टोत्पलेनोक्तम्।

वायु वहन करे तो पृथ्वी नित्य उद्दीप्त होती है, और प्रकाशकी शिखासे तलमें आलिंगन पानेपर अपने गात्रके तापसे उत्पन्न हुए श्वासोंसे मानो भस्मको वमन करती है ।।२।। जब इस योगमें निठुर दक्षिणी पवन शब्द करते २ तालवृक्ष लताओंके समूह सहित वानरोंको नचाता रहता है, तब सर्व प्रकारके उद्योग करके ऊँचे गजके समान ताल और अंकुशसे ताडित हाथीके समान मेघ कृपण मनुष्यके समान थोडी वर्षा करते हैं ।।३।। सूर्यके अस्तगमनकालमें जब नैर्ऋतवायु छोटी इलायची और लवंग वृक्षोंको समुद्रके किनारे में घुमाता है तब भूख प्यासके मारे मृत मनुष्योंके हड्डियोंके टुकड़े और तिनकोंके गुच्छेके भारसे ढकी हुई पृथ्वीको उन्मत्त प्रेतकी वधूके समान उग्र व चपल दिखाया करता है ।।४।। संध्याके समय जब कि धूरि वर्षने करके केशरके आक्षेपद्वारा चञ्चल और गर्वके हेतुसे चञ्चल हो पश्चिममें बहता है, तब पृथ्वी धान्ययुक्त और प्रधान राजाओंकी समर-भूमि होकर स्थान २ में चरबी मांस व रुधिरसे बराबर ढकी रहती है ।।५।। आषाढी पूर्णिमाको जब सूर्यके अस्त होनेका समय आवे, उस समय यदि मेघका शत्रु वायवीय पवन गरुडकी चालका चलनेवाला होकर गमन करता है; तब पृथ्वी जलकी धारासे प्रफुल्ल, मेंडकोंके शब्दसे शब्दायमान और धान्यशोभाधारिणी होकर बहुत सुखके प्राप्त होनेसे भाग्य सेनाके समान दिखाई देती है ।।६।। ग्रीष्मके अंतमें जब सूर्यकी किरण मेरु पर्वतकी तलीमें पहुंच जाय तो सुगंधित उत्तर वायु कदम्बके फूलोंकी गंधसे सुगंधित होकर बहता है तब बादलोंमें बिजली घूमती है और वह मेघ समस्त दीप्ति धारण करनेसे मत्त होकर उन्मत्तके समान चंद्रमाकी किरणों करके हीन पृथ्वीको जलसे पूर्ण कर देता है ।।७।। जो प्रचण्डध्वनि पुन्नाग, अगरु व पारिजातके फूलोंसे सुगंधित ईशान वायु शीतल और देवताओंसे सेवनीय हो तो पृथ्वी चलरूप यौवनद्वारा परिपूर्ण और पके हुए नाजसे युक्त हो जाती है और शत्रुओंके वश करनेवाले धर्मात्मा राजालोग धर्मकी रक्षा करते हैं ।।८।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायांसप्तविंशोऽध्यायः ।।२७।।

अथाष्टाविंशोऽध्यायः

सद्योवृष्टिलक्षणम्

वर्षाप्रश्ने सलिलनिलयं राशिमाश्रित्य चन्द्रो लग्नं यातो भवति यदि वा केन्द्रगः शुक्लपक्षे । सौम्यैर्दृष्टः प्रचुरमुदकं पापदृष्टोऽल्पमम्भः प्रावृटकाले सृजति न चिराच्चन्द्रवद्भार्गवोऽपि ।। १ ।। आर्द्रं द्रव्यं स्पृशति यदि वा वारि तत्संज्ञकं वा तोयासन्नो भवति यदि वा तोयकार्योन्मुखो वा । प्रष्टा वाच्यः सलिलमचिरादस्ति निःसंशयेन पृच्छाकाले सलिलमिति वा श्रूयते यत्र शब्दः ।। २ ।। उदयशिखरि-संस्थो दुर्निरीक्ष्योऽतिदीप्त्या द्रुतकनकनिकाशः स्निग्धवैडूर्यकान्तिः । तदहनि कुरुतेऽम्भस्तोयकाले विवस्वान् प्रतपति यदि वोच्चैः खं गतोऽतीवतीक्ष्णम् ।। ३ ।।

विरसमुदकं गोनेत्राभं वियद्विमला दिशो लवणविकृतिः काकाण्डाभं यदा च भवेन्नभः । पवनविगमः पोप्लूयन्ते झषाः स्थलगामिनो रसनमसकृन्मण्डूकानां जलागमहेतवः ॥ ४ ॥ मार्जारा भृशमवनिं नखैर्लिखन्तो लोहानां मलनिचयः सविस्रगन्धः । रथ्यायां शिशुनिचिताश्च सेतुबन्धाः सम्प्राप्तं जलमचिरान्निवेदयन्ति ॥ ५ ॥ गिरयोऽञ्जनपुञ्जसन्निभा यदि वा बाष्पनिरुद्धकन्दराः । कृकवाकुविलोचनोपमाः परिवेषाः शशिनश्च वृष्टिदाः ॥६ ॥ विनोपघातेन पिपीलिकानामण्डोपसंक्रान्तिरहिव्यवायः । द्रुमाधिरोहश्च भुजङ्गमानां वृष्टेर्निमित्तानि गवां प्लुतं च ॥ ७ ॥ तरुशिखरोपगताः कृकलासा गगनतलस्थितदृष्टिनिपाताः । यदि च गवां रविवीक्षणमूर्ध्वं निपतति वारि तदा न चिरेण ॥ ८ ॥ नेच्छन्ति विनिर्गमं गृहाद्धुन्वंति श्रवणान् खुरानपि । पशवः पशुवच्च कुक्कुरा यद्यम्भः पततीति निर्दिशेत् ॥ ९ ॥ यदा स्थिता गृहपटलेषु कुक्कुरा भवन्ति वा यदि विततं दिवोन्मुखाः । दिवा तडिद्यदि च पिनाकिदिग्भवा तदा क्षमा भवति समातिवारिणा ॥ १० ॥ शुककपोतविलोचनसन्निभो मधुनिभश्च यदाहिमदीधितेः । प्रतिशशी च यदा दिवि राजते पतति वारि तदा न चिराद्दिवः ॥ ११ ॥ स्तनितं निशि विद्युतो दिवा रुधिरनिभा यदि दण्डवत् स्थिताः । पवनः पुरतश्च शीतलो यदि सलिलस्य तदागमो भवेत् ॥ १२ ॥ वल्लीनां गगनतलोन्मुखाः प्रवालाः स्नायन्ते यदि चलपांसुभिर्विहङ्गाः । सेवन्ते यदि च सरीसृपास्तृणाग्राण्यासन्नो भवति तदा जलस्य पातः ॥ १३ ॥ मयूरशुकचाषचातकसमानवर्णा यदा जपाकुसुमपंकजद्युतिमुषश्च सन्ध्याघनाः । जलोर्मिनगनक्रकच्छपवराहमीनोपमाः प्रभूतपुटसञ्चया न तु चिरेण यच्छन्त्यपः ॥१४॥ पर्यन्तेषु सुधाशशांकधवला मध्येऽञ्चनालित्विषः स्निग्धा नैकपुटाः क्षरज्जलकणाः सोपानविच्छेदिनः । माहेन्द्रीप्रभवाः प्रयान्त्यपरतः प्राक्चाम्बुपाशोद्भवा ये ते वारिमुचस्त्यजन्ति न चिरादम्भः प्रभूतं भुवि ॥ १५ ॥ शक्रचापपरिघप्रतिसूर्या रोहितोऽथ तडितः परिवेषाः । उद्गमास्तसमये यदि भानोरादिशेत् प्रचुरमम्बु तदाशु ॥१६॥ यदि तित्तिरपत्रनिभं गगनं मुदिताः प्रवदन्ति च पक्षिगणाः । उदयास्तमये सवितुर्द्युनिशं विसृजन्ति घना न चिरेण जलम् ॥१७॥ यद्यमोघकिरणाः सहस्रगोरस्तभूधरकरा इवोच्छ्रिताः । भूसमं च रसते यदाम्बुदस्तन्महद्भवति वृष्टिलक्षणम् ॥ १८ ॥ प्रावृषि शीतकरो भृगुपुत्रात् सप्तमराशिगतः शुभदृष्टः । सूर्यसुतान्नवपञ्चमगो वा सप्तमगश्च जलागमनाय ॥ १९ ॥ प्रायो ग्रहाणामुदयास्तकाले समागमे मण्डलसंक्रमे च । पक्षक्षये तीक्ष्णकरायनान्ते वृष्टिर्गतेऽर्के नियमेन चार्द्राम् ॥२०॥ समागमे पतति जलं ज्ञशुकयोर्ज्ञजीवयोर्गुरुसितयोश्च सङ्गमे ।

यमारयोः पवनहुताशजं भयं न दृष्टयोरसहितयोश्च सद्ग्रहैः ॥२१॥ अग्रतः पृष्ठतो वापि ग्रहाःसूर्यावलम्बिन : । यदा तदा प्रकुर्वन्ति महीमेकार्णवामिव ॥ २२ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां सद्योवृष्टिलक्षणं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

वर्षाका प्रश्न पूछे जानेपर उस कालमें चंद्रमा यदि जलराशिके अर्थात् कर्क, कुंभ, मीन, कन्या और मकरकी अन्त्यार्द्ध राशिको आश्रय करके यदि लग्नमें या केंद्रमें हो और शुभ ग्रहसे देखा जाय तो बहुतसा जल वर्षता है, पापग्रहसे देखा जाय तो थोडा जल वर्षता है और बहुत कालतक वर्षा नहीं होती। शुक्रभी चंद्रमाके समान फलदाता है ॥१॥ जो प्रश्न करनेके समय प्रश्नका करनेवाला गीला द्रव्य वा जल अथवा जलपर जिसका नाम हो ऐसे किसी द्रव्यको छुए अथवा जलके निकटवाले या जल संबंधी किसी कार्यमें रत हो या प्रश्न करनेके कालमें जल या जलवाचक शब्द हो तो प्रश्नकर्तासे निःसंदेह कहा जा सकता है कि बहुत शीघ्र वर्षा होगी ॥२॥ वर्षाकालमें जिस दिन उदयपर्वतपर स्थापित सूर्य भगवान् अपनी कांतिसे दृष्टिको संताप पहुंचानेवाले हों, पिघले हुए सुवर्णके समान या वैडूर्यमणिके समान चिकनी कांतिवाले हों उस दिन जल वर्षेगा और यदि आकाशके ऊंचे स्थानमें जाकर तीक्ष्ण किरणोंसे तपें तो उस समय जल वर्षेगा ॥३॥ जलका स्वाद विगड जाना, गायकी आंखके समान आकाशका रंग हो जाना, दिशाओंका विमल होना, सांभरका पसीज जाना, कागके अंडोंके रंगके समान रंगवाले मेघोंका उदय होना, पवनके बहनेसे थँभ जाना, मछलियोंका जलमेंसे वारंवार उछलना और मेंडकोंका वारंवार शब्द करना, जलकी अवाईका चिह्न है ॥४॥ बिल्लियोंका अपने पंजोंसे पृथ्वीको कुरेदना, लोहेपर मैल जम जानेसे उसमें कच्चे मांसके समान गंध आना, बालकोंका मार्गमें रेते आदिका पुल बांधना शीघ्र ही जल वर्षनेके लक्षणको प्रकाश करता है ॥५॥ समस्त पर्वत अंजनराशिके समान रंगवाले हो जायें, उनकी कंदराओंमें बाफ भर जाय और चंद्रमाका परिवेष कुक्कुटके नेत्रके समान हो जाय तो वर्षा होगी ॥६॥ बिना किसी उपद्रवके चींटियोंका अपने अण्डोंका एक स्थानसे उठाकर दूसरे स्थानपर ले जाना, सर्पोंका मैथुन करना और वृक्षोंके ऊपर चढना और गायोंका उछलना कूदना वर्षाका लानेवाला है ॥७॥ जो वृक्षोंके ऊपर गिरगट चढकर आकाशकी ओर देखे, गायें भी ऊपरको दृष्टि उठाकर, सूर्यको देखे तो शीघ्रही जल गिरेगा ॥८॥ जो पशु गृहसे बाहर जानेकी इच्छा न करे और कान व खुरोंको कंपायमान करते रहें और कुत्ते भी इन पशुओंकी नाई ऐसे कार्य करें तो बतलाना चाहिये कि जल वर्षेगा ॥९॥ जब घरोंकी छत्तोंपर कुत्ते बैठे या बराबर ऊपरको देखें और जब दिनके समय ईशानकोणमें बिजली चमके तब अत्यन्तही जलके वर्षनेसे पृथ्वी एकाकार हो जायगी ॥१०॥ जिस समय तोते या कबूतरके नेत्रके समान चंद्रमाका लाल रंग हो या शहतके समान रंग हो और जब आकाशमें दूसरा चंद्रमा दिखलाई जावे, तब आकाशसे शीघ्रही जल वर्षेगा ॥११॥ जो रात्रिमें विजलीकी कडकडाहटका शब्द हो, दिनके समय रुधिरके समान या दंडके समान बिजलीकी रेखा दीख पडे और पवन आगेसे शीतल हो तो उस समय जलका आगम होता है

।।१२।। लताओंके नये पत्ते जो आकाशकी ओर उठ जायँ, पक्षिगण जल या धूरीसे स्नान करें और सर्पादि कीडे मकोडे तृणोंकी नोक पर चढकर बैठें तो शीघ्र वर्षा होगी ।।१३।। जब संध्याकालके आकाशमें मेघगण मोर, शुक, नीलकण्ठ या चातकपक्षीके समान रंगवाले या जपाकुसुम वा कमलकी कांतिको हरण करें और जलकी तरंग पर्वत, नाका, कछुआ, शूकर या मछलीके समान आकारवाले हों तो शीघ्र जल वर्षेगा ।।१४।। चारों किनारोंपर सीधा और चंद्रमाके समान श्वेतवर्ण हो मध्यम अंजन और भ्रमरके समान दीप्तिवाला हो, चिकने जलकी बूंदें टपकता हो, पैरियोंके समान एकके ऊपर एक चढे रहें, पूर्वदिशासे आकर पश्चिम दिशाको जायँ वे वादल शीघ्रही पृथ्वीमें बहुतसा जल वर्षाते हैं ।।१५।। सूर्यके उदय या अस्तके समय जो इन्द्रधनुष्य, परिघ, दूसरा सूर्य, दण्डाकार, इन्द्रधनुष्य, या बिजलीके समान परिवेष प्रकाशित हो तो शीघ्रही बहुतसा जल वर्षता है ।। १६ ।। सूर्यके उदय अस्तके समय यदि आकाशका रंग तीतरके पंखोंके समान हो जाय और पक्षिगण आनंदित होकर कलरव करते हैं तो मेघ शीघ्रही बहुतसा जल वर्षाते हैं ।।१७।। यदि हजार किरणवाले सूर्यके अस्तकालमें अस्ताचलकी किरणोंके समान उंची और अमोघ किरणें विराजमान हैं और यदि मेघगण पृथ्वीके निकट शब्द करें तो इन बातोंको वर्षा होनेका बडा भारी लक्षण कहा जा सकता है ।।१८।। जो वर्षाकालमें चंद्रमा शुभ ग्रहों करके देखता जाय तो शुक्रसे सप्तम राशिमें या शनिसे नवम, पञ्चम वा सप्तम राशिमें हो तो यह जलागमका कारण है ।।१९।। ग्रहोंके उदयास्तकालमें मण्डल संक्रमण और समागम होनेपर और पक्षक्षयमें, अयनके अंतमें और सूर्यके आर्द्रामें जाने पर बहुधा नियमानुसार वर्षा होती है ।।२०।। बुध शुक्रके समागमसे, बुध बृहस्पतिके समागमसे, बालबृहस्पति और शुक्रके संगमसे जल वर्षता है। जो अच्छे ग्रहसे न देखा जाकर या न मिलकर शनि और मंगलका संयोग हो तो अग्निका भय होता है ।।२१।। जब सूर्यका अवलम्बन करनेवाले ग्रह सूर्यके पूर्वमें भी पश्चिममें रहे तो वे पृथ्वीको समुद्रके समान कर देतेहैं ।।२२।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां वृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य- पंडित बलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायांमष्टाविंशोऽध्यायः ।।२८।।

अथकोनत्रिंशोध्यायः

कुसुमलता

फलकुसुमसम्प्रवृद्धिं वनस्पतीनां विलोक्य विज्ञेयम्। सुलभत्वं द्रव्याणां निष्पत्तिश्चापि सस्यानाम् ।।१।। शालेन कमलशाली रक्ताशोकेन रक्तशालिश्च। पाण्डूकः क्षीरिकया नीलाशोकेन सूकरकः ।। २ ।। न्यग्रोधेन तु यवकस्तिन्दुकवृद्ध्या च षष्टिको भवति। अश्वत्थेन ज्ञेया निष्पत्तिः सर्वसस्यानाम् ।। ३ ।। जम्बूभिस्तिलमाषाः शिरीषवृद्ध्या च कंगुनिष्पत्तिः। गोधूमाश्च मधूकैर्यववृद्धिः सप्तपर्णेन ।।४ ।। अतिमुक्तककुन्दाभ्यां कर्पासं सर्षपान्वदेदशनैः। बदरीभिश्च कुलत्थांश्चिरबिल्वेनादिशेन्मुद्गान् ।। ५ ।। अतसी वेतसपुष्पैः पलाशकुसुमैश्च कोद्रवा ज्ञेयाः। तिलकेन शङ्खमौक्तिकरजतान्यथ चेङ्गुदेनशणः ।। ६ ।। करिणश्च हस्तिकर्णै रा-

देश्या वाजिनोऽश्वकर्णेन । गावश्च पाटलाभिः कदलीभिरजाविकं भवति ॥ ७ ॥ चम्पककुसुमैः कनकं विद्रुमसम्पच्च बन्धुजीवेन । कुरुबकवृद्धया वज्रं वैदूर्यं नन्दिकावर्तैः ॥ ८ ॥ विद्याच्च सिन्दुवारेण मौक्तिकं कुंकुमं कुसुम्भेन । रक्तोत्पलेन राजा मन्त्री नीलोत्पलेनोक्तः ॥ ९ ॥ श्रेष्ठी सुवर्णपुष्पैः पद्मैर्विप्राः पुरोहिताः कुमुदैः । सौगन्धिकेन बलपतिरर्केण हिरण्यपरिवृद्धिः ॥१०॥ आम्रैः क्षेमं भल्लातकैर्भयं पीलुभिस्तथारोग्यम् । खदिरशमीभ्यां दुर्भिक्षमर्जुनैः शोभना वृष्टिः ॥११॥ पिचुमन्दनागकुसुमैः सुभिक्षमथ मारुतः कपित्थेन । निचुलेनावृष्टिभयं व्याधिभयं भवति कुटजेन ॥ १२ ॥ दूर्वाकुशकुसुमाभ्यामिक्षुर्वह्निश्च कोविदारेण । श्यामालताभिवृद्धया बन्धक्यो वृद्धिमायान्ति ॥ १३ ॥ यस्मिन्देशे स्निग्धनिश्छिद्रपत्राः संदृश्यन्ते वृक्षगुल्मा लताश्च । तस्मिन् वृष्टिः शोभना सम्प्रदिष्टा रूक्षैश्छिद्रैरल्पमम्भः प्रदिष्टम् ॥ १४ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृह० कुसुमलताध्याय एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

वनस्पतियोंके फल और फूलोंकी अधिकाई देखनेसे द्रव्योंकी सुलभता और खेतीकी निष्पन्नता जानी जाती है ॥१॥ शालके फूल और फलोंकी अधिकाई होनेसे सफेद शट्ठी, दूधीसे पाण्डूक, नीले अशोकसे शूकरकी वृद्धि होती है. वडकी वृद्धिसे युवक और तिन्दुककी वृद्धिसे वृष्टिके धान्य होते हैं और पीपलकी वृद्धिसे सब धान्योंकी वृद्धि होती है ॥२॥३॥ जामुनकी बृद्धिसे तिल और उर्द, शिरीषकी वृद्धिसे कंगनी महुएसे गेहूँ और सप्तपर्णसे जौकी वृद्धि जानना चाहिये ॥४॥ अतिमुक्तक और कुन्द इन दोनों पुष्पवृक्षकी वृद्धिसे कपास, असनासे सरसों, बेरसे कुलथी और सदावेलसे मूंगको जानना चाहिये ॥५॥ वेतससे अलसी, पलाशसे कोदोंकी वृद्धि, तिलकसे शंख, मोती और चांदीकी वृद्धि और इंगुदीकी वृद्धिसे शनकी उत्पत्ति होती है ॥६॥ हस्तिकर्णसे हाथियोंकी, अश्वकर्णसे घोडोंकी, पाटलाकी वृद्धिसे गायोंकी और कदलीसे बकरी और भेडोंकी वृद्धि होती है ॥७॥ चम्पाके फूलसे सुवर्ण, दुपहरियाके फूलसे मूंगा, कुरबककी वृद्धिसे वज्र, नन्दिकावर्तसे वैदूर्य, सिन्धुवारकी वृद्धिसे रत्नोंकी वृद्धि, कुसुम्भसे केशर, लालकमलसे राजा और नील कमलसे मंत्री कहा जाता है ॥८॥९॥ सुवर्णपुष्पसे वणिक, पद्मसे विप्र, कुमुदसे पुरोहित, सुगन्धद्रव्यसे सेनापति, आकके वृक्षसे सुवर्ण, आमसे कल्याण, भिलावेसे भय, पीलुसे आरोग्य, खैर और शमीसे दुर्भिक्ष, अर्जुनसे शुभकरी वृष्टि, नीम और नागकुसुमसे सुभिक्ष, कैथसे पवन, निचुलसे अवृष्टिका भय और कुटजसे व्याधिभयका ज्ञान होता है ॥१०॥११॥१२॥ दूब और कुशके बढनेसे ईख, कचनारसे आग और श्यामालताकी वृद्धिसे व्यभिचारिणी स्त्रियें बढती हैं ॥१३॥ जिस देशमें वृक्ष और जुल्म और लताओंके पत्ते चिकने और छेदसे रहित दिखाई दें उस देशमें शुभ वर्षा होगी और जिसमें वृक्षोंके पत्ते रूखे और सूराखदार हों वहां थोडा २ जल वर्षता है ॥१४॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्सहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयभुरादाबादवास्तव्य–पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकयांमेकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

अथ त्रिंशोऽध्यायः

संध्यालक्षणम्

अर्द्धास्तमितानुदितात् सूर्यादस्पष्टभं नभो यावत् । तावत्सन्ध्याकालश्चिह्नैरेतैः फलं चास्मिन् ॥ १ ॥ मृगशकुनपवनपरिवेषपरिधिपरिघाभ्रवृक्षसुरचापैः । गन्धर्वनगररविकरदण्डरजः स्नेहवर्णैश्च ॥२॥ भैरवमुच्चैर्विरुवन् मृगोऽसकृद् ग्रामघातमाचष्टे । रविदीप्तो दक्षिणतो महास्वनः सैन्यघातकरः ॥३॥ अपसव्ये संग्रामः सव्ये सेनासमागमः शान्ते । मृगचक्रे पवने वा सन्ध्यायां मिश्रगे वृष्टिः ॥ ४ ॥ दीप्तमृगाण्डजविरुता प्राक् सन्ध्या देशनाशमाख्याति । दक्षिणदिक्स्थैर्विरुता ग्रहणाय पुरस्य दीप्तास्यैः ॥५॥ गृहतरुतोरणमथने सपांशुलोष्टोत्करेऽनिले प्रबले । भैरवरावे रूक्षे खगपातिनि चाशुभा सन्ध्या ॥६॥ मन्दपवनावघट्टितचलितपलाशद्रुमा विपवना वा । मधुरस्वरशान्तविहङ्गमृगरुता पूजिता सन्ध्या ॥७॥ सन्ध्याकाले स्निग्धा दण्डतडिन्मत्स्यपरिधिपरिवेषाः । सुरपतिचापैरावतरविकिरणाश्चाशु वृष्टिकराः ॥८॥ विच्छिन्नविषमविध्वस्तविकृतकुटिलापसव्यपरिवृत्ताः । तनुह्रस्वविकलकलुषाश्च विग्रहावृष्टिदाः किरणाः ॥ ९ ॥ उद्द्योतिनः प्रसन्ना ऋजवो दीर्घाः प्रदक्षिणावर्ताः । किरणाः शिवाय जगतो वितमस्के नभसि भानुमतः ॥ १० ॥ शुक्लाः करा दिनकृतो दिवादिध्यान्तगामिनः स्निग्धाः । अव्युच्छिन्ना ऋजवो वृष्टिकरास्ते ह्यमोघाख्याः ॥ ११ ॥ कल्माषबभ्रुकपिला विचित्रमाञ्जिष्ठहरितशबलाभाः । त्रिदिवानुबन्धिनो वृष्टयेऽल्पभयदास्तु सप्ताहात् ॥१२॥ ताम्रा बलपतिमृत्युं पीतारुणसन्निभाश्च तद्व्यसनम् । हरिताः पशुसस्यवधं धूमसवर्णा गवां नाशम् ॥ १३ ॥ माञ्जिष्ठाभाः शस्त्राग्निसम्भ्रमं बभ्रवः पवनवृष्टिम् । भस्मसदृशास्त्ववृष्टि तनुभावं शबलकल्माषाः ॥ १४ ॥ बन्धूकपुष्पाञ्जनचूर्णसन्निभं साध्यं रजोऽभ्येति यदा दिवाकरम् । लोकस्तदा रोगशतैर्निपीड्यते शुक्लं रजो लोकविवृद्धिशान्तये ॥ १५ ॥ रविकिरणजलदमरुतां संघातो दण्डवत् सस्थितो दण्डः । विदिक्स्थितो नृपाणामशुभो दिक्षु द्विजातीनाम् ॥ १६ ॥ शस्त्रभयातंककरो दृष्टः प्राङ्मध्यसन्धिषु दिनस्य । शुक्लाद्यो विप्रादीन् यदभिमुखस्तां निहन्ति दिशम् ॥१७॥ दधिसदृशाभ्रो नीलो भानुच्छादी खमध्यगोऽभ्रतरुः । पीतच्छुरिताश्च घना घनमूला भूरिवृष्टिकराः ॥ १८ ॥ अनुलोमगेऽभ्रवृक्षे समुद्गते यायिनो नृपस्य वधः । बालतरुप्रतिरूपिणि युवराजामात्ययोर्मृत्युः ॥ १९ ॥ कुवलयवैदूर्याम्बुजकिञ्जल्काभा प्रभञ्जनोन्मुक्ता । सन्ध्या करोति वृष्टिं रविकिरणोद्भासिता सद्यः ॥ २० ॥ अशुभाकृतिघनगन्धर्वनगरनीहारपांसुधूमयुता । प्रावृषि करोत्यवग्रहमन्यतौ शस्त्रकोपकरी ॥ २१ ॥ शिशिरादिषु वर्णाः शोणपीतसितचित्रपद्मरुधिरनिभाः । प्रकृतिभवाः सन्ध्यायां स्वतौ शस्ता विकृतिरन्या

॥ २२ ॥ आयुधभृन्नररूपं छिन्नाभ्रं परभयाय रविगामि । सितखपुरेऽर्काक्रान्ते पुरलाभो भेदने नाशः ॥ २३ ॥ सितनितान्तघनावरणं रवेर्भवति वृष्टिकरं यदि सव्यतः । यदि च वीरणगुल्मनिभैर्घनैर्दिवसभर्तुरदीप्तदिगुद्भवैः ॥ २४ ॥ नृपविपत्तिकरः परिघः सितः क्षतजतुल्यवपुर्बलकोपकृत् । कनकरूपधरो बलवृद्धिदः सवितुरुद्गमकालसमुत्थितः ॥ २५ ॥ उभयपार्श्वगतौ परिधी रवेः प्रचुरतोयकृतो वपुषान्वितौ । अथ समस्तककुप्परिवारिणः परिधयोऽस्ति कणोऽपि न वारिणः ॥ २६ ॥ ध्वजातपत्रपर्वतद्विपाश्वरूपधारिणः । जयाय सन्ध्ययोर्घना रणाय रक्त सन्निभाः ॥ २७ ॥ पलालधूमसञ्चयस्थितोपमा बलाहकाः । बलान्यरूक्षमूर्तयो विवर्द्धयन्ति भूभृताम् ॥ २८ ॥ विलम्बिनो द्रुमोपमाः खरारुणप्रकाशिनः । घनाः शिवाय सन्ध्ययोः पुरोपमाः शुभावहाः ॥ २९ ॥ दीप्तविहङ्गशिवामृगघुष्टा दण्डरजः परिघादियुता च । प्रत्यहमर्कविकारयुता वा देशनरेशसुभिक्षवधाय ॥३०॥ प्राची तत्क्षणमेव नक्तमपरा सन्ध्या त्र्यहाद्वा फलं सप्ताहात्परिवेषरेणुपरिघाः कुर्वन्ति सद्यो न चेत् । तद्वत्सूर्यकरेन्द्रकार्मुकतडित्प्रत्यर्कमेघानिलास्तमिन्नेव दिनेऽष्टमेऽथ विहगाः सप्ताहपाका मृगाः ॥३१॥ एकं दीप्त्या योजनं भाति सन्ध्या विद्युद्भासा षट् प्रकाशीकरोति । पञ्चाब्दानां गर्जितं याति शब्दो नास्तीयत्ता काचिदुल्कानिपाते ॥ ३२ ॥ प्रत्यर्कसंज्ञाः परिधिस्तु तस्य त्रियोजनाभा परिघस्य पञ्च । षट् पञ्च दृश्यं परिवेषचक्रं दशामरेशस्य धनुर्विभाति ॥ ३३ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां सन्ध्यालक्षणं नाम त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

प्रतिदिन सूर्यके अर्द्धास्त हो जाने के समयसे जबतक आकाशमें नक्षत्र भलीभांदि दिखाई न दें तबतक संध्याकाल रहता है ऐसाही अर्द्धोदित सूर्यसे पहिले तारादर्शनतक सन्ध्याकाल है ॥ १ ॥ मृग, शकुन, पवन, परिवेष, परिधि, परिघ, मेघ, वृक्ष, इन्द्रधनुष, गंधर्वनगर, सूर्यकिरण दण्ड, धूरि, स्नेह और वर्ण (रंग) इन लक्षणोंसे संध्याका फल कहा जाता है ॥ २ ॥वारंवार ऊँचा भयंकर शब्द करता हुआ मृग ग्रामके नष्ट होनेकी सूचना करता है। सेनाके दक्षिण भागमें स्थित मृग सूर्यके सोहीं मुख कर महान् शब्द करे तो सेनाका नाश होता है ॥३॥ दिशाके दक्षिण में शांत होनेसे संग्राम और वाममें होनेसे सेनाका समागम होता है, सन्ध्याकालमें मृग चकवा पवनके मिश्र या मिली हुई दिशाओंमें चलनेसे वर्षा होगी ॥४॥ पूर्वमें प्रातःसन्ध्याके समय सूर्यकी ओरको मुख करके मृग और पक्षियोंके शब्दसे युक्त संध्या देशके नाशकी सूचना प्रकाश करती है. दक्षिण दिशामें स्थित सूर्यकी ओर मुख किये मृग पक्षियों करके शब्दायमान नगर शत्रुओं करके ग्रहण कर लिया जाता है ॥५॥ गृह, वृक्ष, तोरणमथन और धूरिके साथ मट्टीके ढेलोंको उडाने वाला पवन, प्रबल वेग और भयंकर रूखे शब्दसे पक्षियोंको गिरावें तो अशुभकारी सन्ध्या होती है ॥६॥ सन्ध्याकालमें मन्द पवनके प्रवाहसे हिलते हुए पलाश अथवा वायुरहित हो और मधुर स्वर से शान्त दिशामें विहंग और मृगोंके नाद करनेसे सन्ध्या पूजित होती है ॥७॥ संध्याकालमें दण्ड, तडित, मत्स्य, मंडल, परिवेष, इन्द्रधनु, ऐरावत और सूर्यकी किरण इन सबका स्निग्ध होना शीघ्र वर्षाको लाता है ॥ ८ ॥ टूटी फूटी, टेढी वेडी, विध्वस्त, विकराल, कुटिल, बाईं ओरको झुकी

हुई, छोटी २ विकल और मलीन सूर्यकी किरणें संध्या कालमें हों तो युद्ध हो, वर्षा नहीं हो ।। ९ ।। अन्धकारहीन आकाशमें सूर्यकी किरणोंका निर्मल, प्रसन्न, सीधा, दीर्घताका प्राप्त होना और प्रदक्षिणाके आकारमें घूमना संसारके मंगलका कारण होता है ।। १० ।। सूर्यके किरण दिनके आदि मध्य और अन्तगामी होकर, चिकने, अखंडित, सीधे और श्वेत हों तो वर्षा होती है और इनका नाम अमोघ है ।। ११ ।। वही काले, पीले, कपिल, लाल, हरे अनेक प्रकारके होकर आकाश में फैल जायँ तो वर्षाके कारणरूप हैं, परन्तु एक सप्ताहतक कुछ एक भयदायी हैं ।। १२ ।। इनके ताम्ररंग होनेमें सेनापतिकी मृत्यु होती है, पीले और लालरंगके समान हों तो सेनापतिको दुःख होता है, हरे रंगके होनेसे पशु और धान्यका नाश होता है, धूम्रवर्णसे गोनाश, मंजीठकी आभाके समान रंगदार होनेसे शस्त्र व अग्निका भय होता है, पीछे हों तो पवनके साथ वर्षा होती है, भस्म समान होनेसे अनावृष्टि और सबल और कल्माष रंगके होनेसे वृष्टिका क्षीणभाव हो जाता है ।।१३।।१४।। संध्याकाल की धूरि दुपहरियाके फूल और अंजन चूर्णके समान काली होकर जब सूर्यके सामने को जाती है तब मनुष्य सैंकडों प्रकारके रोगोंसे पीडित होते हैं, इसका श्वेत होना मनुष्योंकी वृद्धि और शान्तिका कारण होता है ।। १५ ।। सूर्यके किरण जल और पवनसे मिल कर दंडके समान हो जायँ तो यही दंड होता है, वह विदिक्में स्थित हो तो राजाओंको और दिक्में स्थिर होकर द्विजात्तियोंको अशुभकारी होता है ।।१६।। दिन निकलनेसे पहले और मध्य सन्धि में जो दंड दिखाई दें तो शस्त्रभय और रोगभयका करनेवाला होता है, शुक्लादि वर्णका हो तो ब्राह्मणोंको और जिनके सम्मुख स्थित हो उन दिशाओंको हनन करता है ।। १७ ।। आकाशमें सूर्यके ढकनेवाले दहीके समान किनारेदार नीले मेघको अभ्रतरु कहते हैं । यह और पीले रंगका मेघ जो घनमूल अर्थात् उसके नीचे मुंख युक्त हो तो बहुतसा जल वर्षाता है ।। १८ ।। अभ्रतरु शत्रुके ऊपर चढ जानेवाले राजाके पीछे २ चलकर अकस्मात् शान्त हो जाय तो युवराज और मंत्रीका नाश हो जाता है ।। १९ ।। नीलकमल, वैदूर्य और पद्मकेशरके समान कांतियुक्त, पवन-हीन संध्या यदि सूर्यकी किरणोंसे प्रकाशित हो तो वर्षा करती है ।। २० ।। अशुभाकार मेघ, गंधर्वनगरी, हिम, धूरि और धूम (कुहर) युक्त संध्या वर्षाकालमें वर्षाकी कमी करती है व और ऋतुमें हो तो शस्त्रका कोप करनेवाली होती है ।। २१ ।। शिशिरादिऋतुमें संध्याकास्वभावसे उत्पन्न हुआ रंग जो लाल, पीला, श्वेत, चित्रविचित्र, पद्म और रुधिरके समान होता है जैसी ऋतु हो वैसाही वर्ण हो तो कल्याणदायी है, दूसरा रंग हो तो विकार होता है ।। २२ ।। शस्त्र धारण किये नररूपधारी सूर्यके सन्मुखके मेघ जो छिन्नभिन्न हों तो शत्रुभय होता है, श्वेत आकाशमें गंधर्वनगर जो सूर्यको ढक ले तो आक्रमणकारी राजाको घेरा हुआ नगर प्राप्त हो जाता है, सूर्य-नगर गंधर्वनगरका भेदन करे तो नगरका शत्रुसे नाश हो जाता है ।।२३।। शुक्लवर्ण और शुक्ल किनारेवाले मेघ जो बांईं ओरसे सूर्यको ढके अथवा उशीर (खस) गुल्मली समान अदीप्त दिशासे उत्पन्न हुए बादलसे जो सूर्य ढक जाय तो वर्षा करनेवाला होगा ।। २४ ।। सूर्यके उदयकालमें जो शुक्लवर्णका परिघ दिखाई दे तो राजाको विपद होती है, रक्तवर्णसे सेनाका कोप होता है और कनकरूपधारीसे बलकी वृद्धि होती है ।। २५ ।। सूर्यके दोनों ओरकी परिधि जो शरीरवाली हो जाय तो बहुतसा जल वर्षता है, सब परिधि दिशाओंको घेर लें तो जलका एक कणभी नहीं गिरता ।।२६।। सन्ध्याकालके मेघ ध्वज, छत्र, पर्वत, हस्ती और घोडेका रूप धारण करे तो जयका कारण है और रक्तके समान लाल हो तो रणके कारण होते हैं ।। २७ ।। पलालके धुएँके समान स्निग्ध मूर्तिधारी मेघ राजा लोगोंके बलको बढाते हैं ।। २८ ।। मेघ संध्याकालमें तीक्ष्ण सूर्यके

प्रकाशक वृक्षाकार हों या झुक जायँ तो मंगल होता है, इसी समयमें नगरके समान मेघ हो तो शुभ होता है ॥ २९ ॥ सूर्यके सन्मुख होकर पक्षी, गीदड और मृग करके शब्दायमान और दंड, धूरि और परिघयुक्त वा प्रतिदिन सूर्यको विकार करनेवाली संध्या देश, राजा और सुभिक्षके नाशके कारण हैं ॥ ३० ॥ पूर्वसंध्या तत्काल फलको देती है, रात्रि वा सायंसन्ध्या तीन दिनमें और परिवेष, रज और परिघ उसी दिनमें फल न दे तो एक सप्ताहमें फल देते हैं, ऐसेही सूर्यकिरण, इन्द्रधनुष, बिजली, प्रतिसूर्य, मेघ और वायु आठ दिनमें और पक्षी व मृग सप्ताहमें फलको पकाते हैं. सन्ध्या अपनी दीप्तिसे एक योजन और बिजली अपनी दीप्तिसे छः योजनतक प्रकाश किया करती है मेघकी गर्जना पांच योजनतक जाती है और उल्कासे गिरनेके योजनका कुछ परिणाम नहीं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ प्रत्यर्क नामवाली परिधिकी दीप्ति तीन योजन, परिघकी दीप्ति पांच योजन, परिवेषचक्रकी दीप्ति पांच या छ. योजनतक देखी जाती है और इंद्रधनुष दश योजनतक प्रकाश करता है ॥ ३३ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायांपश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

अथैकत्रिंशोऽध्यायः

दिग्दाहलक्षणम्

दाहो दिशां राजभयाय पीतो देशस्य नाशाय हुताशवर्णः। यश्चारुणः स्यादपसव्यवायुः सस्यस्य नाशं स करोति दृष्टः ॥ १ ॥ योऽतीव दीप्त्या कुरुते प्रकाशं छायामपि व्यञ्जयतेऽर्कवद्यः। राज्ञो महद्वेदयते भयं स शस्त्रप्रकोपं क्षतजानुरूपः ॥२॥ प्राक्क्षत्रियाणां सनरेश्वराणां प्राग्दक्षिणे शिल्पिकुमारपीडा। याम्ये सहोग्रैः पुरुषैस्तु वैश्या दूताः पुनर्भूप्रमदाश्च कोणे ॥ ३ ॥ पश्चात्तु शूद्राः कृषिजीविनश्च चौरास्तुरंगैः सह वायुदिक्स्थे। पीडां व्रजन्त्युत्तरतश्च विप्राः पाषण्डिनो वाणिजकाश्च शार्व्याम् ॥४॥ नभः प्रसन्नं विमलानि भानि प्रदक्षिणं वाति सदागतिश्च। दिशां च दाहः कनकावदातो हिताय लोकस्य सपार्थिवस्य ॥ ५ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां दिग्दाहलक्षणं नामैकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

पीले वर्णका दिग्दाह राजभयका कारण, हुताशनके वर्णका दिग्दाह देश नाशका कारण होता है और लालरंगका हुआ दक्षिणी पवन धान्यको नष्ट करता है ॥ १ ॥ जिस दिग्दाहमेंअत्यन्त दीप्ति हो और सूर्यके समान छायाको (अंतर्गतज्योतिको) प्रकाशित करता है वह रुधिरके समान दाह राजाको महाभय देता है और शस्त्रका कोप प्रकाशित करता है ॥ २ ॥ पूर्वदिशामें दिग्दाह हो तो राजा और क्षत्रियोंको पीडा होती है, अग्निकोणमें कुमारगण और शिल्पयोगी पीडा देता है, दक्षिणमें उग्रपुरुष, वैश्य दूतगण और दूसरी वार व्याही हुई स्त्रियोंको पीडादायक होता है ॥३॥ पश्चिमदिशामें शूद्र और किसान, वायुकोणमें तुरंगसहित चोर लोग और उत्तर दिशामें ब्राह्मण लोग और ईशान कोणमें पाषण्डी और बनियोंको पीडा होती है ॥ ४ ॥ जो आकाश

प्रसन्न हों, नक्षत्र निर्मल हो, पवन घूमता हुआ चले तो सुवर्णके रंगका दिग्दाह लोगोंके और राजाके हितका निमित्त होता है ॥ ५ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायांमेकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

अथ द्वात्रिंशोध्यायः

भूमिकम्पलक्षणम्

क्षितिकम्पमाहुरेके बृहदन्तर्जलनिवासिसत्त्वकृतम् । भूभारखिन्नदिग्गजविश्रामसमुद्भवं चान्ये ॥ १ ॥ अनिलोऽनिलेन निहतः क्षितौ पतन् सस्वनं करोत्येके । केचित्त्वदृष्टकारितमिदमन्ये प्राहुराचार्याः ॥ २ ॥ गिरिभिः पुरा सपक्षैर्वसुधा प्रपतद्भिरुत्पतद्भिश्च । आकम्पिता पितामहमाहामरसदसि सव्रीडम् ॥ ३ ॥ भगवन्नाम ममैतत्त्वया कृतं यदचलेति तन्न तथा । क्रियतेऽचलैश्चलद्भिः शक्ताहं नास्य खेदस्य ॥ ४ ॥ तस्याः सगद्गदगिरं किञ्चित्स्फुरिताधरं विनतमीषत् । साश्रुविलोचनमाननमवलोक्य पितामहः प्राह ॥ ५ ॥ मन्युं हरेन्द्र धात्र्याः क्षिप कुलिशं शैलपक्षभङ्गाय । शक्रः कृतमित्युक्त्वा मा भैरिति वसुमतीमाह ॥ ६ ॥ किन्त्वनिलदहनसुरपतिवरुणाः सदसत्फलावबोधार्थम् । प्राग्द्वित्रिचतुर्भागेषु दिननिशोः कम्पयिष्यन्ति ॥ ७ ॥ चत्वार्यार्यम्णाद्यान्यादित्यं मृगशिरोश्वयुक्चेति । मण्डलमेतद्वायव्यमस्य रूपाणि सप्ताहात् ॥ ८ ॥ धूमाकुलीकृताशे नभसि नभस्वान् रजः क्षिपन् भौमम् । विरुजन्द्रुमांश्च विचरति रविरपटुकरावभासी च ॥ ९ ॥ वायव्ये भूकम्पे सस्याम्बुवनौषधीक्षयोऽभिहितः । श्वयथुश्वासोन्मादज्वरकासभवा वणिक्पीडा ॥ १० ॥ रूपायुधभृद्वैद्याः स्त्रीकविगन्धर्वपण्यशिल्पजनाः । पीड्यन्ते सौराष्ट्रककुरुमगधदशार्णमत्स्याश्च ॥ ११ ॥ पुष्याग्नेयविशाखाभरणीपित्र्याजभाग्यसंज्ञानि । वर्गो हौतभुजोऽयं करोति रूपाण्यथैतानि ॥ १२ ॥ तारोल्कापातावृतमादीप्तमिवाम्बरं सदिग्दाहम् । विचरति मरुत्सहायः सप्तार्चिः सप्तदिवासान्त. ॥ १३ ॥ आग्नेयेऽम्बुदनाशः सलिलाशयसंक्षयो नृपतिवैरम् । दद्रूविर्चचिकाज्वरविसर्पिकाः पाण्डुरोगश्च ॥१४॥ दीप्तौजसः प्रचण्डाः पीड्यन्ते चाश्मकाङ्गबाह्लीकाः । तङ्गणकलिङ्गवङ्गद्रविडाः शबराश्च नैकविधाः ॥ १५ ॥ अभिजिच्छ्रवणधनिष्ठाप्राजापत्यैन्द्रवैश्वमैत्राणि सुरपतिमण्डलमेतद्भवन्ति चास्य स्वरूपाणि ॥ १६ ॥ चलिताचलवर्ष्माणो गम्भीरविराविणस्तडित्वन्तः । गवललालिकुलाहिनिभा विसृजन्ति पयः पयोवाहाः ॥ १७ ॥ ऐन्द्रं श्रुतिकुलजातिख्यातावनिपालगणपतिविध्वंसि । अतिसारगलग्रहवदनरोगकृच्छर्दिकोपाय ॥ १८ ॥ काशियुगन्धरपौरवकिरातकीराभिसारहलमद्राः । अर्बुदसुवास्तुमालवपीडाकरमिष्टवृष्टिकरम् ॥ १९ ॥

पौष्णाप्याद्रश्लेषामूलाहिर्बुध्यवरुणदेवानि। मडलमेतद्वारुणमस्यापि भवन्ति रूपाणि ॥२०॥ नीलोत्पलालिभिन्नाञ्जनत्विषो मधुररावविणो बहुलाः। तडिदुद्भासित देहा धारांकुशवर्षिणो जलदाः ॥ २१ ॥ वारुणमर्णवसरिदाश्रितघ्नमतिवृष्टिदं विगतवैरम्। गोनर्दचेदिकुकुरान् किरातवैदेहकान् हन्ति ॥ २२ ॥ षड्भिर्मासैः-कम्पो द्वाभ्यां पाकं च याति निर्घातः। अन्यानप्युत्पातान् जगुरन्ये मण्डलैरेतैः ॥२३॥ उल्का हरिश्चन्द्रपुरं रजश्च निर्घातभूकम्पककुप्प्रदाहाः। वातोऽतिचण्डो ग्रहणं रवीन्द्वोर्नक्षत्रतारागणवैकृतानि ॥२४॥ व्यभ्रे वृष्टिवैंकृतं वातवृष्टिर्धूमोऽनग्नेर्विस्फुलिङ्गार्चिषो वा। वन्यं सत्त्वं ग्राममध्येविशेद्वा रात्रावैन्द्रं कार्मुकं दृश्यते वा ॥२५॥ संध्याविकाराःपरिवेषखण्डा नद्यः प्रतीपा दिवि तूर्यनादाः। अन्यच्च यत्स्यात् प्रकृतःप्रतीपं तन्मण्डलैरेव फलं निगद्यम् ॥२६॥ हन्त्यैन्द्रो वायव्यं वायुश्चाप्यैन्द्रमेवमन्योऽन्यम्। वारुणहौतभुजावपि वेलानक्षत्रजाः कम्पाः ॥२७॥ प्रथितनरेश्वरमरणव्यसनान्याग्नेयवायुमण्डलयोः। क्षुद्भयमरकावृष्टिभिरुपताप्यन्ते जनाश्चापि ॥२८॥ वारुणपौरन्दरयोः सुभिक्षशिववृष्टिर्हार्दयो लोके। गावोऽतिभूरिपयसो निवृत्तवैराश्च भूपालाः ॥२९॥ पक्षैश्चतुर्भिरनिलस्त्रिभिरग्निर्देवराट् च सप्ताहात्। सद्यः फलति च वरुणो येषु न कालोऽद्भुतेषूक्तः ॥३०॥ चलयति पवनः शतद्वयं शतमनलो दशयोजनान्वितम्। सलिलपतिरशीतिसंयुतं कुलिशधरोऽभ्यधिकं च षष्टिकम् ॥३१॥ त्रिचतुर्थसप्तमदिने मासे पक्षे तथा त्रिपक्षे च। यदि भवति भूमिकम्प्पः प्रधाननृपनाशनो भाति ॥३२॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां भूमिकम्पलक्षणं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः॥३२॥

एक संप्रदायवाले भूमिकंपको जलमें रहनेवाले बडे प्राणियोंका किया हुआ कहते हैं, कोई २ कहते हैं–पृथ्वीके भारको धारण करने से थके हुए दिग्गजोंका विश्राम करना ही इसका कारण है ॥ १ ॥ और कोई २ कहते हैं कि जब पवन पवनसे टकराकर गिरता है, तब वही शब्दके साथ भूमिकम्पको करता है और कोई २ इसको शुभ अशुभ कार्यका कारण कहते हैं. किसी किसी आचार्यका मत यह है कि, पूर्वकालमें पृथ्वी और आकाशसे नीचे गिरते हुए और पृथ्वी परसे आकाशको उडते हुए पर्वतोंको गिरने और उडनेसे कम्पायमान हो देवताओंके साथ लजाती हुई पृथ्वी ब्रह्माजीसे बोली थी,–हे भगवन्! आपने मेरा "अचला" नाम रक्खा है, परंतु इस समय चलायमान पर्वतों करके मैं सचला (कम्पयुक्त) होती हूँ इस कारण मैं इस कष्टको नहीं सह सकती ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ पृथ्वीके इस प्रकार गद्गद वचन सुनकर और फडकते हुए अधरवाला कुछेक झुका हुआ आंसुओंसे भरे नेत्रवाला मुख देखकर ब्रह्माजी बोले,–हे इन्द्र! धरतीका शोक हरण करो और पर्वतोंके पंख काटनेको वज्र लाओ। इन्द्रने "तथास्तु" कहकर पृथ्वीसे कहा,– "कुछ भय नहीं है. परन्तु वायु, अग्नि, इन्द्र और वरुण दिनरातके प्रथम दूसरे तीसरे और चौथे भागमें सत् और असत् फल सूचित करनेके लिये तुमको कम्पायमान करेंगे" ।५॥६॥७॥ पहले उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, रेवती, मृगशिरा और अश्विनी यह वायव्य मंडल है; इसका फल एक सप्ताहमें होता है ॥८॥ इसमें धूम से छाये हुए आकाश में पृथ्वी की धूरिको उडाता हुआ

हुआ, वृक्षोंको तोडता हिलाता प्रचंड पवन चला करता है और सूर्यकिरण मन्द हो जाते हैं ।। ९ ।। वायव्य भोंचालसे धान्य, जल और वनौषधियोंका क्षय होता है, बनियोंको शोध, दमा, उन्माद, ज्वर और खांसीकी पीडा होती है ।। १० ।। सुन्दर पुरुष अस्त्रधारी, वैद्यगण, स्त्री, कवि और गानेवाले, व्यापारी और शिल्प जाननेवाले पुरुष और सौराष्ट्र, कुरु, मगध, दशार्ण और मत्स्यदेश पीडित होता है ।। ११ ।। पुष्य, आग्नेय, विशाखा, भरणी, पित्र्य, अज और भाग्य नामवाले नक्षत्रमें हौतभुजवर्ग होता है. इसका रूप इस प्रकार है, सात दिनतक तारा और उल्काके गिरनेसे ढका हुआ आकाश मानो दिग्दाहयुक्त और कुछेक दीप्तिके समान होता है और सात विशाखा-वाला अग्नि पवनका सहायी होकर विचरता है ।। १२ ।। १३।। इस आग्नेयवर्गमें भूमिकंपहोनेसे मेघनाश, जलाशयोंका सूखना, राजद्वेष और दाद, विर्चचिका, ज्वर, विसर्पिका और पांडुरोग होते हैं. दीप्ततेजा और प्रचंड अश्मक, अंग, बाह्लीक, तंगण कलिंग, वंग, द्रविड देश और अनेक प्रकारके शबरगण पीडित होते हैं ।। १४ ।। १५ ।। अभिजित्, श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा, उत्तराषाढा और अनुराधा ये सात नक्षत्र इन्द्रमंडलके हैं. इनका स्वरूप ऐसा है, चलते हुए पर्वतके समान रूपधारी, गंभीर शब्दकारी, तडिद्युक्त, वन, भैंस, भ्रमर और सांपके समान काले मेघ जल को वर्षाते हैं. इन्द्रवर्गमें भूमिकम्म होनेसे समुद्र और नदियोंमें रहनेवाले राजा और गणपतियों का विध्वंस होता है और अतिसार, गलग्रह, वदनरोग और वमनकोप होता है ।। १६ ।। १७ ।। ।। १८ ।। काशी, युगंधर, पौरव, किरात, कीर, अभिसार, हल, मद्र, अर्बुद, सुवास्तु और मालव देशमें पीडा होती है और अभिलाषाके अनुसार वर्षा होती है ।। १९ ।। रेवती, पूर्वाषाढा, आर्द्रा, आश्लेषा, मूल, उत्तराभाद्रपदा, शतभिषा ये सात नक्षत्र वरुणमण्डलके हैं इनका स्वरूप इस प्रकार है नीला कमल, भ्रमर और अञ्जनके समान प्रतिफलित द्युतिमान्, बिजलीकरके उद्भासित देह बहुतसे बादल मधुर शब्द करते २ जलधारारूप अंकुरोंसे वर्षते हैं ।। २० ।। २१ ।। इस वारुणमण्डलमें भूमिकम्प हो तो समुद्र और नदियोंके आश्रयमें रहनेवालोंका नाश होता है, यह वृष्टिकारक, द्वेषहीन और गोनर्द, चेदी, कुकुर, किरात और विदेहवासियोंका नाश करता है ।। २२ ।। भूमिकंपका फल छ:मासमें पकता है, निर्घातका फल दो मासमें होता है, इन मंडलोंमें और उत्पात हों वे भी इन दो महीनोंमेंही फल देंगे ।। २३ ।। उल्का, गंधर्वपुर, धूरि, उपद्रव, भूकंप दिग्दाह, प्रचंडपवन और सूर्य चन्द्रमाका ग्रहण, नक्षत्र और तारोंके विकारके लिये कहा गया ।। २४ ।। विना बादलके वर्षाका होना, विकार, अग्निकी चिनगारीदार लपट, पवनके साथ वर्षाका होना, धूप, बनैले प्राणियोंका ग्राममें आना, रात्रिमें इंद्रधनुषका दिखाई देना, संध्याका विकार, परिवेषखंड, नदियोंकी गतिका विपरीत होना, आकाशमें तुर्रहीका बजना. और भी जो कुछ संसारमें विपरीतता हो इस वर्गसेही उसका फल कहा जाता है ।। २५ ।। २६ ।। जो इन्द्र-मण्डल वायव्यमंडलको निहत करे या वायव्यमंडल इन्द्रवर्गका नाश करे जो ऐसेही वारुण और आग्नेयमंडल परस्पर एक दूसरेको हनन करे तो उसको वेलानक्षत्रजात कम्प कहते हैं ।। २७ ।। आग्नेय और वायव्यमंडलके परस्पर टकरानेसे विख्यात राजाकी मृत्यु होती है या वह विपत्तिमें पडता है, और मनुष्य क्षुधाभय, मरी और वर्षाके न होनेसे सन्तापित होते हैं, वरुण और पौरन्दर मंडलके अभिघातसे सुभिक्ष, कल्याणी वर्षा और प्रीति होती है, गायें बहुतसा दूध देने लगती हैं, राजा लोग आपसका वैर छोड देते हैं ।। २८ ।। २९ ।। अंग फडकना आदि जिन उपद्रवोंके फलका समय नहीं कहा, उनके वायव्यमंडलमें होनेसे दो मासके मध्यमें फल होता है, अग्निवर्ग तीन पक्षमें, इन्द्रवर्ग सप्ताहके पीछे और वरुणवर्ग शीघ्र फलवान् होता है ।। ३० ।। पवनवर्ग दो शत योजन,

अनलवर्ग एक शत दश योजन, वरुणवर्ग एक शत अस्सी योजन और इन्द्रवर्ग साठ योजनसे कुछ अधिक भूमिको कंपायमान करता है ।। ३१ ।। भूमि कंपके बाद तीसरे चौथे और सातवें दिनमें या महीनेमें वा पक्षमें अथवा तीन पक्षमें जो फिर भूमिकंप हो तो मुख्यराजाका नाश होता है ।। ३२ ।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ।।३२।।

अथ त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

उल्कालक्षणम्

दिवि भुक्तशुभफलानां पततां रूपाणि यानि तान्युल्काः । धिष्ण्योल्काशनिविद्युतारा इति पञ्चधा भिन्नाः ।।१।। उल्का पक्षेण फलं तद्वद्धिष्ण्याशनिस्त्रिभिः पक्षैः । विद्युदहोभिः षड्भिस्तद्वत्तारा विपाचयति ।।२।। तारा फलपादकरी फलार्धदात्री प्रकीर्तिता धिष्ण्या । तिस्रः संपूर्णफला विद्युदथोल्काशनिश्चेति ।। ३ ।। अशनिः स्वनेन महता नृगजाश्वमृगाश्मवेश्मतरुपशुषु । निपतति विदारयन्ती धरातलं चक्रसंस्थाना ।।४।। विद्युत्सत्त्वत्रासं जनयन्ती तटतटस्वना सहसा । कुटिलविशाला निपतति जीवेन्धनराशिषु ज्वलिता ।।५।। धिष्ण्या कृशाल्पपुच्छा धनूंषि दश दृश्यतेऽन्तराभ्यधिकम् । ज्वलिताङ्गारनिकाशा द्वौ हस्तौ सा प्रमाणेन ।।६।। तारा हस्तं दीर्घा शुक्ला ताम्राब्जतन्तुरूपा वा । तिर्यगधश्चोर्ध्वं वा याति वियत्युह्यमानेव ।।७।। उल्का शिरसि विशाला निपतन्ती वर्द्धते प्रतनुपुच्छा । दीर्घा भवति च पुरुषं भेदा बहवो भवन्त्यस्याः ।।८।। प्रेतप्रहरणखरकरभनक्रकपिदंष्ट्रिलाङ्गलमृगाभाः । गोधाहिधूमरूपाः पापा या चोभयशिरस्का ।।९।। ध्वजझषकरिगिरिकमलेन्दुतुरगसन्तप्तरजतहंसाभाः । श्रीवत्सवज्रशंखस्वस्तिकरूपाः शिवसुभिक्षाः ।।१०।। अम्बरमध्याद्बह्व्यो निपतन्त्यो राजराष्ट्रनाशाय । बभ्रमती गगनोपरि विभ्रममाख्याति लोकस्य ।।११।। संस्पृशतौ चन्द्रार्को तद्विसृता वा सभूप्रकम्पा च । परचक्रागमनृपवधदुर्भिक्षावृष्टिभयजननी ।।१२।। पौरेतरघ्नमुल्कापसव्यकरणं दिवाकरहिमांश्वोः । उल्का शुभदा पुरतो दिवाकरनिःसृता यातुः ।।१३।। शुक्ला रक्ता पीता कृष्णा चोल्का द्विजादिवर्णघ्नी । क्रमशश्चैतान् हन्युर्मूर्धोरःपार्श्वपुच्छस्थाः ।। १४ ।। उत्तरदिगादिपतिता विप्रादीनामनिष्टदा रूक्षा । ऋज्वी स्निग्धाखण्डा नीचोपगता च तद्वृद्ध्यै ।। १५ ।। श्यामा वारुणनीलासृग्दहनासितभस्मनिभा रूक्षा । सन्ध्यादिनजा वक्रा दलिता च परागमभयाय ।।१६।। नक्षत्रग्रहघाते तद्भक्तीनां क्षयाय निर्दिष्टा । उदये घ्नती रवीन्दू पौरेतरमृत्यवेऽस्ते वा ।। १७ ।। भाग्यादित्यधनिष्ठामूलेषूल्काहतेषु युवतीनाम् । विप्रक्षत्रियपीडा पुष्यानिलविष्णुदेवेषु ।।१८।। ध्रुवसौम्येषु नृपाणामुग्रेषु सदारुणेषु चौराणाम् ।

क्षिप्रेषुकलाविदुषांपीडा साधारणे च हते ॥१९॥ कुर्वन्त्येताः पतिता देवप्रतिमासुराजराष्ट्रभयम् । शक्रोपरि नृपतीनां गृहेषु तत्स्वामिनां पीडाम् ॥२०॥ आशाग्रहोपघाते तद्देशानां खले कृषिरतानाम् । चैत्यतरौ सम्पतिता सत्कृतपीडां करोत्युल्का ॥२१॥ द्वारि पुरस्य पुरक्षयमथेन्द्रकीले जनक्षयोऽभिहितः । ब्रह्मायतने विप्रान् विनिहन्याद्गोमिनो गोष्ठे ॥२२॥ क्ष्वेडास्फोटितवादितगीतोत्क्रुष्टस्वना भवन्ति यदा । उल्कानिपातसमये भयाय राष्ट्रस्य सनृपस्य ॥२३॥ यस्याश्चिरं तिष्ठति खेऽनुषङ्गो दण्डाकृतिः सा नृपतेर्भयाय । या चोह्यते तन्तुधृतेव खस्था या वा महेन्द्रध्वजतुल्यरूपा ॥२४॥ श्रेष्ठिनः प्रतीपगा तिर्यगा नृपांगनाः । हन्त्यधोमुखी नृपान् ब्राह्मणानथोर्ध्वगा ॥२५॥ बर्हिपुच्छरूपिणी लोकसंक्षयावहा । सर्पवत् प्रसर्पिणी योषितामनिष्टदा ॥२६॥ हन्ति मण्डला पुरं छत्रवत् पुरोहितम् । वंशगुल्मवत् स्थिता राष्ट्रदोषकारिणी ॥२७॥ व्यालसूकरोपमा विस्फुलिङ्गमालिनी । खण्डशोऽथवा गता सस्वना च पापदा ॥२८॥ सुरपतिचापप्रतिमा राज्यं नभसि विलीना जलदान् हन्ति । पवनविलोमा कुटिलं याता न भवति शस्ता विनिवृत्ता वा ॥२९॥ अभिभवति यतः पुरं बलं वा भवति भयं तत एव पार्थिवस्य । निपतति च यथा दिशा प्रदीप्ता जयति रिपूनचिरात्तया प्रयातः ॥३०॥

इतिश्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० उल्कालक्षणं नाम त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

स्वर्गमें फल भोगे हुए पुरुषोंका गिरनेके समय जो रूप होता है वही उल्का है. धिष्ण्या, उल्का अशनि, बिजली और तारा यह पांच भाग उल्काके हैं ॥ १ ॥ उल्का १५ दिनमें वैसेही धिष्ण्या और अशनि तीन पक्षमें अर्थात् ४५ दिनमें और तारा वा बिजलीका फल छ. दिनमें होता है ॥ २ ॥ तारा एक चौथाई फल करनेवाली है, धिष्ण्या आधे फलको देनेवाली और बिजली, उल्का वज्र इन तीनोंका संपूर्ण फल होता है ॥ ३ ॥ अशनिका आकार चक्रके समान है, यह बडे शब्दके साथ पृथ्वीको फाडती हुई मनुष्य, गज, अश्व, मृग, पत्थर, गृह वृक्ष और पशुओंके ऊपर गिरती है ॥ ४ ॥ तड २ शब्द करती हुई विद्युत अचानक प्राणियोंको त्रास उपजाती हुई कुटिल और विशाल होकर जलती हुई जीवोंके ऊपर और ईंधनके ढेरपर गिरती है ॥ ५ ॥ पतली,छोटी पूंछ, वाली धिष्ण्या जलते हुए अंगारके समान दश धनुषसे कुछ अधिक स्थानतक दिखाई देती है इसका परिणाम दो हाथका है ॥ ६ ॥ तारा तांबा, कमल,ताररूप वा शुक्ल होती है इसका विस्तार एक हाथका है खींचते हुएके समान आकाशमें तिरछी या आधी उठी हुई गमन करती है ॥ ७ ॥ प्रतनुपुच्छा विशाला उल्का गिरते २ बढती है, परन्तु इसकी पूंछ छोटी होती जाती है । इसकी दीर्घता पुरुषके समान होती है, इसके अनेक भेद हैं ॥ ८ ॥ कभी यह प्रेत, शस्त्र, खर, करभ, नाका, बन्दर, डाढवाले जीव और मृगके समान आकारवाली हो जाती है. कभी गोह सांप और धूमरूप हो जाती है और कभी दो शिरके रूपवाली होती है. यह पापमयी है ॥ ९ ॥ कभी ध्वज, मत्स्य, हाथी, पर्वत, कमल, चन्द्रमा, अश्व, तपी हुई धूल और हंसके समान, कभी श्रीवत्स, वज्र, शंख और स्वस्तिक रूपसे प्रकाशित होती है परन्तु यह सब कल्याण और सुभिक्षकारी है ॥ १० ॥ परन्तु अनेक प्रकारकी रूपवाली उल्कायें निरन्तर आकाशमें घूमते २ आकाशमेंसे गिरती

हैं ॥ ११ ॥ चंद्र और सूर्यको स्पर्श करके उनमेंसे गिरे अथवा भूमि कम्पयुक्त हो तो नगरपर पराये राजाका अधिकार होगा, नृपवध, दुर्भिक्ष, अवृष्टि और भयकारी होती है ॥ १२ ॥ सूर्य चंद्रमाके दाई और उल्का गिरे तो वनवासियोंका नाश करता है. दिवाकरसे निकली हुई उल्का-सन्मुख आवे तो गमनकारीको शुभ है ॥ १३ ॥ शुक्ल, रक्त, पीत और काले रंगकी उल्का क्रमानु-सार द्विजातिवर्गोंका नाश करनेवाली है और उसका मस्तक, छाती बगल और पूंछमें यह सब वर्ण स्थापित हों तोभी यह क्रमानुसार ब्राह्मणादि चार वर्णोंका नाश करनेवाली है ॥ १४ ॥ प्रदक्षिणा के क्रमसे उत्तर आदि दिशाओंमें उल्का रूखे भावसे गिरे तो क्रमानुसार ब्राह्मण क्षत्री, वैश्य और शूद्रोंका नाश करती है. सीधी, चिकनी, अखंड और आकाशके नोचे भागमें जानेवाली हो तो उप-रोक्त वर्णोंकी वृद्धि करती है ॥ १५ ॥ श्याम अरुण, नील, रक्त, दहन, असित और भस्मके समान रूखी संध्यासें उत्पन्न हुई, दिनसे उत्तन्न हुई, टेढी और दलित हुई उल्काका गिरना शत्रुके भयका कारण है ॥ १६ ॥ उल्कासे नक्षत्रघात या ग्रहघात हो तो पीछे कही हुई भक्तिका नाश होता है और उस २ वस्तुका क्षय होता है । उदय या अस्तकालमें उल्का सूर्य या चन्द्रमाको हनन करे तो वनवासियोंका वध होता है ॥ १७ ॥ पूर्वाफाल्गुनी, पुनर्वसु, धनिष्ठा और मूल नक्षत्रके योगतारे को उल्का हनन करे तो युवतियोंको पीडा होती है, और पुष्य, स्वाती व श्रवणको उल्का हत करे तो ब्राह्मण और क्षत्रियोंको पीडा होती है ॥ १८ ॥ रोहिणी, तीनों उत्तरा, मृगशिरा, चित्रा अनुराधा और खेतीको उल्का पीडित करे तो राजाओंको पीडा होती है, तीनों पूर्वाभरणी' मघा, आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा और मूलनक्षत्रको उल्का ताडन करे तो चोरोंको पीडा होती है, अश्विनी, पुष्य, अभिजित, कृत्तिका और विशाखाका उल्कासे भेद हो तो गीत नृत्य आदि कला जाननेवालोंको पीडा होती है ॥ १९ ॥ देवताकी मूर्तिपर उल्का गिरे तो राजा और राज्यको भयदायक है. इन्द्रध्वज गिरे तो राजाओंको और घरमें गिरे तो गृहस्वामिओंको पीडा उत्पन्न करती है ॥ २० ॥ दिशाके स्वामी गृहके ऊपर उल्का गिरे तो उस दिशाके रहवासियोंको, खरिहानमें गिरनेसे किसानोंकी, छोटे मंदिरके निकट वृक्ष लगा हो उसपर उल्का गिरे तो साधुओंको पीडा होती है ॥ २१ ॥ पुरद्वारपर उल्का गिरे तो पुरका क्षय, इन्द्रकीलके ऊपर गिरे तो मनुष्योंका क्षय कहा हैं, ब्रह्माके मंदिपर गिरे तो ब्राह्मणोंका और गोठमें गिरे तो बहुतसे गोसम्पन्न मनुष्योंको हनन करती है ॥ २२ ॥ जो उल्का गिरनेके समय क्ष्वेड (समरके समय वीरका सिंहनाद करना), आस्फोटित वादित गीत और रोनेका ऊँचा शब्द हो तो नृपयुक्त राज्यको भय होता है ॥ २३ ॥ जिसका आकार नंडके आकारके समान होकर आकाशमें बहुत देरतक रहे वह उल्का राजाओंके भयका कारण होती है और जो आकाशमें ठहरकर डोरीसे बंधी हुईके समान प्रवाहित या इन्द्रकी ध्वजाके समान हो तो राजाको भयदायी है ॥ २४ ॥ जो उल्का विपरीत चले अर्थात् जहांसे निकली हो वहींको फिर लौट चले तो शेठलोगोंको भय करती है, टेढी चलनेवाली उल्का रानियोंका, नीचेको मुखवाली उल्का राजाओंका और ऊपरको चलनेवाली उल्का ब्राह्मणोंका नाश करती है ॥ २५ ॥ मोरपूंछके समान आकारवाली उल्का लोकक्षयकारी और सर्पके समान चलनेवाली उल्का स्त्रियोंका अनभल करती है ॥ २६ ॥ मंडलरूपवाली उल्का नगरको, छत्ररूप उल्का पुरोहितको नाश करती है और बांसकी बीढके समान उल्का देशमें दोष उत्पन्न करती है ॥ २७ ॥ व्याल (काले सांप) और सूकरके समान आकारयुक्त वा चिनगारीदार अथवा पिण्डाकार या शब्दसहित उल्का चले तो पापदायिनी है ॥२८॥ इन्द्रधनुषके समान हो तो राज्य का नाश करे, आकाशमें लीन हो जाय तो बादलोंका नाश करे और पवनकी प्रतिकूल दिशामें कुटिल

भावसे गमन करे और फिर लौट आवे तो शुभदायी नहीं है ।। २९ ।। जिस ओरसे उल्का आकर पुर या सेनाके ऊपर गिरे उस दिशासे ही राजाको भय होता है और जिस दिशामें प्रकाश करके गिरे राजा उस दिशामें जाय तो शीघ्र शत्रुओंको जीतनेके लिये समर्थ होता है ।। ३० ।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां त्रयस्त्रिंशोध्यायः ।।३३।।

अथ चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

परिवेषलक्षण्

सम्मूर्च्छिता रवीन्द्वोः किरणाः पवनेन मण्डलीभूताः । नानावर्णाकृतयस्तन्वभ्रे व्योम्नि परिवेषाः ।। १ ।। ते रक्तनीलपाण्डुरकापोताभ्राभशबलहरिशुक्लः । इन्द्रयमवरुणनिर्ऋतिश्वसनेशपितामहाग्निकृताः ।।२।। धनदः करोति मेचकमन्योऽन्यगुणाश्रयेण चाप्यन्ये । प्रविलीयते मुहुर्मुहुरल्पफलः सोऽपि वायुकृतः ।।३।। चाषशिखिरजततैलक्षीरजलाभः स्वकालसम्भूतः । अविकलवृत्तः स्निग्धः परिवेषः शिवसुभिक्षकरः ।।४।। सकलगगनानुचारी नैकाभः क्षतज सन्निभो रूक्षः । असकलशकटशरासनशृङ्गाटकवत् स्थितः पापः ।।५।। शिखिगलसमेऽतिवर्षं बहुवर्णे नृपवधो भयं धूम्रे । हरिचापनिभे युद्धान्यशोककुसुमप्रभे चापि ।।६।। वर्णेनैकेन यदा बहुलः स्निग्धः क्षुराभ्रकाकीर्णः । स्वर्तौ सद्यो वर्षं करोति पीतश्च दीप्तार्कः ।।७।। दीप्तविहङ्गमृगरुतः कलुषः संध्यात्रयोत्थितोऽतिमहान् । भयकृत्तडिदुल्काद्यैर्हतो नृपं हन्ति शस्त्रेण ।।८।। प्रतिदिनमर्कहिमांश्वोरहर्निशं रक्तयोर्नरेन्द्रवधः । परिविष्टयोरभीक्ष्णं लग्नास्तनभः स्थयोस्तद्वत् ।।९।। सेनापतेर्भयकरो द्विमण्डलो नातिशस्त्रकोपकरः । त्रिप्रभृति शस्त्रकोपं युवराजभयं नगररोधम् ।।१०।।वृष्टिस्त्र्यहेण मासेन विग्रहो वा ग्रहेन्दुभनिरोधे । होराजन्माधिपयोर्जन्मर्क्षे वाशुभो राज्ञः ।।११।। परिवेषमण्डलगतो रवितनयः क्षुद्रधान्यनाशकरः । जनयति च वातवृष्टिं स्थावरकृषिकृन्निहन्ता च ।।१२।। भौमे कुमारबलपतिसैन्यानां विद्रवोऽग्निशस्त्रभयम् । जीवे परिवेषगते पुरोहितामात्यनृपपीडा ।।१३।। मन्त्रिस्थावरलेखकपरिवृद्धिश्चन्द्रजे सुवृष्टिश्च । शुक्रे यायिक्षत्रियराज्ञां पीडाप्रियं चान्नम् ।।१४।। क्षुदनलमृत्युनराधिपशस्त्रेभ्यो जायते भयं केतौ । परिविष्टे गर्भभयं राहौ व्याधिर्नृपभयं च ।।१५।। युद्धानि विजानीयात् परिवेषाभ्यन्तरे द्वयोर्ग्रहयोः ।। दिवसकृतः शशिनो वा क्षुदवृष्टिभयं त्रिषु प्रोक्तम् ।।१६।। याति चतुर्षु नरेन्द्रः सामात्यपुरोहितो वशं मृत्योः । प्रलयमिव विद्धि जगतः पञ्चादिषु मण्डलस्थेषु ।।१७।। ताराग्रहस्य कुर्यात् पृथगेव समुत्थितो नरेन्द्रवधम् । नक्षत्राणामथवा यदि केतोर्नोदयो भवति ।।१८।। विप्रक्षत्रियविट्छूद्रहा भवेत् प्रतिपदादिषु क्रमशः । श्रेणीपुरकोशानां पञ्चम्यादिष्वशुभकारी भवति ।।१९।। युवराजस्याष्टम्यां परतस्त्रिषु पार्थिवस्य

दोषकरः । पुररोधो द्वादश्यां सैन्यक्षोभस्त्रयोदश्याम् ॥२०॥ नरपतिपत्नीपीडां परिवेषोऽभ्युत्थितश्चतुर्दश्याम्। कुर्यात् तु पञ्चदश्यां पीडां मनुजाधिपस्स्यैव ॥२१॥ नागरिकाणामाभ्यन्तरस्थिता यायिनां च बाह्यस्था । परिवेषमध्यरेखा विज्ञेयाक्रन्दसाराणाम् ॥२२॥ रक्तः श्यामो रूक्षश्च भवति येषां पराजयस्तेषाम् । स्निग्धः श्वेतो द्युतिमान् येषां भागो जयस्तेषाम् ॥२३॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० परिवेषलक्षणं नाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

सूर्य या चंद्रमाके किरण पर्वतके ऊपर प्रतिबिम्बित और पवनके द्वारा मंडलाकार होकर थोडेसे मेघवाले आकाशमें अनेक रंग और आकारके दिखलाई देते हैं उनको परिवेष कहते हैं ॥१॥ रक्त, नील, थोडासा श्वेत, कबूतरके रंगका, मेघके रंगका शबल (अनेक प्रकारके रंगोंसे युक्त), हरिद्वर्ण और शुक्लवर्णके परिवेष क्रमानुसार इन्द्र, यम, वरुण, निर्ऋति, वायु, महादेव. ब्रह्मा और अग्निसे उत्पन्न हुए ॥ २ ॥ धनदाता कुबेरजी काले रंगका परिवेष करते हैं और परस्पर गुण आश्रयके हेतु जो वारंवार लीन होता है वह अल्प फल देनेवाला परिवेष वायुका है ॥ ३ ॥ जो परिवेष नीलकंठ मोर, चांदी, तेल, दूध और जलके समान आभावाला हो, स्वकालसंभूत हो, जिसका वृत्त खंडित न हो, जो स्निग्ध हो वह सुभिक्ष और मंगलका करनेवाला है ॥ ४ ॥ जो परिवेष सारे आकाशमें गमन करे, अनेक आभादार हो, रुधिरके समान हो, रूखा, खंडित छकडेके समान, धनुष और शृङ्गाटकके समान हो तो पापकारी है ॥ ५ ॥ मोरकी गर्दनके समान परिवेष हो तो अतिवर्षा होती है, बहुतसे रंगोंसे युक्त हो तो राजाका वध होताहै, धूमवर्ण होनेसे भय होता है, इन्द्रधनुषके समान या अशोकके फूलके समान कान्तिमान् होनेसे युद्ध होता है ॥ ६ ॥ जिस ऋतुमें परिवेष एक वर्णके मेलसे बहुत चिकना, उस्तरेके समान छोटे २ मेघोंसे व्याप्त हो वा सूर्य की किरणें पीले वर्णकी हो उस समय शीघ्र वृष्टि होती है ॥ ७ ॥ सूर्यकी ओरको मुख करके पक्षी और मृगोंके शब्दसहित (त्रिकालके शब्दसहित) त्रिकालकी सन्ध्यामें उत्पन्न हुआ अति महान् परिवेष भयंकर होता है, परन्तु जो यह उल्का या बिजली करके भेदित हो तो शस्त्रसे राजाकी मृत्यु होती है ॥ ८ ॥ प्रति दिन रात सूर्य चन्द्रमाका परिवेष हो तो राजाका वध होता है और उदयकाल, अस्तकाल; दिनरातके मध्यकालमें सूर्य चन्द्रमाका एक दिनमें यदि अधिक परिवेष हो तो भी वही फल अर्थात् राजाका वध होता है ॥ ९ ॥ दो मंडलवाला परिवेष सेनापतिको भयकारी है परन्तु अत्यन्त शस्त्रकोपकारी नहीं है, तीन मंडलवाला या अधिक मंडलवाला परिवेष शस्त्रकोप, युवराजभय और नगररोधका कारण होता है ॥ १० ॥ भौमादि कोई ग्रह, चन्द्रमा नक्षत्र यदि एक परिवेषमें हो तो तीन दिनमें वर्षा या एक मासमें युद्ध होता है, होरा और लग्नाधिपत्ति वा जन्मनक्षत्रका परिवेश हो तो राजाका अशुभ होता है ॥ ११ ॥ जो शनि परिवेष मंडलमें हो तो छोटे धान्यको नष्ट करता है और स्थावर वा किसानोंका हननकारी होकर पवनयुक्त वृष्टिको उत्पन्न करता है ॥ १२ ॥ मंडल परिववेषमें हो तो कुमार, सेनापति और सेनाको व्याकुलता हो और अग्नि शस्त्रका भय हो, और वृहस्पति परिवेषमें हो तो पुरोहित, मंत्री और राजाओं को पीडा होती है ॥ १३ ॥ बुध परिवेषमें हो तो मंत्री, स्थावर और लेखक लोगोंकी वृद्धि और अच्छी वर्षा होती है, परिवेषमें शुक्र हो तो चढकर जानेवाले राजा, क्षत्री राजाको पीडा और दुर्भिक्ष होता है ॥ १४ ॥ केतु परिवेषमें हो तो क्षुधा, अनल, मृत्यु, राजा और शस्त्रसे भय उत्पन्न होता है, राहु परिवेषमें हो तो गर्भभय, व्याधि और राजभय होता है ॥ १५ ॥ रवि चन्द्रके परि-

वेषके भीतर दो ग्रहोंके होनेसे युद्ध होता है, तीन ग्रह जो परिवेषमें हों तो दुर्भिक्ष और वर्षा न होने का भय होता है ।। १६ ।। परिवेषमें चार ग्रह हों तो मंत्री और पुरोहितके साथ राजाकी मृत्यु हो जाय, पंचादि ग्रह मंडलमें हों तो जगत्में मानो प्रलय हो जाय ।। १७ ।। ताराग्रह अर्थात मंगलादि पंचग्रह अथवा नक्षत्रगण यदि अलग २ परिवेषमें हों तो राजाका वध हुआ करता है, यदि केतुका उदय न हो तो केतूदय होनेसे उसीका फल होता है ताराग्रहादिफल नहीं होता है ।। १८ ।। प्रतिपदासे लेकर चौथतक तिथिमें परिवेष ही तो क्रमानुसार ब्राह्मण क्षत्री, वैश्य और शूद्रोंका नाश हो जाता है, पंचमीसे लेकर सातेंतक तिथिमें श्रेणी, पुर और कोषका अशुभकारी होता है ।। १९ ।। अष्टमीमें परिवेष हो तो चारों तरफ से और उसके पीछे तीन तिथिमें परिवेष होनेसे राजाका दोष होता है. द्वादशीमें परिवेष होनेसे पुरका रोध हो जाता है और त्रयो-

वेष होनेसे राजाका दोष होता है. द्वादशीमें परिवेष होनेसे पुरका रोध हो जाता है और त्रयो-

दशीमें होनेसे शस्त्रका क्षोभ होता है ।। २० ।। चतुर्दशीमें परिवेष होनेसे रानीको पीडा होती है, पंचदशीमें राजाको पीडा होती है ।। २१ ।। परिवेषके भीतर रेखा दिखाई दे तो नगरवासियोंको पीडा होती है, परिवेषके बाहर रेखा हो तो चढ जानेवाले राजाओं को पीडा होती है, परिवेषके बीचमें हो तो आक्रन्दसारका शुभाशुभ विचारे ।।२२।। ग्रहभक्ति या कूर्मविभागके अनुसार देशका विभाग करनेसे जिस देशके भागमें परिवेषका रंग लाल श्याम या रूखा हो उसे देशकी पराजय होगी स्निग्ध, श्वेत वर्ण या दीप्तिशाली परिवेष जिनके भागमें गिरे उनकी जय होगी ।। २३ ।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।।३४।।

अथ पंचत्रिंशोऽध्यायः

इन्द्रायुधलक्षणम्

सूर्यस्य विविधवर्णाः पवनेन विघट्टिता. कराः साभ्रे । वियति धनुः संस्थानायेदृश्यन्ते तदिन्द्रधनुः ।।१।। केचिदनन्तकुलोरगनिःश्वासोद्धूतमाहुराचार्याः। तद्यायिनां नृपाणामभिमुखामजयावहं भवति ।।२।। अच्छिन्नमवनिगाढं द्युतिमत्स्निग्धं घनं विविधवर्णम् । द्विरुदितमनुलोमं च प्रशस्तमम्भः प्रयच्छति च ।।३।। विदिगुद्भूतं दिक्स्वामिनाशनं व्यभ्रजं मरककारि । पाटलपीतकनीलैः शस्त्राग्निक्षुत्कृता दोषाः ।।४ ।। जलमध्येऽनावृष्टिर्भुवि सस्यवधस्तरौ स्थिते व्याधिः । वल्मीके शस्त्रभयं निशि सचिववधाय धनुरैन्द्रम् ।।५।। वृष्टिं करोत्यवृष्टयां वृष्टिं वृष्टयां निवारयत्यैन्द्रयाम् । पश्चात्सदैव वृष्टिं कुलिशभृतश्चापमाचष्टे ।।६।। चापं मघोनः कुरुते निशायामाखण्डलायां दिशि भूपपीडाम् । याम्यापरोदक्प्रभवं निहन्यात्सेनापतिं नायकमन्त्रिणौ च ।।७।। निशि सुरचापं सितवर्णाद्यं जनयति पीडां द्विजपूर्वाणाम् । भवति च यस्यां दिशि तद्देश्यं नरपतिमुख्यं न चिराद्धन्यात् ।।८।। इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामिन्द्रायुधलक्षणं नाम पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ।३५

अनेक रंगवाले सूर्यके किरण पवनसे रोके जाकर मेघयुक्त आकाशमें जो धनुषका आकार दिखाई देता है वही इन्द्रधनुष है ।। १ ।। कोई २ आचार्य कहते हैं कि, अनन्तनामक कुलनागके

श्वाससे यह उत्पन्न होता है, जो राजा लोग इस इन्द्रधनुषको सन्मुख रखकर जायँ तो युद्धमें उनकी पराजय होती है ॥२॥ वह अखंडित भूमिमें लगा हुआ, प्रकाशदार, चिकना, निबिड, अनेक रंगोंसे युक्त और दोनों बार उदित व अनुलोम होनेपर श्रेष्ठ है और बहुतसा जल वर्षाता है ॥३॥ ईशान, अग्नि, नैर्ऋत और वायु इन चारों कोनोंसे जो इन्द्रधनुष उदय हो तो संस्थानके राजाका नाश होता है. विना मेघके आकाशमें इन्द्रधनुष हो तो मरी पडती है । पाटलके फूल, पीले और नीले रंगका हो तो शस्त्र, अग्नि, और दुर्भिक्षादि दोष उत्पन्न होते हैं ॥ ४ ॥ जलमें इन्द्रधनुष हो तो अनावृष्टि, पृथ्वीमें होनेसे धान्यकी हानि, वृक्षपर होनेसे व्याधि और वल्मीक (वमई) पर होनेसे शस्त्रभय और रात्रिमें होनेसे मंत्री के वधका कारण होता है ॥ ५ ॥ जो अनावृष्टिके समय इन्द्रधनुष पूर्वदिशामें हो तो जल वर्षता है, वर्षनेके समय पूर्वदिशामें हो तो वृष्टिको रोकता है । पश्चिममें इन्द्रधनुष हो तो सदाही वर्षा होती है ॥ ६ ॥ पूर्वदिशामें रात्रिकालके समय इन्द्रधनुष हो तो राजाओंको पीडित करता है । दक्षिण, पश्चिम और उत्तरदिशासे उत्पन्न हुआ इन्द्रधनुष सेनापति, नायक और मंत्रीका नाश करता है ॥ ७ ॥ रात्रिके समय इन्द्रधनुष श्वेत वर्णादि अर्थात् श्वेत. रक्त, पीत और कृष्ण वर्ण हो तो क्रमानुसार ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, और शूद्रोंका नाश करता है, परन्तु जिस दिशामें हो उसी दिशाओंके राजाओंका शीघ्र नाश होगा ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां पंचत्रिंशोंध्यायः ॥३५॥

अथ षट्त्रिंशोऽध्यायः

गंधर्वनगरम्.

उदगादिपुरोहितनृपवलपतियुवराजदोषदं खसुरम् । सितरक्तपीतकृष्णं विप्रादीनामभावाय ॥ १ ॥ नागरनृपतिजयावहमुदग्विदिक्स्थं विवर्णनाशाय । शांताशायां दृष्टं सतोरणं नृपतिविजयाय ॥२॥ सर्वदिगुत्थं सततोत्थितं च भयदं नरेन्द्रराष्ट्राणाम् । चौराटविकान् हन्याद्भूमानलशक्रचापाभम् ॥३॥ गंधर्वनगरमुत्थितमापाण्डुरमशनिपातवातकरम् । दीप्ते नरेन्द्रमृत्युर्वामेऽरिभयं जयः सव्ये ॥४॥ अनेकवर्णाकृति खे प्रकाशते पुरं पताकाध्वजतोरणान्वितम् । यदा तदा नागमनुष्यवाजिनां पिबत्यसृग्भूरि रणे वसुन्धरा ॥ ५ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं०गंधर्वनगरलक्षणं नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

जो गन्धर्वनगर उत्तरादि दिशाओंमें अर्थात् उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम दिशामे हो तो क्रमानुसार पुरोहित, राजा, सेनापति और युवराजको विघ्न होता है । श्वेत, रक्त, पीत और कृष्ण वर्णका हो तो ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शुद्रोंके नाशका कारण होता है ॥ १ ॥ उत्तर दिशामें हो तो नगर और राजाओंको जयदायी होता है । ईशान, अग्नि और वायुकोणमें स्थित हो तो नीचजातिका नाश हो जाता है । शान्त दिशामें तोरणयुक्त गन्धर्वनगर दिखाई दे तो राजा की विजय होती है ॥ २ ॥ जो गन्धर्वनगर सदा सब दिशाओंमें हो तो राजा व राज्य सबही को भयदायी होता है और धूम, अनल व इन्द्रधनुषके समान हो तो चोर और वनवासियोंको हनन

करता है ।। ३ ।। कुछेक पाण्डुर रंगका गन्धर्वनगर हो तो वज्रपात होकर झंझापवन चला करता है, दीप्त दिशामें गन्धर्वनगर हो तो राजाकी मृत्यु होती है, वामदिशामें हो तो शत्रुभय और दक्षिण भागमें स्थित हो तो जय होती है ।। ४ ।। जब अनेक रंगकी पताका, ध्वज और तोरणयुक्त गन्धर्वपुर आकाशमें प्रकाशित हो तो रणमें हस्ती, मनुष्य और घोड़ोंका बहुतसा रुधिर पृथ्वी पान करती है ।। ५ ।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ।।३६।।

अथ सप्तत्रिंशोऽध्यायः

प्रतिसूर्यलक्षणम्

प्रतिसूर्यकः प्रशस्तो दिवसकृदृतुवर्णसप्रभः स्निग्धः । वैदूर्यनिभः स्वच्छः शुक्लश्च क्षेमसौभिक्षः ।। १ ।। पीतो व्याधिं जनयत्यशोकरूपश्च शस्त्रकोपाय । प्रतिसूर्याणां माला दस्युभयातंकनृपहन्त्री ।।२।। दिवसकृतः प्रतिसूर्यो जलकृदुदग्दक्षिणे स्थितोऽनिलकृत्। उभयस्थः सलिलभयं नृपमुपरि निहन्त्यधो जनहा ।।३।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० प्रतिसूर्यचक्रं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।।३७।।

जिस ऋतुमें सूर्यका रंग जिस प्रकारका हो और जिस ऋतुमें प्रतिसूर्यका वर्णभी वैसाही चिकना, वैदूर्यमणिके समान स्वच्छ और शुक्ल वर्ण रक्त हो तो क्षेम और सुभिक्षकारी होता है ।। १ ।। पीत वर्ण हो तो व्याधि उत्पन्न करता है, अशोकके समान वर्ण धारण किये हो तो शस्त्रकोपका कारण होता है और प्रतिसूर्यकी माला अर्थात् बहुतसे प्रतिसूर्य उदय हों तो चोरभय आंतक और राजाका नाश हो जाता है ।। ३ ।। उत्तरमें प्रतिसूर्य हो तो जल वर्षाता है, दक्षिणमें हो तो पवन चलाता है, दोनों दिशाओंमें हो तो जलभय होता है, ऊपर स्थित हो तो राजाको और नीचे स्थित हो तो मनुष्योंका नाश करता है ।। ३ ।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ।।३७।।

अथाष्टत्रिंशो[१]ऽध्यायः

रजोलक्षणम्

कथयन्ति पार्थिववधं रजसा घनतिमिरसञ्चयनिभेन । अविभाव्यमानगिरिपुरतरवः सर्वा दिशश्छन्नाः ।।१।। यस्यां दिशि धूरिचयः प्राग्भवति नाशमेति वा यस्याम्। आगच्छति सप्ताहात्तत्रैव भयं न सन्देहः ।।२।। श्वेते रजो घनौघे पीडा स्यान्मन्त्रिजनपदानां च । न चिरात् कोपमुपयाति शस्त्रमतिसंकुला सिद्धिः ।।३।। अर्कोदये विजृम्भति यदि दिनमेकं दिनद्वयं वापि । स्थगयन्निव गगनतलं भयमत्युग्रं निवेदयति ।।४।। अनवरतसञ्चयवहं रजनीमेकां प्रधाननृपहन्तृ । क्षेमाय च शेषाणां विचक्षणानां

---

१ अध्यायोऽयं न व्याख्यातो न चोल्लिखितो भटोत्पलेन । निवेशितोऽत्र त्वादर्शे दृष्टत्वात् ।

नरेन्द्राणाम् ।।५।। रजनीद्वयं विसर्पति यस्मिन् राष्ट्रे रजोघनं बहुलम् । परचक्रस्यागमनं तस्मिन्नापि सन्निबोद्धव्यम् ।।६।। निपतति रजनीत्रितयं चतुष्कमप्यन्नरसविनाशाय । राज्ञां सैन्यक्षोभो रजसि भवेत्पञ्चरात्रभवे ।।७।। केत्वाद्युदयविमुक्तं यदा रजो भवति तीव्रभयदायि । शिशिरादन्यत्रर्तौ फलमविकलमाहुराचार्याः।।८।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां रजोलक्षणं नामाष्टत्रिंशोऽध्यायः ।।३८।।

गहरे अँधियारेके समूहके समान धूरि जब समस्त दिशाओंको ढक ले कि जिसमें पर्वत, पुर या वृक्ष इत्यादि कुछ भी दिखाई न दें तब निश्चय जानना कि राजाका नाश होगा ।।१।। पहले जिस दिशामें धूरिका समूह दीख पडे या जिस दिशामें वह धूरिसमूह पहले निवृत्त हों, निःसंदेह सात दिनमें तहां भय आवेगा ।।२।। धूरिराशिरूप मेघसमूह श्वेतवर्णका हो तो मंत्री और जनपदोंको पीडा होती है । शीघ्र शस्त्रकोप आ पहुँचता है और कार्यकी सिद्धि अति कष्टसे होती है ।।३।। सूर्य उदय होनेके समय जो धूरी एक दिनतक वा दो दिनतक आकाशको ढके हुए प्रकाशित हो तो उग्र भयका विषय कहा जाता है ।। ४ ।। एक रात्रि तक बराबर धूरी इकट्ठा होती जाय तो मुख्य राजाकी मृत्यु होती है और शेष बुद्धिमान् राजाओंको शुभ फल करती है ।। ५ ।। जिस देशमें दो रात्रितक बराबर घनी धूरि फैलती है तो भलीभांति जान लेना चाहिये कि उस देशमें दूसरे राजाका राज होगा ।। ६ ।। तीन या चार रात्रि तक बराबर धूरि गिरती रहे तो अन्न व रसका नाश हो जाता है, पांच रात्रितक धूरी गिरे तो राजाओंकी सेनामें खलबली मच जाती है ।। ७ ।। केतु आदिके उदयसे पीछे धूरि गिरे तो तीव्र भय होता है. आचार्य लोग कहते हैं कि शिशिरके सिवाय और ऋतुओंमें इसका अधिक फल होता है ।। ८ ।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायांमष्टत्रिंशोऽध्यायः ।।३८।।

अथैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

निर्घातलक्षणम्

पवनः पवनाभिहतो गगनादवनौ यदा समापतति । भवति तदा निर्घातः स च पापो दीप्तविहगरुतः ।।१।।अर्को येऽधिकरणिकनृपधनियोधाङ्गनावणिग्वेश्याः। आप्रहरांशेऽजाविकमुपहन्याच्छूद्रपौरांश्च ।।२।। आमध्याह्नाद्राजोपसेविनो ब्राह्मणांश्च पीडयति । वैश्यजलदांस्तृतीये चौरान् प्रहरे चतुर्थे च ।।३।। अस्तं याते नीचान् प्रथमे यामे निहन्ति सस्यानि । रात्रौ द्वितीययामे पिशाचसंघान्निपीडयति ।।४।। तुरगकरिणस्तृतीये विनिहन्याद्यायिनश्चतुर्थे च । भैरवजर्जरशब्दो याति यतस्तां दिशं हन्ति ।।५।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० निर्घातलक्षणं नामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।।३९।।

पवनके द्वारा पवन टकराकर जब पृथ्वीपर गिरता है तब वही निर्घात कहलाता है. उस निर्घातके समय सूर्यकी ओरको मुख करके पक्षिगण शब्द करे तो पापकारी होता है ।। १ ।। सूर्य उदय होनेके समय निर्घात हो तो अधिकरणिक अर्थात् विचारक, नृप, धनवान्, योधा, स्त्री, वणिक् और वेश्यायें नष्ट होती हैं, प्रहरांशसमयतक हो तो बकरी पालनेवाले, शूद्र और

पुरवासियोंका नाश होता है, दुपहरके मध्यमें हो तो राजसेवा करनेवाले पुरुष और ब्राह्मणोंकी पीड़ा होती है, तीसरे प्रहरमें निर्घात हो तो वैश्य और जल देनेवाले मेघोंको, चौथे प्रहरमें हो तो चोरोंको पीडित करता है ।। २ ।। ३ ।। सूर्यास्त होनेपर नीच लोगोंका और रात्रि के प्रथम याममें होने पर धान्यका नाश करता है, रात्रिके दूसरे (प्रहर) में हो तो पिशाचको पीडित करता है ।। ४ ।। रात्रिके तीसरे प्रहरमें हो तो हाथी और घोड़ोंको और चौथे प्रहरमें निर्घात हो तो पैदलोंको हनन करता है और जिस दिशा से भयंकर और फटे हुए शब्दके साथ निर्घातका उत्पात हो तो वह दिशा नष्ट हो जाती है ।। ५ ।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायांमेकोनचत्वारिंशोऽध्याय: ।।३९।।

अथ चत्वारिंशोऽध्यायः

सस्यजातकम्

वृश्चिकवृषप्रवेशे भानोर्ये बादरायणेनोक्ताः । ग्रीष्मशरत्सस्यानां सद-सद्योगाःकृतास्त इमे ।।१।। भानोरलिप्रवेशे केन्द्रैस्तस्माच्छुभग्रहाक्रान्तैः ।। बल-वद्भिः सौम्यैर्वा निरीक्षितैर्ग्रैष्मिकविवृद्धिः ।।२।। अष्टमराशिगतेऽर्के गुरुशशिनोः कुम्भसिंहस्थितयोः । सिंहघटसंस्थयोर्वा निष्पत्तिर्ग्रैष्मसस्यस्य ।।३।। अर्कात्सिते द्वितीये बुधेऽथवा युगपदेव वा स्थितयोः । व्ययगतयोरपि तद्वन्निष्पत्तिरतीव गुरु-दृष्ट्या ।।४।। शुभमध्येऽलिनि सूर्याद्गुरुशशिनोः सप्तमे परा सम्पत् । अन्यादिस्थे सवितरि गुरौ द्वितीयेऽर्द्धनिष्पत्तिः ।।५।। लाभहिबुकार्थयुक्तैः सूर्यादलिगात्सिते-न्दुशशिपुत्रैः । सस्यस्य परा संपत् कर्मणि जीवे गवां चाग्र्या ।।६।। कुम्भे गुरुर्गवि शशि सूर्योऽलिमुखे कुजार्कजौ मकरे । निष्पत्तिरस्ति महती पश्चात् परचक्ररोगभयम् ।।७।। मध्ये पापग्रहयोः सूर्यः सस्यं विनाशयत्यलिगः । पापः सप्तमराशौ जातं जातं विनाशयति ।।८।। अर्थस्थाने क्रूरः सौम्यैरनिरीक्षितः प्रथमजातम् । सस्यं निहन्ति पश्चादुप्तं निष्पादयेद्व्यक्तम् ।।९।। जामित्रकेन्द्रसंस्थौ क्रूरौ सूर्यस्य वृश्चिकस्थस्य । सस्यविपत्तिं कुरुतः सौम्यैर्दृष्टौ न सर्वत्र ।।१०।। वृश्चिकसंस्था-दर्कात् सप्तमषष्ठोपगौ यदा क्रूरौ । भवति तदा निष्पत्तिः सस्यानामर्घपरिहानिः ।।११।। विधिनानेनैव रविर्वृषप्रवेशे शरत्समुत्थानाम् । विज्ञेयः सस्यानां नाशाय शिवाय वा तज्ज्ञैः ।।१२।। त्रिषु मेषादिषु सूर्यः सौम्ययुतो वीक्षितोऽपि वा विचरन्। ग्रैष्मिकधान्यं कुरुते समर्थमुभयोपयोग्यं च ।। १३ ।। कार्मुकमृगघटसंस्थःशारदस्य तद्वदेव रविः । संग्रहकाले ज्ञेयो विपर्ययः क्रूरदृग्योगात् ।।१४।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां सस्यजातकं नाम चत्वारिंशोऽध्यायः।।४०।।

वृश्चिक या वृषराशिमें सूर्यके प्रवेशकालके समय ग्रीष्म और शरत्कालके उत्पन्न हुए धान्यके सम्बन्धमें जो शुभाशुभ बादरायण मुनिजीने निश्चय किये हैं वह यह हैं—सूर्यके वृश्चिक

राशिमें गमन करनेके समय उसके समस्त केन्द्रस्थान अर्थात् वृश्चिक, कुंभ, वृष और सिंहराशि शुभ ग्रहों करके युक्त वा बलवान् शुभ ग्रहों करके देखा जाय तो ग्रीष्मके धान्यकी वृद्धि होती है ।। २ ।। जब सूर्य आठवीं राशि (वृश्चिक) में गमन करे उस काल यदि कुंभमें बृहस्पति और सिंहमें चन्द्रमा अथवा सिंहमें बृहस्पति और कुंभमें चन्द्रमा हो तो ग्रीष्मका उत्पन्न हुआ धान्य बढता है ।। ३ ।। शुक्र या बुध जो सूर्यकी दूसरी राशिमें जाय अथवा एक साथ ही सूर्यकी बारहवीं राशिमें जाय तो भी ऐसा ही अन्न होगा और उसमें यदि बृहस्पतिकी दृष्टि हो तो वह अन्न उत्तम भांतिसे होगा ।। ४ ।। वृश्चिक राशिमें गये हुए सूर्यकी दोनों दिशाएँ यदि दो शुभ ग्रह और उससे सातवें चन्द्रमा और बृहस्पति हो तो बहुत उत्तम खेती हो, वृश्चिक आरम्भमें रवि और उसके दूसरे स्थानमें बृहस्पतिका होना आधी खेतीकी सूचना कराता है ।। ५ ।। शुक्र, चन्द्र और बुध ग्रह जो वृश्चिकमें गये हुए सूर्यसे दूसरी, चौथी अथवा ग्यारहवीं राशिमें हो तो अन्नकी श्रेष्ठ सम्पत्ति होती है और कर्म (दशम) में बृहस्पति हो तो गायोंके लिये श्रेष्ठ सम्पत्ति प्राप्त होती है ।। ६ ।। जिस समय सूर्य वृश्चिक राशिमें गमन करे उस समय जो कुंभमें बृहस्पति, वृषमें चन्द्रमा और मंगल व शनि यदि मकरराशिमें हों तो अन्न भलीभांतिसे होता है, परन्तु पीछेसे परचक्र और रोगका भय हुआ करता है ।।७।। जो सूर्य वृश्चिक राशिमें दो पापग्रहोंके बीचमें हो तो धान्यका नाश करता है, इस समय वृषराशिमें स्थित हो तो पैदा होते ही अन्नका नाश कर देता है ।।८।। उसके अर्थस्थानमें स्थित क्रूर ग्रह शुभ ग्रहसे न देखा जाय तो पहिली बोई हुई खेतीका नाश करता है, परंतु पीछेकी बोई हुई खेती भलीभांतिसे उपजती है ।।९।। वृश्चिक राशिमें स्थित सूर्यकी सातवीं लग्नमेंके या केन्द्र-स्थित और क्रूर ग्रह खेतीका नाश करते हैं परंतु उनको शुभ ग्रह देखता हो तो सब जगहके धान्यको नाश नहीं कर सकते ।।१०।। जब दो क्रूर ग्रह वृश्चिकराशिमें स्थित सूर्यसे सातवें और छठें हो तो खेती होती है, परंतु मूल्य महंगा रहता है ।।११।। वृष-राशिमें सूर्यके प्रवेश करनेसे उत्पन्न हुए धान्यके नाशका या मंगलका कारण भी होता है ऐसा पंडितोंको कहना चाहिये ।।१२।। मेषादि तीन राशियोंमें स्थित सूर्य शुभ ग्रह करके युक्त हो या शुभ ग्रहसे देखा जाय तो ग्रीष्मकी खेती समर्थ हो और इतना सस्ता अन्न रहे कि आदमी लोक परलोक दोनों बना लें (परलोक बनानेके लिये अन्नदान करें) ।।१३।। धन, मकर और कुंभराशिमें स्थित सूर्य शरत्कालमें उत्पन्न हुई खेतीको भी वैसेही करते हैं और अन्नको संग्रहकालमें क्रूर ग्रहकी दृष्टि और योगसे इसका उलटा फल होता है यही जानना चाहिये ।।१४।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां चत्वारिंशोऽध्यायः ।।४०।।

अथैकचत्वारिंशोऽध्यायः

द्रव्यनिश्चयः

(ये येषां द्रव्याणामधिपतयो राशयः समुद्दिष्टाः । मुनिभिः शुभाशुभार्थं तानागमतः प्रवक्ष्यामि ।।१।। वस्त्राविककुतुपानां मसूरगोधूमरालकयवानाम् । स्थलसम्भववौषधीनां कनकस्य च कीर्तितो मेषः ।। २ ।। गवि वस्त्रकुसुमगोधूम-

शालियवमहिषसुरभितनयाः स्युः । मिथुनेऽपि धान्यशारदवल्लीशालूककर्पासाः ॥३॥ कर्किणि कोद्रवकदलीदूर्वाफलकन्दपत्रचोचानि । सिंहे तुषधान्यरसाः सिंहादीनां त्वचः सगुडाः ॥४॥ षष्ठेऽतसीकलायाः कुलत्थगोधूममुद्गनिष्पावाः । सप्तमराशौ माषा गोधूमाः सर्षपाः सयवाः ॥५॥ अष्टमराशाविक्षुः सैक्यं लोहान्यजाविकं चापि । नवमे तु तुरगलवणाम्बरास्त्रतिलधान्यमूलानि ॥ ६ ॥ मकरे तरुगुल्माद्यं सैक्येक्षुसुवर्णकृष्णलोहानि । कुम्भे सलिलजफलकुसुमरत्नचित्राणि ॥७॥ मीन कपालसम्भवरत्नान्यम्बूद्भवानि वज्राणि । स्नेहाश्च नैकरूपा व्याख्याता मत्स्यजात च ॥८॥ राशेश्चतुर्दशार्थायसप्तनवपञ्चमस्थितो जीवः । व्येकादशदशपञ्चाष्टमेषु शशिजश्च वृद्धिकरः ॥९॥ षट्सप्तमगो हानिं वृद्धिं शुक्रः करोति शेषेषु । उपचयसंस्थाः क्रूराः शुभदाः शेषेषु हानिकराः ॥१०॥ राशेर्यस्य क्रूराः पीडास्थानेष संस्थिता बलिनः । तत्प्रोक्तद्रव्याणां महार्घता दुर्लभत्वं च ॥११॥ इष्टस्थाने सौम्या बलिनो येषां भवन्ति राशीनाम् । तद्द्रव्याणां वृद्धिः सामर्थ्यमदुर्लभत्वं च ॥१२॥ गोचरपीडायामपि राशिर्बलिभिः शुभग्रहैर्दृष्टः । पीडां न करोति तथा क्रूरैरेवं विपर्यासः ॥१३॥

इति वराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितयां द्रव्यनिश्चयो नामैकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

जिन २ राशियोंको निज द्रव्योंका स्वामी मुनि लोगोंने कहा है, शुभ और अशुभ जाननेक लिये आगमसे उनका विषय कहा जाता है ॥१॥ मेशराशि वस्त्र, भेडके रोमसे बने कम्बल, बकरेकी ऊनसे बने कम्बल, मसूर, गेहूँ, राल (वृक्षोंके गोंद), जौ, स्थलकी उपजी हुई औषधियें और सुवर्णकी स्वामिनी कही जाती है ॥२॥ वस्त्र, कुसुम, गेहूँ, शालि धान्य, महिष और गाय इनकी स्वामिनी वृषराशि है–धान्य और शरदृतु में उत्पन्न हुए पदार्थ, लता, कमल कुमकुमादिकी जड और कपास यह मिथुनके अधीन हैं ॥३॥ कर्कमें कोदो, केला, दूब फल, पत्र, और छालकी स्वामिनी है। सिंहके अधिकारमें, भुस्सी, धान्य, रस, गुड और सिंहादिके चर्म हैं ॥४॥ कन्याराशिमें अलसी, मटर, कुलथी, गेहूँ, मूंग, निष्पाव (मटर) हैं। तुला राशिमें उर्द, गेहूँ, सरसों और जौ विद्यमान हैं ॥५॥ ईख, शिक्यस्थ द्रव्य (ईखमें पानी देनेसे जो वस्तु उत्पन्न होती है), लोहा, भेड, बकरीका स्वामी वृश्चिक है। अश्व, लवण, अम्बर, अस्त्र, तिल, धान्य और मूल धनराशिमें विराजमान हैं ॥६॥ मकरमें वृक्ष गुल्मादि और सचिंनेसे जो वस्तु उत्पन्न होती है, ईख सुवर्ण और कासा लोहा है । कुंभमें जलसे उत्पन्न हुए फल, फूल, रत्न और चित्रविचित्र रूपवाले वर्तमान हैं ॥७॥ कपालसंभव रत्न (हाथीके शिरसे निकली मणि या नागके शिरसे निकली मणि), जलसे उत्पन्न होनेवाले पदार्थ अनेक रूपवाले, स्नेह द्रव्य और मछलियाँ मीनराशिके अधीन हैं ॥८॥ जिस राशिके दूसरे चौथे पांचवें, सातवें, नववें, दशवें ग्यारहवें स्थानमें बृहस्पति हो अथवा दूसरे, पांचवें आठवें, दशवें, वा एकादश स्थानमें बुध हो उस राशिमें जो द्रव्य कहे हैं उनकी वृद्धि होगी ऐसेही शुक्र उस राशिके छठे या सातवें स्थानमें हो, तिस राशिके द्रव्योंकी हानि और अभिन्न राशियों में हो तो वृद्धि करते हैं, और क्रूर

ग्रह उपचय स्थान अर्थात् तीसरे, छठे, दशम या एकादश स्थान में हों तो शुभदायी हैं और उसके सिवाय और राशि में स्थित हो तो हानिकारी हैं ॥९॥१०॥ बलवान क्रूर ग्रह जिस राशि के पीडा स्थान में अर्थात् उपचय स्थान के सिवाय अलग स्थान में स्थित हों, उस राशिके अधिकार में जितने द्रव्य हों वह सब महँगे होकर दुर्लभ होजाते हैं ॥११॥ बलवान् शुभ ग्रह जिन राशियों के इष्टस्थान में अर्थात् उपचयस्थान में हों, उन राशियों के अधीन में जो जो द्रव्य हैं उनकी वृद्धि होती है सामर्थ्य और सुलभता होती है ॥१२॥ गोचर पीडा में भी सब राशि में बलवान् और शुभ ग्रहों करके देखी जाय तो पीडा नहीं, और क्रूर ग्रह देखते हों तो इससे विपरीत फल होता है ॥१३॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां भाषाटीकायामेकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

अथ द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

अर्घकाण्डम्

अतिवृष्टयुल्काण्डान् परिवेषग्रहणपरिधिपूर्वांश्च । दृष्ट्वामावास्याया-मुत्पातान् पौर्णमास्यां च ॥१॥ ब्रूयादर्घविशेषान् प्रतिमासं राशिषु क्रमात् सूर्ये । अन्यतिथावुत्पाता ये ते डमरार्तये राज्ञाम् ॥२॥ मेषोपगते सूर्ये ग्रीष्मजधान्यस्य संग्रहं कुर्यात् । वनमूलफलस्य वृषे चतुर्थमासे तयोर्लाभः ॥३॥ मिथुनस्थे सर्व-रसान् धान्यानि च संग्रहं समुपनीय । षष्ठे मासे विपुलं विक्रीणन् प्राप्नुयाल्लाभम् ॥४॥ कर्किण्यर्के मधुगन्धतैलघृतफाणितानि विनिधाय । द्विगुणा द्वितीयमासे लब्धिर्हीनाधिके छेदः ॥५॥ सिंहे सुवर्णमणिचर्मशस्त्राणि मौक्तिकं रजतम् । पञ्चममासे लब्धिर्विक्रेतुरतोऽन्यथा छेदः ॥६॥ कन्यागते दिनकरे चामरखरकर-भवाजिनां क्रेता । षष्ठे मासे द्विगुणं लाभमवाप्नोति विक्रीणन् ॥७॥ तौलिनि तान्तवभाण्डं मणिकम्बलकाचपीतकुसुमानि । आदद्याद्धान्यानि च षण्मासाद्द्विगुणिता वृद्धिः॥८॥ वृश्चिकसंस्थे सवितरि फलकन्दकमूलविविधरत्नानि। वर्षद्वयमुषितानि द्विगुणं लाभं प्रयच्छन्ति ॥९॥ चापगते गृह्णीयात् कुंकुमशंखप्रवालकाचानि । मुक्ताफलानि च ततो वर्षार्द्धाद्द्विगुणतां यान्ति ॥१०॥मृगघटगे गृह्णीयाद्दिवाकर लोहभाण्डधान्यानि । स्थित्वा मांसं दद्याल्लाभार्थी द्विगुणमाप्नोति ॥११॥ सवितरि झषमुपयाते मूलफलं कन्दभाण्डरत्नानि । संस्थाप्य वत्सरार्धं लाभकमिष्टं समा-प्नोति ॥१२॥ राशौ राशौ यस्मिन् शिशिरमयूखः सहस्रकिरणो वा । युक्तोऽ-धिमित्रदृष्टस्तत्रायं लाभकोदिष्टः ॥१३॥ सवितृसहितः संपूर्णो वा शुभैर्युतवीक्षितः शिशिरकिरणः सद्योऽर्घस्य प्रवृद्धिकरः स्मृतः । अशुभसहितः सन्दृष्टो वा हिनस्त्य-थवा रविः प्रतिग्रहगतान् भावान् बुद्धा वदेत्सदसत् फलम् ॥१४॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामर्घकाण्डं नाम द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥२४॥

प्रतिमासमें सब राशियें जब सूर्यमें गमन करें अमावास्या या पूर्णिमामें परिवेष, ग्रहण, परिधि, अतिवृष्टि, उल्का व दंडरूप उत्पातों को देखकर क्रमानुसार सब विषयोंको कहना चाहिये और तिथियोंमें जो उत्पात होते हैं, वे सब उत्पात राजाओंके लिये गड-बडीका भय प्रगट करते हैं ॥१॥२॥ सूर्य मेषराशिमें जाय तो ग्रीष्मजात धान्यका संग्रह करना उचित है. वृषराशिमें बनैले फल और मूलका संग्रह करना कर्त्तव्य है. चौथे मासमें उसमें लाभ होता है ॥३॥ सूर्य मिथुन राशिमें प्राप्त हो तो सर्व प्रकारके रस और सब प्रकारके धान्योंका संग्रह करके छठे मासमें विक्रय करे तो बहुतसा लाभ होता है ॥४॥ सूर्य कर्क राशिमें स्थित हो तो मधु, गंध तेल, घी और शक्करकी रक्षा करनेसे अर्थात् इनके भर लेनेसे दूसरे मासमें दूना लाभ होता है परंतु अल्पाधिक समय होनेपर कम लाभ और नाश होवे ॥५॥ सिंहराशिमें सूर्य हो तो सुवर्ण, मणि, चर्म, वर्म, शस्त्र, मोती और चांदीका संग्रह करके पाचवें मासमें बेचे तो बेचनेवालेको लाभ होता है, इसके विरुद्ध होनेसे हानि होती है ॥६॥ सूर्य कन्याराशिमें हो तो चमर, गधे, हाथीके बच्चे और घोडोंको खरीदकर छठे मासमें बेचे तो दुगुना लाभ होता है ॥७॥ तुला-राशिमें सूर्य हो तो सूत व ऊनके बने हुए वस्त्र, बर्त्तन, मणि, कम्बल, कांच, पीले फूल और समस्त धान्योंका संग्रह करनेसे इनका मोल फिर दूना बढ जाता है ॥८॥ वृश्चिक-राशिमें सूर्य हो तो कन्द, मूल फल और विविध भांतिके रत्न इकट्ठे करके दो वर्षतक रक्खे तो दुगुना लाभ होता है ॥९॥ सूर्य धनराशिमें हो तो कुंकुम, शंख, मूंगा, मोती और फलोंको संग्रह करना चाहिये खरीदनेसे छः मासके पीछे इनका मोल दुगुना हो जाता है ॥१०॥ मकर और कुंभराशिमें सूर्य हो तो लोहा, बर्तन और धान्योंको ग्रहण करना चाहिये । लाभ चाहनेवाला इन वस्तुओंको एक मास रखकर बेचे तो दुगुना लाभ होगा ॥११॥ मीनराशिमें सूर्य प्राप्त हो तो मूल, फल, कन्द, वर्त्तन और रत्नोंको ग्रहण करके छः मास रखके पीछे बेचे तो मनमाना लाभ होता है ॥१२॥ जिस राशिको सूर्य या चंद्रमा प्राप्त हों और अधिमित्र ग्रहोंसे वे देखे जायँ तो उस राशिसंबंधी वस्तुमें लाभ करते हैं और अमावास्या या पूर्णिमाको चंद्रमा शुभग्रहसे युत हो या देखा जाता हो तो शीघ्र अर्घप्रवृद्धिकर कहा जाता है । सूर्य अशुभ ग्रहसे देखा जाय या अशुभ ग्रहके साथ हो तो विघ्न होता है. इस प्रकार प्रत्येक ग्रहगत भावोंको जानकर अच्छे और बुरे फलको कहना चाहिये ॥१३॥१४॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुराबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

अथ त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

इन्द्रध्वजसंपत्

ब्रह्माणमूचुरमरा भगवञ्छक्ताः स्म नासुरान् समरे । प्रतियोधयितुमतस्त्वां शरण्यशरणं समुपयाताः ॥१॥ देवानुवाच भगवान् क्षीरोदे केशवः स वः केतुम् । यं दास्यति तं दृष्ट्वा नाजौ स्थास्यन्ति वो दैत्याः ॥२॥ लब्धवराः क्षीरोदंगत्वा ते तुष्टुवुः सुराः सेन्द्राः । श्रीवत्सांकं कौस्तुभमणिकिरणोद्भासितोरस्कम् ॥३॥

श्रीपतिमचिन्त्यमसमं समन्ततः सर्वदेहिनां सूक्ष्मम् । परमात्मनमनादिं विष्णुमविज्ञातपर्यन्तम् ॥४॥ तैः संस्तुतः स देवस्तुतोष नारायणो ददौ चैषाम् । ध्वजमसुरसुरवधूमुखकमलवनतुषास्तीक्ष्णांशुम् ॥५॥ तं विष्णुतेजोभवमष्टचक्रे रथेस्थितं भास्वति रत्नचित्रे । देदीप्यमानं शरदीव सूर्यं ध्वजं समासाद्य मुमोद शक्रः ॥६॥ सकिंकिणीजालपरिष्कृतेन स्रक्छत्रघण्टापिटकान्वितेन । समुच्छ्रितेनामरराड्ध्वजेन निन्ये विनाशं समरेऽरिसैन्यम् ॥७॥ उपरिचरस्यामरपो वसोर्ददौ चेदिपस्य वेणुमयीम् । यष्टिं तां स नरेन्द्रो विधिवत्संपूजयामास ॥८॥ प्रीतो महेन मघवान् प्राहैवं ये नृपाः करिष्यन्ति । वसुवद्वसुमन्तस्ते भुवि सिद्धाज्ञा भविष्यन्ति ॥९॥ मुदिताः प्रजाश्च तेषां भयरोगविवर्जिताः प्रभूतान्नाः । ध्वज एव चाभिधास्यति जगति निमित्तैः फलं सदसत् ॥१०॥ पूजा तस्य नरेन्द्रैर्बलवृद्धिजयार्थिभिर्यथा पूर्वम् । शक्राज्ञया प्रयुक्ता तामागमतः प्रवक्ष्यामि ॥११॥ तस्य विधानं शुभकरणदिवसनक्षत्रमङ्गलमुहूर्तैः । प्रास्थानिकैर्वनमियाद्दैवज्ञः सूत्रधारश्च ॥१२॥ उद्यानदेवतालयपितृवनवल्मीकमार्गचितिजाताः । कुब्जोर्ध्वशुष्ककण्टकिवल्लीवन्दाकयुक्ताश्च ॥१३॥ बहुविहगालयकोटरपवनानलपीडिताश्च ये तरवः । ये च स्युः स्त्रीसंज्ञा न ते शुभाः शक्रकेत्वर्थे ॥१४॥ श्रेष्ठोऽर्जुनोऽश्वकर्णः प्रियकधवोदुम्बराश्च पञ्चैते । एतेषामन्यतमं प्रशस्तमथवापरं वृक्षम् ॥१५॥ गौरासितक्षितिभवं संपूज्य यथाविधि द्विजः पूर्वम् । विजने समेत्य रात्रौ स्पृष्ट्वा ब्रूयादिमं मंत्रम् ॥१६॥ यानीह वृक्ष भूतानि तेभ्यः स्वस्ति नमोऽस्तु वः । उपहारं गृहीत्वेमं क्रियतां वासपर्ययः ॥१७॥ पार्थिवस्त्वां वरयते स्वस्ति तेऽस्तु नगोत्तम । ध्वजार्थं देवराजस्य पूजेयं प्रतिगृह्यताम् ॥१८॥ छिन्द्यात् प्रभातसमये वृक्षमुदक् प्राङ्मुखोऽपि वा भूत्वा । परशोर्जर्जरशब्दो नेष्टःस्निग्धो घनश्च हितः ॥१९॥ नृपजयदमविध्वस्तं पतनमनाकुञ्चितं च पूर्वोदक् । अविलग्नं चान्यतरौ विपरीतमतस्त्यजेत्पतितम् ॥ २० ॥ छित्वाग्रे चतुरंगुलमष्टौ मूले जले क्षिपेद्यष्टिम् । उद्धृत्य पुरद्वारं शकटेन नयेन्मनुष्यैर्वा ॥ २१ ॥ अरभङ्गे बलभेदो नेम्या नाशो बलस्य विज्ञेयः । अर्थक्षयोऽक्षभङ्गे तथाणिभङ्गे च वर्द्धकिनः-॥२२॥ भाद्रपदशुक्लपक्षस्याष्टम्यां नागरैर्वृतो राजा । दैवज्ञसचिवकंचुकिविप्रप्रमुखैः सुवेषधरैः ॥२३॥ अहताम्बरसंवीतां यष्टिं पौरन्दरीं पुरं पौरैः । स्रग्गन्धधूपयुक्तां प्रवेशयेच्छंखतूर्यरवैः ॥२४॥ रुधिरपताकातोरणवनमालालंकृतं प्रहृष्टजनम् । सम्मार्जितार्चितपथं सुवेषगणिकाजनाकीर्णम् ॥२५॥ अभ्यर्चितापणगृहं प्रभूतपुण्याहवेदनिर्घोषम् । नटनर्तकगेयज्ञैराकीर्णं चतुषपथं नगरम् ॥ २६ ॥ तत्र पताकाः श्वेता विजयाय भवन्ति रोगदाः पीताः । जयदाश्च चित्ररूपा रक्ताः शस्त्रप्रकोपाय ॥२७॥ यष्टिं प्रवेशयन्तीं निपातयन्तो भयाय नागाद्याः । बालानां तलशब्दे संग्रामः सत्त्वयुद्धे वा ॥२८॥ सन्तक्ष्य पुनस्तक्षा विधिवद्यष्टिं प्ररोपयद्यन्त्रे। जागरमेकादश्यां

नरेश्वरःकारयेच्चास्य ॥२९। सितवस्त्रोष्णीषधरः पुरोहितः शाक्रवैष्णवैर्मन्त्रैः। जुहुयादग्नि सांवत्सरो निमित्तानि गृह्णीयात् ॥३०॥ इष्टद्रव्याकारः सुरभिःस्निग्धो घनोऽनलोऽर्चिष्मान् । शुभकृदतोऽन्यो नेष्टो यात्रायां विस्तरोऽभिहितः ॥३१॥ स्वाहावसानसमये स्वयमुज्ज्वलार्चिः स्निग्धः प्रदक्षिणशिखो हुतभुग् नृपस्य। गङ्गादिवाकरसुताजलचारुहारां धात्रीं समुद्ररसनां वशगां करोति ॥ ३२ ॥ चामी कराशोककुरण्टकाब्जवैदूर्यनीलोत्पलसन्निभेऽग्नौ । न ध्वान्तमन्तर्भवनेऽवकाशं करोति रत्नांशुहतं नृपस्य ॥ ३३ ॥ येषां रथौघार्णवमेघदन्तिनां समस्वनोऽग्निर्यदि वापि दुन्दुभेः। तेषां मदान्धेभघटाविघट्टिता भवन्ति याने तिमिरोपमा दिशः ॥३४॥ ध्वजकुम्भहयेभभूभृतामनुरूपे वशमेति भूभृताम्। उदयास्तधराधरा हिम-वद्विन्ध्यपयोधरा धरा ॥ ३५ ॥ द्विरदमदमहीसरोजलाजैर्धृतमधुना च हुताशने सगंधे। प्रगतनृपशिरोमणिप्रभाभिर्भवति पुरश्छुरितेव भूनृपस्य ॥३६॥ उक्तं यदुत्तिष्ठति शक्रकेतौ शुभाशुभं सप्तमरीचिरूपैः। तज्जन्मयज्ञग्रहशान्तियात्रा-विवाहकालेष्वपि चिन्तनीयम् ॥३७॥ गुडपूपपायसाद्यैर्विप्रानभ्यर्च्य दक्षिणाभिश्च । श्रवणेन द्वादश्यामुत्थाप्योऽन्यत्र वा श्रवणात् ॥३८॥ शक्रकुमार्यः कार्याः प्राह मनुः सप्त पंच वा तज्ज्ञैः । नन्दोपनन्दसंज्ञे पादेनार्धेन चोच्छ्रायात् ॥३९॥ षोडसभागाभ्यधिके जयविजये द्वे वसुंधरे चान्ये । अधिका शक्रजनित्री मध्येऽ-ष्टांशेन चैतासाम् ॥ ४० ॥ प्रीतैः कृतानि विबुधैर्यानि पुरा भूषणानि सुरकेतोः। तानि क्रमेण दद्यात् पिटकानि विचित्ररूपाणि ॥४१॥ रक्ताशोकनिकाशं चतुरस्रं विश्वकर्मणा प्रथमम्। रसना स्वयम्भुवा शंकरेण चानेकवर्णधरी ॥४२॥ अष्टाश्रि नीलरक्तं तृतीयमिन्द्रेण भूषणं दत्तम्। असितंयमश्चतुर्थं मसूरकं कान्तिमदयच्छत ॥४३॥ मञ्जिष्ठाभं वरुणः षडश्रि तत्पंचमं जलोर्मिनिभम् । मायूरं केयूरं षष्ठं वायुर्जलदनीलम् ॥४४॥ स्कन्दः स्वं केयूरं सप्तममदद्ध्वजाय वहुचित्रम्। अष्टम-मनलज्वालासंकाशं हव्यभुग्दत्तम् ॥४५॥ वैदूर्यसदृशमिन्दुर्नवमं ग्रैवेयकं ददावन्यत्। रथचक्राभं दशमं सूर्यस्त्वष्टा प्रभायुक्तम् ॥४६॥ एकादशमुद्वंशं विश्वेदेवाः सरोज-संकाशम्। द्वादशमपि च निवंशं मुनयो नीलोत्पलाभासम् ॥४७॥ किञ्चिदध ऊर्ध्वं निर्णतमुपरि विशालं त्रयोदशं केतोः। शिरसि बृहस्पतिशुक्रौ लाक्षारससन्निभं ददतुः ॥४८॥ यद्यद्येन विनिर्मितममरेण विभूषणं ध्वजस्यार्थे। तत्तत्तद्दैवत्यं विज्ञातव्यं विपश्चिद्भिः ॥४९॥ ध्वजपरिमाणत्र्यंशः परिधिः प्रथमस्य भवति पिटकस्य । परतः प्रथमात्प्रमादष्टांशहीनानि ॥५०॥ कुर्यादहनि चतुर्थे पूरणमिन्द्रध्वजस्य शास्त्रज्ञः। मनुना चागमगीतान् मंत्रानेतान् पठेन्नियतः ॥५१॥ हरार्कवैवस्वत-शक्रसोमैर्धनेशवैश्वानरपाशभृद्भिः। महर्षिसंघैः सदिगप्सरोभिः शुक्राङ्गिरःस्कन्द-मरुद्गणैश्च ॥५२॥ यथा त्वमूर्जस्करनैकरूपैः समर्चितस्त्वाभरणैरुदारैः । तथेह

तान्याभरणानि देव शुभानि सम्प्रीतमना गृहाण ।।५३।। अजोऽव्ययः शाश्वत एकरूपो विष्णुर्वराहः पुरुषः पुराणः । त्वमन्तकः सर्वहरः कृशानुः सहस्रशीर्षा शतमन्युरीड्यः ।।५४।। कविं सप्तजिह्वं त्रातारम् इन्द्रमवितारं सुरेशम् । ह्वयामि शक्रं वृत्रहणं सुषेणमस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तु ।।५५।। प्रपूरणे चोच्छ्रयणे प्रवेशे स्नाने तथा माल्यविधौ विसर्गे । पठेदिमान्नृपतिः सोपवासो मंत्राञ्छुभान् पुरुहूतस्य केतोः ।।५६।। छत्रध्वजादर्शफलार्द्धचन्द्रैर्विचित्रमालाकदलीक्षुदण्डैः । सव्याल सिंहैः पिटकैर्गवाक्षैरलंकृतं दिक्षु च लोकपालैः ।। ५७ ।। अच्छिन्नरज्जुं दृढकाष्ठमातृकं सुश्लिष्टयंत्रार्गलपादतोरणम् । उत्थापयेल्लक्ष्म सहस्रचक्षुषः सारद्रुमाभग्नकुमारिकान्वितम् ।।५८।। अविरतजनरावं मङ्गलाशीः प्रणामैः पटुपटहमृदङ्गैः शंखभेर्यादिभिश्च । श्रुतिविहितवचोभिः पापठद्भिश्च विप्रैरशुभरहितशब्दंकेतुमुत्थापयीत ।।५९।। फलदधिघृतलाजाक्षौद्रपुष्पाग्रहस्तैः प्रणिपतितशिरोभिस्तुष्टुवद्भिश्च पोरैः। धृतमनिमिषभर्तुः केतुमीशःप्राजनामरिनगरनताग्रं कारयेद्विड्वधाय।।६०।। नातिद्रुतं न च विलम्बितमप्रकम्पमध्वस्तमाल्यपिटकादिविभूषणं च । उत्थानमिष्टमशुभं यदतोऽन्यथा स्यात् तच्छान्तिभिर्नरपतेः शमयत्पुरोधाः ।।६१।। क्रव्यादकौशिककपोतककाककंकैः केतुस्थितैर्महदुशन्ति भयं नृपस्य । चाषेण चापि युवराजभयं वदन्ति श्येनो विलोचनभयं निपतन् करोति ।।६२।। छत्रभङ्गपतने नृपमृत्युस्तस्करान्मधु करोति निलीनम् । हन्ति चाप्यथ पुरोहितमुल्का पार्थिवस्य महिषीमशनिश्च ।।६३।। राज्ञीविनाशं पतिता पताका करोत्यवृष्टिं पिटकस्य पातः। मध्याग्रमूलेषु च केतुभङ्गो निहन्ति मन्त्रिक्षितिपालपौरान् ।।६४।। धूमावृते शिखिभयं तमसा च मोहो व्यालैश्च भग्नपतितैर्न भवन्त्यमात्याः । ग्लायन्त्युदक्प्रभृति च क्रमशो द्विजाद्या भङ्गे च बंधकिवधः कथितः कुमार्याः ।।६५।। रज्जूसंगच्छेदने बालपीडा राज्ञो मातुः पीडनं मातृकायाः। यद्यत्कुर्युर्बालकाश्चारणा वा तत्तत्तादृग्भावि पापं शुभं वा।।६६।। दिनचतुष्टयमुत्थितमर्चितं समभिपूज्य नृपोऽहनि पञ्चमे । प्रकृतिभिः सह लक्ष्म विसर्जयेद्बलभिदःस्वबलाभिविवृद्धये ।।६७।। उपरिचरवसुप्रवर्तितं नृपतिभिरप्यनु सन्ततं कृतम् । विधिमिममनुमन्य पार्थिवो न रिपुकृतं भयमाप्नुयादिति ।।६७।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० मिन्द्रध्वजसम्यपन्नाम त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः।।४३।।

देवतालोगोंने ब्रह्माजीसे कहा था "हे भगवन् ! हममें इतनी सामर्थ्य नहीं है कि असुरलोगोंके साथ युद्ध करें, इस कारण हे शरण देनेवाले ! उनके साथ युद्ध करनेके लिये हम आपकी शरण लेते हैं" ।।१।। भगवान् ब्रह्माजीने देवताओंसे कहा कि "श्रीभगवान् केशवजी क्षीरसागरमें विराजमान हैं वह तुमको एक (झंडी) देंगे, उस केतुको देखकर फिर दैत्यलोग युद्धमें तुम्हारे सामने खडे नहीं रह सकेंगे" ।।२।। इस प्रकार इन्द्रके साथ वह सब देवता वर पाकर क्षीरसागरपर गये और श्रीवत्सके चिह्नसे युक्त

कौस्तुभमणिकी किरणोंसे जिनकी छाती प्रकाशमान हो रही है, अचिन्त्य (विचारमें न आनेके योग्य), समदर्शी सब प्राणियोंके अन्तरमें वास करनेवाले, सूक्ष्म, जिनकी सीमाका परिमाण नहीं, अनादि, परमात्मा, श्रीपति विष्णुजीकी स्तुति करने लगे ।।३।। जब इस प्रकारसे उन देवताओंने नारायणकी स्तुति की तो उन्होंने देवताओंके, देवताओंकी बहुओंके मुखरूपी कमलवनको सूर्य और राक्षसोंकी बहुओंके मुखरूपी कमलवनको चंद्रमाके समान एक ध्वज देकर संतुष्ट किया ।।५।। महाराज इन्द्र शरत्कालके सूर्यके समान प्रकाशमान, विष्णुजीके तेजसे उत्पन्न हुए, आठ पहियेदार, प्रकाशित, रत्नसे चित्रित रथमें स्थित उस ध्वजको पाकर हर्षित हुए ।।६।। किकणियोंके समूहसे भूषित, माला, छत्र, घंटा, पिटक (एक प्रकारका भूषण जो ध्वजामें लगाया जाता है) से युक्त और अति ऊंचे उस ध्वजसे महाराज इन्द्रने युद्धमें शत्रुकी सेनाका नाश किया ।।७।। देवताओंके राजा इन्द्रने चेदिके राजा उपरिचरवसुको यह बांसका बना हुआ दंड दिया था, राजाने भली भांतिसे उस दंडकी पूजा की ।।८।। इस उत्सवसे प्रसन्न होकर इन्द्रने कहा था कि जो राजा इस उपरिचरवसुके समान उत्सव करेंगे ग्रे वसुके समान वसुमान् होकर पृथ्वीमें सिद्धिके जानने-वाले होंगे, उनकी सब प्रजा संतुष्ट, भयरोगरहित और बहुतसे अन्नवाली होगी अर्थात् उनके घरमें बहुत नाज भरा रहेगा यह ध्वज ही जगत् में निमित्त करके संसारमें सत असत् फलका प्रकाश करेगा ।।९।।१०।। पहले इन्द्रकी आज्ञासे सेनाकी वृद्धि और जीतके चाहनेवाले राजाओं करके जिस प्रकार इन्द्रध्वजकी पूजा की हुई है सो यहां पर शास्त्रके अनुसार कहूंगा ।।११।। उस पूजाकी विधि यह है कि शुभ करण, दिवस, नक्षत्र और मंगल मुहूर्त यात्रा करनेके योग्य हो तो दैवज्ञ और सूत्रधार (बढई) को वनमें जाना चाहिये ।।१२।। फुलवाडी, देवस्थान पितृवन, वमई मार्ग और चिता तथा कुबडा, खडे २ ही सूख गये हों, कांटेदार, जिनपर वेल फैल रही हो तथा बंदा भी हो, जिसपर पक्षियोंके बहुतसे घोंसले हों या हवा और आगसे जो वृक्ष पीडित हों, अथवा जिन वृक्षोंका नाम स्त्रीके नामसा हो जैसे खिरनी सो ऐसे वृक्ष इन्द्रकेतुके अर्थ शुभ नहीं है ।।१३।।१४।। अर्जुन अश्वकर्ण, प्रियक, धव और गूलर यह पांच वृक्ष श्रेष्ठ हैं। यदि इसमें कोई भी वृक्ष न हो तो और कोई वृक्ष ग्रहण करलें तो भी अच्छा है ।।१५।। गौरवर्ण या कृष्ण वर्ण पृथ्वीपर उत्पन्न हुए वृक्षकी पहले यथाविधिसे पूजा करके ब्राह्मण रात्रिके समय मनुष्यरहित वनमें जाय और ऐसे वृक्षको छूकर यह मंत्र पढे,-"इस वृक्षपर जो प्राणी रहते हैं उनका शुभ हो, मैं उनको नमस्कार करता हूं। यह आहार ग्रहण करके वह प्राणी और कहीं वास करें। हे नगोत्तम! देवराजकी ध्वजाके लिये यह राजा तुमको पानेकी इच्छा करते हैं, तुम्हारा शुभ हो, इस पूजाको ग्रहण करो" ।।१६।। ।।१७।।१८।। इसके उपरांत प्रभातके समय उत्तर वा पूर्वमुख होकर वृक्षको काटे, उस समय वृक्षके काटनेसे जो जर्जर शब्द निकले तो वह अशुभ है, मनोहर और घने शब्दका निकलना शुभ है ।।१९।। विना टूटे हुए वृक्षका गिरना, टेढा न होना, दूसरे वृक्षसे लगकर न गिरे. पूर्व व उत्तर दिशाको गिरे तो राजाओंको जयदायी होता है। इन सबके अतिरिक्त गिरा हुआ वृक्ष विपरीत फलका देनेवाला है ।।२०।। अग्रसे चार अंगुल मूलसे आठ अंगुल काटकर काठको जलमें डाल देना फिर वृक्षको जलसे निकाल छकड़ेके द्वारा या आदमियोंसे उठवा-कर पुरके द्वारमें लाना चाहिये ।।२१।। लानेके समय छकड़ेका आरा टूट जाय तो सेनाका

भेद होता है, नेमिके टूटनेसे सेनाके नाशकी सूचना होती है। अक्ष (पहियेका धुरा) टूटनेसे धनका नाश और अणिके टूटनसे बढईका नाश हो जाता है ॥२२॥ भाद्रमासके शुक्लपक्षकी अष्टमी तिथिमें श्रेष्ठ वेषधारी नगरवासी, दैवज्ञ, मंत्री, कंचुकी, विप्रादिकोंके साथ राजा अखंडित वस्त्रोंसे ढके हुए और माल्य गंध धूपयुक्त इन्द्रध्वजको शंख तुरहीके शब्दके साथ पुरवासियोंसे उठवाकर पुरमें प्रवेश कराना चाहिये ॥२३॥ ॥२४॥ उस काल वह पुर मनोहर पताका तोरण और वनमालासे सजाया हुआ हो, वहांके सब मनुष्य हर्षित हो, भली भांतिसे झाड बुहार और जल छिडके चौराहोंसे युक्त व सुंदर वेष-वाली वेश्याओंसे सजाधजा हो ॥२५॥ सब दुकानें सजी सजाई हों, चारों ओर पुण्य शब्द और वेदध्वनि होती रहें ॥ नगरके चौराहे, नट, नचनइये और संगीतके जाननेवालोंसे भरे रहें ॥२६॥ ऐसे समय श्वेतपताका लगना विजयका कारण है, पीली पताका रोगदायी और अनेक रंगवाली पताका जयकी देनेवाली है, लाल रंगकी पताका शत्रुशस्त्रके कुपित होनेके कारण होती है ॥२७॥ दंडको नगरमें प्रवेश करानेके समय जो हस्ती आदि कोई जीव उसको गिरा दे तो भयका कारण होता है। जो बालकगण उस समय तालियां बजावें या किसी प्राणीका युद्ध होवे तो संग्रामका होना सूचित होता है ॥२८॥ फिर बढईको चाहिये कि दंडको विधिविधानसे छीलकर खरादपर चढावे, राजाको उचित है कि एकादशीके दिन जागरण करे ॥२९॥ श्वेत वस्त्र और पगडी बांधे हुए राजाका पुरोहित ऐन्द्र और वैष्णवमंत्रसे अग्निमें होम करे। दैवज्ञको उचित है कि संवत्सरके निमित्त (शकुन) सबको बतावे ॥३०॥ अभिलाषा किये हुए द्रव्यके समान आकारधारी, सुगन्धित, चिकना, घना और लपटदार अग्नि शुभकारी है इसके सिवाय और अग्नि वांछित फलका देनेवाला नहीं है। इसका वर्णन विस्तारसहित योगयात्रामें किया है ॥३१॥ देवताके लिये अग्निमें घृतकी आहुतिका देना, मंत्रजपके अन्तमें होमके अग्निका आपही आप उजली शिखावाला, चिकना, दक्षिणदिशासे घेरनेवाला हो तो गङ्गायमुनाके जलरूपकी सुंदर हार पहरनेवाली और समुद्ररूपी तगडीको जिसने पहर रक्खी है ऐसी पृथ्वी राजाके वशमें हो जायगी ॥३२॥ सुवर्ण, अशोक, कुरंटक, पद्म, वैदूर्य या नीले कमलके समान रंगवाला अग्नि हो तो अंधकार, रत्नकी ज्योतिसे पीडित होकर राजाके गृहमें अवकाशको नहीं प्राप्त होता अर्थात् अंधकार टिका नहीं रहता ॥३३॥ जो अग्निमें समुद्र, मेघ हाथी या नगाडेके समान शब्द हो तो जिस समय वह राजा युद्ध करनेको चले उस समय सब दिशाएँ मस्त हाथियोंके समूहसे भरी हुई अंधकारके समान काले रंगकी दिखाई देती हैं ॥३४॥ जो अग्नि ध्वज, घडा, घोडा और हाथियोंके समान हो तो उदय व अस्तपर्वतकी धारण करनेवाली हिमालय और विन्ध्यपर्वतरूप स्तनधारण करनेवाली पृथ्वी राजाके वशमें हो जाती है ॥३५॥ हाथीका मद, मही (पृथ्वी), पद्म (कमल), खीलें, घी या शहदके समान अग्निमें सुगंधी हो तो प्रणाम करते हुए राजाओंकी शिरके मुकुटमें जडी हुई मणियोंकी प्रभाके द्वारा राजसभा व्याप्त हो जाती है ॥३६॥ इन्द्रध्वजको उठानेके समय अग्निके स्वरूपसे जो शुभाशुभ कहे गये, वह जन्म, यज्ञ ग्रह शांति यात्रा और विवाहके समयमें इनका विचार करना चाहिये ॥३७॥ गुड या पिट्ठी, खीरादि और दक्षिणासे ब्राह्मणोंकी पूजा करके द्वादशीको श्रवण नक्षत्रमें, और तिथिको श्रवणनक्षत्रके समय ध्वजाको उठावे। ध्वजाके ऊपर पाँच या सात शक्रकुमारी बनावे ऐसा मनुजी महाराजने कहा है। जितनी ऊंचाई

ध्वजकी हो उसके चौथाई अंशके समान नंदा और आधेके तुल्य उपनन्दा नामवाली शक्रकुमारी बनावे, सोलहवें भागसे कुछ अधिक जय और विजय नामक दो वसुन्धर बनावे और बीचमें आठ अंशसे अधिक इन्द्रमाता बनावे, पहले देवताओंने हर्षित होकर इन्द्रध्वजको भूषण दिये थे इसमें वह समस्त भूषण और पिटक क्रमानुसार दान करे ॥३८॥३९॥ ॥४०॥४१॥ विश्वकर्माजीने लाल अशोकके समान चौकोन अलंकार (गहना) पहले दिया, दूसरा अनेक रंगवाली तगडी ब्रह्मा और शिवजीने दी, इंद्रजीने आठ कोनवाला नीले और लालरंगका तीसरा भूषण इन्द्रध्वजको दिया, यमराजने कान्तिमान् मसूरक नाम चौथा भूषण इन्द्रध्वजको दिया ॥४२॥४३॥ तिसके उपरांत वरुणजीने मंजीठके समान कांतिमान् जलतरंगके समान छः कोणवाला पांचवाँ गहना और पवन देवताने मोरके समान रंगवाला बादलके समान नीला छठा केयूर नामक गहना इन्द्रध्वजको दिया ॥४४॥ स्वामिकार्तिकने अनेक चित्रयुक्त अपना केयूर नामक सातवां गहना इन्द्रध्वजको दिया, होमके अग्निने ज्वालाके समान आठवां अलंकार दिया ॥४५॥ चंद्रमाने वैदूर्यमणिके समान-गरदनमें पहरनेके योग्य नवम अलंकार और त्वष्टा (सूर्य) ने रथके पहियेके समान प्रभा युक्त दशवां गहना इन्द्रध्वजको दिया ॥४६॥ विश्वेदेवताओंने कमलके समान ग्यारहवां अलङ्कार, मुनियोंने नीले कमलके समान निवंशनामक बारहवां अलकार और बृहस्पति व शुक्रने केतुके ऊपर कुछ नीचेसे ऊपर बना हुआ झुका हुआ विशाल महावरके रंगके समान तेरहवां अलङ्कार इन्द्रध्वजके मस्तकपर चढाया ॥४७॥४८॥ इन्द्रध्वजके लिये जिस २ देवताने जो जो गहने बनाये उन गहनोंके मालिक वही देवता हैं यह पंडित लोगोंको जानना चाहिये ॥४९॥ प्रथम पिटककी परिधि ध्वजाके परिमाणका एक तिहाई हिस्सा है, फिर पीछे की समस्त परिधि क्रमानुसार पहलेकी परिधिसे अष्टमांश न्यून हैं ॥५०॥ शास्त्रका जाननेवाला पुरुष चौथे दिन मंत्रसे इन्द्रध्वजको पूरण करे और आगमसे मनुजीके कहे हुए इन मंत्रोंको पढे ॥५१॥ महादेव, सूर्य, यम, इन्द्र, चन्द्र, कुबेर, अग्नि, वरुण, महर्षिगण सब दिशाएँ, अप्सराएँ, शुक्र, अंगिरा, कार्तिकेय, वायु और गणदेवता इन करके तेजकारी, बहुरूप, उदार भूषणोंसे जिस प्रकार आप पूजित हुए हैं, हे देव ! इस समय प्रसन्न होकर उन सब गहनोंको ग्रहण करो, हे देव ! तुम जन्मरहित, विकाररहित, नित्य और एकरूप हो, तुम ही अनादि पुरुष और ग्रह हो, तुम ही यम, तुम ही संहारकारी तुम ही अग्नि, तुम ही हजार मस्तकवाले, तुम ही पूज्य हो, कवि सप्तजिह्व, त्राता, सुरपति, अविता, वृत्रासुरके मारनेवाले शक और सुषेण नामक तुमको मैं आह्वान करता, हूं, हमारे सब वीर उत्तरमें विराजमान अर्थात् जयी हों ॥५२॥ ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ इन्द्रध्वजका पूर्ण करना, उडाना, प्रवेश कराना, स्नान, माला पहराना और विसर्जनके समय राजा उपवास करके इन शुभ मंत्रोंको पढे ॥५६॥ छत्र, ध्वज, आदर्शफल, अर्द्धचंद्र, विचित्र माला, कदली, गन्ना, काला सर्प, सिंह पिटक, गवाक्ष और दिक्पालोंको इस ध्वजमें चारों ओर बनावे ॥५७॥ अखंडित वृक्षका बना हुआ, अखंडित रस्सीसे बँधा हुआ, कुमारिका जिसमें बनी हुई हों; यंत्र, अर्गल, पाद और तोरणयुक्त हजार नेत्रवाले इन्द्रका जो चिह्न है ऐसे ध्वजको राजा उठावे ॥५८॥ मङ्गल आशीर्वाद, प्रणाम, ढोल, मृदङ्ग, शंख, भेरी आदिका मधुर शब्द और वारंवार पढते हुए ब्राह्मणोंके वेदमें कहे हुए वाक्यसे मनुष्योंका शब्दसे युक्त और श्रेष्ठ शब्दवाले केतुको उठावे ॥५९॥ फल, दही

धी: खीलें, शहद और फूलोंको पहले हाथमें धारण करके मस्तक झुकाकर प्रणाम करते २ स्तुति पढनेवाले पुरवासियों करके इन्द्रध्वज धारण होनेपर शत्रुवधके लिये उसके शत्रु-नगरके तरफ उस ध्वजके अग्रभागको प्रजापति (राजा) झुकावै ।।६०।। जो ध्वज बहुत शीघ्र खडा हो जाय, कांपै नहीं, माला, पिटकादि भूषण उसके न गिरे तो उसका हित-कारी होता है, इसके सिवाय और भांतिका उठाना अशुभ है। राजाके पुरोहितको चाहिये कि शांति करके सब विघ्नोंको दूर करे ।।६६।। मांसको खानेवाले पक्षी, उल्लू, कबूतर, काग, गिद्ध जो इन्द्रध्वजपर बैठें तो राजाको अत्यन्त अशांति होती है और इन्द्रध्वज पर नीलकण्ठ बैठे तो युवराजको भय कहा जाता है। बाजपक्षीका इन्द्रध्वज पर गिरना नेत्र-भयको उत्पन्न करता है ।।६२।। छत्र भंग होकर ध्वजका गिरना राजाओंकी मृत्युको प्रकट करता है जो भौंरे इन्द्रध्वजपर शहदकी मुहाल लगा दें तो तस्करोंकी मृत्यु होती है। ध्वजपर उल्का गिरे तो पुरोहितकी और वज्र गिरे तो राजाकी रानीकी मृत्यु होती है ।।६३।। पताकाके गिरनेसे रानीका नाश और पिटकके गिरनेसे सूखा पडता है। बिचला, ऊपरका और जडका भाग इन्द्रध्वजका टूट जाय तो क्रमसे मंत्री राजा और पुरवासियोंका नाश करता है ।।६४।। इसपर धूम छा जाय तो मोह होता है, वीचमेंसे टूटकर गिर जाय तो मंत्रियोंका अभाव हुआ करता है। उत्तरादि चार दिशाओंमें टूटकर गिरे तो क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रको ग्लानि उत्पन्न करता है। कुमारियां कट फट जायँ तो व्यभिचारिणी स्त्रियां मरती हैं ।।६५।। इन्द्रध्वज उठानेके समय उसके रास्ते कहीं अटक जायँ तो बालकोंको पीडा होती है। तोरणकी बगलमें रक्खे हुए काठके टूट जानेसे राजमाताको पीडा होती, बालक या दूत इन्द्रध्वजके समीप जैसी २ चेष्टा करें वैसा ही (अशुभ कार्य होनेपर) पापकर या (शुभ, कार्यमें) शुभकारी होता है ।।६६।। उठें हुए और पूजित ध्वजकी भली भांतिसे चार दिन पूजा कर पांचवें दिन प्रजाको। साथ ले राजा उस इन्द्रध्वजको विसर्ज्जन करे तो राजाकी सेनाका बल बढ़ता है ।।६७।। उपरिचरवसुराजासे चलाई हुई, फिर राजाओंके द्वारा सदा की हुई इस विधिसे जो राजा इस प्रकारसे इन्द्रध्वजकी पूजा करेंगे, वे शत्रु लोगोंसे भयको प्राप्त नहीं होंगे ।।६८।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४३ ।।

अथ चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

नीराजनम्

भगवति जलधरपक्ष्मक्षपाकरार्के क्षणे कमलनाभं। उन्मीलयर्यति तुरङ्ग-मकरिनरनीराजनं कुर्यात् ।।१।। द्वादश्यामष्टम्यां कार्तिकशुक्लस्य पंचदश्यां वा। आश्वयुजे वा कुर्यान्नीराजनसंज्ञितां शांतिम् ।।२।। नगरोत्तरपूर्वदिशि प्रशस्तभूमौ प्रशस्तदारुमयम्। षोडशहस्तोच्छ्रायं दशविपुलं तोरणं कार्यम् ।। ३ ।। सर्जोदुम्बर शाखाककुभमयं शान्तिसद्म कुशबहुलम्। वंशविनिर्मितमत्स्यध्वजचक्रालंकृतद्वारम् ।।४।। प्रतिसरया तुरंगाणां भल्लातकशालिकुष्ठसिद्धार्थान्। कण्ठेषु निबध्नीयात्

पुष्टयर्थं शान्तिगृहगानाम् ॥ ५ ॥ रविवरुणविश्वदेवप्रजेशपुरुहूतवैष्णवैर्मन्त्रैः । सप्ताहं शान्तिगृहे कुर्याच्छान्तिं तुरङ्गाणाम् ॥ ६ ॥ अभ्यर्चिता न परुषं वक्तव्या नापि ताडनीयास्ते । पुण्याहशंखतूर्यध्वनिगीतरवैर्विमुक्तभयाः ॥७॥ प्राप्तेऽष्टमेऽह्नि कुर्यादुदङ्मुखं तोरणस्य दक्षिणतः । कुशचीरावृतमाश्रममग्निं पुरतोऽस्य वेद्यां च ॥८॥ चन्दनकुष्ठसमङ्गाहरितालमनःशिलाप्रियंगुवचाः । दन्त्यमृताञ्जनरजनीसुवर्णपुष्पाग्निमन्थाश्च ॥९॥ श्वेतां सपूर्णकोशां कटम्भरात्रायमाणसहदेवीः । नागकुसुमं स्वगुप्तां शतावरीं सोमराजीं च ॥१०॥ कलशेष्वेतान् कृत्वा संभारानुपहरेद्बलिं सम्यक् । भक्ष्यैर्नानाकारैर्मधुपायसयावकप्रचुरैः ॥११॥ खदिरपलाशोदुम्बरकाश्मर्यश्वत्थनिर्मिताः समिधः । स्रुक्कनकाद्रजताद्वा कर्त्तव्या भूतिकामेन ॥१२॥ पूर्वाभिमुखः श्रीमान् वैयाघ्रे चर्मणि स्थितो राजा । तिष्ठेदनलसमीपे तुरगभिषग्दैववित्सहितः ॥१३॥ यात्रायां यदभिहितं ग्रहयज्ञविधा महेन्द्रकेतौ च । वेदी पुरोहितानललक्षणमस्मिंस्तदवधार्यम् ॥१४॥ लक्षणयुक्तं तुरगं द्विरदवरं चैव दीक्षितं स्नातम् । अहतसिताम्बरगंधस्रग्धूपार्भ्यार्चितं कृत्वा ॥१५॥ आश्रमतोरणमूलं समुपनयेत्सान्त्वयञ्छनैर्वाचा । वादित्रशंखपुण्याहनिःस्वनापूरितदिगन्तम् ॥१६॥ यद्यानीतस्तिष्ठेद्दक्षिणचरणं हयः समुत्क्षिप्य । स जयति तदा नरेन्द्रः शत्रूनचिराद्विना यत्नात् ॥१७॥ त्रस्यन्नेष्टो राज्ञः परिशेषं चेष्टितं द्विपहयानाम् । यात्रायां व्याख्यातं तदिह विचिन्त्य यथायुक्ति ॥१८॥ पिण्डमभिमंत्र्य दद्यात् पुरोहितो वाजिने स यदि जिघ्रेत् । अश्नीयाद्वा जयकृद्विपरीतोऽतोन्यथाभिहितः ॥१९॥ कलशोदकेषु शाखामाप्लाव्यौदुम्बरीं स्पृशेत्तुरगान् । शांतिकपौष्टिकमंत्रैरेवं सेनां सनृपनागाम् ॥२०॥ शांतिं राष्ट्रविवृद्ध्यै कृत्वा भूयोऽभिचारकैर्मन्त्रैः । मृण्मयमरिं विभिन्द्याच्छूलेनोरःस्थले विप्रः ॥२१ । खलिनं हयाय दद्यादभिमन्त्र्य पुरोहितस्ततो राजा । आरुह्योदक्पूर्वां यायान्नीराजितः सबलः ॥ २२ ॥ मृदङ्गशंखध्वनिहृष्टकुञ्जरस्रवन्मदामोदसुगन्धिमारुतः । शिरोमणिव्रातचलत्प्रभाचयैर्ज्वलन्विवस्वानिव तोयदात्यये ॥ २३ ॥ हंसपंक्तिभिरितस्ततोऽद्रिराट् सम्पतद्भिरिवशुक्लचामरैः । मृष्टगन्धपवनानुवाहिभिर्धूयमानरुचिरस्रगम्बरः ॥ २४ ॥ नैकवर्णमणिवज्रभूषितैर्भूषितो मुकुटकुण्डलाङ्गदैः । भूरिरत्नकिरणानुरञ्जितः शक्रकार्मुकरुचं समुद्वहन् ॥२५॥ उत्पतद्भिरिव खं तुरङ्गमैर्दारयद्भिरिव दन्तिभिर्धराम् । निर्जितारिभिरिवामरैर्नरैः शक्रवत्परिवृतो व्रजेन्नृपः ॥२६॥ सवज्रमुक्ताफलभूषणोऽथवा सितस्रगुष्णीषविलेपनाम्बरः । धृतातपत्रो गजपृष्ठमाश्रितो घनोपरीवेन्दुतले भृगोः सुतः ॥२७॥ सम्प्रहृष्टनरवाजिकुञ्जरं निर्मलप्रहरणांशुभारम् । निर्विकारमरिपक्षभीषणं यस्य सैन्यमचिरात्स गां जयेत् ॥२८॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां नीराजनविधिर्नाम चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

बादल जिसकी आँखोंके पलक हैं, चंद्रमा सूर्य जिसके दोनों नेत्र हैं वह भगवान् कमलनाभ जब नेत्र खोलते हैं अर्थात् जागते हैं तब घोडे, हाथी और मनुष्योंको नीराजन करना चाहिये ।।१।। कातिकके शुक्लपक्षकी पूर्णिमा, द्वादशी और अष्टमीमें या आश्विन-मासमें नीराजन संज्ञाकी शांति करे ।।२।। नगरकी उत्तर पूर्वदिशामें श्रेष्ठ भूमिके ऊपर अच्छे काठका सोलह हाथ ऊंचा और दश हाथ चौडा एक तोरण बनावे ।।३।। विजय-सारका वृक्ष, गूलर और अर्जुनवृक्षके काठका शांति-ग्रह बनावे, उसमें बहुतसे कुश भी रक्खे हों। इसके द्वारमें बांसके बने हुए मत्स्य, ध्वज और चक्र लगाये जायँ ।।४।। शांति-ग्रह और सबकी पुष्टिके लिये घोडोंके गलेमें प्रतिसिरामंत्रसे भिलावा, शट्ठीके धान्य, कूठ और सरसोंका बांधना उचित है ।।५।। सूर्य; वरुण, विश्वेदेव, प्रजापति, इन्द्र और विष्णुजीके मंत्रोंसे शांतिगृहमें एक सप्ताह तक घोडोंकी शांति करे ।।६।। वे घोडे पुण्याह, शंख, भेरीध्वनि और गीतध्वनिसे भयरहित और पूजित हों, कठोर बचनसे या और किसी प्रकारसे डराये धमकाये न जावें ।।७।। जब आठवां दिन प्राप्त हो तो कुश और चीरसे ढकी हुई आश्रमकी अग्निको तोरणकी दक्षिण ओरसे उत्तरकी ओर वेदीके ऊपर स्थापन करे ।।८।। चंदन, कूठ, मंजीठ, हरिताल, मैनशिल, कंगनी, वच, अमृत, अंजन, हलदी, सुवर्ण, फूल, गनियारी ।।९।। सफेद फटकरी, पूर्णकोशा, कुटकी, त्रायमान, सह-देवी बूंटी, श्वेतवर्ण पूर्णकोष, नागकेशर, कोंच, शतावर, और सोमवल्ली ।। १० ।। यह सब वस्तु बराबर लेकर कलशोंमें डाले और बहुतसा मधु खीर, यावकादि अनेक भांति पदार्थोंके साथ भलीभांति बलि देवे ।।११।। खैर, ढाक, गूलर, गंभारी और पीपलके काठकी समिधा बनावे, संपत्ति चाहने वालेको सोने या चांदीका स्रुवा बनाना चाहिये ।।१२।। व्याघ्रके चमडेपर स्थित हो पूर्वको मुख किये श्रीमान् राजा अश्व, वैद्य और दैवज्ञ लोगोंके साथ अग्निके समीप बैठे ।।१३।। ग्रह यज्ञकी विधिमें यात्राके विषयमें और महेन्द्र केतुके विषयमें वेदी, पुरोहित और अग्निके लक्षण जो कहे हैं वे सब इस विधानमें भी जानने चाहिये ।।१४।। उत्तम लक्षणवाले हाथी, घोडेको दीक्षा देकर न्हवाय, नवीन वस्त्र पहिराय फूलोंके हार और गंध धूपादिसे पूजन करें ।।१५।। मीठे वचन कह उसको समझाते बुझाते धीरे २ अनेक प्रकारके बाजे, शंख, पुण्ययुक्त शब्दोंसे जिसकी ध्वनि दिशामें भर गई है ऐसे आश्रमतोरण मूलके समीप उठाकर लावे ।।१६।। जो लाया हुआ घोडा पहले दायाँ चरण उठाकर खडा रहे तो वह राजा शीघ्र और विना परिश्रमके शत्रुओंको जीत लेगा, परंतु अश्वके भीत होनेसे राजाको भय होता है. हाथी, घोडोंकी बाकी चेष्टाका फल जो यात्राध्यायमें कहा है सो यहां पर यथायुक्तिसे विचारना चाहिये ।।१७।।१८।। पुरोहित मंत्र पढकर अश्वको भोजन करनेके लिये पिण्ड दे और घोडा उसको सूंघ ले या आहार कर ले तो जयदायी होता है. इससे विपरीतका होना अशुभ कहा है ।।१९।। गूलरकी शाखा कलशके जलसे भिगोकर राजा और हाथियोंसे युक्त सेना और घोडोंकी शांतिके लिये पौष्टिकमंत्रसे पुरोहित या ब्राह्मण स्पर्श करे और राज्यकी वृद्धिके लिये अभिचारके मंत्र पढ बारंबार शांति करे, पुरोहितको उचित है कि मृत्तकाकी शत्रुमूर्त्ति बनाय शूलसे उसकी छातीको फाडे ।।२०।।२१।। पुरोहित मंत्र पढकर लगामको घोडेके मुखमें दे, फिर राजा उस अश्वपर सवार हो नीराजित होकर सेनाके साथ उत्तर दिशामें जाय ।।२२।। वह मृदंग, शंखध्वनि और मद झरते हुए हर्षित हाथी की मदगंध से सुगं-

धित हुई पवन के सेवन से हर्षित हो मुकुट में जडी हुई मणियों की चञ्चल कांति से बादल फट जाने पर सूर्य के समान प्रकाशमान मूर्ति धारण करके शुद्ध गंधयुक्त पवन के पीछे बहते हुए गिरनेवाले श्वेत चामर से हंसावली से शोभायमान पर्वतराज के समान कम्पायमान, सुंदरमाला और सुंदर वस्त्र पहरकर शोभित हो ।।२३।।२४।। अनेक रंग के मणि और हीरों से भूषित, मुकुट, कुण्डल और बाजु धारण किये हुए राजा उस काल में अनेक रत्नों की किरणों से रंगे हुए इन्द्रधनुष के समान सुंदर रूप धारण करके आकाश में मानो उडते हुए घोडे, धरणी के विदारण करनेवाले हाथी और शत्रुको विजय करनेवाले मनुष्योंके साथ, देवताओं से घिरे हुए इन्द्र के समान गमन करे ।।२५।।२६।। अथवा हीरा, मोती, जडी श्वेतमाला, पगडी, उबटना या चंदनादि लगाय, वस्त्र पहर, छत्र धारण कर हाथी पर सवार हो, मेघ के ऊपर चंद्रमा के नीचे विराजमान शुक्र के समान गमन करे ।।२७।। उस काल में जिसकी सेना हर्षित हो और हर्षित हाथी, घोडे और मनुष्यों से युक्त है, निर्मल अस्त्र शस्त्रों की कांतिसे प्रकाशमान है, विकाररहित और शत्रुपक्षको भय उपजानेवाली होती है वह राजा शीघ्र ही पृथ्वीको जीत लेनेमें समर्थ होता है ।।२८।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ।।४४।।

अथ पंचचत्वारिंशोऽध्यायः

खञ्जनदर्शनम्

खञ्जनको नामायं यो विहगस्तस्य दर्शने प्रथमे । प्रोक्तानि यानि मुनिभिः फलानि तानि प्रवक्ष्यामि ।।१।। स्थूलोऽभ्युन्नतकण्ठः कृष्णगलो भद्रकारको भद्रः । आकण्ठमुखात् कृष्णः संपूर्णः पूरयत्याशाम् ।।२।। कृष्णो गलेऽस्य बिन्दुः सितकरटान्त : स रिक्तकृद्रिक्तः । पीतो गोपीत इति क्लेशकरः खञ्जनो दृष्टः ।।३।। अथ मधुर-सुरभिफलकुसुमतरुषु सलिलाशयेषु पुण्येषु । करितुरगभुजगमूर्ध्नि प्रासादोद्यान हर्म्येषु ।।४।। गोगोष्ठसत्समागमयज्ञोत्सवपार्थिवद्विजसमीपे । हस्तितुरङ्गमशाला-च्छत्रध्वजचामराद्येषु ।। ५ ।। हेमसमीपसिताम्बरकमलोत्पलपूजितोपलिप्तेषु । दधिपात्रधान्यकूटेषु च श्रियं खञ्जनः कुरुते ।।६।। पंके स्वाद्वन्नाप्तिर्गोरससंपच्च गोमयोपगते शाद्वलगे वस्त्राप्तिः शकटस्थे देशविभ्रंशः ।।७।। गृहपटलेऽर्थभ्रंशो वध्रे बन्धोऽशुचौ भवति रोगः । पृष्ठेत्वजाविकानां प्रियसंगममावहत्याशु ।।८।। महिषोष्ट्रगर्दभास्थिश्मशानगृहकोणशर्करान्द्रिस्थः । प्रकारभस्मकेशेषु चाशुभो मरण-रुग्भयदः ।।९।। पक्षौ धुन्वन्नशुभः शुभः । पिबन् वारि निम्नगासंस्थः । सूर्योदयेऽथ शस्तो नेष्टफलः खञ्जनोऽस्तमये ।। १० ।। नीराजने निवृत्ते यया दिशा खञ्जनं नृपो यान्तम् । पश्येत्तया गतस्य क्षिप्रमरातिर्वशमुपैति ।। ११ ।। तस्मिन्निधिर्भवति मैथुनमेत यस्मिन् यस्मिंस्तु छर्दयति तत्र तलेऽस्ति काचः । अङ्गारमप्युपदिशन्ति

पुरीषणेऽस्य तत्कौतुकापनयनाय खनेद्धरित्रीम् ।। १२ ।। मृतविकलविभिन्नरोगितः स्वतनुसमानफलप्रदः खगः । धनकृदभिनिलीयमानको वियति च बन्धुसमागमप्रदः ।। १३ ।। नृपतिरपि शुभं शुभप्रदेशे खमवलोक्य महीतले विदध्यात् । सुरभिकुसुमधूपयुक्तमर्घं शुभमभिनन्दितमेवमेति वृद्धिम् ।। १४ ।। अशुभमपि विलोक्य खञ्जनं द्विजगुरुसाधुसुरार्चने रतः । न नृपतिरशुभं समाप्नुयान्न यदि दिनानि च सप्त मांसभुक् ।। १५ ।। आवर्षात् प्रथमे दर्शने फलं प्रतिदिनं तु दिनशेषे । दिक्स्थानमूर्तिलग्नर्क्षशान्तदीप्तादिभिश्चोह्यम् ।। १६ ।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां खञ्जनदर्शनं नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४५ ।।

खञ्जन नामक पक्षीके प्रथम दर्शन से जिन फलोंका होना मुनि लोगों ने कहा है वह समस्त फल इस समय कहे जाते हैं ।।१।। स्थूल कंठके, ऊचे और काले गलेवाले खञ्जनको "भद्र" कहते हैं यह खञ्जन मङ्गलकारक है और मुखसे कंठतक काला हो तो इसका "संपूर्ण" नाम है। यह आशा का संपूर्ण करनेवाला खञ्जन होता है ।। २ ।। जिसके गलेमें काले बिन्दुके अंतपर सफेदी और कुसुम्भी रंग है उसको "रिक्त" कहते हैं, इसका फल निष्फल होता है, पीले रंग का खञ्जन "गोपीत" नामवाला है, इसका दर्शन क्लेशदायी है ।।३।। मधुर सुगन्धित फल और कुसुम युक्त वृक्ष, पवित्र जलाशय, हाथी, घोडे और सर्पों के मस्तक, महल, फुलवाडियें, अटारियें, गोठ, श्रेष्ठ समागम, यज्ञ, उत्सवगृह, राजा और द्विजातियों के निकट रहना, हस्तिशाला, अश्वशाला, छत्र, ध्वज और चामर, सुवर्ण, श्वेत वस्त्र, पद्म, उत्पल, पूजित और गोबर आदि से लिपे हुए स्थान, दहीके पात्र और धान्य के ढेरपर जो खञ्जन दिखाई दे तो लक्ष्मी की प्राप्ति होती है ।।४।।५।।६।। कीचड में खञ्जन बैठा हो तो स्वादिष्ट अन्न मिलता है, गोबर पर बैठा हो तो दुग्ध सम्पत्ति, हरी दूबपर बैठा हो तो वस्त्र की प्राप्ति और शकट पर स्थित हो तो देश का नाश होता है ।।७।। घर की छत्त पर जब खञ्जन बैठा हो तो धनका नाश होता है, छिद्रपर बैठा हो तो बंधन और अपवित्रस्थानमें दिखाई देनेसे रोग होता है, बकरी भेडादिके पलनेके स्थानपर बैठा हो तो शीघ्र प्रिय मनुष्यसे मिलाप हो ।।८।। भैंस, ऊंट, गधा, हड्डी, श्मशान, घरका कोना, शर्करा, पर्वत, प्राकार, भस्म और केशमें स्थित हो तो अशुभकारी और मरणभयदायी है ।।९।। दोनों पंखोंका फटकानेवाला खञ्जन अशुभकारी होता है, नदीमें जल पीता हुआ हो तो शुभकारी है । सूर्योदयके कालमें खञ्जनका दर्शन श्रेष्ठ है और अस्त समयमें वांछित फलकी प्राप्ति नहीं होती है ।।१०।। नीराजन हो जानेपर जिस दिशाके मुखसे सन्मुख गमन करता हुआ खञ्जन दिखाई दे और राजा उस दिशाकी ओर जाय तो शीघ्र ही उसके शत्रु उसके वशमें हो जाते हैं ।।११।। जिस स्थानमें खञ्जन मैथुन करता है वहां पर निधिकी प्राप्ति होती है, जहांपर खञ्जन वमन करे उस पृथ्वीके तले कांच रहता है, जहांपर विष्ठा त्याग करे वहां उसके नीचे कोयला रहता है । इस कोतुककी जाँच करनेके लिये पृथ्वीको खोदना चाहिये ।।१२।। मृतक, विकल अलग प्रकारका या रोगयुक्त खञ्जन पक्षी अपने शरीरके

अनुसार फल दिया करता है, आकाशमें उडता हुआ दिखाई देनेसे धनकारी और भाई बंधुसे मिलापका करनेवाला होता है ।।१३।। राजा भी शुभ देशमें शुभ खञ्जनको देखकर सुगन्धित फूल और धूपयुक्त शुभ वन्दन करनेके योग्य अर्घ्य पृथ्वीपर दे तो समस्त मङ्गलकी वृद्धि होवे ।।१४।। द्विज, गुरु, साधु और देवताओंके पूजनमें रत राजा अशुभ खञ्जन देखकर भी जो एक सप्ताहतक मांसका भोजन नहीं करते, उनको अशुभ फलकी प्राप्ति नहीं होती ।।१५।। खञ्जनके प्रथम दर्शनका फल एक वर्षमें होता है, परंतु जो इस समयके बीचमें फिर खञ्जनका दर्शन हो तो उसी दिन सूर्यास्त होनेतक उसका फल मिल जाता है परंतु पंडित लोग खञ्जनके देखनेके संबंधमें, समस्त फलाफल, स्थान, मूर्ति लग्न, नक्षत्र और शांति दीप्तादि दिशा आदि जानकर निर्णय करे ।।१६।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४५।।

अथ षट्चत्वारिंशोध्यायः

उत्पातलक्षणम्

यानत्रेरुत्पातान् गर्गः प्रोवाच तानहं वक्ष्ये । तेषां संक्षेपोऽयं प्रकृतेरन्यत्वमुत्पातः ।। १ ।। अपचारेण नराणामुपसर्गः पापसञ्चयाद्भवति । संसूचयन्ति दिव्यान्तरिक्षभौमास्तदुत्पाताः ।। २ ।। मनुजानामपचारादपरक्ता देवताः सृजन्त्येतान् । तत्प्रतिघाताय नृपःशान्तिं राष्ट्रे प्रयुञ्जीत ।। ३ ।। दिव्यं ग्रहर्क्षवैकृतमुल्कानिर्घातपवनपरिवेषाः । गन्धर्वपुरपुरन्दरचापादि यदान्तरिक्षं तत् ।। ४ ।। भौमं चरस्थिरभवं तच्छान्तिभिराहतं शममुपैति । नाभसमुपैति मृदुतां शाम्यति नो दिव्यमित्येके ।। ५ ।। दिव्यमपि शममुपैति प्रभूतकनकान्नगोमहीदानैः । रुद्रायतने भूमौ गोदोहात् कोटिहोमाच्च ।। ६ ।। आत्मसुतकोशवाहनपुरोहितेषु लोकेषु । पाकमुपयाति दैवं परिकल्पितमष्टधा नृपतेः ।।७।। अनिमित्तभङ्गचलनस्वेदाश्रुनिपातजल्पनाद्यानि । लिङ्गार्चायतनानां नाशाय नरेशदेशानाम् ।। ८ ।। दैवतयात्राशकटाक्षचक्रयुगकेतुभङ्गपतनानि । सम्पर्यासनसादनसङ्गाश्च न देशनृपशुभदाः ।।९।। ऋषिधर्मपितृब्रह्मप्रोद्भूतं वैकृतं द्विजातीनाम् । यद्रुद्रलोकपालोद्भवं पशूनामनिष्टं तत् ।। १० ।। गुरुसितशनैश्चरोत्थं पुरोधसां विष्णुजं च लोकानाम् । स्कन्दविशाखसमुत्थं माण्डलिकानां नरेन्द्राणाम् ।। ११ ।। वेदव्यासे मन्त्रिणि विनायके वैकृतं चमूनाथे । धातरि सविश्वकर्मणि लोकाभावाय निर्दिष्टम् ।। १२ ।। देवकुमारकुमारीवनिताप्रेष्येषु वैकृतं यत्स्यात् । तन्नरपतेः कुमारककुमारिकास्त्रीपरिजनानाम् ।। १३ ।। रक्षःपिशाचगुह्यकनागानामेतदेव निर्देश्यम् । मासैश्चाप्यष्टाभिः सर्वेषामेव फलपाकः ।। १४ ।। बुद्ध्वाः देवविकारं शुचिः पुरोधास्त्र्यहोषितः स्नातः । स्नानकुसुमानुलेपनवस्त्रैरभ्यर्चयेत् प्रतिमाम्

।। १५ ।। मधुपर्केण पुरोधा भक्ष्यैर्बलिभिश्च विधिवदुपतिष्ठेत् । स्थालीपाकं जुहयाद्विधिवन्मन्त्रैश्च तल्लिङ्गैः ।। १६ ।। इति विबुधविकारे शान्तयःसप्तरात्रं द्विजविबुधगणार्चा गीतनृत्योत्सवाश्च । विधिवदवनिपालैर्यैः प्रयुक्ता न तेषां भवति दुरितपाको दक्षिणाभिश्च रुद्धः ।।१७।। इति लिङ्गवैकृतम् । राष्ट्रे यस्यानग्निः प्रदीप्यते दीप्यते च नेन्धनवान् । मनुजेश्वरस्य पीडा तस्य सराष्ट्रस्य विज्ञेयाः ।।१८।। जलमांसार्द्रज्वलने नृपतिवधःप्रहरणे रणो रौद्रः । सैन्यग्रामपुरेषु च नाशो वह्नेर्भयं कुरुते ।। १९ ।। प्रासादभवनतोरणकेत्वादिष्वनलेन दग्धेषु । तडिता वा षण्मासात् परचक्रस्यागमो नियमात् ।।२०।। धूमोऽनग्निसमुत्थो रजस्तमश्चाह्निजं महाभयदम् । व्यभ्रे निश्युडुनाशो दर्शनमपि चाह्नि दोषकरम् ।। २१ ।। नगर-चतुष्पादाण्डजमनुजानां भयङ्करं ज्वलनमाहुः । धूमाग्निविस्फुलिङ्गैः शय्याम्बर-केशगैर्मृत्युः ।।२२।। आयुधज्वलनसर्पणस्वनाः कोशनिर्गमनवेपनानि वा । वैकृतानि यदि वायुधेऽपराण्याशु रौद्ररणसंकुलं वदेत् ।। २३ ।। मन्त्रैर्वाह्नैः क्षीरवृक्षात्समि-द्भिर्होतव्योऽग्निः सर्षपैः सर्पिषा च । अग्न्यादीनां वैकृते शान्तिरेवं देयं चास्मिन् काञ्चनं ब्राह्मणेभ्यः ।। २४ ।। इत्यग्निवैकृतम् । शाखाभङ्गेऽकस्माद्वृक्षाणां निर्दि-शेद्रणोद्योगम् । हसने देशभ्रंशं रुदिते च व्याधिबाहुल्यम् ।।२५।। राष्ट्रविभेदस्त्वनृतौ बालवधोऽतीव कुसुमिते बाले । वृक्षात् क्षीरस्रावे सर्वद्रव्यक्षयो भवति ।। २६ ।। मद्ये वाहननाशः संग्रामः शोणिते मधुनि रोगः । स्नेहे दुर्भिक्षभयं महद्भयं निःसृते सलिले ।। २७ ।। शुष्कविरोहे वीर्यान्नसंक्षयः शोषणे च विरुजानाम् । पतिताना-मुत्थाने स्वयं भयं दैवजनितं च ।। २८ ।। पूजितवृक्षे ह्यनृतौ कुसुमफलं नृप-वधाय निर्दिष्टम् । धूमस्तस्मिन् ज्वालाथवा भवेन्नृपवधायैव ।। २९ ।। सर्पत्सु तरुषु जल्पत्सु वापि जनसंक्षयो विनिर्दिष्टः । वृक्षाणां वैकृत्ये दशभिर्मासैः फल-विपाकः ।। ३० ।। स्रग्गन्धधूपाम्बरपूजितस्य च्छत्रं निधायोपरिपादपस्य । कृत्वा शिवं रुद्रजपोऽत्र कार्यो रुद्रेभ्य इत्यत्र षडङ्गहोमः ।। ३१ ।। पायसेन मधुना च भोजयेद् ब्राह्मणान् घृतयुतेन भूपतिः । मेदिनी निगदितात्र दक्षिणा वैकृते तरुकृते महर्षिभिः ।। ३२ ।। इति वृक्षवैकृतम् । नालेऽब्जयवादीनामेकस्मिन् द्वित्रिसम्भवो मरणम् । कथयति तदधिपतीनां यमलं जातं कुसुमफलम् ।। ३३ ।। अतिवृद्धिः सस्यानां नानाफल-कुसुमभवो वृक्षे भवति हि यद्येकस्मिन् परचक्रागमो नियमात् ।।३४।। अर्धेन यदा तैलं भवति तिलानामतैलता वा स्यात् । अन्नस्य च वैरस्यं तदा च विद्याद्भयं सुमहत् ।।३५।। विकृतकुसुमं फलं वा ग्रामादथवा पुराद्बहिः कार्यम् । सौम्योऽत्र चरुः कार्यो निर्वाप्यो वा पशुः शान्त्यै ।। ३६ ।। सस्ये च दृष्ट्वा विकृतिं प्रदेयं तत् क्षेत्रमेव प्रथमं द्विजेभ्यः । तस्यैव मध्ये चरुमत्र भौमं कृत्वा न दोषान् समुपैति

तज्जान् ॥ ३७ ॥ इति सस्यवैकृतम् । दुर्भिक्षमनावृष्टयामतिवृष्टयां क्षुद्भयं सपरचक्रम् । रोगो ह्यनृतुभवायां नृपवधोऽनभ्रजातायाम् ॥ ३८ ॥ शीतोष्णविपर्यासे नो सम्यगृतुषु च सम्प्रवृत्तेषु । षण्मासाद्राष्ट्रभयं रोगभयं दैवजनितं च ॥ ३९ ॥ अन्यर्तौ सप्ताहं प्रबन्धवर्षे प्रधाननृपमरणम् । रक्ते शस्त्रोद्योगो मांसास्थिवसादिभिर्मरकः ॥४०॥ धान्यहिरण्यत्वक्फलकुसुमाद्यैर्वर्षितैर्भयं विद्यात् । अङ्गारपांशुवर्षे विनाशमायाति तन्नगरम् ॥ ४१ ॥ उपला विना जलधरैर्विकृता वा प्राणिनो यदा वृष्टाः । छिद्रं वाप्यतिवृष्टौ सस्यानामीतिसञ्जननम् ॥ ४२ ॥ क्षीरघृतक्षौद्राणां दध्नो रुधिरोष्णवारिणां वर्षे । देशविनाशो ज्ञेयोऽसृग्वर्षे चापि नृपयुद्धम् ॥ ४३ ॥ यद्यमलेऽर्कच्छाया न दृश्यते दृश्यते प्रतीपा वा । देशस्य तदा सुमहद्भयमायातं विनिर्देश्यम् ॥ ४४ ॥ व्यभ्रे नभसीन्द्रधनुर्दिवा यदा दृश्यतेऽथवा रात्रौ । प्राच्यामपरस्यां वा तदा भवेत् क्षुद्भयं सुमहत् ॥ ४५ ॥ सूर्येन्दुपर्जन्यसमीरणानां योगः स्मृतो वृष्टिविकारकाले । धान्यान्नगोकाञ्चनदक्षिणाश्च देयास्ततः शान्तिमुपैति पापम् ॥ ४६ ॥ इति वृष्टिवैकृतम् । अपसर्पणं नदीनां नगरादचिरेण शून्यतां कुरुते । शोषश्चाशोष्याणामन्येषां वा ह्रदादीनाम् ॥ ४७ ॥ स्नेहासृङ्मांसवहाः संकुलकलुषाः प्रतीपगाश्चापि । परचक्रस्यागमनं नद्यः कथयन्ति षण्मासात् ॥ ४८ ॥ ज्वालाधूमक्वाथा रुदितोत्क्रुष्टानि चैव कूपानाम् । गीतप्रजल्पितानि च जनमरकाय प्रदिष्टानि ॥ ४९ ॥ तोयोत्पत्तिरखाते गन्धरसविपर्यये च तोयानाम् । सलिलाशयविकृतौ वा महद्भयं तत्र शान्तिरियम् ॥ ५० ॥ सलिलविकारे कुर्यात् पूजां वरुणस्य वारुणैर्मन्त्रैः । तैरेव च जपहोमं शममेवं पापमुपयाति ॥ ५१ ॥ इति जलवैकृतम् । प्रसवविकारे स्त्रीणां द्वित्रिचतुःप्रभृतिसम्प्रसूतौ वा । हीनातिरिक्तकाले च देशकुलसंक्षयो भवति ॥ ५२ ॥ वडवोष्ट्रमहिषगोहस्तिनीषु यमलोद्भवे मरणमेषाम् । षण्मासात्सूतिफलं शान्तौ श्लोकौ च गर्गोक्तौ ॥ ५३ ॥ नार्यः परस्य विषये त्यक्तव्यास्ता हितार्थिना । तर्पयेच्च द्विजान् कामः शांतिं चैवात्र कारयेत् ॥ ५४ ॥ चतुष्पदाः स्वयूथेभ्यस्त्यक्तव्याः परभूमिषु । नगरं स्वामिनं यूथमन्यथा हि विनाशयेत् ॥ ५५ ॥ इति प्रसववैकृतम् । परयोनावभिगमनं भवति तिरश्चामसाधु धेनूनाम् । उक्षाणौ वान्योऽन्यं पिबति श्वा वा सुरभिपुत्रम् ॥ ५६ ॥ मासत्रयेण विद्यात् तस्मिन्निःसंशयं परागमनम् । तत्प्रतिघातायैतो श्लोकौ गर्गेण निर्दिष्टौ ॥ ५७ ॥ त्यागो विवासनं दानं तत्तस्याशु शुभं भवेत् । तर्पयेद्ब्राह्मणांश्चात्र जपहोमांश्च कारयेत् ॥ ५८ ॥ स्थालीपाकेन धातारं पशुना च पुरोहितः । प्राजापत्येन मन्त्रेण यजेद्बह्वन्नदक्षिणाम् ॥ ५९ ॥ इति चतुष्पदवैकृतम् । यानं वाहवियुक्तं यदि गच्छेन्न व्रजेच्च वाहयुतम् । राष्ट्रभयं भवति तदा चक्राणां सादभङ्गं च ॥६०॥ अनभिहततूर्यनादः

शब्दो वा ताडितेषु यदि न स्यात् । व्युत्पत्तौ वा तेषां परागमो नृपतिमरणं वा ।। ६१ ।। गीतरवतूर्यनादा नभसि यदा वा चरस्थिरान्यत्वम् । मृत्युस्तदा गदा वा विस्वरतूर्ये पराभिभवः ।। ६२ ।। गोलांगूलयोः सङ्गे दर्वीशूर्पाद्युपस्करविकारे । क्रोष्टुकनादे च तथा शस्त्रभयं मुनिवचश्चेदम् ।। ६३ ।। वायव्ययेष्वेषु नृपतिर्वायुं सक्तुभिरर्चयेत् । आ वायोरिति पञ्चर्चो जाप्याश्च प्रयतैर्द्विजैः ।। ६४ ।। ब्राह्मणान् परमान्नेन दक्षिणाभिश्च तर्पयेत् । बह्वन्नदक्षिणा होमाः कर्तव्याश्च प्रयत्नतः ।। ६५ ।। इति वायव्यवैकृतम् । पुरपक्षिणो वनचरा वन्या वा निर्भया विशन्ति पुरम् । नक्तं वा दिवसचराः क्षपाचरा वा चरन्त्यहनि ।। ६६ ।। सन्ध्याद्वयेऽपि मण्डलमाबध्नन्तो मृगा विहङ्गा वा । दीप्तायां दिश्यथवा क्रोशन्तः संहता भयदा ।। ६७ ।। श्वानः प्ररुदन्त इव द्वारे वसन्ति जम्बुका दीप्ताः । प्रविशेन्नरेंद्र भवने कपोतकःकौशिको यदि वा ।।६८।। कुक्कुटरुतं प्रदोषे हेमन्तादौ च कोकिलालापाः । प्रतिलोममण्डलचराः श्वेनाद्याश्चाम्बरे भयदाः ।। ६९ ।। गृहचैत्यतोरणेषु द्वारेषु च पक्षिसंघसम्पाताः । मधुवल्मीकाम्भोरुहसमुद्भवाश्चापि नाशाय ।।७०।। श्वभिरस्थिशवावयवप्रवेशनं मन्दिरेषु मरकाय । पशुशस्त्रव्याहारे नृपमृत्युर्मुनिवचश्चेदम् ।। ७१ ।। मृगपक्षिविकारेषु कुर्याद्धोमान् सदक्षिणान् । देवाः कपोत इति च जप्तव्याः पञ्चभिर्द्विजैः ।।७२।। सुदेवा इति चैकेन देया गावश्च दक्षिणा । जपेच्छाकुनसूक्तं वा मनोवेदशिरांसि च ।। ७३ ।। इति मृगपक्ष्यादिवैकृतम् । शक्रध्वजेन्द्रकीलस्तम्भद्वारप्रतापभङ्गेषु । तद्वत्कपाटतोरणकेतूनां नरपतेर्मरणम् ।। ७४ ।। सन्ध्याद्वयस्य दीप्तिर्धूमोत्पत्तिश्च काननेऽनग्नौ । छिद्राभावे भूमेर्दरणं कम्पश्च भयकारी ।। ७५ ।। पाषण्डानां नास्तिकानां च भवतः साध्वाचारप्रोज्झितः क्रोधशीलः । ईर्ष्युः क्रूरो विग्रहावततचेता यस्मिन् राजा तस्य देशस्य नाशः ।।७६।। प्रहर हर छिन्दि भिन्धीत्यायुधकाष्ठाश्मपाणयो बालाः । निगदन्तः प्रहरन्ते तत्रापि भयं भवत्याशु ।। ७७ ।। अङ्गारगैरिकाद्यैर्विकृतेप्रताभिलेखनं यस्मिन् । नायकचित्रितमथवा क्षये क्षयं याति न चिरेण ।। ७८ ।। लूतापटाङ्गशबलं न सन्ध्ययोः पूजितं कलहयुवतम् । नित्योच्छिष्टस्त्रीकं च यद्गृहं तत् क्षयं याति ।। ७९ ।। दृष्टेषु यातुधानेषु निर्दिशेन्मरकमाशु सम्प्राप्तम् । प्रतिघातायैतेषां गर्गः शान्ति चकारेमाम् ।। ८० ।। महाशान्त्योऽथ बलयो भोज्यानि सुमहान्ति च । कारयेत महेन्द्रं च माहेन्द्रीभिः समर्चयेत् ।। ८१ ।। इति शक्रध्वजेन्द्रकीलादिवैकृतम् । नरपतिदेशविनाशे केतोरुदयेऽथवा ग्रहेऽर्केन्द्वोः । उत्पातानां प्रभवःस्वर्तुभवश्चाप्यदोषाय ।। ८२ ।। ये च न दोषान् जनयन्त्युत्पातास्तानृतुस्वभावकृतान् । ऋषिपुत्रकृतैः श्लोकैर्विद्यादेतैः समासोक्तः ।। ८३ ।। वज्राशनिमहीकम्पसन्ध्यानिर्घातनिःस्वनाः । परिवेषरजोधूमरक्तार्कास्त-

मनोदयाः ।। ८४ ।। द्रुमेभ्योऽन्नरसस्नेहबहुपुष्पफलोद्गमाः । गोपक्षिमदवृद्धिश्च शिवाय मधुमाधवे ।। ८५ ।। तारोल्कापातकलुषं कपिलार्केन्दुमण्डलम् । अनग्निज्वलनस्फोटधूमरेण्वनिलाहतम् ।। ८६ ।। रक्तपद्मारुणं सान्ध्यं नभःक्षुब्धार्णवोपमम् । सरितांचाम्बु संशोषं दृष्ट्वा ग्रीष्मे शुभं वदेत् : ।।८७।। शक्रायुधपरिवेषविद्युच्छुष्कविरोहणम् । कम्पोद्वर्तनवैकृत्यं रसनं दरणं क्षितेः ।। ८८ ।। सरोनद्युदपानानां वृद्धचर्ध्वतरणप्लवाः सरणं चाद्रिगेहानां वर्षासु न भयावहम्।।८९।। दिव्यस्त्रीभूतगन्धर्वविमानाद्भुतदर्शनम् । ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनं च दिवाम्बरे ।। ९० ।। गीतवादित्रनिर्घोषा वनपर्वतसानुषु । सस्यवृद्धिरपां हानिरपापाः शरदि स्मृताः ।। ९१ ।। शीतानिलतुषारत्वं नर्दनं मृगपक्षिणाम् । रक्षोयक्षादिसत्वानां दर्शनं वागमानुषी ।। ९२ ।। दिशो धूमान्धकारा च सनभोवनपर्वताः । उच्चः सूर्योदयास्तौ च हेमन्ते शोभनाः स्मृताः ।। ९३ ।। हिमपातानिलोत्पाता विरूपाद्भुतदर्शनम् । कृष्णाञ्जनाभमाकाशं तारोल्कापातपिञ्जरम् ।। ९४ । चित्रगर्भोद्भवाः स्त्रीषु गोऽजाश्वमृगपक्षिषु । पत्रांकुरलतानां च विकाराः शिशिरे शुभाः ।। ९५ ।। ऋतुस्वभावजा ह्येते दृष्टाः स्वर्तौ शुभप्रदाः । ऋतोरन्यत्र चोत्पाता दृष्टास्ते भृशदारुणाः ।। ९६ ।। उन्मत्तानां गीतगाथाः शिशूनां भाषितं च यत् । स्त्रियो यच्च प्रभाषन्ते तस्य नास्ति व्यतिक्रमः ।। ९७ ।। पूर्वं चरति देवेषु पश्चाद्गच्छति मानुषान् । नाचोदिता वाग्वदति सत्या ह्येषा सरस्वती ।। ९८ ।। उत्पातान् गणितविवर्जितोऽपि बुद्धा विख्यातो भवन्ति नरेन्द्रवल्लभश्च । एतत्तन्मुनिवचनं रहस्यमुक्तं यज्ज्ञात्वा भवति नरस्त्रिकालदर्शी ।। ९९ ।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामुत्पातलक्षणं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ।। ४६ ।।

महर्षि गर्गजीने जिन उत्पातोंका वर्णन अत्रिजीसे किया है, इस समय उन्हीं उत्पातोंका, वर्णन यहांपर किया जाता है. स्वभावसे विपरीत होना ही उत्पात है. यही इसका संक्षेप अर्थ है ।।१।। मनुष्योंके अहिताचरण करनेसे जो पाप इकट्ठा होता है, उससे ही उपद्रव होता है। दिव्य अंतरिक्ष और समस्त भौम उत्पात उनकी भली भांतिसे सूचना करते हैं ।।२।। मनुष्योंके अव्यवहार करनेसे देवतालोग अप्रसन्न होकर इन उत्पातोंको उत्पन्न किया करते हैं उन उत्पातोंके दूर करनेके लिये राजाको अपने राज्यमें शांतिका कराना उचित है ।।३।। यहाँ नक्षत्रोंका विकार, उल्का, निर्घात, पवन और घेरा दिव्य उत्पात हैं, गधर्व पुरक इन्द्रधनुषादि अंतरिक्ष उत्पात कहे जाते है ।।४।। चर (चलायमान) व स्थिर (अचल) आदि पदार्थोंसे उत्पन्न हुए उत्पात भौम नाम से ख्यात है यह उत्पात शान्तिसे टकराये जाकर दूर हो जाते हैं. कोई कहते हैं कि आंतरिक्ष उत्पात शांति कर देनेसे हलके हो जाते हैं और दिव्य उत्पात कभी दूर नहीं होते ।।५।। परंतु शिवालयकी

भूमिमें गोदोहन और कोटि होम करनेसे, बहुतसा सुवर्ण, अन्न, गौ और पृथ्वीका दान करनेसे दिव्य उत्पात भी शांत हो जातें हैं ॥६॥ राजा अपनी देह, पुत्र, खजाना, सवारियें, पुर, स्त्री, पुरोहित और सब लोकमें आठ प्रकारसे कहे हुए दैव उत्पात पाकको प्राप्त होते हैं ॥७॥ शिवलिंग, देवताकी प्रतिमा या पवित्र गृहका अनिमित्त भंग होना, चलायमान होना, पसीना आना, आंसू गिरना और जल्पना आदि हो तो राजा और देशका नाश हो जाता है ॥८॥ जो देवतालोगोंकी यात्राके समय शकट, गाडीकी धुरी, पहिया, जुआ, इन्द्रध्वज टूट जाय या गिर पडे, उलट जाय, चिपट जाय, नाशको प्राप्त हो जाय या किसीसे मेल खा जाय तो देश और राजाका कल्याण नहीं होता ॥९॥ ऋषि, धर्मपिता और ब्रह्मासे उत्पन्न हुई विकृति द्विजाति, रुद्र व लोकपालोंसे उत्पन्न हुआ विकार पशुओंको अनिष्ट करनेवाला है ॥१०॥ बृहस्पति, शुक्र और शनिग्रहसे उत्पन्न हुए उत्पात पुरोहितका, विष्णुजीसे उत्पन्न हुए उत्पान सब लोकोंका स्कन्द और विशाखसे उत्पन्न हुए उत्पात मंडलीक राजाओंका अनभल करते हैं ॥११॥ वेदव्याससे उत्पन्न हुए उत्पात मंत्री, गणेशजीसे उत्पन्न हुए उत्पात सेनापति, विश्वकर्मा और धातासे उत्पन्न हुए उत्पात प्रजाका नाश करते हैं ॥१२॥ देवकुमार, देवकुमारी, देववनिता और देवदूतोंसे जो विकार होतें हैं सो राजकुमार, कुमारिका, स्त्री और परिजनोंके ऊपर फलते हैं और यक्ष, पिशाच गुह्यक व नागोंके उत्पात अनिष्टकारक होते हैं. आठ मासमें इन सब उत्पातोंका फल पकता है ऐसा कहा है ॥१३॥१४॥ पुरोहित देवविकारको जानकर तीन रात तक उपवास करके न्हाय धोय पवित्र होकर स्नानीय, फूल, अनुलेपन और वस्त्रसे प्रतिमाकी पूजा करे, मधुपर्क, भक्ष्य और पूजाके उपहारसे विविवत् पूजा करे और तिस लिंगके मंत्रसे विधिविधानपूर्वक स्थालीपाक और होम करे ॥१५॥१६॥ जिन राजाओं करके इस देवविकारमें ब्राह्मण और देवताओंकी पूजा, गीत, नाचका उत्सव और दक्षिणायुक्त शांति सात रात्रितक होती है उनके लिये इस पापका पाक रुक जाता है ॥ १७ ॥ इति लिंगवैकृत। जिस राज्यमें विना ही अग्निके द्रव्य जल जाय और इंधनयुक्त आग नहीं जले उस राज्यके राजाको पीडा होगी यह जानना चाहिये ॥१८॥ जल, मांस और गीले द्रव्यके जलनेसे राजाओंका वध होता है, शस्त्र चिह्नसे प्रचण्ड युद्ध और सेना ग्राम व पुरोंमें अग्निके नाशसे भय होता है ॥१९॥ प्रासाद, भवन, तोरण, केतु आदि अनल या बिजलीसे दग्ध हो जानेपर नियमके वशसे छ. मासमें वहांपर दूसरे राजाका राज्य होता है ॥ २० ॥ विना आगके धूमका निकलना, दिनमें धूरिका बरसना और अंधकार महाभयदायी होता है। रात्रिके समय मेघहीन आकाशमें नक्षत्रका नाश या दिनमें नक्षत्रका दर्शन दोषकारी है ॥ २१ ॥ जो अग्नि भयंकर हो तो नगर, चौपाये, अंडज और मनुष्योंके लिये भयंकर कहा जाता है सेज, अम्बर और बालोंमें गया हुआ धूम व अग्निकी चिनगारियोंसे मृत्यु ही प्रकट होती है ॥२२॥ सब अस्त्र शस्त्रोंका जलना, उनमेंसे शब्दका होना या म्यानसे निकल आना, कांपना अथवा जो और विकार शस्त्रोंमें देखे जायँ तो शीघ्र ही राज्यमें प्रचंड रण होता है ॥२३॥ दुधारे वृक्षोंसे उत्पन्न हुई समिध, सरसों और घृतसे वह्निमंत्रके द्वारा होम करे और इसमें ब्राह्मणोंको सुवर्णका दान करे। बस इससे ही अग्निविकृतिकी शांति हो जाती है ॥२४॥ इति अग्निवैकृत। अचानक वृक्षोंकी शाखा टूट जानेसे रणकी तैयारियाँ होती हैं ॥ वृक्षोंके हँसनेसे देशका ध्वंस और रुदन करनेसे रोगकी

अधिकाई होती है ।।२५।। अनऋतुमें फूलादिके फूलनेसे राज्यमें भेद पड जाता है, छोटे वृक्षोंके अत्यन्त फूलनेसे बालकका वध और वृक्षोंसे दूध निकलनेपर सब द्रव्योंका क्षय हो जाता है ।।२६।। वृक्षसे मद्य निकले तो वाहनोंका नाश, रुधिरके निकलनेसे संग्राम, शहदके निकलनेसे रोग, तेलके निकलनेसे दुर्भिक्षका भय और जल निकलनेसे महाभय होता है ।।२७।। अंकुर सूख जानेसे वीर्य और अन्नका भली भांतिसे क्षय होता है। रोगहीन वृक्ष विना कारणके सूख जायँ तो भी सेनाका और अन्नका क्षय होता है । आप ही वृक्ष खडे होकर उठ बैठे तो देवका भय होता है ।।२८।। प्रसिद्ध वृक्षमें कुऋतुमें फूलका आना राजाके वधका कारण कहा जाता है और इसमें ज्वाला (शिखा) अथवा धुएंके रहनेसे भी राजाके वधका कारण होगा ।।२९।। वृक्ष चलने लगें या कुछ बोलनेकेसा शब्द करने लगें तो भली भांतिसे मनुष्योंका क्षय होता है वृक्षोंके विकारका फल दश मासमें पकता है ।।३०।। माला, गंध, धूप और वस्त्र द्वारा वृक्षकी पूजा करके उसके ऊपर छत्र धारण करे। शिव बनाकर रुद्रका जप और "रुद्रेभ्य." इत्यादि मंत्रसे षडङ्ग होम करे ।।३१।। वृक्षोंमें विकार प्राप्त होनेपर राजाको उचित है कि घृतयुक्त पायस (खीर) और मधुसे ब्राह्मणका भोजन करावे और दक्षिणामें भूमिका दान करे. इस प्रकारकी विधि महर्षियोंने कही है ।।३२।। इति वृक्षवैकृत। कमल और जो आदिके एक नालमें दो या तीन बालकी उत्पत्ति या दो फूल या दो फलोंके उत्पन्न होनेसे उनके स्वामीका मरण प्रगट होता है ।।३३।। धान्यकी अतिवृद्धि हो और एक वृक्षमें अनेक प्रकारके फल फूल लगें तो नियमके वशसे निश्चय ही शत्रुकी सेना उस देशमें आवेगी ।।३४।। जब तिलवे आधे भागमें तेल हो या तिलमेंसे तेल न निकले तो अन्नकी विरसतासे बडा भारी भारी भय आ पडता है ।।३५।। विकारको प्राप्त हुए फूल या फलको गाम या पुरके वाहिर कर देना उचित है. इसकी शान्तिमें साम्य नामक चरु करे और पशु अर्थात् बकरा-भी शांतिके लिये देवे ।।३६।। जो खेती में विकार दिखाई दे तो प्रथम वह खेत ही ब्राह्मणोंको दान करे फिर उसमें भूमिदेवताका चरु करनेसे उससे उत्पन्न हुए दोष फिर नहीं हो सकते ।।३७।। इति सस्यवैकृत। अनावृष्टिसे दुर्भिक्ष, अतिवृष्टिसे पराई सेनाका आना और क्षुधाका भय, अनऋतुमें वर्षाके होनेसे रोग और विना मेघके वर्षनेसे राजाका वध होता है ।।३८।। शीत और ग्रीष्ममें अदल बदल होनेसे, सब ऋतुओंको वर्त्ताव भली भांति न होनेसे छः मासतक दैवभय, राज्यभय और रोगभय हुआ करता है ।।३९।। अनऋतुमें बराबर एक सप्ताहतक वर्षा होनेसे मुख्य राजाकी मृत्यु होती है, रुधिरकी वर्षा होनेसे शस्त्रका उद्योग और मांस, हड्डी, चर्बी आदिकी वर्षा होनेसे मरी पडती है ।।४०।। धान्य, सुवर्ण, छाल, फल और फूलादिकी वर्षा होनेसे भय होता है. जिस नगरमें कोयले और धूरिकी वर्षा हो उस नगरका नाश हो जाता है ।।४१।। बिना बादलके ओलोंका गिरना, गधे, ऊंट, बिलाव, गीदड आदि प्राणियोंका विकारयुक्त दिखाई देना अथवा अतिवृष्टिमें छिद्र (कहीं वर्षा हो कहीं न हो) ऐसा हो तो खेतीके लिये टीडी आदि भय उत्पन्न होते हैं ।।४२।। दूध, घी, शहद या गरम जलके वर्षनेसे देशका नाश और रुधिरकी वर्षा होनेसे राजाओंमें युद्ध हुआ करता है ।।४३।। जो निर्मल सूर्यमें छाया दिखाई न दे अथवा विपरीत छाया दिखाई दे तो कहना चाहिये कि देशमें महाभय होगा ।।४०।। जब दिन या रात्रिके समय मेघहीन आकाशमें पूर्व या पश्चिम दिशामें इन्द्रधनुष

दिखाई दे तो भारी दुर्भिक्ष पडता है ॥४५॥ वृष्टि विकारके कालमें सूर्य, चंद्रमा और पवनका यज्ञ करे उस समय धान्य, अन्न, गौ और सुवर्णकी दक्षिणा देनेसे पापकी शांति होगी ॥४६॥ इति वृष्टिवैकृत। जो नदियाँ नगरके नीचे बहतीं हों और वह नगरोंको छोडकर सरक जायँ या नगरके न सूखनेवाले स्थान कुंड इत्यादि सूख जायँ तो शीघ्र ही नगर सूना हो जाता है ॥४७॥ जो तेल, रुधिर या मांस नदियोंमें बहता हो, जल मलीन हो जाय, या उलटी बहने लगे तो छः मासके बीचमें शत्रुकी सेना नगर पर चढ आती है ॥४८॥ कुएँमें ज्वाला या धूप दिखाई दे, जल खौलने लगे, रोनेका शब्द गीत बकवाद सुनाई आवे तो इन बातोंका होना मरीका कारण है ॥४९॥ विना खोदे हुए जलका निकलना, जलकी गंध और रसका अदल बदल हो जाना, जलाशयका विकारको प्राप्त हो जाना बडे भारी भयका कारण है उसकी शांति इस प्रकारसे करनी चाहिये, जलविकारमें वारुणमंत्रसे वरुणजीकी पूजा और इसी मंत्रसे जप व होम करना चाहिये, इस प्रकारसे इस पापकी शांति होगी ॥५०॥ ५१॥ इति जलवैकृत। जो स्त्रियोंमें प्रसवविकार हो या उनके एक साथ दो तीन या चार बच्चे पैदा हों, प्रसवसमयके पीछे या पहले प्रसव हो तो देश और कुलका भली भांतिसे क्षय होता है ॥५२॥ घोडी, ऊंटनी, भैंस, गाय और हथिनीके एक साथ दो बच्चे पैदा हों तो इनकी ही मृत्यु होती है प्रसववैकृतका फल छः मासके पीछे होता है, इसकी शांतिके लिये गर्गजीने दो श्लोक कहे हैं, जिनके प्रसवमें विकार हुआ हो हितार्थी पुरुषको चाहिये कि इन स्त्रियोंको दूर देशमें छोड आवें। ब्राह्मणोंको उनकी इच्छाके अनुसार तृप्त करे और इसमें इस प्रकारसे शांति करावे, चौपायोंको अपने थलसे अलग करके दूसरेकी भूमिमें छोड आवे नहीं तो नगरस्वामी और अपने झुंडका नाश हो जाता है ॥५३॥५४॥५५॥ इति प्रसववैकृत। एक जातिका पशु दूसरी जातिके पशुसे मैथुन करे तो अमंगल होता है या दो बैल जो परस्पर थन पियें अथवा कुत्ता गायके बछड़ेका थन पियें तो अमंगल होता है ॥५६॥ ऐसा हो तो तीन मासमें निःसंदेह शत्रुकी सेना आती है, इसके रोकके लिये गर्गजीने यह दो शांतिकारी श्लोक कहे हैं–"उनको छोड देने, निकाल देने या दानकर देनेसे शीघ्र शुभ होता है, इस कारण ब्राह्मणोंको तृप्त करे और जप होम करावे। पुरोहितको उचित है कि प्रजापत्यमंत्रसे स्थालीपाक और पशुओंसे धाताका यजन करे और बहुतसे अन्नकी दक्षिणा दे" ॥५७॥५८॥५९॥ इति चतुष्पादवैकृत। रथ, बहली आदि सवारी जो विना ही घोडे बैलादिके जुते हुए चलने लगें या बैलादिसे जुती हुई सवारी गमन न करे और पहिया पृथ्वीमें गड जाय तो राज्यको भय होता है ॥६०॥ विना बजावे तुर्रहीका शब्द हो या बजाने से तुर्रही बजे नहीं या उसमें व्युत्पत्ति अर्थात् अनेक प्रकारके शब्द हों तों शत्रुकी सेनाका आगमन या राजाका मरण होता है ॥६१॥ जब आकाशमें प्रतिध्वनि हो, तुर्रही बजे या कर्कादि राशिका विपरीत घटन हो तो रोग या मृत्यु होती है। तुर्रहीका शब्द स्वरहीन हो तो शत्रुकी पराजय होती है ॥६२॥ बैल और हलका अचानक जुड जाना, दर्वी (चमचा) आदि घरकी सामग्रीमें किसी प्रकारका विकार आ जाना और शृंगालके शब्दका होना शस्त्रभयका कारण है। इसकी शांतिका होना मुनिजीने इस प्रकार कहा है–"इस वायव्य विकारमें राजा सत्तूसे पवनका पूजा कर और ब्राह्मणोंके द्वारा "आ वायोः" इस ऋक्पंचकका जप करावे, परमान्न और दक्षिणा देकर ब्राह्मणोंको

संतुष्ट कर, यत्नके सहित बहुतसा अन्न दक्षिणामें दे और होम करावे" ।।६३।।६४।।६५।। इति वायव्यवैकृत । घरके पाले हुए पक्षिगण वनचारी हो जांय या बनैले पक्षी निर्भय होकर पुरमें प्रवेश कर आवें, दिनके चरनेवाले रात्रिमें अथवा रात्रिके चरनेवाले दिनमें विचरण करें, दोनों संध्याओंमें मृग और पक्षी मंडल बांध २ कर बैठें, अथवा वह इकट्ठे हो सूर्यकी ओरको मुख करके चिल्लावें तो भय होता है ।।६६।।६७।। जो कुत्ते रोते २ द्वार पर डटे रहें, सूर्यकी ओरको मुख करके गीदड रोवें, जो कबूतर या उल्लू राजभवनमें प्रवेश करें, अथवा प्रदोषके समयमें मुरगा शब्द करे, हेमन्तादि ऋतुओंमें कोयल बोले, आकाशमें बाज आदि पक्षियोंका प्रतिलोम मंडल विचरण करे तो भयदायी होता है ।।६८।।६९।। घरमें, चैत्यमें, तोरण और द्वारपर पक्षियोंका झुंड गिरे और मधुका छत्ता वमई व कमलसे उत्पन्न हुए पदार्थ गिरें तो ऊपर कहे हुए स्थानोंका नाश होता है ।।७०।। जो हड्डीको कुत्ते घरमें ले आवें या मृतक अंगका कोई भाग ले आवें तो मरीका कारण है. पशु और शस्त्र मनुष्यकी भांति बोलें तो राजाकी मृत्यु होती है. इन बातोंकी शांतिके लिये मुनिजीने यह वचन कहा है-"मृगपक्षियोंके विकारमें दक्षिणाके साथ होम करे, पांच ब्राह्मणोंसे "देवाः कपोत" इस मंत्रका जप कराना चाहिये, और "सुदेवाः" मंत्रसे दक्षिणा देकर शाकुनसूक्तका जप करना उचित है अथवा "मनोवेदशिरांसि" यह मंत्र जपे ।।७१।।७२।।७३।। इति मृगपक्षिविकार । इन्द्रध्वज, इन्द्रकील, थंभ, द्वार, कपाट, तोरण केतु टूट जाय या गिर जाय तो राजाका मरण होता है ।।७४।। दोनों संध्याके समय तेजका होना अग्निरहित वनमें धूमका उत्पन्न होना, विना छेदके पृथ्वीका फट जाना और कांपना भयदायी होता है ।।७५।। जिस देशका राजा पाखण्डी और नास्तिकोंका भक्त होता है, साधुओंकेसे आचरण नहीं करता, क्रुद्धस्वभाव, ईर्षा करनेवाला, क्रूर विग्रहमें चित्तको लगानेवाला होता है उस देशका नाश हो जाता है ।।७६।। जब शस्त्र, काठ, पत्थर हाथमें लेकर बालकगण "मारो, छीन लो, काटो, तोड डालो" ऐसा कहते २ एक दूसरेको मारते हैं तब शीघ्र ही भय होता है ।।७७।। कोयले या गेरूसे जिस घरकी भीतोंपर मृतकोंके चित्र बनाये जायँ, अथवा विनाशके समय उसके स्वामीकी तसवीर बनाई जाय, वहाँ शीघ्र ही भय होता है ।।७८।। जिस घरमें मकरियोंके जाले पुरे रहें, दोनों संध्याओंमें जिसकी पूजा न हो, जहां नित्य क्लेश होता रहे और स्त्रियें जहां नित्य अपवित्र रहें वहां भी भय होता है ।।७९।। राक्षसोंका दिखाई देना शीघ्र चारों ओरसे मरीके होनेकी सूचना देता है, इसको रोकनेके लिये गर्गजीने इस प्रकार शांति कही है-"अच्छे २ भोजन योग्य पदार्थ और बलि देनेसे महाशांति होती है और महेन्द्रके समस्त मंत्रोंसे महेन्द्रको भली भांतिसे पूजन करना चाहिये" ।।८०।।८१।। इति शक्रध्वजेन्द्रकीलादिवैकृत । राजा और देशके विनाशमें, केतुके उदयमें, अथवा चंद्रमा सूर्यके ग्रहणमें विना ऋतुमें उत्पातकी उत्पत्तिका होना दोषका कारण नहीं है ।।८२।। जिन उत्पातोंसे दोष उत्पन्न नहीं होते, ऋषिपुत्रके कहे हुए इस समासमें दो श्लोकके बीच इनको ऋतुके स्वभावसे उत्पन्न हुए कहे हैं, "वज्र, अशनि (एक प्रकारकी बिजली), भूमिका कांपना, संध्या, टकरानेका शब्द, घेरा, धूरि, धूम, अस्त और उदयकालमें सूर्य लाल रंगका हो जाना, वृक्षमें अन्न, रस, स्नेह और बहुतसे फूलोंका उत्पन्न होना, गाय व पक्षियोंके मदका बढना चैत और वैशाखके महीनेमें मंगलका कारण है ।।८३।।८४।।८५।। तारा और उल्का-

पातसे उत्पन्न हुए चंद्रमा और सूर्यका कपिलमण्डल अग्निके विना ही ज्वालाकेसा शब्द होना, धुआं, धूरि पवनसे आहत, लाल कमलके समान रंगवाली लालीका संध्या समय होना, चलायमान समुद्र के समान आकाशका हो जाना, नदी के जलका सूख जाना, ग्रीष्म-काल में दिखाई देनेसे शुभ फल को उत्पन्न करता है ॥८६॥ ८७॥ इन्द्रधनुष, घेरा, बिजली, सूखे हुए वृक्ष में अंकुरों का निकलना, पृथ्वीका कांपना, उलट जाना, स्वरूप का बदल जाना, शब्द करना, फटजाना, सरोवर, नदी और कुओं का बढ जाना या किनारों पर आ जाना, जल का विप्लव होना, पर्वत और घरों का चलायमान होना वर्षाकालमें भयदायी नहीं है ॥८८॥८९॥ दिव्य स्त्री भूत, गंधर्व, विमान और अद्भुत दर्शन, आकाश में दिन के समय ग्रह, नक्षत्र और ताराओं का दिखाई देना, पर्वत तथा वन के कंगूरों में गीत और बाजोंकी ध्वनिका सुनाई देना, धान्य की वृद्धि और जलकी हानि का होना शरत्काल में शुभकारी कहा है ॥९०॥९१॥ वायु और तुषारों में शीतपन, मृग और पक्षियों का शब्द करना, राक्षस व यक्षादि प्राणियों का दर्शन, देववाणी, धूम या अंधकारमय आकाश, वन, पर्वत और दिशाओंका ढक जाना, उंचेमें सूर्यका उदय और अस्त हेमन्तमें शुभकारी कहा है ॥९२॥९३॥ बर्फका गिरना, पवनके उत्पात, विरूप और अद्भुतदर्शन, काले अञ्जनके समान आकाश, ताश या उल्कापातसे आकाशका चित्र-विचित्र होना, गाय, बकरी, घोडा, मृग, पक्षी और स्त्रियोंमें विचित्र, गर्भका उत्पन्न होना और पत्र, लता व अंकुरका विकार शिशिर ऋतुमें शुभदायी है ॥९४॥९५॥ इस ऋतुमें स्वभावसे उत्पन्न हुए विकार अपनी २ ऋतुमें दिखाई दे तो शुभदायी है, और ऋतुमें विकार दिखाई दें तो वह अत्यन्त दारुण होते हैं ॥९६॥ पागलोंका गीत और गाथा, बालकोंके वचन और जिसको स्त्री कहे उसका लंघन नहीं होता ॥९७॥ सत्यस्वरूप, अप्रेरित, वाग्रूपिणी यह सरस्वतीजी पहले सब देवताओंमें विचरण करती थी फिर मनुष्योंको प्राप्त हुई ॥९८॥ जो दैवज्ञ गणितके ज्ञानको नहीं जानता, वह भी जो उत्पातोंका ज्ञान भली भांतिसे करे तो वहभी विख्यात होकर राजाका प्यारा होता है. यह वही मुनिवचनका रहस्य कहा गया है कि जिसको जानकर मनुष्य त्रिकालदर्शी हो सकता है ॥९९॥

इतिश्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

अथ सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

मयूरचित्रकम्

दिव्यान्तरिक्षाश्रयमुक्तमादौ मया फलं शस्तमशोभनं च । प्रायेण चारेषु समागमेषु युद्धेषु मार्गादिषु विस्तरेण ॥ १ ॥ भूयो वराहमिहिरस्य न युक्तमेतत् कर्तुं समासकृदसाविति तस्य दोषः ॥ तज्ज्ञैर्न वाच्यमिदमुक्तफलानुगीति यर्व्हाह चित्रकमिति प्रथितं वराङ्गम् ॥२॥ स्वरूपमेव तस्य तत् प्रकीर्तितानुकीर्तनम् । ब्रवीम्यहं न चेदिदं तथापि मेऽत्र वाच्यताम् ॥ ३ ॥ उत्तरवीथिगता द्युतिमन्तः क्षेमसुभिक्षशिवाय समस्ताः । दक्षिणमार्गगता द्युतिहीनाः क्षुद्भयतस्क-

रमृत्युकरास्ते ॥ ४ ॥ कोष्ठागारगते भृगुपुत्रे पुष्यस्थे च गिरां प्रभुविष्णौ । निर्वैराः क्षितिपाः सुखभाजः संहृष्टाश्च जना गतरोगाः ॥ ५ ॥ पीडयन्ति यदि कृत्तिकां मघां रोहिणीं श्रवणमैन्द्रमेव वा । प्रोज्झ्य सूर्यमपरे ग्रहास्तदा पश्चिमा दिगनयेन पीड्यते ॥ ६ ॥ प्राच्यां चेद्ध्यजवदवस्थिता दिनान्ते प्राच्यानां भवति हि विग्रहा नृपाणाम् । मध्ये चेद्भवति हि मध्यदेशपीडा रूक्षैस्तैर्न तु रुचिरैर्मयूखवद्भिः ॥ ७ ॥ दक्षिणा ककुभमाश्रितैस्तु तैर्दक्षिणापथपयोमुचां क्षयः । हीनरूक्षतनुभिश्च विग्रहः स्थूलदेहकिरणान्वितैः शुभम् ॥ ८ ॥ उत्तरमार्गे स्पष्टमयूखाः शान्तिकरास्ते तन्नृपतीनाम् । ह्रस्वशरीरा भस्मसवर्णा दोषकराः स्युर्देशनृपाणाम् ॥ ९ ॥ नक्षत्राणां तारकाः संग्रहाणां धूमज्वालाविस्फुलिङ्गान्विताश्चेत् । आलोकं वा निर्निमित्तं न यान्ति याति ध्वंसं सर्वलोकः सभूपः ॥१०॥ दिवि भाति यदा तुहिनांशुयुगं द्विजवृद्धिरतीव तदाशु शुभा । तदनन्तरवर्णरणोऽर्कयुगे जगतः प्रलयस्त्रिचतुःप्रभृति ॥११॥ मुनीनभिजितं ध्रुवं मघवतश्च भं संस्पृशन् शिखी घनविनाशकृत् कुशलकर्महा शोकदः । भुजङ्गममथ स्पृशेद्भवति वृष्टिनाशो ध्रुवं क्षयं व्रजति विद्रुतो जनपदश्च बालाकुलः ॥ १२ ॥ प्राग्द्वारेषु चरन् रविपुत्रो नक्षत्रेषु करोति च वक्रम् । दुर्भिक्षं कुरुते भयमुग्रं मित्राणां च विरोधमवृष्टिम् ॥ १३ ॥ रोहिणीशकटमर्कनन्दनो यदि भिनत्ति रुधिरोऽथवा शिखी । किं वदामि यदनिष्टसागरे जगदशेषमुपयाति संक्षयम् ॥ १४ ॥ उदयति सततं यदा शिखी चरति भचक्रमशेषमेव वा । अनुभवति पुराकृतं तदा फलमशुभं सचराचरं जगत् ॥१५॥ धनुःस्थायी रूक्षो रुधिरसदृशः क्षुद्भयकरो बलोद्योगं चेन्दुः कथयति जयं ज्यास्य च यतः । अवाक्यभृङ्गो गोघ्नो निधनमपि सस्यस्य कुरुते ज्वलन्धूमायन् वा नृपतिमरणायैव भवति ॥१६॥ स्निग्धः स्थूलः समभृङ्गो विशालस्तुङ्गश्चोदग्विचरन्नागवीथ्याम् । दृष्टः सौम्यैरशुभैर्विप्रयुक्तो लोकानन्दं कुरुतेऽतीव चन्द्रः ॥१७॥ पित्र्यमैत्रपुरुहूतविशाखात्वाष्ट्रमेत्य च युनक्ति शशाङ्कः । दक्षिणेन न शुभो हितकृत्स्याद्यद्युदक् चरति मध्यगतो वा ॥१८॥ परिघ इति मेघरेखा या तिर्यग्भास्करोदयेऽस्ते वा । परिधिस्तु प्रतिसूर्यो दण्डस्त्वृजुरिन्द्रचापनिभः ॥१९॥ उदयेऽस्ते वा भानोर्ये दीर्घा रश्मयस्त्वमोघास्ते । सुरचापखण्डमृजु यद्रोहितमैरावतं दीर्घम् ॥ २० ॥ अर्धास्तमयात्सन्ध्या व्यक्तीभूता न तारका यावत् । तेजःपरिहानिमुखाद् भानोरर्धोदयं यावत् ॥ २१ ॥ तस्मिन् सन्ध्याकाले चिह्नैरेतैः शुभाशुभं वाच्यम् । सर्वैरेतैः स्निग्धैः सद्योवर्षं भयं रूक्षैः ॥२२॥ अच्छिन्नः परिघो वियच्च विमलं श्यामा मयूखा रवेः स्निग्धा दीधितयः सितं सुरधनुर्विद्युच्च पूर्वोत्तरा । स्निग्धो मेघतरुर्दिवाकरकरालिङ्गितो वा यदा वृष्टिः स्याद्यदि वार्कमस्तसमये मेघो महांश्छादयेत् ॥२३॥ खण्डो वक्रः कृष्णो ह्रस्वः काकाद्यैर्वा चिह्नैर्विद्धः । यस्मि-

न्देशे रूक्षश्चार्कस्तत्राभावः प्रायो राज्ञः ॥२४॥ वाहिनीं समुपयाति पृष्ठतो मांसभुक्खगगणो युयुत्सतः । यस्य तस्य बलविद्रवो महानग्रगैस्तु विजयो विहङ्गमैः ॥ २५ ॥ भानोरुदये यदि वास्तमये गन्धर्वपुरप्रतिमा ध्वजिनी । बिम्बं निरुणद्धि तदा नृपतेः प्राप्तं समरं सभयं प्रवदेत् ॥२६॥ शस्ता शान्तद्विजमृगघुष्टा सन्ध्या स्निग्धा मृदुपवना च । पांशुध्वस्ता जनपदनाशं धत्ते रूक्षा रुधिरनिभा वा ॥२७॥ यद्विस्तरेण कथितं मुनिभिस्तदस्मिन् सर्वं मया निगदितं पुनरुक्तवर्जम् । श्रुत्वापि कोकिलरुतं बलिभुग्विरौति यत्तत्स्वभावकृतमस्य पिकं न जेतुम् ॥ २८ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां मयूरचित्रकं नाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

ग्रहचार, समागम, युद्ध और वीथि आदि में बहुधा दिव्य और अन्तरिक्ष विषयाश्रयी, समस्त शुभाशुभ फल हमने निरूपण किये ॥१॥ वराहमिहिरके लिये इन बातोंका वारंवार करना ठीक नहीं है क्योंकि उनका दोष यही है कि वह संक्षेपकारी हैं परंतु यह फलदायी मयूरचित्रक नामक श्रेष्ठ अङ्ग बनानेसे मयूरचित्रकके जाननेवाले पंडित लोग उनकी कुछ भी निन्दा न करेंगे ॥२॥ (पहले मेघके विषयमें) वही मयूरचित्रका स्वरूप है इस कारण फिर उनका वर्णन नहीं करना चाहिये परंतु वर्णन न करने पर भी निन्दा न छूटेगी ॥३॥ जो उत्तर मार्गमें ग्रह गमन करें और प्रकाशमान हो तो कुशल, सुभिक्ष और मंगल होता है, दक्षिणमार्गमें जाय और प्रकाशहीन हो तो अकाल, तस्करभय और मृत्युकारक होते हैं ॥४॥ शुक्र ग्रह कोष्ठागारमें अर्थात् मघा नक्षत्र पर हो और बृहस्पति पुष्यनक्षत्रमें विराजमान हो तो राजा लोग शत्रुरहित होते हैं, प्रजा सुखी, हर्षित और रोगहीन रहती है ॥५॥ यदि सूर्यके अतिरिक्त ग्रहगण कृत्तिका, मघा, रोहिणी, श्रवण और ज्येष्ठा नक्षत्रको पीडित करें तो अनीतिसे पश्चिमदिशाको पीडा होती है ॥६॥ जो संध्याकालके समय पूर्वदिशामें ध्वजाकी नाई ग्रहगण विराजमान होते हों तो पूर्वदिशाके रहनेवाले राजाओंमें युद्ध होता है, यदि आकाशके मध्यभागमें ऐसा हो तो मध्यदेश पीडित होता है, परंतु यह रूखे मनोहर अथवा किरणदार हो तो मध्यदेशको पीडा नहीं होती ॥७॥ जो दक्षिणदिशामें ग्रह हों तो दक्षिणापथ और मेघोंका क्षय होता है जो इस समयमें ग्रह हीन शरीर और रूखी देहवाले हों तो विग्रह होता है, परंतु बडी देहवाले और किरणदार हों तो शुभ होता है ॥ ८ ॥ वे उत्तरमार्गमें स्पष्ट किरणोंसे झलकते हों तो वहांके राजाओंमें शांति करनेवाले होते हैं, छोटे शरीरवाले और भस्मके समान रंगवाले हों तो देश और राजाओंके दोषकारी होते हैं ॥९॥ जो ग्रह और नक्षत्रोंके तारे धुएंकी लपट और चिनगारियोंसे युक्त हों या विनाही कारणके उनमें प्रकाश न हो तो राजाके साथ सब लोकका ध्वंस होता है ॥१०॥ जब आकाशमें दो चंद्रमा दीप्तिमान होते हैं, तब ब्राह्मणोंका अत्यन्त शुभ होता है, दो सूर्यके दिखाई देनेसे क्षत्रियादिकोंका युद्ध होता है और तीन चार इत्यादि अनेक चंद्रसूर्यके निकलने से जगत् में प्रलय होती है। ॥११॥ शिखी अर्थात् केतु यदि सप्तर्षिमण्डल, अभिजित् ध्रुव और ज्येष्ठानक्षत्रको स्पर्श करे तो बादलोंका नाश, कुशल कर्ममें हानि और शोकदायी होता है, जो श्लेषा नक्षत्रको

स्पर्श करे तो निश्चयही वृष्टिका नाश और रेतेसे युक्त जनपदमें उपद्रव होकर वह शीघ्र नाशको प्राप्त हो जाता है ॥१२॥ शनि पूर्वद्वार अर्थात् कृत्तिकादि सप्त नक्षत्रमें विचर कर वक्री होनेसे दुर्भिक्ष, भय, मित्रोंका विरोध करता है और वर्षाको नहीं करता है ॥१३॥ जो शनि, मंगल या केतु रोहिणी शकटको भेद करे तो समस्त जगत् का इस प्रकार अनभल होता है कि कुछ कहा नहीं जाता ॥१४॥ जब केतु सदा उदय होता है या बहुतसे नक्षत्रोंके चक्रमें विचरण करता है तो बराबर जगत् अपने किये हुए समस्त अशुभ फलोंका अनुभव करता है ॥१५॥ धनुषके समान आकारवाला, रूखा और रुधिरके समान रंगवाला हो तो क्षुधा और भयका उपजानेवाला होत है और इन चंद्रमाकी मौर्वी जिस ओरको होती है वहांपर सेनाका उद्योग और जयकी सूचना होती है. चंद्रमाका शृंग नीचे हो तो धान्य और गायोंका नाश होता है और लपट व धुएँका विस्तार करे तो राजाओंके मरणका कारण होता है ॥१६॥ चिकना, स्थूल, बराबर शृंगवाला, विशाल और ऊंचा चंद्रमा उत्तरदिशामें नागवीथिमें विचरण करे, अशुभ ग्रह से अलग और शुभ ग्रहसे देखा जाय तो मनुष्योंको अत्यन्त आनन्द देता है ॥१७॥ जो चंद्रमा मघा, अनुराधा, ज्येष्ठा, विशाखा और चित्रा नक्षत्रको प्राप्त होकर दक्षिणमें जाय तो शुभ फल नहीं होता, यदि उत्तरदिशामें वा मध्यमें हो तो हितकारी होता है ॥१८॥ सूर्यके उदय या अस्तकालमें जो मेघकी रेखा हो, उसका ही "परिघ" नाम है–यह तिरछी हो तो "परिधि" सूर्यके समान वस्तु हो तो "प्रतिसूर्य" और इन्द्रके धनुषके समान सरल मेघको "दंड" कहते हैं सूर्यकी लंबी किरणको "अमोघ" कहते हैं और लम्बे व सीधे इन्द्रधनुषको "ऐरावत" कहते हैं ॥१९॥२०॥ जब सूर्य आधा छिप गया हो, तारे प्रकाशित न हुए हों और तेजहानिके आरंभसे जबतक सूर्यका आधा उदय हो तबतक संध्या कहाती है ॥२१॥ उस संध्याकालमें इन चिह्नोंको देखकर शुभ अशुभ फल कहना चाहिये, यह समस्त चिकने हों तो शीघ्र वर्षा और रूखे हों तो भय होता है ॥२२॥ साबत परिघ, विमल आकाश, सूर्यकी श्याम किरणें, स्निग्ध दीधिति, श्वेतवर्णका देवताओंका धनुष, पूर्वोत्तर दिशामें बिजली विराजमान हो अथवा जब बादरवृक्ष सूर्यकी किरणोंके पडनेसे चिकना हो जाता है या सूर्यको छिपनेके समय महामेघ ढक लेता है तो वर्षा होती है ॥२३॥ जिस देशमें सूर्य टुकडेदार, टेढा, काला, छोटा, काकादि चिह्नसे बिंधा हुआ और रूखा हो वहांपर अकसर राजाका अभाव होता है ॥२४॥ जिन युद्ध करनेकी इच्छा किये राजाओंके पीछेसे मांस खानेवाले पक्षियोंके साथ सेनाका समागम होता है, उनको सेनाका बडा भारी भय होता है परंतु विहंगगण आगे २ चलें तो विजय होती है ॥२५॥ सूर्यके उदय या अस्तसमयमें ध्वजासे युक्त गंधर्वपुरकी प्रतिमा जो सूर्यको रोक ले तो यह प्रगट करती है कि राजाको भययुक्त समरकी प्राप्ति होगी ॥२६॥ चिकने और मधुर पवनवाली संध्या पूर्वदिशामें पक्षी और मृगगणोंका शब्द होना अच्छा है और संध्या धूरिसे ध्वंसको प्राप्त हुई या रुधिरके समान रूखी हो तो जनपदका नाश हो ॥२७॥ मुनिलोगोंने जिसको विस्तारसे कहा है, मैंने उसको उन समस्त पुनरुक्तियोंको छोडकर इस शास्त्रमें कहा है, कोयलकी कूक सुनकर काकका शब्द करना उसका स्वभावही है, वास्तवमें कागका शब्द करना कोयलको जीतनेके लिये नहीं है ॥२८॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

अथाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

पुष्यस्नानम्

मूलं मनुजाधिपतिः प्रजातरोस्तदुपघातसंस्कारात् । अशुभं शुभं च लोके भवति
यतोऽतो नृपतिचिन्ता ॥१॥ या व्याख्याता शान्तिःस्वयम्भुवा सुरगुरोर्महेन्द्रार्थे ।
तां प्राप्त वृद्धगर्गः प्राह यथा भागुरेः शृणुत ॥२॥ पुष्यस्नानं नृपतेः कर्तव्यं दैव-
वित्पुरोधाभ्याम् । नातः परं पवित्रं सर्वोत्पातान्तकरमस्ति ॥ ३ ॥ श्लेष्मातकाक्ष-
कण्टकिकटुतिक्तविगन्धिपादपविहीने । कौशिकगृध्रप्रभृतिभिरनिष्टविहगैः परि-
त्यक्ते ॥४॥ तरुणतरुगुल्मवल्लीलताप्रतानावृत्ते वनोद्देशे । निरुपहतपत्रपल्लवम-
नोज्ञमधुरद्रुमप्राये ॥५॥ कृकवाकुजीवजीवकशुकशिखिशतपत्रचाषहारीतैः । क्रकर-
चकोरकपिञ्जलवञ्जुलपारावतश्रीकैः ॥६॥ कुसुमरसपानमत्तद्विरेफपुंस्कोकिला-
दिभिश्चान्यैः । विरुते वनोपकण्ठे क्षेत्रागारे शुचावथवा ॥ ७ ॥ ह्रदिनीविला-
सिनीनां जलखगनखविक्षतेषु रम्येषु । पुलिनजघनेषु कुर्यादृङ्मनसोः प्रीतिजनेषु ॥८॥
प्रोत्प्लुतहंसच्छत्रे कारण्डवकुररसारसोद्गीते । फुल्लेन्दीवरनयने सरसि सहस्राक्षका-
न्तिधरे ॥९॥ प्रोत्फुल्लकमलवदनाः कलहंकलस्वनप्रभाषिण्यः । प्रोत्तुङ्गकुंडलकुचा
यस्मिन्नलिनीविलासिन्यः ॥ १० ॥ कुर्याद्गोरोमन्थजफेनलवशकृत्खुरक्षतोपचिते ।
अचिरप्रसूतहंकृतवल्गितवत्सोत्सवे गोष्ठे ॥११॥ अथवा समुद्रतीरे कुशलागतपोत
रत्नसम्बाधे । घननिचुललीनजलचरसितखगशबलीकृतोपान्ते ॥ १२ ॥ क्षमया
क्रोध इव जितः सिंहों मृग्याभिभूयते यत्र । दत्ताभयखगमृगशावकेषु तेष्वाश्रमेष्व-
थवा ॥१३॥ काञ्चीकलापनूपुरगुरुजघनोद्वहनविघ्नितपदाभिः । श्रीमति मृगेक्षणा-
भिर्गृहेऽन्यभृतवल्गुवचनाभिः ॥ १४ ॥ पुण्येष्वायतनेषु च तीर्थेषूद्यानरम्यदेशेषु ।
पूर्वोदक्प्लवभूमौ प्रदक्षिणाम्भोवहायां च ॥ १५ ॥ भस्माङ्गारास्थ्यूषरतुषकेशश्व-
भ्रकर्कटावासैः । श्वाविन्मूषकविवरैर्वल्मीकैर्या च सन्त्यक्ता ॥ १६ ॥ धात्री घना
सुगन्धा स्निग्धा मधुरा समा च विजयाय । सेनावासेऽप्येवं योजयितव्या यथायोगम्
॥१७॥ निष्क्रम्य पुरान्नक्तं दैवज्ञामात्ययाजकाः प्राच्याम् । कौबेर्यां वा कृत्वा बलिं
दिशीशाधिपायां वा ॥१८॥ लाजाक्षतदधिकुसुमैः प्रयतः प्रणतः पुरोहितः कुर्यात् ।
आवाहनमथ मन्त्रस्तस्मिन्मुनिभिः समुद्दिष्टः ॥ १९ ॥ आगच्छन्तु सुराः सर्वे
येऽत्र पूजाभिलाषिणः । दिशो नागा द्विजाश्चैव ये चान्येऽप्यंशभागिनः ॥ २० ॥
आवाह्यैवं ततः सर्वानेवं ब्रूयात् पुरोहितः । श्वः पूजां प्राप्य यास्यन्ति दत्त्वा शांति
महीपतेः ॥२१॥ आवाहितेषु कृत्वा पूजां तां शर्वरीं वसेयुस्ते । सदसत्स्वप्ननिमित्तं
यात्रायां स्वप्नविधिरुक्तः ॥२२॥ अपरेऽहनि प्रभाते सम्भारानुपहरेद्यथोक्तगुणान् ।
गत्वावनिप्रदेशे श्लोकाश्चाप्यत्र मुनिगीताः ॥२३॥ तस्मिन् मण्डलमालिख्य
कल्पयेत्तत्र मेदिनीम् । नानारत्नाकरवतीं स्थानानि विविधानि च ॥२४॥ पुरोहितो

यथास्थानं नागान्यक्षान् सुरान् पितॄन् । गंधर्वाप्सरसश्चैव मुनीन् सिद्धांश्च विन्यसेत् ॥२५॥ ग्रहांश्च सह नक्षत्रै रुद्रांश्च सह मातृभिः । स्कन्दं विष्णुं विशाखं च लोकपालान् सुरस्त्रियः ॥ २६ ॥ वर्णकैर्विविधैः कृत्वा हृद्यैर्गन्धगुणान्वितैः । यथास्वं पूजयेद्विद्वान् गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥२७॥ भक्ष्यैरन्यैश्च विविधैःफलमूलामिषैस्तथा । पानकैर्विविधैर्हृद्यैः सुराक्षीरासवादिभिः ॥२८॥ कथयाम्यतः परमहं पूजामस्मिन् यथाभिलिखितानाम् । ग्रहयज्ञे यः प्रोक्तो विधिर्ग्रहाणां स कर्तव्यः ॥२९॥ मांसौदनमद्याद्यैः पिशाचदितितनयदानवाः पूज्याः । अभ्यञ्जनाञ्जनतिलःपितरो मांसौदनैश्चापि ॥३०॥ सामयजुर्भिर्मुनयस्त्वृग्भिर्गन्धैश्च धूपमाल्ययुतैः । अश्लेषकवर्णैस्त्रिमधूरेण चाभ्यर्च्चयेन्नागान् ॥३१॥ धूपाज्याहुतिमाल्यैर्विबुधान् रत्नैः स्तुतिप्रणामैश्च । गन्धर्वानप्ससरसो गन्धैर्माल्यैश्च सुसुगंधैः ॥३२॥ शेषांस्तु सार्ववर्णिकबलिभिः पूजां न्यसेच्च सर्वेषाम् । प्रतिसरवस्त्रपताकाभूषणयज्ञोपवीतानि ॥३३॥ मण्डलपश्चिमभागे कृत्वाग्नि दक्षिणेऽथवा वेद्याम् । आदद्यात्सम्भारान्दर्भान्दीर्घान्निगर्भाश्च ॥३४॥ लाजाज्याक्षतदधिमधुसिद्धार्थकगन्धसुमनसो धूपान् । गोरोचनाञ्जनतिलान् स्वर्तुजमधुराणि च फलानि ॥३५॥ सघृतस्य पायसस्य च तत्र शरावाणि तैश्च सम्भारैः । पश्चिवेद्यां पूजां कुर्यात् स्नानस्य सा वेदी ॥ ३६ ॥ तस्याः कोणेषु दृढान् कलशान् सितसूत्रवेष्टितग्रीवान् । सक्षीरवृक्षपल्लवफलापिधानान् व्यवस्थाप्य ॥ ३७ ॥ पुष्यस्नानविमिश्रेणापूर्णानिम्भसा सरत्नांश्च । पुष्यस्नानद्रव्याणादद्याद्गर्गगीतानि ॥३८॥ ज्योतिष्मतीं त्रायमाणामभयामपराजिताम् । जीवां विश्वेश्वरी पाठां समङ्गां विजयां तथा ॥३९॥ सहां च सहदेवीं च पूर्णकोशां शतावरीम् । अरिष्टिकां शिवां भद्रां तेषु कुम्भेषु विन्यसेत् ॥४०॥ ब्राह्मीं क्षेमामजां चैव सर्वबीजानि काञ्चनम् । मङ्गल्यानि यथालाभं सर्वोषध्यो रसांस्तथा॥४१॥ रत्नानि सर्वगन्धांश्च बिल्वं च सविकङ्कतम् । प्रशस्तनाम्नयश्चौषध्यो हिरण्यं मङ्गलानि च ॥४२॥ आदावनडुहश्चमं जरया संहृतायुषः । प्रशस्तलक्षणभृतः प्राचीनग्रीवमास्तरेत् ॥४३॥ ततो वृषस्य योधस्य चर्म रोहितमक्षतम् । सिंहस्याथ तृतीयं स्याद् व्याघ्रस्य च ततः परम् ॥४४॥ चत्वार्येतानि चर्माणि तस्यां वेद्यामुपास्तरेत् । शुभे मुहूर्ते सम्प्राप्ते पुष्ययुक्ते निशाकरे ॥४५॥ भद्रासनमेकतमेन कारितं कनकरजतताम्राणाम् । क्षीरतरुनिर्मितं वा विन्यस्यं चर्मणामुपरि ॥४६॥ विविधस्तस्योच्छ्रायो हस्तः पादाधिकोऽर्द्धयुक्तश्च । माण्डलिकानन्तरजित् समस्तराजार्थिनां शुभदः ॥४७॥ अन्तर्धाय हिरण्यं तत्रोपविशेन्नरेश्वरः सुमनाः । सचिवाप्तपुरोहितदैवपौरकल्याणनामवृतः ॥४८॥ बन्दिजनपौरविप्रप्रघुष्टपुण्याहनिर्घोषैः । समृदङ्गशंखतूर्यैर्मङ्गलशब्दैर्हृतानिष्टः ॥४९॥ अहतक्षौमनिवसनं पुरोहितः कम्बलेन सञ्छाद्य । कृतबलिपूजं कलशैरभिषिञ्चेत्सर्पिषापूर्णैः

॥५०॥ अष्टावष्टाविंशतिरष्टशतं वापि कलशपरिमाणम् । अधिकेऽधिके गुणोत्तरमयं च मंत्रोऽत्र मुनिगीतः ॥५१॥ आज्यं तेजः समुद्दिष्टमाज्यं पापहरं परम् । आज्यं सुराणामाहार आज्ये लोकाः प्रतिष्ठिताः ॥५२॥ भौमान्तरिक्षं दिव्यं च यत्ते किल्बिषमागतम् । सर्वं तदाज्यसंस्पर्शात्प्रणाशमुपगच्छतु ॥५३॥ कम्बलमपनीय ततः पुष्यस्नानाम्बुभिः सफलपुष्पैः । अभिषिञ्चेन्मनुजेन्द्रं पुरोहितोऽनेन मंत्रेण ॥५४॥ सुरास्त्वामभिषिञ्चन्तु ये च सिद्धाः पुरातनाः । ब्रह्मा विष्णुश्च शम्भुश्च साध्याश्च समरुद्गणा ॥५५॥ आदित्या वसवो रुद्रा अश्विनौ च भिषग्वरौ । अदितिर्देवमाता च स्वाहा सिद्धिः सरस्वती ॥५६॥ कीर्तिर्लक्ष्मीर्धृतिः श्रीश्च सिनीवाली कुहूस्तथा । दनुश्च सुरसा चैव विनता कद्रुरेव च ॥५७॥ देवपत्न्यश्च या नोक्ता देवमातर एव च । सर्वास्त्वामभिषिञ्चन्तु दिव्याश्चाप्सरसां गणाः ॥५८॥ नक्षत्राणि मुहुर्ताश्च पक्षाहोरात्रसन्धयः । संवत्सरा दिनेशाश्च कला काष्ठाः क्षणा लवाः ॥५९॥ सर्वे त्वामभिषिञ्चन्तु कालस्यावयवाः शुभाः । वैमानिकाः सुरगणा मनवः सागरैः सह ॥६०॥ सप्तर्षयः सदाराश्च ध्रुवस्थानानि यानि च । मरीचिरत्रिः पुलस्त्यः क्रतुरङ्गिराः ॥ ६१ ॥ भृगु सनत्कुमारश्च सनकोऽथसनन्दनः । सनातनश्च दक्षश्च जैगीषव्यो भगन्दरः ॥६२॥एकतश्च द्वितश्चैव त्रितो जाबालिकश्यपौ । दुर्वासा दुर्विनीतश्च कण्वः कात्यायनस्तथा ॥ ६३ ॥ मार्कण्डेयो दीर्घतपाः शुनःशेफो विदूरथः । ऊर्वः संवर्तकश्चैव च्यवनोऽत्रिः पराशरः ॥६४॥ द्वैपायनो यवक्रितो देवराजः सहानुजः । एते चान्ये च मुनयो वेदव्रतपरायणाः ॥६५॥ सशिष्यास्तेऽभिषिञ्चन्तु सदाराश्च तपोधना । पर्वतास्तरवो वल्लयः पुण्यान्यायतनानि च ॥६६॥ सरितश्च महाभागा नागाः किम्पुरुषास्तथा । वैखानसा महाभागा द्विजा वैहायसाश्च ये ॥६७॥ प्रजापतिर्दितिश्चैव गावो विश्वस्य मातरः । वाहनानि च दिव्यानि सर्वलोकाश्चराचराः ॥६८॥ अग्नयः पितरस्तारा जीमूताः खं दिशो जलम् । एते चान्ये च बहवः पुण्यसङ्कीर्तनाः शुभाः ॥६९॥ तोयैस्त्वामभिषिञ्चन्तु सर्वोत्पातनिबर्हणैः । कल्याणं ते प्रकुर्वन्तु आयुरारोग्यमेव च ॥७०॥ इत्येतैश्चान्यैश्चाप्यथर्वकल्पविहितैः सरुद्रगणैः । कौष्माण्डमहारौहिणकुबेरहृद्यैः समृद्धया च ॥७१॥ आपो हिष्ठा तिसृभिर्हिरण्यवर्णेति चतसृभिर्जप्तम् कार्पासिकवस्त्रयुगं बिभृयात्स्नातो नराधिपतिः ॥७२॥ पुण्याहशंखशब्दैराचान्तोऽभ्यर्च्य देवगुरुविप्रान् । छत्रध्वजायुधानि च ततः स्वपूजां प्रयुञ्जीत ॥७३॥ आयुष्यं वर्चस्यं रायस्पोषाभिर्ऋग्भिरेताभिः । परिजप्तं वैजयिकं नवं विदध्यादलंकारम् ॥७४॥ गत्वा द्वितीयवेदीं समुपविशेच्चर्मणामुपरि राजा । देयानि चैव चर्माण्युपर्युपर्येवमेतानि ॥७५॥ वृषस्य वृषदंशस्य रुरोश्च पृषतस्य च । तेषामुपरि सिंहस्य व्याघ्रस्य च ततः परम् ॥७६॥ मुख्यस्थाने जुहुयात् पुरोहितोऽग्निं समित्ति-

लघृताद्यैः । त्रिनयनशक्रबृहस्पतिर्नारायणनित्यगतिऋ॑ग्भिः ॥ ७७ ॥ इन्द्रध्वजनिर्दिष्टान्यग्निनिमित्तानिदैवविद्ब्रूयात् । कृत्वाशेषसमाप्ति पुरोहितः प्राञ्जलिर्ब्रूयात् ॥७८॥ यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादाय पार्थिवात् । सिद्धिं दत्त्वा सुविपुलां पुनरागमनाय वै ॥ ७९ ॥ नृपतिरतो दैवज्ञं पुरोहितं चार्चयेद्धनैर्बहुभिः । अन्यांश्च दक्षिणीयान् यथार्हतः श्रोत्रियप्रभृतीन् ॥८०॥ दत्त्वाभयं प्रजानामाघातस्थानगान्विसृज्य पशून् । बन्धनमोक्षं कुर्यादाभ्यन्तरदोषकृद्वर्जम् ॥८१॥ एतत् प्रयुज्यमानं प्रतिपुष्यं सुखयशोऽर्थवृद्धिकरम् । पुष्यं विनार्धफलदा पौषी शांतिः पुरा प्रोक्ता ॥८२॥ राष्ट्रोत्पातोपसर्गेषु राहोः केतोश्च दर्शने । ग्रहावमर्दने चैव पुष्यस्नानं समाचरेत् ॥८३॥ नास्ति लोके स उत्पातो यो ह्यनेन न शाम्यति । मङ्गलं चापरं नास्ति यदस्मादतिरिच्यते ॥८४॥ अधिराज्यार्थिनो राज्ञः पुत्रजन्म च कांक्षतः। तत्पूर्वमभिषेके च विधिरेष प्रशस्यते ॥८५॥ महेन्द्रार्थमुवाचेदं बृहत्कीर्तिबृ॑हस्पतिः । स्नानमायुः प्रजावृद्धिसौभाग्यकरणं परम् ॥८६॥ अनेनैव विधानेन हस्त्यश्वं स्नापयीत यः । तस्याभयविनिर्मुक्तं परां सिद्धिमवाप्नुयात् ॥८७॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां पुष्यस्नानं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः॥४८॥

राजा प्रजारूपी वृक्षके लिये जडरूप है, प्रजाके ऊपर उपघात संस्कारके लिये अशुभ और शुभ फल होता है; इसलिये राजाके मङ्गलविषयमें सदा चिन्ता करनी चाहिये ॥१॥ स्वयं ब्रह्माजीने महेन्द्रके लिये बृहस्पतिजीसे जो शांति कही थी, वृद्धगर्गजीने उसको प्राप्त हो भागुरिसे जो कहा है उसको श्रवण करो ॥२॥ ज्योतिषी और पुरोहितगणोंके द्वारा राजाको पुष्यस्नान करना उचित है. इसके अतिरिक्त पवित्र और सर्व प्रकारके उत्पातोंका नाश करनेवाला दूसरा कोई नहीं है ॥३॥ श्लेष्मातक (लसोडा), अक्ष (बहेडा), कंटकी (खैर), चरपरे, कडुवे व गंधहीन वृक्ष और उल्लू व शकुनि आदि अनिष्टकारी पक्षियों करके छोडे हुए, तरुण वृक्ष, लता, गुल्म, वल्ली और वेलसे झांदेरदार किये हुए साबत पत्ते और कोपलोंसे मनोहर और मधुर बहुतसे वृक्षवाले वनमें पुष्यस्नान करना उचित है. जिस स्थानमें कृकवाकु (गिरगिट), जीवक (चकोर), तोता मोर, शतपत्र (खुटबढई) चाष (नीलकंठ), हारीत (परेवा), ऋकर (केकडा), कपिञ्जल (चातक), वंजुल (पक्षिविशेष) और कबूतर और फूलोंका मधुपान करनेमें मतवाले भ्रमरगण और कोयलादि पक्षियोंका मनोहर शब्द होता है, वनके समीप ऐसे पवित्र क्षेत्रागारमें इस शांतिको करना चाहिये ॥४॥५॥६॥७॥ अथवा नयन मनको प्रसन्न करनेवाले जलचारी पक्षियोंके नखविक्षत नदीरूप कामिनी पुलिनरूप मनोहर जांघोंपर यह शांति करनी चाहिये ॥८॥ या खिले हुए कमलरूप वदनवाली, कलहंसकी कलनादरूप वाक्यवाली और पद्मके मुकुल (कली) रूप ऊंचे रतनवाली नलिनीरूप विलासिनियें जहांपर वर्तमान हैं, उडते हुए हंसही जिसका छत्र है, कारण्डव कुरर और सारस पक्षियोंकी ध्वनिसे जो गानेके युक्त हैं, प्रफुल्ल इन्दीवर रूपवाले, अतएव सहस्राक्ष इन्द्रके समान रूपधारी पवित्र सरोवरके तीरपर शांति करनी चाहिये ॥९॥१०॥ अथवा गायोंके जुगारनेसे फेन गिरा है, खुरोंसे ताडित होकर

जहांपर चारों ओर गोबर पडा है, जहांपर नये पैदा हुए बछडोंके हुंकार और कूदने फांदनेमें उत्सव हो गया है, ऐसे गोगोठमें पुष्यस्नान करना चाहिये ।।११।। अथवा जहां-पर कुशलसे आये हुए जहाज और रत्नोंके ढेर और घने निचुल (जलवेंत) वृक्ष और जलचर, श्वेत पक्षियोंके लीन होनेसे जहांका किनारा अनेक रंगका हो गया है, उस समुद्रके तीरपर पुष्यस्नान करना चाहिये ।।१२।। जिस प्रकार क्षमासे क्रोध जीत लिया जाता है, वैसेही जिस स्थानमें मृगीगण करके सिंह गिरता है, जहां पर पक्षी और मृगोंक बच्चे निडर होकर घूमते हैं वैसे आश्रयमें अथवा कांचीकलाप, नूपुर, बडे २ नितम्बों करके जिनके पाव फिसल रहे हैं अर्थात् मंदगतिशालिनी और कोयलके कूकनेके समान मधुर भाषण करनेवाली मृगनयनी ललनाओंसे श्रीमान् गृहमें यह शांति करनी चाहिये ।।१३।। ।।१४।। अथवा पवित्र देवमंदिरमें, तीर्थ या उद्यानके रमणीय स्थानमें या परिक्रमाकी रीति जिसका जल बहता हो, पूर्व व उत्तरकी ओरको बहती हुई, क्रमसे नीचेकी भूमिमें पुष्य-स्नान करना चाहिये ।।१५।। राख, कोयला, हड्डी, ऊषर, तुष, केश, गढा, जहां कांकडा रहता हो, हत्यारे जंतु और चूहोंके मदक जहां नहीं हों, जहांपर वमई न हो, जिस स्थानकी भूमि घनी, सुगन्धित, चिकनी, मधुर और बराबर हो वही भूमि विजयकी कारण है; छावनीमेंभी इसकी यथायोग्यसे योजना करनी चाहिये ।।१६।।१७।। दैवज्ञ, मंत्री और याजक लोग पुरसे निकलकर इन स्थानोंकी पूर्व उत्तर दिशामें या ईशानकोणमें जांय, उसके उपरान्त पुरोहित प्रणाम करके खीलें, अक्षत, दही और फूलोंसे बलिदान करे. इसका आवाहन मंत्र मुनियों ने इस प्रकारसे कहा है–"जो देवता लोग इसमें पूजा चाहते हैं, जो दिशा नाग ब्राह्मण व और जो कोई अंशके भागी हों, वह सबही आगमन करे" ।। १८ ।। १९ ।। २० ।। इसके उपरान्त पुरो-हित इस प्रकार सबको बुलाय ऐसा कहे,–" आप लोग आनेवाले कलको शुभ पूजा प्राप्त कर राजा को शांति दे चले जाय" ।। २१ ।। बुलाए देवताओंको पूजा करके सबको वह रात्रि वहीं पर बितानी चाहिये, रात्रिमें जो स्वप्न दिखाई दे, उसका शुभाशुभ फल निरूपण करना चाहिये यह विषय यात्राध्यायमें कहा है ।।२२।। दूसरे दिन प्रभातको कहे हुए द्रव्य लाय, उस पृथ्वीमें जाय जो जो करना चाहिये उस विषयमें मुनिके गाये ये श्लोक हैं–"विद्वान् पुरोहित वहांपर मंडल खेंचकर उसमें अनेक रत्नोंकी खानिवाली पृथ्वीको खैंच और विविध स्थानोंकी कल्पना करे और यथास्थानमें नाग, यक्ष, पितृ, गन्धर्व, अप्सरा मुनि और सिद्धोंको धरे. नक्षत्रोंके ग्रह, मातृ-काओंके साथ रुद्र, स्कन्द, विष्णु, विशाखा और लोकपालोंको व देवताओंकी स्त्रियोंको उचित स्थानमें बनावे, फिर उनको अनेक प्रकारके रंगोंसें रंगकर सुगन्धित और डोरेवाली मनोहर माला चन्दनादि मूल, मांसादि विविध भक्ष्य और शराब, दूध, आसवादि विविध मनोहर जलके पदार्थों से रीतिपूर्वक पूजा करे ।। २३ ।। २४ ।। २५ ।। २६ ।। २७ ।। २८ ।। इसमें अभिलषित देवताओंकी जैसे पूजा करनी चाहिये, सो मैं कहता हूँ, ग्रहयज्ञमें ग्रहों की पूजामें जो विधि कही है, यहांपर वही कर्तव्य है ।। २९ ।। उसमें मांस, पका हुआ अन्न और मत्स्यादिसे पिशाच, दैत्य और दानवोंकी पूजा करनी चाहिये, अभ्यञ्जन, अञ्जन, तिल मांस और रंधे हूए अन्नसे पितरोंकी पूजा करनी चाहिये ।। ३० ।। साम, यजु और ऋङमन्त्रसे गन्धयुक्त धूप और मालासे मुनिगण और अनेक वर्ण व त्रिमधुसे नागकी पूजा करनी चाहिये ।। ३१ ।। धूप घीकी आहुति, माला, रत्न स्तुति व प्रणाम करके देवताओंको व अत्युत्तम गन्धयुक्त गन्धद्रव्य और मालसे गन्धर्व और अप्स-राओंकी पूजा करे ।।३२।। शेष सबकी सार्ववर्णिक बलिसे पूजा करे, प्रतिसर (हारकी लकडी),

वस्त्र, पताका, भूषण और यज्ञोपवीत सबको ही अर्पण करे ॥ ३३ ॥ मण्डलके पश्चिमभागमें अथवा दक्षिणदिशामें वेदीके ऊपर अग्नि स्थापन करके कुश और सब सामग्रीका दान करे खीलें घी, चावल, दही, मधु, सिद्धर्थक, फूलमाला, धूप, गोरोचन अञ्जन, तिल, ऋतुके उत्पन्न हुए मधुर फल और घी व खीरसे भरी हुई सरइयोंको इस समस्त सामग्रीके साथ अर्पण करे, प्रधान-वेदीके पश्चिममें जो वेदी हो उसकी ही पूजा करनी चाहिये, वही वेदी स्नानवेदी है ॥ ३४ ॥ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ समस्त मजबूत कलशोंके गलेमें सूत बांध, दुधारे वृक्षके पत्ते और फलसे ढककर उस वेदीके चारों कोनोंमें व्यवस्थासे रक्खे, सब कलशोंके पुष्यस्नानके विधानमें कहे हुए पदार्थों से मिले जलसे भरकर उसमें सब रत्न डाले, गर्गमुनिने जो पुष्यस्नानकी सामग्री कही है वह यह है-"कंगनी, त्रायमाण, अभया (हर्र) अपराजिता (कोयल), जीवा (वच), विश्वेश्वरी (सोंठ), पाठा (पाढ,) समंगा (परसन), (कोयल) भंग, सहा (ककुडी) (सहदेवी) (सह-देई), पूर्णकोशा (नागरमोथा), शतावरी, अरिष्टिका (रीठा), शिवा, भद्रा (मोथा), अजा (औषधिविशेष), क्षेमा (चोरनामक गन्धद्रव्य), ब्राह्मी (विमी), सर्वबीज, सुवर्ण, मंगलके द्रव्य, सब प्रकारकी औषधियें, रस, रत्न, सब प्रकारके गन्धद्रव्य, बैल, विकंकत (कंधी), प्रशस्त, नामक औषधि, सुवर्ण और मंगलमय जो कुछ द्रव्य पाये जांय वह समस्त इन कलशोंमें डालने चाहिये ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ जो बैल बहुत बूढा होकर मरा है, ऐसे उत्तम लक्षणवाले बैलके चर्मकी गर्दन पूर्वकी ओर करके प्रथम बिछावै ॥ ४३ ॥ फिर योद्धा बैलके लाल साबत चमडे बिछावे. उसके ऊपर सिंहका और उसके ऊपर व्याघ्रका चमडा बिछावे. जब पुष्य नक्षत्र और श्रेष्ठ मुहुर्त आवे तब यह चार प्रकारके चर्म उस वेदीपर बिछावे ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ सुवर्ण, चांदी और तांवेका बना हुआ सुन्दर आसन या दुधारे वृक्षके काठका बना हुआ हुआ सुन्दर आसन इन चमडोंके ऊपर बिछावे. इस आसनकी ऊँचाई तीन प्रकारकी होती है- एक हाथ, सवा हात और डेढ हाथ सब आसन इस प्रकार कहे अनुसार ऊँचे हों और बिछे तो राज्य के चाहनेवाले समस्त राजाओंको माण्डलिकान्तरजित् अर्थात् जयशील और शुभदायी होते हैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ श्रेष्ठ मनवाला राजा स्वर्णसे ढककर सचिव, आप्त, पुरोहित, दैव, पौर और कल्याण नामसे घिरकर उस आसनपर बैठे ॥ ४८ ॥ बन्दिजन, और पुरवासियोंकी उत्सव-ध्वनि, ब्राह्मणोंके द्वारा उच्चारण किया हुआ पुण्यशब्द और मृदंग, शंख व तुर्रहीका मंगलशब्द राजाके अनिष्टका नाश करता है ॥ ४९ ॥ फिर साबत रेशमीन वस्त्र पहरनेवाले बलिदान और पूजाकारी राजाको कम्बलसे भली भांति ढककर, घृतपूर्ण कलशसे पुरोहित राजाको अभिषेक करे ॥ ५०॥ आठ अट्ठाईस या एक सौ आठ कलश हों कलश जितने अधिक होंगे उतनाही गुण अधिक बढेगा, इस विषयमें मुनिका कहा हुआ यह मंत्र है,-"आज्य (घी) ही परम तेज है, आज्यही, श्रेष्ट और पापका नाश करनेवाला है, आज्यही देवताओंका आहरा और समस्त लोक आज्यमें ही प्रतिष्ठित हो रहे हैं, हे राजन ! भौम, आन्तरिक्ष और दिव्य जो समस्त पाप आपको उपर स्थित हुए हैं, वह समस्त आज्यको छूकर नाशको प्राप्त होते हैं" ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ फिर पुरोहित राजाके शरीरसे कम्बलको उतारकर फल और पुष्ययुक्त पुष्यस्नानके जलमें राजाका अभिषेक करे, उस विषयका मंत्र यह है-"ब्रह्मा, विष्णु, शम्भु, मरुद्गण, साध्य और जो देवता सिद्ध व पुरातन है वह तुम्हारा अभिषेक करे, आदित्य, वशु, रुद्र, वैद्योंमें श्रेष्ठ दोनों अश्विनी-कुमार, देवताओंकी माता अदिति, स्वाहा, सिद्धि, सरस्वती, कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, श्री, सिनी-वाली, कुहू, दनु, सुरसा, विनता, कद्रु, देवताओंकी मातायें और दिव्य अप्सरायें यह सब तुम्हारा

अभिषेक करें, नक्षत्र, मुहुर्त, पक्ष, दिवा, रात्रि, सन्ध्या, संवत्सर, श्रेष्ठ दिन, कला, काष्ठा, क्षण और लव आदि कालके शुभ अंग तुम्हारा अभिषेक करें, विमानमें बैठनेवाले देवतागण, सागर, मनु, स्त्रियोंके साथ सातों ऋषि, समस्त ध्रुवस्थान, मरीचि, अत्रि, पुलह पुलस्त्य, ऋतु, अंगिरा भृगु, सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, दक्ष, जैगीषव्य, भगन्दर, एकत, द्वित, त्रित, जाबालि, कश्यप, दुर्विनीत, दुर्वासा, कण्व, कात्यायन, दीर्घतपा, मार्कण्डेय, शुनःशेफ, विदूरथ, ऊर्ध्व, संवर्त्तक, च्यवन, अत्रि, परासर, द्वैपायन, यवक्रीत, अनुजके साथ देवराज, शिष्य और भार्याके साथ और वेद पढनेवाले मुनिगण जो तपस्वी हैं समस्त पर्वत और वृक्ष, बेलें और पवित्र देवमन्दिर तुम्हारा अभिषेक करें। महाभागा नदी, नाग, किम्पुरुषगण, वानप्रस्थ धर्मावलम्बी और आकाशवासी महाभागवाले द्विजगण, प्रजापति, दिति, दैत्यकी माता, सब गायें, समस्त दिव्य वाहन, समस्त चराचर लोक, अग्निगण, पितृ, तारा, समस्त मेघ, आकाश, सब दिशायें, जल और बहुपुण्यसंकीर्तन, शुभदायी सर्व प्रकारके उत्पातोंको दूर करनेवाले जल तुम्हारा अभिषेक करें और तुमको कल्याण, आयु और आरोग्य दान करें" ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ ५९ ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ ६५ ॥ ६६ ॥ ६७ ॥ ६८ ॥ ६९ ॥ ७० ॥ रुद्रों करके युक्त कौष्माण्ड, महारौहिण, कुबेरादि, मनोहर अथर्वकल्पके कहे हुए मंत्र यह मंत्र व और सब समृद्धियोंसे अभिषेक करें, "आपोहिष्ठा" आदि तीन ऋक्, और "हिरण्यवर्णादि" चार रुक् जप करे. फिर राजा स्नान करके दो कपासी वस्त्रोंको पहिरे ॥ ७१ ॥ ७२ ॥ उसके उपरान्त राजा पुण्याहवाचन और शंखशब्दसे आचमन करके देव, गुरु और ब्राह्मणोंकी पूजा करनेके पश्चात् छत्र, ध्वज और समस्त शस्त्रोंका अपनी पूजामें करे ॥ ७३ ॥ "आयुष्यं वर्च्चस्यं रायस्पोषाः" अलंकारोंपर इन ऋचोंका जप करनेसे राजा विजयके नये अलंकार धारण करे ॥ ७४ ॥ फिर राजा दूसरी वेदीमें जाकर पहले कहे हूए सब चमडोंके ऊपर बैठे. आगे कहे हुए चर्म ऊपर ऊपर देना चाहिये ॥ ७५ ॥ बैल, बिलाव, रुरु; पृषत् (हरिण), सिंह और व्याघ्रका चर्म एकके ऊपर एक इस प्रकारसे रखे ॥ ७६ ॥ पुरोहितको चाहिये कि वेदीके मध्यमें शम्भु, इन्द्र, बृहस्पति, नारायण और वायुके ऋक् करके समिध तिल और घृतकी अग्निसे आहुति दे ॥ ७७ ॥ इन्द्रध्वजके अध्यायमें कहे हुए अग्निके सब निमित्त दैवज्ञ कहे और सबको समाप्त करके पुरोहित हाथ जोड़कर कहे–"हे देवताओं ! आप सब देवता राजासे पूजा प्राप्त करके महान् सिद्धि देकर पुनः आगमनके लिये गमन करें" ॥ ७८ ॥ ७९ ॥ फिर राजाको चाहिये कि दैवज्ञ और पुरोहितको बहुतसा धन देकर पूजा करे, दक्षिणा योग्य और श्रोतिय आदिको यथायोग्य पूजे ॥ ८० ॥ प्रजाओंको अभय आघात (वधके) स्थानमें गये हूए पशुओंको छोड़कर, अभ्यन्तर दीष करनेवालेके सिवाय और सबके बन्धन छोडकर देवे ॥ ८१ ॥ हरेक पुष्यनक्षत्रमें सुख, यश और धनकी बढानेवाली यह शान्ति करनी चाहिये. जो पूषमासकी पूर्णिमामें पुष्य नक्षत्र न हो तो वह आधे फलकी देनेवाली है. इसमें जो शान्ति करनी चाहिये सो पहिले कही है ॥ ८२ ॥ राज्यमें उत्पात या और प्रकारके उपसर्ग हों अथवा राहु केतुके दर्शनसे या ग्रहोंके सतानेपर पुष्यस्नान करना चाहिये ॥ ८३ ॥ इस पृथ्वीमें ऐसा कोई उत्पात नहीं है, जो इस शान्तिसे दूर न हो जाय और ऐसा अमंगलभी नहीं, है, जो इस शान्तिको लांघनेमें समर्थ होवे ॥ ८४ ॥ इस कारण राज्यपर बैठनेकी इच्छा करनेवाले, पुत्रका जन्म चाहनेवाले राजाके लिये अभिषेककी यह विधिही सबसे पहले श्रेष्ठ है ॥ ८५ ॥ बडी कीर्तिवाले बृहस्पतिजीने इन्द्रके लिये इसको कहा है. यह उत्तम पुष्यस्नानविधि आयुः-

प्रजाको बढानेवाली और सौभाग्यकी बढानेवाली है ।। ८६ ।। जो राजा इस विधानसे हाथी और घोडोंको स्नान कराता है, पाप छूटकर उसको श्रेष्ठ सिद्धि प्राप्त होती है ।। ८७ ।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायामष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ।।४८।।

अथैकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः

पट्टलक्षणम्

विस्तरशो निर्दिष्टं पट्टानां लक्षणं यदाचार्यैः । तत्संक्षेपः क्रियते मयात्र सकलार्थसम्पन्नः ।।१।। पट्टः शुभदो राज्ञां मध्येऽष्टावंगुलानि विस्तीर्णः । सप्त नरेन्द्रमहिष्याः षड् युवराजस्य निर्दिष्टः ।।२।। चतुरंगुलविस्तारः पट्टः सेनापतेर्भवति मध्ये । द्वे च प्रसादपट्टः पञ्चैते कीर्तिताः पट्टाः ।।३।। सर्वे द्विगुणायामा मध्यादर्धेन पार्श्वविस्तीर्णाः । सर्वे च शुद्धकाञ्चनविनिर्मिताः श्रेयसो वृद्ध्यै ।।४।। पञ्चशिखो भूमिपतेस्त्रिशिखो युवराजपार्थिवमहिष्योः । एकशिखः सैन्यपतेः प्रसादपट्टो विना शिखया ।।५।। क्रियमाणं यदि पत्रं सुखेन विस्तारमेति पट्टस्य । वृद्धिजयौ भूमिपतेस्तथा प्रजानां च सुखसम्पत् ।।६।। जीवितराज्यविनाशं करोति मध्ये व्रणः समुत्पन्नः । मध्ये स्फुटितस्त्याज्यो विघ्नकरः पार्श्वयोः स्फुटितः ।।७।। अशुभनिमित्तोत्पत्तौ शास्त्रज्ञः शान्तिमादिशेद्राज्ञः । शस्तनिमित्तः पट्टो नृपराष्ट्रविवृद्धये भवति ।।८।। इति श्रीवराहमिहिरकृतौबृहत्सं० पट्टलक्षणंनामैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।४९।।

आचार्योंने विस्तारसे पट्टके जो लक्षण कहे हैं, सर्व अर्थवाले वही लक्षण संक्षेपसे कहे जाते हैं ।। १ ।। बीचसे आठ अंगुलके विस्तारवाला मुकुट राजाओंको शुभदायी होता है; सात अंगुल विस्तारवाला हो तो रानीको और छः अंगुलके विस्तारवाला हो तो युवराजको शुभ होता है ।। २ ।। बीचमें चार अंगुलके विस्तारवाला मुकुट सेनापतिको शुभदायी होता है, दो अंगुलके विस्तारवाला पट्ट प्रसाद-मुकुट कहा जाता है. यह पांच प्रकारके मुकुट कहे गये ।। ३ ।। समस्त मुकुटही विस्तारसे दूने दीर्घ हों और उनका पार्श्व विस्तारसे आधा हो, समस्त शुद्ध कांचनके बने हों तो शुभको बढाते हैं ।। ४ ।। पांच शिखावाला मुकुट राजाको, तीन शिखावाला मुकुट युवराज और रानीको और एक शिखावाला मुकुट सेनापतिको शुभदायी है और विना शिखा का प्रसाद-मुकुट भी शुभदायी होता है ।।५।। जो मुकुट के बनाये हुए पत्र सुखसे फैल जायँ तो राजाकी वृद्धि व जय और प्रजाको सुख सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है ।। ६ ।। पत्रमें दाग हों तो जीव और राज्यका नाश हो और बीचमें फूटा हुआ हो तो त्याग कर देना उचित है, उसकी दोनों बगलें फटीं हों तो विघ्नकारी होता है ।। ७ ।। इस प्रकार अशुभ निमित्तकी उत्पत्तिमें शास्त्रके जाननेवाले शान्तिकी आज्ञा दें, जिस मुकुटमें किसी प्रकारके अशुभ चिह्न नहीं होते, उसके धारण करनेसे राजाका राज्य बढता है ।। ८ ।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्ररचितायां हिन्दीटीकायांमेकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ।। ४९ ।।

अथ पंचाशत्तमोऽध्यायः

खड्गलक्षणम्

अंगुलशतार्धमुत्तम ऊनः स्यात्पञ्चविंशति खड्गः। अंगुलमानाज्ज्ञेयो व्रणोऽशुभो विषमपर्वस्थः ॥१॥ श्रीवृक्षवर्द्धमानातपत्रशिवलिङ्गकुण्डलाब्जानाम्। सदृशा व्रणाः प्रशस्ता ध्वजायुधस्वस्तिकानां च ॥२॥ कृकलासकाककङ्ककव्यादकबन्धवृश्चिकाकृतयः। खड्गे व्रणा न शुभदा वंशानुगाः प्रभूताश्च ॥३॥ स्फुटितो ह्रस्वः कुण्ठो वंशच्छिन्नो न दृङ्मनोऽनुगतः। अस्वन इति चानिष्टः प्रोक्तविपर्यस्त इष्टफलः ॥४॥ क्वणितं मरणायोक्तं पराजयाय प्रवर्तनं कोशात्। स्वयमुद्गीर्णे युद्धं ज्वलिते विजयो भवति खड्गे ॥५॥ नाकारणं विवृणुयान्न विघट्टयेच्च पश्येन्न तत्र वदनं न वदेच्च मूल्यम्। देशं न चास्य कथयेत् प्रतिमानयेच्च नैव स्पृशेन्नृपतिरप्रयतोऽसियष्टिम् ॥६॥ गोजिह्वासंस्थानो नीलोत्पलवंशपत्रसदृशश्च। करवीरपत्रशूलाग्रमण्डलाग्राः प्रशस्ताः स्युः ॥७॥ निष्पन्नो न च्छेद्यो निकषैः कार्यः प्रमाणयुक्तः सः। मूले म्रियते स्वामी जननी तस्याग्रतश्छिन्ने ॥८॥ यस्मिन्त्सरुप्रदेशे व्रणो भवेत्तद्वदेव खड्गस्य। वनितानामिव तिलको गुह्ये वाच्यो मुखे दृष्टा वा ॥९॥ अथवा स्पृशति यदङ्गं प्रष्टा निस्त्रिंशभृत्तदवधार्य। कोशस्थस्यादेश्यो व्रणोऽस्ति शास्त्रं विदित्वेदम् ॥१०॥ शिरसि स्पृष्टे प्रथमेऽङ्गुले द्वितीये ललाटसंस्पर्शे। भ्रूमध्ये च तृतीये नेत्रे स्पृष्टे चतुर्थे च ॥११॥ नासोष्ठकपोलहनुश्रवणग्रीवांसकेषु पञ्चाद्याः। उरसि द्वादशसंस्थस्त्रयोदशे कक्षयोर्ज्ञेयः ॥१२॥ स्तनहृदयोदरकुक्षीनाभीषु चतुर्दशादयो ज्ञेयाः। नाभीमूले कट्यां गुह्ये चैकोनविंशतितः ॥१३॥ ऊर्वोर्द्वाविंशे स्यादूर्वोर्मध्ये व्रणस्त्रयोविंशे। जानुनि च चतुर्विंशे जङ्घायां पञ्चविंशे च ॥१४॥ जङ्घामध्ये गुल्फे पार्ष्ण्यां पादे तदंगुलीष्वपि च। षड्विंशतिकाद्यावत्त्रिंशदिति मतेन गर्गस्य ॥१५॥ पुत्रमरणं धनाप्तिर्धनहानिः सम्पदश्च बंधश्च। एकाद्यंगुलसंस्थैर्व्रणैः फलं निर्दिशेत् क्रमशः ॥१६॥ सुतलाभः कलहो हस्तिलब्धयः पुत्रमरणधनलाभौ। क्रमशो विनाशवनिताप्तिचित्तदुःखानि षट्प्रभृति ॥१७॥ लब्धिर्हानिस्त्रीलब्धयो वधो वृद्धिमरणपरितोषाः। ज्ञेयाश्चतुर्दशादिषु धनहानिश्चैकविंशे स्यात् ॥१८॥ वित्ताप्तिरनिर्वाणं धनागमो मृत्युसंपदोऽस्वत्वम्। ऐश्वर्यमृत्युराज्यानि च क्रमात्त्रिंशदिति यावत् ॥१९॥ परतो न विशेषफलं विषमसमुत्थास्तु पापशुभफलदाः। कैश्चिदफलाः प्रदिष्टास्त्रिंशत्परतोऽग्रमिति यावत् ॥२०॥ करवीरोत्पलगजमदघृतकुंकुमकुन्दचम्पकसगन्धः। शुभदोऽनिष्टो गोमूत्रपङ्कमेदःसदृशगन्धः ॥२१॥ कूर्मवसासृक्क्षारोपमश्च भयदुःखदो भवति गन्धः। वैदूर्यकनकविद्युत्प्रभो जयारोग्यवृद्धिकरः ॥२२॥ इदमौशनसं च शस्त्रपानं रुधिरेण श्रियमिच्छतः प्रदीप्ताम्। हविषा गुणवत्सुताभिलिप्सोः सलिलेनाक्षयमिच्छतश्च वित्तम् ॥२३॥ वडवोष्ट्रकरे-

णुदुग्धपानं यदि पापेन समीहतेऽर्थसिद्धिम् । झषपित्तमृगाश्ववस्तुदुग्धैः करिहस्तच्छिदये सतालगर्भैः ॥२४॥ आर्कंपयो हुडुविषाणमषीसमेतं पारावताखुशकृता च युतं प्रलेपः । शस्त्रस्य तैलमथितस्य ततोऽस्य पानं पश्चाच्छितस्य न शिलासु भवेद्विघातः ॥२५॥ क्षारे कदल्या मथितेन युक्ते दिनोषिते पायितमायसं यत् । सम्यक् छितं चाश्मनि नैति भङ्गं न चान्यलोहेष्वपि तस्य कौण्ठ्यम् ॥२६॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० खङ्गलक्षणं नाम पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

पचास अंगुलके प्रमाणका खङ्ग उत्तम है, पच्चीस अंगुलके परिणामका खङ्ग अधम है. अंगुलिके परिमाणसे इसमें व्रणको जानना चाहिये, यदि विषम अंगुलिके परिमाणमें अर्थात् ३।५।७।९ आदिमें व्रण हो तो अशुभ है ॥ १ ॥ श्रीवृक्ष, वर्द्धमान, आतपत्र, शिवलिङ्ग, कुंडल, कमल, ध्वज, आयुध और स्वस्तिकका समान दाग शुभदायी है ॥ २ ॥ गिरगिट, काक, गिद्ध, क्रव्याद, कबन्ध वा बिच्छूके आकारका अथवा बांसके समान बहुतसे दागवाला खङ्ग शुभदायी नहीं होता ॥ ३ ॥ फूटा हुआ, छोटा, खुटला, वंशछिन्न, दृष्टि और मनको न अच्छा लगने वाला और शब्दरहित खङ्ग अनिष्टकारी है, इससे विपरीत हो तो इष्टफलका देनेवाला है ॥४॥ अचानक खङ्गमेंसे शब्द हो तो मरणका कारण है, म्यानसे खटखटाने पर पराजय, स्वयं म्यानसे निकल पडे तो युद्ध और प्रकाशमान हो तो विजय होती है ॥ ५ ॥ राजाको चाहिये कि वृथा खङ्गको न म्यानसे निकाले या न हिलावे डुलावे, उसमें मुख न देखे, उसका मूल्य न कहे इसकी उत्पत्तिका देश न बतावे और अपवित्र होकर उसको नहीं छुए ॥ ६ ॥ गायकी जीभके समान आकारवाला, नीले कमल और वंशके पत्रके समान, कनेरके पत्तेके समान, शूलाग्र और मंडलाग्र यही सब खड्ग अच्छे हैं ॥ ७ ॥ ऊपर कहे हुए प्रमाणवाले खड्गोंका कसौटीसे परीक्षा करना या काटना उचित नहीं है, खङ्गकी नोक टूट जाय तो खङ्गके स्वामीकी और मूठ टूट जाय तो खड्ग के मालिककी माता मरे ॥ ८ ॥ जिस प्रकार स्त्रियों के मुखपर तिल देखकर उनके गुप्तस्थानमें भी तिल कहे जा सकते हैं, वैसेही खड्गकी मूठमें हुए दागोंको देखकर खड्गमें व्रण कहे जा सकते हैं ॥ ९ ॥ खड्गधारी पूछनेवाला (इस खड्गके किस स्थानमें व्रण है बताओ ऐसा पूछकर) जिस अंगको छुए दैवज्ञ उसका निश्चय करके इस शस्त्रज्ञानके शास्त्रके अनुसार स्थानमें पडे हुए खङ्गमें कहां २ व्रण हैं सो बता सकेगा ॥ १० ॥ जो पूछनेके समय प्रश्नका करनेवाला मस्तकको छुए तो कहना चाहिये कि खङ्गके प्रथम अंगुलमें व्रण है, ललाट छुए तो दूसरे अंगुलमें, भौंवोके बीचमें छुए तो तीसरे अंगुलमें, नेत्रोंको छुए तो चौथे अंगुलमें व्रणका होना कहना चाहिये ॥ ११ ॥ जो प्रश्न करनेवाला नासिका ओठ, गाल, ठोडी, कान, गरदन या अंसकन्ध स्थानोंको छुए तो क्रमसे पांचवें, छठे, सातवें, आठवें, नववें, दशवें और ग्यारहवें अंगुलमें व्रणका होना बताना चाहिये, उसके छूनेसे बारह अंगुलमें और दोनो कोखोंके छूनेसे तेरह अंगुलके स्थानमें व्रणका होना बतावे ॥ १२ ॥ स्तन, हृदय, उदर, कोख या नाभीका स्पर्श करने से क्रमानुसार चौदहसे लेकर अठारह अंगुलतकके स्थानमें व्रण बतावे. नाभिकी जडमें, कमर या गुह्यस्थानके स्पर्श करनेसे क्रमानुसार उन्नीस वीस और इक्कीस अंगुलमें व्रण होता है ॥ १३ ॥ दोनों ऊरुके स्पर्श करनेसे २२ वें अंगुल में और दोनों ऊरुओंका मध्य स्थान स्पर्श करनेसे २३ वें अंगुलमें व्रण होता है, जानुके स्पर्शसे २४ और जंघाके स्पर्शसे २५ अंगुलमें व्रण होता है ॥ १४ ॥ उस कालमें जो पूछनेवाला दो जांघोंके मध्यमें, टंकना, एडी पांव और पांवोंकी अंगुली इनमेंसे किसी अंगको स्पर्श करे तो क्रमानुसार

छब्बीस अंगुलसे लेकर तीस अंगुलतकके स्थानमें व्रणका होना निरूपण करे, यह गर्गाचार्यका मत कहा गया ।। १५ ।। जो खड्गका व्रण एक अंगुलसे लेकर पांच अंगुलतक हो तो क्रमानुसार यह फल होता है,—पुत्रमरण, धनलाभ, धनहानि, सम्पत्ति और बन्धन ।। १६ ।। पुत्रलाभ, क्लेश, हस्तिलाभ, पुत्रमरण धनलाभ, विनाश, स्त्रीप्राप्ति और चित्तको दुःख यह क्रमानुसार षडादि अंगुलके व्रणका फल है ।। १७ ।। लाभ, हानि, स्त्रीलाभ, वध, वृद्धि, मरण और संतोष यह फल क्रमानुसार चौदहसे लेकर २० अंगुलमें व्रण हो तो उसके फल जानने चाहिये, २१ अंगुल में व्रण होनेसे धनकी हानि होती है ।। १८ ।। धनकी प्राप्ति, अनिर्वाण, धनागम, मृत्यु, सम्पत्ति, निर्धनता, ऐश्वर्य, मृत्यु और राज्य यह फल क्रमशः बीस अंगुलसे लेकर तीस अंगुलि तक नौ अंगुलवाले व्रणका फल है ।। १९ ।। इसके पीछे और कोई फल नहीं कहा है तोभी विषम अंगुलमें व्रणका होना अशुभ फल और सममें होनेसे शुभ फल देता है और कोई कहते हैं कि तीस अंगुलके पश्चात् शेषतक किसी स्थानमें व्रण हो तो किसी प्रकारका विशेष फल नहीं होता ।। २० ।। कनेर, उत्पल, हाथीका मद, घी, कुंकुम, कुन्द, या चम्पाके समान गन्धवाला खड्ग हो तो शुभ फलदायी होता है, परन्तु गोमूत्र पंक, या मेदकी समान गन्ध आती हो तो अनिष्टकारी होता है ।। २१ ।। कूर्म, बसा, रक्त या क्षारके समान गन्ध आनेसे भय और दुःखका देनेवाला होता है जो खड्गमें बैदूर्य, सुवर्ण और बिजलीके समान चमक हो तो जय और आरोग्यका बढानेवाला होता है ।। २२ ।। जिनको लक्ष्मी प्राप्त करनेकी इच्छा है, उनको अपने शस्त्रोंका रुधिरसे पान देना चाहिये । गुणवान पुत्र प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवालेके शस्त्रपर घृतसे पान देने और अक्षय वित्त चाहनेवालेके खड्गपर जलका पान होना चाहिये ऐसा शुक्राचार्यके बनाये शास्त्र-का मत है ।। २३ ।। जो घोडी, ऊंटनी और हथनीके दूधसे पान दी जाय तो पापकार्यसे भली भांति अर्थकी सिद्धि होती है, मत्स्यपित्त, मृग, अश्व और छाग दुग्धके साथ तालमेथीके रसमें पान देनेसे हाथीकी शुंडभी काट डाली जा सकती है ।। २४ ।। पहिले शस्त्रपर तेल मले फिर आग वृक्षका गोंद, मेषके सींगकी भस्म और कबूतर व चूहेके बीट मिलाकर शस्त्रके ऊपर लेप करे, फिर उसको तेज करके पत्थरके भी ऊपर मारे तो भी उसकी धार नहीं टूटती है ।। २५ ।। कदली वृक्षका (मूलका) क्षार और मट्ठा मिलाकर एक दिन रख छोडे फिर लोहेका बना हुआ खड्ग उसको पिये, फिर उस खड्गको शान देकर पत्थर पर भी मारे तो वह नहीं टूटेगा और लोहे पर भी मारनेसे वह खड्ग खुटला नहीं होगा ।। २६ ।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिंन्दीटीकायां पंचाशत्तमोऽध्यायः ।। ५० ।।

अथैकपंचाशत्तमोऽध्यायः

अंगविद्या[1]

दैवज्ञेन शुभाशुभं दिगुदितस्थानाहृतानीक्षता वाच्यं प्रष्टृनिजापराङ्गघटनां चालोक्य कालं धिया। सर्वज्ञो हि चराचरात्मकतयासौ सर्वदर्शी विभुश्चेष्टाव्याहृतिभिः शुभाशुभफलं सन्दर्शयत्यर्थिनाम् ॥१॥ स्थानं पुष्पसुहासिभूरिफलभृत्सुस्निग्धकृत्तिच्छदासत्पक्षिच्युतशस्तसंज्ञिततरुच्छायोपगूढं समम्। देवर्षिद्विजसाधुसिद्धनिलयं सत्पुष्पसस्योक्षितं सत्स्वादूदकनिर्मलत्वजनिताह्लादं च सच्छाड्वलम् ॥२॥ छिन्नभिन्नकृमिखातकण्टकिप्लुष्टरूक्षकुटिलैर्न सत् कुजैः। क्रूरपक्षियुतनिन्द्यनामभिः शुष्कशीर्णबहुपर्णमर्मभिः ॥३॥ श्मशानशून्यायतनं चतुष्पथं तथा मनोज्ञं विषमं सदोषरम्। अवस्कराङ्गारकपालभस्मभिश्चितं तुषैः शुष्कतृणैर्न शोभनम् ॥४॥ प्रव्रजितनग्नापितरिपुबन्धनसूनिकैस्तथा श्वपचैः। कितवयतिपीडितैर्युतमायुधमाध्वीकविक्रयैर्न शुभम् ॥५॥ प्रागुत्तरेशाश्च दिशः प्रशस्ताः प्रष्टुर्न वाय्वम्बुयमाग्निरक्षः। पूर्वाह्णकालेऽस्ति शुभं न रात्रौ सन्ध्याद्वये प्रश्नकृतोऽपराह्णे ॥६॥ यात्राविधाने हि शुभाशुभं यत् प्रोक्तं निमित्तं तदिहापि वाच्यम्। दृष्ट्वा-पुरो वा जनताहृतं वा प्रष्टुः स्थितं पाणितलेऽथ वस्त्रे ॥७॥ अथाङ्गान्यूर्वोष्ठस्तनवृषणपादं च दशना भुजौ हस्तौ गण्डौ कचगलनखांगुष्ठमपि यत्। सशंखंकक्षांसश्रवणगुदसंधीति पुरुषे स्त्रियां भ्रूनासास्फिग्वलिकटिसुलेखांगुलिचयम् ॥८॥ जिह्वा ग्रीवा पिण्डिके पार्ष्णियुग्मं जंघे नाभिः कर्णपाली कृकाटी। वक्त्रं पृष्ठं जत्रुजान्वस्थिपार्श्वं हृत्ताल्वक्षी मेहनोरस्त्रिकं च ॥९॥ नपुंसकाख्यं च शिरो ललाटमास्याद्यसंज्ञेरपरैश्चिरेण। सिद्धिर्भवेज्जातु नपुंसकैर्नो रूक्षक्षतैर्भग्नकृशैश्च पूर्वैः ॥१०॥ स्पष्टे वा चालिते वापि पादांगुष्ठेऽक्षिरुग्भवेत्। अंगुल्यां दुहितुः शोकं शिरोघाते नृपाद्भयम् ॥११॥ विप्रयोगमुरसि स्वगात्रतः कर्पटाहृतिरनर्थदा भवेत्। स्यात्प्रियाप्तिरभिगृह्य कर्पटं पृच्छतश्चरणपादयोजितुः ॥१२॥ पादांगुष्ठेन विलिखेद्भूमिं क्षेत्रोत्थचिन्तया। हस्तेन पादौ कण्डूयेत्तस्य दासीमया च सा ॥१३॥ तालभूर्जपटदर्शनेऽशुकं चिन्तयेत्कचतुषास्थिभस्मगम्। व्याधिराश्रयति रज्जुजालकं वल्कलं च समवेक्ष्य बंधनम् ॥१४॥ पिप्पलीमरिचशुण्ठिवारिदै रोध्रकुष्ठवसनाम्बुजीरकैः। गन्धमांसिशतपुष्पया वदेत् पृच्छतस्तगरकेण चिन्तनम् ॥१५॥ स्त्रीपुरुषदोषपीडितसर्वाध्वसुतार्थधान्यतनयानाम्। द्विचतुष्पदक्षिणीतीनां विनाशतः कीर्तितैर्दृष्टैः ॥१६॥

---

१ अंगविद्यापिटकलक्षणं चेतिद्वावध्यायौ न सर्वदादिसम्मतौ। यतोऽङ्गविद्याप्रारंभे, अतः केचिदङ्गविद्यां पठन्ति। आचार्येण प्रागेवोक्तं 'वास्तुविद्याङ्गविद्येति' तस्मादस्माभिर्व्याख्यायते' इति, पिटकलक्षणप्रारंभे च "–अतः परमपि केचित् पिटकलक्षणं पठन्ति। तदप्यस्माभिर्व्याख्यायते' इति टीकाकृता महोत्पलेनोक्तम्। तेनाध्यायसंख्या च न कृता।

न्यग्रोधमधुकतिन्दुकजम्बूप्लक्षाम्रबदरिजातिफलैः । धनकनकपुरुषलोहांशुकरूप्योदुम्बराप्तिरपि करगैः ॥१७॥ धान्यपरिपूर्णपात्रं कुम्भः पूर्णः कुटुम्बवृद्धिकरौ। गजगोशुनां पुरीषं धनयुवतिसुहृद्विनाशकरम् ॥१८॥ पशुहस्तिमहिषपङ्कजरजतव्याघ्रैर्लभेत सन्दृष्टैः। अविधननिवसनमलयजकौशेयाभरणसंघातम् ॥१९॥ पृच्छा वृद्धश्रावकसुपरिव्राड्दर्शने नृभिर्विहिता। मित्रद्यूतार्थंभवा गणिकानृपसूतिकार्थंकृता ॥ २० ॥ शाक्योपाध्यायार्हतनिर्ग्रन्थनिमित्तनिगमकैवर्तैः। चौरचमूपतिवणिजां दासीयोद्धापणस्थवध्यानाम् ॥२१॥ तापसे शौण्डिके दृष्टे प्रोषितः पशुपालनम्। हृद्गतं पृच्छकस्य स्यादुञ्छवृत्तौ विपन्नता ॥२२॥ इच्छामि प्रष्टुं भण पश्यत्वार्य समादिशेत्युक्ते। संयोगकुटुंबोत्था लाभैश्वर्योद्गता चिन्ता ॥ २३ ॥ निर्दिशेति गदिते जयाध्वगा प्रत्यवेक्ष्य मम चिन्तितं वद। आशु सर्वजनमध्यगं त्वया दृश्यतामिति बन्धुचौरजा ॥२४॥ अन्तःस्थेऽङ्गे स्वजन उदितो बाह्यजे बाह्य एवं पादांगुष्ठांगुलिकलनया दासदासीजनः स्यात्। जंघे प्रेष्यो भवति भगिनी नाभितो हृत्स्वभार्या पाष्र्ण्यंगुष्ठांगुलिचयकृतस्पर्शने पुत्रकन्ये ॥२५॥ मातरं जठरे मूर्ध्नि गुरुं दक्षिणवामकौ। बाहू भ्राताथ तत्पत्नी स्पृष्ट्वैवं चौरमादिशेत् ॥२६॥ अन्तरङ्गमवमुच्य बाह्यांगस्पर्शनं यदि करोति पृच्छकः। श्लेष्ममूत्रशकृतस्त्यजन्नधः पातयेत्करतलस्थवस्तु चेत् ॥२७॥ भृशमवनमिताङ्गपरिमोटनतोऽप्यथवाजनधृतरिक्तभाण्डमवलोक्य च चौरजनम्। हृतपतितक्षतास्मृतविनष्टभग्नगतोन्मुषितमृताद्यनिष्टरवतो लभते न हृतम् ॥ २८ ॥ निगदितमिदं यत्तत्सर्वं तुषास्थिविषादिकैः सह मृतिकरं पीडार्तानां समं रुदितक्षुतैः। अवयवमपि स्पृष्टवान्तःस्थं दृढं मरुदाहरेदतिबहु तदा भुक्त्वान्नं संस्थितः सुहितो वदेत् ॥ २९ ॥ ललाटस्पर्शनाच्छूकदर्शनाच्छालिजौदनम्। उरःस्पर्शात् षष्टिकान्नं ग्रीवास्पर्शे च यावकम् ॥३०॥ कुक्षिकुचजठरजानुस्पर्शे माषाः पयस्तिलयवाग्वः। आस्वादयतश्चौष्ठौ लिहतो मधुरं रसं ज्ञेयम् ॥३१॥ विस्पृक्के स्फोटयेज्जिह्वामाम्ले वक्त्रं विकूणयेत्। कटुतिक्तकषायोष्णैर्हिक्केत् ष्ठीवेच्च सैन्धवे ॥३२॥ श्लेष्मत्यागे शुष्कतिक्तं तदल्पं श्रुत्वा क्रव्यादं प्रेक्ष्य वा मांसमिश्रम्। भ्रूगण्डौष्ठस्पर्शने शाकुनं तद् भुक्तं तेनेत्युक्तमेतन्निमित्तम् ॥३३॥ मूर्द्धगलकेशहनुंशंखकर्णजङ्घं बस्तिं च स्पृष्ट्वा। गजमहिषमेषशूकरगोशशमृगमांसयुग्भुक्तम् ॥३४॥ दृष्टे श्रुतेऽप्यशकुने गोधामत्स्यामिषं वदेद्भुक्तम्। गर्भिण्या गर्भस्य च निपतनमेवं प्रकल्पयेत्प्रश्ने ॥३५॥ पुंस्त्रीनपुंसकाख्ये दृष्टेऽनुमिते पुरःस्थिते पृष्ठे। तज्जन्म भवति पानान्नपुष्पफलदर्शने शुभम् ॥३६॥ अंगुष्ठेन भ्रूदरं वागुलिं वा स्पृष्ट्वा पृच्छेद्गर्भचिन्ता तदा स्यात्। मध्वाज्याद्यैर्हेमरत्नप्रवालैरप्रस्थैर्वा मातृधात्र्यात्मजैश्च ॥३७॥ गर्भयुता जठरे करगे स्याद् दुष्टनिमित्तवशात्तदुदासः। कर्षति तज्जठरं यदि पीठोत्पीडनतः करगे च करेऽपि॥३८॥घ्राणाया

दक्षिणे द्वारे स्पृष्टे मासोत्तरं वदेत् । वामे द्वौ कर्णं एवं वा द्विचतुर्थः श्रुतिस्तने ॥३९॥ वेणीमूले त्रीन् सुतान् कन्यके द्वे कर्णे पुत्रान् पञ्च हस्ते त्रयं च । अगुष्ठान्ते पञ्चकं चानुपूर्व्या पादांगुष्ठे पार्ष्णियुग्मेऽपि कन्याम् ॥४०॥ सव्यासव्योरुसंस्पर्शे सूते कन्ये सुतद्वयम् । स्पृष्टे ललाटमध्यान्ते चतुस्त्रितनया भवेत् ॥४१॥ शिरोललाटभ्रू कर्णगण्डहनुरदा गलम् । सव्यापसव्यस्कन्धश्च हस्तौ चिबुकनालकम् ॥ ४२ ॥ उरः कुचं दक्षिणमप्यसव्यं हृत्पार्श्वमेवं जठरं कटिश्च । स्फिक्पायुसन्ध्यूरुयुगं च जानुजंघेऽथ पादाविति कृत्तिकादौ ॥४३॥ इति निगदितमेतद्गात्रसंस्पर्शलक्ष्म प्रकटमभिमताप्त्यै वीक्ष्य शास्त्राणि सम्यक् । विपुलमतिरुदारो वेत्ति यः सर्वमेतन्नरपतिजनताभिः पूज्यतेऽसौ सदैव ॥४४॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामङ्गविद्यानामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

शास्त्रोंमें कहा हुआ दिशाओंका ज्ञान लाये हुए पदार्थोंके देखनेवाले ज्योतिषीलोग प्रश्न करनेवालेका अंग, अपना अंग और दूसरेके अंगोंकी घटना देखकर बुद्धिसे शुभ व अशुभ फलको कह सकते हैं. स्थावर जङ्गमादि पदार्थोंका जिनको भलीभांतिसे ज्ञान है, इससे दैवज्ञ सर्वज्ञानी, सब कुछ देखनेवाला, विभु अर्थात् नारायणजीके समान है. क्योंकि इसी चेष्टा और सम्भाषणके करनेसे अर्थ चाहनेवाले पुरुषोंके शुभाशुभ फल दिखाते हैं ॥ १ ॥ जो स्थान फूलरूपी सुन्दर मुसुकाने युक्त है, बहुतसे फलोंसे भरा हुआ, चिकनी छालवाले, बुरे पक्षियोंसे शून्य, श्रेष्ठ नामको प्राप्त हुए वृक्षोंसे युक्त है, बराबर है, जो देवता, ऋषि, द्विज और सिद्धोंके रहनेकी वासभूमि है, जहांपर श्रेष्ठ पुरुष और धान्य व्याप्त हैं, स्वादिष्ट जलकी निर्मलता करके उत्पन्न हुए हर्षसे युक्त सुन्दर नवीन तिनकोंके लगे रहनेसे हरे वर्णवाला स्थानही प्रश्न करनेके लिये शुभदायी है ॥ २ ॥ जिस स्थानमें छिन्नभिन्न कीडोंके खाये, कांटेदार, जले हुए, रूखे और कुटिल वृक्ष लगे हों, जो स्थान क्रूर पक्षिओंसे घिरा हुआ हो, बुरे नामवाले, दुबले, बहुत सारे पत्तेही हैं मानों जिनका मर्म ऐसे वृक्ष लगे हों, वह स्थान अशुभ है ॥ ३ ॥ जो स्थान चौराहा मसानके समान सूने गृहसे युक्त, मनको न भानेवाला, टेढा, सदा ऊपर रहनेवाला, जहाँ किसीका वास न हो, कोयला, आदमीकी खोपडी और सूखे तिनकोंसे व्याप्त है सो शुभदायी नहीं होता है ॥ ४ ॥ गोसांई, नागा, नाई, शत्रु, बन्धन, कसाई, चाण्डाल, शठ, यति और पीडित लोगोंसे जो स्थान युक्त है और आयुध और मद्यकी विक्रीका जो स्थान है सो शुभकारी नहीं है ॥ ५ ॥ पूर्व, उत्तर, ईशानकोण प्रश्न करनेवालेके लिये श्रेष्ठ हैं, परन्तु वायु, पश्चिम, दक्षिण और नैर्ऋत दिशा अच्छी नहीं है. रात्रिकाल, दोनों सन्ध्या और अपराह्णमें प्रश्न करना शुभ नहीं होता ॥ ६ ॥ यात्राकी विधिमें जो शुभाशुभ निमित्त कहे गये हैं, पूछनेवालेके सामने लाये हुए, या उनके हाथ वस्त्रके चिह्न देखकर उनका शुभाशुभ करना चाहिये ॥७॥ ऊरु, होंठ, स्तन, अंडकोश, पांव, दांत, भुजा, हाथ, कपोल, केश, गला, नख, अंगूठा, शंख, कन्धा, कान, गुदा जोडके स्थान यह पुरुषसंज्ञावाची शब्द हैं. भौं, नासिका. स्फिक् (कमरका मांस पिंड), कमर और सुन्दर रेखावाली अंगुलियें स्त्रीनामवाची हैं और जीभ, गर्दन, पिंडिक (पिंडलिये), एडियें, जांघ, नाभि, कर्णपाली, कृकाटी (घेंटू) घोंटी, वदन, पीठ, हँसली, जानु, अस्थिपार्श्व, हृदय, तालु, नेत्र, लिंग, छाती त्रिक (कमरके) बांसके नीचेकी तीन हड्डियां, मस्तक और ललाट यह अंग नपुंसकसंज्ञावाची हैं, आस्यादि

(मुखादि) छुए जांय तो विलम्बसे सिद्धि होती है, जो पहले कहे हुए अंग रूखे, क्षत, टूटे हुए या, दुबले हों तो इनके छुए जाने और नपुंसक अंगोंके छुए जानेसे कदापि सिद्धि नहीं होती ॥ ८॥ ९ ॥ १० ॥ पांवका अंगूठा छुआ जाय या हिलाया जाय तो प्रश्न करनेवालेको नेत्ररोग हो, अंगुलिके आघात करे तो बेटीको शोक और शिरपर आघात होनेसे नृपभय होता है ॥११॥ प्रश्न करने-वाला छातीको छुए तो प्रियवियोग होता है, अपने अंगसे कोई वस्त्र उतार ले तो अनर्थ होता है, परन्तु यदि उससे वस्त्र ग्रहण करके पीछेकी ओरको जाय (पीछेको) तो उसको प्यारेकी प्राप्ति हो ॥ १२ ॥ खेतकी चिन्ता हो तो प्रश्न करनेवाला पांवके अंगूठेसे पृथ्वीपर कुरेदे और दोनों पांवोंको खुजावे तो उसको दासीकी चिन्ता होगी ॥ १३ ॥ ताल या भोजपत्रके देखनेसे अथवा केश, तुषा, अस्थि व भस्मागत द्रव्योंको देखनेसे वस्त्रकी चिन्ता होती है, रस्सीका जाल देखनेसे व्याधि होती है, वल्कल देखनेसे बन्धन होता है ॥ १४ ॥ जो प्रश्न करनेके समय पीपल, मिर्च, सोंठ, मोथा, लोध, कूट, वस्त्र, नेत्रवाला, जीरा, बालछड. सोंफ और तगरका फूल कहा जाय या इनमेंसे किसीका दर्शन हो तो क्रमानुसार स्त्रीदोषनाश, पुरूषदोषनाश, पीडितनाश, सत्यानाश, मार्गका नाश, सुतका नाश, धनका नाश, धान्यका नाश, पुत्रनाश, दुपायोंका नाश, चौपायोंका और पृथ्वीके नाशकी चिन्ता कहनी चाहिये ॥ १५ ॥ १६ ॥ जो प्रश्न करनेके समय प्रश्नकर्त्ता के हाथमें बड, महुआ, तेन्दू, जामन, पिपलखन, आम, बेर और जायफल हो तो क्रमानुसार धन, सुवर्ण, पुरुष, लोह, वस्त्र, चांदी और तांबे की प्राप्ति होती है ॥ १७ ॥ धान्यपरिपूर्ण पात्र और भरे हुए घडेके देखनेसे कुटुम्ब बढ़ता है. हाथीकी लीद, गायका गोबर और कुत्तोंकी विष्ठा देखने-से धन, युवति और सुहृदोंका विनाशकारी प्रश्न जानना चाहिये ॥ १८ ॥ उस कालमें पशु, हाथी, महिष, पंकज, चांदी और व्याघ्रके दिखाई देनेसे क्रमानुसार मेष, धन, भेडके ऊनका बना हुआ कंबल, चन्दन, रेशमी वस्त्र और गहनोंके लाभकी चिन्ता होती है ॥ १९ ॥ वृद्धश्रावक (जैनसंन्यासी) का दर्शन होनेसे मनुष्योंको मित्र, द्यूत और धनकी चिन्ता, संन्यासीका दर्शन पानेमे वेश्या, राजा, बच्चा और धनकी चिन्ता कहनी चाहिये ॥ २० ॥ शाक्य, उपाध्याय, अर्हत, निर्ग्रन्थ, निमित्त, निगम और धीवरके दिखाई देनेसे क्रमानुसार चोर, सेनापति, वणिक्, दासी, योद्धा, दुकानदारीके द्रव्य और वधसम्बन्धी चिन्ता जाननी चाहिये ॥ २१ ॥ तापस या कलालके दिखाई देनेसे प्रश्नकारीको परदेशमें गये हुए पुरुषकी और पशुपालनकी चिन्ता होती है और उंछ (भूमिपर गिरे हुए एक २ दानेके इकट्ठे करनेका नाम उंछ है) वृत्तिसे जीवन धारण करनेवाले मुनि आदि दिखाई दें तो विपत्ति पडनेकी चिन्ता होती है ॥ २२ ॥ 'मैं पूछनेकी इच्छा करता हूँ" "कहिये" "दर्शन कीजिये" और "आप भली भांति से आज्ञा दीजिये" यह वाक्य कहे जानेपर संयोग, कुटुम्बसे उत्पन्न हुआ लाभ और धनकी चिन्ता होती है ॥ २३ ॥ "भली भांतिसे विचारकर मेरा मनोरथ कहिये" और "बताइये" यह कहे जानेसे जय और मार्गकी चिन्ता होती है. और "आप शीघ्रही देखिये" यह बात सब आदमियोंके बीचमें बैठे हुए ज्योतिषीसे कहो जाय तो बंधु और चोरकी चिन्ता होती है ॥ २४ ॥ भीतरका अंगस्पर्श किया जाय तो स्वजनकी चिन्ता कही जाती है, बाहरका अंगस्पर्श करे तो बाहरके मनुष्यकी चिन्ता होती है. पांवका अंगूठा या पांवकी अंगुलियां छुई जायँ तो दासदासीजनकी चिन्ता होती है, जंघाके स्पर्श से प्रेक्षणीय पुरुष, नाभिके स्पर्शसे बहन, हृदयके स्पर्शसे भार्या, हाथके अंगूठे या ऊँगलीके स्पर्शसे पुत्र व कन्याकी चिन्ता होती है। प्रश्नकर्त्ता पेट छुए तो माता, मस्तक छुए तो गुरु, दांया या बांया हाथ छुए तो भ्राता और उसकी भार्याको चोरीके विषयमें बतावे ॥ २५ ॥ २६ ॥ जो पूछने-

वाला भीतरके अंग छोडकर बाहिरी अंगोंको छुए अथवा श्लेष्म, मूत्र और विष्ठा त्याग करते२ हाथमेंकी वस्तुको नीचे गिरा देवे, शरीरको बहुत झुकावे या आलस्यमें आकर तोडे, किसी मनुष्यके हाथमें रीता बर्त्तन देखे, चोरको देखे अथवा प्रश्नके समय हर लिया, गिर गया, कट गया, भूल गया, नष्ट हो गया, टूट गया, चोरी गया और मर गया आदि बुरे शब्द उत्पन्न हों तो चोरी गई वस्तु फिर नहीं मिलती ।। २७ ।। २८ ।। यह जो समस्त चिह्न कहे गये जो इन सबके साथ भुस, हड्डी, विष आदि देखनेके साथ रोने या छींकका शब्द हो तो रोगियोंका मरण होता है, जो पूछनेवाला भीतरके दृढ अंगको छूकर श्वास लेवे तब भोजन बहुत करनेसे प्रश्न करनेवाला तृप्त हो रहा है, इस बातको दैवज्ञ प्रकाश करे ।। २९ ।। पूछनेवाला माथेको स्पर्श करे और शूकधान्यका दर्शन करे तो शाँठीका चावल इसने खाया है ऐसा कहे, छाती स्पर्श करनेसे शाँठी ओर गर्दन स्पर्श करनेसे जौका अन्न खाया है ।।३०।। कोंख, स्तन, उदर और जानुको प्रश्न करनेवाला, छुए तो क्रमानुसार उरद, दूध, तिल व दालका भोजन करना बतावे. दोनों ओठोंके चाटनेसे मधुर रसको जाने ।।३१।। जो पूछनेवाला विष्टम्भी हो या जीभसे ओठोंके स्थानको चाटे अथवा वदनको सकोडे तो उसने खट्टा खाया है और कटु, तिक्त, कषाय व गरम द्रव्य खानेसे हिचकी उत्पन्न होती है, सेंधा नोन खानेसे थूकता है ।। ३२ ।। जो प्रश्न करनेके समय कफको त्याग करे, थोडा सूखा, तीखा पदार्थ और मांस खानेवाले पक्षीको देखे या उसका नाम सुने तो उसने मांसका मिला हुआ अन्न भक्षण किया है. भौं, गाल और ओठके स्पर्श करनेसे उस करके (नीचे लिखे अनुसार) शाकुन पक्षीका मांस खाया गया है यह कहे ।। ३३ ।। मस्तक, गला, केश, ठोडी, कनपटी, जांघ और बस्तिके स्पर्श करनेसे क्रमानुसार गज, महिष मेष, शूकर, गाय, खरगोक्ष, मृग इनका मांस प्रश्नकर्त्ताने भक्षण किया है ।। ३४ ।। दुष्टशकुन दर्शन और श्रवण करनेसे गोह और मछलीके मांसका खाना कहा जायगा प्रश्न करनेपर गर्भिणीका गर्भनिपातभी इससे प्रगट हो जाता है ।।३५।। गर्भप्रश्नसे पुरुष, स्त्री या नपुंसक अंग या कुछ दीखे अनुमानसे ज्ञात हो पुरस्थित जो स्पर्शित हो उस गर्भसे उसका जन्म होता है. परन्तु पान, अन्न, पुष्प और फलका दर्शन करना शुभ है ।।३६।। अंगूठे से भौं उदर या उंगली स्पर्श करके पूछे तो पूछनेवालेको गर्भकी चिन्ता होती है. शहद, घी आदि वा सुवर्ण, रत्न, मूंगा अथवा माता, धाई और पुत्र यह आगे खडे हुए दिखाई दे तोभी गर्भकी ही चिन्ताको प्रगट करे।।३७।। पेटपर हाथ रक्खे हो अर्थात् स्पर्श किये हो तो गर्भिणी गर्भयुक्त होती है परन्तु दुष्ट निमित्त दिखाई देनेसे गर्भका नाश हो जाता है, जो पूछनेवाला दबाकर पेटको खैंचे या हाथसे हाथ मलकर प्रश्न करे तोभी गर्भका नाश हो जाता है।।३८।। गर्भग्रहण प्रश्नमें प्रश्न करनेवाला जो नासिकाके दाहिने द्वारको स्पर्श करे तो एक मासके पीछे गर्भ धारण होगा, वाम नासिका और बायें कानको स्पर्श करे तो चार मासके पीछे गर्भ धारण होगा ।।३९।। चोटीकी जडको स्पर्श करनेसे तीन पुत्र और दो कन्या उत्पन्न होंगी, कानको स्पर्श करनेसे पांच पुत्र और हाथ स्पर्श करनेसे तीन पुत्र जन्म लेंगे, जो प्रश्नकर्ता प्रश्न करनेके समय पांवका अंगूठा अथवा दोनों एडी स्पर्श करे तो एक कन्या उत्पन्न होती है, ऐसेही कनकी उंगलीके स्पर्शसे पांच कन्या, अनामिकाके स्पर्शसे चार, मध्यमाके स्पर्शसे तीन और तर्जनीके स्पर्शसे दो कन्या होंगी ।। ४० ।। दाहिनी छाती स्पर्श करनेसे दो कन्या और बायां ऊरु स्पर्श करनेसे दो पुत्र जन्म लेते हैं, माथेका मध्यभाग स्पर्श करनेसे चार और माथेकी शेष सीमा स्पर्श करनेसे तीन कन्या जन्म लेंगी ।। ४१ ।। माथा, ललाट, भौं, कान, गाल, ठोडी, दांत, गला, दाहिना कन्धा, बांया कन्धा, दोनों हाथ ठोडी, नाल, उदर, कुच हृदयके बीचमें और दोनों पार्श्व, जठर, कमर, स्फिक (कमर

का मांसपिंड), गुदा, सन्धि, ऊरुयुगल, दो जानु दोनों छावा और पांव दोनोंमें क्रमानुसार कृत्तिका-से लेकर सब नक्षत्र विराजमान रहते हैं ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ सब शास्त्रोंको भली भांति विचार कर पंडितोंकी संतुष्टताके लिये यह गात्रस्पर्शलक्षण भलीभांतिसे कहा गया, जो अत्यंत बुद्धिमान् और उदार स्वभाववाला दैवज्ञ उसको भलीभांतिसे जान लेगा तो वह, राजा और प्रजासे सदा पूजित होगा ॥ ४४ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद–वास्तव्य–पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायामेकपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

अथ द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः

पिटकलक्षणम्

सितरक्तपीतकृष्णा विप्रादीनां क्रमेण पिटका ये । ते क्रमशः प्रोक्तफला वर्णानामग्रजादीनाम् ॥१॥ सुस्निग्धव्यक्तशोभाः शिरसि धनचयं मूर्ध्नि सौभाग्य-माराद् दौर्भाग्यं भ्रूयुगोत्थाः प्रियजनघटनामाशु दुःशीलतां च । तन्मध्योत्थाश्च शोकं नयनपुटगता नेत्रयोरिष्टदृष्टिं प्रव्रज्यां शंखदेशेऽश्रुजलनिपतनस्थानगाश्चाति-चिन्ताम् ॥२॥ घ्राणागण्डे वसनसुतदाश्चोष्ठयोरन्नलाभं कुर्युस्तद्वच्चिबुकतलगा भूरि वित्तं ललाटे । हन्वोरेवं गलकृतपदा भूषणान्यन्नपाने श्रोत्रे तद्भूषणगणमपि ज्ञानमात्मस्वरूपम् ॥३॥ शिरःसन्धिग्रीवाहृदयकुचपार्श्वोरसि गता अयोघातं घातं सुततनयलाभं शुचमपि । प्रियप्राप्तिं स्कन्धेऽप्यटनमथ भिक्षार्थमसकृद्विनाशं कक्षोत्था विदधति धनानां बहुसुखम् ॥४॥ दुःखशत्रुनिचयस्य विघातं पृष्ठबाहुयुगजा रचयन्ति । संयमं च मणिबन्धनजाता भूषणाद्यमुपबाहुयुगोत्थाः ॥५॥ धनाप्तिं सौभाग्यं शुचमपि करांगुल्युदरगाः सुपानान्नं नाभौ तदध इह चौरैर्धनहृतिम् । धनं धान्यं बस्तौ युवतिमथ मेढ्रे सुतनयान् धनं सौभाग्यं वा गुदवृषणजाता विदधति । ऊर्वोर्यानाङ्गनालाभं जान्वोः शत्रुजनात् क्षतिम् । शस्त्रेण जंघयोर्गुल्फेऽध्वबन्धक्लेश-दायिनः ॥७॥ स्फिक्पार्ष्णिपादजाता धननाशागम्यगमनमध्वानम् । बंधनमंगुलि-निचयेऽङ्गुष्ठे च ज्ञातिलोकतः पूजाम् ॥८॥ उत्पातगण्डपिटका दक्षिणतो वामतस्त्व-भिघाताः । धन्या भवन्ति पुंसां तद्विपरीतास्तु नारीणाम् ॥९॥ इति पिटकविभागः प्रोक्त आमूर्द्धतोऽयं व्रणतिलकविभागोऽप्येवमेव प्रकल्प्यः । भवति मशकलक्ष्मावर्त-जन्मापि तद्वन्निगदितफलकारि प्राणिनां देहसंस्थम् ॥१०॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां पिटकलक्षणं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्रोंके क्रमानुसार सफेद, लाल, पीली और काले रंगकी (फुनसी)

चिकनी और रमणीय हों तो वह क्रमानुसार द्विजादि[1] वर्णोंके सम्बन्धमें फल प्रकाशित करती है, अन्यथा निष्फल है, अर्थात् सफेद रंगकी फुनसी ब्राह्मणोंको फलदायी हैं क्षत्रियोंके लिये लालरंग की फुनसी फलदायी हैं ।। १ ।। शिरमें फुनसी हो तो धन पास आता है, मस्तकपर होनेसे सौभाग्यकी प्राप्ति, दोनों भौंहोंमें हो तो दुर्भगता और प्यारे मनुष्यका समागम होता है, दोनों भौंहोंके बीचमें हो या नेत्रपुटमें हो तो शोक होता है, दोनों नेत्रोंमें हो तो इष्टदृष्टि, कनपटीमें हो तो संन्यासी करता है, आंसू गिरनेके स्थानमें हो तो चिन्ता उत्पन्न होती है ।। २ ।। नासिका और गालमें हो तो वसन और सुतदायी होता है, दोनों अधरमें हो तो अन्न लाभ होता है, ठोडीके तले हो तो अन्नकी प्राप्ति होती है, कपारमें हो तो बहुत धनका लाभ होता है, दोनों ठोडीमें हो तोभी बहुत धनका लाभ होता है, गलेमें हो तो भूषण, अन्न और पानका लाभ होता है, कानमें उत्पन्न हो तो कर्णभूषण और अपने स्वरूपका ज्ञान प्राप्त हो जाता है ।। ३ ।। मस्तकसन्धि, गरदन, हृदय, कुच, पार्श्व और छातीमें पिटक उत्पन्न हो तो क्रमानुसार शस्त्रघात, आघात सुतलाभ, शोक और प्रियकी प्राप्ति होती है कन्धेमें होनेसे वारंवार भिक्षाके लिये भ्रमण और विनाश होता है कोखमें हो तो धन करके बहुतसे सुख प्राप्त होते हैं ।। ४ ।। पीठ या दोनों बाहुओंमें उत्पन्न हो तो दुःख और शत्रुओंका नाश होता है, मणिबन्धमें हो तो संयम और दोनों बाहोंके निकट हो तो भूषणादिकी प्राप्ति होती है ।। ५ ।। हाथमें, अंगुलीमें या उदरमें फुनसी हो तो क्रमानुसार धनकी प्राप्ति, सौभाग्य और शोक होता है, नाभिमें हो तो उत्तमपान व अन्नकी प्राप्ति होती है और उसके नीचे हो तो चोरों करके धनकी हानि होती है, बस्तिमें हो तो धनधान्य, मेढ्रमें हो तो युवति व सुन्दर पुत्र और गुह्य या अंडकोशके ऊपर हो तो धन और सौभाग्यका विधान करता के ।। ६ ।। दोनों ऊरुमें हो तो सवारी और स्त्रीकी प्राप्ति होती है, दोनों जानुमें हो तो शत्रुओं-से हानि उठानी पडती है, दोनों छावामे शस्त्रका घाव और गुल्फमें हो तो मार्ग और बन्धनका क्लेश होता है ।। ७ ।। परन्तु स्फिक (कमरका मांसपिंड), एडी और पांवोंमें हो तो धनका नाश, अयोग्य स्त्रीसे गमन और मार्गका लाभ होता है, अंगुलियोंके समूहमें हो तो बन्धन और अंगूठेमें हो तो जातिवाले लोगोंसे पूजाकी प्राप्ति होती है ।। ८ ।। पुरुषके दाहिने भागमें जो पिटक होता है, उसको "उत्पातगण्ड" कहते हैं, वाम भागमें पिटकको "आभिघात" पिटक कहते हैं, ऐसें अर्थात् दक्षिण भागमें पिटकवाले आदमीके घान्य होता है, परन्तु स्त्रियोंके उलटे अंगमें होनेसे फल होता है अर्थात् स्त्रियोंके दाहिने भागके पिटकको "अभिघात" बांए भागके पिटकको "उत्पातगण्ड" कहते हैं, यही वामभागले स्त्रियोंके शुभकारक हैं, अन्यथा इनका अशुभ फल होता है ।।९।। मस्तक से आरंभ करके समस्त अंगके पिटकका विभाग अर्थात् फल यह कहा गया. व्रण या तिल (काले रंगका एक तिल होता है) इन दोनोंका फल इसी तरह जानना और मशक या आवर्त नामक जो दो प्रकारके चिह्न हैं, वे चिह्न यदि प्राणियोंकी देहमें हों वह भी ऐसेही फल देते हैं ।। १० ।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद-वास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां द्विपंचाशत्तमोऽध्यायः ।। ५२ ।।

---

१ जातिमात्रके ब्राह्मणादि यहांपर द्विजातिपदके वाच्य नहीं हैं. जन्मराशिके अनुसार जो ब्राह्मणादि चार वर्ण निश्चय हुए हैं, उनकोही समझना चाहिये ।

अथ त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः

वास्तुविद्या.

वास्तुज्ञानमथातः कमलभवान्मुनिपरम्परायातम् । क्रियतेऽधुना मयेदं विदग्ध-सांवत्सरप्रीत्यै ॥१॥ किमपि किल भूतमभवद् रुन्धानं रोदसी शरीरेण । तदमरगणेन सहसा विनिगृह्याधोमुखं न्यस्तम् ॥ २ ॥ यत्र च येन गृहीतं विबुधेनाधिष्ठितः स तत्रैव । तदमरमयं विधाता वास्तुनरं कल्पयामास ॥३॥ उत्तममष्टाभ्यधिकं हस्तशतं नृपगृहं पृथुत्वेन । अष्टाष्टोनान्येवं पञ्च सपादानि दैर्घ्येण ॥४॥ षड्भिःषड्भिर्हीना सेनापतिसद्मनां चतुःषष्टिः । पञ्चैव विस्तारात्षड्भागसमन्विता दैर्घ्यम् ॥५॥ षष्टिश्चतुर्विहीना वेश्मानि भवन्ति पञ्च सचिवस्य । स्वाष्टांशयुता दैर्घ्यं तदर्धतो राजमहिषीणाम् ॥६॥ षड्भिःषड्भिश्चैवं युवराजस्यापवर्जिताशीतिः । त्र्यंशान्विता च दैर्घ्यं पञ्च तदर्धैस्तदनुजानाम् ॥७॥ नृपसचिवान्तरतुल्यं सामन्तप्रवरराज-पुरुषाणाम् । नृपयुवराजविशेषः कञ्चुकिवेश्याकलाज्ञानाम् ॥ ८ ॥ अध्यक्षाधि-कृतानां सर्वेषामेव कोशरतितुल्यम् । युवराजमन्त्रिविवरं कर्मान्ताध्यक्षदूतानाम् ॥९॥ चत्वारिंशद्धीना चतुश्चतुर्भिस्तु पञ्च यावदिति । षड्भागयुता दैर्घ्यं दैवज्ञ-पुरोधसोर्भिषजः ॥१०॥ वास्तुनि यो विस्तारः स एव चोच्छ्रायनिश्चयः शुभदः । शालैकेषु गृहेष्वपि विस्तराद्द्विगुणितं दैर्घ्यम् ॥११॥ चातुर्वर्ण्यव्यासो द्वात्रिंशत्स्या-च्चतुर्हीनः । आषोडशादिति परं न्यूनतरमतीव हीनानाम् ॥१२॥ सदशांशं विप्राणां क्षत्रस्याष्टांशसंयुतं दैर्घ्यम् । षड्भागयुतं वैश्यस्य भवति शूद्रस्य पादयुतम् ॥१३॥ नृपसेनापतिगृहयोरन्तरमानेन कोशरतिभवने । सेनापतिचातुर्वर्ण्यविवरतो राज-पुरुषाणाम् ॥१४॥ अथ पारसवादीनां स्वमानसंयोगादलसमं भवनम् । हीनाधिकं स्वमानादशुभकरं वास्तु सर्वेषाम् ॥१५॥ पशवाश्रमिणाममितं धान्यायुधवह्निर-तिगृहाणां च । नेच्छन्ति शास्त्रकारा हस्तशतादुच्छ्रितं परतः ॥१६॥ सेनापति-नृपतीनां सप्ततिसहिते द्विधाकृते व्यासे । शाला चतुर्दशहृते पञ्चत्रिंशद्धृतेऽलिन्दः ॥१७॥ हस्तद्वात्रिंशादिषु चतुश्चतुस्त्रित्रिकत्रिकाः शालाः । सप्तदशत्रितयति-थित्रयोदशकृतांगुलाभ्यधिकाः ॥१८॥ त्रित्रिद्विद्विद्विसमाः क्षयक्रमादंगुलानि चैतेषाम् । व्येका विंशतिरष्टौ विंशतिरष्टादश त्रितयम् ॥१९॥ शाला त्रिभागतुल्या कर्तव्या वीथिका बहिर्भवनात । यद्यग्रतो भवति सा सोष्णीषं नाम तद्वास्तु ॥२०॥ सायाश्रयमिति पश्चात् सावष्टम्भं तु पार्श्वसंस्थितया । संस्थितमिति च समन्ताच्छा-स्त्रज्ञैः पूजिताः सर्वाः ॥२१॥ विस्तारषोडशांशः सचतुर्हस्तो भवेद्गृहोच्छायः । द्वादशभागेनोनो भूमौ भूमौ समस्तानाम् ॥२२॥ व्यासात् षोडशभागः सर्वेषां सद्मनां भवति भित्तिः ॥ पक्वेष्टकाकृतानां दारुकृतानां तु सविकल्पः ॥२३॥ एकादशभागयुतः ससप्ततिर्नृपवलेशयोर्व्यासः । उच्छ्रायोंऽगुलतुल्यो द्वार

स्यार्धेन विष्कम्भः ।।२४।। विप्रादीनां व्यासात् पञ्चांशोऽष्टादशांगुलसमेतः । साष्टांशो विष्कम्भो द्वारस्य द्विगुण उच्छ्रायः ।।२५।। उच्छ्रायहस्तसंख्यापरिमाणान्यंगुलानि बाहुल्यम् । शाखाद्वयेऽपि कार्यं सार्द्धं तत्स्यादुदुम्बरयोः ।।२६।। उच्छ्रायात् सप्तगुणादशीतिभागः पृथुत्वमेतेषाम् । नवगुणितेऽशीत्यंशः स्तम्भस्य दशांशहीनोऽग्रे ।।२७।। समचतुरस्रो रुचको वज्रोऽष्टाश्रिर्द्विवज्रको द्विगुणः । द्वात्रिंशता तु मध्ये प्रलीनको वृत्त इति वृत्तिः ।।२८।। स्तम्भं विभज्य नवधा वहनं भागो घटोऽस्य भागोन्यः । पद्मं तथोत्तरोष्ठं कुर्याद्भागेन भागेन ।।२९।। स्तम्भसम बाहुल्यं भारतुलानामुपर्युपर्यासाम् । भवति तुलोपतुलानामूनं पादेन पादेन ।।३०।। अप्रतिषिद्धालिन्दं समन्ततो वास्तु सर्वतोभद्रम् । नृपतिबुधसमूहानां कार्यं द्वारैश्चर्भिरपि ।।३१।। नन्द्यावर्तमलिन्दैः शालाकुड्यात् प्रदक्षिणान्तरगतैः । द्वारं पश्चिममस्मिन् विहाय शेषाणि कार्याणि ।।३२।। द्वारालिन्दोऽन्तगतः प्रदक्षिणोऽन्यः शुभस्ततश्चान्यः । तद्वच्च वर्द्धमाने द्वारं तु न दक्षिणं कार्यम् ।।३३।। अपरोऽन्तगतोऽलिन्दः प्रागन्तगतौ तदुत्थितौ चान्यौ । तदवधिविवृतश्चान्यः प्राग्द्वारं स्वस्तिकेऽशुभदम् ।।३४।। प्राक्पश्चिमावलिन्दावन्तगतौ तदवधिस्थितौ शेषौ । रुचके द्वारं न शुभदमुत्तरतोऽन्यानि शस्तानि ।।३५।। श्रेष्ठं नन्द्यावर्तं सर्वेषां वर्द्धमानसंज्ञं च । स्वस्तिकरुचके मध्ये शेषं शुभदं नृपादीनाम् ।।३६।। उत्तरशालाहीनं हिरण्यनाभं त्रिशालकं धन्यम् । प्राक्शालया वियुक्तं सुक्षेत्रं वृद्धिदं वास्तु ।।३७।। याम्याहीनं चुल्लीत्रिशालकं वित्तनाशकरमेतत् । पक्षघ्नमपरया वर्जितं सुतध्वंसवैरकरम् ।।३८।। सिद्धार्थमपरयाम्ये यमसूर्यं पश्चिमोत्तरे शाले । दण्डाख्यमुदक्पूर्वे वाताख्यं प्राग्युता याम्या ।।३९।। पूर्वापरे तु शाले गृहचुल्ली दक्षिणोत्तरे काचम् । सिद्धार्थेऽर्थावाप्तिर्यमसूर्ये गृहपतेर्मृत्युः ।।४०।। दण्डवधो दण्डाख्ये कलहोद्वेगः सदैव वाताख्ये । वित्तविनाशश्चुल्ल्यां ज्ञातिविरोधाः स्मृतः काचे ।।४१।। एकाशीतिविभागे दश दश पूर्वोत्तरायता रेखाः । अन्तस्त्रयोदश सुरा द्वात्रिंशद्बाह्यकोष्ठस्थाः ।।४२।। शिखिपर्जन्यजयन्तेन्द्रसूर्यसत्या भृशोऽन्तरिक्षश्च । ऐशान्याद्याः क्रमशो दक्षिणपूर्वेऽनिलः कोणे ।।४३।। पूषा वितथबृहत्क्षतयमगन्धर्वाख्यभृंगराजमृगाः । पितृदौवारिकसुग्रीवकुसुमदत्ताम्बुपत्यसुराः ।।४४।। शोषोऽथ पापयक्ष्मा रोगः कोणे ततोऽहिमुख्यौ च । भल्लाटसोमभुजगास्ततोऽदितिर्दितिरिति क्रमशः ।।४५।। मध्ये ब्रह्मा नवकोष्ठकाधिपोऽस्यार्यमा स्थितः प्राच्याम् । एकान्तरात् प्रदक्षिणमस्मात्सविता विवस्वांश्च ।।४६।। विबुधाधिपतिस्तस्मान्मित्रोऽन्यो राजयक्ष्मनामा च । पृथ्वीधरापवत्सावित्येते ब्रह्मणः परिधौ ।।४७।। आपो नामैशाने कोणे हौताशने च सावित्रः । जय इति च नैर्ऋते रुद्र आनिलेऽभ्यन्तरपदेषु ।।४८।। आपस्तथाप वत्सः पर्जन्योऽग्निर्दितिश्च वर्गोऽयम् । एवं कोणे कोणे पदिकाः स्युः पञ्च सुराः ।।४९।। बाह्या द्विपदाः शेषास्ते विबुधा विंशतिः समाख्याताः । शेषाश्चत्वारोऽन्ये

त्रिपदा दिक्ष्वर्यमाद्यास्ते ।।५०।। पूर्वोत्तरदिङ्मूर्धा पुरुषोऽयमवाङ्मुखोऽस्य शिरसि शिखी । आपोमुखे स्तनेऽस्यार्यमा ह्युरस्यापवत्सश्च ।।५१।। पर्जन्याद्या बाह्या दृक्श्रवणोरःस्थलांसगा देवाः । सत्याद्याः पञ्च भुजे हस्ते सविता ससावित्रः ।।५२।। वितथो बृहत्क्षतयुतः पार्श्वे जठरे स्थितो विवस्वांश्च । ऊरू जानू जंघे स्फिगिति यमाद्यैः परिगृहीताः ।।५३।। एते दक्षिणपार्श्वे स्थानेष्वेवं च वामपार्श्वस्थाः । मेढ्रे शक्रजयन्तौ हृदये ब्रह्मा पितांघ्रिगतः ।।५४।। अष्टाष्टकपदमथवा कृत्वा रेखाश्च कोणगास्तिर्यक् । ब्रह्मा चतुष्पदोऽस्मिन्नर्द्धपदा ब्रह्मकोणस्थाः ।।५५।। अष्टौ च बहिः कोणेष्वर्द्धपदास्तदुभयस्थिताः सार्द्धाः । उक्तेभ्यो ये शेषास्ते द्विपदा विंशतिस्ते च ।।५६।। सम्पाता वंशानां मध्यानि समानि यानि च पदानाम् । मर्माणि तानि विन्द्यान्न परिपीडयेत् प्राज्ञः ।। ५७ ।। तान्यशुचिभाण्डकीलस्तम्भाद्यैः पीडितानि शल्यैश्च । गृहभर्तुस्तत्तुल्ये पीडामङ्गे प्रयच्छन्ति ।।५८।। कण्डूयते यदङ्गं गृहपतिना यत्र वामराहुत्याम् । अशुभं भवेन्निमित्तं विकृतिर्वाग्नेः सशल्यं तत् ।।५९।। धनहानिर्दारुमये पशुपीडारुग्भयानि चास्थिकृते । लोहमये शस्त्रभयं कपालकेशेषु मृत्युः स्यात् ।।६०।। अंगारे स्तेनभयं भस्मानि च विनिर्दिशेत् सदाग्नि-भयम् । शल्यंही मर्मसंस्थं सुवर्णरजतादृतेऽत्यशुभम् ।।६१।। मर्मण्यमर्मगो वा रुणद्धचर्थागमं तुषसमूहः । अपि नागदन्तको मर्मसंस्थितो दोषकृद्भवति ।। ६२ ।। रोमाद्वायुं पितृतो हुताशनं शोषसूत्रमपि वितथात् । मुख्याद्भृशं जयन्ताच्च भृङ्गम-दितेश्च सुग्रीवम् ।।६३।। तत्सम्पाता नव ये तान्यतिमर्माणि सम्प्रदिष्टानि । यश्च पदस्याष्टांशस्तत्प्रोक्तं मर्मपरिमाणम् ।।६४।। पदहस्तसंख्यया सम्मितानि वंशोऽ-ङ्गुलानि विस्तीर्णः । वंशव्यासोऽध्यर्धःशिराप्रमाणं विनिर्दिष्टम् ।।६५।। सुख-मिच्छन् ब्रह्माणं यत्नाद्रक्षेद्गृही गृहान्तस्थम् । उच्छिष्टाद्युपघाताद् गृहपतिरुपतप्यते तस्मिन् ।।६६।। दक्षिणभुजेन हीने वास्तुनरेऽर्थक्षयोऽङ्गनादोषाः । वामेऽर्थधान्य-हानिःशिरसिगुणैर्हीयते सर्वैः।।६७।। स्त्रीदोषाःसुतमरणं प्रेष्यत्वं चापि करणवैकल्ये। अविकलपुरुषे वसता मानार्थयुतानि सौख्यानि ।।६८।। गृहनगरग्रामेषु च सर्वत्रैवं प्रतिष्ठिता देवाः । तेषु च यथानुरूपं वर्णा विप्रादयो वास्याः ।।६९।। वासगृहाणि च विन्द्याद् विप्रादीनामुदग्दिगाद्यानि । विशतां च यथाभवनं भवन्ति तान्येव दक्षिणतः ।।७०।। नवगुणसूत्रविभक्तान्यष्टगुणेनाथवा चतुःषष्टे । द्वाराणि यानि तेषामन-लांदीनां फलोपनयः ।।७१।। अनलभयं स्त्रीजन्म प्रभूतधनता नरेन्द्रवाल्लभ्यम् । क्रोधपरतानृतत्वं क्रौर्यं चौर्यं च पूर्वेण ।।७२।। अल्पसुतत्वं प्रैष्यं नीचत्वं भक्ष्यपान-सुतवृद्धिः । रौद्रं कृतघ्नमधनं सुतवीर्यघ्नं च याम्येन ।।७३।। सुतपीडा रिपुवृद्धिर्न धनसुताप्तिः सुतार्थबलसम्पत् । धनसम्पन्नृपतिभयं धनक्षयो रोग इत्यपरे ।।७४।। वधबन्धौ रिपुवृद्धिर्धनसुतलाभः समस्तगुणसम्पत् । पुत्रधनाप्तिर्वैरं सुतेन दोषाः

स्त्रिया नैःस्वम् ॥७५॥ मार्गतरुकोणकूपस्तम्भभ्रमविद्धमशुभदं द्वारम्। उच्छ्राया-याद्द्विगुणमितां त्यक्त्वा भूमिं न दोषाय ॥७६॥ रथ्याविद्धं द्वारं नाशाय कुमार-दोषदं तरुणा। पंकद्वारे शोको व्ययोऽम्बुनिस्राविणि प्रोक्तः ॥७७॥ कूपेनापस्मारो भवति विनाशश्च देवताविद्धे। स्तंभेन स्त्रीदोषाः कुलनाशो ब्रह्मणोऽभिमुखे ॥७८॥ उन्मादः स्वयमुद्घाटितेऽथ पिहिते स्वयं कुलविनाशः। मानाधिके नृपभयं दस्युभयं व्यसनदं नीचम् ॥७९॥ द्वारं द्वारस्योपरि यत्तन्न शिवाय सङ्कटं यच्च। आव्यात्तं क्षुद्भयदं कुब्जं कुलनाशनं भवति ॥ ८० ॥ पीडाकरमतिपीडितमन्तर्विनतं भवेदभावाय। बाह्यविनते प्रवासो दिग्भ्रान्ते दस्युभिः पीडा ॥८१॥ मूलद्वारं नान्यैर्द्वारैरतिसन्दधीत रूपद्धर्या। घटफलपत्रप्रमथादिभिश्च तन्मङ्गलैश्चिनुयात् ॥८२॥ ऐशान्यादिषु कोणेषु संस्थिता बाह्यतो गृहस्यैताः। चरकि विदारिनामाथ पूतना राक्षसी चेति ॥८३॥ पुरभवनग्रामाणां ये कोणास्तेषु निवसतां दोषाः। श्वपचादयोऽन्त्यजात्यास्तेष्वेव विवृद्धिमायान्ति ॥८४॥ याम्यादिष्वशुभफला जाता-स्तरवः प्रदक्षिणेनैते। उदगादिषु प्रशस्ताः प्लक्षवटोदुम्बराश्वत्थाः ॥८५॥ आसन्नाः कण्टकिनो रिपुभयदाः क्षीरिणोऽर्थनाशाय। फलिनः प्रजाक्षयकरा दारुण्यपि वर्जये-देषाम् ॥८६॥ छिन्द्याद्यदि न तरूंस्तात् तदन्तरे पूजितान्वपेदन्यान्। पुन्नागाशोका-रिष्टबकुलपनसान् शमीशाली ॥८७॥ शस्तौषधिद्रुमलतामधुरा सुगंधा स्निग्धा समानसुषिरा च मही नराणाम्। अप्यध्वनि श्रमविनोदमुपागतानां धत्ते श्रियं किमुत शाश्वतमन्दिरेषु ॥८८॥ सचिवालयेऽर्थनाशो धूर्तगृहे सुतवधः समीपस्थे। उद्वेगो देवकुले चतुष्पथे भवति चाकीर्तिः ॥८९॥ चैत्ये भयं ग्रहकृतं वल्मीकश्वभ्रसं-कुले विपदः। गर्तायां तु पिपासा कूर्माकारे धनविनाशः ॥९०॥ उदगादिप्लवमिष्टं विप्रादीनां प्रदक्षिणेनैवं। विप्रः सर्वत्र वसेदनुवर्णमथेष्टमन्येषाम् ॥९१॥ गृहमध्ये हस्तमितं खात्वा परिपूरितं पुनः श्वभ्रम्। यद्यूनमनिष्टं तत् समे समं धन्यमधिकं यत् ॥९२॥ श्वभ्रमथवाम्बुपूर्णं पदशतमित्वागतस्य यदि नोनम्। तद्धन्यं यच्च भवेत् पलान्यपामाढकं चतुःषष्टिः ॥९३॥ आमे वा मृत्पात्रे श्वभ्रस्थे दीपवर्तिरभ्य-धिकम्। ज्वलति दिशि यस्य शस्ता सा भूमिस्तस्य वर्णस्य ॥९४॥ श्वभ्रोषितं न कुसुमं यस्मिन् प्रम्लायतेऽनुवर्णसमम्। तत्तस्य भवति शुभदं यस्य च यस्मिन्मनो रमते ॥९५॥ सितरक्तपीतकृष्णा विप्रादीनां प्रशस्यते भूमिः। गन्धश्च भवति यस्या घृतरुधिरान्नाद्यमद्यसमः ॥९६॥ कुशयुक्ता शरबहुला दूर्वा काशावृता क्रमेण मही। अनुवर्णं वृद्धिकरी मधुरकषायाम्लकटुका च ॥९७॥ कृष्टां प्ररूढबीजां गोऽध्यूषितां ब्राह्मणैः प्रशस्तां च। गत्वा महीं गृहपातः काले सांवत्सरोद्दिष्टे ॥९८॥ भक्ष्यैर्नानाकारैर्दध्यक्षतसुरभिकुसुमधूपैश्च। दैवतपूजां कृत्वा स्थपतीनभ्यर्च्य विप्रांश्च ॥९९॥ विप्रः स्पृष्ट्वा शीर्षं वक्षश्च क्षत्रियो विशश्चोरू। शूद्रः पादौ

स्पृष्ट्वाकुर्याद्रेखां गृहारम्भे ।।१००।। अंगुष्ठकेन कुर्यान्मिध्यांगुल्याथवा प्रदेशिन्या । कनकमणिरजतमुक्तादधिफलकुसुमाक्षतैश्च शुभम् ।। १०१ ।। शस्त्रेणै शस्त्रमृत्युर्बन्धो लोहेन भस्मनाग्निभयम् । तस्करभयं तृणेन च काष्ठोल्लिखिता च राजभयम् ।१०२।। वक्रा पादालिखिता शस्त्रभयक्लेशदा विरूपा च । चर्माङ्गारास्थिकृता दन्तेन च कर्तुरशिवाय ।।१०३।। वैरमपसव्यलिखिता प्रदक्षिणं सम्पदो विनिर्देश्याः । वाचः परुषा निष्ठीवितं क्षुतं चाशुभं कथितम् ।।१०४।। अर्द्धनिर्चितं कृतं वा प्रविशन् स्थपतिर्गृहे निमित्तानि । अवलोकयेद्गृहपतिः क्व संस्थितः स्पृशति किं चाङ्गम् ।।१०५।। रविदीप्तो यदि शकुनिस्तस्मिन् काले विरौति परुषरवः । संस्पृष्टाङ्गसमानं तस्मिन्देशेऽस्थि निर्देश्यम् ।।१०६।। शकुनसमयेऽथवान्ये हस्त्यश्वश्वादयोनुवाशन्ते । तत्प्रभवमस्थि तस्मिंस्तदङ्गसम्भूतमेवेति ।।१०७।। सूर्यः प्रसार्यमाणे गर्दभरावोऽस्थिशल्यमाचष्टे । श्वशृगाललंघिते वा सूत्रे शल्यं विनिर्देश्यम् ।।१०८।। दिशि शान्तायां शकुनो मधुरविरावी यदा तदा वाच्यः । अर्थस्तस्मिन् स्थाने गृहेश्वराधिष्ठितेऽङ्गे वा ।।१०९।। सूत्रच्छेदे मृत्युः कीले चावाङ्मुखे महान् रोगः । गृहनाथस्थपतीनां स्मृतिलोपे मृत्युरादेश्यः ।।११०।। स्कन्धाच्च्युते शिरोरुक् कुलोपसर्गोऽपवर्जिते कुम्भे । भग्नेऽपि च कर्मिवधश्च्युते कराद्गृहपतेर्मृत्युः ।।१११।। दक्षिणपूर्वे कोणे कृत्वा पूजां शिलां न्यसेत्प्रथमाम् । शेषाः प्रदक्षिणेन स्तम्भाश्चैवं समुत्थाप्याः ।।११२।। छत्रस्रगम्बरयुतः कृतधूपविलेपनः समुत्थाप्यः । स्तम्भस्तथैव कार्यो द्वारोच्छ्रायः प्रयत्नेन ।।११३।। विहगादिभिरवलीनैराकम्पितपतितदुःस्थितैश्च फलम् । शक्रध्वजफलसदृशं तस्मिंश्च शुभं विनिर्दिष्टम् ।। ११४ ।। प्रागुत्तरोन्नते धनसुतक्षयः सुतवधश्च दुर्गन्धे । वक्रे बन्धुविनाशो न सन्ति गर्भाश्च दिङ्मूढे ।।११५।। इच्छेद्यदि गृहवृद्धिं ततः समन्ताद्विवर्धयेत्तुल्यम् ।। एकोद्देशे दोषः प्रागथवाप्युत्तरे कुर्यात् ।।११६।। प्राग्भवति मित्रवैरं मृत्युभयं दक्षिणेन यदि वृद्धिः । अर्थविनाशः पश्चादुदग्विवृद्धौ मनस्तापः ।।११७।। ऐशान्यां देवगृहं महानसं चापि कार्यमाग्नेय्यायम् । नैर्ऋत्यां भाण्डोपस्करोऽर्थधान्यानि मारुत्याम् ।।११८।। प्राच्यादिस्थे सलिले सुतहानिः शिखिभयं रिपुभयं च । स्त्रीकलहः स्त्रीदौष्ट्यं नैस्व्यं वित्तात्मजविवृद्धिः ।। ११९ ।। खगनिलयमग्नसंशुष्कदग्धदेवालयश्मशानस्थान् । क्षीरतरुधवविभीतकनिम्बारणिवर्जितांश्छिद्यात् ।। १२० ।। रात्रौ कृतबलिपूजं प्रदक्षिणं छेदयेद्दिवा वृक्षम् । धन्यमुदक्प्रापतनं न ग्राह्योऽतोऽन्यथापतितः ।।१२१।। छेदो यद्यविकारी ततः शुभं दारु तद्गृहौपयिकम् । पीते तु मण्डले निर्दिशेत्तिरोर्मध्यगां गोधाम् ।।१२२।। मञ्जिष्ठाभे भेको नीले सर्पस्तथारुणे सरटः । मुद्गाभेऽश्मा कपिले तु मूषकोऽम्भश्च खड्गाभे ।।१२३।। धान्यगोगुरुहुताशसुराणां न स्वपेदुपरि नाप्यनुवंशम् । नोत्तरापरशिरा न च नग्नो नैव चार्द्रचरणः श्रियमिच्छन् ।।१२४।।

भूरिपुष्पनिकरं सतोरणं तोयपूर्णकलशोपशोभितम् । धूपगन्धबलिपूजितामरं ब्राह्मणध्वनियुतं विशेद्गृहम् ॥१२५॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां वास्तुविद्या नाम त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः॥५३

जो ब्रह्माजीके पाससे मुनि लोगोंके पास आई है पंडित और ज्योतिषी लोगोंके प्रसन्नताके लिये अब वही वास्तुविद्या कही जाती है ॥१॥ शरीरसे पृथ्वी और आकाशका रोकनेवाला कोई एक भूत पूर्वकालमें उत्पन्न हुआ था, वह देवतासे मारा जाकर नीचेको मुखकर पृथ्वीपर गिरा ॥२॥ जिस देवताने उसके जिस स्थानका अधिकार प्राप्त किया था, वही देवता उस स्थानका स्वामी है इसके उपरान्त ब्रह्माजीने उस देवमय शरीर भूतको वास्तु पुरुषरूपसे कल्पित किया ॥३॥ (संसारमें समस्त मनुष्योंके वास्तुगृहके भेद पांच प्रकारके हैं) उनमें पहला उत्तम, पहलेकी अपेक्षा दूसरा अधम और फिर तृतीयादि, सबसे पहिले राजाके घरका परिमाण कहा जाता है, एक शत आठ १०८ हाथ[1] चौडा और १३५ हाथ लम्बा होता है, पांच भेदवाले राजाके घरमें यही उत्तम घर है, द्वितीयादि और चार प्रकारके गृह क्रमसे लम्बाई और चौडाईमें आठ हाथ कम होंगे, यथा, दूसरा लम्बाईमें १२५ हाथ और चौडाईमें सौ हाथ, तीसरा-लम्बाईमें ११५, चौडाईमें ९२ हाथ चौथा;-लम्बाईमें १०५, चौडाईमें ८४ हाथ, पांचवां-लम्बाईमें ९५ और चौडाईमें ७६ हाथका होता है ॥४॥ सेनापतिका उत्तम घर ६४ हाथ चौडा होता है और फिर छः भागयुक्त बिस्तारही उसकी लम्बाई होती है, यथा-पहला, ६४ हाथ चौडा और ७४ हाथ १६ अंगुल लम्बा होता है, दूसरा, ५८ हाथ चौडा, और ६७।१६ लम्बा होता है, तीसरा, ५२-हाथ चौडा और ६० हाथ १६ अंगुल लम्बा. चौथा,-४६ हाथ चौडा ५३ हाथ और १६ अंगुल लम्बा होता है पांचवां,-४० हाथ चौडा और ४६ हाथ १६ अंगुल लम्बा होता है ॥५॥ मंत्रियोंके गृह भी पांच प्रकारके होते हैं, उनमें मुख्यगृह ६० हाथ चौडा होता है. फिर ६० से क्रमानुसार चार २ हाथ कम किये जायँगे. अर्थात् क्रमानुसार ५६।५२।४८।४४ हाथ चौडा हो. चौडाईके साथ चौडाईका आठवां अंश मिलानेसे लम्बाईका परिमाण निरूपित होगा. उसका परिमाण यथा;-पहला ६७।१२, दूसरा ६३, तीसरा ५८।१२, चौथा ५४।०, पांचवां ४९ हाथ १२ अंगुल इसकी लम्बाई और चौडाईसे आधे भागके परिमाणका गृह रानियोंका होना चाहिये, लम्बाई यथा,-पहला ३३।१८, दूसरा ३१।१२, तीसरा २९।६, चौथा २७।०, पांचवां २४।१८॥ चौडाई यथा,-पहला ३०। दूसरा २८। तीसरा २६। चौथा २४ और पांचवां २२ हाथ होता है ॥६॥ युवराजके गृहभी पांच प्रकारके होते हैं, उसमें उत्तम गृह ८० हायका चौडा होता है, दूसरे गृहोंकी चौडाई क्रमानुसार छः छः हाथ कम होगी. चौडाईका तीसरा अंश मिलानेसे उनकी लम्बाईका परिमाण निर्णीत होगा. यथा,-पहला ८० हाथ चौडा, १०६ हाथ १६ अंगुल लम्बा; दूसरा ७४ हाथ चौडा, ९८ हाथ, १६ अंगुल लम्बा, तीसरा ६८ हाथ चौडा ९० हाथ १६ अगुल लम्बा, चौथा ६२ हाथ चौडा, ८२ हाथ १६
६८ हाथ चौडा ९० हाथ १६ अंगुल लम्बा, चौथा ६२ हाथ चौडा, ८२ हाथ १६
अंगुल लम्बा. पांचवां ५६ हाथ चौडा और ७४ हाथ १६ अंगुल लम्बा. इन उत्तमादि

[1] २४ अंगुलका एक हाथ, और ६० व्यंगुलका एक अंगुल होता है।

गृहोंसे आधे परिमाणवाले गृह युवराजके छोटे भ्राताओंके गृह हों, उसके परिमाणकी चौडाई ४०। ३७। ३४। ३१। २८ हाथ और लम्बाईका परिमाण यथा, ५३। ८, ४९। ८, ४५। ८, ४१। ८, ३७।८ हाथ ।।७।। राजा और मंत्री इन दोनोंके गृह में जो अंतर हो वही सामंत और श्रेष्ठ राजपुरुषोंके गृहका परिमाण है, उत्तमके क्रमसे चौडाई यथा,–४८।४४।४०।३६।३२ हाथ और उत्तमके क्रमसे लम्बाई ६७।१२, ६२।०, ५६।१२, ५१।०, ४५।१२ अंगुल है. राजा और युवराजके घरमें जो अंतर होता है, वही अंतर कंचुकी, वेश्या और नाच गाना जाननेवालोंके घरोंका परिमाण है, उत्तमादि क्रमसे उनकी लम्बाई यथा,–२८।८, २६।८, २४।८, २२।८,२०।८ अंगुल है उसी तरह उत्तमादि क्रमसे चौडाई २८, २६, २४, २२, २० हैं ।।८।। समस्त अध्यक्ष और अधिकारी पुरुषोंके गृहका परिमाण कोशगृह और रतिगृहका परिमाण समान है, युवराज और मंत्रीके गृहमें जो अंतर हो वही कर्माध्यक्ष और दूतोंके गृहका परिमाण है. उसके परिमाणमें चौडाई यथा, २०। १८। १६। १४। १२ हाथ. लम्बाई यथा,–३९।४,३५।१६,३२।४, २८।१६, २५।४।।९।। ज्योतिषी, पुरोहित और वैद्योंके उत्तम घरकी चौडाई ४० हाथ हो यह भी पांच प्रकारके हैं, इसी कारण दूसरे क्रमानुसार चार चार हाथ कम होंगे और इनकी छः षड्भागयुक्त चौडाईही इनकी क्रमानुसार लम्बाई हो जायगी. चौडाई यथा,–४०। ३६। ३२। २८। २४ हाथ हो. लम्बाई यथा,–४६।१६, ४२।०, ३७।१६, ३२।१६, २८।०, अंगुल ।।१०।। गृह जितना चौडा हो उतनाही ऊंचा हो तो शुभदायी है. परंतु जिन घरोंमें केवल एक शाला हो उसकी लम्बाई चौडाईसे दुगुनी होनी चाहिये ।।११।। (ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र और चाण्डालादि हीन जातियोंमें किस २ को किस २ प्रकार वास्तुमें अधिकार है और उस वास्तुगृहका परिमाण कितना हो वही अब कहा जाता है) ब्राह्मणादि चार वर्ण और हीनजातिके लिये उत्तम गृहके व्यासकी चौडाई ३२ हाथ होती है इस ३२ संख्यासे तबतक चार घटाने होंगे कि जबतक १६ संख्या न निकलेगी। तवहीं ३२ मेंसे ४ घटानेपर १६ निकलने तक पांच अंक होते हैं, यथा–३२। २८। २४। २०। १६ इन पांच अंकोंमें ही ब्राह्मणजातिके उत्तमादिगृहकी चौडाईका व्यास और पांच प्रकारके गृहमें इस जातिका अधिकार है, ब्राह्मणजातिके दूसरे गृहोंकी चौडाईकी संख्या २८ से १६ बचनेतक ४ अंकमें, क्षत्रिय जातिके गृहका परिमाण और अधिकार कहा गया तीसरे अंकसे वैश्यका, चौथे अंकसे शूद्रका और पांचवेंसे अन्त्यज (चाण्डालादिहीन) जातिका वास्तुमान और उसका अधिकार निर्णय हुआ है, चौडाईके अंक धरे जाते हैं यथा,–

	उत्तम.	मध्योत्तम,	मध्यम.	अधम.	अधमाधम.
ब्राह्मण.	३२	२८	२४	२०	१६
क्षत्री.	२८	२४	२०	१६	०
वैश्य.	२४	२०	१६	०	०
शूद्र.	२०	१६	०	०	०
अन्त्यज.	१६	०	०	०	०

इससे जाना गया कि ब्राह्मणलोग ऐसे पृथु व व्यासयुक्त पांच प्रकारके गृहोंमें अधिकारी हैं, वैश्य तीन प्रकार, शूद्र दो प्रकार और अन्त्यजजातिवाले एक प्रकारके गृहमें

अधिकारी हैं ॥१२॥ पहले कही हुई चौडाईके साथ क्रमानुसार अपना दशवां, आठवां, छठवां और चौथा अंश मिलानेसे ब्राह्मणादि चार वर्णोंके वास्तुभवनका व्यास और लम्बाई-का निर्णय होगा परंतु अन्त्यजजातिके व्यासमानकी जो चौडाई है, वही लम्बाईके नामसे नियत हुई है, लम्बाईके अंक धरे जाते हैं यथा,-॥१३॥

	उत्तम.	मध्योत्तम.	मध्यम.	अधम.	अधमाधम.
ब्राह्मण.	३५।४।४८	३०।१९।१२	२६।९।३६	२२	१७।१४।२४
क्षत्री.	३१।१२	२७	२२।१२	१८	०
वैश्य.	२८	२३।१६	१८।८	०	०
शूद्र.	२५	२०	०	०	०
अन्त्यज.	१६	०	०	०	०

प्रजा और सेनापतिके गृहमें जो अंतर होगा; वही कोषगृह और रतिगृहका परिमाण होगा, उसके परिमाणमें चौडाई यथा,-४४।४२।४०।३८।३६। हाथ, लम्बाई यथा;-६०।८,५७।१६, ५४।८, ५१।८, ४८।८ अंगुल कोषगृह वा रतिगृहके साथ सेनापतिके ओर चार वर्णके वास्तुमानका अंतरमानही राजपुरुषोंके वास्तुगृहका परिमाण होगा अर्थात् राज-पुरुष ब्राह्मण हो तो ब्राह्मण वास्तु-व्यासको सेनापति वास्तुमान-व्याससे हीन करके जो शेष रहे उस मानाङ्कसे उसका गृह-पंचक बनावे, जो राजपुरुष क्षत्री हो तो उसके वास्तु-मानको सेनापति वास्तुमानके दूसरे अंकसे अधिकारके अनुसार वास्तुमान धराकर अधिकारा-नुसार गृहादि निर्माण करे ॥१४॥ पारसव राजतिलक पाये और अम्बष्ठ आदि जातियोंके गृह निर्माण स्थानमें अपने २ परिमाणके योगजार्द्ध (चौड़ाई, लम्बाई) तुल्य गृह होगा अर्थात् संकर जातियां जिन दो जातियोंसे उत्पन्न हुई हैं उन दो जातियोंके घरोंकी चौड़ाई और लम्बाई मिलाकर उसके आधे मानमें उनका गृह-पंचक बनावे. सब जातियोंके लिय अपने २ परिमाणकी अपेक्षा हीन या अधिक वास्तुका परिमाण शुभदायी होता है ॥१५॥ पशुशाला प्रव्राजिकालय, धान्यागार, शस्त्रागार, अग्निशाला और रतिगृह (बैठक) का परिमाण इच्छानुसार किया जा सकता है, परंतु कोई गृहभी शत हाथसे ऊंचा न हो, यही शास्त्रकार लोगोंका अभिप्राय है ॥१६॥ सेनापतिका गृह और राजाके गृहके व्यासाङ्क परस्पर जोडकर उसमें सत्तर मिलावे, फिर उसको दो जगह रखे एक जगह १४ चौदहसे भाग करनेपर जो कुछ प्राप्त हो, वही शाला अर्थात् घरके भीतरका परिमाण है और दूसरे जगहके अंकको १५ पंद्रहसे भाग करने पर अलिन्द अर्थात् शालाभित्तिके बाहरी भागका सोपानयुक्त आंगनका परिमाण होगा, यह राजाके लिए है, और जातिके पुरुषोंके घरके भवनशाला और अलिन्दमान निकालना हो तो राजा और सेनापतिके घरके दो दो व्यासोंके योगफलके साथ (अपने अधिकारानुसार) सजातीय व्यासांकहीन करके उसमें (७०) मिलावे, फिर उसको दो जगह रखकर क्रमसे १४ और १५ पंद्रहसे भाग करनेपर क्रमानुसार शाला और अलिन्दका परिमाण निकल आवेगा ॥१७॥ पहले चार श्लोकोंमें जो ब्राह्मणादि चार वर्णोंका गृह व्यास ३२ बत्तीस हाथके रूपसे कहा गया है. उसमें क्रमानुसार ४ हाथ सत्रह अंगुल, ४ चार हाथ ३ तीन अंगुल, ३ हाथ पंद्रह अंगुल, तीन हाथ तेरह अंगुल और तीन हाथ चार अंगुलके परिमाणकी शाला बनाई जाय और इन गृहोंका अलिन्द परिमाण क्रमानुसार तीन हाथ उन्नीस अंगुल, तीन हाथ

आठ अंगुल, दो हाथ बीस अंगुल दो हाथ अठारह अंगुल और दो हाथ तीन अंगुलके परिमाणका होगा ॥१८॥१९॥ पहले कहे हुए शालामानके त्रिभागकी स्थानभूमि भवनके बाहर रक्खे, इस भूमिका नाम वीथिका है, जो यह वीथिका वास्तुभवनके पूर्वभागमें हो तो उक्त वास्तुका नाम "सोष्णीष" है, यदि वास्तुके पश्चिम ओर वीथिका हो तो उस वास्तुको "सायाश्रय" वास्तु कहते हैं, जो उत्तर अथवा दक्षिण दिशामें वीथिका हो तो उसको "सावष्टम्भ" नामक वास्तु कहते हैं और जो वास्तुभवनके चारों ओरही ऐसी वीथिका हो तो उसको "संस्थित" कहते हैं, इन समस्त वास्तुओंकी शास्त्रकार लोग पूजा किया करते हैं अर्थात् ऐसी वास्तु अत्यन्त शुभदायी है ॥२०॥२१॥ उस गृहका जितना विस्तार हो उसको सोलहवें अंशके साथ चार हाथ मिलानेसे जितने हाथ हों वही उस घरकी ऊंचाई होगी बाकी चार प्रकारके घरोंकी ऊंचाई क्रमानुसार उसकी अपेक्षा बारह भाग करके कम होगी ॥२२॥ समस्त गृहोंके व्यासका सोलहवां भागही भीतका परिमाण है, यह परिमाण पक्की ईंटोंसे बने घरका है, परंतु काठसे बने घरकी भीतका परिमाण इच्छानुसार कर लेना चाहिये ॥२३॥ राजा और सेनापतिके घरका जो व्यास हो उसके साथ सत्तर मिलाय ११ ग्यारहसे भाग करनेपर जो प्राप्त हो उतने हाथ उसके प्रधान-द्वारका विस्तार होगा विस्तार हस्त परिमाण जितने अंगुल हो, उतने हाथ वह ऊंचा होगा और द्वारविस्तारके अर्द्धद्वारका नाम विष्कम्भ माना है ॥२४॥ ब्राह्मणादि दूसरी जातिके पुरुषोंके गृहव्यासके पचासमें अठारह अंगुल मिलानेसे जो होगा, वही उस घरके द्वारका परिमाण होगा द्वारपरिमाणका आठवां भाग, द्वारका विष्कम्भ और विष्कम्भसे ऊँची द्वारकी उंचाई होगी ॥२५॥ ऊँचाइमें जितने हाथ ऊंचा हो, उतने अंगुल वह चौडा होगा. घरकी दोनों शाखायें ऐसी होंगी और शाखाकें परिमाणसे डयोढा उदुम्बरका परिमाण है ॥२६॥ जिस घरकी उंचाई जितने हाथ हो उसको सत्रह १७ गुणा करके ८० अस्सीसे भाग करनेपर जो प्राप्त हो, वही इसके मूल (नीवकी) चौडाई है, ऊंचाईसे नौ गुनी और अस्सीसे विभक्त हस्तपरिमाण अपना दशांश हीन करनेपर जो कुछ वचे, वही स्तम्भके अग्र भागका परिमाण है ॥२७॥ स्तम्भ मध्यभाग चौकोर हो तो उसको "रुचक" कहते हैं अष्टास्र होनेपर उसका नाम "वज्र" है षोडशास्त्र स्तंम्भको "द्विवज्र" द्वात्रिंशदस्रको "प्रलीनक" और वृत्तको "वृत्त" नामक स्तम्भ कहते हैं, यह पांच प्रकारके स्तभही शुभ फलदायी हैं ॥२८॥ स्तम्भपरिमाणको नौसे विभक्त करनेपर जो लब्ध हो उस समस्तका नाम वहन है, उसमें सबसे नीचे नवम भागका नाम "वहन" है, अष्टम भागका नाम "घटाग्र" है. सातवें भागका नाम "पद्म" है, छठेका नाम "उत्तरोष्ठ" है और पंचमका नाम "भार-तुला" है, चौथे भागका नाम "तुला" है, तीसरे भागका नाम "उपतुला" है, दूसरे भागका नाम "अप्रतिषिद्ध" और प्रथम भागका नाम "अलिन्द" है, यह क्रमानुसार परस्पर चतुर्थांशसे घटाये जायँगे, उस भवनके चारों ओर ऐसा वहन और द्वार हो, उसको "सर्वतोभद्र" नामक वास्तु कहते हैं यह राजा, राजाश्रित पुरुष और देवताओंके लिये मंगलदायी है ॥२९॥३०॥३१॥ जिस वास्तुशालाके चारों ओर अलिन्दप्रदक्षिणाके क्रमसे नीचेतक गमन करे, उसको "नन्द्यावर्त्त" नामक वास्तु कहते हैं, इसके पश्चिममें द्वार नहीं होगा, और द्वार वर्त्तमान रहेंगे ॥३२॥ जिस वास्तुके अलिन्द प्रदिक्षणाके क्रमसे द्वारके नीचे भागतक गमन करे, वह शुभदायक है, इस वास्तुका नाम "वर्द्धमान" है इसके दक्षिणमें द्वार नहीं

चाहिये, जिसकी पश्चिमदिशामें एक और पूर्व दिशामें दो अलिन्द शेषतक हों, और दूसरे दो ओरके अलिन्द उठे हुए हों, और शेष सीमा विवृत रहे, उसको "स्वतिक" नामक वास्तु कहते हैं इससे पूर्वद्वार अच्छा नहीं ॥३३॥३४॥ जिसके पूर्व पश्चिमके दो अलिन्द अस्त हो जायँ और बाकी दो पूर्व पश्चिमके अलिन्दतक चले जाँय, उसको "रुचक" नामक गृह कहते हैं उससे उत्तरद्वार अच्छा नहीं और समस्त द्वार शुभदायी हैं, ॥३॥ नन्द्यावर्त और वर्द्धमान नामक वास्तु सबहीके लिये शुभदायी है, स्वस्तिक और रुचक मध्यम फलदायी शेष वास्तु केवल राजाओंहीको शुभदायी है ॥३६॥ जिसके उत्तर ओर शाला न हो वह "हिरण्यनाभ" तीन शालावाला "धन्य" और पूर्व दिशामें शाला न होनेपर "सुक्षेत्र' नामक वास्तु होता है यह शुभदायी है ॥३७॥ जिनके दक्षिणमें शाला नहीं है उसको "चुल्लीत्रिशालक" कहते हैं यह धनका नाश करता है, पश्चिमशालाहीन वास्तु "पक्षघ्न" कहाता है, इससे सुतका नाश और वैर होता है ॥३८॥ जिसके पश्चिम और दक्षिणमें शाला हो उसको "सिद्धार्थ" कहते हैं, पश्चिम और उत्तरमें शाला होनेसे "यमसूर्य" कहते हैं उत्तर और पूर्वमें शाला हो तो "दण्ड" और पूर्व व दक्षिणमें शाला हो तो "वात" वास्तु कहते हैं ॥३९॥ पूर्व और पश्चिम दिशामें शालावाले घरको "गृहचुल्ली" नामक और दक्षिण व उत्तरमें शाला हो तो उसको "काच" वास्तु कहते हैं. सिद्धार्थ वास्तुसे धनकी प्राप्ति होती है, यमसूर्य वास्तुसे गृहके स्वामीकी मृत्यु होती है. दण्डवास्तुसे दण्ड और वध, वात वास्तुसे क्लेशका उद्योग, चुल्लीसे वित्तका नाश और काचवास्तुसे जातिविरोध होता है ॥४०॥४१॥ (वास्तुमंडल दो प्रकारके हैं) एकाशीतिपद और चौंसठ पद उनमें एकाशीतिपद वास्तुमंडलके लिये पूर्वायत दश रेखा और उसके ऊपर उत्तरायत दश रेखा अंकित करनेसे इक्यासी कोठे होंगे, इस एकाशीतिपद वास्तुमंडलमें पंचचत्वारिंशत ४५ देवता विराजमान रहते हैं. उसके मध्य (बीचमें) तेरह और बाहर बत्तीस विराजमान रहते हैं. सो ऐसे,-शिखी, पर्जन्य, जयन्त, इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृश और अन्तरिक्ष. यह सब देवता ईशानकोणसे क्रमानुसार नीचेके भागमें विराजमान हैं. अग्निकोणमें अनिल, उसके उपरांत क्रमानुसार नीचेके भागमें पूषा, वितथ और बृहत्, क्षत, यम, गंधर्व, भृगराज और मृग विराजमान हैं. नैर्ऋतकोणसे आरंभ करके क्रमानुसार दौवारिक (सुग्रीव), कुसुमदत्त, वरुण, असुर, शोष और राजयक्ष्मा और वायुकोणसे आरंभ करके क्रमक्रमसे तत, अनन्त, बासुकि, मल्लार, सोम, भुजग, अदिति और दिति यह सब देवता विराजमान रहते हैं ॥४२॥४३॥४४॥४५॥ बीचके नौवें कोठेमें ब्रह्माजी विराजमान हैं, ब्रह्माकी पूर्वदिशामें अर्यमा, उसके उपरांत सविता, विवस्वान्, इन्द्र, मित्र, राजयक्ष्मा, शोष और आपवत्स नामक देवतालोग प्रदक्षिणाके क्रमसे एक एक कोठेके अंतरसे ब्रह्माके चारों ओर विराजमान हैं आप नामक देवता ब्रह्माजीके ईशानकोणमें विराजमान हैं. अग्निकोणमें सावित्र, नैर्ऋतिकोणमें जय और वायुकोणमें रुद्रजी विद्यमान हैं. यह सब भीतर स्थिति करते हैं ॥४६॥३४७॥४८॥ आप, आपवत्स, पर्जन्य, अग्नि और दिति यह सब वर्ग देवता हैं. इस पंच वर्गसे पांच पांच देवता विराजमान है यह पंचपादिक हैं. अवशिष्ट समस्त बाह्यदेवता द्विपादिक हैं. परंतु इनकी संख्या बीस है. और अर्यमा आदि जो चार देवता हैं जो ब्रह्माके चारों ओर विराजमान हैं, वह त्रिपादिक हैं ॥४९॥५०॥ इन वास्तु-पुरुषका मुख नीचेको और मस्तक ईशानकोणमें है, इनके मस्तकपर शिखी स्थित है. मुखपर

आप, स्तनपर अर्यमा, छातीपर आपवत्स हैं ॥५१॥ पर्जन्य आदि बाहरके चार देवता पर्जन्य, जयन्त, इन्द्र और सूर्य क्रमसे नेत्र, कर्ण, उरस्थल और स्कंधपर स्थित हैं. सत्य इत्यादि पांच देवता भुजापर स्थित हैं. सविता और सावित्र हाथपर विराज रहे हैं ॥५२॥ वितथ और बृहत्क्षत पार्श्वपर हैं, विवस्वान् उदरपर है, यम ऊरुपर, गंधर्व जानुपर, भृंगराज जंघापर और मृग स्फिक्के ऊपर हैं ॥५३॥ यह देवता वास्तुपुरुषके दाहिने ओर टिके हैं. इसी प्रकार बांई ओर भी देवता स्थित हैं अर्थात् वामस्तनपर पृथ्वी, अधर नेत्रपर दिति, कर्णपर अदिति, बाई ओरकी छातीपर भुजंग, स्कन्धपर सोम, भुजपर भल्लाट मुख्य, अहिरोग, पापयक्ष्मा यह पांच स्थित हैं. वामहस्तपर रुद्र और राजयक्ष्मा, पार्श्वपर शोष और असुर, ऊरुपर वरुण, जानुपर कुसुमदन्त, जंघापर सुग्रीव और स्फिक्पर दौवारिक हैं यह देवता वास्तुपुरुषके वामभागमें स्थित हैं. वास्तुपुरुषके लिङ्गपर इन्द्र व जयन्त स्थित हैं, हृदयपर ब्रह्मा स्थित हैं और पैरोंपर पिता है. यह नगर, ग्राम, गृह इत्यादिमें इक्यासी पदके वास्तुका विभाग कहा है, अब चौंसठ पदका वास्तु कहते हैं ॥५४॥ अथवा चौंसठ कोठाकाही वास्तु बनावे अर्थात् नौ रेखा पूर्व पश्चिम और नौ रेखा दक्षिण उत्तरमें खैंचकर चौंसठ कोठे वास्तुमें बनावे और चारों कोनोंमें कर्णके आकार दो तिरछी रेखा खैंचे. इस पदमें ब्रह्मा चार कोठोंका स्वामी है. ब्रह्माके कानोंमें स्थित आठ देवता आपवत्स, सविता, सावित्र, इन्द्र, जयन्त, राजयक्ष्मा और रुद्र ॥५५॥ और बाहिरके कोनोंमें टिके हुये आठ देवता हैं अग्नि, अंतरिक्ष, वायु मृग, पिता, पाप, यक्ष्मरोग और दिति यह सब आधे आधे कोष्ठके स्वामी हैं और इनके दोनों ओर विराजमान पर्जन्य, भृश, भृङ्गराज, दौवारिक, शेषनाग और अदिति यह डेढ डेढ पदके स्वामी हैं और शेष बीस देवता जयन्त इन्द्र, सूर्य, सत्य वितथ, बृहत्क्षत, यम, गंधर्व, सुग्रीव, कुसुमदन्त, वरुण, असुर, मुख्य भल्लाट, सोम, भुजंग, अर्यमा, विवस्वान्, मित्र, पृथ्वीधर यह सब दो दो कोष्ठके स्वामी हैं, यह चौंसठ पदका वास्तु कहा है ॥ ५६ ॥ आगे वंशोंके सम्मात जो कहेंगे वह और पदोंके सममध्य यह वास्तुके मर्म जाने, प्राज्ञ पुरुषको उचित है कि कभी इनको पीडन न करे ॥५७॥ वास्तुमें मर्म स्थान, अपवित्र, भाण्ड, कील, स्तम्भ इत्यादि करके और शल्य जो आगे कहेंगे उनसे पीडित हो तो घरके स्वामीके उस उस अंगमें अर्थात् वास्तुका जो जो अंग हो, उसी अंगमें पीडा देते हैं ॥५८॥ होम अथवा प्रश्नके समय घरका मालिक अपने जिस अंगको खुजलावे. वास्तुके उस अंगमें शल्य होता है और अग्नि आदि जिस देवताके आहुति देनेके समय छींक रोना आदि अशुभ शकुन हों अथवा अग्निमें कुछ विकार उत्पन्न हो तो वह देवता वास्तुपुरुषके जिस अंगमें हो, उस अंगको शल्ययुक्त जाने ॥५९॥ काष्ठका शल्य होनेसे धनहानि, अस्थियोंका शल्य होनेसे पशुपीडा और रोगभय होता है, लोहेके शल्यसे शस्त्रभय, कपाल और केशोंके शल्यसे मृत्यु होती है ॥६०॥ कोयलोंके शल्यसे चोरभय, भस्मके शल्यसे सदा अग्निभय होता है, सुवर्ण और चांदीके सिवाय और कोई शल्य जो वास्तु पुरुषके मर्ममें टिका हो तो अत्यन्त अशुभ होता है ॥६१॥ जो धान आदिके तुष वास्तुपुरुषके मर्मस्थानों या और किसी स्थानमें हो तो धनके आगमनको रोकते हैं, नागदंत शुभ है, परंतु मर्मस्थानमें हो तो दोषकारी होता है ॥६२॥ वास्तुपुरुषमें रोमनामक देवतासे अनिलतक, पितासे शिखी पर्यंत, वितथसे शोषतक, मुखसे भृशतक, जयन्तसे भृंगतक और अदितिसे सुग्रीवतक सूत्र डाले ॥६३॥ इन सूत्रोंके नौ

संपात वास्तुपुरुषके अतिमर्म कहे हैं, एक पदका अष्टमांश मर्मका परिमाण कहा है ।।६४।। पहले कहे छः सूत्रोंका वंशभी कहते हैं और वास्तु विभागके लिये जो पूर्वापर और दक्षिणोत्तर दश दश रेखा की हैं उनको शिरा कहते हैं, एक पादका विस्तार वास्तुमें जितने हाथ हो, उतने अंगुल एक वंशका विस्तार होता है और वंशके विस्तारसे ड्योढा शिराका विस्तार होता है ।।६५।। यदि घरका स्वामी सुख चाहे तो वास्तुके बीचमें स्थित हुए ब्रह्माकी यत्नसे रक्षा करे, ब्रह्माके ऊपर जूंठन इत्यादि डालनेसे घरके मालिकको क्लेश होता है ।।६६।। वास्तुपुरुषके दाहिनी भुजा हीन होनेसे धनका नाश व स्त्रीदोष होते हैं, वामभुजा हीन होनेसे धन और अन्नकी हानि होती है, वास्तुपुरुषका शिर हीन हो तो धन आरोग्यादि समस्त गुणों का नाश होता है ।। ६७ ।। वास्तुपुरुष चरणरहित हो तो स्त्रीदोष, पुत्रमरण और दासपन होता है, जो वास्तुपुरुषके संपूर्ण अंग पूर्ण हों तो उस वास्तुमें रहनेवालोंका मान और धनका सुख होता है ।।६८।। गृह, नगर और ग्रामोंमेंभी ऐसेही यह वास्तु देवता विराज रहे हैं उस नगर ग्रामादिमें ब्राह्मणादि वर्णोंको क्रमानुसार बसावे ।।६९।। उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिम इन चार दिशाओंमें क्रमानुसार चतुःशाल (चटशाल) घरमें ग्राममें अथवा नगरमें ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य और शूद्र वसें, वे घर ऐसे बनाये जांय कि अपने घरके आंगनमें प्रवेश करनेके समय अपने निवासके घर दाहिनी ओर रहे ।।७०।। इक्यासी पदके वास्तुमें नौ गुने सूत्रसे और चौंसठ पदके वास्तुमें आठ गुने सूत्रसे विभक्त किये जो अनलादि बत्तीस द्वार हैं, क्रमानुसार उनका फल कहते हैं, ।।७६।। अग्निसे लेकर अंतरिक्षतक जो आठ देवता वास्तुपुरुषके पूर्वभागमें हैं, उनपर द्वार होय तो क्रमसे अग्निभय, कन्याजन्म, बहुत धन, राजाकी प्रसन्नता, क्रोधीपन, असत्य बोलना, क्रूरपन और चौरपन यह फल होते हैं ।।७२।। पवनसे लेकर मृगतक दक्षिणके-आठ देवताओंके पदमें द्वारका फल क्रमसे अल्पपुत्रता, दासपन, नीचपन, भोजन, पान और पुत्रोंकी वृद्धि, रौद्र, कृतघ्न, धनहीनता, पुत्र और बलका नाश होता है ।।७३।। पितासे लेकर पापपर्यंत पश्चिमके आठ देवताओंपर द्वार रखनेका फल क्रमसे पुत्रपीडा शत्रुवृद्धि, धन और पुत्रोंकी अप्राप्ति, पुत्र, धन और बलकी प्राप्ति, धन संपत्ति, राजभय धनक्षय और रोग है ।।७४।। यक्ष्मरोगसे लेकर दितितक उत्तरके आठ देवताओंपर द्वार लिखनेका फल मृत्यु, बंधन, शत्रुवृद्धि, पुत्र और धनका लाभ, सब गुणोंकी संपत्ति, पुत्र और धनकी प्राप्ति, पुत्रसे वैर स्त्रीदोष और निर्धनता ये हैं ।।७५।। मार्गका वृक्ष, किसी दूसरे घरकी खूंट, कुंआ, खम्भ, जल निकलनेकी मोरी इनसे विंधा हुआ द्वार अशुभ होता है अर्थात् घरके द्वारके सन्मुख इनका होना नहीं चाहिये परंतु घरके द्वारकी जितनी ऊंचाई हो, उससे दूनी पृथ्वी छोडकर जो इनमेंसे किसीका वेध हो तो कुछ दोष नहीं है ।।७६।। घरके द्वारके मार्गका वेध हो तो घरके मालिकका नाश, वृक्षका वेध होनेसे बालकोंका दोष, पंक अर्थात् कीचका वेध होनेसे अर्थात् घरके सम्मुख सदा पंक बना रहे तो शोक होता है. मोरीका वेध होनेसे धनका खर्च होता है ।।७७।। कूपका वेध होनेसे मृगीरोग, देवताकी मूर्तिका वेध होनेसे घरके स्वामीका नाश, स्तम्भका वेध होनेसे स्त्रियोंके दोष और ब्रह्माके सम्मुख द्वार होनेसे कुलका नाश होता है ।।७८।। जिस गृहके द्वारका किवाड विना खोले ही खुल जाय उनमें उन्माद रोग होता है. जिसका किवाड आपसेही बंद हो जाय, उसमें कुलनाश हो जाता है. अपने परिमाणसे द्वार बडा

हो तो राजाका भय और छोटा हो तो चोरभय होता है और दुःख देता है ॥७९॥ ठीक द्वारपर दूसरे खण्डका द्वार आवे तो वह शुभ नहीं होता और ओछा द्वारभी शुभ नहीं. बहुत चौडा द्वार क्षुधाका भय करता है और कुबडा द्वार कुलका नाश करनेवाला होता है ॥८०॥ ऊपरके काठसे बहुत दबा हुआ द्वार घरके स्वामीको पीडा करता है. भीत्तरको झुका हुआ गृह स्वामीका मरण करता है. बाहरको झुका होय तो गृहस्वामी विदेशमें रहे और किसी दिशाकी ओर देखता हो तो चोरोंसे पीडित होता है ॥८१॥ घरके मुख्य द्वारका रूप और साधारण द्वारोंके समान न हों करे अर्थात् और द्वारोंसे मुख्यद्वारका रूप श्रेष्ठ होना चाहिये. मुख्य द्वारपर कलश, फल, पत्र, शिवजीके गण आदि मंगलदायक शोभासे शोभित करे अर्थात् इनके चित्र द्वारपर खुदवावे ॥८२॥ घरके बाहर ईशान आदि चारों कोनोंमें क्रमानुसार चरकी, विदारी, पूतना और राक्षसी यह चार देवता टिके हैं ॥८३॥ घर ग्राम और नगरके जो चारों कोण हैं, उनमें वास करनेवालोंको अनेक प्रकारके क्लेश होते हैं और उन कोणोंमें जो श्वपच आदि नीच जाति वसे तो उनकी वृद्धि होती है ॥८४॥ पिलखन, वट, गूलर, पीपल यह चार वृक्ष क्रमानुसार घरके दक्षिण, पश्चिम, उत्तर और पूर्वमें हो तो अशुभ होते हैं और उत्तर, पूर्व, दक्षिण और पश्चिममें क्रमसे यह वृक्ष उत्पन्न हों तो शुभ है ॥८५॥ घरके समीप खैर आदि काटोंवाले वृक्ष हों तो शत्रुभय करते हैं. आक आदि दूधवाले वृक्ष धनका नाश करते, हैं आम्रादिफलनेवाले वृक्ष सन्तानका क्षय करते हैं. इन वृक्षोंका काठभी घरमें न लगावे ॥ ८६ ॥ जो घरके समीप यह वृक्ष हों और इनको काटे नहीं तो इनके साथ और शुभ वृक्ष लगा दे. नागकेशर, अशोक, नीम, मौलसिरी, कटहर, जांट, शाल यह वृक्ष शुभ हैं ॥८७। उत्तम औषधीवृक्ष औंर लताओंसे युक्त मधुर सुगंधवाली चिकनी समान और छिद्रोंसे रहित भूमिके मार्गमें चलनेवाले पुरुष जो श्रम दूर करनेको क्षणमात्रके लिये उसमें बैठ जांय तो उनकोभी लक्ष्मी देती है. फिर जिनके घरही ऐसी भूमिमें बने हैं और वह पुरुष सदा उनके नीचे वास करते हैं उनको लक्ष्मीका प्राप्त होना क्या बडी बात है ॥८८॥ घरके निकट राजाके मंत्रीका घर हो तो धनका नाश होता है. दूसरोंको ठगनेवालेका घर पास हो तो पुत्रमरण, देवताका मंदिर समीप हो तो चित्तको खेद रहे. चतुष्पथ (चौराहा) समीप हो तो अकीर्ति हो ॥८९॥ चैत्य अर्थात् प्रधान वृक्ष घरके समीप हो तो स्वामीको ग्रहोंका डर है, सर्पकी बांबी और गढोंदार भूमि घरके पास होय तो विपत्ति होवे. घरके समीम गढा हो तो प्यासका रोग हो और कछुएके समान आकारकी भूमि घरके समीप हो तो घरके स्वामीके धनका नाश होता है ॥९०॥ उदक्प्लव, (जिस भूमिका झुकाव उत्तरकी ओर हो) वह भूमि ब्राह्मणोंके लिये शुभ है. इसी प्रकार पूर्वप्लव, दक्षिणप्लव और पश्चिमप्लव भूमि क्रमसे क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंके लिये शुभदायी होती है, ब्राह्मण सब प्रकारकी भूमिमें वसें, उसका चाहे जिस दिशामें प्लव हो और वर्णोंके लिये अनुवर्ण भूमि शुभं है, पूर्वप्लव, दक्षिणप्लव और पश्चिमप्लव क्षत्रियोंको, दक्षिणप्लव और पश्चिम प्लव वैश्योंको और केवल पश्चिमप्लव शूद्रोंको शुभ है ॥९१॥ घरमें एक हाथ चौडा एक हाथ गहरा गढा खोदे, फिर उसको उसी मट्टीसे पूर्ण करे, जो गढा भरनेमें मट्टी कम हो जाय तो वह घर अशुभ होता है. ठीक ठीक गढा भर जाय तो न शुभ और न अशुभ होता है, और जो गढा भर जाय व मट्टी बच रहे तो

वह गृह सब प्रकारसे शुभ होता है ॥९२॥ पहली कही हुई रीतिसे गढा खोदकर उसमें जल भरे, सौ पदतक जाकर लौट आवे उतने समयमें यदि गढेका जल कुछ भी न घटे वह भूमि शुभ होती है, और जहांकी धूरिसे आढकको भरकर फिर तोले और वह धूरि चौसठ पल हो तो वह भूमि भी शुभ है (अन्न नापनेका एक काठका बरतन जिसमें अनुमान चार सेर अन्न आता है, उसको आढक कहते हैं, चालीस मासेका एक पल होता है) ॥९३॥ मट्टीके कच्चे वर्त्तनमें चार बत्तीवाला दीपक डाले, उनमें उत्तरादि बत्तियोंमें ब्राह्मण इत्यादि चार वर्णोंकी कल्पना कर दीपक जलाय गढेमें रक्खे, जिस वर्णकी दिशामें बत्ती बहुत समय पर्यन्त जलती रहे, वह भूमि उस वर्णको शुभदायी है ॥९४॥ ब्राह्मण इत्यादि वर्णके रंगके समान अर्थात् सफेद, लाल, पीला और काल रंगके चार फूल लेकर गढेमें सांझ समयसे रक्खे और दूचेरे दिन देखे, जिस वर्णका फूल न कुम्हलाया हो, वह भूमि उस वर्णके लिये शुभ है या भूमिमें अपना मन लगे वह भूमि शुभ है, उसमें और कुछ विचारनेकी आवश्यकता नहीं है ॥९५॥ ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके लिये क्रमानुसार श्वेत, रक्त पीत और कृष्णवर्णकी भूमि शुभ है. जिस भूमिमें घी, रक्त अन्नादि और मद्यके समान गंध हो वह ब्राह्मणादि वर्णोंके क्रमसे शुभ है ॥९६॥ जिस भूमिमें कुशा, शर, दूध और कांस अधिक हो वह ब्राह्मणादि वर्णोंके लिये क्रमसे शुभ है और जिस भूमिकी मट्टी मीठी कबैली, आम्ल (खट्टी) और कडवी हो, वह भूमि क्रमानुसार ब्राह्मणादि चार वर्णोंके लिये शुभ होती है ॥९७॥ जिस भूमिमें गृह बनाना हो तो प्रथम उसको हलसे जोतकर उसमें बीज बोवें जब वह बीज पक चुके तो फिर एक रात्री उस भूमिमें गौ बैठे और ब्राह्मण उस भूमिकी प्रशंसा करें, ऐसी भूमिमें गृह बनानेकी इच्छा करनेवाला पुरुष ज्योतिषीके बताये मुहूर्तपर जाकर अनेक प्रकारके लड्डू, पुए आदि भक्ष्य, दही, अक्षत सुगंधयुक्त पुष्प और धूप करके क्षेत्रपाल आदि देवताओंका पूजन करके कारीगर गृहारंभकी रेखा करे ॥९८॥९९॥ रेखा करनेके समय ब्राह्मण अपने शिरको, क्षत्रिय छातीको, वैश्य ऊरुको और शूद्र पैरोंको छूकर रेखा करें ॥१००॥ गृहके आरंभमें जो गृहपति अंगुष्ठ, मध्यमा प्रदेशिनी (अंगूठेके निकटकी अंगुली) से सुवर्ण, मणि, चांदी, मोती, दही, फल, पुष्प, अक्षत इनमें किसीसे रेखा करे तो शुभ होता है ॥१०१॥ शस्त्रसे रेखा करे तो शस्त्रसेही गृहस्वामीकी मृत्यु हो, लोहसे करे तो बंधन, भस्मसे करे तो अग्निभय, तिनके से करे तो चोरभय और काठसे गृहारम्भ में रेखा करे तो राजभय होता है ॥१०२॥ टेढी, पैरसे खैंची हुई अथवा बुरे रूपकी रेखा हो तो शत्रुभय और क्लेशदायक है. चमडा, कोयला, अस्थि और दांतसे की हुई रेखा गृहस्वामीका अशुभ करती है ॥१०३॥ जो रेखा दाहिनी ओरसे बांई ओरको खैंची जाय वह वैर करती है, बांई ओरसे दाहिनी ओरको जो रेखा खैंची जाय तो संपत्ति होती है. गृहारंभके समय कोई कठोर वचन कहे, थूके अथवा छींके तो अशुभ कहा है ॥१०४॥ अध बने व संपूर्ण बने गृहमें प्रवेश करता हुआ कारीगर शुभ अशुभ चिह्न देखे, कि घरका मालिक वास्तु-पुरुष के किस अंगपर टिका है और अपने किस अंगको छू रहा है ॥१०५॥ उस काल सूर्यके वश जो दीप्त दिशा हो उसमें टिका हुआ पक्षी रूखे शब्द बोलता हो तो जिस स्थानपर गृहपति स्थित हो वहां नीचे हड्डी गडी है और हड्डीभी उस अंगकी है जो अंग गृहस्वामीने उस समय छू रक्खा है, यह जाने। उदय होनेके समय सूर्य पूर्वदिशामें रहता है

फिर दिन रातके आठ पहरोंमें क्रमानुसार एक एक प्रहर आठों दिशाओंमें सूर्य गमन करता है. जिस दिशाको सूर्य छोड आया हो, वह दिशा अंगारिणी है. जिसमें स्थित हो वह दीप्ता और जिसमें जानेवाला हो वह धूमिता दिशा कहाती है. इन तीनोंको त्याग बाकी पांच दिशा शांता होती हैं ॥१०६॥ शकुन देखनेके समय दीप्त दिशाकी ओर मुख करके हाथी, घोडा, कुत्ता इत्यादि जीव बोले तो जहां गृहस्वामी टिका है उस स्थानमें उन जीवोंके उसी अंगकी हड्डी जाने जो अंग गृहपतिने छू रक्खा है ॥१०७॥ सूत्र डालनेके समय गधा बोले तोभी गृहपति जहां बैठा हो उसके नीचे हड्डी गडी होती है. जो सूतको कुत्ता व सियार उलांघ जाय तो भी उस स्थानमें शल्य जाने ॥१०८॥ उस समय जो शांत दिशाकी ओर मुख करके पक्षी मधुर शब्द करें तो पक्षीके बैठनेकी जगह अथवा घरका स्वामी वास्तुपुरुषके जिस अंगपर बैठा है, उस भूमिमें द्रव्य गडा जाने ॥१०९॥ पसारनेके समय सूत टूट जाय तो गृहके मालिककी मृत्यु होती है. गाडनेके समय कीलका मुख नीचेको हो जाय तो बडा रोग हो, गृहस्वामी और कारीगरकी स्मरणशक्ति जाती रहे तो उनकी मृत्यु कहना चाहिये ॥११०॥ जलका कलश जानेके समय कंधेसे गिर जाय तो गृहस्वामीको शिरका रोग हो, जो कलश गिरकर औंधा हो जाय तो गृहस्वामीके कुलको उपद्रव हो, फूट जाय तो मजदूरकी मृत्यु हो और हाथसे कलश छूट पडे तो गृहस्वामीकी मृत्यु होती है ॥१११॥ अग्निकोणमें पूंजा करके पहिली शिला स्थापन करे, फिर और शिलाभी प्रदक्षिणाके क्रमसे स्थापन करे, इसी प्रकार थंभभी खडे करने चाहिये ॥११२॥ थंभको छत्र, पुष्पमाला और, वस्त्रसे भूषित कर गंधधूपादिसे उसका पूजन कर खडा करे इसी प्रकार द्वार (चौखट) कोभी यत्नसहित खडा करना चाहिये ॥११३॥ थंभ या द्वारके ऊपर पक्षी इत्यादि बैठे, स्तम्भ अथवा द्वार खडे करनेके समय कांपे, गिर जांय अथवा ठीक खडे न हों तो उनका फल इन्द्रध्वजके समान जाने अर्थात् इन्द्रध्वजाध्यायमें जो शुभ अशुभ फल कहा है, वही यहांभी जानना चाहिये ॥११४॥ जो वास्तु पूर्व या उत्तर दिशामें ऊंचा हो तो धन और पुत्रोंका क्षय होता है, दुर्गन्धयुक्त वास्तु हों तो पुत्रमरण, टेढा वास्तु हो तो बंधुनाश और जिसमें दिग्विभाग न जाना जाय ऐसा वास्तु हो तो उसमें वास करनेवाली स्त्रियोंको गर्भ न रहे ॥११५॥ यदि घरकी वृद्धि चाहे तो चारों ओर वास्तुको बराबर बढावे कम अधिक न बढावे, जो वास्तुके एक ओर दोष हो अर्थात बढाव हो तो उसको पूर्व अथवा उत्तरमें बढावे ॥११६॥ यदि वास्तु पूर्वकी ओर बढा हो तो मित्रोंके साथ शत्रुता हो, दक्षिणकी ओर बढा हो तो मृत्युका भय, पश्चिमकी ओर बढे तो धनका नाश, उत्तरकी ओर बढा हो तो चित्तको संताप होता है, पूर्व और उत्तरमें, वास्तु बढनेका दोष थोडा है इसी कारण पहली आर्यामें लिखा है कि बढ़ाना हो तो पूर्व अथवा उत्तरको बढाना चाहिये ॥११७॥ गृहके ईशानकोणमें देवगृह, अग्निकोणमें रसोईघर, नैर्ऋत्यकोणमें गृहस्थीकी सब सामग्री रखनेका गृह और वायुकोणमें धन व अन्न स्थापन करनेका गृह बनाना चाहिये ॥११८॥ गृहके पूर्व आदि दिशाओंमें जल स्थित हो तो क्रमानुसार पुत्रमरण, अग्निभय, शुभभय, स्त्रियोंमें क्लेश, स्त्रियोंमें दुःशीलता, निर्धनता, धनवृद्धि और पुत्रवृद्धि यह फल होते हैं ॥११९॥ जिनमें पक्षियोंके घोसलें हों, टूटे हुए, सूखे हुए, जले हुए देवताके मंदिरमें अथवा श्मशानके वृक्षोंको और जिनमेंसे दूध निकलता हो उनको और वच, बहेडा, नीम और अरलू इन सबकों छोडकर वृक्षोंको घरके

लिये काटे ॥१२०॥ रात्रिके समय वृक्षको पूजा बलि देकर दिनमें प्रदक्षिणाके क्रमसे ईशानकोणसे लेकर उस वृक्षको काटे जो वृक्ष कटकर उत्तर अथवा पूर्वदिशामें गिरे तो वह शुभ होता है और दिशामें गिरे तो उसको ग्रहण न करे ॥१२१॥ काटनेके समय वृक्षके घटनेका स्थान विकाररहित हो तो उस वृक्षका काठ घरके लिये शुभ होता है, वृक्षके छेदमें पीले रंगका मण्डल दिखाई दे तो उस वृक्षमें गोहका रहना कहना चाहिये ॥१२२॥ मजीठके सदृश लाल रंगका मण्डल दिखाई दे तो मेंडक, नील रंगका मण्डल हो तो सर्प, रक्त वर्णका मण्डल हो तो गिरगिट, मूंगके रंगका अर्थात् हरा मण्डल दिखाई दे तो पत्थर, कपिल वर्णका मण्डल हो तो चूहा और वृक्षके छेदमें खड्गके रंगका मण्डल दिखाई पडे तो वृक्षके बीच जलका होना कहना चाहिये ॥१२३॥ लक्ष्मीकी इच्छा करनेवाला पुरुष अन्न गौ, गुरु, अग्नि और देवताके ऊपर शयन न करे और बांसके नीचे शय्या बिछाकरभी न सोवे, उत्तर अथवा पश्चिमको मस्तक करके न सोवे, नग्न अर्थात् धोती खोलकर न सोवे और जलसे भीगे हुए पैर रखकर न सोना चाहिये ॥१२४॥ बहुत पुरुषोंके समूहसे भूषित; तोरणसे युक्त, पूर्ण कलशोंसे शोभायमान और जिसमें धूप, गंध, बलि आदिसे देवताओंका पूजन हुआ हो और ब्राह्मण जिसमें वेदध्वनि कर रहें हों ऐसे घरमें प्रवेश करना चाहिये ॥१२५॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

अथ चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः
उदकार्गलम्.

धर्म्यं यशस्यं च वदाम्यतोऽहं दकार्गलं येन जलोपलब्धिः। पुंसां यथाङ्गेषु शिरास्तथैव क्षितावपि प्रोन्नतनिम्नसंस्थाः ॥१॥ एकेन वर्णेन रसेन चाम्भश्च्युतं नभस्तो वसुधाविशेषात् । नानारसत्वं बहुवर्णतां च गतं परीक्ष्यं क्षितितुल्यमेव ॥२॥ पुरुहूतानलयमनिर्ऋतिवरुणपवनेन्दुशङ्करा देवाः । विज्ञातव्याः क्रमशः प्राच्याद्यानां दिशां पतयः ॥३॥ दिक्पतिसंज्ञाश्च शिरा नवमी मध्ये महाशिरानाम्नी । एताभ्योऽन्याः शतशो विनिसृता नामभिः प्रथिताः ॥४॥ पातालादूर्ध्वशिरा शुभाश्चतुर्दिक्षु संस्थिता याश्च । कोणदिगुत्था न शुभाः शिरानिमित्तान्यतो वक्ष्ये ॥५॥ यदि वेतसोऽम्बुरहिते देशे हस्तैस्त्रिभिस्ततः पश्चात् । सार्धे पुरुषे तोयं वहति शिरा पश्चिमा तत्र ॥६॥ चिह्नमपि चार्ध पुरुषे मंडूकः पाण्डुरोऽथ मृत्पीता। पुटभेदकश्च तस्मिन् पाषाणो भवति तोयमधः ॥७॥ जम्ब्वाश्चोदगधस्तैस्त्रिभिः शिराधो नरद्वये पूर्वा। मुल्लोहगन्धिका पाण्डुराथ पुरुषेऽत्र मण्डूकः ॥८॥ जम्बूवृक्षस्य प्राग्वल्मीको यदि भवेत्समीपस्थः। तस्माद्दक्षिणपार्श्वे सलिलं पुरुषद्वये स्वादु ॥९॥ अर्धपुरुषे च मत्स्यः पारावतसन्निभश्च पाषाणः । मृद्भवति चात्र नीला दीर्घं कालं बहु च तोयम् ॥१०॥ पश्चादुदुम्बरस्य त्रिभिरेव करैर्नरद्वये सार्धे । पुरुषे सितोऽहिरश्मा-

ञ्जनोपमोऽधः शिरा सुजला ॥११॥ उदगर्जुनस्य दृश्यो वल्मीको यदि ततोऽर्जुना-द्धस्तैः ॥ त्रिभिरम्बु भवति पुरुषैस्त्रिभिरर्धसमन्वितैः पश्चात् ॥१२॥ श्वेता गोधार्धनरे पुरुषे मृद्धूसरा ततः कृष्णा । पीता सिता ससिकता ततो जलं निर्दिशेद-मितम् ॥१३॥ वल्मीकोपचितायां निर्गुण्ड्यां दक्षिणेन कथितकरैः । पुरुषद्वये सपादे स्वादु जलं भवति चाशोष्यम् ॥१४॥ रोहित मत्स्योऽर्धनरे मृत्कपिला पाण्डुरा ततः परतः। सिकता सशर्कराथ क्रमेण परतो भवत्यम्भः ॥१५॥ पूर्वेण यदि बदर्या वल्मीको दृश्यते जलं पश्चात् । पुरुषैस्त्रिभिरादेश्यं श्वेता गृहगोधिकार्धनरे ॥१६॥ सपलाशा बदरी चेद् दिश्यपरस्यां ततो जलं भवति । पुरुषत्रये सपादे पुरुषेऽत्र च डुण्डुभिश्चिह्नम् ॥१७॥ बिल्वोदुम्बरयोगे विहाय हस्तत्रयं तु याम्येन । पुरुषै-स्त्रिभिरम्बु भवेत् कृष्णोऽर्धनरे च मण्डूकः ॥१८॥ अर्कोदुम्बरिकायां वल्मीको दृश्यते शिरा तस्मिन् । पुरुषत्रये सपादे पश्चिमदिक्स्था वहति सा च ॥१९॥ आपाण्डुपीति-का मृद्गोरसवर्णश्च भवति पाषाणः । पुरुषाऽर्धे कुमुदनिभो दृष्टिपथं मूषको याति ॥२०॥ जलपरिहीने देशे वृक्षः कम्पिल्लको यदा दृश्यः ॥ प्राच्यां हस्तत्रितये वहति शिरा दक्षिणा प्रथमम् ॥२१॥ मृन्नीलोत्पलवर्णा कापोता चैव दृश्यते तस्मिन् । हस्तेऽजगन्धिमत्स्यो भवति पयोऽल्पं च सक्षारम् ॥२२॥ शोणाकतरोर-परोत्तरे शिरा द्वौ करावतिक्रम्य । कुमुदा नाम शिरा सा पुरुषत्रयवाहिनी भवति ॥२३॥ आसन्नो वल्मीको दक्षिणपार्श्वे विभीतकस्य यदि । अध्यर्धे तस्य शिरा पुरुषे ज्ञेया दिशि प्राच्याम् ॥२४॥ तस्यैव पश्चिमायां दिशि वल्मीको यदा भवेद्धस्ते । तत्रोदग्भवति शिरा चतुर्भिरर्धाधिकैः पुरुषैः ॥२५॥ श्वेतो विश्वम्भरकः प्रथमे पुरुषे तु कुंकमाभोऽश्मा । अपरस्यां दिशि च शिरा नश्यति वर्षत्रयेऽतीते ॥२६॥ सकुशासित ऐशान्यां वल्मीको यत्र कोविदारस्य । मध्ये तयोर्नरैरर्धपञ्चमैस्तोयम-क्षोभ्यम् ॥२७॥ प्रथमे पुरुषे भुजगः कमलोदरसन्निभो मही । रक्ता कुरुविन्दः पाषाणश्चिह्नान्येतानि वाच्यानि ॥२८॥ यदि भवति सप्तपर्णो वल्मीकवृतस्तदुत्तरे तोयम् । वाच्यं पुरुषैः पञ्चभिरत्रापि भवंति चिह्नानि ॥२९॥ पुरुषार्धे मण्डूको हरितो हरितालसन्निभा भूश्च । पाषाणोऽभ्रनिकाशः सौम्या च शिरा शुभाम्बुवाहा ॥३०॥ सर्वेषां वृक्षाणामधःस्थितो दर्दुरो यदा दृश्यः । तस्माद्धस्ते तोयं चतुर्भिरर्धा-धिकैः पुरुषैः ॥३१॥ पुरुषे तु भवति नकुलो नीला मृत्पीतिका ततः श्वेता । दर्दुर-समानरूपः पाषाणो दृश्यते चात्र ॥३२॥ यद्यहिनिलयो दृश्यो दक्षिणतः संस्थितः करञ्जस्य । हस्तद्वये तु याम्ये पुरुषत्रितये शिरा सार्धे ॥३३॥ कच्छपकः पुरुषार्धे प्रथमं चोद्भिद्यते शिरा पूर्वा । उदगन्या स्वादुजला हरितोऽश्माऽधस्ततस्तोयम् ॥३४॥ उत्तरतश्च मधूकादहिनिलयः पश्चिमे तरोस्तोयम् । परिहृत्य पञ्च हस्तान् अर्धाष्टमपौरुषे प्रथमम् ॥३५॥ अहिराजः पुरुषेऽस्मिन् धूम्रा धात्री कुलत्थवर्णो-

ऽश्मा । माहेन्द्री भवति शिरा वहति सफेनं सदा तोयम् ॥३६॥ वल्मीकः स्निग्धो दक्षिणेन तिलकस्य सकुशदूर्वश्चेत् । पुरुषैः पञ्चभिरम्भो दिशि वारुण्यां शिरा पूर्वा ॥३७॥ सर्पावासः पश्चाद् यदा कदम्बस्य दक्षिणेन जलम् । परतो हस्तत्रितयात् षड्भिः पुरुषैस्तुरीयोनैः ॥३८॥ कौबेरी चात्र शिरा वहति जलं लोहगन्धि चाक्षोभ्यम् । कनकनिभो मण्डूको नरमात्रे मृत्तिका पीता ॥३९॥ वल्मीकसंवृतो यदि तालो वा भवति नालिकेरो वा । पश्चात् षड्भिर्हस्तैर्नरैश्चतुर्भिः शिरा याम्या ॥४०॥ याम्येन कपित्थस्याऽहिसंश्रयश्चेदुदग्जलं वाच्यम् । सप्त परित्यज्य करान् खात्वा पुरुषान् जलं पञ्च ॥४१॥ कर्बुरकोऽहिः पुरुषे कृष्णा मृत्पुटभिदपि च पाषाणः । श्वेता मृत्पश्चिमतः शिरा ततश्चोत्तरा भवति ॥४२॥ अश्मन्तकस्य वामे बदरो वा दश्यतेऽहिनिलयो वा । षड्भिरुदक् तस्य करैः सार्धे पुरुषत्रये तोयम् । ॥४३॥ कूर्मः प्रथमे पुरुषे पाषाणो धूसरः ससिकता मृत् । आदौ शिरा च याम्या पूर्वोत्तरतो द्वितीया च ॥४४॥ वामेन हरिद्रतरोर्वल्मीकश्चेत्ततो जलं पूर्वे । हस्तत्रितये पुरुषैः सत्र्यंशैः पञ्चभिर्भवति ॥४५॥ नीलो भुजगः पुरुषे मृत्पीता मरकतोपमश्चाश्मा । कृष्णा भूःप्रथमं वारुणी शिरादक्षिणे नान्या ॥ ४६ ॥ जलपरिहीने देशे दृश्यन्तेऽनूपजानि चिह्नानि । वीरणदूर्वा मृदवश्च यत्र तस्मिन् जलं पुरुषे ॥४७॥ भार्ङ्गी विवृता दन्ती शूकरपादी च लक्ष्मणा चैव । नवमालिका च हस्तद्वयेऽम्बु याम्ये त्रिभिः पुरुषैः ॥४८॥ स्निग्धाः प्रलम्बशाखा वामनविटपद्रुमाः समीपजलाः । सुषिरा जर्जरपत्रा रूक्षाश्च जलेन सन्त्यक्ताः ॥४९॥ तिलकाम्रातकवरुणकभल्लातकबिल्वतिन्दुकाङ्कोल्लाः । पिण्डारशिरीषांजनपरूषका वञ्जुलाऽतिबलाः ॥५०॥ एते यदि सुस्निग्धा वल्मीकैः परिवृतास्तत्तोयम् । हस्तैस्त्रिभिरुत्तरतश्चतुर्भिरर्धेन च नरस्य ॥५१॥ अतृणे सतृणा यस्मिन् सतृणे तृणवर्जिता मही यत्र । तस्मिन् शिरा प्रदिष्टा वक्तव्यं वा धनं तस्मिन् ॥५२॥ कण्टक्यकण्टकानां व्यत्यासेऽम्भस्त्रिभिः करैः पश्चात् । खात्वा पुरुषत्रितयं त्रिभागयुक्तं धनं वा स्यात् ॥५३॥ नदति मही गम्भीरं यस्मिश्चरणाहता जलं तस्मिन् । सार्धैस्त्रिभिर्मनुष्यैः कौबेरी तत्र च शिरा स्यात् ॥५४॥ वृक्षस्यैका शाखा यदि विनता भवति पाण्डुरा वा स्यात् । विज्ञातव्यं शाखातले जलं त्रिपुरुषं खात्वा ॥५५॥ फलकुसुमविकारो यस्य तस्य पूर्वे शिरा त्रिभिर्हस्तैः । भवति पुरुषैश्चतुर्भिः पाषाणोऽधः क्षितिः पीता ॥५६॥ यदि कण्टकारिका कण्टकैर्विना दृश्यते सितैः कुसुमैः । तस्यास्तलेऽम्बु वाच्यंत्रिभिर्नरैरर्धपुरुषे च ॥५७॥ खर्जूरी द्विशिरस्का यत्र भवेज्जलविवर्जिते देशे । तस्याः पश्चिमभागे निर्देश्यं त्रिपुरुषे वारि ॥५८॥ यदि भवति कर्णिकारः सितकुसुमः स्यात्पलाशवृक्षो वा । सव्येन तत्र हस्तद्वयेऽम्बु पुरुषत्रये भवति ॥५९॥ ऊष्मा यस्यां धात्र्यां धूमो वा तत्र वारि

नरयुग्मे। निर्देष्टव्या च शिरा महता तोयप्रवाहेण ॥६०॥ यस्मिन् क्षेत्रोद्देशे जातं सस्यं विनाशमुपयाति। स्निग्धमतिपाण्डुरं वा महाशिरा नरयुगे तत्र ॥६१॥ मरुदेशे भवति शिरा यथा तथातः परं प्रवक्ष्यामि। ग्रीवा करभाणामिव भूतलसंस्थाः शिरा यान्ति ॥६२॥ पूर्वोत्तरेण पीलोर्यदि वल्मीको जलं भवति पश्चात्। उत्तरगमना च शिरा विज्ञेया पञ्चभिःपुरुषैः ॥६३॥ चिह्नं दुर्दुर आदौ मृत्कपिलातः परं भवेद्धरिता भवति च पुरुषेऽधोऽश्मा तस्य तले वारि निर्देश्यम् ॥६४॥ पीलोरेव प्राच्यां वल्मीकोऽतोऽर्धः पञ्चमैर्हस्तैः। दिशि याम्यायां तोयं वक्तव्यं सप्तभिः पुरुषैः ॥६५॥ प्रथमे पुरुषे भुजगः सितासितो हस्तमात्रमूर्तिश्च। दक्षिणतो वहति शिरा सक्षारं भूरि पानीयम् ॥६६॥ उत्तरतश्च करीरादहिनिलये दक्षिणे जलं स्वादु। दशभिः पुरुषैर्ज्ञेयं पुरुषे पीतोऽत्र मण्डूकः ॥६७॥ रोहीतकस्य पश्चादहिवासश्चेस्त्रिभिः करैर्याम्ये। द्वादश पुरुषान् खात्वा सक्षारा पश्चिमेन शिरा ॥६८॥ इन्द्रतरोर्वल्मीकः प्राग्दृश्यः पश्चिमे शिरा हस्ते। खात्वा चतुर्दश नरान् कपिला गोधा नरे प्रथमे ॥६९॥ यदि वा सुवर्णनाम्नस्तरोर्भवेद्वामतो भुजंगगृहम्। हस्तद्वये तु याम्ये पञ्चदशनरावसानेऽम्बु ॥७०॥ क्षारं पयोऽत्र नकुलोऽर्धमानवे ताम्रसन्निभश्चाश्मा। रक्ता च भवति वसुधा वहति शिरा दक्षिणा तत्र ॥७१॥ बदरीरोहितवृक्षौ संपृक्तौ चेद्विना वल्मीकम्। हस्तत्रयेऽम्बु पश्चात् षोडशभिर्मानवैर्भवति ॥७२॥ सुरसं जलमादौ दक्षिणा शिरा वहति चोत्तरेणान्या। पिष्टनिभः पाषाणो मृच्छ्वेता वृश्चिकोऽर्धनरे ॥७३॥ सकरीरा चेद्बदरी त्रिभिः करैः पश्चिमेन तत्राम्भः। अष्टादशभिः पुरुषैरैशानि बहुजला च शिरा ॥७४॥ पीलुसमेता बदरी हस्तत्रयसमिते दिशि प्राच्याम्। विंशत्या पुरुषाणामशोष्यमंभोऽत्र सक्षारम् ॥७५॥ ककुभकरीरावेकत्र संयुतौ यत्र ककुभबिल्वौ वा। हस्तद्वयेऽम्बु पश्चान्नरैर्भवेत्पञ्चविंशत्या ॥७६॥ वल्मीकमूर्धनि यदा दूर्वा च कुशाश्च पाण्डुराः सन्ति। कूपो मध्ये देयो जलमत्र नरैकर विंशत्या ॥७७॥ भूमि कदम्बकयता वल्मीके यत्र दृश्यते दूर्वा। हस्तत्रयेण याम्ये नरैर्जलं पञ्चविंशत्या ॥७८॥ वल्मीकत्रयमध्ये रोहीतकपादपो यदा भवति। नाना वृक्षैः सहितस्त्रिभिर्जलं तत्र वक्तव्यम् ॥७९॥ हस्तचतुष्के मध्यात् षोडशभिश्चांगुलैरुदग्वारि। चत्वारिंशत्पुरुषान् खात्वाश्मातः शिरा भवति ॥८०॥ ग्रन्थिप्रचरा यस्मिञ्छमी भवेदुत्तरेण वल्मीकः। पश्चात्पञ्चकरान्ते शताधसंख्यकैः सलिलम् ॥८१॥ एकस्थाः पञ्च यदा वल्मीका मध्यमो भवेच्छ्वेतः। तस्मिन् शिरा प्रदिष्टा नरषष्ट्या पञ्चवर्जितया ॥८२॥ सपलाशा यत्र शमी पश्चिमभागेऽम्बु मानवैः षष्ट्या। अर्धनरेऽहिः प्रथमं सवालुका पीतमृत्परतः ॥८३॥ वल्मीकेन परिवृत्तः श्वेतो रोहीतको भवेद्यस्मिन्। पूर्वेण हस्तमात्रे

सप्तत्या मानवैरम्बु ॥८४॥ श्वेता कण्टकबहुला यत्र शमी दक्षिणेन तत्र पयः । नरपञ्चकसंयुतया सप्तत्याहिर्नरार्धे च ॥८५॥ मरुदेशे यच्चिह्नं न जाङ्गले तैर्जलं विनिर्देश्यम् । जम्बूवेतसपूर्वे ये पुरुषास्ते मरौ द्विगुणाः ॥८६॥ जम्बूस्त्रिवृत्ता मूर्वा शिशुमारी सारिवा शिवा श्यामा । वीरुधयो वाराही ज्योतिष्मती च गरुडवेगा॥८७॥ सूकरिकमाषपर्णी व्याघ्रपदाश्चेति यद्यहेर्निलये । वल्मीकादुत्तरतस्त्रिभिः करैस्त्रिपुरुषे तोयम् ॥८८॥ एतदनूपे वाच्यं जाङ्गलभूमौ तु पञ्चभिः पुरुषैः । एतैरेव निमित्तैर्मरुदेशे सप्तभिः कथयेत् ॥८९॥ एकनिभा यत्र मही तृणतरुवल्मीकगुल्मपरिहीना । तस्यां यत्र विकारो भवति धरित्र्यां जलं तत्र ॥९०॥ यत्र स्निग्धा निम्ना सवालुका सानुनादिनी वा स्यात् । तत्रार्धपञ्चमैर्वारि मानवैः पञ्चभिर्यदि वा ॥९१॥ स्निग्धतरूणां याम्ये नरैश्चतुर्भिर्जलं प्रभूतं च । तरुगहनेऽपि हि विकृतो यस्तस्मात्तद्वदेव वदेत् ॥९२॥ नमते यत्र धरित्री सार्धे पुरुषेऽम्बु जाङ्गलानूपे । कीटा वा यत्र विनालयेन बहवोऽम्बु तत्रापि ॥९३॥ उष्णा शीता च मही शीतोष्णांभस्त्रिभिर्नरैः सार्धैः । इन्द्रधनुर्मत्स्यो वा वल्मीको वा चतुर्हस्तात् ॥९४॥ वल्मीकानां पंक्त्यां यद्यकोऽभ्युच्छ्रिताः शिरा तदधः। शुष्यति न रोहते वा सस्यं यस्यां च तत्राऽम्भः ॥९५॥ न्यग्रोधपलाशोदुम्बरैः समेतैस्त्रिभिर्जलं तदधः । वटपिप्पलसमवाये तद्वद्वाच्यं शिरा चोदक् ॥९६॥ आग्नेये यदि कोणे ग्रामस्य पुरस्य वा भवति कूपः । नित्यं स करोति भयं दाहं च समानुषं प्रायः ॥९७॥ नैर्ऋत्यकोणे बालक्षयं वनिताभयं च वायव्ये । दिक्त्रयमेतत्त्यक्त्वा शेषासु शुभावहाः कूपाः ॥९८॥ सारस्वतेन मुनिना दकार्गलं यत्कृतं दवलोक्य । आर्याभिः कृतमेतद वृत्तैरपि मानवं वक्ष्ये ॥९९॥ स्निग्धा यतः पादपगुल्मवल्ल्यो निश्छिद्रपत्राश्च ततः शिरास्ति। पद्मेक्षुरोशीरकुलाः सगुंड्राः काशाः कुशा वा नलिका नलो वा ॥१००॥ खर्जूरजम्ब्वर्जुनवेतसाः स्युः क्षीरान्विता वा द्रुमगुल्मवल्ल्यः । छत्रेभनागाः शतपत्रनीपाः स्युर्नक्तमालाश्च ससिन्दुवाराः ॥१०१॥ विभीतको वा मदयन्तिका वा यत्राऽस्ति तस्मिन् पुरुषत्रयेऽम्भः । स्यात्पर्वतस्योपरि पर्वतोऽन्यस्तत्रापि मूले पुरुषत्रयेऽम्भः ॥१०२॥ या मौञ्जकैः काशकुशैश्च युक्ता नीला च मृद्यत्र सशर्करा च । तस्यां प्रभूतं सुरसं च तोयं कृष्णाथवा यत्र च रक्तमृद्वा ॥१०३॥ सशर्करा ताम्रमही कषायं क्षारं धरित्री कपिला करोति । आपाण्डुरायां लवणं प्रदिष्टं मिष्टं पयो नीलवसुंधरायाम् ॥१०४॥ शाकाश्वकर्णार्जुनबिल्वसर्जा श्रीपर्ण्यरिष्टाधवशिंशपाश्च । छिद्रैश्च पर्णैर्द्रुमगुल्मवल्ल्यो रूक्षाश्च दूरेऽम्बु निवेदयंति । १०५॥ सूर्याग्निभस्मोष्ट्रखरानुवर्णा या निर्जला सा वसुधा प्रदिष्टा । रक्तांकुराः क्षीरयुताः करीरा रक्ता धरा चेज्जलमश्मनोऽधः ॥१०६॥ वैदूर्यमुद्राम्बुदमेचकाभा पाकोन्मुखोदुम्बरसन्निभा वा । भृङ्गाञ्जनाभा कपिलाथवा या ज्ञेया शिला भूरिसमीपत या

॥१०७॥ पारावतक्षौद्रघृतोपमा वा क्षौमस्य वस्त्रस्य च तुल्यवर्णा । या सोम-
वल्ल्याश्च समानरूपा साप्याशु तोयं कुरुतेऽक्षयं च ॥१०८॥ ताम्रैः समेता पृषतै-
र्विचित्रैरापाण्डुभस्मोष्ट्रखरानुरूपा । भृङ्गोपगांगुष्ठिकपुष्पिका वा सूर्याग्निवर्णा च
शिला वितोया ॥ १०९ ॥ चन्द्रातपस्फटिकमौक्तिकहेमरूपा याश्चेन्द्रनीलमणि-
हिंगुलुका चनाभाः । सूर्योदयांशहरितालनिभाश्च याः स्युस्ताः शोभना मनिवचोऽत्र
च वृत्तमेतत् ॥११०॥ एता ह्यभेद्याश्च शिलाः शिवाश्च याक्षैश्च नागैश्च सदा-
भिजुष्टा. । एषां च राष्ट्रेषु भवन्ति राज्ञां तेषामवृष्टिर्न भवेत्कदाचित् ॥१११॥
भेदं यदा नैति शिला तदानीं पालाशकाष्ठैः सह तिन्दुकानाम् । प्रज्वालयित्वानल-
मग्निवर्णा सुधाम्बुसिक्ता प्रविदारमेति ॥११२॥ तोयं श्रृतं मोक्षकभस्मना
वा यत्सप्तकृत्वः परिषेचनं तत् । कार्यं शरक्षारयुतं शिलायाः प्रस्फोटनं वह्नि-
वितापितायाः ॥११३॥ तक्रकाञ्जिकसुराः सकुलत्था योजितानि बदराणि च
तस्मिन् । सप्तरात्रमुषितान्यभितप्तां दारयन्ति हि शिलां परिषेकैः ॥ ११४ ॥
नैम्बं पत्रं त्वक् च नालं तिलानां सापामार्गं तिन्दुकं स्याद्गुडूची । गोमूत्रेण स्रावितः
क्षार एषां षट्कृत्वोऽतस्तापितो भिद्यतेऽश्मा ॥ ११५ ॥ आर्कं पयो हुडुविषाणम-
षीसमेतं पारावताखुशकृता च युतं प्रलेपः । टङ्कस्य तैलमथितस्य ततोऽस्य पानं
पश्चाच्छितस्य न शिलासु भवेद्विघातः ॥ ११६ ॥ क्षारे कदल्या मथितेन युक्ते
दिनोषिते पायितमायसं यत् । सम्यक्छितं चाश्मनि नैति भङ्गं न चान्यलोहेष्वपि
तस्य कौण्ठचम् ॥ ११७ ॥ वापी प्रागपरायताम्बु सुचिरं धत्ते न याम्योत्तरा
कल्लोलैरवदारमेति मरुता सा प्रायशः प्रेरितैः । तां चेदिच्छति सारदारुभिरपां
संपातमावारयेत् पाषाणादिभिरेव वा प्रतिचयं क्षुण्णं द्विपाश्वादिभिः ॥ ११८ ॥
ककुभवटाम्रप्लक्षकदम्बैः सनिचुलजम्बूवेतसनीपैः । कुरबकतालाशोकमधूकैर्बकुल-
विमिश्रैश्चावृततीराम् ॥११९॥ द्वारं च न नैर्वाहिकमेकदेशे कार्यं शिलासञ्चित-
वारिमार्गम् । कोशस्थितं निर्विवरं कपाटं कृत्वा ततः पांसुभिरावपेत्तम् ॥ १२०॥
अञ्जनमुस्तोशीरैः सराजकोशातकामलकचूर्णैः । कतकफलसमायुक्तैर्योगः कूपे
प्रदातव्यः ॥ १२१ ॥ कलुषं कटुकं लवणं विरसं सलिलं यदि वा शुभगन्धि भवेत् ।
तदनेन भवत्यमलं सुरसं सुसुगन्धिगुणैरपरैश्च युतम् ॥ १२२ ॥ हस्तो
मघानुराधापुष्यधनिष्ठोत्तराणि रोहिण्यः । शतभिषगित्यारम्भे कूपानां शस्यते
भगणः ॥ १२३ ॥ कृत्वा वरुणस्य बलिं वटवेतसकीलकं शिरास्थाने । कुसुमै-
र्गन्धैर्धूपैः सम्पूज्य निधापयेत्प्रथमम् ॥ १२४ ॥ मेघोद्भवं प्रथममेव मया प्रदिष्टं

ज्येष्ठामतीत्य बलदेवमतादि दृष्ट्वा । भौमं दकार्गलमिदं कथितं द्वितीयं सम्यग्वराहमिहिरेण मुनिप्रसादा[१]त् ॥ १२५ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौबृहत्सं० दकार्गलं नाम चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

अब धर्म और यशको देनेवाला उदकार्गल कहते हैं, जिसके जाननेसे भूमिमें स्थित जलका ज्ञान होता है, मनुष्योंके अंगमें जिस प्रकार नाडी स्थित है, वैसेही भूमिमेंभी कई ऊँची और कई नीची शिरा हैं ॥१॥ आकाशसे वर्षा होनेपर सब जल एकही स्वादका गिरता है, वह भूमि की विशेषतासे अनेक रंग और स्वादका हो जाता है, उसकी परीक्षा भूमिके तुल्यही करनी चाहिये अर्थात् जैसी भूमि होगी वैसाही जल होगा ॥ २ ॥ इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, सोम और ईशान यह आठ देवता क्रमानुसार पूर्वादि आठ दिशाओंके स्वामी हैं ॥३॥ इन आठ दिशाओंके स्वामियोंके नामसे आठ शिरा विख्यात हैं, जैसे ऐंद्री, आग्नेयी, याम्या इत्यादि और बीचमें एक बडी शिरा महाशिराके नामसे विख्यात है इनसे अधिक और भी सैकडों शिरा निकली हैं, वे अपने अपने नामसे विख्यात हैं ॥४॥ पातालसे जो शिरा सीधी ऊपरको निकलती हो वह और पूर्व आदि चारों दिशाओंमें जो शिरा हो वे शुभ होती हैं, अग्निकोण आदि चार कोणमें जो शिरा हो वह शुभ नहीं होती हैं, अब शिराज्ञान होनेके चिह्न कहते हैं ॥५॥ जो जलहीन देशमें वेदमजनूंका वृक्ष हो तो उस वृक्षसे पश्चिमको तीन हाथपर डेढ पुरुष नीचे जल होता है और वहां पश्चिमकी शिरा बहती है, मनुष्य अपनी भुजा ऊपर खडी करे, उतनी लम्बाईको एक पुरुष कहते हैं, वह एक सौ बीस अंगुल होती है ॥६॥ वहां यह चिह्न होता है कि आधा पुरुष खोदनेपर कुछ श्वेत रंगका मेंडक निकलता है, फिर पीले रंगकी मट्टी निकलती है फिर परतदार पत्थर निकलता है उसके नीचे जल होता है ॥७॥ निर्जल देशमें जो जामुनका वृक्ष हो तो उससे तीन हाथ उत्तरको दो पुरुष नीचेको पूर्व शिरा होती है वहां खोदनेसे लोहेके समान गंधवाली मट्टी निकलती है पीछे पांडुर रंगकी मट्टी निकलती है और एक पुरुष नीचे मेंडक निकलता है ॥८॥ जामुनके वृक्षसे पूर्व दिशामें-समीपही सर्पकी बांबी हो तो उस वृक्षसे तीन हाथ दक्षिण दो पुरुष नीचे मधुर जल होता है ॥९॥ आधा पुरुष खोदनेसे मत्स्य निकलता है, कबूतरके रंगका पत्थर निकलता है, नीली मट्टी यहां होती है और जलभी बहुत होता है और अत्यन्त काला रहता है, आचार्यने जहां हाथोंका प्रमाण न कहा, वहां पहला कहा प्रमाण जानना जैसे यहां प्रमाण नहीं कहा इस कारण पूर्वोक्त तीन हाथ समझना चाहिये ॥१०॥ निर्जल देशमें गूलरका वृक्ष दिखाई दे तो उससे तीन हाथ पश्चिम अढाई पुरुष नीचे शिरा होती है. एक पुरुष नीचे श्वेत सर्प निकलता है, फिर अंजनके सदृश अत्यन्त कृष्णवर्ण पत्थर निकलता है, उसके नीचे सुंदर जलवाली शिरा होती है ॥११॥ अर्जुन वृक्षसे तीन हाथ उत्तर जो बांबी दिखाई दे तो उस अर्जुन वृक्षसे तीन हाथ पश्चिम साढेतीन पुरुष नीचे जल होता है ॥१२॥ आधा पुरुष खोदनेपर श्वेत रंगकी गोह निकलती है, एक पुरुष नीचे धूसर रंगकी मट्टी निकलती है, फिर काली, पीली और श्वेत मट्टी बालू रेतसे मिली हुई निकलती

१ अत्र श्लोकोऽयं प्रक्षिप्तष्टीकायामनुल्लेखात् ।

है, उसके नीचे बहुत जल कहना चाहिये ।।१३।। वाल्मीकयुक्त निर्गुंडी वृक्ष अर्थात् सिन्धुवारवृक्ष हो तो उससे तीन हाथ दक्षिण सवा दो पुरुष नीचे मीठा और कभी न सूखनेवाला जल होता है ।।१४।। आधा पुरुष खोदनेपर रोहू मछली निकलती है. फिर क्रमानुसार कपिल रंगकी मट्टी, पांडुर रंगकी मट्टी और पत्थरके सूक्ष्म कणोंसे मिला हुआ वालू रेत निकलता है, उसके नीचे जस होता है ।।१५।। बेरवृक्षके पूर्व जो वल्मीक हो तो उस वृक्षसे तीन हाथ पश्चिम तीन पुरुषके नीचे जल कहना चाहिये. आधा पुरुष खोदनेसे सफेद रंगकी छपकिया निकती है ।।१६।। निर्जल देशमें ढाकवृक्षयुक्त बेरी वृक्ष हो तो उससे पश्चिमको तीन हाथपर सवा तीन पुरुष नीचे जल होता है वहां एक पुरुष खोदनेपर एक प्रकारका निर्विष सर्प निकला है यही चिह्न है ।१७।। बेलका पेड व गूलरका पेड यह दोनों जहां इकट्ठे हों. उनसे दक्षिण तीन हाथ छोडकर तीन पुरुष नीचे जल होता है और आधा पुरुष खोदनेसे काले रंगका मेंढक निकलता है ।।१८।। आकगूलरवृक्षके अतिनिकट वल्मीक हो तो उस वल्मीकके नीचेही सवा तीन पुरुष खोदनेसे पश्चिमको वहनेवाली शिरा निकली है ।।१९।। पाण्डु और पीले रंगकी मट्टी निकलती है. गोरस (गायका मट्ठा) के समान श्वेतरंगका पत्थर निकलता है और आधे पुरुष नीचे कुमुदके फूलके सदृश श्वेत रंगका चूहा दिखाई देता है ।।२०।। निर्जल देशमें कपिलवृक्ष दिखाई दे तो उस वृक्षमें तीन हाथ पूर्वको सवा तीन पुरुषके नीचे दक्षिण शिरा वहती है ।।२१।। प्रथम नील कमलके रंगकी मट्टी निकलती है, फिर कबूतरके रंगकी मट्टी दिखाई पडती है, एक हाथ नीचे मच्छी निकलती है. जिसमें चकोरके समान दुर्गंध आती है, वहां थोडा और खारा जल निकलता है ।।२२।। निर्जल देशमें श्योनाकवृक्ष (अरलू) दिखाई दे तो उसमें दो हाथ वायव्य कोणमें जाकर खोदनेसे तीन पुरुष नीचे क्रमानुसार शिरा मिलती है ।।२३।। बहेडा वृक्षके समीप वमई हो तो उस वृक्षके दो हाथ पूर्व डेढ पुरुष नीचे शिरा होती है ।।२४।। बहेडेके वृक्षके पश्चिम दिशामें वमई हो तो उस वृक्षसे एक हाथ उत्तरको साढे चार पुरुष नीचे शिरा होती है ।।२५।। प्रथम एक पुरुष खोदनेपर श्वेत रंगका विश्वंभरक (एक प्रकारका जीव) दिखाई देता है. फिर केशरी रंगका पत्थर निकलता है. उसके नीचे पश्चिम दिशाको वहनेवाली शिरा निकलती है. परंतु तीन वर्षके पीछे वह शिरा नष्ट हो जाती है अर्थात् जल सूख जाता है ।।२६।। कोविदारवृक्ष (सप्तपर्ण) के ईशानकोणमें कुश करके युक्त श्वेतरंगकी मट्टीकी वमई हो तो वहां कोविदारवृक्ष और वाल्मीकके मध्यमें साढे पांच पुरुष नीचे बहुत जल होता है ।।२७।। पहले पुरुषमें कमलपुष्पके मध्य भागके समान रंगका सर्प निकलता है, लाल वर्णकी भूमि आती है फिर कुरुविन्दनामक पत्थर निकलता है, यह चिह्न कहने चाहिये ।।२८।। निर्जल देशमें वमईसे युक्त सप्तवर्णवृक्ष हो तो उससे एक हाथ उत्तर पांच पुरुष नीचे जल कहना चाहिये ।।२९।। यहांभी चिह्न होते हैं कि आधा पुरुष खोदनेपर हरा मेंढक निकलता है पीछे हरितालके समान पीले रंगकी भूमि निकलती है, फिर मेघके समान कृष्णवर्ण पत्थर मिलता है. इन सबके नीचे मधुर जलसंयुक्त उत्तर शिरा होती है ।।३०।। चाहे जिस वृक्षके नीचे बैठा हुआ मेंडक दिखाई दे तो उस वृक्षसे एक हाथ उत्तर साढे चार पुरुष नीचे जल होता है ।।३१।। एक पुरुष नीचे न्योला निकलता है, फिर क्रमानुसार नीली पीली, और श्वेत मट्टी निकलती है, पीछे मेंडकके सदृश रंग का पत्थर दिखलाई पडता है ।।३२।।

यदि करंज वृक्षके दक्षिणमें वल्मीक दिखलाई पडे तो उस वृक्षसे दो हाथ दक्षिण साढे तीन पुरुष नीचे शिरा होती है ॥३३॥ आधे पुरुष नीचे कछुवा और फिर पहले पूर्वकी शिरासे जल निकलता है, दुसरी स्वादु जलसे युक्त उत्तर शिरा वहती है, पहले हरे रंगका पत्थर और उसके नीचे जल होता है ॥३४॥ महुएके वृक्षसे उत्तर वल्मीक हो तो उस वृक्षसे पश्चिम पांच हाथ छोडकर साढे आठ पुरुष नीचे जल होता है ॥३५॥ पहला पुरुष खोदनेसे बडा सर्प दिखाई देता है. धूम्रवर्णकी भूमि फिर कुलथीके रंगका पत्थर निकलता है पीछे पूर्वशिरा निकलती है; जिसमें सदा झागदार जल वहता है ॥३६॥ तिलक वृक्षके दक्षिण कुशा और दूर्वा करके युक्त स्निग्ध वल्मीक हो तो उस वृक्षसे पांच हाथ पश्चिम पांच पुरुष नीचे जल होता है और पूर्वशिरा वहती है ॥३७॥ कदंब वृक्षके पश्चिममें वमई हो तो उस वृक्षसे तीन हाथ दक्षिण पौने छः पुरुष नीचे जल होता है ॥३८॥ वहां उत्तरशिरा निकलती है, जल बहुत होता है, परंतु उसमें लोहका गंध आता है, एक पुरुष खोदनेसे सुवर्णके रंगका मेंडक, और फिर पीली मट्टी निकलती है ॥३९॥ वमईसे घिरा हुआ ताडका पेड अथवा नारियलका वृक्ष हो तो उस वृक्षसे छः हाथ पश्चिमको चार पुरुष नीचे दक्षिणशिरा होती है ॥४०॥ कैथके वृक्षसे दक्षिण वल्मीक हो तो उस वृक्षसे उत्तर सात हाथ छोडकर खोदनेसे पांच पुरुष नीचे जल मिलता है ॥४१॥ एक पुरुष नीचे चित्रवर्णका सर्प और काली मट्टी, परतदार पत्थर फिर श्वेत मृत्तिका निकलती है, पीछे उत्तरशिरा मिलती है ॥४२॥ अश्मंतकवृक्षके बांई ओर बेरका वृक्ष हो अथवा वाल्मीक हो तो उस अश्मंतकवृक्षसे छः हाथ उत्तरको साढे तीन पुरुष नीचे जल होता है ॥४३॥ पहिला पुरुष खोदनेसे कछुआ, फिर धूसरवर्णका पत्थर और रेत मिली हुई मट्टी फिर पहले दक्षिणशिरा निकलती है और पीछे ईशानकोणकी शिरा निकल आती है ॥४४॥ हरिद्र (हलदुआ) वृक्षकी बांई ओर वल्मीक हो तो उस वृक्षसे तीन हाथ पूर्व एक तिहाई सहित पांच पुरुष नीचे जल होता है ॥४५॥ एक पुरुष नीचे नीला सर्प, फिर पीली मट्टी, हरे रंगका पत्थर और काली भूमि निकलती है, फिर पहले पश्चिमशिरा निकलती है और दूसरी दक्षिणशिरा निकलती है ॥४६॥ निर्जल देशमें जहां बहुत जलवाले देशके चिह्न दिखाई दे और वीरण (गांडर) और दुर्वा जहां अत्यन्त कोमल हों, वहां एक पुरुष नीचे जल होता है ॥४७॥ भारंगी, निसोत दंती (दात्यूणी), सूकरपादी, लक्ष्मणा, मालती यह औषधि जहां हों इनसे दो हाथ दक्षिणको तीन पुरुष नीचे जल होता है ॥४८॥ जहां स्निग्ध लंबी शाखाओंसे युक्त छोटे २ और फैले हुए वृक्ष हों, वहां जल समीप होता है और छिद्रयुक्त जर्जर पत्तोंवाले और रूखे वृक्ष जहां हों, वहां जल नहीं होता ॥४९॥ जहां तिलक, अंबाडा, वरण, भिलावा बेल, तेंदु, अंकोल पिंडार, सिरस, अंजन, फालसा, अशोक और अतिबला ॥५०॥ यह पेड अत्यन्त, स्निग्ध वल्मीकोंसे घिरे हों, वहां इन वृक्षोंसे तीन हाथ उत्तर साढे चार पुरुष नीचे जल होता है ॥५१॥ जिस भूमिमें कहीं तृण न हों और बीचमें एक स्थान तृणयुक्त दिखाई दे या सब भूमिमें तृण हो और एक स्थान तृणहीन हो तो उस स्थानमें साढे चार पुरुष नीचे शिरा होती है या धन गड़ा होता है, यह कहना चाहिये ॥५२॥ जहां कांटेवाले वृक्षोंमें एक वृक्ष विना कांटेवाला अथवा विना कांटेवाले वृक्षोंमें एक वृक्ष कांटेवाला हो तो उस वृक्षसे तीन हाथ पश्चिमको एक तिहाई युक्त तीन पुरुष खोदनेसे जल अथवा

धन निकलता है ।।५३।। जहां पैरके ताडन करनेसे भूमिमें गंभीर शब्द हो वहां साढे तीन पुरुषके नीचे जल होता है और उत्तरशिरा निकलती है ।।५४।। वृक्षकी एक शाखा भूमिकी ओर झुक रही हो, या पीली पड गई हो तो उस शाखाके नीचे तीन पुरुष खोदनेसे जल निकलता है ।।५५।। जिस पेडके फल और पुष्पोंमें विकार हो. उस वृक्षसे तीन हाथ पूर्व चार पुरुष नीचे शिरा होती है, नीचे पत्थर निकलता है और भूमि पीले पीले रंगकी होती है ।।५६।। जहां कटेरीका वृक्ष काटोंसे रहित और श्वेत पुष्पोंसे युक्त दिखाई दे उसके नीचे साढे तीन पुरुष खोदनेसे जल निकलता है ।।५७।। जिस निर्जल देशमें खजूरका दो शिवाला वृक्ष हो, वहां उस खजूरसे दो हाथ पश्चिमको तीन पुरुष नीचे जल कहना चाहिये ।।५८।। श्वेत पुष्पवाला कर्णिकारवृक्ष अथवा ढाकका वृक्ष हो तो उस वृक्षसे दो हाथ दक्षिणको तीन पुरुष नीचे जल होता है ।।५५।। जिस भूमिमें वाफ अथवा धूंआ निकलता दिखाई दे तो वहां दो पुरुष नीचे बहुत जल वहनेवाली शिरा कहनी चाहिये ।।६०।। जिस खेतमें खेती उत्पन्न होकर नाश हो जाय अथवा बहुत स्निग्ध खेती हो या खेती उत्पन्न होकर पीली पड जाय वहां दो पुरुष नीचे बहुतही जल होता है ।।६१।। मारवाड देशमें जिस भांति शिरा होती है उसको कहते हैं, ऊंटकी ग्रीवाकी भांति भूमिमें नीची ऊंची शिरा जाती हैं ।।६२।। पीलुवृक्ष (जाल) के ईशानकोण में वल्मीक हो तो उस वल्मीकसे साढे चार हाथ पश्चिमको पांच पुरुष नीचे उत्तर वहनेवाली शिरा होती है ।।६२।। वहां खोदनेसे पहिले पुरुषमें मेंडक, फिर कपिल व हरी रंगकी मट्टी और पत्थर निकलता है इन सब चिह्नोंके नीचे जल होता है ।।६४।। पीलुवृक्षकेही पूर्व दिशामें वल्मीक हो तो उस वृक्षके साढे चार हाथ दक्षिणको सात पुरुष नीचे जल कहना चाहिये ।।६५।। पहले पुरुषमें श्वेत कृष्ण रंगका एक हाथ लम्बा सर्प, फिर बहुतसा खारा जल वहनेवाली दक्षिणशिरा निकलती है ।।६६।। करीरवृक्षके उत्तर वल्मीक हो तो उस वृक्षके साढे चार हाथ दक्षिणको दश पुरुष नीचे मधुर जल जानना चाहिये. यहां एक पुरुष खोदनेसे पीले रंगका मेंडक निकलता है ।।६७।। रोहीतकवृक्ष (रुहीडा), के पश्चिममें वल्मीक ही तो तो उस वृक्षसे तीन हाथ दक्षिणको बारह पुरुष खोदनेसे खारा जल बहनेवाली, पश्चिमशिरा निकलती है ।।६८।। अर्जुनवृक्षके पूर्वमें वल्मीक दिखाई दे तो उस वृक्षसे एक हाथ पश्चिमको चौदह पुरुष खोदनेसे शिरा निकलती है. यहां पहिले पुरुषमें कपिल रंगकी गोह दिखाई देती है ।।६९।। जो धतूरावृक्षके वामभागमें वल्मीक हो तो उस वृक्षसे दो हाथ दक्षिणको पन्द्रह पुरुष नीचे जल होता है ।।७०।। वह जल खारा होता है आधा पुरुष नीचे न्योला और तांबेके रंगका पत्थर, लाल रंगकी भूमि मिलती है पीछे वहां दक्षिणशिरा वहती है ।।७१।। बेर और रुहीडा यह दोनों वृक्ष जो वल्मीकके विनाभी इकट्ठे दिखाई दे तो उन वृक्षोंसे तीन हात पश्चिमको सोलह पुरुष नीचे जल होता है ।।७२।। यहां जल अत्यन्त मधुर होता है. पहिले दक्षिण शिरा और पीछे दूसरी उत्तर शिराभी बहती है. आटेके समान श्वेत रंगका पत्थर, श्वेत मृत्तिका और आधा पुरुष नीचे बिच्छू दिखाई देता है ।।७३।। जो करीरवृक्षके साथ बेरीका वृक्ष हो तो उन वृक्षोंसे तीन हाथ पश्चिम अठारह पुरुष खोदनेसे जल निकलता है, वहां बहुत जल बहनेवाली ईशानशिरा होती है ।।७४।। पीलुवृक्षके सहित बेरका वृक्ष हो तो उनसे तीन हाथ पूर्वको वीस पुरुष नीचे खारा जल होता है, जो कभी नहीं सूखता ।।७५।।

जहां अर्जुनवृक्ष और करीरवृक्ष इकट्ठे हों अथवा अर्जुन वृक्ष और वेलका पेड इकट्ठे हों तो उनसे दो हाथ पश्चिमको पच्चीस पुरुष नीचे जल होता है ।।७६।। जो वल्मीकके ऊपर दूब और श्वेत रंगके कुश हों तो उस वल्मीकके नीचे कुआँ खोदनेसे इक्कीस पुरुष नीचे जल निकलता है ।।७७।। जहांपर भूमिमें कदम्बवृक्ष लगे हों और वल्मीकके ऊपर दूब दिखाई दे, वहां उस कदम्बवृक्षसे दो हाथ दक्षिणको पच्चीस पुरुष नीचे जल होता है ।।७८।। तीन वल्मीकोंके बीच तीन भांतिके तीन वृक्षोंसे युक्त रुहीडेका वृक्ष हो तो वहां जल कहना चाहिये ।।७९।। मध्यम स्थित रुहीडेके वृक्षसे चार हाथ और सोलह अंगुल उत्तरको चालीस पुरुष खोदनेसे पत्थर निकलता है. उसके नीचे शिरा होती है ।।८०।। जहां बहुत गाठोंवाला शमीवृक्ष हो और उसके उत्तर वल्मीक हो तो शमी वृक्षसे पांच हाथ पश्चिमको पचास पुरुष नीचे जल होता है ।।८१।। ऐक स्थानमें पांच वमई हो उनके मध्यका वल्मीक श्वेत वल्मीकमें पचपन पुरुष खोदनेसे जलकी शिरा निकलती है ।।८२।। जहां पलाशवृक्षयुक्त शमी वृक्ष हों, वहां उन वृक्षोंसे पांच हाथ पश्चिम साठ पुरुष नीचे जल होता है. प्रथम आधा पुरुष खोदनेसे सर्प और पीछे वालू मिली हुई पीली मट्टी निकलती है ।।८३।। जहां वल्मीकसे घिरा हुआ श्वेत रंगका रुहीडेका वृक्ष हो वहां उस वृक्षसे एक हाथ पूर्वको सत्तर पुरुष नीचे जल होता है ।।८४।। जहां बहुत कांटोंसे युक्त श्वेत शमीवृक्ष हो, वहां उस वृक्षसे एक हाथ दक्षिणको पचहत्तर पुरुष नीचे जल होता है और आधा पुरुष खोदनेपर सर्प निकलता है ।।८५।। मरुदेशमें जलज्ञानके जो यह चिह्न कहे इन चिह्नोंसे जांगल देशमें जल नहीं कहना चाहिये अर्थात् जांगल देशमें इन चिह्नोंसे जलका ज्ञान नहीं होता जामन, वेदमजनू आदि वृक्षोंके चिह्नोंसे प्रथम जलज्ञान कहा, वह चिह्न मरुदेशमें दिखाई दे तो जितने पुरुष नीचे पहले उन चिह्नोंसे जल कहा, वे पुरुष यहांपर दूने कहने योग्य हैं बहुत ही जलवाले देशको अनूपक कहते हैं जलके अभाववाला देश मरुस्थल कहलाता है, इन दोनोंसे अलग जो देश हो अर्थात् जहां बहुत अधिक और अत्यन्त कम जल न हो, वह जांगल देश है. इस भांति तीन प्रकारके देश होते हैं ।।८६।। जामन, निसोत, मूर्वा शिशुमार, शरिवन, शिवा, श्यामा, वाराहीकंगनी, गरुडवेगा ।।८७।। सूकरिका, मषवन और व्याघ्रपदा (वघनखी) यह औषधी जो वल्मीकके ऊपर हों तो उस वल्मीकसे तीन हाथ उत्तरको तीन पुरुष नीचे जल होता है ।।८८।। तीन पुरुष नीचे जलकी बात अनूप देशमें कहनी चाहिये. जो यह चिह्न जांगला देशमें दिखाई दें तो तीन पुरुषके स्थानमें पांच पुरुष नीचे जल कहे. इनही चिह्नोंको मरुस्थलमें देखनेसे सात पुरुष नीचे जल बतावे ।।८९।। एकरंगकी भूमिमें जहां तृण, वृक्ष, वल्मीक और गुल्प नहीं हों, ऐसी भूमि जहां विकारयुक्त अर्थात् और प्रकारकी दिखाई दे, वहां पांच पुरुष नीचे जल होता है (भूमिमें एकही मूलसे बहुतसी शाखायुक्त समूहके उत्पन्न होनेको गुल्म कहते हैं) ।।९०।। जहां स्निग्ध नीची वालु रेतदार या जहां पैर रखनेसे शब्द हो, ऐसी भूमि हो तो वहां साढे चार पुरुष नीचे अथवा पांच पुरुष नीचे जल होता है ।।९१।। जहां बहुतसे स्निग्ध वृक्ष हों, वहां उन वृक्षोंसे दक्षिण चार पुरुष नीचे बहुतसे जलका होना कहना चाहिये और बहुतसे वृक्षोंमें एक वृक्ष विकृत हो अर्थात् इसके फल, पुष्प और प्रकारके हों तो उस वृक्षसे दक्षिणको चार पुरुष नीचे जल होता है ।।९२।। जिस जांगल या जिस अनूप देशमें पांव रखनेसे भूमि दब जाय वहां डेढ़

पुरुष नीचे जल होता है और जहां बहुतसे कीडे दिखाई दें और उनके रहनेका कोई भट्टक न हो वहां भी डेढ पुरुष नीचे जल होता है ।।९३।। जहां सब भूमि गरम हो और एक देशमें ठण्डी हो वहां या जहां सब भूमि शीतल हो और एक जगहमें गरम हो वहां साढे तीन पुरुष नीचे जल रहता है, इन्द्रधनुष मत्स्य या वल्मीक जहां जांगल अथवा अनूप देशमें दिखाई दे, वहां चार हाथ नीचे जल होता है ।।९४।। जहां जांगल या अनूप देशमें बहुतसे वल्मीकोंकी पांति हो, उसमें एक वल्मीक सबसे ऊंचा हो तो उस ऊंचे वल्मीकके नीचे चार हाथ खोदनेसे शिरा निकलती है और जहां खेती जमकर-सूख जाय या जमेही नहीं, वहां भी चार हाथ नीचे जल होता है ।।९५।। बड, पीपल और गूलर यह तीन वृक्ष जहां इकट्टे हों, वहां इन वृक्षोंके नीचे तीन हाथ खोदनेसे जल निकलता है और जहां बड, पीपल दोनों इकट्ठे हों. उनके भी तीन हाथ नीचे खोदनेसे जल निकलता है, इन दोनों स्थानोंमें उत्तर शिरा होती है ।।९६।। गाँवसे अथवा नगरसे अग्निकोणमें कुआँ हो तो नित्य भय देता है और प्रायः ग्राम और नगरमें अग्नि लगती है, जिसमें मनुष्य भी जल जाते हैं ।।९७।। नैर्ऋत्यकोणमें कुआँ हो तो बालकोंका क्षय होता है, वायव्यकोणमें कूप हो तो स्त्रियोंको भय होता है, यह तीन दिशा छोडकर बाकी पांच दिशाओंमें कूप शुभ होते हैं ।।९८।। सारस्वतमुनिने जो उदकार्गल कहा है, वह देखकर यह उदकार्गलभी हमने आर्या छन्दके द्वारा कहा, अब मनुका कहा उदकार्गलभी वृत्तोंमें कहते हैं ।।९९।। वृक्ष, गुल्म और वल्ली जिस भूमिमें स्निग्ध हों और छिद्रहीन पत्तोंसे युक्त हों, वहां तीन पुरुष नीचे शिरा होती है या स्थलपद्म, गोखरू, खस, कुल, मंद्र (शर), काश, कुश, नलिका, नल यह तृण ।।१००।। और खजूर, जामन, अर्जुन, वेतस वृक्ष हो या जहां वृक्ष, गुल्म और बल्ली ऐसे हों जिनमें दूध निकले अथवा छत्री, हस्तिकर्णी, नागकेसर, कमल, कदम्ब, नक्तमाल, सिंधुवार ।।१०१।। बहेडे और मदयन्तिका जहां हो वहां तीन पुरुष नीचे जल होता है और जहां एक पर्वतके ऊपर दूसरा पर्वत हो वहांभी ऊपर के पर्वतके मूलमें तीन पुरुष नीचे जल होता है ।।१०२।। मूंज, काश और कुश करके जो भूमि युक्त हो, जहां पत्थरकी कणिकाओंसे मिली नीली मट्टी हो तो वहां बहुत और मीठा जल होता है, जहां काली या लाल मट्टी हो वहांभी बहुत और मधुर जल होता है ।।१०३। । शर्करा (पत्थरके कणोंसे मिली हुई तांबेके रंगकी) भूमि हो तो उसमें कसैले स्वादका जल निकलता है, कपिल रंगकी भूमिमें खारा पानी होता है, पांडु-रंगकी भूमिमें लवणके स्वादका जल निकलता है और नीले रंगकी भूमिमें मीठा जल होता है ।।१०४।। शाक, अश्वकर्ण, अर्जुन, बिल्व, सर्ज, श्रीपर्णी, अरिष्ट और शीशम ये वृक्ष जहां छेदवाले पत्तोंसे युक्त हो और जहां वृक्ष, गुल्म, वेलें भी छिद्रवाले पत्तोंसे युक्त और रूखा हो वहां जल बहुत दूर होता है ।।१०५।। जो भूमि सूर्य, अग्नि, भस्म, ऊंट, गर्दभ-के रंगकी हो वह भूमि जलहीन होती है और जिस लाल रंगकी भूमिमें लाल रंगके अंकुरोंदार करीर वृक्ष हों और उन वृक्षोंमें दूध निकलता हो वहां पत्थरके नीचे जल होता है ।।१०६।। वैदूर्य मणि, मुग्द (मूंग) और मेघके समान जो शिला कृष्णवर्ण हो वे पके हुए गूलरके समान रंग हो, जो शिला फोडनेसे अंजनके समान अतिकाले रंगकी निकले या कपिल वर्ण हो उस शिलाके निकट ही बहुत जल होता है ।।१०९।। जो शिला पारावत (कबूतर), शहत, घृत, अलसीका कपडा या जो यज्ञके काममें आनेवाली सोम-

वेलके समान रंगकी हो तो वहभी शीघ्रही अक्षय जल करती है ॥१०८॥ तांबेके रंगके बिन्दु अथवा विचित्र बिन्दुओंसे युक्त जो शिला हो, पांडुर रंगकी हो, अंगुष्ठिकवृक्षके फूलोंके समान नीली और लाल हो, सूर्य या अग्निके समान रंगवाली हो उस शिलाको निर्जल जानना योग्य है ॥१०९॥ चंद्रमाकी चांदनी, स्फटिक, मोती, सुवर्ण और इन्द्रनीलमणिके समान रंगकी जो शिला हो, सिंगरफके समान बहुत लाल रंगकी या अंजनके समान बहुत काली; उदय होते हुए सूर्यके किरणोंके समान बहुत लाल और चमकदार हो अथवा हरितालके तुल्य पीले रंगकी शिला हो तो वह शुभ होती है. इस प्रकरणमें आगे कहा हुआ वृत्त मुनिवचन है अर्थात् प्रामाणिक है ॥११०॥ पहले जो शिला कही यह सब शुभ हैं, इसलिये इन शिलाओंको तोडना योग्य नहीं. यह शिला सदा यक्ष और नागोंसे सेवित रहती हैं, जिन राजाओंके राज्यमें ऐसी शिला हों उनके राज्यमें कभी अवृष्टि नहीं होती ॥।१११॥ कूप आदि खोदनेके समय शिला निकल आवे और वह फूट न सके तो उसके ऊपर ढाक और तेंदुके काठको जलाकर उस शिलाको लाल कर ले, फिर उसके ऊपर चूनेकी कलीसे मिला हुआ जल छिडके तो वह शिला टूट जाती है ॥११२॥ मरुवा वृक्षकी भस्म मिलाय जलको औटावे फिर उसमें शरका खार मिला पीछे अग्निसे तपाई हुई शिलाके ऊपर सात वार उस जलको छिडके तो शिला टूट जाती है ॥११३॥ छाछ, कांजी, मद्य, कुलथी और वेरके फल इन सबको एक बरतनमें सात रात्रि रक्खे फिर शिलाको पहले कही कई रीतिसे तपाय इन वस्तुओंसे बार बार छिडके तो वह शिला टूट जाती है ॥११४॥ नींबके पत्ते, नींबकी छाल, तिलोंका नाल, अपामार्ग (चिरचिटा), तेंदूके फल गिलोय इनकी भस्मको गोमूत्रसे छान ले फिर पत्थरको तपाकर छः बार इसमें छिडके तो वह पत्थर टूट जाता है ॥११५॥ हुडुमेषके सींगको जलाकर उसकी स्याही कबूतर और चूहेकी वीटके साथ पीसकर मिला ले और इन सबको आकके दूधमें डालकर लेप बनाय शस्त्रपर लगावे और फिर तेलसे मथित टंक (पाषाणदारकयंत्र) पर पान देकर तीक्ष्ण करले. शिलापर मारनेसेभी इस शस्त्रकी धार नहीं टूटेगी ॥११६॥ कदलीके खारमें छाछ मिलाकर एक दिन रहने दे फिर जिस लोहेमें उसको मिलाकर पान दी जाय और वह भलीभांतिसे तेज धारवाला हो जाय तो फिर वह पत्थरपरभी मारनेसे नहीं टूटता और लोहेपर लगनेसे भी खुटला नहीं होता ॥११७॥ पूर्व पश्चिमको लम्बी वापीमें जल बहुत कालतक रहता है और दक्षिण उत्तरको लंबीमें नहीं ठहरता क्योंकि पवनसे उठाये हुए बडे तरंगोंसे वह टूट जाती है, जो दक्षिण उत्तर लंबी पुष्करणी बनाया चाहे तो जलकी चोटका बचाव करनेके लिये उसके किनारोंको दृढ काष्ठसे बांध दे या पत्थर, ईंट आदिसे चिनवा दे और बनानेके समय उसके प्रत्येक मिट्टीके आसारको घोडे, हाथी आदिसे रुदवाता जाय, जिससे वह मिट्टी दब जाय और जलके धक्केसे नहीं टूटे ॥११८॥ अर्जुन, बड, आम, पिलखन, कदम्ब, निचुल, जामुन, वेतस, नीम (एक प्रकारका कदम्ब), कुरबक, ताल, अशोक, महुआ और मौलसिरी ये वृक्ष उसे वापीके तटपर लगावे ॥११९॥ जल निकलनेके लिये एक ओर एक मार्ग रक्खे. जिसको पत्थरोंसे बंधवाकर पक्का कर देवे और उस मार्गको छिद्ररहित काठके तखतेसे ढककर ऊपरसे मिट्टीसे दबा दे ॥१२०॥ अंजन (सुरमा), मोथा, खस, राजकोशतकी (बडी तुरई), आमल और कतक (निर्मल) इन सबका चूर्ण कर कूपमें डाले ॥१२१॥ जो जल गदला, कडुआ, खारा, बेस्वाद, या

दुर्गन्ध हो तो वह इस चूर्णके डालनेसे निर्मल मीठा, सुगंध, और भी कई उत्तम गुणों करके युक्त हो जाता है ।।१२२।। हस्त, मघा, अनुराधा, पुष्य, धनिष्ठा, तीनों उत्तरा, रोहिणी और शतभिषा नक्षत्रमें कूपका आरंभ करना श्रेष्ठ है ।।१२३।। वरुणको बलि देकर गंध, पुष्प, धूप, आदिसे बड या वेतसके काठके कीलका पूजन करे फिर शिराके स्थानमें प्रथम उस कीलको गाड दे ।।१२४।। ज्येष्ठ पूर्णिमा होनेसे पीछे वर्षाऋतुमें जो जलका ज्ञान है वह मेघसंबंधी उदकार्गल है, वह हमने बलदेव आदि आचार्योंके मतको देखकर पहले ही कह दिया, वह भूमिसंबंधी दूसरा उदकार्गल मुनियोंके प्रसादसे भलीभांति वराहमिहिरने अर्थात् हमने कहा है, उदक शब्द जलका वाचक है और अर्गल रुकावटका नाम है, जलकी रुकावट जिस शास्त्रसे जानी जावे वह उदकार्गल कहाता है "नारं नीरं भुवनमुदकं जीवनीयं दकं च" इति हलायुधः ।।१२५।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटी० चतुष्पंचाशत्तमोऽध्यायः ।।५४।।

अथ पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः

वृक्षायुर्वेदः

प्रान्तच्छायाविनिर्मुक्ता न मनोज्ञा जलाशयाः । यस्मादतो जलप्रान्तेष्वारामान् विनिवेशयेत् ।। १ ।। मृद्वी भूः सर्ववृक्षाणां हिता तस्यां तिलान् वपेत् । पुष्पितांस्तांश्च गृह्णीयात् कर्मैतत्प्रथमं भुवि ।। २ ।। अरिष्टाशोकपुन्नागशिरीषाः सप्रियङ्गवः । मङ्गल्याः पूर्वमारामे रोपणीया गृहेषु वा ।। ३ ।। पनसाशोककदली-जम्बूलकुचदाडिमाः । द्राक्षापालीवताश्चैव बीजापूरातिमुक्तकाः ।।४।। एते द्रुमाः काण्डा रोप्या गोमयेन प्रलेपिताः । मूलच्छेदेऽथ वा स्कन्धे रोपणीयाः प्रयत्नतः ।। ५ ।। अजातशाखांश्छिशिरे जातशाखान् हिमागमे । वर्षागमे च सुस्कन्धान्यथादिक् प्रतिरोपयेत् ।। ६ ।। घृतोशीरतिलक्षौद्रविडङ्गक्षीरगोमयैः । आमूस्कन्ध-लिप्तानां सङ्क्रामणविरोपणम् ।। ७ ।। शुचिर्भूत्वा तरोः पूजां कृत्वा स्नाना-नुलेपनैः । रोपयेद्रोपितश्चैव पत्रैस्तैरेव जायते ।। ८ ।। सायं प्रातश्च घर्मान्ते शीतकाले दिनान्तरे । वर्षासु च भुवः शोषे सेवतव्या रोपिता द्रुमाः ।। ९ ।। जम्बूवेतसवानीरकदम्बोदुम्बरार्जुनाः । बीजपूरकमृद्वीकालकुचाश्च सदाडिमाः ।। १० ।। वञ्जुलो नक्तमालश्च तिलकः पनस्तथा । तिमरोऽम्रातकश्चैव षोडशानूपजाः स्मृताः ।। ११ ।। उत्तमं विंशतिर्हस्ता मध्यमं षोडशान्तरम् । स्थानात् स्थानान्तरं कार्यं वृक्षाणां द्वादशावरम् ।। १२ ।। अभ्याशजातास्तरवः संस्पृशन्तः परस्परम् । मिश्रैर्मूलैश्च न फलं सम्यग्यच्छन्ति पीडिताः ।। १३ ।। शीतवातातपैः रोगो जायते पाण्डुपत्रता । अवृद्धिश्च प्रवालानां शाखाशोषो रस श्रुतिः ।। १४।। चिकित्सितमथैतेषां शस्त्रेणादौ विशोधनम् । विडङ्गघृतपङ्काक्तान्

सेचयेत् क्षीरवारिणा ॥ १५ ॥ फलनाशे कुलत्थैश्च माषैर्मुद्गैस्तिलैर्यवैः । शृतशीतपयःसेकः फलपुष्पाभिवृद्धये ॥ १६ ॥ अविकाजशकृच्चूर्णस्याढके द्वे तिलाढकम् । सक्तुप्रस्थो जलद्रोणो गोमांसतुलया सह ॥ १७ ॥ सप्तरात्रोषितैरेतैः सेकः कार्यो वनस्पतेः । वल्लीगुल्मलतानां च फलपुष्पाय सर्वदा ॥ १८ ॥ वासराणि दश दुग्धभावितं बीजमाज्ययुतहस्तयोजितम् । गोमयेन बहुशो विरूक्षितं क्रौडमार्गपिशितैश्च धूपितम् ॥ १९ ॥ मत्स्यशूकरवसासमन्वितं रोपितं च परिकर्मितावनौ । क्षीरसंयुतजलावसेचितं जायते कुसुमयुक्तमेव तत् ॥२०॥ तिन्तिडीत्यपि करोति वल्लरीं व्रीहिमाषतिलचूर्णसक्तुभिः । पूतिमांससहितैश्च सेचिता धूपिता च सततं हरिद्रया ॥ २१ ॥ कपित्थवल्लीकरणाय मूलान्यास्फोतधात्रीधववासिकानाम् । पलाशिनी वेतससूर्यवल्ली श्यामातिमुक्तैः सहिताष्टमूली ॥२२॥ क्षीरे शृते चाप्यनया सुशीते नालाशतं स्थाप्य कपित्थबीजम् । दिने दिने शोषितमर्कपादैर्मासं विधिस्त्वेष ततोऽधिरोप्यम् ॥२३॥ हस्तायतं तद्द्विगुणं गभीरं खात्वावटं प्रोक्तजलावपूर्णम् । शुष्कं प्रदग्धं मधुसर्पिषा तत् प्रलेपयेद्भस्मसमन्वितेन ॥ २४ ॥ चूर्णीकृतैर्माषतिलैर्यवैश्च प्रपूरयेन्मृत्तिकयान्तरस्थैः । मत्स्यामिषाम्भःसहितं च हन्याद् यावद्घनत्वं समुपागतं तत् ॥ २५ ॥ उप्तं च बीजं चतुरंगुलाधो मत्स्याम्भसा मांसजलैश्चसिक्तम् । वल्ली भवत्याशु शुभप्रवाला विस्मापनी मण्डपमावृणोति ॥ २६ । शतशोऽङ्कोल्लसम्भूतफलकल्केन भावितम् । एतत्तैलेन वा बीजं श्लेष्मातकफलेन वा ॥ २७ ॥ वापितं करकोन्मिश्रं मृदि तत्क्षणजन्मकम् । फलभारान्विता शाखा भवतीति किमद्भुतम् ॥ २८ ॥ श्लेष्मातकस्य बीजानि निष्कुलीकृत्य भावयेत् प्राज्ञः । अंकोल्लविज्जलाभिश्छायायां सप्तकृत्वैवम् ॥२९॥ माहिषगोमयघृष्टान्यस्य करीषे च तानि निक्षिप्य । करकाजलमृद्योगे न्युप्तान्यह्ना फलकराणि ॥ ३० ॥ ध्रुवमृदुमूलविशाखा गुरुभं श्रवणस्तथाश्विनीहस्तम् । उक्तानि दिव्यदृग्भिः पादपसंरोपणे भानि ॥ ३१ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां वृक्षायुर्वेदो नाम
पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

वापी, कूप, तालाब आदि जलाशयके ओर पास जो छायासे हीन हो तो चित्तको आनंद नहीं देते. इस कारण जलाशयोंके किनारेपर आराम (बगीचे) लगावें ॥१॥ कोमल भूमि सब वृक्षोंके लिये अच्छी होती है, जिस भूमिमें बाग लगाना हो पहिले उसमें तिल बोवे, जब वे तिल फूलें तब उनका मर्दन करे यह भूमिका प्रथम कर्म है ॥२॥ नीबू, अशोक, पुन्नाग, शीरीष और प्रियंगु मंगलदाई हैं इस कारण बागमें अथवा घरमें पहिले लगाने चाहिये ॥३॥ कटहर, अशोक, केला, जामुन, लिंकुच (बडहर), दाडिम, दाख, पालीवत, बिजौरा और मुक्तक इन वृक्षोंकी कलम लेकर उसको गोबरसे लीपकर या दूसरे वृक्षको मूलसे अथवा डालसे काट उसके ऊपर लगावे ॥ ४॥ ५ ॥ जिनके शाखा

उत्पन्न नहीं हुई हों ऐसे वृक्षोंको एक स्थानसे उठाकर दूसरे स्थानमें अपनी दिशाके बीच शिशिरऋतुमें लगावे. जिनके शाखा हो गई हो उनको हेमन्तमें और अच्छे २ डाल-वाले वृक्षोंको वर्षा ऋतुमें लगावे ॥६॥ घृत, खस, तिल, शहत, वायविडंग, दूध और गोबर इन सबको पीसकर मूलसे लेकर डालतक वृक्षोंका लेप दे पीछे उसको एक स्थानसे उठा-कर दूसरे स्थानमें लगावे ॥७॥ पवित्र हो, स्नान अनुलेपन करके वृक्षकी पूजा करे पीछे उस वृक्षको दूसरे स्थानमें लगावे तो वह वृक्ष उन्हीं पत्रों करके युक्त लग जाता है अर्थात् सूखता नहीं ॥ ८ ॥ लगाये हुए वृक्षोंमें ग्रीष्मऋतुमें सांझ सवेरे दोनों समय सींचने चाहिये, शीतकालमें एक दिनके अंतरसे सींचे और वर्षाऋतुमें भूमि सूखनेपर सींचना चाहिये ॥९॥ जामुन, वेतस, वानीर, कदम्ब, गूलर, अर्जुन, बिजौरा, दाख, बडहर, दाडिम ॥१०॥ वंजुल, नक्तमाल, तिलक, कटहर, तिमिर और अंबाडा यह सोलह वृक्ष अनूपज अर्थात् बहुत जलवाले देशमें होते हैं ॥११॥ एक वृक्षसे बीस हाथके अंतरपर दूसरा वृक्ष लगाया जाय तो उत्तम है, सोलह हाथ अंतर पर मध्यम और बारह हाथके अंतर पर लगाया जाय तो अधम होता है ॥१२॥ जो वृक्ष बहुत समीप उत्पन्न हों, परस्पर स्पर्श करें और जिनकी जड मिल जावें वे पीडित होते हैं और इसी कारणसे भलीभांति नहीं फलते ॥१३॥ बहुत शीत पवन और धूपसे वृक्षोंको रोग हो जाता है; तब उनके पत्ते पीले हो जाते, अंकुर नहीं बढते, डाली सूखती और रस टपकने लगता है ॥१४॥ रोगी वृक्षकी इस भांति चिकित्सा करे कि पहले जिस अंगको सडा सूखा आदि देखे उसको. शस्त्रसे काट देवे फिर वायविडंग घृत और कीचको मिलाकर वृक्षोंके लेप करे पीछे दूध जलसे सींचे ॥१५॥ वृक्षमें फल न लगे तो कुलथ, उडद, मूंग, तिल और जौ दूधमें डालकर औटावे, फिर उस दूधको ठंढा कर उस दूधसे फल और पुष्पोंकी वृद्धिके लिये वृक्षको सीचे ॥१६॥ भेड और बकरीकी मेंगनका चूर्ण दो आढक, तिल एक आढक, सत्तू एक प्रस्थ, जल एक द्रोण और गोमांस एक तुला इन सबको एक पात्रमें डालकर ॥१७॥ सात रात्रितक रक्खे, पीछे फल और पुष्पोंके लिये इस जलसे वृक्ष, वेल, गुल्म और लताओंको सींचे ॥१८॥ चाहे जिस वृक्षके बीजको घृतसे चिकने हाथ करके चुपडे पीछे उसको दूधमें डाल दे इसी भांति नित्य दश दिनतक चिकने हाथसे चुपड दूधमें डालता जाय पीछे उसको गोबरसे बहुत वार रूखा करे. सूकर और हरिणके मांसकी उस बीजको धूप देवे ॥१९॥ फिर मत्स्य और सूकरकी बसा (चर्बी) सहित उस बीजको तिल बोनेसे शुद्ध की हुई भूमिमें बोवे और दूधयुक्त जलसे सींचे तो उस बीजसे जो वृक्ष उत्पन्न होगा वह फूलोंसमेत उत्पन्न होगा ॥२०॥ इमलीके बीजकोभी जो अति-कठोर होता है धान, उडद, तिल इनका चूर्ण सत्तू और सडा हुआ मांस इन सबसे सेवन करे और हलदीका धूप देवे तो उस बीजमें भी नये अंखुये निकल आवें, बीजोंके जमनेमें तो संदेह क्या है? ॥२१॥ कैथके बीजसे बल्ली करना चाहे तो विष्णुक्रांता आँवला, धव, बासा पत्रोंसहित वेतस और सूर्यमुखी, निसोत और अतिमुक्तक इन आठोंकी जड लेवे ॥२२॥ वेतसके पत्तेभी लेवे इन सबको दूधमें डालकर औटावे पीछे उस दूधको ठंडा कर उसमें कैथके बीजको डाल दोनों हाथसे सौ ताल बजाये जावें इतने कालतक उस दूधमें रक्खे पीछे निकालकर दूधमें सुखा लें यही विधि नित्य एक महीने तक करके पीछे उस बीजको बोवे ॥२३॥ एक हाथ लम्बा, चौडा और दो हाथ गहरा गढा खोदकर

और उसको कहे हुये दूधयुक्त जलसे भरै, जल सूख जाय तो उस गढेको अग्निसे जला दे और शहत, घृत और भस्मको मिलाकर उस गढेको लीपे ॥२४॥ मृत्तिकाके अंतरमें स्थित उडद, तिल और जौके चूर्ण करके गढेको भर दे फिर मत्स्यमांसयुक्त जलके सहित उस गढेको चारों ओरसे ठोके, जबतक वह कठिन हो जाय ॥२५॥ पीछे उसमें चार अंगुल नीचे पहले सिद्ध किया कैथका बीज बोवे और मत्स्यजल और मांस जलसे सींचे तो शीघ्रही उत्तम पत्तों करके युक्त वल्ली हो जावे और मंडपको ढक लेवे जिसको देखनेसे सबको विस्मय हो ॥२६॥ अंकोलवृक्षके फलके कल्क (गूदे) से, अंकोलफलके तेलसे अथवा लसोडेके फलसे अर्थात् उसके कल्कसे अथवा तेलसे चाहे जिस बीजको सौ भावना देवे अर्थात् सौ वार सिक्त करे ॥२७॥ पीछे उसे ओलोंसे भीगी हुई मट्टीमें बोवे तो उसी क्षण जम आता है, फूलोंके भारसे झुकी हुई लता हो जाती है इसमें क्या अद्‌भुत है अर्थात् अवश्यही होती है ॥२८॥ बुद्धिमान् मनुष्य लसोडेके बीज लेकर उनका छिलका उतारे और अंकोलफलकी बिजली अर्थात् फलके भीतरका पिच्छिल जल उससे छायामें उन बीजोंको सात भावना देवे अर्थात् भावना दे देकर छायामें सुखाता जावें ॥२९॥ फिर उन बीजोंको भैंसके गोबरसे घिसकर भैंसके सूखे गोबरके ढेरमें रख छोडे फिर जब ओले पडनेपर मिट्टी भीज जावे तब उस ओलेसे भीगी हुई मिट्टीमें उन बीजोंको बोवे तो एकही दिनमें वृक्ष होकर फल जावेगा ॥३०॥ तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, मूल, विशाखा, पुष्य, श्रवण, अश्विनी और हस्त यह नक्षत्र, दिव्य दृश्टि-वाले मुनीश्वरोंने वृक्ष लगानेके लिये श्रेष्ठ कहे हैं ॥३१॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डित बलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां पंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

अथ षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः

प्रासादलक्षणम्

कृत्वा प्रभूतं सलिलमारामान्विनिवेश्य च देवतायतनं कुर्याद्यशोधर्माभिवृद्धये ॥ १ ॥ इष्टापूर्तेन लभ्यन्ते ये लोकास्तान् बुभूषता । देवानामालयः कार्यो द्वयमप्यत्र दृश्यते ॥ २ ॥ सलिलोद्यानयुक्तेषु कृतेष्वकृतकेषु च ॥ स्थानेष्वेतेषु सान्निध्यमुप-गच्छन्ति देवताः ॥ ३ ॥ सरःसु नलिनीछत्रनिरस्तरविरश्मिषु । हंसांसाक्षिप्त-कह्लारवीचीविमलवारिषु ॥ ४ ॥ हंसकारण्डवक्रौञ्चचक्रवाकविराविषु । पर्यन्त-निचुलच्छायाविश्रान्तजलचारिषु ॥ ५ ॥ क्रौञ्चकाञ्चीकलापाश्च कलहंसकल-स्वनाः । नद्यस्तोयांशुका यत्र शफरीकृतमेखलाः ॥६॥ फुल्लतीरद्रुमोत्तंसाः सङ्गम-श्रोणिमण्डलाः । पुलिनाभ्युन्नतोरस्या हंसहासाश्च निम्नगाः ॥ ७ ॥ वनोपान्त-नदीशैलनिर्झरोपान्तभूमिषु । रमन्ते देवता नित्यं पुरेषूद्यानवत्सु च ॥ ८॥ भूमयो ब्राह्मणादीनां याः प्रोक्ता वास्तुकर्मणि । ता एव तेषां शस्यन्ते देवतायतनेष्वपि ॥ ९ ॥ चतुःषष्टिपदं कार्यं देवतायतनं सदा । द्वारं च मध्यमं तत्र समदिक्स्थं

प्रशस्यते ॥ १० ॥ यो विस्तारो भवेद्यस्य द्विगुणा तत्समुन्नतिः । उच्छ्रायाद्यस्तृतीयोंऽशस्तेन तुल्या कटिः स्मृता ॥ ११ ॥ विस्तारार्धं भवेद्गर्भो भित्तयोऽन्याः समन्ततः । गर्भपादेन विस्तीर्णं द्वारं द्विगुणमुच्छ्रितम् ॥ १२ ॥ उच्छ्रायात्पादविस्तीर्णा शाखा तद्वदुदुम्बरः । विस्तारपादप्रतिमं बाहुल्यं शाखयोः स्मृतम् ॥१३॥ त्रिपञ्चसप्तनवभिः शाखा भस्तत्प्रशस्यते । अधः शाखाचतुर्भागे प्रतीहारौ निवेशयेत् ॥ १४ ॥ शेषं मङ्गल्यविहगैः श्रीवृक्षस्वस्तिकैर्घटैः । मिथुनैः पत्रवल्लीभिः प्रमथैश्चोपशोभयेत् ॥ १५ ॥ द्वारमानाष्टभागोना प्रतिमा स्यात्सपिण्डिका । द्वौ भागौ प्रतिमा तत्र तृतीयांशश्च पिण्डिका ॥१६॥ मेरुमन्दरकैलासविमानच्छच्छन्दनन्दनाः । समुद्गपद्मगरुडनन्दिवर्धनकुञ्जराः ॥१७॥ गुहराजो वृषो हंसः सर्वतोभद्रको घटः । सिंहो वृत्तश्चतुष्कोणः शोडषाष्टाश्रयस्तथा ॥१८॥ इत्येते विंशतिः प्रोक्ताः प्रासादाः संज्ञया मया । यथोक्तानुक्रमेणैव लक्षणानि वदाऽम्यतः ॥१९॥ तत्र षडश्रिर्मेरुर्द्वादशभौमो विचित्रकुहरश्च । द्वारैर्युतश्चतुर्भिर्द्वात्रिंशद्धस्तविस्तीर्णः ॥२०॥ त्रिंशद्धस्तायामो दशभौमो मन्दरः शिखरयुक्तः । कैलासोऽपि शिखरवान् अष्टाविंशोऽष्टभौमश्च ॥२१॥ जालगवाक्षकयुक्तो विमानसंज्ञस्त्रिसप्तकायामः । नन्दन इति षड्भौमो द्वात्रिंशः षोडशाण्डयुतः ॥२२॥ वृत्तः समुद्गनामा पद्मः पद्माकृतिः शयानष्टौ । शृङ्गेणैकेन भवेदेकैव च भूमिका तस्य ॥२३॥ गरुडाकृतिश्च गरुडो नन्दीति च षट् चतुष्कविस्तीर्णः । कार्यश्च सप्तभौमो विभूषितोऽण्डैश्च विंशत्या ॥२४॥ कुञ्जर इति गजपृष्ठः षोडशहस्तः समन्ततो मूलात् । गुहराजः षोडशकस्त्रिचन्द्रशाला भवेद्वलभी ॥२५॥ वृष एकभूमिशृङ्गो द्वादशहस्तः समन्ततो वृत्तः । हंसो हंसाकारो घटोऽष्टहस्तः कलशरूपः ॥२६॥ द्वारैर्युतश्चतुर्भिर्बहुशिखरो भवति सर्वतोभद्रः । बहुरुचिरचन्द्रशालः षड्विंशः पञ्चभौमश्च ॥२७॥ सिंहः सिंहाक्रान्तो द्वादशकोणेऽष्टहस्तविस्तीर्णः । चत्वारोऽञ्जनरूपाः पञ्चाऽण्डयुतस्तु चतुरस्रः ॥२८॥ भूमिकाऽङ्गुलमानेन मयस्याष्टोत्तरं शतम् । सार्धं हस्तत्रयं चैव कथितं विश्वकर्मणा ॥२९॥ प्राहुः स्थपतयश्चात्र मतमेकं विपश्चितः । कपोतपालिसंयुक्ता न्यूना गच्छन्ति तुल्यताम् ॥३०॥ प्रासादलक्षणमिदं कथितं समासाद्गर्गेणयद्विरचितं तदिहास्ति सर्वम् । मन्वादिभिर्विरचितानि पृथूनि यानि तत्संस्मृतिं प्रति मयात्र कृतोऽधिकारः ॥३१॥ इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां प्रासादलक्षणं नाम षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

बहुत जल करके युक्त जलाशय बनाकर और उनके तटपर बाग लगाकर यश और धर्मकी वृद्धिके लिये देवताका मंदिर बनाना चाहिये ॥१॥ यज्ञादि करना इष्ट कहाता है और वापी कूप तडागादि बनाना पूर्त्त कहाता है, इष्टापूर्त्तसे जो उत्तम लोक मिलते हैं उनके पानेकी इच्छावाला पुरुष देवमंदिर बनानेके द्वारा इष्ट और पूर्त्त दोनोंहीका फल मिलाता है ॥२॥ जल और पवनसे युक्त स्थान चाहे किसीके बनाये हुए हों, चाहे स्वाभा-

विक बने रहें तो उन स्थानोंमें देवता निवास करते हैं ॥३॥ ऐसे सरोवरमें देवता सदा विहार करते हैं कि जिनमें कमलरूप छत्रसे सूर्यकिरण दूर किये हों, हंस पक्षियोंके कंधोंसे प्रेरित श्वेत कमल कि जिनका मार्ग उसमें है. निर्मल जल जिन सरोवरोंमें भरे हैं ॥४॥ हंस कारंडव क्रौंच और चक्रवाक जिनमें शब्द कर रहे हैं और किनारोंके निचुल-वृक्षोंकी छायामें जहां जलके जीव विश्राम करते हैं ॥ ५ ॥ क्रौंच पक्षी जिनका कांचीकलाप, है, कलहंसोंका मधुर शब्द जिनका शब्द है, जल जिनका वस्त्र है, मच्छी जिनके मेखला हैं, किनारोंपर फूले वृक्ष जिनके कर्णपूर हैं, जल थलका संगम जिनका श्रोणिमण्डल है, पुलिन जिसके उठे स्तन और हंसही हैं, हास्य जिनका उस नीचेको वहनेवाली नदियोंके समीपवर्ती स्थानोंमें देवता लोग रहते हैं ॥६॥७॥ वनके निकट नदी पर्वत और झरनोंके समीपकी भूमिमें नित्य देवता रमण करते हैं और उपवनोंसे युक्त नगरोंमेंभी देवता विहार करते हैं ॥ ८ ॥ ब्राह्मण आदि चार वर्णोंको जैसी भूमि पहले गृह बनानेके लिये कह आये हैं वैसीही भूमि उन वर्णोंका देवताके मंदिर बनानेके अर्थ श्रेष्ठ है ॥ ९ ॥ देव मंदिरमें सदा पूर्वोक्त चौसठ पदका वास्तु करना चाहिये, उस देवमंदिरमें मध्यम द्वार सम दिशामें स्थित हो तो श्रेष्ठ है ॥ १० ॥ देवमंदिरका जितना विस्तार हो उससे दूनी उसकी ऊँचाई होती है, ऊँचाईकी तिहाई बराबर देवमंदिरकी कटि होती है, सीढीके ऊपर जहांसे देवगृहका आरंभ होता हैं उसको कटि कहते हैं ॥११॥ विस्तारसे आधा गर्भ होता है, शेष आधे विस्तारमें चारों ओरकी भीत बनती है. गर्भकी चौथाईके समान द्वारका विस्तार और द्वारके विस्तारसे द्विगुण द्वारकी ऊँचाई होती है ॥१२॥ द्वारकी ऊँचाईकी चौथाईके बराबर शाखा (चौखटका बाजू) और उदुम्बर (चौखटके ऊपरके काठ) की चौडाई होती है, शाखाकी चौडाईकी चौथाईके तुल्य शाखाओंकी मोटाई होती है ॥ १३ ॥ शाखाकी जितनी चौडाई कही उसके बीचमें तीन, पांच, सात अथवा नौ शाखा हों तो द्वार श्रेष्ठ होता है; दोनों शाखाओंके नीचेके चतुर्थांशमें देवताओंके दो प्रतिहारोंकी मूर्ति खोदनी चाहिये ॥१४॥ शाखाओंके शेष तीन चौथाई अंशोंको हंसादि मंगलदायक पक्षी, बेल, स्वस्तिक, सथिया, कलश, मिथुन (स्त्री पुरुषका जोडा), पत्र और लतागणोंसे शोभित करे ॥१५॥ द्वारकी ऊँचाईके प्रमाणमें उसका अष्टमांश घटाकर जो बचे वह पिंडिका (देवतास्थापनका पीठ) सहित देवप्रतिमाकी ऊंचाईका प्रमाण होता है. उस पीठके सहित प्रतिमाकी ऊँचाईके तीन भाग करके दो भागके बराबर ऊँची प्रतिमा और एक भागके समान ऊंची पिंडिका (पीठ) बनाना चाहिये. यह प्रमाण सब प्रासादोंके लिये कहा है ॥१६॥ मेरु, मंदर, कैलास, विमानच्छंद, नंदन, समुद्र, पद्म, गरुड, नंदिवर्धन, कुंजर, ॥१७॥ गुहराज, वृष, हंस, सर्वतोभद्र, घट, सिंह, वृत्त, चतुष्कोण, षोडशाश्रि और अष्टाश्रि ॥१८॥ यह बीस नाम हमने प्रासादोंके कहे, अब नामके क्रमसे इनके लक्षण कहते हैं ॥१९॥ छः कोणवाला मेरुनामक प्रासाद होता है, उसमें बारह भूमिका खंड होता है और अनेक भांतिके भीतरके गवाक्षों करके युक्त होता है; उसमें चार द्वार चारों दिशाओंमें होते हैं और उसका विस्तार बत्तीस हाथ होता है, चौसठ हाथ ऊंचाई होती है ॥२०॥ षट्कोण तीस हाथके विस्तारवाला, दश भूमिकाओंसे युक्त और शिखरोंवाला मंदिर प्रासाद होता है, कैलास प्रासादभी शिखरोंसे युक्त, अट्ठाईस हाथके विस्तारवाला, आठ भूमिकाओं करके युक्त और षट्कोण होता है ॥२१॥ जाली झरोखोंदार इक्कीस हाथ विस्तारका

और आठ भूमिकाओंसे युक्त षट्कोण विमानछंद नामक प्रासाद होता है, नंदन प्रासाद षट्कोण, छः भूमिकाओंसे युक्त, बत्तीस हाथ विस्तारवाला और सोलह अंडों[1] करके युक्त होता है ॥२२॥ समुद्रनाम प्रासाद गोल होता है, वे दोनों प्रासाद आठ हाथ चौडे होते हैं, इनके एकही शृंग होता है और दोनों एक २ भूमिकासे युक्त होते हैं ॥ २३ ॥ गरुड प्रासाद गरुडके आकारसाही होता है परंतु उसके पंख और पूंछ नहीं होते, यह दोनों प्रासाद चौवीस हाथ विस्तारके सात भूमियोंसे युक्त चौवीस अंडोंसे भूषित करने चाहिये ॥२४॥ कुंजर प्रासाद हाथीके पीठके आकारका होता है और मूलसे चारों ओर सोलह हाथ विस्तारवाला होता है, गुहराज प्रासाद गुह (कार्तिकेय) के आकार बनता है और सोलह हाथ इसका विस्तार होता है. इन दोनों प्रासादोंकी वलभी तीन २ चंद्रमाशालाओंसे युक्त होती है ॥२५॥ वृष नाम प्रासाद एक भूमिका और एक शृंगदार होता है. इसका विस्तार बारह हाथ है और यह चारों ओरसे गोल (वर्तुल) होता है. हंसप्रसाद हंस-पक्षीके आकारके चोंच पंख और पूंछसे युक्त होता है; यहभी बारह हाथ चौडा, एक भूमिका और एक शृंगसे युक्त होता है, घटनामक प्रासाद कलशके आकारका होता है और आठ हाथ उसका विस्तार होता है, यहभी एक भूमिका और एक शृंङ्गयुक्त होता है ॥२६॥ सर्वतोभद्रनामक प्रासाद चारों दिशाओंमें चार द्वारोंसे युक्त बहुत शिखरों करके शोभित, बहुत और सुंदर चंद्रशालाओंसे भूषित छव्वीस हाथका विस्तारमें चतुरस्र और पांच भूमिकाओंसे युक्त होता है ॥ २७ ॥ सिंह नामक प्रासाद सिंहकी प्रतिमाके द्वारा भूषित, बारह कोणोंसे युक्त और आठ हाथ चौडा होता है, शेष चार प्रासाद वृक्ष, चतुष्कोण, षोडशास्र और अष्टास्र अपने नामके समान आकारवाले होते हैं, यह चारों अंजनरूप होते हैं अर्थात् इनके भीतर अंधकार रहता है, बाहरसे प्रकाश नहीं पहुँचता ॥२८॥ मयके मतसे एक भूमिका प्रमाण एक सौ आठ अंगुल होता है, और विश्वकर्माने एक २ भूमिका प्रमाण साढे तीन हाथ कहा है ॥२९॥ विद्वान् कारीगर मय और विश्व-कर्माके मतको एकही कहते हैं उनका यह कथन है कि विश्वकर्माने साढे तीन हाथ अर्थात् चौरासी अंगुल भूमिका प्रमाण कहा, वह कपोतपालिकाको छोडकर कहा है, जो उसमें कपोतपालिकाका प्रमाण जोड दिया जावे तो वह मयके कहे प्रमाणके बराबर हो जाता है ॥ ३० ॥ यह प्रासादलक्षण हमने संक्षेपसे कहा. परंतु गर्गमुनिने जो प्रासादलक्षण रचा है वह सब इसमें आ गया है और मनु, वसिष्ठ, मय, नग्नाजित् आदि आचार्योंने जो बडे २ प्रासादलक्षणग्रंथ रचे हैं उनकी स्मृतिके लिये हमने यहां अधिकार किया ॥३१॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

अथ सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः

वज्रलेपलक्षणम्

आमं तिन्दुकमाम्मं कपित्थकं पुष्पमपि च शाल्मल्याः । बीजानि शल्लकीनां धन्वनवल्को वचा चेति ॥१॥ एतैः सलिलद्रोणः क्वाथयितव्योऽष्टभागशेषश्च ।

---

1 अंड प्रासादके ऊपर हुआ करते हैं जिनको शिखर या शृंग कहते हैं ।

अवतार्योऽस्य च कल्को द्रव्यैरेतैः समनुयोज्यः ॥२॥ श्रीवासकर सगुग्गुलुभल्लातककुन्दुरूकसर्जरसैः। अतसीबिल्वैश्च यतः कल्कोऽयं वज्रलेपाख्यः ॥३॥ प्रासादहर्म्यवलभीलिङ्गप्रतिमासु कुड्यकूपेषु। सन्तप्तो दातव्यो वर्षसहस्रायुतस्थायी ॥४॥ लाक्षाकुन्दुरुगुग्गुलुगृहधूमकपित्थबिल्वमध्यानि। नागबलाफलतिन्दुकमदनफलमधूकमञ्जिष्ठाः ॥५॥ सर्जरसामलकानि चेति कल्कः कृतो द्वितीयोऽयम्। वज्राख्यः प्रथमगुणैरयमपि तेष्वेव कार्येषु ॥६॥ गोमहिषाजविषाणैः खररोम्णा महिषचर्मगव्यैश्च। निम्बकपित्थरसैः सह वज्रतरो नाम कल्कोऽन्यः ॥७॥ अष्टौ सीसकभागाः कांसस्य द्वौ तु रीतिकाभागः। मयकथितो योगोऽयं विज्ञेयो वज्रसङ्घातः ॥८॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां वज्रलेपो नाम सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

तेंदूके कच्चे फल, कैथके कच्चे फल, सेमलके फूल, सल्लकीवृक्षके बीज, बंधनवृक्षकी छाल और वच ॥१॥ इन सबको एक द्रोण जलमें क्वाथ करे जब आठवां भाग बच जाय तब उतारे ॥२॥ पीछे उसमें सरलवृक्षका गोंद, बोल, गूगल मिलावे, कुंदरू (देवदारु वृक्षका निर्यास) राल, अलसी और बेलकी गिरी इन सबको घोटकर डाले यह वज्रलेप नामक कल्पक है ॥३॥ इस वज्रलेपको देवप्रासाद, हवेली, वलभी, शिवलिंग, देवप्रतिमा, भित्ति और कूपोंमें गर्म करके लगावे, यह लेप हजार वर्ष पर्यंत ठहरता है ॥४॥ लाख, कुंदरू, गूगल, घरके धुंएका जाला, कैथके फल बेलकी गिरी, नागबला (गंगेरण) के फल, महुयेके फल, मजीठ ॥५॥। राल बोल आंवले इन सब वस्तुओंके कल्ककोभी पहली भांति सिद्ध किये द्रोणभर जलमें मिलानेसे दुसरा वज्रलेप सिद्ध होता है, इसमें भी वही गुण है जो पहले वज्रलेपमें कहे हैं और यहभी पासाद आदिके लेपमें हो पहले वज्रलेपकी भांति काम आता है ॥६॥ गौ, भैंस और बकरा इन तीनोंके सींग, गर्दभ, महिष और गौ इन तीनोंके चर्म, नीबके फल, कैथके फल और नील इन सबसे पहली भांति तीसरा कल्क सिद्ध होता है इसका नाम वज्रतर है. इसमेंभी पहले कहे हुए गुण हैं और पहले कार्योंमें काम आता है ॥७॥ आठ भाग सीसा, दो भाग कांसा, एक भाग पीतल इन सबको इकट्ठा गलावे यह मयका कहा हुआ योग है और इसका नाम वज्रसंघात है ॥८॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

अथाष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः

प्रतिमालक्षणम्

जालान्तरगे भानौ यदणुतरं दर्शनं रजो याति। तद्विद्यात्परमाणुं प्रथमं तद्धि प्रमाणानाम् ॥१॥ परमाणुरजो बालाग्रलिक्षयूका यवोऽङ्गुलं चेति। अष्टगुणानि यथोत्तरमंगुलमेकं भवति संख्या ॥२॥ देवागारद्वारस्याष्टांशोनस्य यस्तृतीयोंऽशः। तत्पिण्डिकाप्रमाणं प्रतिमा तद्द्विगुणपरिमाणा ॥३॥ स्वैरंगुलप्रमाणैर्द्वादशविस्तीर्णमायतं च मुखम्। नग्नजिता तु चतुर्दश दैर्घ्येण द्राविडं कथितम् ॥४॥ नासाललाटचिबुकग्रीवाश्चतुरंगुलास्तथा कर्णौ। द्वे अंगुले च हनुके चिबुकं तु द्व्यंगुलं विस्तृतम् ॥५॥ अष्टांगुलं ललाटं विस्ताराद् द्व्यंगुलात् परे शंखौ। चतुरंगुलौ तु शंखौ कर्णौ तु द्व्यंलं पृथुलौ ॥६॥ कर्णोपान्तः कार्योऽर्धपञ्चमे भ्रूसमेन सूत्रेण। कर्णश्रोत्रः सुकुमारकं च नयनप्रबन्धसमम् ॥ ७ ॥ चतुरंगुलं वसिष्ठः कथयति नेत्रान्तकर्णयोर्विवरम्। अधरोऽङ्गुलप्रमाणस्त स्यार्धेनोत्तरोष्ठश्च ॥८॥ अर्धांगुला तु गोच्छा वक्त्रं चतुरंगुलायतं कार्यम्। विपुलं तु सार्धमंगुलं मध्यात्तत्त्र्यंगुलं व्यात्तम् ॥९॥ द्व्यंगुलतुल्यौ नासापुटौ च नासापुटाग्रतो ज्ञेया। स्याद् द्व्यंगुलमुच्छ्रायश्चतुरंगुलमन्तरं चाक्ष्णोः ॥१०॥ द्व्यंगुलमितोऽक्षिकोशो द्वे नेत्रे तत्त्रिभागिका तारा। दृक् तारापञ्चांशो नेत्रविकासोंऽङ्गुलं भवति ॥११॥ पर्यन्तात्पर्यन्तं दश भ्रुवोऽर्धांगुलं भ्रुवोर्लेखाः। भ्रूमध्यं द्व्यंगुलकं भ्रुर्दैर्ध्येणांगुलचतुष्कम् ॥१२॥ कार्या तु केशरेखा भ्रूबन्धसमांगुलार्धविस्तीर्णा। नेत्रान्ते करवीरकमुपन्यसेदंगुलप्रतिमम् ॥१३॥ द्वात्रिंशत्परिणाहाच्चतुर्दशायामतोऽङ्गुलानि शिरः। द्वादश तु चित्रकर्मणि दृश्यन्ते विंशतिरदृश्याः ॥१४॥ आस्यं सकेशनिचयं षोडश दैर्ध्येण नग्नजित्प्रोक्तम्। ग्रीवा दश विस्तीर्णा परिणाहाद्विंशतिः सैका ॥१५॥ कण्ठाद्द्वादश हृदयं हृदयान्नाभिश्च तत् प्रमाणेन। नाभीमध्यान्मेढ्रान्तरं च तत्तुल्यमेवोक्तम् ॥१६॥ ऊरू षांगुलमानैश्चतुर्युता विंशतिस्तथा जंघे। जानुकपिच्छे चतुरंगले च पादौ च तत्तुल्यौ ॥१७॥ द्वादश दीर्घौ षट् पृथुतया च पादौ त्रिकायतांगुष्ठौ। पञ्चाङ्गुलपरिणाहौ प्रदेशिनी त्र्यंगुलं दीर्घा ॥१८॥ अष्टांशाष्टांशोनाः शेषांगुलयः क्रमेण कर्तव्याः। सचतुर्थभागमंगुलमुत्सेधोऽङ्गुष्ठकस्योक्तः ॥१९॥ अंगुष्ठनखः कथितश्चतुर्थभागोनमंगुलं तज्ज्ञैः। शेषनखानामधांगुलं क्रमात् किञ्चिदूनं वा ॥२०॥ जंघाग्रे परिणाहश्चतुर्दशोक्तस्तु विस्तरः पञ्च। मध्ये तु सप्त विपुला परिणाहात्त्रिगुणिताः सप्त ॥२१॥ अष्टौ तु जानुमध्ये वैपुल्यं त्र्यष्टकं तु परिणाहः। विपुलौ चतुर्दशोरू मध्ये द्विगुणश्च तत्परिधिः ॥२२॥ कटिरष्टादश विपुला चत्वारिंशच्चतुर्युता परिधौ। अंगुलमेकं नाभिर्वेधेन तथा प्रमाणेन ॥२३॥ चत्वारिंशद् द्वियुता नाभीमध्येन मध्यपरिणाहः॥ स्तनयोः षोडश चान्तरमूर्ध्वं कक्षे षडंगुलिके

।।२४।। कार्यावष्टावंसौ द्वादश बाहू तथा प्रबाहू च । बाहू षड्विस्तीर्णा प्रतिबाहू त्वंगुलचतुष्कम् ।।२५।। षोडश बाहू मूले परिणाहाद्द्वादशाग्रहस्ते च । विस्तारेण करतलं षडंगुलं सप्त दैर्ध्येण ।।२६।। पञ्चांगुलानि मध्या प्रदेशिनी मध्यपर्वदलहीना । अनया तुल्या चानामिका कनिष्ठा तु पर्वोना ।।२७।। पर्वद्वयमंगुष्ठः शेषांगुलयस्त्रिभिस्त्रिभिः कार्याः । नखपरिमाणं कार्यं सर्वासां पर्वणोऽर्धेन ।।२८।। देशानुरूपभूषणवेषालङ्कारमूर्तिभिः कार्या । प्रतिमा लक्षणयुक्ता सन्निहिता वृद्धिदा भवति ।।२९।। दशरथतनयो रामो बलिश्च वैरोचनिः शतं विंशम् । द्वादशहान्या शेषाः प्रवरसमन्यूनपरिमाणाः ।।३०।। कार्योऽष्टभुजो भगवांश्चतुर्भुजो द्विभुज एव वा विष्णुः । श्रीवत्साङ्कितवक्षाः कौस्तुभमणिभूषितोरस्कः ।।३१।। अतसीकुसुमश्यामः पीताम्बरनिवसनः प्रसन्नमुखः । कुण्डलकिरीटधारी पीनगलोरःस्थलांसभुजः ।।३२।। खड्गगदाशरपाणिर्दक्षिणतः शांतिदश्चतुर्थकरः । वामकरेषु च कार्मुकखेटचक्राणि शंखश्च ।।३३।। अथ च चतुर्भुजमिच्छति शान्तिद एको गदाधरश्चान्यः । दक्षिणपार्श्वे ह्येवं वामे शंखश्च चक्रञ्च ।।३४।। द्विभुजस्य तु शान्तिकरो दक्षिणहस्तोऽपरश्च शंखधरः । एवं विष्णोः प्रतिमा कर्तव्या भूतिमिच्छद्भिः ।।३५।। बलदेवो हलपाणिर्मदविभ्रमलोचनश्च कर्तव्यः । बिभ्रत् कुण्डलमेकं शंखेन्दुमृणालगौरवपुः ।।३६।। एकानंशा कार्या देवी बलदेवकृष्णयोर्मध्ये । कटिसंस्थितवामकरा सरोजमितरेण चोद्वहती ।।३७।। कार्या चतुर्भुजा या वामकराभ्यां सपुस्तकं कमलम् । द्वाभ्यां दक्षिणपार्श्वे वरमर्थिष्वक्षसूत्रं च ।।३८।। वामेष्वष्टभुजायाः कमलण्डलुश्चापमम्बुजं शास्त्रम् । वरशरदर्पणयुक्ताः सव्यभुजाः साक्षसूत्राश्च ।।३९।। साम्बश्च गदाहस्तः प्रद्युम्नश्चापभृत् सुरूपश्च । अनयोः स्त्रियौ च कार्ये खेटकनिस्त्रिंशधारिण्यौ ।। ४० ।। ब्रह्मा कमण्डलुकरश्चतुर्मुखः पङ्कजासनस्थश्च । स्कन्दः कुमाररूपः शक्तिधरो बर्हिकेतुश्च ।।४१।। शुक्लश्चतुर्विषाणो द्विपो महेन्द्रस्य वज्रपाणित्वम् । तिर्यग्ललाटसंस्थं तृतीयमपि लोचनं चिह्नम् ।।४२।। शम्भोः शिरसीन्दुकला वृषध्वजोऽक्षि च तृतीयमप्यूर्ध्वम् । शूलं धनुः पिनाकं वामार्धे वा गिरिसुतार्धम् ।।४३।। पद्माङ्कितकरचरणः प्रसन्नमूर्तिः सुनीचकेशश्च । पद्मासनोपविष्टः पितेव जगतो भवेद्बुद्धः ।।४४।। आजानुलम्बबाहुः श्रीवत्साङ्कः प्रशान्तमूर्तिश्च । दिग्वासास्तरुणो रूपवांश्च कार्योऽर्हतां देवः ।।४५।। नासाललाटजंघोरुगण्डवक्षांसि चौन्नतानि रवेः । कुर्यादुदीच्यवेषं गूढं पादादुरो यावत् ।।४६।। बिभ्राणः स्वकररुहे पाणिभ्यां पङ्कजे मुकुटधारी । कुण्डलभूषितवदनः प्रलम्बहारो विहङ्गवृतः ।। ४७ ।। कमलोदरद्युतिमुखः कंचुकगुप्तः स्मितप्रसन्नमुखः । रत्नोज्ज्वलप्रभामण्डलश्च कर्तुः शुभकरोऽर्कः ।।४८।। सौम्या तु हस्तमात्रा वसुदा हस्तद्वयोच्छ्रिता प्रतिमा । क्षेमसुभिक्षाय भवेत् त्रिचतुर्हस्तप्रमाणा

या ॥४९॥ नृपभयमत्यङ्गायां हीनाङ्गायामकल्यता कर्तुः। शातोदर्यां क्षुद्भयमर्थविनाशः कृशाङ्गायाम् ॥५०॥ मरणं तु सक्षतायां शस्त्रनिपातेन निर्दिशेत्कर्तुः। वामावनता पत्नीं दक्षिणविनता हिनस्त्यायुः ॥५१॥ अन्धत्वमूर्ध्वदृष्ट्या करोति चिन्तामधोमुखी दृष्टिः। सर्वप्रतिमास्वेवं शुभाशुभं भास्करोक्तसमम् ॥५२॥ लिङ्गस्य वृत्तपरिधिं दैर्ध्येणासूत्र्य तत् त्रिधा विभजेत्। मूले तच्चतुरस्रं मध्ये त्वष्टास्रि वृतमतः ॥५३॥ चतुरस्रमवनिखाते मध्यं कार्यन्तु पिण्डिकाश्वभ्रे। दृश्योच्छ्रायेण समा समन्ततः पिण्डका श्वभ्रात् ॥५४॥ कृशदीर्घं देशघ्नं पार्श्वविहीनं पुरस्य नाशाय। यस्य क्षतं भवेन्मस्तके विनाशाय तल्लिङ्गम् ॥५५॥ मातृगणः कर्तव्यः स्वनामदेवानुरूपकृतचिह्नः। रेवन्तोऽश्वारूढो मृगयाक्रीडादिपरिवारः ॥५६॥ दण्डी यमो महिषगो हंसारूढश्च पाशभृद्वरुणः। नरवाहनः कुबेरो वामकिरीटी बृहत्कुक्षिः ॥५७॥ प्रमथाधिपो गजमुखः प्रलम्बजठरः कुठारधारी स्यात्। एकविषाणो बिभ्रन्मूलककन्दं सुनीलदलकन्दम् ॥५८॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० प्रतिमालक्षणं नामाष्टपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

जालीके बीचसे सूर्यका प्रकाश आता है, उसमें जो अत्यन्तसूक्ष्य रज देख पडता है; उसको परमाणु जाने, वही सब प्रमाणोंमें पहला है ॥१॥ आठ परमाणुका रज, आठ रजका बालाग्र, आठ बालाग्रकी लिक्षा, आठ लिक्षाकी यूका, आठ यूकाका यव और आठ यवका एक अंगुल होता है, इस प्रकार यह प्रमाण उत्तरोत्तर आठगुणा है. एक अंगुल संख्या होती है ॥२॥ देवमंदिरके द्वारकी ऊँचाईमें उसका अष्टमांश घटाकर जो बच रहे उसकी जो तिहाई हो वह पिण्डिका (मूर्तिकी पीठ) का प्रमाण है और पिण्डिका प्रमाणसे प्रतिमा (मूर्ति) का प्रमाण दूना होना चाहिये ॥ ३ ॥ जितनी ऊँचाई प्रतिमाकी आवे उसके बारह भाग कर एक २ भागके फिर नौ नौ भाग करे. वह एक अंगुल, होता है. क्योंकि सब प्रतिमा अपने २ अंगुल प्रमाणसे एक सौ आठ अंगुल होती है, प्रतिमाका मुख अपने अंगुल प्रमाणसे बारह अंगुल चौडा और चौदह अंगुल लम्बा हो ऐसा नग्नजित् नाम आचार्यने कहा है. यह मान द्रविडदेशका है ॥४॥ प्रतिमाके नासिका, ललाट, ठोडी, गरदन और कर्ण अपने अंगुल प्रमाणसे चार २ अंगुल लम्बे बनाने चाहिये। हनु दो २ अंगुल लम्बे बनावे, चिबुककी चौडाई दो अंगुल होती है ॥५॥ आठ अंगुल चौडा माथा होता है, माथेसे दोनों ओर परे दो दो अंगुल प्रमाण (कनपटी) बनावे कनपटीकी लम्बाई चार २ अंगुल रक्खे, कर्ण दो दो अंगुल चौडे बनावे ॥६॥ कर्णका उपान्त अर्थात् कर्णाग्र नेत्रांतसे लेकर भ्रू सम सूत्रसे, साढे चार अंगुलका करना चाहिये, कानका छेद और सुकुमारक अर्थात् कर्णस्रोतके समीपका उन्नत भाग नेत्र प्रबन्धके समान करना चाहिये ॥७॥ वशिष्ठमुनि कहते हैं कि नेत्र और कर्णान्तका अंतर चार अंगुल करना ठीक है. नीचेका ओष्ठ एक अंगुल और ऊपरका ओष्ठ आध अंगुल रखना चाहिये ॥८॥ गोच्छा आध अंगुल विस्तीर्ण करनी चाहिये, मुख चार अंगुल लम्बा और डेढ अंगुल चौडा रखना और व्यात्त मुख अर्थात् नृसिह आदि देवताओंका फैला हुआ मुख तीन अंगुल चौडा करे

॥९॥ नासिकाके दोनों पुट दो दो अंगुलके करे और पुटोंके अग्रसे नासिकाभी दो अंगुल जाने. नासिकाकी ऊँचाई दो अंगुल और दोनों नेत्रोंके बीच चार अंगुल अंतर रखना चाहिये ॥१०॥ नेत्रका कोश दो अंगुल, दोनों नेत्र दो २ अंगुल, नेत्रकी तिहाईके तुल्य तारा, ताराके पंचमांशके तुल्य दृक् बनावे और नेत्रकी चौडाई एक अंगुलकी करे ॥११॥ एक भौंके अन्तसे दूसरे भौंके अंततक दश अंगुल रखना चाहिये, आध अंगुल भ्रूकी चौडाई दोनों भ्रूका मध्यभाग दो अंगुल और एक भौंकी लम्बाई चार चार अंगुल करनी चाहिये ॥१२॥ माथेके ऊपर केशरेखा भ्रूबंधके तुल्य करे और आध अंगुल चौडी केशरेखा रक्खे, नेत्रके अंतमें एक अंगुलका करवीरक करे जिसको मूषिकाभी कहते हैं ॥१३॥ बत्तीस अंगुल लम्बा, चौदह अंगुल चौडा शिर बनाना चाहिये, जो चित्र बनाया जाय तो उसमें शिर बारह अंगुल दिखलाई पडता है और वीस अंगुल जो पिछली ओर रहते हैं वह दीख नहीं पडते ॥१४॥ नग्नजित् आचार्यने केश रेखासहित मुखका विस्तार सोलह अंगुल कहा है, ग्रीवाका विस्तार दश अंगुल और उसकी लम्बाई इक्कीस अंगुल कही है ॥१५॥ कंठके आधे भागसे हृदयतक बारह अंगुल अंतर रक्खे, हृदयसे नाभितक और नाभिके मध्यसे लिंगके मध्यतक बारह अंगुलही अंतर कहा है ॥१६॥ ऊरु और जंघा चौवीस २ अंगुल लम्बे करने चाहिये, गोडोंके ऊपरकी पाली चार अंगुल और पादभी चार अंगुल करे ॥१७॥ बारह अंगुल लम्बे और छः अंगुल चौडे पांव बनाने चाहिये, दोनों पांवोंके अंगूठे तीन अंगुल लम्बे बनावे और प्रदेशिनी (अंगुष्ठके समीपकी अंगुली) तीन अंगुल लम्बी रक्खे ॥१८॥ शेष तीन अंगुली प्रदेशिनीसे अष्टांश अष्टांश कम करके क्रमके अनुसार बनावे, अंगुष्टकी ऊँचाई सवा अंगुल कही है, इसी हिसाबसे और अंगुलियोंकी ऊँचाई जाने ॥१९॥ प्रतिमाका लक्षण जाननेवालोंने अंगूठेके नखकी लम्बाई पौन अंगुल कही है और शेष अंगुलियोंके नखोंकी लम्बाई आध २ अंगुल करे अथवा क्रमसे किंचित २ न्यून करता जाय जिसमें अंगुली और नख सुंदर दीखे ॥२०॥ जंघाके अग्रभागकी विशालता चौदह अंगुल और विस्तार पांच अंगुल कहा है, जंघाके मध्यभागका विस्तार सात अंगुल और विशालता इक्कीस अंगुल कही है ॥२१॥ जानुके मध्यका विस्तार आठ अंगुल और विशालता चौवीस अंगुल होती है. ऊरु मध्यभागमें चौदह अंगुल विस्तीर्ण होते हैं और अट्ठाईस अंगुल उनकी परिधि होती है ॥२२॥ कटिका विस्तार अठारह अंगुल और कटिकी परिधि चवालीस अंगुल होती है, नाभिका विस्तार और वेध (गहराई) एक २ अंगुल होती है ॥२३॥ नाभिको बीचमें लेकर मध्यभागका परिणाह बयालीस अंगुल होता है, दोनों स्तनोंका अंतर सोलह अंगुल और स्तनोंके ऊपर तिरछे छः छः अंगुलके कोख होते हैं ॥२४॥ कंधोंकी लम्बाई गरदनसे लेकर आठ अंगुल रखनी चाहिये और बारह २ अंगुल लम्बे बाहु और प्रबाहु करने ठीक हैं, बाहुका विस्तार छः अंगुल और प्रबाहुका चार अंगुल रखना चाहिये ॥२५॥ बाहुके मूलमें सोलह अंगुल अग्रहस्तमें अर्थात् प्रकोष्ठके समीप बारह अंगुल परिणाह रखना चाहिये और हथेलीकी चौडाई छः अंगुल और लम्बाई सात अंगुल रखनी चाहिये ॥२६॥ अंगूठेके समीपकी अंगुली प्रदेशिनी, उसके आगेकी मध्यमा, उसके आगे अनामिका और अनामिकाके आगेकी अंगुली कनिष्ठा कहाती है और एक २ अंगुलीमें तीन तीन पौरुवे होते हैं, मध्यमा पांच अंगुल लम्बी करे, मध्यमाके बिचले पौरुवेका आधा घटा देवे तो प्रदेशिनीकी लम्बाई होती है

और प्रदेशिनीके तुल्यही अनामिका होती है, अनामिकामें एक पौरुवा घटानेसे कनिष्ठाकी लम्बाई होती है ॥७॥ अंगूठेके दो पौरुवे और शेष चार अंगुलियोंके तीन २ पौरुवे करने चाहिये और सब अंगुलियोंके नखोंकी लम्बाई अपने २ पर्वके अर्धके तुल्य करे ॥२८॥ अपने २ देशके अनुसार प्रतिमाके भूषण, वेष, अलंकार (श्रृंगार) और शरीर बनावे, लक्षणयुक्त प्रतिमामें देवताका सानिध्य होता है, इसीसे वह बनानेवालेकी सब प्रकारसे वृद्धि करती है ॥२९॥ दशरथके पुत्र श्रीरामचंद्रकी और विरोचनके पुत्र बलिकी प्रतिमा एक सौ वीस अंगुल लम्वी बनावे और सब प्रतिमा एक सौ आठ अंगुल लंबी उत्तम, छियानवें अंगुल लम्बी मध्यम, चौरासी अंगुल लम्बी प्रतिमा निकृष्ट होती है, विष्णु भगवान्‌की प्रतिमा अष्टभुज, चतुर्भुज अथवा द्विभुज बनावे, श्रीवत्सनामक चिह्नसे और कौस्तुभमणिसे प्रतिमाके वक्षःस्थलको शोभायमान करे ॥३०॥३१॥ अतसीके पुष्पके समान प्रतिमाका रंग करे, पीत वस्त्र पहिरावे, प्रतिमा प्रसन्नमुख, कुंडल, किरीट पहने हों और प्रतिमाके दाहिने तीन हाथमें खड्ग गदा, बाण धारण करावे और चौथा हाथ, शांतिको देनेवाला अर्थात् अभयमुद्रासे युक्त बनावे, बांई ओरके चार हाथोंमें धनुष, ढाल चक्र और शंख धारण करावे ॥३२॥३३॥ चतुर्भुज मूर्ति बनाना चाहे तो दक्षिण तरफसे एक हाथमें शांति (वर) देनेके आकारका करे और दूसरेमें गदा धारण, करावे बायें तरफके नीचेमें शंख और दूसरेमें चक्र दे ॥३४॥ द्विभुज मूर्तिका दक्षिण हाथ शांतिकर करे और वाम हस्तमें शंख धारण करावे, ऐश्वर्यको चाहनेवाले पुरुष इस भांति विष्णु-प्रतिमा बनावें ॥३५॥ बलदेवजी की प्रतिमा के हाथमें हल धारण करावे और मद करके घूर्णित नेत्र प्रतिमाके बनावे, कानमें कुंडल धारण करावे, प्रतिमाका वर्ण शंख, चंद्रमा अथवा मृणाल (कमलकी जड) तुल्य श्वेत करे ॥३६॥ बलदेव और श्रीकृष्णकी प्रतिमा-के बीच एक नंदा देवीकी प्रतिमा बनावे, जिसमें अपना बांया हाथ कटिपर रक्खा हो और दाहिने हाथमें कमल धारण कर रक्खा हो ॥३७॥ चतुर्भुज मूर्ति एकानंशाकी बनावे तो दोनों वामहस्तोंमें पुस्तक और कमल, दोनों दाहिने हाथोंमें अर्थियोंको वर और माला धारण करावे ॥३८॥ एकानंशाकी अष्टभुज मूर्तिके बांये चार हाथोंमें कमंडलु, धनुष, कमल और पुस्तक, दाहिने चार हाथोंमें वरमुद्रा, बाण, दर्पण और अक्षसूत्र धारण करावे, ॥३९॥ साम्बकी प्रतिमाको गदा और प्रद्युम्नकी प्रतिमाको धनुष और बाण धारण करावे, यह दोनों प्रतिमा द्विभुज और सुंदर रूपसे युक्त बनावे. साम्ब और प्रद्युम्नकी स्त्रियोंकी प्रतिमा खड्ग (ढाल) धारण किये बनावे ॥४०॥ ब्रह्माकी मूर्तिके एक हाथमें कमंडलु धारण करावे. चार मुख बनावे और कमलरूप आसन पर बैठी प्रतिमा बनावे. कार्तिकेयकी प्रतिमा बालकरूप शक्ति (बर्छी) हाथमें लिये और मयूरयुक्त ध्वजा धारण किये बनावे, ॥४१॥ इन्द्रके हाथी ऐरावतकी प्रतिमा शुक्लवर्ण और चार दन्तों करके युक्त बनावे इन्द्रकी प्रतिमाके हाथमें वज्र धारण करावे और ललाटके बीच स्थित तिरछा तीसरा नेत्र बनावे वह उस प्रतिमाका चिह्न है ॥४२॥ शिवजीकी प्रतिमाके मस्तक पर चंद्रकला धारण करावे, ध्वजमें वृषका चिह्न करे, ललाटमें खडा तीसरा नेत्र बनावे, एक हाथमें त्रिशूल और दूसरे हाथमें पिनाक नामक धनुष धारण करावे अथवा, शिवजीकी प्रतिमाके वाम अर्धभागमें पार्वतीका वाम अर्धभाग बनावे ॥४३॥ बुद्धभगवानकी प्रतिमाके हाथ, पैर कमलरेखाओंसे चिह्नित करे, प्रतिमा प्रसन्न हो, केश नीचे तक झुके हों, और ऐसी बुद्ध-

प्रतिमा होय मानो पद्मासनके ऊपर बैठे जगत्के साक्षात् पिता हैं ।।४४।। जानुतक लम्बे भुजाओं करके युक्त, श्रीवत्सचिह्नसे शोभित, शांतस्वरूप, दिगम्बर, तरुण और उत्तम रूप करके युक्त अर्हंतदेव (जिन) की प्रतिमा बनावे ।।४५।। सूर्यकी प्रतिमाके नासिका, ललाट जंघा, ऊरु, कपोल और उरःस्थल ऊंचे बनावे. उत्तर दिशाके रहनेवाले मनुष्योंका वेष सूर्यकी प्रतिमाका बनावे, पैरोंसे लेकर छाती तक प्रतिमा चोलकसे गुप्त रहे ।।४६।। दोनों भुजाओंमें नखों सहित दो कमल धारण करावे, मुकुट पहिरावे, मुखको कुंडलोंसे संयुक्त करे, लम्बा हार गलेमें पहिरावे और विहंग अर्थात् सारसनको कटिमें वेष्टित करे ।। ४७ ।। कमलके उदरकी कांतिके तुल्य मुखकी कांति बनावे. कंचुक करके प्रतिमा गुप्त रहे, मंदहाससे प्रतिमाका मुख प्रसन्न दीखता हो, रत्नोंसे देदीप्यमान है कांतिसमूह जिसकी ऐसी सूर्यकी प्रतिमा बनानेवालोंको शुभ करती है ।।४८।। एक हाथ ऊँची सूर्यकी प्रतिमा शुभ होती है, दो हाथ ऊँची धन देती है, तीन हाथ ऊँची क्षेम और चार हाथ ऊँची सुभिक्ष करती है ।।४९।। अधिक अंगवाली प्रतिमा राजासे भय करती है, हीनांगप्रतिमा बनानेवालेको रोगी रखती है, कृश उदरवाली क्षुधासे भय करती है, कृश अंगवालीके बनानेसे धनका नाश होता है ।।५०।। क्षतयुक्त प्रतिमा बनानेवालेकी शस्त्रसे मृत्यु कहनी चाहिये. बांई ओर झुकी हुई प्रतिमा बनानेवालेकी पत्नीका और दाहिनी ओर झुकी प्रतिमा आयुष्यका नाश करती है ।।५१।। प्रतिमाकी दृष्टि ऊपरको हो तो बनानेवाला अंधा हो जाय और सूर्यकी प्रतिमाकी दृष्टि नीचेको हो तो बनानेवालेको चिन्ता हो यह सूर्यकी प्रतिमाका शुभ अशुभ फल कहा, इसीके तुल्य फल और प्रतिमाओंकाभी माने ।।५२।। लिंगकी वृत्तरूप परिधिको लम्बाईमें सूत्रसे नाप कर उस सूत्रके तीन भाग करे और उन भागोंके तुल्य लिंगकेभी तीन भाग कर लेवे, पीछे लिंगके बीचले तृतीयांशको अष्टास्र और ऊपरके तृतीयांशको गोल बनावे ।।५३।। लिंगके चतुरस्र भागको भूमिमें गाडे, मध्यके अष्टास्रभागको पिंडिका (जलहरी) के गढेमें रक्खे, शेष वर्तुल तीसरा भाग ऊपर रक्खे, लिंगके दीखते हुए उस वर्तुल भागकी ऊँचाईके तुल्य गढेसे चारों ओर पिंडिका बनावे ।।५४।। पतला और लम्बा शिवलिंग देशका नाश करता है, दोनों ओरसे हीन नगरका नाश करे, जिस लिंगके मस्तकपर क्षत हो वह लिंग स्वामीका नाश करता है ।।५५।। अपने नाम देवताके तुल्य किये हैं चिह्न जिनके ऐसे मातृगण करने चाहिये, जैसे ब्राह्मीका रूप ब्रह्माके तुल्य, इन्द्राणीका इन्द्रके तुल्य इत्यादि औरभी जानो परंतु इनके स्तन आदि अंगभी बनाने जिससे स्त्रीरूपभी शोभित हो, रेवंत (सूर्यका एक पुत्र) की प्रतिमा घोडेपर चढी बनावे और मृगया (आखेट) खेलता है परिकर जिसका ऐसा बनावे ।।५६।। यमकी प्रतिमाके हाथमें दंड धारण करावे और महिषपर चढी प्रतिमा बनावे, हंसपर चढी और पाश धारण किये वरुणकी प्रतिमा बनावे, मनुष्यपर सवार हुई वामभागमें मुकुट धारण किये और बडे उदरवाली कुबेरकी प्रतिमा बनावे ।।५७।। गणपतिकी प्रतिमाको हाथीका मुख और लम्बा पेट बनावे, हाथमें फरशा धारण करावे, एक दन्त प्रतिमा बनावे, मूलककंद और नीलदलकंद धारण किये गणपतिकी प्रतिमा बनावे ।।५८।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ।।५८।।

अथैकोनषष्टितमोऽध्यायः

वनप्रवशः

कर्तुरनुकूलदिवसे दैवज्ञविशोधिते शुभनिमित्ते । मङ्गलशकुनैःप्रास्थानिकैश्च वनसम्प्रवेशः स्यात् ॥१॥ पितृवनमार्गसुरालयवल्मीकोद्यानतापसाश्रमजाः । चैत्यसरित्सङ्गमसम्भवाश्च घटतोयसिक्ताश्च ॥२॥ कुब्जानुजातवल्लीनिपीडिता वज्रमारुतोपहताः । स्वपतितहस्तिनिपीडितशुष्काग्निप्लुष्टमधुनिलयाः ॥३॥ तरवो वर्जयितव्याः शुभदाः स्युः स्निग्धपत्रकुसुमफलाः । अभिमतवृक्षं गत्वा कुर्यात् पूजां सबलिपुष्पाम् ॥४॥ सुरदारुचन्दनशमीमधूकतरवः शुभा द्विजातीनाम् । क्षत्रस्याऽरिष्टाश्वत्थखदिरबिल्वा विवृद्धिकराः ॥५॥ वैश्यानां जीवकखदिरसिन्धुकस्यन्दनाश्च शुभफलदाः । तिन्दुककेसरसर्जार्जुनाम्रशालाश्च शूद्राणाम् ॥६॥ लिङ्गं वा प्रतिमा वा द्रुमवत् स्थाप्या यथादिशं यस्मात् । तस्माच्चिह्नयितव्या दिशो द्रुमस्योऽर्ध्वमथवाऽधः ॥७॥ परमान्नमोदकौदनदधिपललोल्लोपिकाभिर्भक्ष्यैः । मद्यैः कुसुमैर्धूपैर्गन्धैश्च तरुं समभ्यर्च्य ॥८॥ सुरपितृपिशाचराक्षसभुजगासुरगणविनायकाद्यानाम् । कृत्वा रात्रौ पूजां वृक्षं संस्पृश्य च ब्रूयात् ॥९॥ अर्चार्थममुकस्य त्वं देवस्य परिकल्पितः । नमस्ते वृक्ष पूजेयं विधिवत्संप्रगृह्यताम् ॥१०॥ यानीह भूतानि वसन्ति तानि बलिं गृहीत्वा विधिवत्प्रयुक्तम् । अन्यत्र वासं परिकल्पयन्तु क्षमन्तु तान्यद्य नमोऽस्तु तेभ्यः ॥११॥ वृक्षं प्रभाते सलिलेन सिक्त्वा पूर्वोत्तरस्यां दिशि सन्निकृत्य । मध्वाज्यलिप्तेन कुठारकेण प्रदक्षिणं शेषमतोऽभिहन्यात् ॥१२॥ पूर्वेण पूर्वोत्तरतोऽथवोदक् पतेद्यदा वृद्धिकरस्तथा स्यात् । आग्नेयकोणात् क्रमशोऽग्निदाहः क्षुद्रोगरोगास्तुरगक्षयश्च ॥१३॥ यन्नोक्तमस्मिन्वनसंप्रवेशे निपातविच्छेदनवृक्षगर्भाः । इन्द्रध्वजे वास्तुनि च प्रदिष्टाः पूर्वं मया तेऽत्र तथैव योज्याः ॥१४॥

इति वराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां वनसंप्रवेशो नामैकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥५९॥

प्रतिमा बनानेवालेको अनुकूल दिन हो, नक्षत्र अच्छा हो, उस दिन ज्योतिषीके बताये शुभ मुहुर्तमें यात्राके समय कहे हुए मंगल और शकुन देखकर प्रतिमा बनानेवाला काठके लिये वनमें प्रवेश करे ॥१॥ श्मशानके मार्ग, देवालय, बापी, बाग, तपस्वियोंके आश्रम, चैत्य और नदियोंके सङ्गमस्थानमें उत्पन्न हुए वृक्ष, घडोंके जलसे सिंचे हुए वृक्ष, कुबडे वृक्ष एक वृक्षके सहारेसे उपजे हुए वृक्ष. बेलोंसे पीडित वृक्ष, बिजलीके मारे वृक्ष, पवन करके तोडे हुए वृक्ष, हाथियोंसे तोडे हुए, सूखे, अग्निसे जले हुए वृक्ष और मधुनिलय अर्थात् जिनमें शहतका छत्ता लगा हो ॥२॥३॥ ऐसे वृक्ष त्यागने चाहिये, इनके काठसे प्रतिमा बनानेमें अशुभ होता है, जिन वृक्षोंके पत्ते, फूल, फल स्निग्ध हों वे वृक्ष शुभ होते हैं, वनमें इस भांति शुभ वृक्ष देखकर उसके समीप जाय बलि और पुष्पों करके उस वृक्षकी पूजा करे ॥४॥ देवदारु चंदन, शमी और महुआ, यह वृक्ष ब्राह्मणोंकें लिये

शुभ हैं अर्थात् ब्राह्मण इनके काठकी देवप्रतिमा बनावे । नींब, पीपल, खैर ओर बेल यह क्षत्रियोंकी वृद्धि करनेवाले वृक्ष हैं ।।५।। जीवक, खैर, सिंधुक और स्यन्दन यह वृक्ष वैश्योंको शुभ फल देतें हैं, तेंदू, नागकेशर, सर्ज, अर्जुन और साल यह शूद्रोंके लिये शुभ-दायक हैं ।।६।। लिंग अथवा प्रतिमाको वृक्षकी दिशाओंके अनुसार स्थापित करें, इसी भांति वृक्षके ऊपरके भागमें प्रतिमाके पद बनाने चाहिये, इस कारण काटनेसे पहले वृक्षमें चारों दिशाओंके ऊर्ध्वभाग अथवा अधोभागके चिह्न कर देने उचित हैं ।।७।। खीर, लड्डू, भात, उल्लोपिका (एक प्रकारका भोजनपदार्थ) आदि भक्ष्य, मद्य, पुष्प, धूप और गंधसे वृक्षकी पूजा करे ।।८।। देवता, पितर, पिशाच, राक्षस, नाग, असुरगण और विनायका-दिकी रात्रिके समय पूजा करके वृक्षको स्पर्श करके यह मंत्र पढे ।।९।। हे वृक्ष ! तुम अमुक देवताकी पूजाके लिये कल्पित हुए तुमको नमस्कार है, इस पूजाको विधिविधानसे ग्रहण करो. इस वृक्षपर जो प्राणी वास करते हैं, वे विधियुक्त पूजाको ग्रहण करके और कहीं वास कल्पित करें आज वह क्षमा करें तिनको नमस्कार करता हूं. 'अमुकस्य' के स्थानमें षष्ठयंत देवताका नाम लगा ले ।।१०।।११।। प्रभातके समय वृक्षको जलसे सींच कुठारको शहत और घीसे चुपडे और फिर उस कुठारसे ईशानकोणमें पहले वृक्षको काटे पीछे प्रदक्षिण क्रमसे शेष वृक्षको काट ले ।।१२।। काटा हुआ वृक्ष जो पूर्व ईशानकोण अथवा उत्तरदिशामें गिरे तो वृद्धि करनेवाला होता है; अग्निकोण आदि पांच दिशाओंमें गिरे तो क्रमसे अग्निदाह, रोग और घोडोंका नाश यह फल होते हैं ।।१३।। इस वन-प्रवेशाध्यायमें जो हमने नहीं कहा अर्थात् वृक्षके निपात, विच्छेदन. वृक्षगर्भ आदिके शभ अशुभ फल नहीं कहे, वह सब पहले इन्द्रध्वजाध्याय और वास्तुविद्याध्यायमें हम कह आये हैं, उसी भांति यहांभी उनको समझना चाहिये अर्थात् वैसाही शुभ अशुभ फल यहां भी जाने ।।१४।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्सहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायामेकोनषष्टितमोऽध्यायः ।।५९।।

अथ षष्टितमोऽध्यायः

प्रतिमाप्रतिष्ठापनम्

दिशि सौम्यायां कुर्यादधिवासनमण्डपं बुधः प्राग्वा । तोरणचतुष्टययुतं शस्तद्रुमपल्लवच्छन्नम् ।।१।। पूर्वे भागे चित्राः स्रजः पताकाश्च मण्डपस्योक्ताः । आग्नेय्यां दिशि रक्ताः कृष्णाः स्युर्याम्यनैर्ऋतयोः ।।२।। श्वेता दिश्यपरस्यां वायव्यायां तु पाण्डुरा एव । चित्राश्चोत्तरपार्श्वे पीताः पूर्वोत्तरे कार्याः ।।३।। आयुःश्रीबलजयदा दारुमयी मृण्मयी तथा प्रतिमा । लोकहिताय मणिमयी सौवर्णी पुष्टिदा भवति ।।४।। रजतमयी कीर्तिकरी प्रजाविवृद्धिं करोति ताम्रमयी । भूलाभं तु महान्तं शैली प्रतिमाऽथवा लिङ्गम् ।।५।। शंकूपहता प्रतिमा प्रधानपुरुषं कुलं च घातयति । श्वभ्रोपहता रोगानुपद्रवांश्चाक्षयान् कुरुते ।।६।। मण्डपमध्ये स्थ

ण्डिलमुपलिप्यास्तीर्यं सिकतयाऽथ कुशैः । भद्रासनकृतशीर्षोपधानपादां न्यसेत्प्रतिमाम् ॥ ७ ॥ प्लक्षाश्वत्थोदुम्बरशिरीषवटसम्भवैः कषायजलैः । मङ्गलसंज्ञिताभिः सर्वौषधिभिः ॥८॥ द्विपवृषभोद्धतपर्वतवल्मीकसरित्समागमतटेषु । पद्मसरस्सु च मृद्भिः सपञ्चगव्यैश्च तीर्थजलैः ॥९॥ पूर्वशिरस्कां स्नातां सुवर्णरत्नाम्बुभिश्च ससुगन्धैः । नानातूर्यनिनादैः पुण्याहैर्वेदनिर्घोषैः ॥१०॥ ऐन्द्र्यां दिशीन्द्रलिङ्गा मन्त्राः प्राग्दक्षिणेऽग्निलिङ्गाश्च । जप्तव्या द्विजमुख्यैः पूज्यास्ते दक्षणाभिश्च ॥ ११ ॥ यो देवः संस्थाप्यस्तन्मन्त्रैश्चानलं द्विजो जुहुयात् । अग्निनिमत्तानि मया प्रोक्तानीन्द्रध्वजोच्छ्राये ॥ १२ ॥ धूमाकुलोऽपसव्यो मुहुर्मुहुर्विस्फुलिङ्गकृन्न शुभः । होतुः स्मृतिलोपो वा प्रसर्पणं वाशुभं प्रोक्तम् ॥१३॥ स्नातामभुक्तवस्त्रां स्वलंकृतां पूजितां कुसुमगन्धैः । प्रतिमां स्वास्तीर्णायां शय्यायां स्थापकः कुर्यात् ॥१४॥ सुप्तां सुनृत्यगीतैर्जागरणैः सम्यगेवमधिवास्य । दैवज्ञसम्प्रदिष्टे काले संस्थापनं कुर्यात् ॥१५॥ अभ्यर्च्य कुसुमवस्त्रानुलेपनैः शंखतूर्यनिर्घोषैः । प्रादक्षिण्येन नयेदायतनस्य प्रयत्नेन ॥१६॥ कृत्वा बलिं प्रभूतं सम्पूज्य ब्राह्मणांश्च सभ्यांश्च । दत्त्वा हिरण्यशकलं विनिक्षिपेत्पिण्डिकाश्वभ्रे ॥ १७ ॥ स्थापकदैवज्ञद्विजसभ्यस्थपतीन् विशेषतोऽभ्यर्च्य । कल्याणानां भार्गा भवतीह परत्र च स्वर्गी ॥१८॥ विष्णोर्भागवतान् मगांश्च सवितुः शम्भोः सभस्मद्विजान्, मातॄणामपि मण्डलक्रमविदो विप्रान्विदुर्ब्रह्मणः । शाक्यान् सर्वहितस्य शान्तमनसो नग्नान् जिनानां विदुर्ये यं देवमुपाश्रिताः स्वविधिना तैस्तस्य कार्या क्रिया ॥१९॥ उदगयने सितपक्षे शिशिरगभस्तौ च जीववर्गस्थे । लग्ने स्थिरे स्थिरांशे सौम्यैर्धीधर्मकेन्द्रगतैः ॥२०॥ पापैरुपचयसंस्थैर्ध्रुवमृदुहरितिष्यवायुदेवेषु । विकुजे दिनेऽनुकूले देवानां स्थापनं शस्तम् ॥२१॥ सामान्यमिदं समासतो लोकांना हितदं मया कृतम् । अधिवासनसंनिवेशने सावित्रे पृथगेव विस्तरात् ॥२२॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० प्रतिष्ठापनं नाम षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥

प्रतिष्ठा करनेवाला विद्वान् पूर्वदिशामें अधिवासन नामक प्रतिमाका संस्कार करनेको मंडप बनावे, वह चारों दिशाओंमें चार तोरणोंसे युक्त हो और वृक्षोंके कोमल पत्रोंसे ढका हो ॥१॥ उस मंडपकी पूर्वदिशामें पुष्पमाला और पताका चित्रवर्णकी लगावे, अग्निकोणमें लाल रंगकी, दक्षिण और नैर्ऋतकोणमें कृष्णवर्ण ॥ २ ॥ पश्चिममें श्वेत, वायव्यकोणमें पांडुर, उत्तरमें चित्रवर्ण और मंडपके ईशानकोणमें शोभाके लिये पीले रंगकी पुष्पमाला और पताका लगानी उचित है ॥३॥ काटकी और मिट्टीकी देवप्रतिमा आयुष, लक्ष्मी, बल और जय देती है. मणिकी बनाई देवप्रतिमा लोगोंका हित करती है, सुवर्णकी प्रतिमा शरीरपुष्टि देती है ॥४॥ चांदीकी कीर्ति करती है, तांबेकी संतानकी वृद्धि करती है. शिला लर्थात् पाषाणकी बनी प्रतिमा अथवा शिवलिंग बहुत भूमिका लाभ करते हैं ॥५॥ वह प्रतिमा जिसके किसी अंगमें कील जैसा खडा रह जाय वह प्रतिमा मुख्य

पुरुषका और वंशका नाश करती है और जिस प्रतिमामें गढा हो वह असाध्य रोग और अनेक प्रकारके उपद्रव करती है ॥६॥ अधिवासन मंडपके बीचमें स्थंडिल बनाय उसको गोबर आदिसे लीपे, उसके ऊपर बालु रेत और बालु रेतके ऊपर कुश बिछाय प्रतिमाको-उसके ऊपर सुला दे. प्रतिमाका शिर भद्रासन (राजाका सिंहासन) के ऊपर रक्खे और प्रतिमाके पांव उपधान तकियाके ऊपर रक्खे ॥७॥ पाकर, पीपर, गूलर, सिरस और बड इन वृक्षोंके पत्तोंका कषायजल कुशाको आदि लेकर मंगल नामवाली जया, पुनर्नवा, विष्णु-क्रांता आदि औषधी ॥८॥ हाथी और वृषकी उदवाडी मृत्तिका, कमलयुक्त सरोवरोंकी मृत्तिका, पंचगव्य सहित तीर्थोंके जल ॥९॥ सुवर्ण और रत्नयुक्त जल इन सबसे प्रतिमा-को स्नान करावे, उसका शिर पूर्वकी ओर करके स्थापन करे उस समय भांति २ के तुरही आदि बाजे बजें, पुण्याहवाचन और वेदध्वनि ब्राह्मण करें ॥१०॥ उत्तम ब्राह्मण पूर्वदिशामें इन्द्रके मंत्र और अग्निकोणमें अग्निके मंत्र जपें, यजमान उन ब्राह्मणोंकी दक्षिणासे पूजा करे ॥११॥ जिस देवताकी प्रतिष्ठा करनी हो उसके मंत्रोंसे ब्राह्मण अग्निमें हवन करे, अग्निके शुभ अशुभ लक्षण हमने इन्द्रध्वजाध्यायमें कहे हैं ॥१२॥ जो हवनके समय अग्नि धूमसे आकुल हो, उसकी ज्वाला बाईं ओर घूमती हो, वारंवार शब्द करे और उसमें चिनगारी उडे तो वह शुभ नहीं होता, हवन करनेवालेकी स्मृतिलुप्त हो जाय (मंत्र आदिका स्मरण न रहे) अथवा उसका प्रसर्पण हो अर्थात् जहां हवन करने पहले बैठा है वहांसे सरक जाय तो भी अशुभ है ॥१३॥ प्रतिमाको स्नान कराये नये वस्त्र धारण करायें, भूषण आदिसे अलंकृत कर, पुष्प और गन्धसे उसका पूजन कर उत्तम भांतिसे बिछी हुई शय्याके ऊपर उस प्रतिमाको प्रतिष्ठा करनेवाला पुरुष स्थापन करे ॥१४॥ सोई हुई उस प्रतिमाका नृत्यगीतसहित जागरणों करके इस प्रकार भलीभांति अधिवासन कर ज्योतिषीके बतलाये हुए मुहुर्तमें उसका स्थापन करे ॥१५॥ उस प्रतिमाको पुष्प, वस्त्र और चंदनादि अनुलेपनोंसे पूजित कर अधिवासन मंडपसे उठाय प्रासादसे प्रदक्षिण-हो यत्नपूर्वक गर्भगृहमें ले जावे उस समय शंख तूर्य आदि बाजे बजाये जावें ॥१६॥ वहां जाय बहुतसा बलि देकर ब्राह्मण और सभ्य अर्थात् उस सभामें स्थित मनुष्योंका वस्त्र दक्षिणा आदिसे पूजन करे पिंडीका (पीठ) के गढेमें सोनेका टुकडा डाल उसके ऊपर प्रतिमाका स्थापन करे ॥१७॥ स्थापक (प्रतिष्ठा करनेवाला), ज्योतिषी, ब्राह्मण, सभ्य (कारीगर) इन सबका विशेष पूजन करे, इस भांति देवप्रतिष्ठा करनेवाला पुरुष इस लोकमें कल्याणोंका भागी होता है और परलोकमें स्वर्गवास पाता है ॥१८॥ विष्णु-की प्रतिष्ठा भागवत (वैष्णव) करें, सूर्यकी प्रतिष्ठा मग (शाकद्वीपके रहनेवाले ब्राह्मण) करे, शिवकी प्रतिष्ठा भस्म धारण करनेवाले ब्राह्मण करे, ब्राह्मी आदि मातृकाओंकी प्रतिष्ठामंडल क्रम अर्थात् उनके पूजनका विधान जाननेवाले ब्राह्मण करें, ब्रह्माकी प्रतिष्ठा वैदिक ब्राह्मण करें, सर्वहित्की अर्थात् बुद्धकी प्रतिष्ठा शांत चित्तवाले शाक्य (रक्तपट) करें, जिनकी प्रतिष्ठा नग्न (दिगम्बरक्षपणक) करें, जो मनुष्य जिस देवताके उत्तम भक्त होवें उस देवताकी प्रतिष्ठा आदि सब क्रिया स्वकल्पोक्त विधानसे करें ॥ १९ ॥ उत्तरायण हो, शुक्ल पक्ष हो, चन्द्रमा बृहस्पतिके षडवर्गमें स्थित हो, स्थिर लग्न और स्थिर नवांश हो, सौम्य ग्रह, पंचम, नवम, लग्न, चतुर्थ सप्तम और दशम स्थानमें हों ॥ २० ॥ पापग्रह तृतीय, षष्ठ दशम और एकादश स्थानमें हों, दोनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा, श्रवण,

पुष्य और स्वातीनक्षत्र हों, मंगलके सिवाय और वार हो, प्रतिष्ठा करनेवाला अनुकूल दिन हो तो समयमें देवताका स्थापन शुभ है ॥२१॥ सर्व देव साधारण प्रतिमाप्रतिष्ठाविधान लोगोंको कल्याण देनेवाला जो हमने संक्षेपसे कहा है, सूर्यप्रतिमाका अधिवासन और प्रतिष्ठापनविधान विस्तारपूर्वक अलगही है अथवा सावित्र (सौरशास्त्र) में सब देवताओंका अधिवासन और प्रतिष्ठापन अलग २ विस्तारसे कहा है ॥ २२ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥

अथैकषष्टितमोऽध्यायः

गोलक्षणम्

पराशरः प्राह बृहद्रथाय गोलक्षणं यत्क्रियते ततोऽयम् । मया समासः शुभलक्षणास्ताः सर्वास्तथाप्यागमतोऽभिधास्ये ॥१॥ सास्राविलरूक्षाक्ष्यो मूषकनयनाश्च न शुभदा गावः । प्रचलच्चिपिटविषाणाः करटाः खरसदृशवर्णाः ॥२॥ दशसप्तचतुर्दन्त्यः प्रलम्बमुण्डाना विनतपृष्ठाः । ह्रस्वस्थूलग्रीवा यवमध्या दारितखुराश्च ॥३॥ श्यावातिदीर्घजिह्वा गुल्फैरतितनुभिरतिबृहद्भिर्वा । अतिककुदा कृशदेहा नेष्टा हीनाधिकांग्यश्च ॥४॥ वृषभोऽप्येवं स्थूलातिलम्बवृषणः शिराततक्रोडः । स्थूलशिराचितगण्डस्त्रिस्थानं मेहते यश्च ॥५॥ मार्जाराक्षः कपिलः करटो वा न शुभदो द्विजस्यैव । कृष्णोष्ठतालुजिह्वः श्वशनो यूथस्य घातकरः ॥६॥ स्थूलशकृन्मणिशृङ्गः सितोदरः कृष्णसारवर्णश्च । गृहजातोऽपि त्याज्यो यूथविनाशावहोवृषभः ॥७॥ श्यामकपुष्पचिताङ्गो भस्माऽरुणसन्निभो बिडालाक्षः । विप्राणामपि न शुभं करोति वृषभः परिगृहीतः ॥८॥ ये चोद्धरन्ति पादान् पङ्कादिवयोजिताः कृशग्रीवाः । काचरनयना हीनाश्च पृष्ठतस्ते न भारसहाः ॥९॥ मृदुसंहतताम्रोष्ठास्तनूस्फिजस्ताम्रतालुजिह्वाश्च । तनुह्रस्वोच्चश्रवणाः सुकुक्षयः स्पष्टजंघाश्च ॥१०॥ आताम्रसंहतखुरा व्यूढोरस्का बृहत्ककुदयुक्ताः । स्निग्धश्लक्ष्णतनुत्वग्रोमाणस्ताम्रतनुशृङ्गाः ॥११॥ तनुभूस्पृग्वालधयो रक्तान्तविलोचना महोच्छ्वासाः । सिंहस्कन्धास्तन्वल्पकम्बलाः पूजिताः सुगताः ॥१२॥ वामावर्तैर्वामे दक्षिणपार्श्वे च दक्षिणावर्तैः । शुभदा भवन्त्यनडुहो जंघाभिश्चैणकनिभाभिः ॥१३॥ वैदूर्यमल्लिकाबुद्बुदेक्षणाः स्थूलनेत्रवर्माण. । पार्ष्णिभिरस्फुटिताभिः शस्ताः सर्वेऽपि भारवहाः ॥१४॥ घ्राणोद्देशे सबलिमर्जारमुखः सितश्च दक्षिणतः । कमलोत्पललाक्षाभः सुवालाधिर्वाजितुल्यजवः ॥१५॥ लम्बैर्वृषणैर्मेषोदरश्च संक्षिप्तवंक्षणाक्रोडः । ज्ञेयो भाराध्वसहो जवेऽश्वतुल्यश्च शस्तफलः ॥१५॥ सितवर्णः पिङ्गाक्षस्ताम्रविषाणेक्षणो महावक्त्रः । हंसो नाम शुभफलो यूथस्य विवर्द्धनः प्रोक्तः ॥१७॥

भूस्पृग्वालधिराताम्रविषाणो रक्तदृक् ककुद्मी च । कल्माषश्च स्वामिनमचिरात् कुरुते पतिं लक्ष्म्याः ॥१८॥ यो वा सितैकचरणो यथेष्टवर्णश्च सोऽपिशस्तफलः । मिश्रफलोऽपि ग्राह्यो यदि नैकान्तप्रशस्तोऽस्ति ॥१९॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां गोलक्षणं नामैकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

पराशरमुनिने अपने शिष्य वृहद्रथको जो गोलक्षण कहा है, उस ग्रंथसे लेकर हम संक्षेप करते हैं. सबही गौ शुभलक्षण होती हैं तो भी शास्त्रसे उनके शुभ अशुभ लक्षण कहते हैं ॥ १ ॥ जिन गौओंकी आंखें आंसुओंसे भरी हो, गदली हों और रूखी हों वह गौ शुभ नहीं होती, मूषकके समान नेत्रवाली भी शुभ नहीं, जिनके सींग हिलते हों और चपटे हों वह गौ शुभ नहीं. काला और लाल मिला हुआ जिनका रंग हो और गधेके तुल्य जिनका रंग हो, वह गौभी शुभ नहीं होती है ॥२॥ जिनके मुखमें दस, सात या चार दांत हों, जिनका मुख लम्बा और मुंड अर्थात् बिना सींगका हो जिनकी पीठ झुकी हुई हो, जिनकी गरदन छोटी और मोटी हो, जिनका मध्यभाग जौके तुल्य हो अर्थात् बीचसे बहुत मोटा हो, जिनके खुर बहुत फट रहे हों, नाभि श्यामरंगकी और बहुत लम्बी हो, जिनके ढँकने बहुत छोटे अथवा बहुत बड़े हों, जिनका थूही हुत ऊँचा हो, जिनका देह सदा दुबला रहे और जिनका कोई अंग हीन अथवा अधिक हो तो गौ शुभ नहीं होती है ॥३॥४॥ पहले कहे हुए लक्षणोंसे युक्त वृष हो तो ऐसा वहभी शुभ नहीं होता और स्थूल बहुत लम्बे हैं अंड-कोश जिसके, शिराओं करके व्याप्त है क्रोड जिसका, स्थूल शिराओं करके व्याप्त हैं कपोल तीन स्थानोंसे जो मेहन करे अर्थात् जिसके दोनों नेत्रोंसे आंसू टपके और शिश्नसे मूत्र गिरे ॥ ५ ॥ बिडालकेसे जिसके नेत्र हों, जिसका कपिल अथवा करट नीलरक्त रंग हो ऐसा वृष ब्राह्मणको भी शुभ नहीं होता फिर और वर्णोंकी तो बातही क्या है, जिसके ओष्ठ, तालु, जिह्वा काले रंगके हों और जो वृष श्वसन अर्थात डरनेवाला हो वह अपने यूथका नाश करता है ॥ ६ ॥ जिसका गोबर, मणि (लिंगका अग्रभाग) और शृंग स्थूल हों, श्वेतवर्णका पेट हो और शरीरका रंग कृष्ण और श्वेत मिलकर हो ऐसा वृष घरमें उत्पन्न हुआ हो तोभी उसका त्यागही करना चाहिये, बल्कि वहभी यूथका नाश करनेवाला होता है ॥ ७ ॥ जिसके शरीरमें काले फूल पड रहे हों और बिल्लीके समान जिसके नेत्र हों ऐसा वृष ग्रहण किया हुआ ब्राह्मणोंकोभी शुभ नहीं होगा ॥ ८ ॥ भारके नीचे जोडा हुआ बैल ऐसें पैर उठावे जैसे कर्दममें गड़े हुए पैरोंको बडे यत्नसे उखाडते हैं. जिनकी ग्रीवा दुर्बल हो, नेत्र काचरे हों, पीठ छोटी या दबी हुई हो वह बैल भार उठानेमें समर्थ नही होते हैं ॥ ९ ॥ कोमल मिले हुए और तांबेके रंगके जिनके ओष्ठ हों, छोटी स्फिक् (कटिस्थमांसपिंड) हों, तांबेके रंगके तालु और जीभ हों छोटे, पतले और ऊँचे जिनके कान हो सुन्दर पेट हो, सीधा जंघा हो ॥ १० ॥ तांबेके वर्ण और मिले हुए खुर हों छाती दृढ हो, बड़ा ककुद (थूही) हो स्निग्ध (चिकने) कोमल और तनु (पतले) जिनके त्वचा और रोम हों. तांबेके रंगके शरीर और सींग हो ॥ ११ ॥ पतली और भूमिको स्पर्श करनेवाली जिनकी पूंछ हो, जिनके नेत्रोंके अंत लाल हों दीर्घ श्वास लेनेवाले हों, सिंहकेसे जिनके कंधे हो पतला और छोटा जिनका गलकंबल, सुन्दर जिनकी गति हो ऐसे वृषभ अच्छे होते हैं ॥ १२ ॥ जिनके वाम भागमें बाईं ओर घूमें हुए आवर्त (भौरी) और दक्षिणभागमें दाहिनी और घूमें हुए आवर्त और जिनकी जंघा मेंढेकी जंघाओं के समान हों ऐचे बैल शुभ होते हैं ॥ १३ ॥ वैदूर्यमणिके समान

जिनके नेत्र हों, निवारीपुष्पके समान जिनके नेत्र हों, अर्थात् नेत्रोंके बाहर चारों ओर शुक्ल रेखा हों, जल बुद्बुदके समान जिनके नेत्र हों, जिनके नेत्र और शरीर स्थूल हों, खुरके पिछले भाग जिनके फूटे हुए न हों सो सब बैल शुभ होते हैं और भार उठा सकते हैं ।। १४ ।। जिस बैलकी नांकमें बलि पडे. बिलावके तुल्य जिसका मुख हो, दाहिना भाग जिसका श्वेत हो, कमल (नील-कमल) या लाखके समान जिसकी कांति हो. अच्छी पूंछ हो, गमनमें घोडेकासा वेग हो ।। १५ ।। लम्बे वृषण हों, मेंढेकासा पेट हो. वंक्षण (पिछली जंघा और वृषणोंका मध्यभाग) और क्रोड (अगली जंघाओंका मध्यभाग) जिसके संकुचित हों ऐसा बैल भार उठानेमें और मार्ग चलनेमें समर्थ होता है, घोडेके बराबर जिसका वेग हो वह बैल शुभही होता है ।। १६ ।। जिस बैल का श्वेत वर्ण हो, तांबेके रंगके सींग और नेत्र हो, बडा मुख हो उसको हंस कहते हैं वह शुभ होता है और अपने यूथकी वृद्धि करता है ।। १७ ।। जिस बैलकी पूंछ भूमिका छूती हो, तांबेके रंगके जिसके सींग हों, लाल नेत्र हों, ककुद (थूही) करके युक्त हो ऐसा बैल अपने स्वामीको शीघ्रही लक्ष्मीवान् कर देता है ।।१८।। चाहे जिस रंगका बैल हो परन्तु जिसके चारों पैर श्वेत हों वह शुभही होता है. जो केवल शुभ लक्षणोंवाला बैल न मिले तो मिश्र फल अर्थात् जिसमें कोई लक्षण शुभ और कोई अशुभ हों ऐसाही बैल लेवे. परन्तु शुभ लक्षण अधिक होने चाहिये ।। १९ ।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायामेकषष्टितमोऽध्यायः ।।६१।।

अथ द्विषष्टितमोऽध्यायः

श्वानलक्षणम्

पादः पञ्चनखास्त्रयोऽग्रचरणः षड्भिर्नखैर्दक्षिणस्ताम्रोष्ठाग्रनसो मृगेश्वरगतिर्जिघ्रन् भुवं याति च । लांगूलं ससटं दृगृक्षसदृशौ कर्णौच लम्बौ मृदू यस्य स्यात्स करोति पोष्टुरचिरात्पुष्टां श्रियं श्वा गृहे ।।१।। पादे पादे पञ्च पञ्चाग्र पादे वामे यस्याः षण्नखा मल्लिकाक्ष्याः । वक्रं पुच्छं पिङ्गला लम्बकर्णी या सा राष्ट्रं कुक्कुरी पाति पोष्टुः ।।२।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० श्वलक्षणं नाम द्विषष्टितमोऽध्यायः ।।६२।।

जिस कुत्तेके तीन पैरोंमे पांच २ नख हों और आगेके दाहिने पांवमें छः नख हों, ओष्ठ और नासिकाका अग्रभाग तांबेके तुल्य लाल रंग हो, सिंहके तुल्य जिसकी गति हो और भूमिको सूंघता हुआ चले, जिसकी पूंछ बहुत बालोंसे झबरी हो रीछकेसे नेत्र हों, दोनों कान लम्बे और कोमल हों ऐसा कुत्ता अपने पोषण करनेवाले स्वामीके घरमें लक्ष्मीको बढाता है ।। १ ।। जिस कुत्तीके तीन पांवोंमें पांच २ नख हों और अगले बांये पैरमें छः नख हों और जिसके नेत्रों के बाहर मल्लिका पुष्पकीसी श्वेत रेखा हो, पूंछ टेढी हो, पिंगलवर्ण हो और लम्बे कान हों ऐसी कुतिया अपने पोषण करनेवाले राज्यकी रक्षा करती है ।। २ ।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचि० हिन्दीटीकायां द्विषष्टितमोऽध्यायः ।।६२।।

अथ त्रिषष्टितमोध्यायः

कुक्कुटलक्षणम्

कुक्कुटस्त्वृजुतनूरुहाऽङ्गुलिस्ताम्रवक्त्रनखचूलिकः सितः । रौति सुस्वरमुषात्यये च यो वृद्धिदः स नृपराष्ट्रवाजिनाम् ॥१॥ यवग्रीवो यो वा बदरसदृशो वापि विहगो बृहन्मूर्द्धा वर्णैर्भवति बहुभिर्यश्च रुचिरः । स शस्तः संग्रामे मधुमधुपवर्णश्च जयकृन्न शस्तो योऽतोऽन्यः कृशतनुरवः खञ्जचरणः ॥ २ ॥ कुक्कुटी च मृदुचारुभाषिणी स्निग्धमूर्तिरुचिराननेक्षणा । सा ददाति सुचिरं महीक्षितां श्रीयशोविजयवीर्यसम्पदः ॥३॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृ० कुक्कुटलक्षणं नाम त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

जिस कुक्कुट (मुर्गा) के पंख और अंगुली सीधी हों, मुख, नख और चोटी जिसकी तांबेके समान लाल रंग हो, श्वेत वर्ण हो. रात्रिकी समाप्तिमें अच्छे स्वरसे बोले ऐसा मुरगा राजाके राज्य और घोडोंकी वृद्धि करता है ॥ १ ॥ जिस कुक्कुटकी गरदन जौके आकारके समान, पके हुए बेरके समान जिसका लाल रंग हो, बडा मस्तक हो, बहुतसे श्वेत, पीत्त, रक्त, क्रृष्ण आदि रंगोंसे युक्त हो और सुन्दर हो ऐसा कुक्कुट युद्धमें शुभ होता है. शहतके तुल्य जिसका रंग अथवा भ्रमरके तुल्य जिसका रंग हो वह कुक्कुटभी युद्धमें जय करता है, इसके सिवाय जो और भांतिका कुक्कुट हो वह शुभ नहीं होता, जिसका शरीर कृश हो, शब्द मंद हो, पैरसे लंगडा हो वह कुक्कुटभी शुभ नहीं होता ॥ २ ॥ जो मुरगी मृदु और सुन्दर शब्द कर, स्निग्ध शरीरवाली, मुख और नेत्र सुन्दर हों ऐसी कुक्कुटी राजाओंको चिरकालतक लक्ष्मी, यश, विजय, बल और सम्पत्ति देती है ॥ ३ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

अथ चतुःषष्टितमोऽध्यायः

कूर्मलक्षणम्

स्फटिकरजतवर्णो नीलराजीविचित्रः कलशसदृशमूर्तिश्चारुवंशश्च कूर्मः । अरुणसमवपुर्वा सर्षपाकारचित्रः सकलनृपमहत्त्वं मंदिरस्थः करोति ॥१॥ अञ्जनभृङ्गश्यामतनुर्वा बिन्दुविचित्रोऽव्यङ्गशरीरः । सर्पशिरा या स्थूलगलो यः सोऽपि नृपाणां राष्ट्रविवृद्ध्यै ॥२॥ वैदूर्यत्विट् स्थूलकण्ठस्त्रिकोणो गूढच्छिद्रश्चारुवंशश्च शस्तः । क्रीडावाप्यां तोयपूर्णे मणौ वा कार्यः कूर्मो मंगलार्थं नरेन्द्रैः ॥३॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां कूर्मलक्षणं नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

जो कछुआ स्फटिक अथवा चांदीके तुल्य शुक्ल वर्ण हो और नीली रेखाओंसे चित्रित हो, कलशके समान जिसका आकार हो, सुन्दर जिसका वंश (पीठकी हड्डी) हो अथवा लाल रंगका कछुआ हो. और सरसोंके बिन्दुओंसे चित्रित हो ऐसा कूर्म घरमें स्थित हो तो सब राजाओंमें बडाई करता है ।। १ ।। अञ्जन या भ्रमरके तुल्य जिस कूर्मका श्याम शरीर हो और बिन्दुओंसे विचित्र हो, सम्पूर्ण अंग पूर्ण हो, सर्पके समान जिसका शिर हो और गला स्थूल हो ऐसा कूर्म राजाओंका राज्य बढ़ानेके लिये होता है ।। २ ।। वैदूर्यमणिके समान जिस कछुएकी कांति हो, कंठ स्थूल हो, त्रिकोण आकार हो, सब छिद्र उसके गुप्त हों और पृष्ठवंश सुंदर हो ऐसे कूर्मको मंगलके लिये राजा अपना क्रीडावापीमें अथवा जलसे भरे बडे मटकेमें रक्खे ।। ३ ।।

इति श्रीवराहमिहिराचायविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य - पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां चतुःषष्टितमोऽध्यायः ।।६४।।

अथ पंचषष्टितमोध्यायः

छागलक्षणम्.

छागशुभाशुभलक्षणमभिधास्ये नवदशाष्टदन्तास्ये । धन्याःस्थाप्या वेश्मनि संत्याज्याः सप्तदन्ता ये ।।१।। दक्षिणपार्श्वे मण्डलमसितं शुक्लस्य शुभफलं भवति ।। ऋष्यनिभकृष्णलोहितवर्णानां श्वेतमपि शुभदम् ।।२।। स्तनवदवलम्बते यः कण्ठेऽजानां मणिः स विज्ञेयः । एकमणिः शुभफलकृद्धन्यतमा द्वित्रिमणयो ये ।।३।। मुण्डाः सर्वे शुभदाः सर्वसिताः सर्वकृष्णदेहाश्च । अर्धासिताः सितार्धा धन्याः कपिलार्धकृष्णाश्च ।।४।। विचरति यूथस्याग्रे प्रथमं चाम्भोऽवगाहते योऽजः । स शुभः सितमूर्धा वा मूर्धनि वा कृत्तिका यस्य ।।५।। सपृषतकण्ठशिरा वा तिलपिष्टनिभश्च ताम्रदृक् शस्तः । कृष्णचरणः सितो वा कृष्णो वा श्वेतचरणो यः ।।६।। यः कृष्णाण्डः श्वेतो मध्ये कृष्णेन भवति पट्टेन । यो वा चरति सशब्दं मन्दं च स शोभनश्छागः ।।७।। ऋष्यशिरोरुहपादो यो वा प्राक् पाण्डुरोऽपरे नीलः । स भवति शुभकृच्छागः श्लोकश्चाप्यत्र गर्गोक्तः ।।८।। कुट्टकः कुटिलश्चैव जटिलो वामनस्तथा । ते चत्वारः श्रियः पुत्रा नालक्ष्मीके वसन्ति वै ।।९।। अथाप्रशस्ताः खरतुल्यनादाः प्रदीप्तपुच्छाः कुनखा विवर्णाः । निकृत्तकर्णा द्विपमस्तकाश्च भवन्ति ये चासिततालुजिह्वाः ।।१०।। वर्णैः प्रशस्तैर्मणिभिश्च युक्ता मुण्डाश्च ये ताम्रविलोचनाश्च । ते पूजिता वेश्मसु मानवानां सौख्यानि कुर्वन्ति यशः श्रियं च ।।११।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० छागलक्षणं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः।।६५।।

अब बकरेका शुभ अशुभ लक्षण कहते हैं, जिनके नौ या दश या आठ दांत हों वे छाग शुभ होते हैं और घरमें रखने चाहिये. जिनके सात दांत हों उनको न रक्खे कारण कि वे अशुभ होते हैं ।। १ ।। श्वेत रंगके छागके दाहिने पार्श्वमें काले रंगका मंडल हो तो शुभ होता है. जिस छाग

का रंग ऋष्यमृगके तुल्य नीला, काला अथवा लाल हो तो उसके दक्षिण पार्श्वमें श्वेतमंडल-भी शुभ होता है ॥ २ ॥ छागोंके गलेमें जो स्तनकी भांति लटकता है उसे मणि कहते हैं. जिस छागके एक मणि हो वह शुभ फल करता है और जिसको दो अथवा तीन मणि हों वे छाग तो बहुतही शुभ होते हैं ॥ ३ ॥ विना सींगके सब छाग शुभ होते हैं, जिनका सब शरीर श्वेत हो अथवा सब शरीर कृष्ण हो वे छाग शुभ होते हैं, जो छाग आधे काले और आधे श्वेत हों वे शुभ होते हैं. जो छाग आधे कपिल और आधे कृष्ण हों वे भी शुभ होते हैं ॥४॥ जो छाग अपने यूथके आगे चले और सबसे पहले जलमें घुसे वह शुभ होता है या जिसका शिर श्वेत हो अथवा जिसके शिरमें कृत्तिका नक्षत्रकी भांति टीका हो अर्थात छः बिन्दु हों वह शुभ होता है ऐसे छागका नाम कुट्टक है ॥ ५ ॥ जिसके कंठ और शिरमें दूसरे रंगके बिन्दु हों, तिलपिष्टके समान अर्थात् श्वेत और पीत मिला हुआ जिसका रंग और तांबेके तुल्य जिसके लाल नेत्र हों वह शुभ होता है. जिसके शरीरका रंग श्वेत हो और चारों पैर काले हों अथवा शरीर काला हो और चारों पैर श्वेत हों वह छागभी शुभ होता है, ऐसे छागको कुटिल कहते हैं ॥६॥ जिस छागके शरीरका रंग श्वेत हो काले अंड हों और मध्यभागमें काला पट्टा हो तो अशुभ होता है, जो छाग धीरे २ चरे उसके चरनेके समय शब्द हो वह शुभ होता है. ऐसे छागको जटिल कहते हैं ॥ ७ ॥ ऋष्यमृगके समान नीले जिस छागके शिरके बाल और पांव हों और जो छाग अगले भागमें पांडुर वर्ण हो, पिछले भागमें नीले वर्ण हो वह छाग शुभ होता है, ऐसे छागको वामन कहते हैं, इस अर्थमें गर्ग-मुनिका श्लोक लिखते हैं ॥ ८ ॥ कुट्टक, कुटिल, जटिल और वामन अर्थात् जिनके पहले लक्षण कहे हैं यह चारों छाग लक्ष्मीके पुत्र हैं और लक्ष्मीहीन स्थानोंमें नहीं रहते अर्थात् जहां ऐसे छाग हों वहां लक्ष्मीका निवास होता है ॥९॥ अब अशुभ छाग कहते हैं. जिनका शब्द गायके शब्दके समान हो, जिसकी पूंछ टेढी अथवा बहुत उष्ण हो, बुरे नख हों, शरीरका रंग बुरा हो, कान कटे हों, हाथीकासा मस्तक हो, जिनका तालु और जिह्वा काली हो ऐसे छाग अशुभ होते हैं ॥ १० ॥ जो छाग उत्तम रंग और कंठ मणियों करके युक्त हों, विना सींगोंके हों और जिनके नेत्र लाल हों, वे छाग मनुष्योंके घरमें शुभ होते हैं और सुख, यश और लक्ष्मीको करते है ॥ ११ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां पंचषष्टितमोऽध्यायः ॥६५॥

अथ षट्षष्टितमोऽध्यायः

अश्वलक्षणम्.

दीर्घग्रीवाक्षिकूटस्त्रिकहृदयपृथुस्ताम्रवाल्वोष्ठजिह्वः सूक्ष्मत्वक्केशवालः सुश-फगतिमुखो ह्रस्वकर्णोष्ठपुच्छः। जंघाजानूरुवृत्तः समसितदशनश्चारुसंस्थानरूपो वाजी सर्वांगशुद्धो भवति नरपतेः शत्रुनाशाय नित्यम् ॥१॥ अश्रुपातहनुगण्डहृद्गलप्रोथशंखकटिबस्तिजानुनि। मुष्कनाभिककुदे तथा गुदे सव्यकुक्षिचरणेषु चाशुभाः ॥२॥ ये प्रपाणगलकर्णसंस्थिताः पृष्ठमध्यनयनोपरि स्थिताः। ओष्ठसक्थिभुज-कुक्षिपार्श्वगास्ते ललाटसहिताः सुशोभनाः ॥३॥ तेषां प्रपाण एको ललाटकेशेषु च ध्रुवावर्तः। रन्ध्रोपरन्ध्रमूर्धनि वक्षसि चेति स्मृतौ द्वौ द्वौ ॥४॥ षड्भिर्दन्तै

सिताभैर्भवति हयशिशुस्तैः कषायैर्द्विवर्षः सन्दंशैर्मध्यमान्त्यैः पतितसमुदितैस्त्र्यब्दपञ्चाब्दिकोऽश्वः । सन्दंशानुक्रमेण त्रिकपरिगणिताः कालिकापीतशुक्लाः काचा माक्षीकशंखावटचलनमतो दन्तपातं च विद्धि ॥५॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० अश्वलक्षणं नाम षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

जिस घोडेकी ग्रीवा और अक्षिकूट अर्थात् नेत्रोंका कोश दीर्घ हो, त्रिक (कटिभाग) और हृदय विस्तीर्ण हो, तालु, ओष्ठ और जीभ तांबेके तुल्य लाल रंगकी हो, शरीरकी त्वचा, मस्तकके केश और पूंछके बाल सूक्ष्म हों, शफ (सुम्म) गति और मुख सुन्दर हो, कान, ओष्ठ और पूंछ यह तीन अंग छोटे हों, यहां पुच्छ शब्द करके पूंछके बीचकी हड्डीका ग्रहण होता है. जंघा, जानु और ऊरु जिसके गोल हों सम (बराबर) और श्वेत दंत हो, जिसका आकार और रूप सुन्दर हो ऐसा घोडा हो और वह सर्वांग शुद्ध हो अर्थात् किसी अंगमें कोई अशुभ आवर्त्त न हो वह घोडा जिस राजाके हो नित्य उसके शत्रुओं का नाश करता है॥१॥ अश्रुपात जहां आंसू गिरे, हनु मुख, गंड (कपोल) हृदय, गाल, प्रोथ (नाभिका अधोभाग), शंख (कनपटी कर्णके समीप), कटि, बस्ति (नाभि लिंगका मध्यभाग), जानु, अंडकोश, नाभि, ककुदा (बाहुके पृष्टभागमें कृकाटिकाके समीप) गुदा, दक्षिणकुक्षी और पैर इनमें भौंरियोंका होना अशुभ है ॥२॥ जो भौंरी प्रधान (ऊपरके ओष्टका तल), कंठ कर्ण, पीठका मध्यभाग, नेत्रोंके ऊपर ध्रुवोंके समीप, ओष्ठ, सक्थि (पिछला भाग), भुज (अगले पैर) वामकुक्षि, पार्श्व और ललाट इन स्थानोंमें हो तो शुभ होता है ॥३॥ घोडोंके शरीरमें दश भौंरी अवश्य होती हैं, उनको ध्रुवावर्त्त कहते हैं. उनमें एक आवर्त प्रपान (ऊपरके ओष्ठका अधोभाग) में और केशोंके नीचे ललाटमें एक आवर्त होता है, रंध्र (कुक्षि और नाभिका मध्यभाग), उपरंध्र (रंध्रसे ऊपर), मस्तक और छाती इन चार स्थानोंमें दो दो आवर्त होते हैं. इस भांति यह दश ध्रुवावर्त हैं ॥ ४ ॥ घोडोंकी दंतपंक्तिमें दो दाढोंके बीचके छः दांत श्वेत वर्ण हों तो एक वर्षका बछेरा होता है. वेही छः दांत कषायरंग (काला और लाल मिला) के हों तो दो वर्षका घोडा होता है. दोनों दंतपंक्तियोंमें बीचके समान दो २ दांत संदंश कहाते हैं, सदंशोंके दोनों ओरका एक २ दांत मध्य और मध्योंके दोनों ओरका एक २ दांत अंत्य कहाता है. संदंश गिरकर फिर जमे हों तो चार वर्षका और अंत्य गिरकर फिर जमे हों तो पांच वर्षका अश्व होता है. संदंशके अनुक्रमसे कालिका आदि रंगों करके तीन २ वर्ष बढते हैं इसका यह तात्पर्य है कि, संदशोंके उपर कालिका (काले बिन्दु) हो तो छः वर्ष, मध्यमोंके ऊपर कालिका हो तो सात वर्ष और अंत्योंके ऊपर कालिका हो तो आठ वर्ष अश्वकी अवस्था जानो. इसी प्रकार संदंशोंपर पीत बिन्दु हो तो नौ वर्ष, मध्योंपर पीत बिन्दु हों तो दश, पर अंत्योंपर पीत बिन्दु हो तो ग्यारह वर्ष जानना चाहिये. संदंश आदिके ऊपर शुक्ल बिन्दु होनेसे क्रमानुसार बारह तेरह और चौदह वर्ष जानो. संदंश आदिके ऊपर काचके रंगके बिन्दु होनेसे पन्द्रह सोलह और सत्रह वर्ष क्रमसे जानो. माक्षीक (शहत) के रंग बिन्दु होनेसे क्रमपूर्वक अठारह उन्नीस और वीस वर्ष जानो. संदंश आदिके ऊपर शंखरंगके बिन्दु होनेसे इक्कीस, बाईस और तेईस वर्ष क्रमसे जानो, संदंश आदिमें छिद्र होनेसे क्रमपूर्वक चौबीस पच्चीस और छब्बीस वर्ष जानो, संदंश आदिके हिलनेसे क्रमपूर्वक सत्ताईस, अठ्ठाईस और उनतीस वर्ष जानो और संदंश आदि दांतोंके गिरनेसे अर्थात् संदंश गिर जाय तो तीस वर्ष, मध्य गिरजाय तो इकतीस वर्ष और

अंत्य गिर जाय तो बत्तीस वर्ष अश्वकी उमर होती है, यह घोडोंका परमायुष बत्तीस वर्ष हैं इस लिये बत्तीस वर्षतक अवस्था जाननेके चिह्न लिखे हैं ॥ ५ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

अथ सप्तषष्टितमोऽध्यायः

गजलक्षणम्

मध्वाभदंन्ता सुविभक्तदेहा न चोपदिग्धाश्च कृशाः क्षमाश्च। गात्रैः समैश्चापसमानवंशा वराहतुल्यैर्जघनैश्च भद्राः ॥१॥ वक्षोऽथ कक्षावलयः श्लथाश्च लम्बोदरस्त्वग्बृहती गलश्च। स्थूला च कुक्षिः सह पेचकेन सैंही च दृङमन्दमतङ्गजस्य ॥२॥ मृगास्तु ह्रस्वाधरवालमेढ्रास्तन्वंघ्रिकण्ठद्विजहस्तकर्णाः। स्थूलेक्षणाश्वेति तथोक्तचिह्नैः सङ्कीर्णनागा व्यतिमिश्रचिह्नाः ॥३॥ पञ्चोन्नतिः सप्त मृगस्य दैर्घ्यमष्टौ च हस्ताः परिणाहमानम्। एकद्विवृद्धावथ मन्दभद्रौ सङ्कीर्णनागोऽनियतप्रमाणः ॥४॥ भद्रस्य वर्णो हरितो मदस्य मन्दस्य हारिद्रकसन्निकाशः। कृष्णो मदश्चाभिहितो मृगस्य सङ्कीर्णनागस्य मदो विमिश्रः ॥५॥ ताम्रोष्ठतालुवदनाः कलविङ्कनेत्राः स्निग्धोन्नताग्रदशनाः पृथुलायतास्याः। चापोन्नतायतनिगूढनिमग्नवंशास्तन्वेकरोमचितकूर्मसमानकुम्भाः ॥ ६ ॥ विस्तीर्णकर्णहनुनाभिललाटगुह्याः कूर्मोन्नतद्विनवविंशतिभिर्नखैश्च। रेखात्रयोपचितवृत्तकराः सुवाला धन्याः सुगन्धिमदपुष्करमारुताश्च ॥७॥ दीर्घाङ्गुलिरक्तपुष्कराः सजलाम्भोदनिनादबृंहिणः। बृहदायतवृत्तकन्धरा धन्या भूमिपतेर्मतङ्गजाः ॥८॥ निर्मदाभ्यधिकहीननखाङ्गान् कुब्जवामनकमेषविषाणाम्। दृश्यकोशफलपुष्करहीनान् श्यावनीलशबलाऽसिततालून् ॥९॥ स्वल्पवक्त्ररुहमत्कुणषण्ढान् हस्तिनीं च गजलक्षणयुक्ताम्। गर्भिणीं च नृपतिः परदेशं प्रापयेदतिविरूपफलास्ते ॥१०॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौबृहत्सं० गजलक्षणं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

चार प्रकारके हाथी होते हैं, भद्र, मंद, मृग और संकीर्ण, अब क्रमसे इनके लक्षण कहते हैं, जिन हाथियोंके दांत शहतके रंग हों, शरीरके सब अंग भलीभांति विभक्त हों, न बहुत मोटा और और न निर्बल जिनका देह हो, क्षम अर्थात् कार्यके योग्य हो, तुल्य अंगोंसे युक्त हो, धनुषके आकार जिनका पृष्ठवंश (पीठकी हड्डी) हो और सूकरके तुल्य जिनके जघन (कटिभाग) अर्थात् तुल्य हो वह हाथी भद्र जातिके होते हैं ॥ १ ॥ मंदजातिके हाथीकी छाती और मध्यभागकी बलि ढीली होती है, पेट लम्बा होता है, चर्म और कंठ स्थूल होता है, कुक्षि और पेचक (पुच्छमूल) भी स्थूल होता है और सिंहके समान दृष्टि होती है, यह मंदका लक्षण है ॥ २ ॥ मृगजातिके हाथियोंके नीचेका ओष्ठ पुच्छके बाल और मेढ्र (लिंग) यह अंग छोटे होते हैं, पैर, कंठ, दांत, शुंड और कर्णभी छोटे होते हैं और नेत्र बडे होते हैं, ये मृगके लक्षण हैं. इन तीन जातिके हाथियोंके

जो चिह्न कहे वे सब चिह्न जिन हाथियोंमें मिलते हों उनको सकीर्ण जातिके हाथी जानना चाहिये ।।३।। मृगजातिके हाथीकी ऊँचाई पांच हाथ, पूंछ मूलसे लेकर मस्तकके कुंभतक लम्बाई सात हाथ और मध्यभागकी मोटाई आठ हाथ होती है, एक हाथ बढानेसे मंदका और दो हाथ बढानेसे भद्रका प्रमाण होता है और नौ हाथ परिणाह मंदजातिके हाथीका होता है और सात हाथ ऊँचाई नौ हाथ लम्बाई और दश हाथ परिणाह भद्रजातिके हाथीका होता है, संकीर्ण जातिके हाथियोंकी ऊँचाई आदिका कुछ नियम नहीं है वे अनियत प्रमाणवाले होते हैं ।४।। भद्रजातिके हाथीका मद हरे रंगका, मंदजातिके हाथीका मद हलदीके समान पीले रंगका और मृगजातिके हाथीका मद काले रंगका होता है, संकीर्ण जातिके हाथीका मद मिश्र वर्ण होता है अर्थात् उनमें कई रंग होते हैं ।। ५ ।। जिन हाथियोंके अधर, तालु और मुख तांबेके समान लाल रंग हों, नेत्र घरों-में रहनेवाली चिडियोंके समान हों, स्निग्ध और ऊँचे अग्रभाग करके युक्त दांत हों, विस्तीर्ण और लम्बा मुख हो धनुषके समान ऊँचा दीर्घ, निगूढ और निमग्न पृष्ठवंश हो, कूर्मके समान कुंभ हो, जिनके कुंभोंके रोमकूपोंमें एक २ सूक्ष्म रोम हों ।। ६ ।। कर्ण, हनु, नाभि, ललाट, गुह्य, लिंग यह अंग विस्तीर्ण हों, कूर्मके समान मध्यसे ऊँचे अठारह अथवा बीस नख हों, खडी तीन रेखाओंसे युक्त और गोल शुंड हो, जिनका मद शुंडसे निकला हुआ सुगन्धयुक्त हो ऐसे हाथी उत्तम होते हैं ।। ७ ।। शुंडके अग्रभागको पुष्कर कहते हैं और पुष्करके आगे अंगुली होती है, जिन हाथियों की अंगुली दीर्घ हो, पुष्कर लाल रंगकी हो, जलसे भरे मेघके गर्जनेकी भांति जिनका बृंहित (हाथीके गलेका शब्द) हो, बडी दीर्घ और गोल जिनकी गरदन हो ऐसे हाथी राजाके लिये शुभ होते हैं ।।८।। जो हाथी कभी मस्त नहीं जिनके नख या अंग हीन अधिक हो अर्थात् नख अठारहसे कम अथवा बीससे अधिक हों, अंग भी शरीरकी बनिस्बत छोटे बडे हों, जो हाथी कुब्ज हों, मेंढोंके सींगोंके समान दांतवाले हों, जिनके अंडकोश देख पडते हों पुष्करसे हीन हो, श्याम रंग, नील रंग चित्रवर्ण और काले रंगका जिनका तालु हो ।। ९ ।। छोटे दांत हों, जो हाथी मत्कुण (मकुना) हों, षंड हो, इन सबको और जो हथिनी हाथीके लक्षणोंसे युक्त हो अर्थात् बडे २ दांत उसके हों मस्त होती हो इत्यादि और जो हथिनी गर्भिणी हो जाय उसको राजा अपने राज्यसे बाहर भेज दे. राज्यमें रहनेसे यह बहुत बुरा फल करते हैं, जिस हाथीकी छाती और जघन संकुचित हो, पीठ ऊंची हो, प्रमाणसे हीन हो और नाभि जिसकी ऊँची हो वह हाथी कुब्ज कहलाता है. लम्बाई और परिणाममें ठीक हो परंतु ऊँचाई बहुतही न्यून हो उस हाथीको वामन कहते हैं, जिसमें पूर्ण लक्षण ठीक २ हों परन्तु दांत न हों वह हाथी मत्कुण (मकुना) कहाता है, चलनेके समय जिस हाथीके पैर मिलते हों उसको षंढ कहते हैं ।। १० ।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां सप्तषष्टितमोऽध्यायः ।।६७।।

अथाष्टषष्टितमोऽध्यायः

पुरुषलक्षणम्.

उन्मानमानगतिसंहतिसारवर्णस्नेहस्वरप्रकृतिसत्त्वमनूकमादौ । क्षेत्रं मृजां च विधिवत् कुशलोऽवलोक्य सामुद्रविद्वदति यातमनागतं च ।।१।। अस्वेदनौ मृदुतलौ कमलोदराभौ श्लिष्टांगुली रुचिरताम्रनखौ सुपार्ष्णी । उष्णौ शिराविरहितौ सुनि-

गूढगुल्फौ कूर्मोन्नतौ च चरणौ मनुजेश्वरस्य ॥२॥ शूर्पाकारविरूक्षपाण्डुरनखौ वक्रौ शिरासन्ततौ संशुष्कौ विरलांगुली च चरणौ दारिद्र्यदुःखप्रदौ । मार्गायोत्कटकौ कषायसदृशौ वंशस्य विच्छित्तिदौ ब्रह्मघ्नौ परिपक्वमृद्द्युतितलौ पीतावगम्यारतौ ॥३॥ प्रविरलतनुरोमवृत्तजङ्घा द्विरदकरप्रतिमैर्वरोरुभिश्च । उपचितसमजानवश्च भूपा धनरहिताः श्वभृगालतुल्यजङ्घाः ॥४॥ रोमैकैकं कूपके पार्थिवानां द्वे द्वे ज्ञेये पण्डितश्रोत्रियाणाम् । त्र्याद्यैर्निःस्वा मानवा दुःखभाजः केशाश्चैव निन्दिता भूजिताश्च ॥५॥ निर्मांसजानुर्म्रियते प्रवासे सौभाग्यमल्पैर्विकटैर्दरिद्राः । स्त्रीनिर्जिताश्चापि भवन्ति निम्नैः राज्यं समांसैश्च महद्भिरायुः ॥६॥ लिङ्गेऽल्पे धनवानपत्यरहितः स्थूले विहीनो धनैर्मेढ्रे वामनते सुतार्थरहितो वक्रेऽन्यथा पुत्रवान् । दारिद्र्यं विनते त्वधोऽल्पतनयो लिङ्गे शिरासन्तते स्थूलग्रन्थियुते सुखी मृदु करोत्यन्तं प्रमेहादिभिः ॥७॥ कोषनिगूढैर्भूपा दीर्घैर्भग्नैश्च वित्तपरिहीनाः । ऋजुवृत्तशेफसो लघुशिरालशिश्नाश्च धनवन्तः ॥८॥ जलमृत्युरेकवृषणो विषमैः स्त्रीलंपटःसमैः क्षितिपः । ह्रस्वायुश्चोद्बद्धैःप्रलम्बवृषणस्य शतमायुः ॥९॥ रक्तैराढ्या मणिभिर्निर्द्रव्याःपाण्डुरैश्च मलिनैश्च । सुखिनः सशब्दमूत्रा निःस्वा निःशब्दधाराश्च ॥१०॥ द्वित्रिचतुर्धाराभिः प्रदक्षिणावर्तवलितमूत्राभिः । पृथ्वीपतयो ज्ञेया विकीर्णमूत्राश्च धनहीनाः ॥११॥ एकैव मूत्रधारा वलिता रूपप्रधानसुतदात्री । स्निग्धोन्नतसममणयो धनवनितारत्नभोक्तारः ॥१२॥ मणिभिश्च मध्यनिम्नैः कन्यापितरो भवन्ति निःस्वाश्च । बहुपशुभाजो मध्योन्नतैश्च नात्युल्बणैर्धनिनः ॥१३॥ परिशुष्कबस्तिशीर्षा धनरहिता दुर्भगाश्च विज्ञेयाः । कुसुमसमगंधशुक्रा विज्ञातव्या महीपालाः ॥१४॥ मधुगन्धे बहुवित्ता मत्स्यसगन्धे बहून्यपत्यानि । तनुशुक्रः स्त्रीजनको मांससगन्धो महाभोगी ॥१५॥ मदिरागन्धे यज्वा क्षारसगन्धे च रेतसि दरिद्रः । शीघ्रं मैथुनगामी दीर्घायुरतोऽन्यथाल्पायुः ॥१६॥ निःस्वोऽतिस्थूलस्फिक् समांसलस्फिक् सुखान्वितो भवति । व्याघ्रान्तोऽध्यर्धस्फिग्मण्डूकस्फिग्नराधिपतिः ॥१७॥ सिंहकटिर्मनुजेन्द्रः कपिकरभकटिर्धनैः परित्यक्तः । समजठरा भोगयुता घटपिठरनिभोदरा निःस्वाः ॥१८॥ अविकलपार्श्वा धनिनो निम्नैर्वक्रैश्च भोगसन्त्यक्ताः । समकुक्षा भोगाढ्या निम्नाभिर्भोगपरिहीनाः ॥ १९ ॥ उन्नतकुक्षाः क्षितिपाः कठिनाः स्युर्मानवा विषमकुक्षाः । सर्पोदरा दरिद्रा भवन्ति बह्वाशिनश्चैव ॥२०॥ परिमण्डलोन्नताभिर्विस्तीर्णाभिश्च नाभिभिः सुखिनः । स्वल्पा त्वदृश्यनिम्ना नाभिः क्लेशावहा भवति ॥२१॥ वलिमध्यगता विषमा शूलाबाधं करोति नैःस्व्यंच । शाठ्यं वामावर्ता करोति मेधां प्रदक्षिणतः ॥२२॥ पार्श्वायता चिरायुषमुपरिष्टाच्चेश्वरं गवाढ्यमधः । शतपत्रकर्णिकाभा नाभिर्मनुजेश्वरं कुरुते ॥२३॥ शस्त्रान्तं स्त्रीभोगिनमाचार्यं बहुसुतं यथासंख्यम् । एकद्वित्रिचतुर्भिर्वलिभिर्विद्यान्नृपं

त्ववलिम् ॥२४॥ विषमवलयो मनुष्या भवन्त्यगम्याभिगामिनः पापाः। ऋजुवलयः सुखभाजः परदारद्वेषिणश्चैव ॥२५॥ मांसलमृदुभिः पार्श्वैः प्रदक्षिणावर्तरोमभिर्भूपाः। विपरीतैर्निर्द्रव्याः सुखपरिहीनाः परप्रेष्याः ॥२६॥ सुभगा भवन्त्यनुद्बद्धचूचुका निर्धना विषमदीर्घैः। पीनोपचितनिमग्नैः क्षितिपतयश्चूचुकैः सुखिनः ॥२७॥ हृदयं समुन्नतं पृथु न वेपनं मांसलं च नृपतीनाम्। अधमानां विपरीतं खररोमचितं शिरालं च ॥२८॥ समवक्षसोऽर्थवन्तः पीनैः शूरास्त्वकिञ्चनास्तनुभिः। विषमं वक्षो येषां ते निःस्वाः शस्त्रनिधनाश्च ॥२९॥ विषमैर्विषमो जत्रुभिरर्थविहीनोऽस्थिसन्धिपरिणद्धैः। उन्नतजत्रुर्भोगी निम्नैर्निःस्वोऽर्थवान् पीनैः ॥३०॥ चिपिटग्रीवो निःस्वः शुष्का शिरा च यस्य वा ग्रीवा। महिषग्रीवः शूरः शस्त्रान्तो वृषसमग्रीवः ॥३१॥ कम्बुग्रीवो राजा प्रलम्बकण्ठः प्रभक्षणो भवति। पृष्ठमभग्नमरोमशमर्थवतामशुभदमतोऽन्यत् ॥३२॥ अस्वेदनपीनोन्नतसुगन्धिसमरोमसंकुलाः कक्षाः। विज्ञातव्या धनिनामतोऽन्यथार्थैर्विहीनानाम् ॥३३॥ निर्मांसौ रोमचितौ भग्नावल्पौ च निर्धनस्यांसौ। विपुलावव्युच्छिन्नौ सुश्लिष्टौ सौख्यवीर्यवताम् ॥३४॥ करिकरसदृशौ वृत्तावाजान्ववलम्बिनौ समौ पीनौ। बाहू पृथिवीशानामधमानां रोमशौ ह्रस्वौ ॥३५॥ हस्ताङ्गुलयो दीर्घाश्चिरायुषामवलिताश्च सुभगानाम्। मेधाविनां च सूक्ष्माश्चिपिटाः परकर्मनिरतानाम् ॥३६॥ स्थूलाभिर्धनरहिता बहिर्नताभिश्च शस्त्रनिर्याणाः। कपिसदृशकरा धनिनो व्याघ्रोपमपाणयः पापाः ॥३७॥ मणिबन्धनैर्निगूढैर्दृढैश्च सुश्लिष्टसन्धिभिर्भूपाः। हीनैर्हस्तच्छेदः श्लथैः सशब्दैश्च निर्द्रव्याः ॥३८॥ पितृवित्तेन विहीना भवन्ति निम्नेन करतलेन नराः। संवृत्तनिम्नैर्धनिनः प्रोत्तानकराश्च दातारः ॥३९॥ विषमैर्विषमा निःस्वाश्चकरतलैरीश्वरास्तु लाक्षाभैः। पीतैरगम्यवनिताभिगामिनो निर्धना रूक्षैः ॥४०॥ तुषसदृशनखाः क्लीबाश्चिपिटैः स्फुटितैश्च वित्तसन्त्यक्ताः। कुनखविवर्णैः परतर्ककाश्च ताम्रैश्च भूपतयः ॥४१॥ अंगुष्ठयवैराढ्याः सुतवन्तोऽङ्गुष्ठमूलगैश्च यवैः। दीर्घांगुलिपर्वाणः सुभगा दीर्घायुषश्चैव ॥४२॥ स्निग्धा निम्ना रेखा धनिनां तद्व्यत्ययेन निःस्वानाम्। विरलांगुलयो निःस्वा धनसञ्चयिनो घनांगुलयः ॥४३॥ तिस्रो रेखा मणिबन्धनोत्थिताः करतलोपगा नृपतेः। मीनयुगाङ्कितपाणिर्नित्यं सत्रप्रदो भवति ॥४४॥ वज्राकारा धनिनां विद्याभाजां तु मीनपुच्छनिभाः। शंखातपत्रशिबिकागजाश्वपद्मोपमा नृपतेः ॥४५॥ कलशमृणालपताकांकुशोपमाभिर्भवन्ति निधिपालाः। दामनिभाभिश्चाढ्याः स्वस्तिकरूपाभिरैश्वर्यम् ॥४६॥ चक्रासिपरशुतोमरशक्तिधनुः कुन्तसन्निभा रेखाः। कुर्वन्ति चमूनाथं यज्वानमुलूखलाकाराः ॥४७॥ मकरध्वजकोष्ठागारसन्निभाभिर्महाधनोपेताः। वेदीनिभेन चैवाग्निहोत्रिणो ब्रह्मतीर्थेन ॥४८॥ वापीदेवकुलाद्यैर्धर्मं कुर्वन्ति च त्रिकोणाभिः। अंगुष्ठमूलरेखाः पुत्राः

स्युर्दारिकाः सूक्ष्माः ।।४९।। रेखाः प्रदेशनीगाः शतायुषां कल्पनीयमूनाभिः । छिन्नाभिर्द्रुमपतनं बहुरेखारेखिणो निःस्वाः ।।५०।। अतिकृशदीर्घैश्चिबकैर्निर्द्रव्या मांसलैर्धनोपेताः । बिम्बोपमैरवक्रैरधरैर्भूपास्तनुभिरस्वाः ।।५१।। ओष्ठैः स्फुटितविखण्डितविवर्णरूक्षैश्च धनपरित्यक्ताः। स्निग्धा घनाश्च दशना सुतीक्ष्णदंष्ट्राः समाश्च शुभाः ।।५२।। जिह्वा रक्ता दीर्घा श्लक्ष्णा सुसमा च भोगिनां ज्ञेया । श्वेता कृष्णा परुषा निर्द्रव्याणां तथा तालु ।।५३।। वक्त्रं सौम्यं संवृतममलं श्लक्ष्णं समं च भूपानाम् । विपरीतं क्लेशभुजां महामुखं दुर्भगाणां च ।।५४।। स्त्रीमुखमनपत्यानां शाठ्यवतां मण्डलं परिज्ञेयम् । दीर्घं निर्द्रव्याणां भीरुमुखाः पापकर्माणः ।।५५।। चतुरश्रं धूर्तानां निम्नं वक्त्रं च तनयरहितानाम् । कृपणानामतिह्रस्वं संपूर्णं भोगिनां कान्तम् ।।५६।। अस्फुटिताग्रं स्निग्धं श्मश्रु शुभं मृदु च सन्नतं चैव । रक्तैः परुषैश्चौराः श्मश्रुभिरल्पैश्च विज्ञेयाः ।।५७।। निर्मांसैः कर्णैः पापमृत्यवश्चर्पटैः सुबहुभोगाः । कृपणाश्च ह्रस्वकर्णाः शंकुश्रवणाश्चमूपतयः ।।५८।। रोमशकर्णा दीर्घायुषस्तु धनभागिनो विपुलकर्णाः । क्रूराः शिरावनद्धैर्व्यालम्बैर्मांसलैःसुखिनः ।।५९।। भोगी त्वनिम्नगण्डो मन्त्री सम्पूर्णमांसगण्डो यः । सुखभाक् शुकसमनासश्चिरजीवी शुष्कनासश्च ।। ६० ।। छिन्नानुरूपयागम्यगामिनो दीर्घया तु सौभाग्यम् । आकुञ्चितया चौरःस्त्रीमृत्युः स्याच्चिपिटनासः ।।६१।। धनिनोऽग्रवक्रनासा दक्षिणवक्राः प्रभक्षणाः क्रूराः । ऋज्वी स्वल्पच्छिद्रा सुपुटा नासा सभाग्यानाम् ।।६२।। धनिनां क्षुतं सकृद् द्वित्रिपिण्डितं ह्लादि सानुनादं च। दीर्घायुषां प्रमुक्तं विज्ञेयं सहतं चैव ।।६३।। पद्मदलाभैर्धनिनो रक्तान्तविलोचनाः श्रियोभाजः । मधुपिङ्गलैर्महार्था मार्जारविलोचनाः पापाः ।।६४।। हरिणाक्षा मण्डललोचनाश्च जिह्मैश्च लोचनैश्चौराः । क्रूराः केकरनेत्रा गजसदृशदृशश्चमूपतयः ।।६५।। ऐश्वर्यं गंभीरैर्नीलोत्पलकान्तिभिश्च विद्वांसः । अतिकृष्णतारकाणामक्ष्णामुत्पाटनं भवति ।।६६।। मंत्रित्वं स्थूलदृशां श्यावाक्षाणां च भवति सौभाग्यम् । दीना दृग्निःस्वानां स्निग्धा विपुलार्थभोगवताम् ।।६७।।अभ्युन्नताभिरल्पायुषो विशालोन्नताभिरतिसुखिनः । विषमभ्रुवो दरिद्रा बालेन्दुनतभ्रुवः सधनाः ।।६८।। दीर्घासंसक्ताभिर्धानिनः खण्डाभिरर्थपरिहीनाः । मध्यविनतभ्रुवो ये ते सक्ताः स्त्रीष्वगम्यासु ।।६९।। उन्नतविपुलं शंखैर्धन्या निम्नैः सुतार्थसन्त्यक्ताः । विषमललाटा विधना धनवन्तोऽर्धेन्दुसदृशेन ।।७०।। शुक्तिविशालैराचार्यता शिरासन्ततैरधर्मरता । उन्नतशिराभिराढ्याः स्वस्तिकवत्संस्थिताभिश्च ।।७१।। निम्नललाटा वधबन्धभागिनः क्रूरकर्मनिरताश्च। अभ्युन्नतैश्च भूपाः कृपणाः स्युः संवृत्तललाटाः ।।७२।। रुदितमदीनमनश्रु स्निग्धं च शुभावहं मनुष्याणाम् । रूक्षं दीनं प्रचुराश्रु चैव न शुभप्रदं पुंसाम् ।।७३।। हसितं शुभदमकम्पं सनिमीलितलोचनं च पापस्य । दुष्टस्य हसितमसकृत् सोन्मादस्यासकृ-

त्प्रान्ते ॥७४॥ तिस्रो रेखाः शतजीविनां ललाटायताः स्थिता यदि ताः। चतसृभिरवनीशत्वं नवतिश्चायुः सपञ्चाब्दाः ॥७५॥ विच्छिन्नाभिश्चागम्यगामिनो नवतिरप्यरेखेण। केशान्तोपगताभी रेखाभिरशीतिवर्षायुः ॥७६॥ पञ्चभिरायुः सप्ततिरेकाग्रावस्थिता भरपि षष्टिः। बहुरेखेण शतार्धं चत्वारिंशच्च वक्राभिः ॥७७॥ त्रिंशद्भ्रूलग्नाभिर्विशतिकश्चैव वामवक्राभिः। क्षुद्राभिः स्वल्पायुर्न्यूनाभिश्चान्तरे कल्प्यम् ॥७८॥ परिमण्डलैर्गवाढ्याश्छत्राकारैः शिरोभिरवनीशाः। चिपिटैः पितृमातृघ्नाः करोटिशिरसां चिरान्मृत्युः ॥७९॥ घटमूर्धा ध्यानरुचिर्द्विमस्तकः पापकृद्धनैस्त्यक्तः। निम्नं तु शिरो महतां बहुनिम्नमनर्थदं भवति ॥८०॥ एकैकभवैः स्निग्धैः कृष्णैराकुञ्चितैरभिन्नाग्रैः। मृदुभिर्न चातिबहुभिः केशैः सुखभाग् नरेन्द्रो वा ॥८१॥ बहुमूलविषमकपिला स्थूलस्फुटिताग्रपरुषह्रस्वाश्च। अतिकुटिलाश्चातिघनाश्च मूर्धजा वित्तहीनानाम् ॥८२॥ यद्यद्गात्रं रूक्षं मांसविहीनं शिरावनद्धं च। तत्तदनिष्टं प्रोक्तं विपरीतमतः शुभं सर्वम् ॥८३॥ त्रिषु विपुलो गम्भीरस्त्रिष्वेव षडुन्नतश्चतुर्ह्रस्वः। सप्तसु रक्तो राजा पञ्चसु दीर्घश्च सूक्ष्मश्च ॥८४॥ उरो ललाटं वदनं च पुंसां विस्तीर्णमेतत्त्रितयं प्रशस्तम्। नाभिः स्वरः सत्त्वमिति प्रदिष्टं गम्भीरमेतत्त्रितयं नराणाम् ॥८५॥ वक्षोऽथ कक्षा नखनासिकास्यं कृकाटिका चेति षडुन्नतानि। ह्रस्वानि चत्वारि च लिङ्गपृष्ठं ग्रीवा च जंघे च हितप्रदानि ॥८६॥ नेत्रान्तपादकरताल्वधरोष्ठजिह्वा रक्ता नखाश्च खलु सप्त सुखावहानि। सूक्ष्माणि पञ्च दशनांगुलिपर्वकेशाः साकं त्वचा कररुहाश्च न दुःखितानाम् ॥८७॥ हनुलोचनबाहुनासिकाः स्तनयोरन्तरमत्र पञ्चमम्। इति दीर्घमिदं तु पञ्चकं न भवत्येव नृणामभूभृताम् ॥८८॥ इति क्षेत्रम्। छाया शुभाशुभफलानि निवेदयन्ती लक्ष्या मनुष्यपशुपक्षिषु लक्षणज्ञैः। तेजोगुणान् बहिरपि प्रविकाशयन्ती दीपप्रभा स्फटिकरत्नघटस्थितेव ॥ ८९ ॥ स्निग्धद्विजत्वङ्नखरोमकेशच्छाया सुगंधा च महीसमुत्था। तुष्ट्यर्थलाभाभ्युदयान् करोति धर्मस्य चाहन्यहनि प्रवृत्तिम ॥९०॥ स्निग्धा सिताच्छहरिता नयनाभिरामा सौभाग्यमार्दव सुखाभ्युदयान् करोति। सर्वार्थसिद्धिजननी जननीव चाप्या छाया फलं तनुभृतांशुभमादधाति ॥९१॥ चण्डाधृष्या पद्महेमाग्निवर्णा युक्ता तेजोविक्रमैः सप्रतापैः। आग्नेयीति प्राणिनां स्याज्जयाय क्षिप्रं सिद्धि वाञ्छितार्थस्य धत्ते ॥९२॥ मलिनपरुषकृष्णा पापगन्धानिलोत्था जनयति वधबन्धव्याध्यनर्थार्थनाशान्। स्फटिकसदृशरूपा भाग्ययुक्तात्युदारा निधिरिव गगनोत्था श्रेयसां स्वच्छवर्णा ॥ ३॥ छायाः क्रमेण कुजलाग्न्यनिलाम्बरोत्थाः केचिद्वदन्ति दश ताश्च यथानुपूर्व्या। सूर्याब्जनाभपुरुहूतयमोडुपानां तुल्यास्तु लक्षणफलैरिति तत्समासः ॥९४॥ इति मृजा ॥ करिवृषरथौघभेरीमृदङ्गसिंहाब्दनिस्वना भूपाः। गर्दभजर्जररूक्षस्वराश्च

धनसौख्यसन्त्यक्ताः ।।९५।। इति स्वरः ।। सप्त भवन्ति च सारा मेदोमज्जात्व-
गस्थिशुक्राणि । रुधिरं मांसं चेति प्राणभृतां तत्समासफलम् ।।९६।। ताल्वोष्ठदन्त
पालीजिह्वानेत्रान्तपायुकरचरणैः । रक्तैस्तु रक्तसारा बहुसुखवनितार्थपुत्रयुताः
।।९७।। स्निग्धत्वग्वा धनिनो मृदुभिः सुभगा विचक्षणास्तनुभिः । मज्जामेद-
स्साराः सुशरीराः पुत्रवित्तयुक्ताः ।।९८।। स्थूलास्थिरस्थिसारो बलवान् विद्यान्तगः
सुरूपश्च ।। इति सारः ।। बहुगुरुशुक्राः सुभगाविद्वांसो रूपवन्तश्च ।। ९९ ।।
उपचितदेहो विद्वान् धनी सुरूपश्च मांससारो यः । संघात इति च सुश्लिष्टसन्धिता
सुखभुजो ज्ञेयाः ।।१००।। इति संहतिः ।। स्नेहःपञ्चसु लक्ष्यो वाग्जिह्वादन्तनेत्र-
नखसंस्थः । सुतधनसौभाग्ययुताः स्निग्धैस्तैर्निर्धना रूक्षैः ।।१०१।। इति स्नेहः ।।
द्युतिमान्वर्ण स्निग्धः क्षितिपानां मध्यमःसुतार्थवताम् । रूक्षो धनहीनांना शुद्धः
शुभदो न सङ्कीर्णः ।।१०२।। इति वर्णः ।। साध्यमनूकं वक्त्राद्गोवृषशार्दूलसिंहगरुड-
मुखाः । अप्रतिहतप्रतापा जितरिपवो मानवेंद्राश्च ।।१०३।। वानरमहिषवराहा-
जतुल्यवदनाः सुतार्थसुखभाजः । गर्दभकरभप्रतिमैर्मुखैः शरीरैश्च निःस्वसुखाः
।।१०४।। इत्यनूकम् ।। अष्टशतं षण्णवतिः परिमाणं चतुरशीतिरिति पुंसाम् ।
उत्तमसमहीनानामंगुलसंख्यास्वमानेन ।।१०५।। इत्युन्मानम् । भारार्धतनुः सुख-
भाक् तुलितोऽतो दुःखभाग्भवत्यूनः । भारोऽतीवाढ्यानामध्यर्धः सर्वधरणीशः
।।१०६।। विंशतिवर्षा नारी पुरुषः खलु पञ्चविंशतिभिरब्दैः । अर्हति मानोन्मानं
जीवितभागे चतुर्थे वा ।।१०७।। इति मानम् ।। भूजलशिख्यनिलाम्बरः सुरनररक्षः-
पिशाचकतिरश्चाम् । सत्त्वेन भवति पुरुषो लक्षणमेतद्भवत्येषाम् ।।१०८।।
महीस्वभावः शुभपुष्पगन्धः सम्भोगवान् सुश्वसनः स्थिरश्च । तोयस्वभावो बहुतो-
यपायी प्रियाभिभाषी रसभोजनश्च ।।१०९।। अग्निप्रकृत्या चपलोऽतितीक्ष्णश्चण्डः
क्षुधालुर्बहुभोजनश्च । वायोः स्वभावेन चलः कृतश्च क्षिप्रं च कोपस्य वशं प्रयाति
।।११०।। खप्रकृतिर्निपुणो विवृतास्यः शब्दगतेः कुशलः सुषिराङ्गः । त्यागयुतः
पुरुषो मृदुकोपः स्नेहरतश्च भवेत् सुरसत्त्वः ।।१११।। मर्त्यसत्त्वसंयुतो गीतभूषण-
प्रियः । संविभागशीलवान्नित्यमेव मानवः ।।११२।। तीक्ष्णप्रकोपः खलचेष्टितश्च
पापश्च सत्त्वेन निशाचराणाम् । पिशाचसत्त्वश्चपलो मलाक्तो बहुप्रलापी च
समुल्बणाङ्गः ।।११३।। भीरुः क्षुधालुर्बहुभुक् च यः स्याज्ज्ञेयः स सत्त्वेन नरस्तिर-
श्चाम् । एवं नराणां प्रकृतिः प्रदिष्टा यल्लक्षणज्ञाः प्रवदन्ति सत्त्वम् ।। ११४ ।।
इति प्रकृतिः ।। शार्दूलहंससमदद्विपगोपतीनां तुल्या भवन्ति गतिभिः शिखिनां च
भूपाः । येषां च शब्दरहितं स्तिमितं च यातं तेऽपीश्वरा द्रुतपरिप्लुतगा दरिद्राः।।११५।
इति गतिः ।। श्रान्तस्य यानमशनं च बुभुक्षितस्य पानं तृषापरिगतस्य भयेषु रक्षा ।
एतानि यस्य पुरुषस्य भवन्ति काले धन्यं वदन्ति खलु तं नरलक्षणज्ञाः ।।११६।।पुरुष-

लक्षणमुक्तमिदं मया मुनिमतान्यवलोक्य समासतः। इदमधीत्य नरो नृपसम्मतो भवति सर्वजनस्य च वल्लभः। ।११७।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां पुरुषलक्षणं नामाष्टषष्टितमोऽध्यायः ।।६८।।

अंगुलात्मक उच्चता, तोल, गमन, संहति (अंगसंधियोंकी सुश्लिष्टता), सार, वर्ण, शब्द, प्रकृति, सत्त्व (एक प्रकारका चित्तका धर्म जिसके होनेसे कभी विषाद और भय नहीं होता) अनूक (पूर्वजन्म), क्षेत्र जो दश प्रकारके पाद आदि आगे कहेंगे, मृजा (पंचमहाभूतमयी शरीरच्छाया) इन सब बातोंकी सामुद्रिकशास्त्रका जाननेवाला चतुर पुरुष पहले देखकर मनुष्यों के व्यतीत और भविष्य शुभ अशुभ फल कह सकता है ।। १ ।। स्वेद (पसीना) से हीन, कोमल तलोंसे युक्त, कमलके मध्य भागके समान कांतिवाले, परस्पर मिली हुई अंगुलियोंसे युक्त, चमकदार और लाल रंगके नखोंसे युक्त, सुन्दर एडियोंवाले, उष्ण (गरम) शिराओंसे रहित (जिनमें नाडी न देख पडे), निगूढ गुल्फ (जिनके टंकने ऊँचे न हों) और कूर्मके समान ऊपरसे ऊँचे ऐसे चरण राजाके होते हैं. जिस पुरुषके चरणोंमें ये लक्षण हों वह राजा होता है ।। २ ।। शूर्प (छाज) के आकार आगेसे चौडे, श्वेतरंगके नखोंसे युक्त, टेढे, नाडियोंसे व्याप्त, सूखे और विरल अंगुलियोंवाले चरण हों तो दरिद्र और दुःख देते हैं. मध्यसे ऊँचे मेंडकके आकार चरण हों तो सदा मार्गमें चलाते हैं. कषाय रंग (थोडेसे लाल) के चरण हों तो वंशका विच्छेद करते अर्थात् जिस पुरुषके कषाय रंगके चरण हों उसका वंश नहीं चलता. परिपक्व (अग्निमें पकी हुई) मृत्तिकाके तुल्य जिसके पादतलोंकी कांति हो वह पुरुष ब्रह्महत्या करता है और पीले रंगके चरणवाला पुरुष अगम्या स्त्रीमें आसक्त होता है ।। ३ ।। विरल और सूक्ष्म रोमोंवाला, गोल हाथीकी शुंडके समान सुन्दर ऊरुवाला, मांसयुक्त और समान जानुवाला यह सब लक्षणोंवाला राजा होता है. श्वान और शृंगालके तुल्य जिनकी जंघा हो वे धनहीन होते हैं ।।४।। जिनकी जंघाओंके रोमकूपोंमें एक २ रोम हो वे राजा होते हैं, जिनके एक रोमकूपमें दो दो रोम हों वे पंडित और श्रोत्रिय होते हैं; जिनके एक २ रोमकूपमें तीन २ चार २ आदि रोम हो वे मनुष्य निर्धन और दुःखी होते हैं. इससे मस्तकके केशोंका भी शुभ अशुभ फल जाने ।। ५ ।। जिसकी जानुपर मांस न हो वह पुरुष प्रवासमें मरता है, छोटे जानुवाला भाग्यवान् होता है. विकट जानुवाले दरिद्री होते हैं. जिनके जानु निम्न (नीच) हों वे पुरुष स्त्रीजित होते हैं, मांसयुक्त जानुवालेको राज्य मिलता है और बडे जानु जिन पुरुषोंके हों वे दीर्घायु होते हैं ।। ६ ।। छोटे लिंगवाला पुरुष धनवान् और संतानहीन होता है. स्थूल लिंगवाला धनहीन होता है. जिसका बाईं ओरको लिंग झुका हो वह पुरुष धन और पुत्रोंसे रहित होता है. दाहिनी ओर लिंग झुका हो तो पुत्रवान् होता है, जिसका लिंग नीचेको बहुत झुका हो वह दरिद्री होता है. नाडियोंसे व्याप्त लिंग हो तो वह पुरुष अल्पपुत्रवाला है अर्थात् उसके थोडे पुत्र होते हैं, स्थूल ग्रंथीसे युक्त जिसका लिंग होता है वह सुखी होता है, मृदु लिंगवाला पुरुष प्रमेह आदि रोगोंसे मरता है ।। ७ ।। कोश (चर्मकी थैलीसी) में जिनके लिंग निगूढ हो वे राजा होते हैं, दीर्घ और टूटे हुए लिंगवाले धनहीन होते हैं, सीधे और गोल व छोटे या नाडियोंसे व्याप्त लिंगवाले पुरुष धनवान् होते हैं ।। ८ ।। एकही वृषणवाला पुरुष जलमें डूबकर मरता है. विषम (छोटे बडे) वृषण हों तो स्त्रीलंपट होता

है, वृषण समान हों तो राजा होता है, ऊपरको खींचे हुए वृषणवाला हो तो अल्पायुष होता है और जिस पुरुषके वृषण लम्बे हों उसका आयुष सौ वर्ष होता है ॥९॥ लिंगके अग्रभागकोमणि कहते हैं, लाल रंगकी मणिवाले पुरुष धनवान् होते हैं, श्वेत और मलिन मणि हो तो धनहीन होते हैं, मूत्र करनेके समय शब्द हों वे पुरुष सुखी होते हैं. शब्दरहित जिनकी मूत्रधारा हो वे निर्धन होते हैं ॥ १० ॥ जिनके मूत्रकी धारा दो, तीन अथवा चार हों और दक्षिणावर्त करके वे धारा मूत्रकी गेरें तो वे पुरुष राजा होते हैं, मूत्र करनेके समय जिसका मूत्र बिखरता हो वे धनहीन होते हैं ॥ ११ ॥ एक धार मूत्रकी हो और वह ललित (वेष्टित) हो तो रूपवान् पुत्र देती है जिन पुरुषोंके मणि स्निग्ध, ऊंचे और समान होंवे पुरुष धन, स्त्री और रत्नोंको भोग करनेवाले होते हैं ॥ १२ ॥ जिनके मणि मध्यभागमें निम्न हो वे कन्याओंके पिता होते हैं अर्थात् उनके घरमें कन्या ही जन्मती हैं और वे पुरुष निर्धनभी होते हैं, जिनके मणि मध्यके ऊँचे हों वे बहुत पशुओंके स्वामी होते हैं. बहुत स्थूल जिनके मणि न हों वे धनी होते हैं ॥ १३ ॥ लिंग और नाभिके अन्तर को बस्ति कहते हैं, जिनके बस्तिका उपरिभाग मांसरहित हो वे पुरुष धनहीन और सब मनुष्यों के अप्रिय होते हैं, पुष्पके समान सुगन्धित वीर्यवाले राजा होते हैं ॥ १४ ॥ शहतके समान गन्ध वीर्यमें हो तो बहुत धनवान् हो, मत्स्योंके समान गन्ध वीर्यमें हो तो बहुत सन्तान हो, थोडा वीर्य हो तो कन्याओंका पिता हो, मांसके समान गन्ध वीर्यमें हों तो महाभोगी हो ॥ १५ ॥ मद्यके समान गन्ध वीर्यमें आती हो तो पुरुष यज्ञ करनेवाला हो, खारके तुल्य गन्ध वीर्यमें आती हो तो पुरुष दरिद्री हो, शीघ्रही जो पुरुष मैथुन करे वह दीर्घायुष होता है और जो पुरुष बहुत काल पर्यन्त मैथुन करे वह अल्पायुष होता है ॥ १६ ॥ जिस पुरुषके स्फिक् (कटिस्थ मांसपिण्ड) अति मोटे हों वह निर्धन होता है, सुन्दर मांसयुक्त स्फिक्वाला सुखी होता है, जिस पुरुषके डचोढे हों उसको व्याघ्र मारता है. मेंडकके समान जिसके स्फिक् हों वह पुरुष राजा होता है ॥१७॥ सिंहके समान कटिवाला राजा होता है वानर अथवा उष्ट्रके समान कटिवाला धनहीन होता है, सम (न ऊंचा और न नीचा) उदरवाला पुरुष भोगी होता है, घडे अथवा हांडीके समान पेट हो तो वे पुरुष निर्धन होते हैं ॥ १८ ॥ कटिके ऊपर चार अंगुल भागको पार्श्व कहते हैं, और उदरके मध्यभागको कक्ष्मा कहते हैं, समपार्श्व होनेसे धनी होता है, निम्न और टेढे पार्श्व हों तो धनहीन होता हैं, जिनकी कक्ष्या सम हो वे पुरुष भोगी होते हैं, निम्न कक्ष्या हो तो भोगसे हीन होते हैं ॥ १९ ॥ उन्नत कक्ष्या हो तो राजा होते हैं, विषम (घाटबाध) जिनकी कक्ष्या हो वह मनुष्य कठोर होते हैं, जिन पुरुषोंका उदर सर्पके उदरकी भांति बहुत लम्बा हो वे पुरुष दरिद्री होते हैं और बहुत भोजन करते हैं ॥ २० ॥ गोल, ऊंची और विस्तीर्ण नाभिवाले सुखी होते हैं, छोटी अदृश्य (न देख पड़े) और अनिम्न अर्थात् गहरी न हो ऐसी नाभि दुःखदायक होती है ॥ २१॥ जिसकी नाभि पेटकी बलिके बीच आवे और विषम हो, वह पुरुष शूलीपर चढाया जाता है और निर्धन भी होता है, वामावर्त जिसकी नाभि हो वह पुरुष शठ होता है. दक्षिणावर्त नाभि हो तो उसकी उत्तम बुद्धि हो. दोनों ओर लम्बी नाभि दीर्घायुष करती है, ऊपरको नाभि दीर्घ हो तो पुरुषको ऐश्वर्ययुक्त करती है नीचेको लम्बी हो तो बहुत भोगोंसे युक्त करती है. कमलकी कर्णिकाके तुल्य नाभि हो तो पुरुषको राजा करती है ॥ २२ ॥ २३ ॥ उदरके मध्यमें जो रेखा हों उनको वलि कहते हैं. जिस पुरुषको एक वलि हो उसकी मृत्यु शस्त्रसे होती है. दो बलि हों तो वह पुरुष बहुत स्त्रियोंसे भोग करनेवाला होता है, तीन बलि हों तो आचार्य (उपदेशकर्त्ता) होता है और चार बलि जिस पुरुषके उदरमें हों उसके बहुत पुत्र होते हैं, जिसका उदर

वलिरहित हो वह राजा होता है ।। २४ ।। जिनके उदरमें कोई छोटी कोई बड़ी वलि हो वे पुरुष अगम्या स्त्रीमें गमन करते हैं. जिनके उदरमें सीधी वलि हो वे सुखी और परस्त्रीसे विमुख होते हैं ।। २५ ।। मांसद्वारा पुष्ट कोमल और दक्षिणावर्त रोमोंसे युक्त जिनके पार्श्व हों वे पुरुष राजा होते हैं और मांससे हीन कठोर और वामावर्त रोमोंसे युक्त जिनके पार्श्व हों वे निर्धन, सुखसे हीन और दूसरे पुरुषोंके दास होते हैं ।। २६ ।। स्तनके अग्रभागको चूचुक कहते हैं. जिनके चूचुक ऊपरको खींचे नहीं हो वे पुरुष सुभग होते हैं. जिनके चूचुक छोटे बडे और लम्बे हों वे निर्धन होते हैं, जिनके चूचुक कठिन, पुष्ट और निमग्न अर्थात् ऊंचे न हों वे राजा होते हैं और सुखी रहते हैं ।। २७ ।। ऊंचा, विस्तीर्ण, कंपसे हीन और मांसल हृदय राजाओंका होता है और नीचेंसे सुकडा हुआ और कृश हृदय अधम पुरुषों का होता है. कठोर, रोमोंसे युक्त और नाडियों करके व्याप्त हृदय भी अधमोंका ही होता है ।।२८।। न ऊंची न नीची छातीवाले धनवान् होते हैं. छोटी छातीवाले पुरुषार्थसे हीन होते हैं. विषम छातीवाले धनहीन होते हैं और शस्त्रसे उनकी मृत्यु होती है ।। २९ ।। कंधोंके जोड़ोंको जत्रु कहते हैं, विषम जत्रुवाला पुरुष क्रूर होता है; अस्थियोंकी संधिमें बंधे हुए जत्रु हों तो धनहीन होता है. ऊंचे जत्रुवाला भोगी, निम्न जत्रु हो तो निर्धन और पीन जत्रु हों तो पुरुष धनवान् होता है ।।३० ।। चिपटी ग्रीवावाला पुरुष निर्धन होता है, सूखी और नाडियोंसे युक्त जिसकी ग्रीवा हो वह भी निर्धन होता है, महिषके समान गरदन हो वह शूरवीर होता है. वृषके समान जिसकी ग्रीवा हो उसकी शस्त्रसे मृत्यु है ।।३१।। शंखके तुल्य तीन रेखाओंसे युक्त जिसकी ग्रीवा हो वह राजा होता है, जिसका कण्ठ लम्बा हो वह खाऊ होता है, धन जोडता नहीं, अभग्न (टूटी हुई नहीं) और रोमोंसे रहित पीठ धनवानोंकी होती है, भग्न और रोमोंसे युक्त पीठ निर्धनोंकी होती है ।। ३२ ।। पसीनेसे राहत, पीन, ऊंची, सुगन्धयुक्त, सम और रोमयुक्त कक्षा (कांख) धनवानोंकी होती है और इससे विपरीत कक्षा निर्धनोंकी होती है ।। ३३ ।। मांसरहित रोमोंसे व्याप्त, भग्न और छोटे कंधे निर्धनके होते हैं, विस्तीर्ण अभग्न और सुसंलग्न कंधे सुखी और बली पुरुषोंके होते हैं ।। ३४ ।। हस्तीके शुंडके समान वर्तुल, जानुतक लम्बे, सम, मोटे ऐसे बाहु पृथ्वीपत्तियोंके होते हैं और निर्धनोंके रोमोंसे युक्त, ह्रस्व होते हैं ।। ३५ ।। दीर्घायुवाले पुरुषों, की अंगुली लम्बी होती है सीधी अंगुली सुभग पुरुषोंकी होती है. बुद्धिमानोंकी अंगुली पतली होती है, परसेवा करनेवालों की अंगुली चपटी होती हैं ।। ३६ ।। मोटी अंगुली हों तो निर्धन होते हैं, जिनकी अंगुली बाहरको झुकी हो, उनकी शस्त्रसे मृत्यु होती है. बंदरके तुल्य हाथवाले धनवान् होते हैं. व्याघ्रके तुल्य हाथवाले पापी होते हैं ।। ३७ ।। हस्तके मूल को मणिबंध अर्थात् पहुँचा कहते हैं. जिनके मणिबन्ध निगूढ दृढ व सुश्लिष्ट संधि हों वे राजा होते हैं, छोटे मणिबन्ध हों तो उनके हाथ काटे जाते हैं, ढीले और शब्दसे युक्त जिनके मणिबन्ध हों वे निर्धन होते हैं ।। ३८ ।। जिनकी हथेली निम्न (नीची) हो वह पिताके धनसे रहित होते हैं. सम गोल और निम्न जिनकी हथेली हो वे धनवान् होते हैं. जिनकी ऊँची हथेली हो वे पुरुष दाता होते हैं ।। ३९ ।। विषम हथेली जिनकी हो वे क्रूर और निर्धन होते हैं, लाखके समान लाल रंगकी जिनकी हथेली हो वे ऐश्वर्यवान् होते हैं. पीले रंगकी हथेलीवाले अगम्या स्त्रीमें गमन करते हैं, रुखी हथेलीवाले निर्धन होते हैं ।। ४० ।। तुषोंके समान रेखाओंसे युक्त जिनके नख हों वे नपुंसक होते हैं. चपटे और फूटे जिनके नख हों वे निर्धन होते हैं बुरे नखवाले और रंगसे हीन नखवाले पुरुष दूसरेकी बातमें तर्क करनेवाले होते हैं, तांबेके समान लाल रंगके जिनके नख

हों वे सेनापति होते हैं ।। ४१ ।। अंगुष्ठोंके मध्यमें जिनके जौ होय वे धनाढच होते हैं. अंगुष्ठ मूलमें जो चिह्न हों तो वे पुत्रवान् होते हैं. जिनकी अंगुलियोंके पौरुवे लंबे हों वे पुरुष सुभग और दीर्घायु होते हैं ।। ४२ ।। जिनके हाथकी रेखा स्निग्ध और गहरी हो वे धनवान् होते हैं। जिनकी रेखा रूखी और निम्न न हो वे निर्धन होते हैं, जिनके हाथोंकी अंगुली विरल हों वे निर्धनी होते हैं और घन अंगुलियाँवाले धनका संचय करते हैं ।। ४३ ।। पहुंचेसे निकलकर तीन रेखा जिसकी हथेलीमें जांय वह राजा होता है, जिसके हाथमें दो मत्स्यरेखा हों वह नित्य सदा-वर्त देनेवाला होता है ।। ४४ ।। वज्रके आकार (मध्यसे पतला और दोनों ओर मोटा) रेखा हाथमें हो तो धनवान् होता है, मत्स्यके पुच्छके समान रेखा हाथमें हो तो विद्वान होते हैं. शंख, छत्र, पालकी, हाथी, घोडा और कमलके आकारकी रेखा हाथमें हों तो राजा होते हैं ।। ४५ ।। कलश, कमलकी जडके आकार अर्थात् मध्यमें ग्रन्थित युक्त रेखा जिनके हाथमें हों, पताका, अंकुशके आकारकी रेखा जिनके हाथमें हों वे भूमिमें धन गाडते हैं। दाम (रस्सी) आकारकी रेखा हाथमें हो तो धनाढच होते हैं, स्वस्तिकके आकारकी रेखा हो तो ऐश्वर्य होता है ।। ४६ ।। चक्र, खड्ग, फरशा, तोमर, बर्छी, धनुष, मालाके आकारकी, रेखा हाथमें हो तो सेनापति होते हैं, ऊखलके आकारकी रेखा हाथमें, हो तो यज्ञ करनेवाला होता है ।। ४७ ।। मकर, ध्वज, कोष्ठागारके आकारकी रेखा हाथमें हो तो पुरुष बहुत धनवान् होते हैं. वेदीके आकार जिनका ब्रह्मतीर्थ हो वे अग्निहोत्री होते हैं (अगुष्ठमूलको) ब्रह्मतीर्थ कहते हैं) ।। ४८ ।। वापी, देवमंदिर आदिके समान आकारकी रेखा हो और त्रिकोण रेखा हो तो वे धर्म करते हैं, अंगुष्ठमूलकी रेखा संतानकी है, उनमें जितनी रेखा सूक्ष्म हों उतनी कन्या होती हैं, जितनी रेखा स्थूल हों उतने पुत्र होते हैं ।। ४९ ।। तर्जनी अंगुली तक जिनकी रेखा पहुंचे वे सौ वर्षकी आयु पाते हैं, छोटी रेखा हो तो अनुमानसे आयु जाने, टूटी रेखा हाथमें हो तो [1]वृक्षसे गिरे, जिनके हाथमें बहुत रेखा हों अथवा रेखा न हों वे निर्धन होते हैं ।। ५० ।। बहुत कृश और लम्बी ठोडी हो तो निर्धन होते हैं, मांससे चिबुक पुष्ट हो तो धनवान् होते हैं, कन्दूरी के समान रक्तवर्ण और अवक्र नीचेका ओष्ठ हो तो राजा होते हैं, छोटा अधर (नीचेका ओष्ठ) हो तो निर्धन होते हैं ।। ५१ ।। फूटे हुए, खंडित, बुरे रंगके और रूखे ओष्ठ हों तो वे पुरुष धनहीन होते हैं, स्निग्ध घन (गहरे) तीखी डाढोंसे युक्त और समान दांत शुभ होते हैं ।। ५२ ।। रक्तवर्ण, लम्बी, श्लक्षण और समान जीभ हो तो भोगी होते हैं, श्वेत, कृष्ण और रूखी जिह्वा हो तो धनहीन होते हैं, यही लक्षण तालुका भी जाने ।।५३।। सौम्य, संवृत्त, निर्मल, श्लक्षण और सम वक्र (चेहरा) राजाओंका होता है, इससे विरुद्ध अर्थात् असौम्य, असंवृत; अश्लक्षण और विषम वक्र क्लेश भोगनेवाले पुरुषोंका होता है, बहुत फैला हुआ मुख दुर्भग पुरुषोंका होता है ।। ५४ ।। स्त्रीकासा मुख जिन पुरुषोंका हो वे संतानसे हीन होते हैं, गोल मुखवाले पुरुष शठ होते हैं, लम्बे मुखवाले धनहीन होते हैं, भयभीत दीख पडे वह पापी होते हैं ।।५५।। धूर्तोंका मुख चौखुंटा होता है, निम्न मुख पुत्रहीन पुरुषोंका होता है, कंजूसपुरुषोंका मुख बहुत छोटा होता है, सम्पूर्ण और मनोहर जिनका मुख हो वे भोगी होते हैं ।। ५६ ।। जिनके बाल आगेसे फटे न हों, स्निग्ध हों, कोमल, सन्नत अर्थात् भली भांति नीचेको झुकी हुई दाढी हो तो शुभ है, लालरंगकी रूखी और अल्प दाढी जिनकी

---

१ इस रेखाका छिन्न स्थान अनुपात करके जितने वर्षोंके अंशमें मिलेगा, उतने वर्षोंमें वह वृक्ष से गिरेगा।

हो वे चोर होते हैं ।। ५७ ।। जिनके कर्ण मांसरहित हों उनकी मृत्यु पापकर्मसे होती है, चपटे कानवाले बड़े भोगी होते हैं, छोटे कानोंवाले कृपण होते हैं, शंकुके तुल्य आगेसे तीखे कर्णवाले सेनापति होते हैं, ।। ५८ ।। रोमोंसे युक्त कर्ण हों तो दीर्घायु पाते हैं, बड़े कानवाले धनवान् होते हैं, नाडियोंसे व्याप्त कानवाले हों तो वे पुरुष क्रूर होते हैं. लम्बे और मांससे पुष्ट कानवाले सुखी होते है ।।५९।। जिसके कपोल ऊँचे हों वह भोगी होता है, मांससे पुष्ट जिसके गंड हो वह राजाका मंत्री होता है, शुक (तोते) के समान जिसकी नासिका हो वह भोगी होता है. सूखी अर्थात् निर्मांस जिसकी नासिका होय वह दीर्घजीवी होता है ।। ६० ।। जिसकी नासिका कटीसी दिखाई दे वे अगम्या स्त्रीसे गमन करनेवाले होते हैं, लम्बी नासिका हो तो सौभाग्य होता है. आकुंचित (ऊपरको खींची हुई) नासिकावाला चोर होता है. चपटी नासिकावाला स्त्रीके हाथ मारा जाता है, आगेसे टेढी जिनकी नासिका होवे वे धनी होते हैं, दाहिनी ओर डेढ़ी जिनकी नासिका हो वे धनी होते हैं, दाहिनी ओर टेढी जिनकी नासिका हो वे खाऊ और क्रूर होते हैं, सीधी छोटे छिद्रों-से युक्त सुन्दर पुटोंवाली नासिकावाले भाग्यवान् होते हैं ।। ६१ ।। ६२ ।। एक वार छीके वे धनवान् होते हैं. दो तीन वार मिला हुआ ह्लादि अनुनाद करके युक्त प्रयुक्त (अतिदीर्घ) और सहत जो पुरुष छीके वे दीर्घायु होते हैं ।। ६३ ।। कमलदलके तुल्य नेत्रवाले धनवान् होते हैं जिनके नेत्रोंके अंत लाल हों वे लक्ष्मीवान् होते हैं, शहतके तुल्य पिंगल रंगके नेत्रवाले बडे धनवान होते हैं, बिल्लीके तुल्य कंजे नेत्र हों तो पापी होते हैं ।। ६४ ।। हरिणके तुल्य नेत्र हों और गोल नेत्र हों और जिह्म (अचल) नेत्र जिनके हों वे चोर होते हैं, भैंगे नेत्र हों वे क्रूर होते हैं, हाथीके तुल्य नेत्र हों तो सेनापति होते हैं ।।६५।। गहरे नेत्र हों तो ऐश्वर्य होता है, नीले कमलके समान कान्तिके नेत्र विद्वान् पुरुषोंके होते हैं, जिन नेत्रोंका तारा अति कृष्ण हो वे नेत्र उखाडे जाते हैं ।। ६६ ।। मोटे नेत्र हों तो राजाके मंत्री होते हैं, कपिश रंगके नेत्र हों तो सौभाग्य होता है जिनके नेत्र दीन हों वे निर्धन होते हैं, स्निग्ध और बडे नेत्रवाले धनवान् और भोगी होते हैं ।। ६७ ।। मध्यसे जिनकी भ्रू ऊँची हो वे अल्पायु होते हैं, बडी और ऊँची भ्रू हो तो अतिसुखी होते हैं, छोटी बडी भ्रू हो तो दरिद्री होते हैं, बालचन्द्रमाकी भांति जिनकी झुकी भ्रू हो वे धनवान् होते हैं ।। ६८ ।। लम्बी और परस्पर न मिली हुई जिनकी भ्रू हो वे धनवान् होते हैं. टूटी हुई भ्रू हो तो धनहीन होते हैं. मध्यसे जिनकी भ्रू न हो वे पुरुष अगम्या स्त्रियोंमें आसक्त होते हैं ।। ६९ ।। ऊँची और बडी कनपटी हों तो धनी होते हैं, निम्न शंख हो तो पुत्र और धनसे हीन होते हैं. जिनका ललाट टेढा हो वे निर्धन होते हैं. अर्धचन्द्रके तुल्य जिनका ललाट हो वे धनवान् होते हैं ।।७०।। सीपके समान विस्तीर्ण जिनके ललाट हों उनको आचार्यता होती है, नाडियोंसे व्याप्त जिनका ललाट हो व अधर्म करनेमें तैयार रहते हैं, ललाटके बीच ऊँची नाडी हो वा स्वस्तिककी भांति स्थित हो वे पुरुष धनाढ्य होते हैं ।। ७१ ।। जिनके ललाट निम्न हों वे वध और बन्धनके भागी होते हैं और क्रूर कर्म करनेमें तत्पर रहते हैं ऊँचे ललाट हों वे पुरुष राजा होते हैं. गोल ललाट होनेसे कृपण होते हैं ।। ७२ ।। दीनतासे हीन, अश्रुओंसे हीन और स्निग्ध रोदन (रोना) मनुष्योंको शुभ होता है. रूक्ष, दीन और बहुत अश्रुओं करके युक्त रोदन पुरुषोंको शुभदायी नहीं ।।७३।। हँसनेके समय शरीर न कांपे तो हँसना शुभ होता है, नेत्र मुदकर हँसनेवाले पापी होते हैं, दोषयुक्त पुरुष वारंवार हँसता है, हँसनेके अन्तमें वारंवार हँसना उन्मादयुक्त पुरुषका लक्षण है ।। ७४ ।। ललाटमें लम्बी रेखा तीन हो तो पुरुषका आयु शत वर्ष होता है और चार रेखा ललाटमें हो तो राजा होता है और पिचानवें वर्ष आयुष होता है ।। ७५ ।। टूटी हुई रेखा ललाटमें हो तो पुरुष

अगम्या स्त्रीमें गमन करनेवाले होते है और नब्बे वर्ष उनका आयुष होता है, ललाटमें एक भी रेखा न हो तो भी नब्बे वर्ष आयुष होता है, केशोंकी जहां उत्पत्ति हो उनको केशांत कहते हैं, ललाट-में केशांततक रेखा पहुँची हो तो अस्सी वर्षकी आयु होती है ।। ७६ ।। पांच रेखा ललाटमें हों तो सत्तर वर्षकी आयु होती है, सब रेखाओंके अग्र मिल गये हों तो साठ वर्षकी आयु होती है, छः सात आदि बहुत रेखा ललाटमें हों तो पचास वर्षकी आयु होती है, टेढी रेखा ललाटमें हो तो चालीस वर्षकी आयु होती है ।।७७।। भ्रूसे रेखा लग जाय तो तीस वर्षकी आयृ होती है. वाम भागमें टेढी रेखा हो तो बीस वर्षकी आयु होती है. छोटी रेखा हो तो बीस वर्षसे ही कम आयु होती है. न्यून रेखा अर्थात् एक दो रेखा हों तो भी बीससे न्यूनही आयु होती है, इन रेखाओंसे मध्यमें कल्पना करे आयु जान लो. जैसा तीन रेखा होनेसे सौ वर्ष और चार रेखा होनसे पिचानवें वर्षकी आयु कहना, साढे तीन रेखा होनेसे साढे सतानवें वर्ष आयुकी कल्पना करनी चाहिये, ऐसेही और भी जानो।।७८।।गोल शिर जिनका हो वे बहुत गायोंसे युक्त होते हैं,छत्रके आकार ऊपरसे विस्तीर्ण शिर हो तो राजा होते हैं. चपटे शिरके पुरुष माता पिताका वध करते हैं, करोटिके आकार जिनका शिर हो वे बहुत दिन जीते हैं ।। ७९ ।। घटके आकार जिनका शिर हो वे पापी और निर्धन होते हैं. निम्न शिर जिनका हो वे प्रतिष्ठित पुरुष होते हैं परन्तु अतिनिम्न हो तो अनर्थ करते है ।।८०।। एक रोमकूपमें एक २ रोम उत्पन्न हों, कृष्ण, स्निग्ध, आकुंचित (थोडेसे कुटिल) अग्र जिनके, नहीं फूटे हुए, कोमल और बहुत घने नहीं ऐसे केश जिन मनुष्योंके हों वे सुखी होते हैं अथवा राजा होते हैं ।।८१।। एक २ रोमकूपसे बहुतसे उत्पन्न हुए हों, कोई बडे कोई छोटे कपिल रंग, मोटे, आगेसे फटे हुए, रूखे, छोटे व बहुत कुटिल और बहुत घने केश निर्धनोंके होते हैं ।।८२।। जो जो अंग रूखा, मांससे हीन और नाडियोंसे व्याप्त हो वह अंग अशुभ होता और जो अंग स्निग्ध, पुष्ट और नाडियोंसे रहित हो वह शुभ होता है ।। ८३ ।। जिसके अंग विस्तीर्ण हों, तीन अंग गंभीर हों छः अंग ऊँचे हों, चार अंग ह्रस्व (छोटे) हों, सात अंग रक्तवर्ण हों, पांच अंग दीर्घ हों और पांच अंग सूक्ष्म हों वह राजा होता है ।। ८४ ।। छाती, ललाट और वदन यह तीन अंग विस्तीर्ण हों तो श्रेष्ठ होते हैं. नाभि, शब्द और सत्त्व (एक प्रकारका चितका गुण) यह तीन गंभीर हों तो मनुष्योंमें श्रेष्ठ होते हैं ।। ८५ ।। छाती, कक्ष्या (शरीरका मध्यभाग), नख, नासिका, मुख, कृकाटिका (घेंटू) ये छःअंग ऊंचे चाहिये, लिंग, पीठ, गरदन और जंघा यह चार ह्रस्व हों तो शुभ होते हैं ।। ८६ ।। नेत्रोंके अंत, पादतल हस्त, तालु, अधर (नीचेका ओष्ठ), जिह्वा, नख यह सात अंग रक्तवर्ण हों तो सुख देते हैं. दांत, अंगुलियोंके पोरुवे, केश, त्वचा (चर्म), नख यह पांच सूक्ष्म (पतले) दुःखी पुरुषोंके नहीं होते अर्थात् यह पांच जिनके सूक्ष्म हों वे सुखी रहते हैं ।। ८७ ।। हनु, नेत्र, भुजा, नासिका. दोनों स्तनोंका मध्यभाग यह पांच अंग दीर्घ राजाओंके विना और मनुष्योंके नहीं होते. यह शरीरके अंगोंका शुभ अशुभ फल कहा ।। ८८ ।। लक्षण जाननेवाले पुरुषोंको मनुष्य, पशु और पक्षियोंमें शुभ अशुभ फल सूचना करती हुई और स्फटिक रत्नके घटमें स्थित दीपप्रभाकी भांति शरीरके भीतर स्थित होकर भी तेजके गुणोंको बाहर प्रकाश करती हुई छाया (शरीरकांति) देखनी योग्य है ।। ८९ ।। जिस समय पुरुष आदिके ऊपर भूमिकी छाया हो तब उसके दांत, त्वचा, नख, रोम, शिरके केश स्निग्ध रहते हैं और शरीरमें सुगंध रहती है वह भूमिकी छाया तुष्टि (चित्तपरितोष), धनका लाभ, अभ्युदय करती है दिन २ धर्मकी प्रवृत्ति करती है ।। ९० ।। जलकी छाया स्निग्ध, श्वेत, स्वच्छ और हरी व नेत्रोंको प्रिय लगनेवाली होती है. वह छाया सौभाग्य सब मनुष्योंकी

प्रियता, कोमलता सुख और अभ्युदय करती है, सब कार्योंकी सिद्धि करनेवाली होती है और माताकी भांति पुरुष आदि जीवोंको शुभ फल देती है ।। ९१ ।। अग्निकी छाया (क्रोधशील) अधृष्या (जिसका कोई तिरस्कार न कर सके), कमल, सुवर्ण और अग्निके तुल्य वर्ण, तेज पराक्रम और प्रतापसे युक्त होती है, ऐसी अग्निकी छाया जीवोंको जय देती है शीघ्रही वांछित अर्थकी सिद्धि करती है ।। ९२ ।। वायुकी छाया मलिन, रूखी, काली और दुर्गन्धयुक्त होती है, वह छाया मरण बंधन, रोग, अनर्थ और धनका नाश करती है. आकाशकी छाया स्फटिकके समान अति निर्मल होती है, वह छाया भाग्ययुक्त और अति उदार होती है और कल्याणोंका मानों निधान होती है और स्वच्छ होती है ।। ९३ ।। क्रमसे भूमि, जल, अग्नि, वायु और आकाशकी पांच छाया कही और गर्गादि कोई मुनि दश छाया कहते हैं, उनके मतमें पांच छाया तो भूमि आदिकी और पांच छाया सूर्य, विष्णु, इन्द्र, यम और चन्द्रकी हैं, परन्तु इन छायाओंके लक्षण और फल भूमि आदिकी छायाओंके बराबरही है कारण हमने दश छायाका संक्षेप करके पांच छाया रक्खी हैं, यह मृजा (पंचमहाभूतमयी छाया) का लक्षण कहा है ।।९४।। हाथी, वृष, रथसमूह भेरी, मदंग, सिंह और मेघके तुल्य जिनका शब्द हो वे भूप होते हैं, जर्जर और रूखा जिनका स्वर हो वे धन और सुखसे हीन होते हैं. यह स्वरका लक्षण कहा ।। ९५ ।। मेद (अस्थियोंके भीतर-का स्नेह), मज्जा (कपालके भीतरका स्नेह), त्वचा (चर्म), अस्थि, वीर्य, रुधिर और मांस यह सात प्राणियोंके शरीरमें सार होते हैं, अब संक्षेपसे इनका फल कहा जाता है ।। ९६ ।। जिनके तालु, ओठ, दंत, मांस, जिह्वा, नेत्रोंके अंत, गुदा, हाथ, पैर रक्तवर्ण हों वह रुधिर सारवाले पुरुष बहुत सुख, स्त्री, धन और पुत्रोंसे युक्त होते हैं ।। ९७ ।। चिकनी त्वचा हो तो धनी होता है. कोमल त्वचा हो तो सुभग होते हैं और पतली त्वचा हो तो पंडित होते है, मज्जा और मेद जिनके शरीरमें सार हो उनका देह सुन्दर होता है ।। ९८ ।। अस्थिसारवालोंके शरीरमें हाड मोटे होते हैं. वह पुरुष बलवान्, विद्याके अंतको पहुँचनेवाला और सुरूप होता है. जिनका वीर्य बहुत और गाढा हो वे वीर्यसार होते हैं, वीर्यसार पुरुष सुभग विद्वान् और रूपवान् होते हैं ।। ९९ ।। पुष्टशरीर-वाला प्राणी मांससार होता है, मांससार मनुष्य विद्वान्, धनवान् और सुरूप होता है, यह सारका लक्षण कहा, अंगोंकी संधियोंकी सुश्लिष्टताको संघात कहते हैं संघातवाले पुरुष सुखभोगी होते हैं ।। १०० ।। वचन, जीभ, दांत, नेत्र और नख इन पांचोंमें स्थित स्नेह देखना चाहते हैं, ये पांचों जिनके स्निग्ध हों वे पुत्र, धन और सौभाग्यसे युक्त होते हैं और वह रूक्ष हों तो निर्धन होते हैं ।। ११ ।। गौर श्याम चाहे जिस वर्णके रंगका शरीर हो, परन्तु वह वर्ण स्निग्ध और कांतिमान् राजाओंका होता है, मध्यम (न रूखा न स्निग्ध) वर्ण पुत्र और धनवालोंका होता है, रूक्ष वर्ण धन हीन पुरुषोंका होता है. स्निग्ध वर्ण शुभ होता है, संकीर्ण (कहीं रूक्ष कहीं स्निग्ध) वर्ण शुभ नहीं होता, यह वर्णका लक्षण कहा ।। १०२ ।। मुखको देखकर पूर्वजन्म जानो, गौ, बैल, व्याघ्र, सिंह और गरुडके तुल्य जिनका मुख हो उनका पूर्वजन्म शुभ होता है और वे पुरुष अप्रतिहत प्रताप व शत्रुओंको जीतनेवाले और राजा होते हैं ।। १०३ ।। बंदर, महिष, शूकर और बकरेके तुल्य जिनके मुख हों वे शास्त्र, धन और सुखसे युक्त होते हैं, इनका पूर्वजन्म मध्यम है, गर्दभ और ऊंटके तुल्य जिनके मुख और शरीर हों, वे पुरुष निर्धन और सुखहीन होते हैं, इनका पूर्वजन्म अशुभ है यह अनूक (पूर्वजन्म) का लक्षण कहा है ।।१०४।। अपने अंगुलोंसे एक सौ आठ अंगुल ऊंचा हो वह पुरुष उत्तम होता है, छियानवें अंगुल ऊंचा हो वह मध्यम, चौरासी अंगुल ऊँचा अधम होता है, यह ऊँचाईका लक्षण कहा है. पैरके अग्रसे शिरके मध्यम भागतक मापना चाहिये ।। १०५ ।।

दो हजार पलका एक भार होता है. जिस पुरुषका बोझ आधा भार हो वह सुख भोगता है, इससे कम हो तो दु:खी रहता है, एक भार (दो हजार पल) जिनका बोझ हो वे अति धनवान् होते हैं, ढेढ भार (तीन हजार पल) जिनके शरीरका बोझ हो वे चक्रवर्ती राजा होते हैं ।। १०६ ।। बीस वर्षकी अवस्थामें स्त्री और पचीस वर्षकी अवस्थामें पुरुष मापने और तौलने चाहिये अथवा गणित आदिसे जितना उनका आयु निश्चित हुआ हो उसकी चौथाई बीत चुके उस समय नापे और तोले ।। १०७ ।। भूमि, जल, अग्नि वायु, आकाश, देवता, मनुष्य, राक्षस, पिशाच और पशु पक्षी इनका सत्त्व (प्रकृति) पुरुषमें होता है उनका यह लक्षण कहते हैं ।। १०८ ।। पृथ्वीकी प्रकृति-वाले मनुष्यकी सुन्दर कमलादि पुष्पोंके समान गंध होती है, वह पुरुष भोगी, सुगन्धश्वास वाला और स्थिरस्वभावी होता है, जलप्रकृतिका मनुष्य बहुत जल पीता है. मीठा बोलनेवाल· और मधुर आदि रस भोजन करनेमें रुचिवान् होता है ।। १०९ ।। अग्निप्रकृतिका मनुष्य चपल, अतितीक्ष्ण और क्रूर होता है. क्षुधाको नहीं सह सकता, बहुत भोजन करता है. वायु-प्रकृतिका मनुष्य चंचल, दुर्बल और शीघ्रही क्रोधके वश हो जाता है ।। ११० ।। आकाशप्रकृतिका मनुष्य सब काममें निपुण, खुले मुखवाला शब्दगति (गीतविद्या) में कुशल और उसके अंग छिद्रयुक्त होते हैं. देवप्रकृतिका मनुष्य त्यागी, अल्पक्रोध और प्रीतियुक्त होता है ।। १११ ।। मनुष्यप्रकृतिके मनुष्यको गीत और भूषण प्रिय होते हैं. वह नित्य बांधवोंके ऊपर उपकार करने वाला और शीलवान् होता है ।।११२।। राक्षस प्रकृतिका मनुष्य बहुत क्रोधी, दुष्टस्वभाव और पापी होता है. पिशाच प्रकृतिका मनुष्य चंचल, मलिन शरीर, बहुत बकनेवाला और स्थूल अंगोंसे युक्त होता है ।। ११३ ।। तिर्यक्प्रकृतिका मनुष्य डरनेवाला, भूंख न सहनेवाला और बहुत भोजन करनेवाला जानना चाहिये, इस प्रकार मनुष्योंकी प्रकृति कही. जिस प्रकृतिको पुरुषलक्षण जानने वाले विद्वान्, सत्य कहते हैं. यह प्रकृतिका लक्षण कहा ।। ११४ ।। शार्दूल, हंस, मस्त हाथी, बैल और मयूरके समान जिनकी गति हो वे राजा होते हैं. जिनकी गति शब्दरहित और मंद हो वे भी धनवान् होते हैं. शीघ्र और मेंढककी भांति उछलते हुए पुरुष गमन करें वे पुरुष दरिद्री होते हैं. यह गतिका लक्षण कहा ।। ११५ ।। थके हुए को यान (सवारी) भूंखेको भोजन, प्यासेको जल आदि पान और भयके समय रक्षा यह सब बात जिस पुरुषको अवसरके ऊपर प्राप्त हों मनुष्य लक्षणवाले उस पुरुषको धन्य (शुभलक्षण) कहते हैं ।। ११६ ।। अनेक मुनियोंके मत देखकर संक्षेपसे यह पुरुष लक्षण हमने कहा, इसको पढकर मनुष्य राजाका मान्य और सब मनुष्योंका प्यारा होता है ।। ११७ ।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायामष्टषष्टितमोऽध्यायः ।।६८।।

अथैकोनसप्ततितमोऽध्यायः

पंचमहापुरुषलक्षणम्

ताराग्रहैर्बलयुतैः स्वक्षेत्र स्वोच्चगैश्चतुष्टयगैः । पञ्च पुरुषाः प्रशस्ता जायन्ते तानहं वक्ष्ये ।।१।। जीवेन भवति हंसः सौरेण शशः कुजेन रुचकश्च । भद्रो बुधेन

बलिना मालव्यो दैत्यपूज्येन॥२॥सत्त्वमहीनं सूर्याच्छारीरं मानसं च चन्द्रबलात् । यद्राशिभेदयुक्तावेतौ तल्लक्षणः स पुमान् ॥३॥ तद्धातुमहाभूतप्रकृतिद्युतिवर्णसत्त्वरूपाद्यैः । अबलरवीन्दुयुतैस्तैः सङ्कीर्णा लक्षणैः पुरुषाः ॥४॥ भौमात्सत्त्वं गुरुता बुधात्सुरेज्यात्स्वरः सितात्स्नेहः । वर्णः सौरादेषां गुणदोषैः साध्वसाधुत्वम् ॥५॥ सङ्कीर्णाः स्युर्न नृपा दशासु तेषां भवंति सुखभाजः । रिपुगृहनीचोच्चच्युतसत्पापनिरीक्षणैर्भेदः ॥६॥ षण्णवतिरंगुलानां व्यायामो दीर्घता च हंसस्य । शशरुचकभद्रमालव्यसंज्ञितास्त्र्यंगुलविवृद्ध्या ॥७॥ यः सात्त्विकस्तस्य दया स्थिरत्वं सत्त्वार्जवं ब्राह्मणदेवभक्तिः । रजोऽधिकः काव्यकलाक्रतुस्त्रीसंसक्तचित्तः पुरुषोऽतिशूरः ॥८॥ तमोऽधिको वञ्चयिता परेषां मूर्खोऽलसः क्रोधपरोऽतिनिद्रः । मिश्रैर्गुणैः सत्त्वरजस्तमोभिर्मिश्रास्तु ते सप्त सह प्रभेदैः ॥९॥ मालव्यो नागनासासमभुजयुगलो जानुसम्प्राप्तहस्तो मांसैः पूर्णाङ्गसन्धिसमरुचिरतनुर्मध्यभागे कृशश्च । पञ्चाष्टौ चोर्ध्वमास्यं श्रुतिविवरमपि त्र्यंगुलोनं च तिर्यग् । दीप्ताक्षं सत्कपोलं समसितदशनं नातिमांसाधरोष्ठम् ॥१०॥ मालवान् समरुकच्छसुराष्ट्रान् लाटसिन्धुविषयप्रभृतींश्च । विक्रमार्जितधनोऽवति राजा पारियात्रनिलयः कृतबुद्धिः ॥११॥ सप्ततिवर्षो मालव्योऽयं त्यक्ष्यति सम्यक्प्राणांस्तीर्थे । लक्षणमेतत् सम्यक् प्रोक्तं शेषनराणां चातो वक्ष्ये ॥१२॥ उपचितसमवृत्तलम्बबाहुर्भुजयुगलप्रमितः समुच्छ्रयोऽस्य । मृदुतनुघनरोमनद्धगण्डो भवति नरः खलु लक्षणेन भद्रः ॥१३॥ त्वक्शुक्रसारः पृथुपीनवक्षाः सत्त्वाधिको व्याघ्रमुखः स्थिरश्च । क्षमान्वितो धर्मपरः कृतज्ञो गजेन्द्रगामी बहुशास्त्रवेत्ता ॥१४॥ प्राज्ञो वपुष्मान् सुललाटशंखः कलास्वभिज्ञो धृतिमान् सुकुक्षिः । सरोजगर्भद्युतिपाणिपादो योगी सुनासः समसंहतभ्रूः ॥१५॥ नवाम्बुसिक्तावनिपत्रकुंकुमद्विपेन्द्रदानागुरुतुल्यगंधता । शिरोरुहाश्चैकजकृष्णकुञ्जितास्तुरङ्गनागोपमगूढगुह्यता ॥१६॥ हलमुशलगदासिशंखचक्रद्विपमकराब्जरथाङ्कितांघ्रिहस्तः । विभवमपि जनोऽस्य बोभुजीति क्षमति हि न स्वजनं स्वतन्त्रबुद्धिः ॥१७॥ अंगुलानि नवतिश्च षडूनान्युच्छ्रयेण तुलयापि हि भारः । मध्यदेशनृपतिर्यदि पुष्टास्त्र्यादयोऽस्य सकलावनिनाथः ॥१८॥ भुक्त्वा सम्यग्वसुधां शौर्येणोपार्जितामशीत्यब्दः । तीर्थे प्राणांस्त्यक्त्वा भद्रो देवालयं याति ॥१९॥ ईषद्दन्तुरकस्तनुद्विजनखः कोशेक्षणः शीघ्रगो विद्याधातुवणिक्क्रियासु निरतः सम्पूर्णगण्डः शठः । सेनानीः प्रियमैथुनः परजनस्त्रीसक्तचित्तश्चलः शूरो मातृहितो वनाचलनदीदुर्गेषु सक्तः शशः ॥२०॥ दीर्घोऽङ्गुलानां शतमष्टहीनं साशङ्कचेष्टःपररन्ध्रविच्चसारोऽस्य मज्जा निभृतप्रचारः शशो ह्ययं नातिगुरुःप्रदिष्टः ॥२१॥ मध्ये कृशः खेटकखड्गवीणापर्यङ्कमालामुरजाऽनुरूपाः । शूलोपमाश्चोर्ध्वगताश्च रेखाः शशस्य पादोपगताः करे वा ॥२२॥ प्रात्यन्तिको माण्ड-

लिकोऽथवायं स्फिक्स्त्रावशूलाऽभिभवार्तमूर्तिः । एवं शशः सप्ततिहायनोऽयं वैवस्वतस्यालयमभ्युपैति ।।२३।। रक्तं पीनकपोलमुन्नतनसं वक्त्रं सुवर्णोपमं वृत्तं चास्य शिरोऽक्षिणी मधुनिभे सर्वे च रक्ता नखाः । स्रग्दामांकुशशंखमत्स्ययुगलक्रत्वङ्गकुम्भांबुजैश्चिह्नैर्हंसकलस्वनः सुचरणो हंसः प्रसन्नेन्द्रियः ।।२४।। रतिरम्भसि शुक्रसारता द्विगुणे चाष्टशतैः पलैर्मितिः । परिमाणमथास्य षड्युता नवतिः सम्परिकीर्तिता बुधैः ।।२५।। भुनक्ति हंसः खसशूरसेनान् गान्धारगङ्गायमुनान्तरालम् । शतं दशोनं शरदां नृपत्वं कृत्वा वनान्ते समुपैति मृत्युम् ।।२६।। सुभ्रू केशो रक्तश्यामः कम्बुग्रीवो व्यादीर्घास्यः । शूरः क्रूरः श्रेष्ठो मंत्री चौरस्वामी व्यायामी च ।।२७।। यन्मात्रमास्यं रुचकस्य दीर्घं मध्यप्रदेशे चतुरस्त्रता सा । तनुच्छविः शोणितमांससारो हन्ता द्विषां साहससिद्धकार्यः ।। २८ ।। खट्वाङ्गवीणावृषचापवज्रशक्तीन्दुशूलाङ्कितपाणिपादः । भक्तो गुरुब्राह्मणदेवतानां शतांगुलः स्यात्तु सहस्रमानः ।।२९।। मंत्राभिचारकुशलः कृशजानुजंघो विन्ध्यं ससह्यगिरिमुज्जयिनीं च भुक्त्वा । सम्प्राप्य सप्ततिसमा रुचको नरेन्द्रः शस्त्रेण मृत्युमुपयात्यथ वानलेन ।।३०।। पञ्चापरे वामनको जघन्यः कुब्जोऽपरो मण्डलकोऽथ सामी । पूर्वोक्तभूपानुचरा भवन्ति सङ्कीर्णसंज्ञाः शृणु लक्षणैस्तान् ।।३१।। सम्पूर्णाङ्गो वामनो भग्नपृष्ठः किञ्चिच्चोरुर्मध्यकक्षान्तरेषु । ख्यातो राज्ञो ह्येष भद्रानुजीवी स्फीतो दाता वासुदेवस्य भक्तः ।।३२।। मालव्यसेवी तु जघन्यनामा खण्डेन्दुतुल्यश्रवणः सुगन्धिः । शक्रेण सारः पिशुनः कविश्च रूक्षच्छविः स्थूलकरांगुलीकः ।।३३।। क्रूरो धनी स्थूलमतिः प्रतीतस्ताम्रच्छविः स्यात्परिहासशीलः । उरोऽङ्घ्रिहस्तेष्वसिशक्तिपाशपरस्वधाङ्कश्च जघन्यनामा ।।३४।। कुब्जो नाम्ना यः स शुद्धो ह्यधस्तात् क्षीणः किञ्चित्पूर्वकाये नतश्च । हंसासेवी नास्तिकोऽर्थैरुपेते विद्वाञ्छूरः सूचकः स्यात् कृतज्ञः ।।३५।। कलास्वभिज्ञः कलहप्रियश्च प्रभूतभृत्यः प्रमदाजितश्च । सम्पूज्य लोकं प्रजहात्यकस्मात् कुब्जोऽयमुक्तः सततोद्यतश्च ।।३६।। मण्डलकनामधेयो रुचकानुचरोऽभिचारवित्कुशलः । कृत्यावैतालादिषु कर्मसु विद्यासु चानुरतः ।।३७।। वृद्धाकरः खररूक्षमूर्धजः शत्रुनाशने कुशलः । द्विजदेवयज्ञयोगप्रसक्तधीः स्त्रीजितो मतिमान् ।।३८।। सामीति यः सोऽतिविरूपदेहः शशानुगामी खलु दुर्भगश्च । दाता महारम्भसमाप्तकार्यो गुणैः शशस्यैव भवेत् समानः ।।३९।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां पञ्चमहापुरुषलक्षणं नामैकोनसप्ततितमोऽध्यायः ।।६९।।

भौम आदि पांच ग्रह स्थान, दिक्, चेष्टा और कालबलसे युक्त हों अपने राशि अथवा उच्चमें स्थित होकर लग्न, चतुर्थ, सप्तम या दशम स्थानमें बैठें तो पांच उत्तम पुरुष उत्पन्न होते हैं उनको हम कहते हैं ॥१॥ बृहस्पति बलवान् होकर स्वराशि अथवा स्वोच्चमें स्थित होकर जिसके केंद्रमें बैठे हों; वह पुरुष हंस होता है, शनैश्चरके बैठनेसे शश होता है, मंगलसे रुचक, बुध बलवान् हो तो भद्र और शुक्रके होनेसे मालव्य नाम पुरुष होता हैं ॥२॥ सूर्यके बलसे उस पुरुषका परिपूर्ण सत्व और चन्द्रके बलसे शरीरके व मनके गुण होते हैं, सूर्य, चंद्र जिस ग्रहके राशि, द्रेष्काण नवांश, द्वादशांश, त्रिंशांशमें बैठे हो उस ग्रहके धातु, महाभूत, प्रकृति, कांति, वर्ण, सत्त्व, रूप आदि लक्षणोंसे युक्त वह पुरुष होता है, बलयुक्त सूर्य, चन्द्र जिस ग्रहके राशिभेदमें बैठें, उस ग्रहके धातु आदि लक्षणों करके युक्त वह पुरुष होता है परंतु निर्बल सूर्य चंद्र होकर राशि भेदमें बैठे तो संकीर्ण (मिले हुए) लक्षणों करके युक्त पुरुष होते हैं ॥३॥४॥ मंगलसे शौर्य, बुधसे गुरुता, बृहस्पतिसे स्वर, शुक्रसे स्नेह और शनैश्चरसे कांति होती है, भौम आदि ग्रह बलवान् हों तो सत्त्वादि अच्छे होते हैं, निर्बल हों तो सत्त्वादिका अभाव होता है ॥५॥ संकीर्ण लक्षणवाले पुरुष राजा नहीं होते, केवल पूर्वोक्त भौमादि ग्रहोंकी दशामें सुख भोगते हैं, शत्रुक्षेत्रमें स्थिति, नीचसे और उच्चसे निकलना शुभ ग्रह और पाप ग्रहोंकी दृष्टि इन सबसे भेद अर्थात् पुरुषोंकी संकीर्णता होती है ॥६॥ छियानवें अंगुल ऊंचाई और छियानवें अंगुल व्यायाम (दोनों भुजा पसारकर चौडाई) हंसका होता है, इनमें तीन तीन अंगुल बढाते जांय तो क्रमानुसार शश, रुचक, भद्र और मालव्यकी ऊंचाई और व्यायामका मान होता है ॥७॥ सात्त्विक पुरुषको दया, स्थिरता, जीवोंके साथ सरलता, ब्राह्मण और देवताओंमें भक्ति होती है, रजोगुणी पुरुष काव्य, नृत्यगीतादि कला, यज्ञ और स्त्रियोंमें आसक्त और अत्यन्त शूरवीर होता है ॥८॥ तमोगुणी पुरुष औरोंको ठगनेवाला, मूर्ख, आलसी, क्रोधी और बहुत सोनेवाला होता है, सत्त्व, रज, तम यह तीनों गुण मिलनेसे मिश्र स्वभावके पुरुष होते हैं, जैसा सत्त्वरज, सत्त्वतम, रजतम, सत्त्वरजतम चार भेद यह और तीन भेद एक २ गुण करके पहले कहे इस भांति सात प्रकारके पुरुष होते हैं ॥९॥ मालव्य पुरुषके दोनों हाथ हाथीकी शुंडके समान होते हैं, जानुतक उसके हाथ पहुंचते हैं अंगोंकी सब संधि मांससे पुष्ट होती हैं. शरीर समान सुंदर होता है, मध्यभाग कृश होता है, ऊर्ध्वमान करके ठोडीसे ललाटतक मुखकी ऊंचाई तेरह अंगुल होती है और ठोडीसे कर्ण छिद्रतक तिरछी चौडाई दश अंगुल होती है. उस पुरुषका मुख दीप्त नेत्र, सुंदर कपोल, समान और श्वेत दांत, पतले नीचेके ओष्ठ करके युक्त होता है ॥१०॥ वह मालव्य पुरुष मालव, मरु, कच्छ (भरुच), सुराष्ट्र (सूरत) लाट, सिंधु आदि देशोंका पालन करता है, पराक्रमसे धन संपादन करता है राजा होता है, पारियात्र पर्वतमें निवास करनेवालोंका भी रक्षण करता व शुभ बुद्धि युक्त होता है ॥११॥ सत्तर वर्ष आयु भोगकर यह मालव्य पुरुष भली भांति तीर्थपर प्राण त्यागता है, मालव्यका लक्षण अच्छे प्रकारसे कहा अब भद्रादि शेष मनुष्योंका लक्षण कहते हैं ॥१२॥ भद्र पुरुषके पुष्ट, बराबर, गोल और लम्बे बाहु होते हैं, भुजा पसारनेसे जितनी चौडाई हो उतनीही उसकी ऊंचाई होती है; कोमल सूक्ष्म और घने रोमोंसे युक्त उसके कपोल होते हैं, इन लक्षणोंसे बुधके योगसे भद्रसंज्ञक पुरुष होता है ॥१३॥

भद्रपुरुष त्वक्सार और वीर्य सार होता है, विस्तीर्ण और पुष्ट वक्षस्थलवाला होता है, सत्त्व अधिक होता है. व्याघ्रके समान मुखवाला, स्थिरस्वभाव, क्षमायुक्त, धर्मात्मा, कृतज्ञ गजेन्द्रके समान गतिवाला और बहुत शास्त्र जाननेवाला ।।१४।। बुद्धिमान्, सुंदर शरीर-वाला, सुंदर ललाट और कनपटीवाला, नृत्य गीत आदि कलाओंमें अभिज्ञ, धैर्ययुक्त, सुकुक्षि, कमलगर्भके समान कांतियुक्त, हस्तपादों करके युक्त, योगी, सुंदरनासिकावाला, समान और मिले हुए भ्रुओं करके युक्त होता है ।।१५।। नये जलसे सिंची हुई भूमिको गंधके समान, पत्र (तजपत्र) केशर, हाथीका मद, अगर या इनके गंध उसके शरीरमें हों, शिरके केश एक २ रोमकूपमें एक २ उत्पन्न हों, काले और कुंचित हों, घोडे अथवा हाथीके तुल्य उसका गुह्य (लिंग) गुप्त रहे ।।१६।। हल, मूसल, गदा, खड्ग, शंख, चक्र, हाथी, मकर, कमल और रथके तुल्य रेखा उसके हाथ पैरोंमें होती हैं. इसके ऐश्वर्य-को और भी मनुष्य भोगते हैं, अपने बंधुओंको नहीं सहता और स्वच्छन्दचारी होता है ।।१७।। चौरासी अंगुल ऊंचा होता है, उस पुरुषके शरीरका भार, एक तुला, (दो हजार पल) होता है, वह मध्यदेशका राजा होता है. पहले तीन २ अंगुलकी वृद्धिसे शशादि, पुरुषोंकी ऊंचाई एक सौ आठ अंगुलतक कही, यदि वह एक सौ आठ अंगुल ऊंचाई, इस भद्र पुरुषकी हो तो चक्रवर्ती राजा होता है ।।१८।। शौर्यसे सम्पादन करे हुए भूमंडल-को भली भांति भोगकर अस्सी वर्षकी अवस्थामें तीर्थपर प्राण त्यागकर भद्र पुरुष स्वर्गको जाता है ।।१९।। शनैश्चरके योगसे उत्पन्न हुए शशनामक पुरुषके दांत कुछ ऊंचे, नख और दांत कुछ छोटे हों, नेत्रकोश पुष्ट हों तो शीघ्रगामी होता है, विद्या, धातु और व्यापार आदिमें आसक्त होता, पुष्ट कपोलवाला स्वकार्यसाधक, सेनाका अधिपति, प्रिय-मैथुन, परस्त्रीसक्त, चञ्चल, शूर, माताका भक्त, वन, पर्वत, नदी और कार्योंमें आसक्त होता है ।।२०।। शशपुरुष बानवें अंगुल ऊंचा होता है. सब कार्योंमें शंकित, औरोंके छिद्र जाननेवाला है, मज्जासार, स्थिरगति और बहुत स्थूल नहीं होता है ।।२१।। शशपुरुषका मध्यभाग कृश होता है, उसके पैरोंमें अथवा हाथोंमें ढाल, तलवार, वीणा, पलंग, माला, मृदंग और त्रिशूलके आकारकी रेखा व ऊर्ध्वरेखा होती है ।। २२ ।। शशपुरुष म्लेच्छ देशका राजा होता है या और कहीं मांडलिक राजा होता है, स्फिक्, स्राव और शूलकी पीडा द्वारा पीडित शरीर रहता है, इस प्रकार यह शशपुरुष सत्तर वर्षकी अवस्थामें मृत्युके वश होता है ।।२३।। बृहस्पतिके योगसे उत्पन्न हुए शशपुरुषका मुख रक्तवर्ण, पुष्ट कपोलोंसे युक्त, ऊंची नासिकावाला, सुवर्णके समान कांतियुक्त गोल शिरवाला, शहतके रंगके समान नेत्र होते हैं, सब नख रक्तवर्ण होते हैं, माला, रस्सा; अंकुश, शंख, दो मत्स्य, यज्ञके अंग, स्रुक् आदि, कलश और कमलके तुल्य रेखा उसके हाथ, पैरोंमें होती हैं, हंसके समान मधुर स्वर, सुंदर चरणवाला और उसकी सब इन्द्रियां निर्मल होती हैं ।।२४।। इस हंस पुरुषकी जलमें प्रीति होती है, शुक्रसार होता है, छियानवें अंगुल इसकी ऊंचाई पंडितोंने कही है ।।२५।। हंस पुरुष खश, शूरसेन, गांधार, कंधार और अंतर्वेद देशको भोगता है, नब्बे वर्ष राज्य भोगकर वनमें मृत्युके वश होता है ।।२६।। भौमके योगसे उत्पन्न हुआ रुचक नाम पुरुष सुंदर भौं और केशोंसे युक्त होता है, रक्तश्यामवाला, शंखके तुल्य ग्रीवावाला और लम्बे मुख करके युक्त, शूर, क्रूर, श्रेष्ठ मंत्री, चोरोंका स्वामी और परिश्रमी होता है ।।२७।। रुचकके मुखकी जितनी लम्बाई

हो वही मध्यमभागकी चतुरस्रताका प्रमाण होता है. मुखकी ऊंचाईका चौगुना करनेसे मध्यभागकी मोटाई होती है, थोडी कांतिवाला, रुधिर मांससार होता है, शत्रुओंको मारनेवाला और उसके कार्य साहससे सिद्ध होते हैं ॥ २८ ॥ खट्वांग, वीणा, वृष, धनुष, वज्र, बर्छी, चंद्रमा और त्रिशूलके आकारकी रेखाओंसे रुचक पुरुषके हाथ, पैर, चिह्नित होते हैं, गुरु, ब्राह्मण और देवताओंका भक्त होता है; सौ अंगुल ऊंचा होता है और उसके शरीरका भार एक हजार पल होता है ॥२९॥ वह रुचक पुरुष मंत्र और मारण उच्चाटनादि अभिचार कर्ममें कुशल होता है, उसके जानु और जंघा कृश होते हैं, विन्ध्याचल, सह्याद्रि और उज्जयिनीके देशोंमें राज्य भोग कर सत्तर वर्षकी आयुमें रुचक राजा शस्त्रसे या अग्निसे मृत्युको प्राप्त होता है, ॥३०॥ इन पांच महापुरुषोंको छोड और पांच पुरुष संकीर्ण संज्ञाके होते हैं, वामनक, जघन्य, कुब्ज, मंडलक और सामी यह पूर्वोक्त पांच राजाओंके सेवक होते हैं, अब इन पांचोंके लक्षण सुनो ॥३१॥ वामनके सब अंग संपूर्ण होते हैं, पीठ टूटी होती है, उरु, मध्यभाग और कक्ष्यान्तरमें किंचित् (असंपूर्ण) होता है, वह वामन नामक पुरुष प्रसिद्ध होता है, पांच राजाओंके बीच भद्रनामक राजाका अनुजीवी होता है. स्फीत, दाता और नारायणका भक्त होता है ॥३२॥ जघन्य नामक पुरुष मालव्यराजाका सेवक होता है, उसके कर्ण अर्धचंद्रके तुल्य होते हैं सुंदर गंधसे युक्त होता है, शुक्रसार होता है, पिशुन (सूचक) और पंडित होता है. शरीरकांति रूखी होता है, उसके हाथोंकी अंगुली मोटी होती हैं ॥३३॥ वह पुरुष क्रूर, धनवान्, स्थूल बुद्धि और प्रसिद्ध होता है, तांबेके रंगसा उसका रंग होता है, हंसनेमें, उसकी रुचि रहती है, उस जघन्य नाम पुरुषके छाती, पैर और हाथमें तरवार, बर्छी, पाश और परशुके आकारकी रेखा होती हैं ॥३४॥ कुब्ज नामक पुरुष नाभिसे नीचे परिपूर्णांग और नाभिसे ऊपर कुछ क्षीण और नत होता है, हंसनामक राजाका सेवन करता है, वह नास्तिक, धनवान्, विद्वान्, क्रूर सूचक और कृतज्ञ होता है ॥३५॥ कुब्ज पुरुष कलाओंमें अभिज्ञ, कलहप्रिय बहुत सेवकोंसे युक्त, स्त्रीजित होते हैं, लोकका सत्कार करके अकस्मात् छोड देता है. यह कहा हुआ कुब्जपुरुष सब कालमें उत्साहयुक्त रहता है ॥३६॥ मंडलक नामक पुरुष रुचक नाम राजाका सेवक होता है, अभिचार कर्म जानने वाला. कुशल, कृत्या, वेतालोत्थापन आदि कर्मोंमें और विद्याओंमें अनुरागी होता है ॥३७॥ वृद्धके तुल्य आकारवाला, कठोर और रूखे केशवाला, शत्रुनाश करनेमें कुशल ब्राह्मण, देवता, यज्ञ और योगमें बुद्धि लगानेवाला, स्त्रीजित और बुद्धिमान् होता है ॥३८॥ समीनामक पुरुष अतिकुरूपदेह होता है. वह शशनामक राजाको सेवक, दानी, बडे २ कार्योंका आरंभ करके उन कार्योंको समाप्त करता है, गुणों करके शशके ही समान वह सामी पुरुष होता है ॥३९॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्य विरचि० बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायामेकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

अथ सप्ततितमोऽध्यायः

स्त्रीलक्षणम्

स्निग्धोन्नताग्रतनुताम्रनखौ कुमार्याः पादौ समोपचितचारुनिगूढगुल्फौ। शिलष्टांगुली कमलकान्तितलौ च यस्यास्तामुद्वहेद्यदि भुवोऽधिपतित्वमिच्छेत् ॥१॥ मत्स्यांकुशाब्जयववज्रहलासिचिह्नावस्वेदनौ मृदुतलौ चरणौ प्रशस्तौ। जंघे च रोमरहिते विशिरे सुवृत्ते जानुद्वयं सममनुल्बणसन्धिदेशम् ॥२॥ ऊरू घनौ करिकरप्रतिमावरोमावश्वत्थपत्रसदृशं विपुलं च गुह्यम्। श्रोणीललाटमुरु कूर्मसमुन्नतं च गूढो मणिश्च विपुलां श्रियमादधाति ॥३॥ विस्तीर्णमांसोपचितो नितम्बो गुरुश्च धत्ते रसनाकलापम्। नाभिर्गंभीरा विपुलाङ्गनानां प्रदक्षिणावर्तगता प्रशस्ता ॥४॥ मध्यं स्त्रियास्त्रिवलियुक्तमरोमशं च वृत्तौ घनावविषमौ कठिनावुरस्थौ। रोमापवर्जितमुरो मृदु चाङ्गनानां ग्रीवा च कम्बुनिचितार्थसुखानि धत्ते ॥५॥ बन्धुजीवकुसुमोपमोऽधरो मांसलो रुचिरबिम्बरूपभृत्। कुन्दकुड्मलनिभाः समा द्विजा योषितां पतिसुखामितार्थदाः ॥६॥ दाक्षिण्ययुक्तमशठं परपुष्टहंसवल्गु प्रभाषितमदीनमनल्पसौख्यम्। नासा समा समपुटा रुचिरा प्रशस्ता दृग्नीलनीरजदलद्युतिहारिणी च ॥७॥ नो सङ्गते नातिपृथू न लम्बे शस्ते भ्रुवौ बालशशाङ्कवक्रे। अर्धेन्दुसंस्थानमरोमशं च शस्तं ललाटं न नतं न तुङ्गम् ॥८॥ कर्णयुग्ममपि युक्तमांसलं शस्यते मृदु समं समाहितम्। स्निग्धनीलमृदुकुंचितैकजा मूर्धजाः सुखकराः समं शिरः ॥९॥ भृङ्गारासनवाजिकुञ्जररथश्रीवृक्षयूपेषुभिर्मालाकुण्डलचामरांकुशयवैः शैलैर्ध्वजैस्तोरणैः। मत्स्यस्वस्तिकवेदिकाव्यजनकैः शंखातपत्राम्बुजैः पादे पाणितलेऽपि वा युवतयो गच्छन्ति राज्ञीपदम् ॥१०॥ निगूढमणिबन्धनौ तरुणपद्मगर्भोपमौ करौ नृपतियोषितां तनुविकृष्टपर्वांगुली। न निम्नमति नोन्नतं करतलं सुरेखान्वितं करोत्यविधवां चिरं सुतसुखार्थसम्भोगिनीम् ॥११॥ मध्यांगुलिं या मणिबन्धनोत्था रेखा गता पाणितलेऽङ्गनायाः। ऊर्ध्वस्थिता पादतलेऽथवा या पुंसोऽथवा राज्यसुखाय सा स्यात् ॥१२॥ कनिष्ठिकामूलभवा गता या प्रदेशिनीमध्यमिकान्तरालम्। करोति रेखा परमायुषः सा प्रमाणमूना तु तदूनमायुः ॥१३॥ अंगुष्ठमूले प्रसवस्य रेखाः पुत्रा वहत्यः प्रमदास्तु तन्व्यः। अच्छिन्नमध्या बृहदायुषां ताः स्वल्पायुषां छिन्नलघुप्रमाणाः ॥१४॥ इतीदमुक्तं शुभमङ्गनानामतो विपर्यस्तमनिष्टमुक्तम्। विशेषतोऽनिष्टफलानि यानि समासतस्तान्यनुकीर्तयामि ॥ १५ ॥ कनिष्ठिका वा तदनन्तरा वा महीं न यस्याः स्पृशति स्त्रियाः स्यात्। गताथवांगुष्ठमतीत्य यस्याः प्रदेशिनी सा कुलटातिपापा ॥ १६ ॥ उद्बद्धाभ्यां पिण्डिकाभ्यां शिराले शुष्के जङ्घे रोमशे चातिमांसे। वामावर्तं निम्नमल्पं च गुह्यं कुम्भाकारं चोदरं दुखितानाम् ॥ १७ ॥ ह्रस्वयातिनिःस्वता दीर्घया कुलक्षयः।

ग्रीवया पृथूत्थया योषितः प्रचण्डता ॥ १८ ॥ नेत्रे यस्याः केकरे पिङ्गले वा सा दुःशीला श्यावलोलेक्षणा च। कूपौ यस्या गण्डयोश्च स्मितेषु निःसन्दिग्धं बन्धकीं तां वदन्ति ॥ १९ ॥ प्रविलम्बिनि देवरं ललाटे श्वशुरं हन्त्युदरे स्फिजोः पतिं च। अतिरोमचयान्वितोत्तरोष्ठी न शुभा भर्तुरतीव या च दीर्घा ॥ २० ॥ स्तनौ सरोमौ मलिनोल्बणौ च क्लेशं दधाते विषमौ च कर्णौ। स्थूलाः कराला विषमाश्च दन्ताः क्लेशाय चौर्याय च कृष्णमांसाः ॥ २१ ॥ क्रव्यादरूपैर्वृककाककङ्कसरीसृपोलूकसमानचिह्नैः। शुष्कैः शिरालैर्विषमैश्च हस्तैर्भवन्ति नार्यः सुखवित्तहीनाः ॥ २२ ॥ या तूत्तरोष्ठेन समुन्नतेन रूक्षाग्रकेशी कलहप्रिया सा। प्रायो विरूपासु भवन्ति दोषा यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति ॥ २३ ॥ पादौ सगुल्फौ प्रथमं प्रदिष्टौ जंघे द्वितीयं च सजानुचक्रे। मेढ्रोरुमुष्कं च ततस्तृतीयं नाभिः कटिश्चेति चतुर्थमाहुः ॥ २४ ॥ उदरं कथयन्ति पञ्चमं हृदयं षष्टमतः स्तनान्वितम्। अथ सप्तमंसजत्रुणी कथयन्त्यष्टममोष्ठकन्धरे ॥२५॥ नवमं नयने च सभ्रुणी सलाटं दशमं शिरस्तथा। अशुभेष्वशुभं दशाफलं चरणाद्येषु शुभेषु शोभनम् ॥ ३६ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० स्त्रीलक्षणं नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥

जो भूमिपति होना चाहे तो जिस कन्याके पांव स्निग्ध, ऊँचे और आगेसे पतले, लाल रंगके नखोंवाले, समान, पुष्ट, सुंदर, छिपे हुए गुल्फों (टंकनो) से युक्त अंगुली परस्पर श्लिष्ट हों और कमलकी कांतिके तुल्य जिनके तलोंकी कांति हो उससे विवाह करे ॥१॥ मत्स्य, अंकुश, कमल, जौ वज्र, हल और खड्गके आकारकी जिनमें रेखा हों, पसीना नहीं आता हो, कोमल जिनके तल हों, ऐसे चरण श्रेष्ठ होते हैं, रोमरहित, नाडियोंसे रहित, सुंदर, गोल जंघा हों दोनों जानु समान हों और उनकी संधि (जोड) स्थूल न हो, दोनों ऊरु पुष्ट हाथीकी शुंडके आकार और रोमहीन हों पीपलके पत्तेके आकार और विस्तीर्ण गुह्य (भग) हो श्रोणी (कटि) उपरि भाग विस्तीर्ण और कूर्मके समान उन्नत हो मणि गूढ ऐसे लक्षण हों तो बहुत लक्ष्मी प्राप्त होती है ॥२॥३॥ विस्तीर्ण मांससे पुष्ट और भारी नितम्बवाली, कांचीकलापयुक्त, गंभीर, विस्तीर्ण और दक्षिणावर्त नाभिवाली स्त्रियें शुभ होती हैं ॥४॥ स्त्रीका मध्यभाग त्रिवलीसे युक्त, रोमोंसे हीन, दोनों स्तन गोल पुष्ट, समान और कठोर हों, रोमरहित और कोमल छाती गरदन शंखके तुल्य, तीन रेखाओंसे युक्त हो तो धन और सुख देती है ॥५॥ बंधुजीवपुष्प (गुलदुपहरी) के तुल्य अतिरक्तवर्ण, मांसल, सुंदर बिम्बफलके रूपको धारण करनेवाला अधर (नीचेका ओष्ठ) हो, कुंदपुष्पकी कलीके तुल्य और समान दांत हों तो स्त्रियोंको पति सुख और बहुत धन देनेवाले होते हैं ॥६॥ सरलतायुक्त, शठतासे रहित, कोकिल और हंसके शब्दके तुल्य रमणीक और दीनतासे रहित वचनवाली बहुत सुख देती है. समान, सम पुटोंसे युक्त, सुंदर नासिकावाली श्रेष्ठ होती है, नीलकमलके दलोंकी कांतिको हरनेवाली दृष्टि शुभ होती है ॥७॥ दोनों मिले न हों, बहुत चौडे, लम्बे न हों और बालचन्द्रके आकार टेडे भ्रू हों तो शुभ होते हैं. अर्धचन्द्रके आकार, रोमहीन, न नीचा

और न ऊंचा ललाट शुभ होता है ।।८।। दोनों कान थोडे मांस करके युक्त हों, कोमल, समान और संलग्न हों तो शुभ होते हैं. स्निग्ध, अतिकृष्णवर्ण, कोमल, कुंचित, एक २ रोमकूपमें एक २ उत्पन्न ऐसे केश सुख करते हैं. शिर भी सम, न निम्न हो न उन्नत हो तो शुभ होता है ।।९।। जिन स्त्रियोंके पांवतलोंमें अथवा हस्ततलोंमें भृंगार (झारी) आसन, घोडा, हाथी, रथ, बिल्ववृक्ष, यज्ञस्तंभ, बाण, माला, कुंडल, चामर, अंकुश, यव, पर्वत, ध्वज, तोरण मत्स्य स्वस्तिक, यज्ञवेदी, व्यजन (पंखा), छत्र और कमलके आकार की रेखा हों वे स्त्री राजाकी रानी होती हैं ।।१०।। निगूढ मणिबंधन अर्थात् जिनके पहुंचे ऊंचे न हों, नवीन कमलके गर्भसमान पतले और लम्बे पोरुवोंवाली अंगुलियोंसे युक्त हाथ रानियोंके होते हैं, न बहुत नीचा न ऊंचा और उत्तम रेखाओंसे युक्त हथेली जिस स्त्रीकी हो वह विधवा नहीं होती और बहुत काल पुत्रसुख और धनका भोग करती है ।।११।। स्त्रीके अथवा पुरुषके हाथमें पहुँचेसे निकलकर मध्यमा अंगुलीतक जो रेखा जाय या पादतलमें जो ऊर्ध्वरेखा हो वह रेखा राज्यसुख करती है ।।१२।। कनिष्ठाके मूलसे निकलकर मध्यमाके मध्यभागतक जो रेखा जाय उससे आयुषका प्रमाण होता है. जो वह रेखा पूरी हो तो आयुष पूरी होती है और न्यून रेखा हो तो उसके अनुसार आयुष भी कम जाने ।।१३।। अंगुष्ठके मूलमें संतानकी रेखा होती हैं, उनमें बडी रेखा पुत्रोंकी, छोटी रेखा कन्याओंकी होती हैं. मध्यमें जो रेखा टूटी न हो वे दीर्घ आयुवालोंकी होती हैं, टूटी और छोटी रेखा अल्पायु संतानकी होती है ।।१४।। स्त्रियोंके शुभ लक्षण कहे, इससे विरुद्ध लक्षण हों तो अशुभ होते हैं. विशेष करके जो अशुभ लक्षण हैं उनको हम संक्षेपसे कहते हैं ।।१५।। जिस स्त्रीके पैरकी कनिष्ठा अथवा कनिष्ठाके समीपकी अंगुली अनामिका भूमिको स्पर्श न करे या जिसके पैरकी तर्जनी अंगूठेसे अधिक लम्बी हो वह स्त्री व्यभिचारिणी और पापिनी होती है ।।१६।। ऊपरको खिची हुई पिंडलियोंसे युक्त नाडियोंसे व्याप्त, सूखी, रोमोंसे व्याप्त अथवा बहुत पुष्ट जंघा जिन स्त्रियोंकी हो, वाम-वर्तवाले रोमोंसे युक्त, निम्न और छोटी गुह्य (भग) जिनकी हो, घटके आकार जिनका, पेट हो वे स्त्री दुःख भोगती हैं ।।१७।। जिस स्त्रीकी गरदन छोटी हो वह निर्धन होती है, बहुत लम्बी गर्दनवालीसे कुलक्षय होता है, जिसकी ग्रीवा मोटी हो वह स्त्री क्रूर स्वभाववाली होती है ।।१८।। जिस स्त्रीके नेत्र केकर (मैंगे) अथवा पिंगल हों वह स्त्री और जिसके नेत्र श्याम रंगके और चंचल हों वह स्त्री व्यभिचारिणी होती है हँसनेके समय जिस स्त्रीके गालोंमें गढे पडे वह स्त्री निःसंदेह व्यभिचारिणी होती है ।।१९।। जिसका ललाट लम्बा हो वह स्त्री देवरको मारती है, उदर लंबा हो तो निश्चय श्वशुरको, जिस स्त्रीके स्फिक लम्बे हों वह पति को मारती है, जिस स्त्रीके ऊपरके ओष्ठ पर बहुत रोम हों और जो स्त्री बहुत लम्बी हो वह पतिके लिये शुभ नहीं होती है ।।२०।। जिस स्त्रीके स्तन और कर्ण रोमयुक्त, मलिन, उत्कृष्ट और छोटे, बडे हों वह स्त्री क्लेश भोगती है, काले मांससे युक्त जिसके दांत हों वह चोर होती है ।।२१।। मांस खाने वाले गीध आदि पक्षी, भेडिया, काक कंक, सर्प, उल्लूके आकारकी जिन स्त्रियोंके हाथमें रेखा हो, जिनके हाथ सूखे, नाडियोंसे व्याप्त और विषम हो वे स्त्री सुख और धनसे हीन होती है ।।२२।। जिस स्त्रीका ऊपरका ओष्ठ ऊंचा हो और केशोंके अग्र रूखे हों वह स्त्री कलहप्रिया होती है, प्रायः कुरूपा स्त्रियोंमें दोष होते हैं, उत्तम रूपवालियोंमें

गुण होते हैं ॥२३॥ दशाभागके लिये शरीरके दश भाग कहते हैं. पाद और टंकने पहला भाग, जानुचक्रों सहित जंघा दूसरा भाग, लिंग ऊरु, वृषण तीसरा भाग, नाभि, कटि चौथा भाग ॥२४॥ उदर पांचवां भाग, स्तनसहित हृदय छटा भाग, कंधे और जत्रु (कंधोंकी संधि) सातवां भाग, ओष्ठ और ग्रीवा आठवां भाग ॥२५॥ भ्रूसहित नेत्र नवम भाग और ललाटसहित शिर दशवां भाग है, पांव आदिके अंग अशुभ लक्षणोंसे युक्त हों तो उनकी दशाका फल शुभ होता है ॥२६॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य–पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥

अथैकसप्ततितमोऽध्यायः

वस्त्रच्छेदलक्षणम्

वस्त्रस्य कोणेषु वसन्ति देवा नराश्च पाशान्तदशान्तमध्ये । शेषास्त्रयश्चात्र निशाचरांशास्तथैव शय्यासनपादुकासु ॥१॥ लिप्ते मषीगोमय कर्दमाद्यैश्छिन्ने प्रदग्धे स्फुटिते च विन्द्यात् । पुष्टं नवेल्पाऽल्पतरं च भुक्ते पापं शुभं वाधिकमुत्तरीये ॥ २ ॥ रुग्राक्षसांशेष्वथवापि मृत्युः पुञ्जन्म तेजश्च मनुष्यभागे । भोगेऽमराणामथ भोग-वृद्धिः प्रान्तेषु सर्वत्र वदन्त्यनित्यम् ॥ ३ ॥ कङ्कप्लवोलूककपोतकाकक्रव्यादगोमा-युखरोष्ट्रसर्पैः । छेदाकृतिर्दैवतभागगापि पुंसां भयं मृत्युसमं करोति ॥ ४ ॥ छत्र-ध्वजस्वस्तिकवर्धमानश्रीवृक्षकुम्भांबुजतोरणाद्यैः । छेदाकृतिर्नैर्ऋतभागगापि पुंसां विधत्ते न चिरेण लक्ष्मीम् ॥ ५ ॥ प्रभूतवस्त्रदाश्विनी भरण्यथापहारिणी । प्रद-ह्यतेऽग्निदैवते प्रजेश्वरेऽर्थसिद्धयः ॥ ६ ॥ मृगे तु मूषकाद्भयं व्यसुत्वमेव शाङ्करे । पुनर्वसौ शुभागमस्तदग्रभे धनैर्युतिः ॥ ७ ॥ भुजङ्गभे विलुप्यते मघासु मृत्युमा-विशेत् । भगाह्वये नृपाद्भयं धनागमाय चोत्तरा ॥८॥ करेण कर्मसिद्धयः शुभाग-मस्तु चित्रया । शुभं च भोज्यमानिले द्विदैवते जनप्रियः ॥ ९ ॥ सुहृद्युतिश्च मित्रभे पुरन्दरेऽम्बरक्षयः । जलप्लुतिश्च नैर्ऋते रुजो जलाधिदैवते ॥ १० ॥ मिष्टमन्न-मथ विश्वदैवते वैष्णवे भवति नेत्ररोगता । धान्यलब्धिमपि वासवे विदुर्वारुणे विष-कृतं महद्भयम् ॥ ११ ॥ भद्रपदासु भयं सलिलोत्थं तत्परश्च भवेत्सुतलब्धिः । रत्नयुतिं कथयन्ति च पौष्णे योऽभिनवाम्बरमिच्छति भोक्तुम् ॥ १२ ॥ विप्रमतादथ भूपतिदत्तं यच्च विवाह विधावभिलब्धम् । तेषु गुणं रहितेष्वपि भोक्तुं नूतनमम्बरमिष्टफलं स्यात् ॥ १३ ॥ भोक्तुं नवाम्बरं शस्तमृक्षेऽपि गुणवर्जिते । विवाहे राजसन्माने ब्राह्मणानां च सम्मते ॥ १४ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौबृहसं० वस्त्रच्छेदलक्षणंनामैकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥

नये वस्त्रके नौ भाग करके विचार करे, वस्त्रके कोणोंके चार भागोंमें देवता, पाशांतके दो भागोंमें मनुष्य और मध्यके तीन भागोंमें राक्षस वसते हैं. वस्त्रके मूलको पाशांत और अग्रको दशांत कहते हैं, ऐसेही शय्या, आसन और खडाऊंके भी नौ भागकरके फलका विचार करे ॥१॥ नया वस्त्र स्याही, गोबर, कर्दम आदिसे लिप्त हो, कट जाय, जल जाय या फट जाय तो पूरा अशुभ फल होता है. कुछ पुराना वस्त्र हो तो थोडा अशुभ होता और बहुत पुराना वस्त्र हो तो बहुत कम अशुभ फल होता है, उपरने (ऊपर ओढनेका वस्त्र) में इसका फल अधिक होता है ॥२॥ राक्षसोंके भागोंमें वस्त्रमें छेद आदि हों तो वस्त्रके स्वामीको रोग हो या मृत्यु हो, मनुष्य भागोंमें छेद आदि हों तो पुत्रजन्म हो और कांति हो, देवताओंके भागोंमें छेद आदि हों तो भोगोंकी वृद्धि हो, सच भागके प्रान्तोंमें छेद आदि हों तो गर्गादि मुनि उसका अनिष्ट फल कहते हैं ॥३॥ कंकपक्षी, मेंडक, उल्लू, कपोत, काक, मांस खानेवाले गृध्राधि, जम्बुक, गधे, ऊंट और सर्पके आकारका छेद देवताओंके भागमें भी हो तो भी पुरुषोंको मृत्युके समान भय करता है और भागोंमें हो तो क्या कहना है ॥४॥ छत्र, ध्वज, स्वस्तिक, वर्धमान, (मट्टीका सिकोरा), बिल्ववृक्ष, कलश, कमल, तोरणादिके आकारका छेद राक्षसभागमें पुरुषोंको शीघ्रही लक्ष्मी देता है और भागोंमें हो तब तो कहनाही क्या है ॥५॥ अश्विनी नक्षत्रमें नया वस्त्र पहननेसे बहुत वस्त्र मिलते हैं, भरणीमें पहरनेसे वस्त्रोंकी हानि होती है, कृत्तिकामें वस्त्र दग्ध हो जाना, रोहिणीमें धनप्राप्ति ॥६॥ मृगशिरामें वस्त्रको मूषकका भय, आर्द्रामें मृत्यु, पुनर्वसुमें शुभकी प्राप्ति, पुष्यमें धनलाभ ॥७॥ आश्लेषामें पहननेसे वस्त्रका नष्ट हो जाना, मघानक्षत्रमें मृत्यु, पूर्वाफाल्गुनीमें राजासे भय, उत्तराफाल्गुनीमें धनकी प्राप्ति ॥८॥ हस्तमें कार्यसिद्धि होती है, चित्रामें शुभकी प्राप्ति, स्वातिमें उत्तम भोजनका मिलना विशाखामें मनुष्योंका प्रिय ॥९॥ अनुराधामें मित्रका समागम, ज्येष्ठामें वस्त्रका क्षय, मूलमें जलमें डूबना, पूर्वाषाढामें रोग होना ॥१०॥ उत्तराषाढामें मीठे भोजनका मिलना, श्रवणमें नेत्ररोग, धनिष्ठामें अन्नका लाभ, शतभिषामें विषका बहुत भय ॥११॥ पूर्वाभाद्रपदामें जलका भय, उत्तराभाद्रपदामें पुत्रलाभ और रेवती नक्षत्रमें जो पुरुष नया वस्त्र धारण करे तो उसको रत्नलाभ होता है ॥१२॥ ब्राह्मणकी आज्ञासे बुरे नक्षत्रमें भी नये वस्त्रका धारण करना शुभही फल देता है. राजाका दिया हुआ वस्त्र, विवाहमें प्राप्त हुआ वस्त्र बुरे नक्षत्रमें भी ग्रहण कर लेवे तो शुभही फल देता है ॥१३॥ विवाहमें, राजाके सत्कारमें और ब्राह्मणोंकी आज्ञासे बुरे नक्षत्रमें वस्त्रका धारण करना शुभही फल देता है ॥१४॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-
पण्डितबलदेवप्रसाद मिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायामेकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

अथ द्विसप्ततितमोऽध्यायः

चामरलक्षणम्

देवैश्चमर्यः किल बालहेतोः सृष्टा हिमक्ष्माधरकन्दरेषु । आपीतवर्णाश्च भवन्ति तासां कृष्णाश्च लांगूलभवाः सिताश्च ॥१॥ स्नेही मृदुत्वं बहुबालता च वैशद्यमल्पास्थिनिबन्धनत्वम् । शौक्ल्यं च तेषां गुणसम्पदुक्ता विद्धाल्पलुप्तानि न शोभनानि ॥२॥ अध्यर्धहस्तप्रमितोऽस्यदण्डो हस्तोऽथवा रत्निसमोऽथ वान्यः । काष्ठाच्छुभात् काञ्चनरूप्यगुप्ताद्रत्नैर्विचित्रैश्च हिताय राज्ञाम् ॥ ३ । यष्टयातपत्रांकुशवेत्रचापवितानकुन्तध्वजचामराणाम् । व्यापीततन्त्रीमधुकृष्णवर्णा वर्णक्रमेणैव हिताय दण्डाः ॥४॥ मातृभूधनकुलक्षयावहा रोगमृत्युजननाश्च पर्वभिः । व्यादिभिर्द्विकविवर्द्धितैः क्रमाद् द्वादशान्तविरतैः समैः फलम् ॥ ५ ॥ यात्राप्रसिद्धिर्द्विषतां विनाशो लाभः प्रभूतो वसुधागमश्च । वृद्धिः पशूनामभिवाञ्छिताप्तिस्त्र्याद्येष्वयुग्मेषु तदीश्वराणाम् ॥ ६ ॥

इति श्रीवराहमि० बृहत्सं० चामरलक्षणं नाम द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥

देवताओंने हिमालय पर्वतकी कन्दराओंमें चामरोंके लिये चामरी (चमर) गाय उत्पन्न की हैं. उनकी पूंछके बाल पीले, काले और श्वेत होते हैं ॥१॥ चामरोंके बाल स्निग्ध, कोमल और बहुत हों, विशद अर्थात् निर्मल और परस्पर उलझे हुए न हों, उनके बीचकी हड्डी छोटी हो, जिसमें बाल लगे रहते हैं और श्वेतवर्णके बाल हों, यह उन चामरोंके गुणोंकी संपत्ति कही है, ऐसे बाल शुभ होते हैं और चामरके बाल विद्ध (टूटे और फटे हुए), छोटे और लुप्त (उखडे हुए) शुभ नहीं होते ॥२॥ उस चामरका दंड डेढ हाथ, एक हाथ या रत्निके तुल्य लम्बा बनावे, उत्तम काष्ठका दंड बनाये सुवर्ण या चांदीसे मढ उसपर रत्न जड, यह दण्ड राजाओंको शुभ होता है (मुट्ठी बंधे हाथको रत्नि कहते हैं) ॥३॥ लाठी, छत्र, अंकुश, वेत्र (छडी), धनुष, वितान (चंदोवा), भाला ध्वज और चामर इन सबके दंड ब्राह्मणोंको बनाने चाहिये, क्षत्रियोंको तंत्री (तांत) के रंग (पीले और लाल रंग मिले), वैश्योंको शहतके रंग और शूद्रोंको काले रंगके दंड बनाने उचित हैं ॥४॥ इन दंडोंके दो पर्व (पोरुओं) से लेकर दो २ बढाते जांय तो बारह पर्वतक सम पर्वोंके यह फल क्रमसे होते हैं, जैसे दो पर्वका दंड हो तो माताका क्षय, चार पर्व हो तो भूमिक्षय, छः पर्व हो तो धनक्षय, आठ पवका हो तो मृत्यु कुलक्षय, दश पर्वका हो तो रोगकी उत्पत्ति और वारह पर्वका दंड हो तो मृत्यु होती है ॥५॥ तीन पोरुओंसे लेकर दो २ पोरुओंकी वृद्धिसे विषमपर्वोंके यह फल क्रमसे उनके स्वामियोंको होते हैं, जैसा तीन पर्वका दंड होनेसे यात्रामें जय, पांच पर्वका होनेसे शत्रुओंका नाश, सात पर्वका होनेसे बहुतसा लाभ और नौ पर्वका होनेसे भूमिका लाभ,ग्यारह पर्वका होनेसे पशुओंकी वृद्धि और तेरह पर्वका दंड होनेसे अभिष्ट वस्तुकी प्राप्ति होती है ॥१६॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य–पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटी० द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥७२॥

अथ त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

छत्रलक्षणम्

निचितं तु हंसपक्षैः कृकवाकुमयूरसारसानां च । दौकूलेन नवेन तु समन्ततश्छादितं शुक्लम् ।। १ ।। मुक्ताफलैरुपचितं प्रलम्बमालाविलं स्फटिकमूलम् । षड्ढस्तशुद्धहैमं नवपर्वनगैकदण्डं च ।। २ ।। दण्दार्धविस्तृतं तत् समावृतं रत्नविभूषितमुदग्रम् । नृपतेस्तदातपत्रं कल्याणपरं विजयदं च ।। ३ ।। युवराजनृपतिपत्न्याः सेनापतिदण्डनायकानां च । दण्डोऽर्धपञ्चहस्तः समपञ्चकृतार्धविस्तारः ।। ४ ।। अन्येषामुष्णघ्नं प्रसादपट्टैर्विभूषितशिरस्कम् । व्यालम्बिरत्नमालं छत्रं कार्यं च मायूरम् ।। ५ ।। अन्येषां च नराणां शीतातपवारणं तु चतुरस्रम् । समवृत्त दण्डयुक्तं छत्रं कार्यं तु विप्राणाम् ।। ६ ।।

इति श्रीवराहमि० बृहत्सं० छत्रलक्षणं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ।। ७३ ।।

हंस, मुरगा, मयूर, सारस पक्षीके पंखोंसे बना, नये दुकूल (दुपट्टे) से चारों ओर ढका, श्वेतवर्ण, मोतियोंसे व्याप्त ।।१।। चारों ओर लटकती हुई मोतियोंकी मालाओंसे युक्त, स्फटिककी मूठसे शोभित छत्र बनावे और छः हाथ लम्बा एक काष्ठका दंड सोनेसे मढा, नौ या सात पर्वोंसे युक्त छत्रको लगावे ।।२।। दडके अर्धभागके तुल्य (तीन हाथ) छत्रका व्यास रक्खे, वह छत्र सुश्लिष्टसंधि, रत्नोंसे भूषित और उन्नत हो ऐसा छत्र राजाको कल्याण करता और विजय देता है ।।३।। युवराज, राजाकी रानी, सेनापति और दंडनायक (कोतवाल) के छत्रके दंड साढे चार हाथ, और छत्रका व्यास अढाई हाथ होता है ।।४।। युवराजादिको छोड राजपुत्रादिके लिये मयूरपक्षोंका बना प्रसादपट्ट गोपट्टलक्षणाध्यायमें कह आये हैं, तिनसे भूषित हुआ है शिर जिसका, रत्नमाला जिसमें लटकती हैं ऐसा छत्र धूपकी निवृत्तिके लिये होता है ।।५।। साधारण मनुष्योंके लिये शीत और धूपको रोकनेवाला चतुरस्र छत्र होता है और ब्राह्मणोंके लिये चारों ओरसे गोल और दंडयुक्त छत्र बनाना उचित है ।।६।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डित बलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ।।७३।।

अथ चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

स्त्रीप्रशंसा

जये धरित्र्याः पुरमेव सारं पुरे गृहं सद्मनि चैकदेशः । तत्रापि शय्या शयने वरा स्त्री रत्नोज्ज्वला राजसुखस्य सारः ।। १ ।। रत्नानि विभूषयन्ति योषा भूष्यन्ते वनिता न रत्नकान्त्या । चेतो वनिता हरन्त्यरत्ना नो रत्नानि विनाङ्गनाङ्गसङ्गात् ।। २ ।। आकारं विनिगहतां रिपुबलं जेतुं समुत्तिष्ठतां तन्त्रं चिन्तयतां कृताकृत-

शतव्यापारशाखाकुलम् । मन्त्रिप्रोक्तनिषेविनां क्षितिभुजामाशङ्किनां सर्वतो दुःखाम्भोनिधिवर्तिनां सुखलवः कान्तासमालिङ्गनम् ।। ३ ।। श्रुतं दृष्टं स्पृष्टं स्मृतमपि नृणां ह्लादजननं न रत्नं स्त्रीभ्योऽन्यत् क्वचिदपि कृतं लोकपतिना । तदर्थं धर्मार्थौ सुतविषयसौख्यानि च ततो गृहे लक्ष्म्यो मान्याः सततमबला मानविभवैः ।। ४ ।। येऽप्यङ्गनानां प्रवदन्ति दोषान् वैराग्यमार्गेण गुणान्विहाय । ते दुर्जना मे मनसो वितर्कः सद्भाववाक्यानि न तानि तेषाम् ।।५।। प्रब्रूत सत्यं कतरोऽङ्गनानां दोषोऽस्ति यो नाचरितो मनुष्यैः । धाष्टर्येन पुम्भिः प्रमदा निरस्ता गुणाधिकास्ता मनुनात्र चोक्तम् ।। ६ ।। सोमस्तासामदाच्छौचं गन्धर्वाः शिक्षितां गिरम् । अग्निश्च सर्वभक्षित्वं तस्मान्निष्कसमाः स्त्रियः ।। ७ ।। ब्राह्मणाः पादतो मेध्या गावो मेध्यास्तु पृष्ठतः । अजाश्वा मुखतो मेध्या स्त्रियो मेध्यास्तु सर्वतः ।। ८ ।। स्त्रियः पवित्रमतुलं नैता दुष्यन्ति कर्हिचित् । मासि मासि रजो ह्यासां दुष्कृतान्यपकर्षति ।। ९ ।। जामयो यानि गेहानि शपन्त्यप्रतिपूजिताः । तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्ततः ।। १० ।। जाया वा स्याज्जनित्री वा सम्भवः स्त्रीकृतो नृणाम् । हे कृतघ्नास्तयोर्निन्दां कुर्वतां वः कुतः सुखम् ।।११।। दम्पत्योर्व्युत्क्रमे दोषः समः शास्त्रे प्रतिष्ठितः । नरा न तमवेक्षन्ते तेनात्र वरमङ्गनाः ।। १२ ।। बहिर्लोम्ना तु षण्मासान् वेष्टितः खरचर्मणा । दारातिक्रमणे भिक्षां देहीत्युक्त्वा विशुद्धयति ।। १३ ।। न शतेनापि वर्षाणामपैति मदनाशयः । तत्राशक्त्या निवर्तन्ते नरा धैर्येण योषितः ।।१४।। अहो धाष्टर्यमसाधूनां निन्दतामनघाः स्त्रियः । मुष्णतामिव चौराणां तिष्ठ चौरेति जल्पताम् ।। १५ ।। पुरुषश्चाटुलानि कामिनीनां कुरुते यानि रहो न तानि पश्चात् । सुकृतज्ञतयाङ्गना गतासूनवगूह्य प्रविशन्ति सप्तजिह्वम् ।। १६ ।। स्त्रीरत्नभोगोऽस्ति नरस्य यस्य निःस्वोऽपि स्वं प्रत्यवनीश्वरोऽसौ । राज्यस्य सारोऽशनमङ्गनाश्च तृष्णानलोद्दीपनदारुशेषम् ।। १७ ।। कामिनीं प्रथमयौवनान्वितां मन्दवल्गुमृदुपीडितस्वनाम् । उत्स्तनीं समवलम्ब्य या रतिः सा न धातृभवनेऽस्ति मे मतिः ।। १८ ।। तत्र देवमुनिसिद्धचारणैर्मान्यमानपितृसेव्यसेवनात् । ब्रूत धातृभवनेऽस्ति किं सुखं यद्रहः समवलम्ब्य न स्त्रियम् ।। १९ ।। आब्रह्मकीटान्तमिदं निबद्धं पुंस्त्री प्रयोगेण जगत्समस्तम् । व्रीडात्र का यत्र चतुर्मुखत्वमीशोऽपि लोभाद्गमितो युवत्याः ।। २० ।।

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामन्तःपुरचिन्तायां
स्त्रीप्रशंसा नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ।। ७४ ।।

राजा संपूर्ण पृथ्वीको जीत ले परंतु उसमें अपनी राजधानीका नगरही सार है. उस नगरमें अपना गृहसार, गृहमें अपने रहनेका एक मुख्य स्थान सार, उस स्थानमें शय्या सार और उस शय्याके रत्नोंसे भूषित स्त्री सार है, राज्य सुखमें इतनाही सार

है और सब पदार्थ सारहीन हैं ॥१॥ रत्नोंको स्त्री भूषित करती है. रत्नकांतिसे स्त्रियें, भूषित नहीं होतीं, कारण कि, स्त्री विना रत्न भी हो तो भी चित्तको हर लेती है और रत्न स्त्रियोंके अंगका संग किये विना चित्त नहीं हर सकते ॥२॥ हर्ष, शोक आदिके आकारको छिपाते हुए, शत्रुबल जीतनेके अर्थ उठते हुए, किये न किये सैंकडों व्यवहारोंकी शाखाओंसे व्याकुल, राजतंत्रका चिंतवन करते हुए, मंत्रियोंकी कही नीतिपर चलते हुए पुत्र स्त्री आदिसे भी शंकित रहते हुए, दुःखसमुद्रमें डूबे हुए, राजाओंके अर्थ स्त्रीका आलिंगन करना ही थोडा सा सुख है ॥३॥ विधाताने स्त्रियोंके सिवाय और कहीं कोई ऐसा रत्न निर्माण नहीं किया जिसके सुनने, स्पर्श करने, देखने या स्मरण करनेसेही चित्तमें आह्लाद हो जाय, धर्म और अर्थका सेवन स्त्रीकेही लिये करते हैं, पुत्रोंका और विषयसुखोंका लाभ स्त्रीसेही होता है. स्त्री घरकी लक्ष्मी है, इसलिये मान और ऐश्वर्यसे सब समय स्त्रियोंका सत्कार करना उचित है ॥४॥ यह हमारे मतका निश्चय है कि जो पुरुष स्त्रियोंके गुणोंको छोड वैराग्य मार्ग द्वारा उनके दोष कहते हैं वे पुरुष दुष्ट हैं इसी कारण उन दुष्टोंके वे वचन भी प्रामाणिक नहीं ॥५॥ आप विरक्त हैं तो आपही सत्य कहें कि, स्त्रियोंमें ऐसा कौनसा दोष है जो पुरुषने पहलेही न किया हो (सब दोष पहले पुरुषोंने किये पीछे स्त्रियोंने पुरुषोंसे सीखे) पुरुषोंने धृष्टतासे स्त्रियोंको जीत लिया, वास्तवमें पुरुषोंसे स्त्रियोंमें अधिक गुण हैं. धर्मशास्त्रके मुख्य आचार्य मनुने भी इस विषयमें यह कहा है ॥६॥ चंद्रमा ने शुद्धता, गंधर्वोंने शिक्षित वचन दिये और अग्निने सर्वभक्षित्व स्त्रियोंको दिया है, इसलिये स्त्री सुवर्ण तुल्य हैं ॥७॥ ब्राह्मणोंके पैर, गौओंकी पीठ और बकरे व घोडोंका मुख पवित्र है और स्त्रियोंके सब अंगही पवित्र हैं ॥८॥ स्त्रियोंके समान कोई दूसरा पदार्थ पवित्र नहीं है, वह कभी दूषित नहीं हो सकती हैं, क्योंकि महीने महीने उनका ऋतु होता है जो कि उनके सब पाप हर लेता है ॥९॥ विना आदर की हुई कुलस्त्री जिन घरोंको शाप देती है वे घर मानो कृत्यासे हत हुए चारों ओरसे नाशको प्राप्त होते हैं ॥१०॥ भार्या हो या माता हो पुरुषोंकी उत्पत्ति स्त्रियोंसेही होती है अर्थात् भार्यासे पुत्ररूप करके उत्पन्न और मातासे साक्षात् आप उत्पन्न होता है, हे कृतघ्न पुरुषो! भार्या और माताकी निन्दा करनेसे तुम्हारा भला कहांसे होगा ॥ ११ ॥ स्त्रीपुरुषोंको परस्पर पुरुषोंको परस्त्रीसंगमें और स्त्रीको परपुरुषके संगमें तुल्यही दोष धर्मशास्त्रमें कहा है; परंतु पुरुष परस्त्रीसंगमें कुछ दोष नहीं देखते और स्त्री परपुरुषमें दोष देखती है, इसलिये पुरुषोंसे स्त्रियां उत्तम हैं ॥ १२ ॥ जो पुरुष अपनी भार्याको छोड दूसरी स्त्रीका संग करे वे पुरुष बाहर की ओरसे रोमों-वाले गर्दभका चमडा ओढकर छः महीनेतक (भिक्षांदेहि) यह कहे अर्थात् भीख मांगता फिरे तब शुद्ध होता है ॥ १३ ॥ सौ वर्ष बीतनेपर भी पुरुषोंकी कामवासना नहीं छूटती परंतु शरीरकी शक्ति घट जानेसे पुरुष निवृत्त होते और स्त्री धैर्यसे निवृत्त होती है ॥१४॥ देखो! निर्दोष स्त्रियोंकी निंदा करते हुए दुष्टोंकी दुष्टता ऐसी है जैसे चोरी करते हुए चोर और किसी पुरुष (घरके स्वामी आदि) को कहते हो कि अरे चोर ! खडा हो यह सब धर्मशास्त्रके वाक्य हैं ॥१५॥ पुरुष कामातुर होकर एकांतमें स्त्रियोंको जो मीठे २ वचन बोलता है तैसे वचन मनसे नहीं बोलता और स्त्री अपनी कृतज्ञतासे मृतपतिको आलिंगन कर अग्निमें प्रवेश करती है ॥१६॥ उत्तम स्त्रीको भोगनेवाला निर्धन भी

राजा है, क्योंकि राज्यका सार भोजन और उत्तम स्त्री यह दोही हैं और सब हाथी, घोडे, रत्न, सुवर्णादि सामग्री तृष्णा रूप अग्निको प्रज्वलित करनेको काष्ठ हैं ॥१७॥ हमारी तो यह बुद्धि है कि नये यौवनवाली, मंद, सुंदर, कोमल और स्तब्ध शब्द करती हुई, ऊंचे स्तनोंवाली कामिनीको आलिंगन करनेसे जो सुख होता है, सो सुख ब्रह्मलोक-में भी नहीं ॥१८॥ ब्रह्मलोकमें देवता, मुनि सिद्ध और चारण मान्योंका मान और सेव्योंका सेवन करते हैं, इससे बढकर और ब्रह्मलोकमें ऐसा कौनसा सुख है, स्त्रीको एकांतमें आलिंगन करनेसे न प्राप्त हो ॥ १९ ॥ ब्रह्मासे लेकर कीडे मकोडेतक सब जगत् स्त्री-पुरुषकी प्रयोगसे बंधा है, इसमें क्या लज्जा, जहां जगत्प्रभु महादेवजी भी स्त्रीको देखनेके लोभसे [1]चतुर्मुख हो गये ॥२०॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

अथ पंचसप्ततितमोऽध्यायः
सौभाग्यकरणम्

जात्यं मनोभवसुखं सुभगस्य सर्वमाभासमात्रमितरस्य मनोवियोगात् । चित्तेन भावयति दूरगतापि यं स्त्री गर्भं बिभर्ति सदृशं पुरुषस्य तस्य ॥ १ ॥ भंक्त्वा काण्डं पादपस्योप्तमुर्व्यां बीजं वास्यां नान्यतामेति यद्वत् । एवं ह्यात्मा जायते स्त्रीषु भूयः कश्चित्तस्मिन् क्षेत्रयोगाद्विशेषः ॥ २ ॥ आत्मा सहैति मनसा मन इन्द्रियेण स्वार्थेन चेन्द्रियमिति क्रम एष शीघ्रः । योगोऽयमेव मनसः किमगम्यमस्ति यस्मिन्मनो व्रजति तत्र गतोऽयमात्मा ॥ ३ ॥ आत्मायमात्मनि गतो हृदयेऽतिसूक्ष्मो ग्राह्योऽचलेन मनसा सतताभियोगात् । यो यं विचिन्तयति याति स तन्मयत्वं यस्मादतः सुभगेव गता युवत्यः ॥ ४ ॥ दाक्षिण्यमेकं सुभगत्वहेतुर्विद्वेषणं तद्विपरीतचेष्टा । मन्त्रौष-धाद्यैः कुहकप्रयोगैर्भवन्ति दोषा बहवो न शर्म ॥ ५ ॥ वाल्लभ्यमायाति विहाय मानं दौर्भाग्यमापादयतेऽभिमानः । कृच्छ्रेण संसाधयतेऽभिमानी कार्यां यत्नेन वदन् प्रियाणि ॥ ६ ॥ तेजो न तद्यत्प्रियसाहसत्वं वाक्यं न चानिष्टमसत्प्रणीतम् । कार्यस्य गत्वान्तमनुद्धता ये तेजस्विनस्ते न विकत्थना ये ॥ ७ ॥ यः सार्वजन्यं सुभग-त्वमिच्छेद्गुणान् स सर्वस्य वदेत्परोक्षे । प्राप्नोति दोषानसतोऽप्यनेकान् परस्य यो दोषकथां करोति ॥ ८ ॥ सर्वापकारानुगतस्य लोकः सर्वोपकारानुगतो नरस्य । कृत्वोपकारं द्विषतां विपत्सु या कीर्तिरल्पेन न सा शुभेन ॥ ९ ॥ तृणैरिवाग्निः

---

१ दृष्टांत है कि, एक समय पार्वतीको अंकमें लिये महादेवजी कैलासमें विराजमान थे, उस समय तिलोत्तमा नाम अप्सरा महादेवजीकी प्रदक्षिणा करने लगी तब पार्वतीके भयसे महादेवजी चारों ओर मुख फेरकर तो उसका मुख न देख सके परंतु जिधर वह जाती उसी ओर नया मुख उत्पन्न करते गये इस प्रकार महादेवजीके चार मुख हुये.

सुतरां विवृद्धिमाच्छाद्यमानोऽपि गुणोऽभ्युपैति । स केवलं दुर्जनभावमेति हन्तुं गुणान् वाञ्छति यः परस्य ॥ १० ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां सौभाग्यकरणं नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

सुभग पुरुषको सब कामदेवका सुख श्रेष्ठ है और स्त्रीका चित्त अनुरक्त न होनेसे दुर्भग पुरुषको रतिमें सुखका आभास मात्र होता है, वास्तविक सुख नहीं होता रतिके समय दूर स्थित भी स्त्री चित्तसे जिस पुरुषका ध्यान करे, उसीके सदृश गर्भ धारण करती है ॥१॥ जिस वृक्षका कलम अथवा बीज भूमिमें बोये वही वृक्ष जमता है दूसरा वृक्ष नहीं इसी प्रकार स्त्रियोंमेंभी फिरभी संतानरूपसे आत्माही उत्पन्न होता है, केवल क्षेत्रके योगसे कुछ विशेष होता है, जैसा किसी क्षेत्रमें वृक्षादि उत्तम होते, किसीमें सामान्य होते हैं ऐसेही स्त्रियोंमेंभी जानना योग्य है ॥२॥ आत्मा मनके साथ और मन इन्द्रियके साथ जाता है और इन्द्रियां अपने विषय शब्द आदिके साथ जाती हैं, यह आत्माके जानेका शीघ्र क्रम और यही योग है. मनको कोई स्थान अगम्य नहीं और जहां मन जाय वहां यह आत्मा चला जाता है ॥३॥ अतिसूक्ष्मरूप यह जीवात्मा हृदयमें परमात्माके बीच स्थित है, निरन्तर अभ्याससे निश्चल चित्तसे उसका ग्रहण करना चाहिये, जो जिसका चिन्तन करे वह तन्मय हो जाते हैं, इसलिये स्त्रीभी सुभग पुरुषकाही चिन्तन करती है ॥४॥ स्त्रियोंके चित्तके अनुकूल आचरण सौभाग्यका मुख्य हेतु है अर्थात् दाक्षिण्यसे पुरुष सुभग होता है और स्त्रियोंके चित्तमें विपरीत आचरण करनेपर विद्वेषण होता है अर्थात् वह पुरुष दुर्भग हो जाता है, वशीकरण आदिके लिये मंत्र औषध और भी इन्द्रजालादि कुहक प्रयोग करनेसे अनेक दोषही उत्पन्न होते हैं, भला नहीं होता अर्थात् स्त्रीवशीकरण-का मुख्य उपाय दाक्षिण्य है, मंत्र, औषध आदि नहीं ॥५॥ अहंकार को छोडनेसे मनुष्य सबका प्रिय हो जाता है, अहंकारसे पुरुष सबको अप्रिय होता है, अभिमानी पुरुष अपने कार्य कष्टसे साधता और मीठा बोलनेवाला पुरुष सहजमें कार्य सिद्ध कर लेता है ॥६॥ विना विचारे करनेमें प्रीति तेज नहीं है और दुष्टोंके कहे दुर्वचन भी श्रेष्ठ नहीं जो पुरुष कार्यको समाप्त करकेभी अभिमान न करे वे तेजस्वी होते हैं. वाचाल पुरुष तेजस्वी नहीं होते ॥७॥ सबका प्यारा होना चाहनेवाला पुरुष परोक्षमें सबकी स्तुति करे, जो पराई निन्दा करते हैं उनके ऊपर अकारण ही अनेक दोष मनुष्य लगा देते हैं ॥८॥ सबके ऊपर उपकार करनेमें जो पुरुष तत्पर है उसके ऊपर सब मनुष्य भी उपकार करते हैं, शत्रुके ऊपर विपत्तिकालमें उपकार करनेसे जो कीर्ति होती है वह थोडे पुण्यका फल नहीं है अर्थात् किसी बडे पुण्यसे ही ऐसा योग आ पडता है ॥९॥ दुष्ट मनुष्य चाहे जितने सज्जनोंके गुणोंको छिपावे परंतु उनके गुण तृणोंसे ढके हुए अग्निकी भांति वृद्धि-कोही प्राप्त होते हैं. जो पराये गुणोंको मिटाया चाहता है वही केवल दुर्जनताको प्राप्त हो जाता है और गुण किसीके मिटाये नहीं मिट सकते ॥१०॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद वास्तव्य-पंण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां पंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

अथ षट्सप्ततितमोऽध्यायः

कान्दर्पिकम्

रक्तेऽधिके स्त्री पुरुषस्तु शुक्रे नपुंसकं शोणितशुक्रसाम्ये। यस्मादतः शुक्रविवृद्धिदानि निषेवितव्यानि रसायनानि ॥ १ ॥ हर्म्यपृष्ठमुडुनाथरश्मयः सोत्पलं मधु मदालसा प्रिया। वल्लकी स्मरकथो रहः स्रजो वर्ग एष मदनस्य वागुरा ॥ २ ॥ माक्षिकधातुमधुपारदलोहचूर्णपथ्याशिलाजतुविडङ्गघृतानि योऽद्यात्। सैकानि विंशतिरहानि जरान्वितोऽपि सोऽशीतिकोऽपि रमयत्यबलां युवेव ॥ ३ ॥ क्षीरं शृतं यः कपिकच्छुमूलैः पिबेत् क्षयं स्त्रीषु न सोऽभ्युपैति। माषान् पयःसर्पिषि वा विपक्वान् षड्ग्रासमात्रांश्च पयोऽनुपानान् ॥ ४ ॥ विदारिकायाः स्वरसेन चूर्णं मुहुर्मुहुर्भावितशोषितं च। शृतेन दुग्धेन सशर्करेण पिबेत्स यस्य प्रमदाः प्रभूताः ॥ ५ ॥ धात्रीफलानां स्वरसेन चूर्णं सुभावितक्षौद्रसिताज्ययुक्तम्। लीढ्वान पीत्वा च पयोऽग्निशक्त्या कामं निकामं पुरुषो निषेवेत् ॥ ६ ॥ क्षीरेण बस्ताण्डयुजा शृतेन संप्लाव्य कामी बहुशस्तिलान् यः। सुशोषितानत्ति पिबेत्पयश्च तस्याग्रतः किं चटकः करोति ॥ ७ ॥ माषसूपसहितेन सर्पिषा षष्टिकौदनमदन्ति ये नराः। क्षीरमप्यनु पिबन्ति तासु ते शर्वरीषु मदनेन शेरते ॥८॥ तिलाश्वगन्धाकपिकच्छुमूलैर्विदारिकाषष्टिकपिष्टयोगः। आजेन पिष्टः पयसा घृतेन पक्त्वा भवेच्छष्कुलिकातिवृष्या ॥ ९ ॥ क्षीरेण वा गोक्षुरकोपयोगं विदारिकाकन्दकभक्षणं वा। कुर्वन्न सीदेद्यदि जीर्यतेऽस्य मन्दाग्निता चेदिदमत्र चूर्णम् ॥ १० ॥ साजमोदलवणा हरीतकी शृङ्गवेरसहिता च पिप्पली। मद्यतक्रतरलोष्णवारिभिश्चूर्णपानमुदराग्निदीपनम् ॥ ११ ॥ अत्यम्लतिक्तलवणानि कटूनि वात्ति क्षारातिशाकबहुलानि न भोजनानि। दृक्छुक्रवीर्यरहितः स करोत्यनेकान् व्याजान् जरन्निव युवाप्यबलामवाप्य ॥ १२ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामन्तःपुरचिन्तायां कान्दर्पिकं नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥

गर्भधारणके समय स्त्रीका रज अधिक हो तो कन्या, पुरुषका वीर्य अधिक हो तो पुत्र और दोनों तुल्य हो तो नपुंसक उत्पन्न होता है, इस कारण वीर्यके बढानेवाले रसायन सेवन करने चाहिये ॥१॥ महलकी छत्त, चंद्रमाके किरण, नीलोत्पलसहित मद्य अर्थात् मदसे भरे पानपात्रमें नील कमल रक्खा हो, मद करके आलस्ययुक्ता प्राणप्रिया, वीणा, कामदेवकी चर्चा, एकांत, पुष्पमाला यह सब सामग्री कामदेवके बांधनेकी रस्सी है ॥२॥ सोनामक्खी, शहत, पारा, लोहचून, शिलाजीत, वायबिडंग और घृतको जो पुरुष (सब वस्तुओंको समभाग ले चूर्ण कर शहत व घृतमें मिलाय गोली कर उन गोलियोंको)

इक्कीस दिन खाय तो अस्सी वर्षका वृद्ध भी तरुण पुरुषकी भांति स्त्रीसे रमण करता है ।।३।। कौंचकी जडके साथ औटाकर दूधको पीनेवाला पुरुष स्त्रीसंग करनेमें क्षीण नहीं होता या दूधसे निकले घृतमें उडदोंको पकावे, पीछे छः ग्रास उन उडदोंको भक्षण करके ऊपरसे दूध पीवे तो स्त्रीसंग करनेसे क्षीण नहीं होवे ।।४।। विदारीकंदके चूर्णके विदारीकंदकेही रसकी वारंवार भावना देखकर सुखाता जाय. उस चूर्णको भक्षण कर व ऊपरसे औटाया हुआ दूध मिश्री डालकर पीना चाहिये जिस पुरुषके बहुत स्त्री हों ।।५।। आमलेके चूर्णमें आमलेके रसकी वार २ भावना देकर सुखावे फिर उस चूर्णमें शहत और मिश्री मिलाकर चाटे व ऊपरसे अपनी अग्निके अनुसार जितना पच सके उतना दूध पीवे तो बहुत मैथुन कर सकता है ।।६।। बकरेके अंडेको दूधमें डाल औटावे, पीछे उस दूधकी तिलोंमें बहुत वार भावना देवे और सुखावे जो कामी पुरुष उन तिलोंको भक्षण कर ऊपरसे दूध पीवे उसके आगे चिडाभी क्या कर सकता है ।।७।। जिन रातोंमें घृतसे युक्त उडदकी दालके साथ सट्ठीके चावलोंका भात खाकर जो पुरुष पीछे दूध पीते हैं, वे उन रात्रियोंमें कामदेवके साथ शयन करते अर्थात् रात्रिभर उनको कामोद्दीपन होता है और बहुत स्त्रीसंग करते हैं ।।८।। तिल, असगंध, कौंचकी जड विदारीकंद इन सबको बराबर ले चूर्ण कर सबके समान साठीके चावलोंका आटा मिलावे पीछे उसको बकरीके दूधमें उसनकर पूरी बनाय बकरीके घृतमें पक्व करे वह पूरी अति वृष्य होती है ।।९।। गोखरूका चूर्ण खाकर दूध पिये या विदारीकंदका चूर्ण भक्षण कर दूध पिये तो स्त्रीसंगसे क्षीण न हो परंतु यह चूर्ण न पच जावे तो मन्दाग्नि हो अर्थात् चूर्ण न पच सके तो पहले इस चूर्णका सेवन करे जो कहते हैं ।। १० ।। अजवायन, लवण, हरड, सोंठ, पीपल इनको सम भाग लेकर चूर्ण करे पीछे उस चूर्णको मद्य, तक्र (छांछ) कांजी अथवा गरम जलके अनुपानसे लेवे यह चूर्ण जठराग्निको दीपन करता है ।।११।। जो पुरुष बहुत खट्टे, बहुत तिक्त, बहुत लवणसे युक्त अथवा बहुत कटु लाल मिरच आदिसे युक्त भोजन करे और बहुत क्षार अथवा बहुत शाक करके युक्त भोजन करे वह पुरुष दृष्टि, वीर्य और वलसे हीन होकर स्त्रीसंगके समय वृद्धकी भाँति अनेक ब्याज (बहाने) करता है, वह स्त्रीके कामका नहीं रहता ।।१२।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य पण्डितबलदेवप्रसाद मिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां षट्सप्ततितमोऽध्यायः ।।७६।।

अथ सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

गन्धयुक्तिः

स्रग्गन्धधूपाम्बरभूषणाद्यं न शोभते शुक्लशिरोरुहस्य । यस्मादतो मूर्द्धराग सेवां कुर्याद्यथैवाञ्जनभूषणानाम् ।। १ ।। लौहे पात्रे तण्डुलान् कोद्रवाणां शुक्ले पक्वांल्लोहचूर्णेन साकम् । पिष्टान् सूक्ष्मं मूर्ध्नि शुक्लाम्लकेशे दत्त्वा तिष्ठेद्वेष्टयित्वार्द्रपत्रैः ।।२।। याते द्वितीये प्रहरे विहाय दद्याच्छिरस्यामलकप्रलेपम् । सञ्छाद्य पत्रैः प्रहरद्वयेन प्रक्षालितं कार्ष्ण्यमुपैति शीर्षम् ।। ३ ।। पश्चाच्छिरःस्नानसुगन्ध-

तैलैर्लोहाम्लगन्धं शिरसोऽपनीय । हृद्यैश्च गन्धैर्विविधैश्च धूपैरन्तः पुरे राज्यसुखं निषेवेत् ॥ ४ ॥ त्वक्कुष्ठरेणुनलिकास्पृक्कारसतगरवालकैस्तुल्यैः । केसरपत्रविमिश्रैर्नरपतियोग्यं शिरः स्नानम् ॥ ५ ॥ मञ्जिष्ठया व्याघ्रनखेन शुक्त्या त्वचा सकुष्ठेन रसेन चूर्णः । तैलेन युक्तोऽर्कमयूखतप्तः करोति तच्चम्पकगन्धि तैलम् ॥ ६ ॥ तुल्यैः पत्रतुरुष्कवालतगरैर्गंन्धः स्मरोद्दीपनः सव्यामो बकुलोऽयमेव कटुकाहिंगुप्रधूपान्वितः । कुष्ठेनोत्पलगन्धिकः समलयः पूर्वो भवेच्चम्पको जातीत्वक्सहितोऽतिमुक्तक इति ज्ञेयः सकुस्तुम्बुरुः ॥ ७ ॥ शतकुन्दुरुकौ पादेनार्धेन नखतुरुष्कौ च । मलयप्रियंगुभागौ गन्धो धूप्यो गुडनखेन ॥ ८ ॥ गुग्गुलुवालकलाक्षामुस्तानखशर्कराः क्रमाद्धूपः । अन्यो मांसीवालकतुरुष्कनखचन्दनैः पिण्डः ॥ ९ ॥ हरीतकीशंखघनद्रवाम्बुभिर्गुडोत्पलैः शैलकमुस्तकान्वितैः । नवान्तपादादिविवर्धितैः क्रमाद् भवन्ति धूपा बहवो मनोहराः ॥ १० ॥ भागैश्चतुर्भिः सितशैलमुस्ताः श्रीसर्जभागौ नखगुग्गुलूच । कर्पूरबोधो मधुपिण्डितोऽयं कोपच्छदो नाम नरेन्द्रधूपः ॥ ११ ॥ त्वगुशीरपत्रभागैः सूक्ष्मैलार्धेन संयुतैश्चूर्णः । पटवासः प्रवरोऽयं मृगकर्पूरप्रबोधेन ॥ १२ ॥ घनवालकशैलेयककर्चूरोशीरनागपुष्पाणि । व्याघ्रनखस्पृक्कागुरुदमनकनखतगरधान्यानि ॥ १३ ॥ कर्पूरचोरमलयैः स्वेच्छापरिवर्तितैश्चतुर्भिरतः । एकद्वित्रिचतुर्भिभागैर्गन्धार्णवो भवति ॥ १४ ॥ अत्युल्बणगन्धत्वादेकांशो नित्यमेव धान्यानाम । कर्पूरस्य तदूनो नैतौ द्वित्र्यादिभिर्देयौ ॥ १५ ॥ श्रीसर्जगुडनखैस्ते धूपयितव्याः क्रमान्न पिण्डस्थैः । बोधः कस्तूरिकया देयाः कर्पूरसंयुतया ॥ १६ ॥ अत्र सहस्रचतुष्टयमन्यानि च सप्ततिसहस्राणि । लक्षं शतानि सप्त विंशतियुक्तानि गन्धानाम् ॥ १७ ॥ एकैकमेकभागं द्वित्रिचतुर्भागिकैर्युतं द्रव्यैः । षड्गन्धकरं तद्वत् द्वित्रिचतुर्भागिकं कुरुते ॥ १८ ॥ द्रव्यचतुष्टययोगाद्गन्धचतुर्विंशतिर्यथैकस्य । एवं शेषाणाभपि षण्णवतिः सर्वपिण्डोऽत्र ॥ १९ ॥ षोडशके द्रव्यगणे चतुर्विकल्पेन भिद्यमानानाम् । अष्टादश जायन्ते शतानि सहितानि विंशत्या ॥ २० ॥ षण्णवतिभेदभिन्नश्चतुर्विकल्पो गणो यतस्तस्मात् । षण्णवतिगुणः कार्यः सा संख्या भवति गन्धानाम् ॥ २१ ॥ पूर्वेण पूर्वेण गतेन युक्तं स्थानं विनान्त्यं प्रवदन्ति संख्यान् । इच्छाविकल्पैः क्रमशोऽभिनीय नीते निवृत्तिः पुनरन्यनीतिः ॥ २२ ॥ द्वित्रीन्द्रियाष्टभागैरगुरुः पत्रं तुरुष्कशैलेयौ । विषयाष्टपक्षदहनाः प्रियंगुमुस्तारसाः केशः ॥ २३ ॥ स्पृक्कात्वक्तगराणां मांस्याश्च कृतैकसप्तषड्भागाः । सप्तर्तुवेदचन्द्रैर्मलयनखश्रीककुन्दुरुकाः ॥ २४ ॥ षोडशके कच्छपुटे यथा तथा मिश्रितैश्चतुर्द्रव्यैः । येऽत्राष्टादश भागास्तेऽस्मिन् गन्धादयो योगाः ॥ २५ ॥ नखतगरतुरुष्कयुता जातीकर्पूरमृगकृतोद्बोधाः । गुडनखधूप्या गन्धाः कर्तव्याः सर्वतोभद्राः ॥ २६ ॥ जातीफलमृगकर्पूरबोधितैः ससहकार-

मधुसिक्तैः । बहवोऽत्र पारिजातश्चतुर्भिरिच्छापरिगृहीतैः ॥ २७ ॥ सर्जरसश्रीवासकसमन्विता येऽत्र धूपयोगास्तैः । श्रीसर्जरसवियुक्तैः स्नानानि सवालकत्वग्भिः ॥ २८ ॥ रोध्रोशीरनतागुरुमुस्ताप्रियंगुवनपथ्याः । नवकोष्ठात्कच्छपुटाद् द्रव्यत्रितयं समुद्धृत्य ॥ २९ ॥ चन्दनतुरुष्कभागौ शुक्रार्धं पादिका तु शतपुष्पा । कुटुहिंगुलगुडधूप्याः केसरगन्धाश्चतुरशीतिः ॥ ३० ॥ सप्ताहं गोमूत्रे हरीतकीचूर्णसंयुते क्षिप्त्वा । गन्धोदके च भूयो विनिक्षिपेद्दन्तकाष्ठानि ॥ ३१ ॥ एलात्वक्पत्राञ्जनमधुमरिचैर्नागपुष्पकुष्ठैश्च । गन्धाम्भः कर्तव्यं कञ्चित्कालं स्थितान्यस्मिन् ॥ ३२ ॥ जातीफलपत्रैलाकर्पूरैः कृतयमैकशिखिभागैः । अवचूर्णितानि भानोर्मरीचिभिः शोषणीयानि ॥ ३३ ॥ वर्णप्रसादं वदनस्य कांतिं वैशद्यमास्यस्य सुगन्धितां च । संवेवितुः श्रोत्रसुखां च वाचं कुर्वन्ति काष्ठान्यसकृद्भवानाम् ॥ ३४ ॥ कामं प्रदीपयति रूपमभिव्यनक्ति सौभाग्यमावहति वक्त्रसुगन्धितां च । ऊर्जं करोति कफजांश्च निहन्ति रोगांस्ताम्बूलमेवमपरांश्च गुणान् करोति ॥ ३५ ॥ युक्तेन चूर्णेन करोति रागं रागक्षयं पूगफलातिरिक्तम् चूर्णाधिकं वक्त्रविगन्धकारि पत्राधिकं साधु करोति गन्धम् ॥ ३६ ॥ पत्राधिकं निशि हितं सफलं दिवा च प्रोक्तान्यथाकरणमस्य विडम्बनैव । कक्वोलपूगलवलीफलपारिजातैरामोदितं मदमदामुदितं करोति ॥ ३७ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामन्तः पुरचिन्तायां गन्धयुक्तिर्नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

श्वेत केशोंवाले पुरुषको माला, गंध (अतर आदि), धूप, वस्त्र, भूषणादि नहीं शोभित होते, इससे आंखोंमें अंजन डालने और भूषण पहरनेमें यत्न करनेकी भांति केश रंगनेका भी यत्न करना चाहिये ॥१॥ लोहके पात्रमें सिर्केके बीच कोदोंके चावल रांधे, फिर उन चावलोंमें लोहचून मिलाय बहुत सूक्ष्म पीसकर रक्खे पश्चात् केशोंको सिर्केसे खट्टे कर उनपर पहले पीसकर रक्खा हुआ लेप करे और ऊपर अंडादिके हरे पत्ते लपेटकर बैठे ॥२॥ दो पहर बीतनेके उपरान्त इस लेपको धोय आमलोंका लेप कर पत्तोंसे लपेटे, फिर दो पहर बैठा रहे पीछे शिरको धोवे तो कृष्णवर्णके केश हो जाते हैं। केश काले होनेके पीछे शिरःस्नान, सुगंध तेल, मनोहर गंध और भांति २ धूपोंकरके शिरसे लोहे और सिर्केका दुर्गन्ध दूर करके अंतःपुरमें जाय अपनी रानियोंके साथ राजा राज्य सुखका सेवन करे ॥४॥ दालचीनी, कूठ, रेणुका, नलिका, स्पृक्का, बोल, तगर नेत्रवाला, नागकेशर, गंधपत्र इनको सम भाग ले पीसकर शिरमें लगाय शिर धोवे यह राजाओंके योग्य शिरःस्नान कहा है ॥५॥ मंजीठ, व्याघ्रनख, शक्ति, दालचीनी, कूठ और बोल इन सबको बराबर लेकर चूर्ण कर मीठे तेलमें डाल, धूपमें तपावे तो उस तेलमें चंपेकी पुष्पोंकी गंध हो जाती है ॥६॥ पत्र, सिह्लक, नेत्रवाला और तगरको सम भाग मिलावे तो कामदेवको उद्दीपन करनेवाला गंध होता है. इस गंधमें व्याम (गंधद्रव्यविशेष) मिलावे और

कटुका (गुग्गुल) का धूप देवे तो मौलसिरीपुष्पके समान गंधवाला गंधद्रव्य बनता है; इसमें कूठ मिलानेसे नील कमलके तुल्य गंध हो जाती है, श्वेत चंदन मिलानेसे चंपेके तुल्य गंध होती है, इसमें जायफल, दालचीनी और धनिया मिला दे तो अतिमुक्तक-पुष्पके समान गंध हो जाती है ॥७॥ सौफ, कुंदरक (देवदारु, वृक्षका निर्यास) यह दोनों एक चतुर्थांश नख और सिल्लक यह दोनों अर्ध अर्थात् दो चतुर्थांश, श्वेत चंदन और गंधप्रियंगु यह दोनों एक चतुर्थांश, लेकर गंधद्रव्य बनावे और इसको गुडका व नखका धूप दे ॥८॥ गूगल नेत्रवाला, लाख, मोथा, नख और खांड इन सबको बराबर लेकर धूप बनावे. बालछड, नेत्रवाला, सिल्लक, नख और चंदन सम भाग लेनेसे दूसरा पिंड धूप बनता है, ॥९॥ हरड, शंख, नख, द्रव (बोल), नेत्रवाला, गुड, कूठ शैलक, मोथा इन नौ द्रव्योंको एक पादसे लेकर नौ तक बढावे, जैसे हरड एक भाग, शंख दो भाग, नख तीन भाग, इत्यादि एक और गुड कूठको पाद आदि बढानेसे दूसरा शैलक और मोथेकी पादवृद्धिसे तीसरा या हरड एक भाग शंख दो भाग यह एक धूप हुआ, इसमें नखके तीन भाग मिलानेसे दूसरा धूप बोलके चार भाग मिलानेसे तीसरा धूप ऐसेही बहुतसे मनोहर धूप बन जाते हैं ॥१०॥ खांड शैलेय और मोथा इनसे चौगुना श्रीवास और सर्ज (राल) दो भाग, नख और गुग्गुल दो भाग इनको पीसकर कर्पूरका बोध देवे अर्थात् कर्पूरके चूर्णसे उसको सुगंधित करे, फिर शहत मिलाय पिंड कर लेवे, यह कोपच्छदनाम धूप राजाओंके योग्य होता है ॥११॥ दालचीनी, खश, गंधपत्र इनके तीन भाग और सबसे आधी छोटी इलायची लेकर सबका चूर्ण कर और कस्तूरी व कपूरका बोध दे, यह उत्तम पटवास अर्थात् वस्त्रोंको सुगंधित करनेवाला चूर्ण बनता है ॥१२॥ मोथा, नेत्रवाला, शैलेयक, कचूर, खस, नागकेसरके फूल, व्याघ्रनख, स्पृक्का और अगुरु, दमनक, नख, तगर, धनियां ॥१३॥ कपूर, चोर और श्वेत चंदन यह सोलह गंधद्रव्य हैं इनमेंसे चाहे जौनसे चार द्रव्य लेकर उनके एक, दो, तीन और चार भाग अदल बदल कर लेनेसे गंधार्णव होता है ॥१४॥ धनियोंमें अति उत्कटगंध होता है इस कारण धनियोंका नित्य एकही भाग लेना चाहिये और कपूर भी बहुत उत्कटगंध होता है इसलिये एक भागसेभी कम लेना उचित है, इन दोनोंके कभी दो, तीन भाग न लेवे, नहीं तो सब द्रव्योंके गंधको दबा लेते हैं ॥१५॥ सब गंधद्रव्योंको श्रीवास, राल, गुड और नखका धूप दे परंतु इन चारोंका अलग २ धूप दे सबको मिलाकर न देवे, पीछेसे कर्पूर और कस्तूरिका बोध दे ॥१६॥ इन गंधद्रव्योंसे एक लाख चौहत्तर हजार सात, सौ वीस प्रकारके गंध बनते हैं ॥१७॥ एक द्रव्यका एक २ भाग और अन्य द्रव्योंके दो, तीन और चार भाग ले तो छः प्रकारके गंध होते हैं. इसी भांति उस द्रव्यके क्रमसे दो, तीन और चार भाग ले और अन्य द्रव्योंके आदि दो भाग मिलावे तो छः गंध होते हैं ॥ १८ ॥ चार द्रव्योंके मेलसे एकद्रव्यके चौवीस भेद होंगे, यह सब मिलकर छियानवें भेद होते हैं ॥१९॥ सोलह प्रकारके जो गंधद्रव्य कहे उनसे चार २ द्रव्य लेकर भेद करे तो एक हजार आठ सौ चौवीस गंध होते हैं ॥२०॥ चार द्रव्यके गंधसे छियानवें भेद कह आये हैं और एक हजार आठ सौ वीस भेद चार २ द्रव्यके मिलानसे होते हैं इसलिये छियानवेंसे अठारह सौ बीसको गुण दे तो पूर्वोक्त गंधसंख्या १७४७२० सिद्ध हुई ॥२१॥ गंधोंके भेद जाननेके लिये गणितका प्रकार और प्रस्तार दोनों कहते हैं,

सब जितने द्रव्य हों उनकी संख्यातक एकसे लेकर नीचेसे ऊपरको खडी पंक्ति लिख पीछे नीचेके एकको अपने ऊपरके दोमें जोडे तो हुए तीन, फिर इन तीनको अपने ऊपरके तीनमें जोडे हुए छः, उनको अपने ऊपरके चारमें जोडे हुए दश, इस प्रकार सबका संकलन करता आवे, अंतकी संख्याको छोड दे पीछे इस संकलित पंक्तिका संकलन कर अंत्य संख्या छोड देवे इस भांति उतनी पंक्तियोंमें संकलन करता जाय जितने २ द्रव्य लेकर भेद जानना चाहता है तो पिछली पंक्तिके ऊपर अंत्यकी संख्याको छोड जो संख्या होगी वही भेदसंख्या जानो ॥ २२ ॥ अगर, पत्र (गंधपत्र), तुरुष्क (सिह्लक), शैलेय इन चारोंके दो, तीन, पांच और आठ भाग लेवे, प्रियंगु, मोथा, रस, (बाले), केश हीबेर इनके पांच, दो, आठ और तीन भाग ॥२३॥ स्पृक्का, त्वक्, तगर, मांसी इनके चार, एक, सात और छः भाग, श्वेत चंदन, नख, श्रीवास, कुंदरू इनके सात, छः, चार और एक भाग ले ॥२४॥ इन सोलह द्रव्योंके कच्छपुटमें जैसा नीचे लिखा है जिन २ भागोंका योग अठारह हो उन २ चार द्रव्योंके उतने २ भाग लेकर अनेक प्रकार गंधयोग बनते हैं ॥२५॥ पीछे उन गंधोंको नख, तगर, सिह्लकसे युक्त करे जाती (जायफल), कर्पूर, कस्तूरीसे उनका उद्बोधन करे और, गुड व नखकी धूप देदे. कच्छपुटमें सब ओर जोडनेसे योग अठारह होते हैं इसलिये इन गंधोंको सर्वतोभद्र कहते हैं ॥२६॥ इसी कच्छपुटमें चाहे जौनसे चार द्रव्य लेकर जायफल, कस्तूरी और कपूरसे सुवासित करे और सहकार (बहुत सुगंधयुक्त आम्र का रस और शहतमें उनको भिगोवे तो पारिजातफूलसमान गंधवाले अनेक गंध बनते हैं, यह सब मुखवास हैं अर्थात् इन पारिजातगंधोंसे मुख सुगंधयुक्त होता है ॥२७॥ पहले कच्छपुटमें जितने गंध कहे उनमें सर्ज रस (राल) और श्रीवासके मिलानेसे अनेक प्रकारके धूप बनते हैं और उनसे श्रीवास और सर्जरस न मिलावे और नेत्रवाला, दालचीनी मिला देवे तो स्नानके योग्य चूर्ण बनते हैं अर्थात् उनको शिर आदि में लगाय स्नान करे ॥२८॥ लोध, खस, तगर, अगुरु, मोथा, पत्र, प्रियंगु, वन (परिपेलव नाम गंध द्रव्य), हरड इन नौ द्रव्योंके कच्छपुटसे चाहे जो तीन द्रव्य लेकर गंध बनावे ॥२९॥ उनमें एक भाग चंदन, एक भाग सिह्लक आधा भाग नख और एक भागका चतुर्थांश सौंफ मिलाकर गुग्गुल और गुडका धूप उनको देवे तो यह बकुलपुष्पके तुल्य गंधवाले चौरासी गंधद्रव्य बनते हैं, नौ द्रव्योंसे तीन २ द्रव्य लेकर गंध बनाते तो चौरासी भेद होते हैं; यह पूर्वोक्त रीतसे प्रस्तार करके देख लेना चाहिये ॥३०॥ दाँतोनको लेकर हरडे चूर्णयुक्त गोमूत्रमें, सात दिन भिगोकर पीछे उनको गंधोदकमें डाले ॥३१॥ इलायची, त्वक् पत्र, अंजन, शहत, काली मिरच, नागकेसर और कूठ इन सबको सम भाग लेकर गंधजल बनावे, उस गंधजलमें कुछ समय उन दंतकाष्ठों को भिगोय रक्खे ॥३२॥ पीछे जायफल चार भाग, पत्र दो भाग, इलायची एक भाग और कपूर तीन भाग लेकर इनका सूक्ष्म चूर्ण कर उन दंतकाष्ठोंसे ऊपर मसल दे, पीछे उनको धूपमें सुखाकर रक्खे ॥३३॥ पहले जो दंतकाष्ठ सिद्ध किये उनको सेवन करनेवाले पुरुषके शरीरका रंग उत्तम होता है, मुखकी कांति उत्तम होती है, भीतरसे मुख निर्मल व सुगंधयुक्त होता है, और उस पुरुषकी वाणी मीठी हो जाती है कि, जिसके सुननेसे सुख होता है ॥३४॥ पान कामदेवको दीप्त करनेवाला है, रूपको उत्पन्न करता, सौभाग्यको करता, मुखको सुगंधयुक्त करता, बल करता, कफके रोगोंको हरता है, पान खानेसे

और जो पहले दंतकाष्ठके गुण कहे वे भी होते हैं ॥३५॥ पानमें ठीक चूना लगनेसे (न बहुत हो और न थोडा) तो राग (रंग) करता है, सुपारी अधिक हो तो रोगका क्षय होता है, चूना अधिक होनेसे मुखमें दुर्गन्ध करता है और पान अधिक हो तो मुखमें उत्तम गंध करता है ॥३६॥ रात्रिको पान खाय तो सुपारी थोडी डाले और पान अधिक रक्खे, दिनमें खाय तो सुपारी अधिक डाले और पान थोडा रक्खे तो उत्तम होता है, इससे विपरीत रीतिसे पान खाया तो पान खाना विडंबना है. कक्कोल, सुपारी, लवलीफल और पारिजातसे तांबूल खानेवाले पुरुषको मदके हर्ष करके पान खाना प्रसन्न करता है ॥३७॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां सप्तसप्ततिमोऽध्यायः ॥७७॥

अथाष्टसप्ततितमोऽध्यायः

स्त्रीपुरुषसमायोगः

शस्त्रेण वेणीविनिगूहितेन विदूरथं स्वा महिषी जघान । विषप्रदिग्धेन च नूपुरेण देवी विरक्ता किल काशिराजम् ॥ १ ॥ एवं विरक्ता जनयन्ति दोषान् प्राणच्छिदोऽन्यैरनुकीर्तितैः किम् । रक्ता विरक्ताः पुरुषैरतोऽर्थात् परीक्षितव्याः प्रमदाः प्रयत्नात् ॥२॥ स्नेहं मनोभवकृतं कथयन्ति भावा नाभीभजस्तनविभूषणदर्शनानि । वस्त्राभिसंयमनकेशविमोक्षणानि भ्रूक्षेपकम्पितकटाक्षनिरीक्षणानि ॥ ३ ॥ उच्चैः ष्ठीवनमुत्कटप्रहसितं शय्यासनोत्सर्पणं गात्रास्फोटनजृम्भणानि सुलभद्रव्याल्पसम्प्रार्थना । बालालिङ्गनचुम्बनान्यभिमुखे सख्याः समालोकनं दृक्पातश्च पराङ्मुखे गुणकथा कर्णस्य कण्डूयनम् ॥ ४ ॥ दर्मां च विद्याद्रनुरक्तचेष्टां प्रियाणि वक्ति स्वधनं ददाति । विलोक्य संहृष्यति वीतरोषा प्रमार्ष्टि दोषान् गुणकीर्तनेन ॥ ५ ॥ तन्मित्रपूजा तदरिद्विषत्वं कृतस्मृतिः प्रोषितदौर्मनस्यम् । स्तनौष्ठदानान्युपगूहनं च स्वेदोऽथ चुम्बाप्रथमाभियोगः ॥ ६ ॥ विरक्तचेष्टा भृकुटीमुखत्वं पराङ्मुखत्वं कृतविस्मृतिश्च । असम्भ्रमो दुष्परितोषता च तद्द्विष्टमैत्री परुषं च वाक्यम् ॥ ७ ॥ स्पृष्ट्वाथवालोक्य धुनोति गात्रं करोति गर्वं न रुणद्धि यान्तम् । चुम्बाविरामे वदनं प्रमार्ष्टि पश्चात्समुत्तिष्ठति पूर्वसुप्ता ॥ ८ ॥ भिक्षुणिका प्रव्रजिता धात्री कुमारिका रजिका । मालाकारी दुष्टाङ्गना सखी नापिती दूत्यः ॥९॥ (कुलजनविनाशहेतुर्दूत्यो यस्मादतः प्रयत्नेन । ताभ्यः स्त्रियोऽभिरक्ष्या वंशयशोमानवृद्ध्यर्थम् ॥ १० ॥ रात्रीविहारजागररोगव्यपदेशपरगृहेक्षणिकाः । व्यवसनोत्सवाश्च सङ्केतहेतवस्तेषु [1]रक्ष्याश्च ॥ ११ ॥ आदौ नेच्छति नोज्झति स्मरकथां व्रीडाविमिश्रा-

---

१ "लेख्यप्रस्थापनैः स्निग्धैर्वीक्षितैर्मृदुभाषितैः । दूतीसम्प्रेषणैर्नार्याः भावाभिव्यक्तिरिष्यते ॥" साहित्यदर्पण तीसरा परिच्छेद ॥ अर्थ-चिट्ठी भेजना, श्रेष्ठ स्नेहदिखाना मृदुवचन कहना अथवा दूतीके भेजनेसेही स्त्रियां अपने अभिप्रायको प्रगट करती हैं.

लसा मध्ये ह्रीपरिवर्जिताभ्युपरमे लज्जाविनम्रानना । भावैर्नैकविधैः करोत्यभिनयं भूयश्च या सादरा बुद्ध्वा पुम्प्रकृतिं च यानुचरति ग्लानेतरैश्चेष्टितैः ॥१२॥ स्त्रीणां गुणा यौवनरूपवेषदाक्षिण्यविज्ञानविलासपूर्वाः । स्त्रीरत्नसंज्ञा च गुणान्वितासु स्त्रीव्याधयोऽन्याश्चतुरस्य पुंसः ॥१३॥ न ग्राम्यवर्णैर्मलदिग्धकाया निन्द्याङ्गसम्बन्धिकथां च कुर्यात् । न चान्यकार्यस्मरणं रहःस्था मनो हि मूलं हरदग्धमूर्तेः ॥ १४ ॥ श्वासं मनुष्येण समं त्यजन्ती बाहूपधानस्तनदानदक्षा । सुगन्धकेशासुसमीपरागा सुप्तेऽनुसुप्ता प्रथमं विबुद्धा ॥ १५ ॥ दुष्टस्वभावाः परिवर्जनीया विमर्दकालेषु च न क्षमा याः । यासामसृग्वासितनीलपीतमाताम्रवर्णं च न ताः प्रशस्ताः ॥ १६ ॥ या स्वप्नशीला बहुरक्तपित्ता प्रवाहिनी वातकफातिरिक्ता । महाशना स्वेदयुताङ्गदुष्टा या ह्रस्वकेशी पलितान्विता च ॥ १७ ॥ मांसानि यस्याश्च चलन्ति नार्या महोदरा खिक्खिमिनी च या स्यात् । स्त्रीलक्षणे याः कथितास्च पापास्ताभिर्न कुर्यात्सह कामधर्मम् ॥ १८ ॥ शशशोणितसङ्काशं लाक्षारससन्निकाशमथवा यत् । प्रक्षालितं विरज्यति यच्चासृक्तद्भवेच्छुद्धम् ॥ १९ ॥ यच्छब्दवेदनावर्जितं त्र्यहात्सन्निवर्तते रक्तम् । तत् पुरुषसम्प्रयोगादविचारं गर्भतां याति ॥ २० ॥ न दिनत्रयं निषेवेत् स्नानं माल्यानुलेपनं च स्त्री । स्नायाच्चतुर्थदिवसे शास्त्रोक्तेनोपदेशेन ॥ २१ ॥ पुष्यस्नानौषधयो याः कथितास्ताभिरम्बुमिश्राभिः । स्नायात्तथात्र मन्त्रः स एव यस्तत्र निर्दिष्टः ॥ २२ ॥ युग्मासु किल मनुष्या निशासु नार्यो भवन्ति विषमासु । दीर्घायुषः सुरूपाः सुखिनश्च विकृष्टयुग्मासु ॥ २३ ॥ पक्षिणपार्श्वे पुरुषो वामे नारी यमावुभसंस्थौ । यदुदरमध्योपगतं नपुंसकं तन्निबोद्धव्यम् ॥ २४ ॥ केन्द्रत्रिकोणेषु शुभस्थितेषु लग्ने शशाङ्के च शुभैः समेते । पापैस्त्रिलाभारिगतैश्च यायात् पुञ्जन्मयोगेषु च संम्प्रयोगम् ॥ २५ ॥ न नखदशनविक्षतानि कुर्यादृतुसमये पुरुषः स्त्रियाः कथञ्चित् । ऋतुरपि दश षट् च वासराणि प्रथमनिशात्रितयं न तत्र गम्यम् ॥ २६ ॥

इति श्रीवराहमि० बृहत्सं० पुंस्त्रीसमायोगो नामाष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८ ॥

विदूरथराजाकी रानीने अपनी चोटीमें विनिगूहित (छिपाये हुए) शस्त्रसे अपने पतिको मार डाला था और काशीराजकी रानीने विरक्त होकर विष मिले हुए नूपुरसे अपने स्वामीका नाश किया ॥१॥ विरक्त स्त्रियें इस प्रकार प्राण नाश करनेवाले दोष उठा खडे करती हैं, फिर और दोषके कथन करनेकी क्या आवश्यकता है, इस कारण अतियत्नके साथ पुरुषोंको स्त्रियोंके विरक्त या अविरक्तपनकी परीक्षा करनी चाहिये ॥२॥ अनुरक्तके समस्त भाव कामदेवसे उत्पन्न हुआ स्नेह प्रकट करते हैं. स्त्रियें नाभि, भुज, छातियें और गहने दिखाती हैं, वस्त्र पहिरना, केश बांधना, बालोंका खोल देना, भौं चढाना, कम्पित कटाक्षसे देखना यह समस्त चिह्न प्रकाशित किया करती हैं ॥३॥ ऊंचे स्वरसे खखारना, ठट्ठा मारकर हंसना, शय्या और आसनके निकट जाना, अंगोंका तोडना,

जँभाई लेना, थोडीसी सुलभ वस्तुका मांगना, सन्मुखके बैठे हुए बालकका चिपटाना और चूमना, सखीके सामने प्यारेको देखना, सखी दूसरी ओरको मुख करे तो प्यारेकी ओर कनखियोंसे देखना प्यारेके गुणोंका बखान करना, कान खुजाना यह सब अनुरक्तके चिह्न हैं ॥४॥ अनुरक्त स्त्री प्यारे वचन कहती हैं, अपना धन देती हैं, देखनेसे हर्षित होती हैं और क्रोधहीन होकर सब दोषोंको गुण कहकर भली भांति छिपाती हैं ॥५॥ पतिके मित्रोंकी पूजा करना, पतिके शत्रुसे द्वेष करना, पतिकी याद करना, पतिके परदेश जानेपर मनमें दुःख पाना, आलिंगन आदिके लिये स्तन और पानके लिये अधरका दान करना, पहली वार स्वामीके मिलनेसे पसीनेका आ जाना, अपने आपही पहले पतिका मुख चूमना यह अनुरागिणी स्त्रियोंकी चेष्टा हैं ॥६॥ भ्रुकुटीका चढाना, मुख फेर लेना, प्यारेको भूल जाना, अनादर करना, असंतोषित रहना, जो स्वामीका शत्रु हो उसके साथ मित्रता करना, कठोर वचन कहना ॥७॥ पतिको छूकर या देखकर शरीरको कम्पायमान करना, गर्व करना (अर्थात् ऐसी बातोंको करना कि तुम हो क्या, मेरी समान कोई सुंदर नहीं है), चलते हुए स्वामीको न बिठलाना, पतिके चूम लेनेपर मुंहको पोंछ डालना, स्वामीके सोनेसे पहले सोना और पीछे उठना यह सब चेष्टा विरक्त [1]स्त्रीकी हैं, ॥८॥ भिखारिन, सन्यासिन, दासी, धाई, धोबन, मालन, दुष्टाङ्गना; (कानी, खुतरी आदि लक्षणयुक्त स्त्री), सखी और नायन यह दूती होती हैं ॥९॥ कुलके मनुष्योंका नाश करनेके लिये यह दूतियां कारण हैं. इस कारण यत्नके साथ वंश, यश और मान बढानेके लिये इन दूतियोंके पंजेसे स्त्रियोंको बचाना चाहिये ॥ १० ॥ रात्रिके समय गृहके बाहर जाना या जागनेके लिये रोगका मिस करना (तबियतके अच्छे न होनेका बहाना करना), पराये घरका देखना विपत्ति और व्याह आदि उत्सवोंमें जाना यह समस्त समय स्त्रियोंके संकेतके हैं, इस कारण इसमें भी स्त्रियोंकी रक्षा करनी चाहिये ॥११॥ आगे जो लाजसे मिले हुए आलस्यसे युक्त हो, सुरतकी बात नहीं करती और उसको छोड भी नहीं सकती, रतिके बीचमें लाजको छोड देती है, रतिके समाप्त हो जानेपर लाजसे नीचा मुख कर लेती है. जो स्त्री आदरके साथ अनेक प्रकारकी रतिक्रियाका खेल करती है और पुरुषका स्वभाव जानकर ग्लानियुक्त चेष्टाके साथ आचरण करती है अर्थात् स्वामीके दुःखित होनेसे दुःखी और सुखयुक्त होनेसे सुखी होती है. ऐसीही स्त्रीके साथ रति करना उचित है ॥१२॥ यौवन (जवानी), रूप, वेष, चतुराई, विज्ञान और विलासादि समस्त गुणोंके होनेसे स्त्रियोंकी रत्न संज्ञा होती है अर्थात् वह रत्नही समझी जाती हैं और चतुर पुरुष के लिये इससे विपरीत गुणवाली स्त्रियां व्याधिकी समान हो जाती हैं ॥१३॥ गंवारी बोली बोलनेवाली या अंगोंके मलीन रखनेवाली स्त्रीके साथ निन्दनीय अंगोंके सम्बंधकी (गुदादिकी बातचीत करना उचित नहीं और एकान्त स्थानमें बैठी हुई स्त्री जो और किसी कार्यको सोच रही हो उसके साथ भी स्मरकथा (रतिकी बातचीत) का कहना उचित नहीं, क्योंकि मनही कामदेवका मूल है ॥१४॥ जो स्त्री पुरुषके साथ बराबर श्वास छोडते

१–३८४ प्रकारके नायिकाभेदोंमें जो बालिका, मध्या, प्रगल्भा और वाराङ्गनादि भेदसे अनुरक्ता विरक्ताके लक्षण ह, सो सब साहित्यदर्पणके तीसरे परिच्छेदके १५४ व १५५ सूत्रमें देखने चाहिये ॥

२ अपनी बांहके तकियेपर पतिका मस्तक रखकर स्तनोंसे छातीको पीडित करनेवाली, केशोंको सुगन्धित रखनेवाली सदा निकट रहकर जो सुंदर अनुराग करे, स्वामीके सोजानेपर सोनेवाली और स्वामीके जागनेसे पहले जागनेवाली ही अनुरागिणी है ॥१५॥ रतिके समय विमर्द्दको न सहनेवाली, दुष्टस्वभावसे युक्त स्त्रीका त्यागनाही ठीक है. जिन स्त्रियोंके ऋतुका रुधिर काला, नीला, पीला व कुछेक लाल रंगका होता है, वह भी श्रेष्ठ नहीं है ॥१६॥ बहुत सोनेवाली, बहुत रक्त (या) पित्तवाली, जिसके शरीरमें वात कफ अधिक होय, प्रवाहिणी (ऋतुके समय जिसके बहुत रुधिर निकले), बहुत भोजन करनेवाली जिसका शरीर सदा पसीनेसे युक्त रहे, छोटे केशवाली, श्वेत केशवाली, दूषित अंगवाली ॥१७॥ जिस स्त्रीके शरीरका मांस ढीला हो जो मिनमिनी और बडे पेटवाली हो और स्त्रियोंके लक्षण जिनके अच्छे न हों तिनके साथ कामधर्म न करे ॥१८॥ जिस स्त्रीके ऋतुका रुधिर खरगोश (खरहा) के रुधिरके समान या लाखके रंगके समान रंगवाला हो, जिसका दाग धोनेसे छुट जाय सो शुभ होता है ॥१९॥ जो रुधिर शब्द और पीडाहीन होकर तीन दिनके पीछे बिलकुल बंद हो जाय, सो रुधिर पुरुष समागम होनेके हेतुसे निश्चयही गर्भताको प्राप्त होता है ॥२०॥ ऋतुकालमें तीन दिनतक स्नान माला और अनुलेपनका व्यवहार करना स्त्रीको नहीं चाहिये. फिर चौथे दिन शास्त्रमें कहे हुए उपदेशके अनुसार स्नान करना उचित है ॥२१॥ पुष्यस्नानके अध्यायमें जिन औषधियोंका वर्णन कर आये हैं. उन सबके जलसे स्नान करे और जो मंत्र वहांपर कहे हैं, उन्हींका पढना आवश्यकीय है ॥२२॥ ऋतुसे युग्म (छठी आदि सम) रात्रियोंमें पुरुषका संयोग होनेसे पुत्र और विषमें (पांचवीं, सातवीं आदि) रात्रियोंमें पुरुषका संयोग होनेसे कन्या उत्पन्न होती है और विकृष्टयुग्मा (आठवीं, दशवीं आदि दूसरी सम (रात्रियोंमें पुरुषका संग होनेसे बडी आयुवाले, रूपवान् और सुखी पुत्रोंका जन्म होता है ॥२३॥ स्त्रीके दक्षिणपार्श्वमें गर्भ हो तो पुरुष, वाम पार्श्वमें हो तो कन्या, दोनों ओर हो तो दो गर्भ और जो गर्भ उदरके बीचमें हो तिसको नपुंसक जानना चाहिये ॥२४॥ केन्द्र या त्रिकोणमें शुभ ग्रह हों, लग्न और चंद्रमा शुभग्रहोंसे युक्त हो पापग्रह तीसरे, ग्यारहवें और छठे घरमें हों उस समय स्त्रीका संग करना चाहिये ॥२५॥ ऋतुकालमें पुरुषको किंचित् भी नख या दांतोंसे स्त्रियोंके अंगोंको क्षत नहीं करना चाहिये, सोलह दिनतक ऋतु रहती है, तिनमें पहली तीन रातोंमें ही ऋतुमती स्त्रीके साथ गमन न करे ॥२६॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य पंण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायामष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

अथैकोनाशीतितिमोऽध्यायः

शय्यासनलक्षणम्

सर्वस्य सर्वकालं यस्मादुपयोगमेति शास्त्रमिदम् । राज्ञां विशेषतोऽतः शयनासनलक्षणं वक्ष्ये ॥१॥ असनस्यन्दनचन्दनहरिद्रसुरदारुदिन्दुकीशालाः । काश्मर्यञ्जनपद्मकशाका वा शिशपा च शुभाः ॥ २ ॥ अशनिजलानिलहस्तिप्रपातिता

मधुविहङ्गकृतनिलयाः । चैत्यश्मशानपथिजोर्ध्वशुष्कवल्लीनिबद्धाश्च ॥ ३ ॥ कण्टकिनो वा ये स्युर्महानदीसङ्गमोद्भवा ये च । सुरभवनजाश्च न शुभा ये चापरयाम्यदिक्पतिताः ॥ ४ ॥ प्रतिषिद्धवृक्षनिर्मितशयनासनसेवनात् कुलविनाशः । व्याधिभयव्ययकलहा भवन्त्यनर्थाश्च नैकविधाः ॥ ५ ॥ पूर्वं च्छिन्नं यदि वा दारु भवेत्तत्परीक्ष्यमारम्भे । यद्यारोहेत्तस्मिन् कुमारकः पुत्रपशुदं तत् ॥ ६ ॥ सितकुसुममत्तवारणदध्यक्षतपूर्णकुम्भरत्नानि । मंगल्यान्यन्यानि च दृष्ट्वारम्भे शुभं ज्ञेयम् ॥ ७ ॥ कर्मांगुलं यवाष्टकमुदरासक्तं तुषैः परित्यक्तम् । अगुलशतं नृपाणां महती शय्या जयाय कृता ॥ ८ ॥ नवतिः सैव षडूना द्वादशहीना त्रिषट्कहीना च । नृपपुत्रमन्त्रिबलपतिपुरोधसां स्युर्यथासंख्यम् ॥ ९ ॥ अर्धगतोऽष्टांशोनं विष्कम्भो विश्वकर्मणा प्रोक्तः । आयामत्र्यंशसमः पादोच्छ्रायः सकुक्षिशिराः ॥१०॥यः सर्वः श्रीपर्ण्याः पर्यंको निर्मितः स धनदाता असनकृतो रोगहरस्तिन्दुकसारेण वित्तकरः ॥११॥ यः केवलशिंशपया विनिर्मितो बहुविधं स वृद्धिकरः । चन्दनमयो रिपुघ्नो धर्मयशोदीर्घजीवितकृत् ॥१२॥ यः पद्मकपर्यंकः स दीर्घमायुः श्रियं श्रुतं वित्तम् । कुरुते शालेन कृतः कल्याणं शाकरचितश्च ॥१३॥ केवलचन्दनरचितं काञ्चनगुप्तं विचित्ररत्नयुतम् । अध्यासन् पर्यङ्कं विबुधैरपि पूज्यते नृपतिः ॥ १४ ॥ अन्येन समायुक्ता न तिन्दुका शिंशपा च शुभफलदा न श्रीपर्णी न च देवदारुवृक्षो न चाप्यसनः ॥ १५ ॥ शुभदौ तु शाकशालौ परस्परं संयुतौ पृथक् चैव । तद्वत्पृथक् प्रशस्तौ सहितौ च हरिद्रककदम्बौ ॥ १६ ॥ सर्वः स्यन्दनरचितो न शुभः प्राणान् हिनस्ति चाम्बकृतः । असनोऽन्यदारुसहितः क्षिप्रं दोषान् करोति बहून् ॥ १७ ॥ अम्बस्यन्दनचन्दनवृक्षाणां स्यन्दनाच्छुभाः पादाः । फलतरुणा शयनासनमिष्टफलं भवति सर्वेण ॥ १८ ॥ गजदन्तः सर्वेषां प्रोक्ततरूणां प्रशस्यते योगे । कार्योऽलङ्कारविधिर्गजदन्तेन प्रशस्तेन ॥१९॥ दन्तस्य मूलपरिधिं द्विरायतं प्रोज्झ्य कल्पयेच्छेषम् । अधिकमनूपचराणां न्यूनं गिरिचारिणां किञ्चित् ॥ २० ॥ श्रीवत्सवर्धमानच्छत्रध्वजचामरानुरूपेषु । छेदे दृष्टेष्वारोग्यविजयधनवृद्धिसौख्यानि ॥ २१ ॥ प्रहरणसदृशेषु जयो नद्यावर्ते प्रनष्टदेशाप्तिः । लोष्टे तु लब्धपूर्वस्य भवति देशस्य सम्प्राप्तिः ॥ २२ ॥ स्त्रीरूपे स्वविनाशो भृङ्गारेऽभ्युत्थिते सुतोत्पत्तिः । कुम्भेन निधिप्राप्तिर्यात्राविघ्नं च दण्डेन ॥ २३ ॥ कृकलासकपिभुजङ्गेष्वसुभिक्षव्याधयो रिपुवशत्वम् । गृध्रोलूकध्वांक्षश्येनाकारेषु जनमरकः ॥ २४ ॥ पाशेऽथवा कबन्धे नृपभृत्युजर्ननविपत् सुते रक्ते । कृष्णे श्यावे रूक्षे दुर्गन्धे चाशुभं भवति ॥ २५ ॥ शुक्लः समः सुगन्धिः स्निग्धश्च शुभावहो भवेच्छेदः । अशुभशुभच्छेदा ये शयनेष्वपि ते तथा फलदाः ॥ २६ ॥ ईषायोगे दारु प्रदक्षिणाग्रं प्रशस्तमाचायः । अपसव्यैकदिगग्रे भवति भयं भूतसञ्ज-

नितम् ।। २७ ।। एकेनावाक्छिरसा भवति हि पादेन पादवैकल्यम् । द्वाभ्यां न जीर्यतेऽन्नं त्रिचतुर्भिः क्लेशवधबन्धाः ।। २८ ।। सुषिरेऽथवा विवर्णे ग्रन्थौ पादस्य शीर्षगे व्याधिः । पादे कुम्भौ यश्च ग्रन्थौ तस्मिन्नुदररोगः ।। २९ ।। कुम्भाधस्ताज्जंघा तत्र कृतो जंघयोः करोति भयम् । तस्याश्चाधारोऽधः क्षयकृद्द्रव्यस्य तत्र कृतः ।। ३० ।। खुरदेशे यो ग्रन्थिः खुरिणां पीडाकरः स निर्दिष्टः । ईषाशीर्षण्योश्च त्रिभागसंस्थो भवेन्न शुभः ।। ३१ ।। निष्कुटमथ कोलाक्षं सूकरनयनं च वत्सनाभं च । कालकमन्यधुन्धुकमिति कथितश्छिद्रसंक्षेपः ।। ३२ ।। घटवत्सुषिरं मध्ये सङ्कटमास्ये च निष्कुटं छिद्रम् । निष्पावमाषमात्रं नीलं छिद्रं च कोलाक्षम् ।। ३३ ।। सूकरनयनं विषमं विवर्णमध्यर्द्धपर्वदीर्घं च । वामावर्तं भिन्नं पर्वमितं वत्सनाभाख्यम् ।। ३४ ।। कालकसंज्ञं कृष्णं धुन्धुकमिति यद्भवेद्विनिर्भिन्नम् । दारुसवर्णं छिद्रं न तथा पापं समुद्दिष्टम् ।। ३५ ।। निष्कुटसंज्ञे द्रव्यक्षयस्तु कोलेक्षणे कुलध्वंसः । शस्त्रभयं सूकरके रोगभयं वत्सनाभाख्ये ।। ३६ ।। कालकधुन्धुकसंज्ञं कीटैर्विद्धं च न शुभदं छिद्रम् । सर्वं ग्रन्थिप्रचुरं सर्वत्र न शोभनं दारु ।। ३७ ।। एकद्रुमेण धन्यं वृक्षद्वयनिर्मितं च धन्यतरम् । त्रिभिरात्मजवृद्धिकरं चतुर्भिरथो यशश्चाग्रम् ।। ३८ ।। पञ्चवनस्पतिरचिते पञ्चत्वं याति तत्र यः शेते । षट्सप्ताष्टतरूणां कष्ठैर्घटिते कुल विनाशः ।। ३९ ।।

इति श्रीवराहिमि० बृहत्सं० शय्यासनलक्षणं नामैकोनाशीतितमोऽध्यायः ।। ७९ ।।

जिस करके सर्वकालमें सबको उपयोगी होनेवाला यह शास्त्र तिसके उद्देश्यका जतानेवाला है, इसी कारण इसमें राजाओंके शय्यासनलक्षण कहे जायंगे ।।१।। असन, स्यंदन, हरिद्रा (हलदुआ), देवदारु, तिन्दुकी, शाल, काश्मरी, अंजन, पद्मक शाक या शीसमके वृक्षका काठ आसन और चौकीके लिये शुभदायी है ।।२।। जो वृक्ष बिजली, जल, वायु या हाथी करके गिरा दिये गये हों, जिनमें मधुमक्खियोंके छत्ते या पक्षियोंके घोंसले हों, जो चैत्य श्मशान और मार्गमें उत्पन्न हुए हों; जिनके ऊपर सूखी बेल लिपटी हुई हो ।।३।। जिन वृक्षोंमें कांटे हों, जो वृक्ष महानदीके संगमस्थानमें या देवमंदिरमें उत्पन्न हुए हों, जो वृक्ष काटे जानेपर पश्चिम और दक्षिण दिशाकी ओरको गिर गये हों ऐसे वृक्ष शय्या और आसनके लिये शुभदायी नहीं हैं ।।४।। वर्जनीय वृक्षके बने हुए आसन या शयनका व्यवहार करनेसे कुलका नाश हो जाता है, इससे व्याधिभय खर्च और क्लेशादि अनेक प्रकारके अनर्थ होते हैं ।। ५ ।। जो पहलेका कटा हुआ वृक्ष पडा हो तो आरंभमें (गढनेके समय) तिसकी परीक्षा करनी चाहिये, जो उस पर कोई कुमार (लडका) चढे तो वह काठ पुत्र और पशुका देनेवाला होगा ।।६।। शय्या आसन बनानेके आरंभमें सफेद फूल, मतवाला हाथी, दही अक्षत भरा हुआ घडा, रत्न और दूसरे मंगलद्रव्योंका देखना शुभकारी होगा ।।८।। तुषहीन आठ जौका पेट मिलाकर बराबर रखनेसे एक अंगुल होगा, इसका नाम कर्मांगुल है ऐसे शत अंगुलकी लम्बी शय्या राजाओंके जयका कारण होती है ।।८।। राजपुत्र, मंत्री, सेनापति और पुरोहितोंकी शय्या क्रमानुसार

नब्बे, चौरासी, अठत्तर और बहत्तर अंगुल लम्बी बनानी चाहिये ॥९॥ शय्याका लम्बाईके आधेमें उसका आठवां अंश घटा देनेसे जो बचे वह शय्याकी चौडाई हुई. दीर्घताके एक तृतीयांशकी तुल्य कुक्षि और शिरके साथ पादोच्छ्राय अर्थात् ऊंचाई होगी. यह विश्वकर्माने कहा है. ॥१०॥ श्रीपर्णी या तिन्दुकसारके बने हुए समस्त पलंग धनदान करते हैं और असन वृक्षके काठका बना हुआ पलंग रोगको हरता है ॥११॥ केवल शीशमके काठका बना हुआ पलंग अनेक भांतिकी वृद्धि करता है. चन्दनका पलंग शत्रुनाशक होनेके सिवाय धर्म, यश, और बडे आयुको देता है ॥१२॥ पद्मका बना हुआ पलंग दीर्घायु, श्री, श्रुत और वित्त देता है, शाल या सागूका बना हुआ पलंग कल्याणकारी होता है ॥१३॥ केवल चन्दनके बने, सुवर्णसे मढे और विचित्र रत्नोंसे जडे पलंगपर सोनेवाले राजाका देवता लोगभी पूजन करते हैं ॥१४॥ तिन्दुकी, शीशम, श्रीपर्णी, देवदारु और असन वृक्षके काठमें दूसरा काठ न मिलाकर पलंग बनावे तो वह पलंग या चौकी शुभदायक है ॥१५॥ सागू और शालाष्ठका परस्पर मिलना या अलग रहना भी शुभदायी है, वैसेही हरिद्रक और कदम्बकाठका मिलना या अलग रहना भी अच्छा और शुभदायी है ॥१६॥ स्यन्दन-वृक्षके काठके बने सब प्रकारके पलंग ही शुभदायी नहीं हैं, अंबवृक्षके काठका पलंग प्राण लेता है, असनमें दूसरे काठको मिलाया जाय तो वह शीघ्र बहुतसे दोष उत्पन्न करता है ॥१७॥ अम्ब, स्यन्दन और चन्दन इन तीनों वृक्षोंके काठसे बने पलंगोंके पाये स्यन्दनवृक्षके काठसे बनें तो शुभ होते हैं और बाकी सब प्रकारके फलवाले वृक्षोंके काठ करके शय्या और आसन बनें तो इष्टफलकी प्राप्ती होती है ॥१८॥ ऊपर कहे हुए सब प्रकारके वृक्षोंके साथ हाथी दांतका संयोग श्रेष्ठ होता है, श्रेष्ठ हाथी दांत करके तिसकी अलंकार विधिका करना उचित है ॥१९॥ गजदन्तके मूलमें जितने अंगुलकी परिधि हों तिससे दूने अंगुल मूलकी ओरसे छोडकर शेषभागसे समस्त रचना करे परंतु अनूपचर (जलप्रायदेशचर) हाथियोंके लिये कुछ अधिक और पर्वतचारी हाथियोंके विषयमें कुछ कम छोडना चाहिये ॥२०॥ हाथी दांतमें काटनेके समय श्रीवत्स, वर्द्धमान (मिट्टीका सिकोरा) छत्र, ध्वज और चमरके समान चिह्न दिखाई देनेसे आरोग्य, विजय, धनकी वृद्धि और सुख होते हैं ॥२१॥ शस्त्राकार चिह्न होनेसे जय, नद्यावर्त जैसा नदीमें चारों तरफसे किसी २ जगह जल घूमता रहता है उस आकारका चिह्न होनेसे नष्ट हुए देशकी प्राप्ति और ढेलेके आकारका चिह्न होनेसे पहले प्राप्त हुए देशकोही सम्प्राप्ति होती है ॥२२॥ स्त्रीरूपचिह्न होनेसे अपना नाश, भृङ्गार (झारी) के समान चिह्न उठे तो पुत्रकी उत्पत्ति होती है. घडेका चिह्न होनेसे रत्नकी प्राप्ति और दंडका चिह्न होनेसे यात्रामें विघ्न होता है ॥२३॥ गिरगट, वानर या सर्पके समान चिह्न होनेसे दुर्भिक्ष, व्याधि और रिपुवशत्व होता है. गिद्ध उल्लू, काक और बाजके समान चिह्न होनेसे मनुष्यों में मरी पडती है ॥२४॥ हाथी दांतके काटनेपर पाश या कबन्धका चिह्न निकले तो राजाकी मृत्यु, रुधिर निकलनेसे मनुष्योंपर विपत्ति और काला श्याव (काला पीला मिला हुआ), रूखा और दुर्गन्धयुक्त होनेसे अशुभकारी होता है ॥ २५ ॥ दांतका छिद्र बराबर, शुक्ल, सुगन्धित वा स्निग्ध हो तो शुभकारी होता है, यह आसनके लिये जानो. आसनके पक्षमें जो शुभकारी और अशुभकारी छेद कहे सो शय्याके विषयमें भी फलदायी हैं ॥ २६ ॥ ईषा[1]योगमें प्रदक्षिणा श्रेष्ठ

---

१ पलंगके दोनों ओरकी दो पट्टी और दो तरफके दो सेरुओंको ईषा कहते हैं.

है यह आचार्यलोगोंने व्यवस्था की है और तिससे विपरीत काष्ठोंका योग होना या शिर पाद काष्ठोंके अग्रका एकही दिशामें हों तो ऐसे पलंगपर सोनेवालेको भूतसे उत्पन्न हुआ भय होता है ।। २७ ।। शय्या वा आसनका एक पाया अधोमुख हो (काठके मूलकी ओर पायेका अग्र बनाया जाय काठके अग्रकी ओर पायेका मूल) तो पादोंकी विकलता, दो पाये अधोमुख हों तो उसपर सोनेवालेको अन्न नहीं पचता, तीन और चार पाये अधोमुख हों तो क्लेश, वध और बन्धन होता है ।। २८ ।। पायेका शिर छिद्रयुक्त अथवा बुरे रंगकी गांठसे युक्त हो तो व्याधि होती है. पायेके कुंभमें गांठ होनेसे उदररोग होता है ।। २९ ।। कुम्भके नीचेवाले काष्ठभागको जंघा कहते हैं, इससे बनाया या जो पलंगमें लगाया जाय तो सोनेवालेकी जंघाओंमें भय उत्पन्न करता है. जंघाके बीचले भागको आधार कहते हैं इस आधारमें गांठ होनेसे धनका क्षय होता है ।। ३० ।। पायेके खुरमें जो गांठ हो तो खुरवाले जीवोंकी पीडाका कारण कहा है. ईषा और शीर्षदेश (सिर-हानेका सेरुआ) के तिहाई भागपर गांठ हो तो शुभ नहीं होता ।। ३१ ।। निष्कुट, कोलाक्ष, शूकर-नयन, वत्सनाभ, कालक और धुन्धुक संक्षेपसे यह छिद्रोंके नाम कहे गये ।। ३२ ।। छेदके बीचमें घडेके समान चौडा और तंगमुखका आकार हो तो वह निष्कुट नामक छिद्र है और मटर या उर्दके बराबर और नीले रंगका छेद कोलाक्ष कहाता है ।। ३३ ।। विषम, विवर्ण और डेढ पोरुआ लम्बा छेद शूकरनयन, एक पोरुआ लम्बा वामावर्त छिद्र वत्सनाभ नामसे प्रसिद्ध है ।। ३४ ।। काले रंगका छेद कालक नामसे विख्यात है और जो विशेषतासे निर्भिन्न हो वह धुन्धुकनामवाला कहाता है. परन्तु काठके समान रंगवाले छेदसे भली भांति अशुभ उदय नहीं होता ।। ३५ ।। निष्कुट नामवाला छेद होनेसे धनका नाश कोलेक्षण (सूकरके नेत्रके आकार) से कुलध्वंस, शूकरके सरीखे छिद्रसे शस्त्रभय और वत्सनाभ नामक छेदते रोगमय होता है, और घुना हुआ कालक व धुन्धुक नामवाला छेद भी शुभदायी नहीं होता, जिसमें गांठें बहुतसी हों ऐसा सब प्रकारका काठ सर्वत्रही शुभदायी नहीं होता ।। ३६ ।। ३७ ।। एक वृक्षके काठका बना हुआ पलंग धन्य अर्थात् अच्छा है. दो वृक्षोंके काठका बना हुआ पलंग धन्यतर अर्थात् बहुतही अच्छा है. तीन वृक्षोंके काठका बना हुआ पलंग पुत्रोंको बढानेवाला है. चार वृक्षोंका बना हुआ पलंग उत्तम अर्थ यशको देनेवाला है ।। ३८ ।। पांच वृक्षोंके काठसे बने हुए पलंगपर जो मनुष्य सोता है उसकी इतिश्री हो जाती है. और छः सात या आठ वृक्षोंके काठसे बने हुए पलंग पर शयन करनेसे कुलका नाश हो जाता है ।। ३९ ।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायामेकोनाशीतितमोऽध्यायः ।।७९।।

अशीतितमोऽध्याय

वज्रपरीक्षा.

रत्नेन सुभेन शुभं भवति नृपाणामनिष्टमशुभेन । यस्मादतः परीक्ष्यं दैवं-रत्नाश्रितं तज्ज्ञैः ।। १ ।। द्विपहयवनितादीनांस्वगुण विशेषेण रत्नशब्दोऽति। इह तूपलरत्नानामधिकारोवज्रपूर्वाणाम् ।।२।। रत्नानि बलाहैत्याद्दधीचितोऽन्ये वदन्ति जातानि । केचिद्भुवः स्वभावाद्वैचित्र्यं प्राहुरुपलानाम् ।। ३ ।। वज्रेन्द्रनीलम-

रक्तकर्केतनपद्मरागरुधिराख्याः। वैदूर्यपुलकविमलकराजमणिस्फटिकशशिकान्ताः ॥ ४ ॥ सौगन्धिकगोमेदशंखमहानीलपुष्परागाख्याः। ब्रह्ममणिज्योतीरससस्यकमुक्ताप्रवालानि ॥ ५ ॥ वेणातटे विशुद्धं शिरीषकुसुमोपमं च कौशलकम्। सौराष्ट्रकमाताम्रं कृष्णं सौर्पारकं वज्रम् ॥ ६ ॥ ईषत्ताम्रं हिमवति मतङ्गजं वल्लपुष्पसङ्काशम्। आपीतं च कलिङ्गे श्यामं पौण्ड्रेषु सम्भूतम् ॥ ७ ॥ ऐन्द्रं षडस्रि शुक्लं याम्यं सर्पास्यरूपमसितं च। कदलीकाण्डनिकाशं वैष्णवमिति सर्वमंस्थानम् ॥ ८ ॥ वारुणमबलागुह्योपमं भवेत् कर्णिकारपुष्पनिभम्। शृङ्गाटकसंस्थानं व्याघ्राक्षि निभं च हौतभुजम् ॥ ९ ॥ वायव्यं च यवोपममशोककुसुमप्रभं समुद्दिष्टम्। स्रोतः खनिः प्रकीर्णकमित्याकरसम्भवस्त्रिविधः ॥ १० ॥ रक्तं पीतं च शुभं राजन्यानां सितं द्विजातीनाम्। शरीषं वैश्यानां शुद्राणां शस्यतेऽसिनिभम् ॥ ११ ॥ सितसर्षपाष्टकं तण्डुलो भवेत्तण्डुलैस्तु शत्या तुलितस्य द्वे लक्षे मूल्यं द्विद्वचनिते चैतत् ॥ १२ ॥ पादत्र्यंशार्धोनं त्रिभागपञ्चांशषोडशांशाश्च। भागश्च पञ्चविंशः शतिकः साहस्त्रिकश्चेति ॥ १३ ॥ सर्वद्रव्याभेद्यं लध्वम्भसि तरति रश्मिवत् स्निग्धम्। तडिदनलशक्रचापोपमं च वज्रं हितायोक्तम् ॥ १४ ॥ काकपदमक्षिकाकेशधातुयुक्तानि शर्करविद्धम्। द्विगुणास्रि दिग्धकलुषत्रस्तविशीर्णानि न शुभानि ॥ १५ ॥ यानि च बुदबुददलिताग्रचिपिटवासीफलप्रदीर्घाणि। सर्वेषां चैतेषां मूल्याद्भागोऽष्टमो हानिः ॥ १६ ॥ वज्रं ते किञ्चिदपि धारयितव्यमेके पुत्रार्थिनीभिरबलाभिरुशन्ति तज्ज्ञाः। शृङ्गाटकत्रिपुटधान्यकवत्स्थितं यच्छ्रोणीनिभं च शुभदं तनयार्थिनीनाम् ॥ १७ ॥ स्वजनविभव जीवितक्षयं जनयति वज्रमनिष्टलक्षणम्। अशनिविषभयारिनाशनं शुभमुरुभोगकरं च भूभृताम् ॥ १८ ॥

इति श्रीवराहमि० बृहत्सं० वज्रपरीक्षा नामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥

शुभ रत्न धारण करनेसे राजाओंका कल्याण होता है, अशुभ रत्न धारण करनेसे अशुभ होता है, इसी कारण रत्न जाननेवाले पंडितों करके रत्नाश्रित दैवकी परीक्षा करना चाहिये ॥१॥ हाथी, अश्व, वनिता आदि समस्त पदार्थोंमें ही अपने २ गुण विशेषसे रत्न शब्द प्रयोग होता तो है (जैसे गजरत्न, अश्वरत्न, रमणीरत्न इत्यादि) परन्तु यहांपर रत्नशब्दसे हीरकादि पाषाणरत्नोंकाही अधिकार है ॥२॥ किसीका मत है कि बलनामक दैत्यसेही रत्नोंकी उत्पत्ति है, कोई कहते हैं कि दधीचमुनिकी अस्थिसे रत्न उत्पन्न हुए हैं, कोई कहते हैं कि मिट्टीके स्वभावसेही समस्त रत्नोंमें विचित्रता पैदा हुई है ॥ ३ ॥ वज्र (हीरा), इन्द्रनील (नीलम) मरकत (पन्ना), करकेनत, लाल, रुधिर, वैदूर्य, पुलक, विमलक, राजमणि, स्फटिकचन्द्रकान्त ॥ ४ ॥ सौगन्धिक, गोमेदक, शंख, महानील, पुष्पराग, ब्रह्ममणि, ज्योतीरस, शस्यक, मोती, मूंगा इन सबको रत्न कहते हैं ॥ ५ ॥ वेणानदीके किनारे, परही शुद्ध हीरा उत्पन्न होता है, शिरीष फूलके समान हीरा कोशलदेशमें उत्पन्न होता है, कुछेक लाल रंगका हीरा सुराष्ट्र (सूरत)

देशमें उत्पन्न होता है. काले रंगका हीरा सूरपारक देशमें पैदा होता है ।। ६ ।। हिमवान् पर्वतपर उत्पन्न हुआ हीरा कुछेक लाल रंगका होता है, वल्लके फूलके समान हीरेका मतङ्गज नाम है कुछेक पीले रंगका हीरा कलिंग देशमें उत्पन्न होता है. पौण्ड्रदेशमें उत्पन्न हुआ रत्न श्यामरंगका होता है ।। ७ ।। छः कोणवाले हीरेका इन्द्र देवता होता है, शुक्लवर्ण हीरेका यम देवता होता है, सर्पाकार मुखवाले, काले या कदलीके काण्डकी नाईं (नीला और पीला) रंगवाला हीरा विष्णु-दैवत है अर्थात् विष्णुजी इसके देवता हैं. सबके देवता और आकारका विषय कहा गया ।। ८ ।। स्त्रीकी भगके समान आकारवाला हीरा वारुण होता है, यह कर्णिकारके पुष्पके समान भी होता है. सिंघाडेके समान या व्याघ्रके नेत्रके समान हीरोंका अग्नि देवता है ।। ९ ।। अशोकके फूलके समान रंगवाले या जौके समान समस्त हीरोंका वायव्य नाम है, नदी आदिके प्रवाह, खान और प्रकीर्णक (किसी २ भूमिके ऊपर विखरे हुए) यह तीन आकार हीरोंकी उत्पत्तिके हैं ।। १० ।। लाल और पीले रंगका हीरा क्षत्रियोंको शुभदायी है. श्वेत रंगका हीरा ब्राह्मणोंको शुभकारी है. शिरीष सुमनके समान हरे रंगका हीरा वैश्योंको और खड्गके समान नीले रंगका हीरा शूद्रोंको शुभ फल देता है ।। ११ ।। श्वेत सरसोंके आठ दानोंके समान एक चावल होता है ऐसे बीस चावलभर जो हीरा तोलमें हो उसका मूल्य लाख रुपया होता है. जो दो २ चावलभर कम हो अर्थात् १८।१६।१४ इत्यादि चावलभर हो तो क्रमानुसार पहले कहे हुए मूल्यका पाद, तिहाई, आधा, त्रिभागयुक्त, पांचवां अंश, सोलहवां अंश, पच्चीसवां अंश, सौवां अंश और सहस्रांश मोल होगा ।। १२ ।। १३ ।। जो हीरा किसी वस्तुसे न टूटे, साधारण जलमेंभी किरणके समान तैरता रहे, स्निग्ध और बिजली, अग्नि वा इंद्रधनुषके समान रंगवाला हो वह हितकारी होता है ।। १४ ।। जिन हीरोंमें काकपद, मक्खी, केश, धातुयुक्त चिह्न रहें अथवा जो कंकरसे विद्ध हों, जिनके सब कोनोंमें दो दो सूत हों, जो दिग्ध, मलीन, कान्तिहीन और जर्जर हों वे हीरे शुभदायी नहीं हैं ।। १५ ।। या जो हीरे पानीके बबूलेके समान आगेसे फटे हुए, चिपटे या वासी-फलके समान लम्बे हों वे हीरे भी शुभदाई नहीं हैं. इन समस्त चिह्नवाले हीरोंका मूल्य पहले ठहरे हुए मूल्यकी अपेक्षा क्रमानुसार अष्टमांश घटानेसे ठीक होगा अर्थात् पहले कहे हुए काकपदयुक्त चिह्नवाले हीरेका जो मूल्य हो, मक्खीके चिह्नसे हीरेका मोल उसके मूल्यसे अष्टम भागही न होगा ।। १६ ।। हीरेके तत्त्वको जाननेवाले कोई २ पंडित कहते हैं कि पुत्र चाहनेवाले स्त्रियोंको साधारण हीरा भी धारण करना उचित नहीं, सिंघाडे, त्रिपुट, धान्य या श्रोणीके समान हीरेका धारण करना पुत्र चाहनेवाली स्त्रियोंके लिये शुभ है ।। १७ ।। बुरे लक्षणवाले हीरेके धारण करनेसे राजाओंके भाई, बन्धु, धन और प्राणकी हानि होती है और शुभ लक्षणवाले हीरेके धारण करनेसे वज्रभय, विष व शत्रुका नाश हो जाता है और भोगकी अत्यन्त वृद्धि होती है ।। १८ ।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायामशीतितमोऽध्यायः ।।८०।।

अथैकाशीतितमोऽध्यायः

मुक्ताफलपरीक्षा

द्विपभुजगशक्तिशंखाभ्रवेणुतिमिसूकरप्रसूतानि । मुक्ताफलानि तेषां बहु-साधु च शुक्तिजं भवति ॥१॥ सिंहलकपारलौकिकपौराष्ट्रकताम्रपर्णिपारशवाः । कौबेरपाण्डवाटकहैमा इत्याकरा ह्यष्टौ ॥ २ ॥ बहुसंस्थानाः स्निग्धा हंसाभाः सिंहलाकराः स्थूलाः । ईषत्ताम्राः श्वेतास्तमोवियुक्ताश्च ताम्राख्याः ॥३॥ कृष्णाः श्वेताः पीताः सशर्कराः पारलौकिका विषमाः । न स्थूला नात्यल्पा नवनीतनिभाश्च सौराष्ट्राः ॥४॥ ज्योतिष्मन्तः शुभ्रा गुरवोऽतिमहागुणाश्च पारशवाः । लघु जर्जरं दधिनिभं बृहद्विसंस्थानमपि हैमम् ॥५॥ विषमं कृष्णं श्वेतं लघु कौबेरं प्रमाणतेजोवत् । निम्बफलत्रिपुटधान्यकचूर्णाः स्युः पाण्डयवाटभवाः ॥६॥ अतसीकुसुमश्यामं वैष्णवमैन्द्रं शशाङ्कासङ्काम् । हरितालनिभं वारुणमसितं यमदैवतं भवति ॥७॥ परिणतदाडिमगुलिकागुञ्जाताम्रं च वायुदैवत्यम्। निर्धूमानलकमलप्रभं च विज्ञेयमाग्नेयम् ॥८॥ माषचतुष्टयधृतस्यैकस्य शताहतास्त्रिपञ्चाशत । कार्षापणा निगदिता मूल्यं तेजोगुणयुतस्य ॥९॥ माषकदलहान्यातोद्वात्रिंशद्विशतिस्त्रयोदश च । अष्टौ शतानि च शतत्रयं त्रिपञ्चाशता सहितम् ॥१०॥ पञ्चत्रिंशं शतमिति चत्वारः कृष्णला नवतिमूल्याः । सार्धास्तिस्रो गुञ्जाः सप्ततिमूल्यं धृतं रूपम् ॥११॥ गुञ्जात्रयस्य मूल्यं पञ्चाशद्रूपका गुणयुतस्य । रूपकपञ्चत्रिंशत् त्रयस्य गुंजार्धहीनस्य ॥१२॥ पलदशभागो धरणं तद्यदि मुक्तास्त्रयोदश सुरूपाः । त्रिशती सपञ्चविंशा रूपकं संख्याकृतं मूल्यम् ॥१३॥ षोडशकस्य द्विशती विंशतिरूपस्य सप्ततिः सशता । यत्पञ्चविंशतिधृतं तस्य शतं त्रिंशता सहितम् ॥१४॥ त्रिंशत् सप्ततिमूल्या चत्वारिंशच्छतार्द्धमूल्या च । षष्टिः पञ्चोना वा धरणं पंञ्चाष्टकं मूल्यम् ॥१५॥ मुक्ताशीत्यास्त्रिंशत्शतस्य सा पञ्चरूपकविहीना । द्वित्रिचतुष्पञ्चशता द्वादशषट्पञ्चकत्रितयम् ॥१६॥ पिक्कापिच्चार्घा रवकः सिक्थं-त्रयोदशाद्यानाम् । संज्ञः परतो निगराश्चूर्णाश्चाशीतिपूर्वाणाम् ॥१७॥ एतद्गुणयुक्तानां धरणधृतानां प्रकीर्तितं मूल्यम् । परिकल्प्यमन्तराले हीनगुणानां क्षयः कार्यः ॥१८॥ कृष्णश्वेतकपीतकताम्राणामीषदपिच विषमाणाम् । त्र्यंशोनं विषमकपीतयोश्च षड्भागदलहीनम् ॥१९॥ ऐरावतकुलजातानां पुष्यश्रवणेन्दुसूर्यदिवसेषु । ये चोत्तरायणभवा ग्रहणेऽर्केन्द्वोश्च भद्रेभाः ॥२०॥ तेषां किल जायन्ते मुक्ताः कुम्भेषु सरदकोशेषु । बहवो बृहत्प्रमाणा बहुसंस्थानाः प्रभायुक्ताः ॥२१॥ नैषाः मर्घः कार्यो न च वेधोऽस्तीव ते प्रभायुक्ताः । सुतविजयारोग्यकरा महापवित्रा धृता राज्ञाम् ॥२२॥ दंष्ट्रामूले शशिकान्तिसप्रभं बहुगुणं च वाराहम् । तिमिजं मत्स्याक्षिनिभं बृहत्पवित्रं बहुगुणं च ॥२३॥ वर्षोपलवज्जातं वायुस्कन्धाच्च सप्तमा-

द्भ्रष्टम् । ह्रियते किल खा व्यैस्तडित्प्रभं मेघसम्भूतम् ।।२४।। तक्षकवासुकि-कुलजाः कामगमा ये च पन्नगास्तेषाम् । स्निग्धा नीलद्युतयो भवन्ति मुक्ताः फणस्यान्ते ।।२५।। शस्तेऽवनिप्रदेशे रजतमये स्थिते च यदि । वर्षति देवोऽकस्मात् तज्ज्ञेयं नागसम्भूतम् ।।२६।। अपहरति विषमलक्ष्मी क्षपयति शत्रून्यशो विकाशयति । भौजङ्गं नृपतीनां धृतमकृतार्घं विजयदं च ।।२७।। कर्पूरस्फटिकनिभं चिपिटं विषमं च वेणुजं ज्ञेयम् । शंखोद्भवं शशिनिभं वृत्तं भ्राजिष्णु रुधिरं च ।। २८ ।। शंखतिमिवेणुवारणवराहभुजगाभ्रजान्यवेध्यानि । अमितगुणत्वाच्चैषामर्घः शास्त्रे न निर्दिष्टः ।।२९।। एतानि सर्वाणि महागुणानि सुतार्थसौभाग्ययशस्कराणि । रुक्छोकहन्तृणि च पार्थिवानां मुक्ताफलानीप्सित कामदानि ।। ३० ।। सू भूषणं लतानां सहस्रमष्टात्तरं चतुर्हस्तम् । इन्द्रच्छन्दो नाम्ना विजयच्छन्दस्तदर्धेन ।।३१।। शतमष्टयुतं हारो देवच्छन्दो ह्यशीतिरेकयुता । अष्टाष्टकोऽर्धहारो रश्मिकलापश्च नवषट्कः ।। ३२ ।। द्वात्रिंशता तु गुच्छो विंशत्या कीर्तितोऽर्धगुच्छाख्यः । षोडशभिर्माणवको द्वादशभिश्चार्धमाणवकः ।। ३३ ।। मन्दरसंज्ञोऽष्टाभिः पञ्चलतो हारफलकमित्युक्तम् । सप्तविंशतिमुक्ता हस्तो नक्षत्रमालेति ।।३४।। अंतरमणिसंयुक्ता मणिसोपानं सुवर्णगुलकैर्वा । तरलकमणिमध्यं तद्विज्ञेयं चाटुकारमिति ।।३५।। एकावली नाम यथेष्टसंख्या हस्तप्रमाणा मणिविप्रयुक्ता । संयोजिता या मणिना तु मध्ये यष्टीति सा भूषणविद्भिरुक्ता ।।३६।।

इति श्रीवराहमि० बृहत्सं० मुक्ताफलपरीक्षानामैकाशीतितमोऽध्यायः ।। ८१ ।।

हाथी, सर्प, सीपी, शंख, बादल, बांस, मत्स्य और शूकरसे मोती उत्पन्न होते हैं. उन सबमें सीपीसे निकला हुआ मोतीही अत्यन्त श्रेष्ठ होता है ।। १ ।। सिंहलक, पारलौकिक, सौराष्ट्रक, ताम्रपर्णि, पारशव, कौबेर, पाण्डयवाटक और हैम ये आठ स्थान मोतियोंके आकर हैं ।। २ ।। अनेक आकारवाले, स्निग्ध, हंसके समान श्वेतरंगके और स्थूल मोती सिंहलदेशमें उत्पन्न होते हैं. कुछेक लाल रंगके या काली, कांतिसे हीन, श्वेत रंगके मोतियोंका ताम्र नाम है ।। ३ ।। काले श्वेत या पीले रंगके, कंकडयुक्त और विषम मुक्ता पारलौकिक नामसे प्रसिद्ध हैं, न बहुत मोटे न बहुत छोटे और मक्खनके समान कान्तिमान् मोती सौराष्ट्रनामसे प्रसिद्ध हैं ।। ४ ।। तेजमान, श्वेतवर्ण, भारी अत्यंत महागुणवाले मोती पारशव और छोटे जर्जर, दहीके समान कान्तिवाले, बड़े और श्रेष्ठ आकारके मोती हैम नामसे प्रसिद्ध हैं ।। ५ ।। काले या श्वेत रंगके, विषम, और लघु प्रमाण तेजस्वी मुक्ताफल कौबेर नामसे ख्यात हैं और पाण्डयावाटदेशका उत्पन्न हुआ मोती त्रिपुट और धनियेके चूर्णके समान होता है ।। ६ ।। वैष्णव मोती (जिसके देवता विष्णुजी हों वह अलसीके फूलके समान श्यामवर्ण, इन्द्रदेवतावाला मोती चन्द्रमाके समान, वरुणदेवता वाला मोती हरितालके रंगके समान प्रभावाला और यमदैवत मोती काले रंगका होता है ।। ।। ७ ।। वायुदैवत मोती पके हुए अनारके बीजके समान, चोटली या तांबेके समान रंगवाला और आग्नेय मुक्ताफल धुआंरहित अग्नि और कमलके समान कान्तिमान् हुआ करता है ।। ८ ।। तोलमें चार मासेका जो हो, तेज और गुणयुक्त हो ऐसे एक मोतीका मोल ५३०० रुपये हैं ।

।। ९ ।। आधे माषेकी हानिके अनुसार अर्थात् पहले कहे प्रमाणसे आधा माषा कम या अधिक होनेपर मोतीका मोल क्रमसे ३२०० । २००० । १३०० । ८०० । ३५३ रुपया कम या अधिक होगा ।। १० ।। चार चोंटलीभरका मोती पंचत्रिंशशत (१३५) नवति (९०) रुपयेके मोलका है और साढे तीन चोंटलीभरका मोती सत्तर (७०) रुपयेका होता है ।। ११ ।। तीन चोंटलीभरके गुणयुक्त मोतीका मोल ५० रुपये और ढाई चोंटलीभरके मोतीका मोल ३५ रुपये होता है ।। ११ ।। एक पलके दशवें भागकी [1]धारण कहते हैं जो एक धरण पर तेरह मोती चढें तो उनका मोल ३२५ रु. होगा ।। १३ ।। एक धरणपर सोलह मोती चढें तो उनका मोल २०० रु. होगा. एक धरणपर बीस मोती चढें तो उनका मोल १७० रुपये होंगे. एक धरणपर पच्चीस चढें तो उनका मोल १३० रुपये होंगे. इसी तोलपर तीस मोती चढें तो ७० रु. मोल हुआ. एक धरणपर ४० मोती चढें तो मोल ५० रुपये होंगे. एक धरणपर ४५ या ६० मोती चढें तो चालीस रुपये मोल होता है ।। १४ ।। १५ ।। एक धरणपर अस्सी मोती चढें तो मोल ३० रु. हुआ. एक धरणपर १०० मोती चढें तो २५ रु. के हुए. एक धरणके २०० मोती १२ रु. के, धरणके ३०० मोती ६ रु. के, धरणके ४०० मोती ५ रुपयेके, धरणके ५०० मोती तीन रुपये के होते हैं ।। १६ ।। धरणके १३ मोती पिक्का १६ मोती पिच्चा, २५ मोती अर्घ, ३० मोती रवक, ४० मोती सिक्थ और एक धरणपर चढे हुए पचपन मोती निगर कहलाते हैं ।। इससे आगे अस्सी आदि मोती एक धरणपर चढें तो उनको चूर्ण कहते हैं ।। १७ ।। यह धरणसे तोले हुए गुणयुक्त मोतियोंका वर्णन किया गया. इनके बीचमें हो तो त्रैराशिक करके हानि वृद्धके अनुसार मूल्य नियत करे ।। १८ ।। कुछेक काले, कुछेक सफेद, कुछेक पीले, कुछेक लाल और विषम मोतियोंका एक तिहाई अंश घटाकर ठीक मोल होगा. विषम और पीला रंग होनेपर तो षष्ठांशहीन मूल्य होगा ।। १९ ।। इतवार-सोमवारके दिन, पुष्य व श्रवण नक्षत्रमें, ऐरावतके कलमें उत्पन्न हुए जिन हाथियोंका जन्म हुआ है और जिन भद्रहाथियोंने उत्तरायण कालमें चंद्रमा सूर्यग्रहण समयमें जन्म लिया है ।। २० ।। उनके दन्तकोषोंमें, कुम्भोंमें बड़े २ अनेक प्रकारके कान्तियुक्त बहुतसे मोती निकलते हैं ।। २१ ।। इनका आंकना अथवा इनमें छिद्र करना उचित नहीं है, यह अत्यन्त प्रभायुक्त, महापवित्र हैं. राजालोग इनको धारण करनेसे सुत, विजय और आरोग्य पाते हैं ।। २२ ।। वराहके दन्तमूलमें चन्द्रमाकी कांतिके समान प्रभावाला, बहुतसे गुणोंसे युक्त वाराहमुक्ताफल और मकरसे उत्पन्न हुआ मछलीके नेत्रके समान द्युतिमान् बहुतसे गुणोंसे युक्त पवित्र और बड़ा मोती तिमिज नामसे ख्यात होता है ।। २३ ।। सातवें वायुस्कन्धसे गिरा हुआ, बिजलीके समान चमकीला, वर्षाके ओलेके समान मेघसे उत्पन्न हुए मोतीको ऊपरसे ऊपरही स्वर्गके देवता लोग हरण कर लेते हैं ।। २४ ।। तक्षक और वासुकिनागके वंशमें उत्पन्न हुए इच्छाचारी जो सर्प है उनके फनोंके अग्रभागमें नीली द्युतिवाले स्निग्ध मोती उत्पन्न होते हैं ।। २५ ।। नागसे उत्पन्न हुए मोतीकी यह परीक्षा है कि, श्रेष्ठभूमिके बीच चांदीके पात्रमें उस मोतीके रख देनेसे अचानक वर्षा होने लगती है ।। २६ ।। सर्पसे उत्पन्न हुआ मोती, विना मोल किये धारण करनेसे राजाओंके विष और अलक्ष्मीको हर लेता है, शत्रुओंको भय करता है, यशका विस्तार करता है और विजयदायी है ।। २७ ।। बांससे उत्पन्न हुआ मोती

---

१ पांच रत्तीका एक माषा, सोलह माषेका एक कर्ष और चार कर्षका एक पल है, पलके दशवें भागको धरण कहते हैं,

कपूर और बिल्लोरके समान दीप्तिमान्, आकारसे चपटा, विषम होता है और शंखसे उत्पन्न हुआ मोती चंद्रमाके समान दीप्तिमान् गोल, प्रकाशित और मनोहर होनेसे जाना जाता है ।। २८ ।। शंख, तिमि, वेणु, वारण, वराह, भुजंग और बादलसे उत्पन्न हुए समस्त मोती अवेधनीय (छिद्र करनेके योग्य नही) हैं और अत्यन्त गुणशाली होनेसें शास्त्रमें उनका आंकना नहीं कहा ।। २९ ।। महागुणों करके युक्त यह समस्त मोती राजाओंको पुत्र, धन, सौभाग्य और यश देनेवाले हैं, रोग शोकके हरनेवाले और मनोवाञ्छाको देते हैं ।। ३० ।। एक हजार आठ लडीकी परिमाणमें अर्थात् लम्बाईमें जो चार हाथ हो ऐसी मोतियोंकी मालाका नाम इन्द्रच्छन्द है, यह माला देवताओंका भूषण है, दो हाथकी लम्बी मालाका नाम विजयच्छन्द है ।। ३१ ।। एक सौ आठ लडीका या इक्यासी लडीका देवच्छन्द हार होता है, चौसठ लडीका आधा हार और चउपन लडीके हारका नाम रश्मिकलाप है ।।३२।। ३२ लडीके हारका नाम गुच्छ है, २० लडीके हारका नाम अर्द्धगुच्छ है, १६ लडीके हारका नाम माणवक है और १२ लडीका अर्द्धमाणव हार कहलाता है ।। ३२ ।।३३।। ८ लडीके हारका नाम मन्दर है, ५ लडीके हारका नाम फलक है, सत्ताईक मोतियोंकी माला हाथभर लम्बी हो तो वह नक्षत्र[1]माला कहलाती है ।। ३४।। मुक्तामालाके बीच २ में मणियें पिरोई जायँ तो मणिसोपान नामक और सुवर्णके दानोंसे युक्त चंचल मध्यमणि हो तो चाटुकार नामक माला होती है ।। ३५ ।। जितने चाहिये उतने मोतियोंसे युक्त, हाथभरकी लम्बी और कोई विशेष मोती बीचमें न हो वह माला एकावली कहलाती है और बीचमें मणि हो तो यष्टि नाम होता है, ऐसा गहनोंके लक्षण जाननेवालोंने कहा है ।। ३६ ।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायामेकाशीतितमोऽध्यायः।।८१।।

अथ द्व्यशीतितमोऽध्यायः

पद्मरागपरीक्षा

सौगन्धिककुविन्दस्फटिकेभ्यः पद्मरागसम्भूतिः । सौगन्धिकजा भ्रमराञ्जनाब्जजम्बूरसद्युतयः ।।१।। कुरुविन्दभवाः शबला मन्दद्युतयश्च धातुभिर्विद्धाः । स्फटिकभवा द्युतिमन्तो नानावर्णा विशुद्धाश्च ।।२।। स्निग्धः प्रभानुलेपी स्वच्छोऽर्चिष्मान् गुरुः सुसंस्थानः । अन्त प्रभोऽतिरागो मणिरत्नगुणाः समस्तानाम् ।।३।। कलुषा मन्दद्युतयो लेखाकीर्णाः सवातवः खण्डः । दुर्विद्धा । न मनोज्ञाः सशर्करा-श्चेति मणिदोषाः ।।४।। भ्रमरशिखिकण्ठवर्णो दीपाशिखासप्रभो भुजङ्गानाम् । भवति मणिः किलमूर्द्धनि योऽनर्घेयः स विज्ञेयः ।।५।। यस्तं बिभर्ति मनुजाधिपतिर्न तस्य दोषा भवन्ति विषरोगकृताः कदाचित् । राष्ट्रे च नित्यमभिवर्षति तस्य देवः शत्रूंश्च नाशयति तस्य मणेः प्रभावात् ।।६।। षड्विंशतिः सहस्राण्येकस्य मणेः पलप्रमाणस्य । कर्षत्रयस्यविंषतिरुपदिष्टा पद्मरागस्य ।।७।। अर्धपलस्य द्वादश कर्ष-

---

१ इसका दूसरा नाम वनमाला है।

स्यैकस्य षट्सहस्राणि । यच्चाष्टमाषकधृतं तस्य सहस्रत्रयं मूल्यम् ॥८॥ माषकचतुष्टयं दशशतक्रयं द्वौ तु पञ्चशतमूल्यौ । परिकल्प्यमन्तराले मूल्यं हीनाधिकगुणानाम् ॥९॥ वर्णन्यूनस्यार्धं तेजोहीनस्य मूल्यमष्टांशः । अल्पगुणो बहुदोषो मूल्यात प्राप्नोति विंशांशम् ॥१०॥ आधूम्रं व्रणबहुलं स्वल्पगुणं चाप्नुयाद्विशकं भागम् । इतिपद्मरागमूल्यं पूर्वाचार्यैः समुद्दिष्टम् ॥११॥

इति श्रीवराहमि० बृहत्सं० पद्मरागपरीक्षानाम व्द्यशीतितमोऽध्यायः ॥८२॥

सौगंधिक, कुरुवन्दि और स्फटिक इन तीन भांतिके पत्थरोंसे पद्मराग (लाल) का जन्म होता है, सौगन्धिक पाषाणसे उत्पन्न हुए लाल भ्रमर, अंजन, मेघ और जामुनफलके समान कान्तिमान् होते हैं ।। १ ।। कुरुविन्द पत्थरसे उत्पन्न हुए पद्मराग अनेक रंगवाले, मन्दकान्तियुक्त और धातुओंसे दागी होते हैं, स्फटिकसे उत्पन्न हुए पद्मराग अनेक रंगवाले, कान्तिमान् और शुद्ध होते हैं ।। २ ।। स्निग्ध, अपनी प्रभासे चमकता हुआ, स्वच्छ, कान्तिमान्, भारी, शुभ आकारवाला भीतरही कान्तिसे युक्त और बहुत रंगवाला यह समस्त पद्मराग मणि श्रेष्ठ गुणसे युक्त है ।। ३ ।। कलुष (मलीन), धुंधली कान्तिसे युक्त, रेखाओंसे व्याप्त, मृत्तिकादि धातुओंसे युक्त, खंडित, विंधनेके अयोग्य और कंकरदार पद्मराग मनोहर नहीं होता, यही मणियोंके दोष हैं ।। ४ ।। भ्रमर और मोरके कंठके समान रंगवाला दीपककी शिखाके समान कान्तिमान् मणि सर्पोंके मस्तकमें उत्पन्न होती है वह अमोल होती है ।। ५ ।। जो राजा उस अनमोल मणिको धारण करता है उसको कभी भी विष या रोगकृत दोष प्राप्त नहीं हो सकता. उस मणिके प्रभावसे देवता लोग नित्य उसके राज्यमें वर्षा करते हैं और उसके शत्रुओंका भी नाश हो जाता है ।। ६ ।। तोलमें एक पलभर मद्मरागका मोल २६००० छब्बीस हजार रुपया, तीन कर्षभर पद्मरागका मोल बीस हजार रुपया कहा है ।। ७ ।। तोलमें आधे पलभर पद्मरागका मोलबारह हजार, एक कर्ष भर तोलके पद्मरागका मोल छः हजार रुपया आठ मासे भर पद्मरागका मोल तीन हजार रुपया होगा ।। ८ ।। चार मासेभर पद्मरागका मोल एक हजार रुपया, दो मासेभर पद्मरागका मोल पांच सौ रुपया होगा. गुणकी अधिकताई और कमताईके अनुसार उस मणिके मूल्यको जांचना चाहिये ।। ९ ।। कम रंगवाले पद्मरागका मोल आधा होता है, तेजरहित पद्मरागका मोल आठवां हिस्सा, थोडे गुण और बहुतसे दोषयुक्त पद्मरागका मोल बीसवां हिस्सा होगा ।। १० ।। कुछेक धूमल रंगका बहुतसे व्रणवाला, थोडे गुणोंसे युक्त पद्मराग मोलका बीसवां भाग पाता है. ऐसा पूर्वाचार्योंने भली भांति उपदेश किया है ।। ११ ।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्यपण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटी० व्द्यशीतितमोऽध्यायः ॥८२॥

अथ त्र्यशीतितमोऽध्यायः

मरकतपरीक्षा.

शुकवंशपत्रकदलीशिरीषकुसुमप्रभं गुणोपेतम् ।
सुरपितृकार्ये मरकतमतीव शुभदं नृणां विधृतम् ।।१।।

इति श्रीवराहमि० बृहत्सं० मरकतपरीक्षा नाम त्र्यशीतितमोऽध्यायः ।।८३।।

तोता, बांसका पत्ता, केला और शिरीषके फूलके समान प्रभावाला गुण युक्त मरकत (पन्ना) सुरकार्यमें धारण किये जानेपर अतीव शुभ फल देता है ।। १ ।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसाद मिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां त्र्यशीतितमोऽध्यायः ।।८३।।

अथ चतुरशीतितमोऽध्यायः

दीपलणक्षम्

वामावर्तो मलिनकिरणः सस्फुलिङ्गोऽल्पमूर्तिः क्षिप्रं नाशं व्रजति विमलस्नेहवर्त्यन्वितोऽपि । दीपः पापं कथयति फलं शब्दवान् वेपनश्च व्याकीर्णार्चिर्विशलभमरुद्यश्च नाशं प्रयाति ।।१।। दीपः संतमूर्तिरायततनुर्निर्वेपनो दीप्तिमान् । निःशब्दो रुचिरः प्रदक्षिणगतिर्वैदूर्यहेमद्युतिः । लक्ष्मीं क्षिप्रमभिव्यनक्ति रुचिरं यश्चोद्यतं दीप्यते शेषं लक्षणमग्निलक्षणसमं योज्यं यथायुक्तितः ।।२।।

इति श्रीवराहमि० बृहत्सं० दीपलक्षणं नाम चतुरशीतितमोऽध्यायः ।।८४।।

जिसकी शिखा बाईं ओरको घूमती हो, मलीन किरणोंसे युक्त, जिसमें चिनगारियाँ निकलती हों छोटी (छोटी शिखावाले) हों, निर्मल तेल और बत्तीसे युक्त होकर भी शीघ्र बुझ जाय, कम्पायपान और शब्दयुक्त हो, जिसके किरण बिखर रहे हों, बिना कीट पतंगके गिरे बिना पवनके चले शीघ्र नाशको प्राप्त हो वह दीपक पाप फलको प्रकाशित करता है ।। १ ।। मिली हुई शिखावाला, दीर्घ मूर्तिवाला, कम्पनहीन, दीप्तिमान्, शब्दहीन सुन्दर जिसकी लू दक्षिण ओरको जाती हो, वैदूर्य और सुवर्णके समान जिसकी ज्योति हो, जो रुचिर और उद्यत होकर दीप्ति पावे. वह दीपक शीघ्रही लक्ष्मीके आनेको प्रकाशित करता है. बाकी समस्त लक्षण अग्निके लक्षणसे युक्तिके अनुसार मिलाकर फलको प्रगट करे ।। २ ।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां चतुरशीतितमोऽध्यायः ।।८४।।

अथ पंचाशीतितमोऽध्यायः

दन्तकाष्ठलक्षणम्

वल्लीलतागुल्मतरुप्रभेदैः स्युर्दन्तकाष्ठानि सहस्रशो यैः । फलानि वाच्यान्यति तत्प्रसङ्गो माभूदतो वच्म्यथ कामिकानि ।।१।। अज्ञातपूर्वाणि न दन्तकाष्ठान्यद्यान्न पत्रैश्च समन्वितानि । न युग्मपर्वाणि न पाटितानि न चोर्ध्वशुष्काणि विना त्वचा वा ।।२।। वैकङ्कतश्रीफलकाश्मरीषु ब्राह्मी द्युतिः क्षेमतरौ सुदाराः । वृद्धिर्वटेऽर्के प्रचुरं च तेजः पुत्रा मधूके ककुभे प्रियत्वम् ।।३।। लक्ष्मीःशिरीषे च तथा करञ्जे प्लक्षेऽर्थसिद्धिः समभीप्सिता स्यात् । मान्यत्वमायाति जनस्य जात्यां प्राधान्यमश्वत्थतरौ वदन्ति ।।४।। आरोग्यमायुर्बदरीबृहत्योरैश्वर्यवृद्धिः खदिरे सबिल्वे । द्रव्याणि चेष्टान्यतिमुक्तके स्युः प्राप्नोति तान्येव पुनः कदम्बे ।।५।। निम्बेऽर्थाप्तिः करवीरेऽन्नलब्धिर्भाण्डीरे स्यादिदमेव प्रभूतम् । शम्यां शत्रूनपहन्त्यर्जुने च श्यामायां च द्विषतामेव नाशः ।।६।। शालेऽश्वकर्णे च वदन्ति गौरवं सभद्रदारावपि चाटरूषके । वाल्लभ्यमायाति जनस्य सर्वतः प्रियंग्वपामार्गसजम्बुदाडिमैः ।।७।। उदङ्मुखः प्राङ्मुख एवं वाब्दं कामं यथेष्टं हृदये निवेश्य । अद्यादनिन्द्यं च सुखोपविष्टः प्रक्षाल्य जह्याच्च शुचिप्रदेशे ।।८।। अभिमुखपतितं प्रशान्तदिक्स्थंशुभ मतिशोभनमूर्ध्वसंस्थितं यत् । अशुभकरम तोऽन्यथा प्रदिष्टं स्थितपतितं च करोति मृष्टमन्नम् ।।९।।

इति श्रीवराहमि० बृहत्सं० दंतकाष्ठलक्षणंनाम पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ।।८५।।

वल्ली, लता, गुल्म और वृक्षोंके भेदसे हजार प्रकारके दन्तवन होते हैं उनके द्वारा जो समस्त फल कथन किये जा सकते हैं उनके प्रसंगको बहुत न बढाकर केवल अभीष्ट फलदायक दंतकाष्ठ कहे जाते हैं ।। १ ।। पहले न जाने हुए, पत्तोंसे युक्त, युग्म अर्थात् दो आदि सम पर्वयुक्त, फटा हुआ, वृक्षपरही सूख गया हुआ और त्वचासे रहित इन सब दन्तकाष्ठोंसे दन्तधावन न करे ।। २ ।। वैकङ्कत, नारियल और काश्मरीवृक्षके दन्तकाष्ठसे ब्राह्मी द्युति प्राप्त होती है, क्षेमवृक्षकी दँतौनसे उत्तम भार्याकी प्राप्ति वटवृक्षके दन्तकाष्ठसे वृद्धि, आकके पेड के दन्तौनसे बहुतसे तेजकी वृद्धि, महुएके काष्ठसे दन्तधावन करनेपर पुत्रलाभ और अर्जुन. वृक्षकी दन्तौन करनेसे सबको प्रिय होता है ।। ३ ।। शिरीष और करञ्जके काठकी दन्तवन हो तो लक्ष्मी प्राप्त होती है पिलखनके काष्ठसे दन्तधावन करनेपर मनोरथ सिद्ध होता है चमेलीके दन्तकाष्ठका व्यवहार करनेसे मनुष्यको मान मिलता है और पीपल वृक्षके दन्तकाष्ठका व्यवहार करनेसे प्रधानताकी प्राप्तिको प्रकाशित करता है ।। ४ ।। बेर और कटेरीके दन्तकाष्ठसे आरोग्य और आयु, बेल और खैरवृक्षकी दंतवनसे ऐश्वर्यकी वृद्धि और अतिमुक्तक दंतवनसे समस्त इष्टवस्तुकी प्राप्ति होती है और कदम्बवृक्षका भी यही फल है ।।५।। नीमके दन्तकाष्ठसे धनकी प्राप्ति, करनेसे अन्नलाभ और भाण्डीर वृक्षके काष्ठकी दन्तवनका व्यवहार करनेसे भी बहुत अन्नकी प्राप्ति होती है. शमीवृक्षके काठकी दन्तधावनका व्यवहार करनेसे

शत्रुओंको मारता है और अर्जुनवृक्षका दन्तकाष्ठ द्वेषकारियोंका नाश करता है ॥ ६ ॥ शाल और अश्वकर्ण वृक्षका दन्तकाष्ठ सन्मान देता है, देवदारु और वांसकी दन्तवन करनेसे सन्मान होता है. प्रियंगु, चिरचिटा, जामुन और दाडिमके वृक्षसे दन्तकाष्ठ बनाया जाय तो मनुष्यको सब प्रकारसे प्रियताकी प्राप्ति होती है ॥ ७ ॥ पूर्वकी ओर या उत्तरकी ओर मुख कर भली भांति से जलप्रधान कामना हृदयमें रख सुखसे बैठकर, निन्दारहित दन्तकाष्ठसे दन्तधावन करे, फिर उसको धोकर पवित्र स्थानमें फेंक दे ॥ ८ ॥ फेंका हुआ काष्ठ शान्त दिशामें स्थित सामने गिरनेसे शुभकारी और खडा हो जाय तो अति शुभकारी होता है. इससे विरुद्ध (न शांत दिशामें गिरे न खडा हो तो) अशुभकारी कहा जाता है. ऐसेही जो फेंका हुआ दन्तकाष्ठ खडाहोकर गिर जाय तो उस दिन मीठा अन्नदान करता है ॥ ९ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य- पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥

अथ षडशीतितमोऽध्यायः

शाकुन-मिश्रफलाध्यायः

यच्छुक्रशक्रवागीशकपिष्ठलगरुत्मताम् । मतेभ्यः प्राह ऋषभो भागुरेदेवलस्य च ॥१॥ भारद्वाजमतं दृष्ट्वा यच्च श्रीद्रव्यवर्धनः । आवन्तिकः प्राह नृपो महाराजाधिराजकः ॥२॥ सप्तर्षीणां मतं यच्च संस्कृतं प्राकृतं च यत् । यानि चोक्तानि गर्गाद्यैर्यात्राकारैश्च ॥३॥ तानि दृष्ट्वा चकारेमं सर्वशाकुनसंग्रहम् । वराहमिहिरः प्रीत्या शिष्याणां ज्ञानमुत्तमम् ॥४॥ अन्यजन्मान्तरकृतं कर्म पुंसां शुभाशुभम् । यत्तस्य शकुनः पाकं निवेदयति गच्छताम् ॥५॥ ग्रामारण्याम्बुभूव्योमद्युनिशोभयचारिणः । रुतयातेक्षितोक्तेषु ग्राह्याः स्त्रीपुन्नपुंसकाः ॥६॥ पृथग्जात्यनवस्थानादेषां व्यक्तिर्न लक्ष्यते । सामान्यलक्षणोद्देशे श्लोकावृषिकृताविमौ ॥७॥ पीनोन्नतविकृष्टांसाः पृथुग्रीवा सुवक्षसः । स्वल्पगम्भीरविरुताः पुमांसः स्थिरविक्रमाः ॥८॥ तनूरस्कशिरोग्रीवा सूक्ष्मास्यपदविक्रमाः । प्रसक्तमृदुभाषिण्यः स्त्रियोऽतोऽन्यन्नपुंसकम् ॥९॥ ग्रामारण्यप्रचाराद्यं लोकादेवोपलक्षयेत् । सञ्चिक्षिप्सुरहं वच्मि यात्रामात्रप्रयोजनम् ॥१०॥ पथ्यात्मानं नृपं सैन्यं पुरे चोद्दिश्य देवताम् । सार्थप्रधानं साम्यं स्याज्जातिविद्यावयोऽधिकम् ॥११॥ मुक्तप्राप्तैष्यदर्कासु फलं दिक्षु तथाविधम् । अङ्गारिदीप्तधूमिन्यस्ताश्च शान्तास्ततोऽपरा ॥१२॥ तत्पञ्चमदिशां तुल्यं शुभं त्रैकाल्यमादिशेत् । परिशेषयोर्दिशोर्वाच्यं यथासन्न शुभाशुभम् ॥१३॥ शीघ्रमासन्ननिम्नस्थैश्चिराद्दुन्नतदूरगैः । स्थानवृद्धयुपघाताच्च तद्वद्ब्रूयात् फलं पुनः ॥१४॥ क्षणतिथ्युडुवातार्कैर्देवदीप्तो यथोत्तरम् । क्रियादीप्तो गतिस्थानभावस्वरविचेष्टितैः ॥१५॥ दशधैवं प्रशान्तोऽपि सौम्यस्तृणफलाशनः । मांसामेध्याशनो रौद्रो विमिश्रोऽन्नाशनः स्मृतः ॥१६॥

हर्म्यप्रासादमङ्गल्यमनोज्ञस्थानसंस्थिताः। श्रेष्ठामधुरसक्षीर फलपुष्पद्रुमेषु च ।।१७।।
स्वकाले गिरितोयस्था बलिनो द्युनिशाचराः। क्लीबस्त्रीपुरुषाश्चैषां बलिनः स्युर्यं-
थोत्तरम् ।।१८।। जवजातिबलस्थानहर्षसत्त्वस्वरान्विताः। स्वभूमावनुलोमाश्च
तदूनाः स्युर्विवर्जिताः ।।१९।। कुक्कुटेभपिरिल्यश्च शिखिवञ्जुलछिक्कराः ।। बलिनः
सिंहनादश्चकूटपूरी च पूर्वतः ।।२०।। क्रोष्टुकोलकहारीतकाककोकक्षपिङ्गलाः।
कपोतरुदिताक्रन्दक्रूरशब्दाश्च याम्यतः ।।२१।। गोशशक्रौञ्चलोमाशहंसोत्क्रोशक-
पिञ्जलाः। बिडालोत्सववादित्रगीतहासाश्च वारुणाः ।। २२।। शतपत्रकुरङ्गा-
खुमृगैकशफकोकिलाः चाषशल्यकपुण्याहघण्टाशंखरवा उदक् ।।२३।। न ग्राम्योऽ-
रण्यगो ग्राह्यो नारण्यो ग्रामसंस्थितः। दिवाचरो न शर्वर्यां न च नक्तञ्चरो दिवा-
।।२४।। द्वन्द्वरोगार्दितत्रस्ताः कलहामिषकांक्षिणः। आपगान्तरिता मत्ता न ग्राह्याः
शकुनाः क्वचित् ।।२५।। रोहिताश्चाजबालेयकुरङ्गोष्टमृगाः शशः। निष्फलाः
शिशिरे ज्ञेया वसन्ते काककोकिलौ ।।२६।। न तु भाद्रपदे ग्राह्याः सूकरश्ववृकादयः।
शरद्यब्जादगोक्रौञ्चाः श्रावणे हस्तिचातकौ ।।२७।। व्याघ्रर्क्षवानरद्वीपिसर्हिषाः
सबिलेशयाः। हेमन्ते निष्फला ज्ञेया बालाः सर्वे विमानुषाः ।। २८ ।। ऐन्द्रान-
लदिशोर्मध्ये त्रिभागेषु व्यवस्थिताः। कोशाध्यक्षानलाजीवितपोयुक्ताः प्रदक्षिणम्
।।२९।। शिल्पी भिक्षुर्विवस्त्रा स्त्री याम्यालनदिगन्तरे परतश्चापि मातङ्गगोप-
धर्मसमाश्रयाः ।।३०।। नैर्ऋतीवारुणीमध्ये प्रमदासूतितस्कराः। शौण्डिकः शाकुनी
हिंस्रो वायव्यपश्चिमावन्तरे ।।३१।। विषघातकगोस्वामिकुहकज्ञास्ततः परम्।
धनवानीक्षणीकश्च मालाकारः परं ततः ।।३२।। वैष्णवश्चरकश्चैववाजिनां रक्षणे
रतः। एवं द्वात्रिंशतो भेदाः पूर्वदिग्भिः सहोदिताः ।।३३।। राजा कुमारो नेता च
दूतः श्रेष्ठी चरो द्विजः। गजाध्यक्षश्च पूर्वाद्याः क्षत्रियाद्याश्चतुर्दिशम् ।।३४।।
गच्छतस्तिष्ठतो वापि दिशि यस्यां व्यवस्थितः। विरौति शकुनो वाच्यस्तद्दिग्जेन
समागमः ।।३५।। भिन्नभैरवदीनार्तपरुषक्षामजर्जराः। स्वरा नेष्टाः शुभाः शान्ता
हृष्टप्रकृतिपूरिताः ।।३६।। शिवा श्यामा रला छुच्छुः पिङ्गला गृहगोधिका। सूकरी
परपुष्टा च पुन्नामानश्च वामतः ।।३७।। स्त्रीसंज्ञा भासभषककपिश्रीकर्णछिक्कराः।
शिखिश्रीकण्ठपिप्पीकरुरुश्येनाश्च दक्षिणाः ।।३८।। क्ष्वेडास्फोटितपुण्याहगीत शंखा-
म्बुनिः स्वनाः। सतूर्याध्ययनाः पुंवत् स्त्रीवदन्या गिरः शुभाः ।।३९।। ग्रामो मध्यम-
षड्जौ तु गान्धारश्चेतो शोभनाः। षड्जमध्यमगान्धारा ऋषभश्च स्वरा हिताः
।।४०।। रुतकीर्तनदृष्टेषु भारद्वाजाजबर्हिणः। धन्या नकुलचाषौ च सरटः पापदोऽप्रतः
।।४१।। जाहकाहिशशक्रोडगोधानां कीर्तनं शुभम्। रुतसन्दर्शनं नेष्टं प्रतीपं वानर-
र्क्षयोः ।।४२।। ओजाःप्रदक्षिणं शस्ता मृगाः सनकुलाण्डजाः। चाषः सनकुलो वामो
भृगुराहापराह्णतः। ४३।। छिक्करःकूटपूरी च पिरिली चाह्नि दक्षिणाः। अपसव्याः

सदा शस्ता दृष्ट्रिणः सबिलेशयाः ॥४४॥ श्रेष्ठे हयसिते प्राच्यां शवमांसे च दक्षिणे । कन्यकादधिनीपश्चादुदग्गोविप्रसाधवः ॥४५॥ जालश्वचरणौ नेष्टौ प्राग्याम्यौ शस्त्रघातकौ । पश्चादासवषण्ढौ च खलासनहलान्युदक् ॥४६ ॥ कर्मसङ्गमयुद्धेषु प्रवेशे नष्टमार्गणे । यानव्यस्तगता ग्राह्या विशेषश्चात्र वक्ष्यते ॥ ४७ ॥ दिवा प्रस्थानवद्ग्राह्याःकुरङ्गरुरुवानराः । अह्नश्च प्रथमे भागे चाषवञ्जुलकुक्कुटाः ॥४८॥ पश्चिमे शर्वरीभागे नप्तृकोलूकपिङ्गलाः । सर्व एव विपर्यस्ता ग्राह्याः सार्थेषु योषिताम ॥४९॥ नृपसंदर्शने ग्राह्याः प्रवेशेऽपि प्रयाणवत् । गिर्यरण्यप्रवेशे च नदीनां चावगाहने ॥५०॥ वामदक्षिणगौ शस्तौ यौ तु तावग्रपृष्ठगौ। क्रियादीप्तौ विनाशाय यातुः परिघसंज्ञितौ ॥५१॥ तावेव तु यथाभागं प्रशान्तरुतचेष्टितौ । शकुनौ शकुनद्वारसंज्ञितावर्थसिद्धये ॥ ५२ ॥ केचित्तु शकुनद्वारमिच्छन्त्युभयतः स्थितैः । शकुनैरेकजातीयैः शान्तचेष्टाविरा विभिः ॥५३॥ विसर्जयति यद्येक एकश्च प्रतिषेधति । स विरोधोऽशुभो यातुग्राह्यो वा बलवत्तरः ॥५४॥ पूर्वं प्रावेशिको भूत्वा पुनः प्रास्थानिको भवेत् । सुखेन सिद्धिमाचष्टे प्रवेशे तद्विपर्ययः ॥५५॥ विसर्ज्य शकुनः पूर्वं स एव निरुणद्धि चेत् प्राह यातुररेर्मृत्युं डमरं रोगमेव वा ॥५६॥ अपसव्यास्तु शकुना दीप्ता भयनिवेदिनः । आरम्भे शकुनो दीप्तो वर्षान्तिस्तद्भयङ्करः ॥५७॥ तिथिवाय्वर्कभस्थानचेष्टादीप्ता यथाक्रमम् । धनसैन्यबलाङ्गेष्टकर्मणांः स्युर्भयङ्कराः ॥५८॥ जीमूतध्वनिदीप्तेषु भयं भवति मारुतात् । उभयोः सन्ध्ययोर्दीप्ताः शस्त्रोद्भवभयङ्कराः ॥५९॥ चितिकेशकपालेषु मृत्युबन्धवधप्रदाः । कण्टकोकाष्ठभस्मस्थाः कलहायासदुःखदाः ॥६०॥ अप्रसिद्धभयं वापि निःसाराश्मव्यवस्थिताः ॥ कुर्वन्ति शकुना दीप्ताः । शान्ता याप्यफलास्तु ते ॥६१॥ असिद्धिसिद्धिदौ ज्ञेयौ निर्ह्लादाहारकारिणौ । स्थानाद्रुवन् व्रजेद्यात्रां शंसते त्वन्यथागमम् ॥६२॥ कलहः स्वरदीप्तेषु स्थानदीप्तेषु विग्रहः। उच्च मादौ स्वरं कृत्वा नीचं पश्चाच्च मोषकृत् ॥६३॥ एकस्थानेरुवन्दीप्तः सप्ताहाद्ग्रामघातकृत् । पुरदे नरेन्द्राणामृत्वधायनवत्सरात् ॥६४॥ सर्वे दुर्भिक्षकर्तारः स्वजातिपिशिताशनाः । सर्पमूषकमार्जारपृथुरोमविवर्जिताः ॥६५॥ परयोनिषु गच्छन्तो मैथुनं देशनाशनाः । अन्यत्र वेसरोत्पत्तेर्नृणां चाजातिमैथुनात् ॥ ६६ ॥ बन्धघातभयानि स्युः पादोरुमस्तकान्तिगैः । अप्शष्पपिशिताम्रादैर्वर्षमोषक्षतग्रहाः ॥६७॥ क्रूरोग्रदोषदुष्टैश्च प्रधाननृपवृत्तकैः । चिरकालैश्च दीप्ताद्यास्वागमो दिक्षु तन्नृणाम् ॥६८॥ सद्रव्यो बलवांश्चस्यात्सद्रव्यस्यागमो भवेत । द्युतिमान्विनतप्रेक्षी सौम्यो दारुणवृत्तकृत् ॥६९॥ विदिक्स्थः शकुनो दीप्तो वामस्थेनानुवाशितः । स्त्रियाः संग्रहणं प्राह तद्दिगाख्यातयोनितः ॥७०॥ शान्तः पञ्चमदीप्तेन विरुतो विजयावहः । दिङ्नरागमकारी वा दोषकृत्तद्विपर्यये ॥७१॥ वामसव्यरुतो मध्यः प्राह स्वपरयोर्भयम् ।

मरणं कथयन्त्येते सर्वे समविराविणः ॥७२॥ वृक्षाग्रमध्यमूलेषु गजाश्वरथिकागमः । दीर्घाब्जमुषिताग्रेषु नरनौशिबिकागमः ॥७३॥ शकटेनोन्नतस्थे च छायास्थे छत्रसंयुतः । एकत्रिपञ्चसप्ताहात् पूर्वाद्यास्वन्तरासु च ॥७४॥ सुरपतिहुतवहयमनिर्ऋतिवरुणपवनेन्दुशङ्कराः । प्राच्यादीनां पतयो दिशः पुमांसोऽङ्गना विदिशः ॥७५॥ तरुताली विवलाम्बरसलिलजशरचर्मपट्टरेखाः स्युः । द्वात्रिंशत्प्रविभक्ते दिक्चक्रे तेषु कार्याणि ॥७६॥ व्यायामशिखिनिकूजितकलहाम्भोनिगडमन्त्रगोशब्दाः। वर्णाश्चरक्तपीतककृष्णसिताः कोणगा मिश्राः ॥७७॥ चिह्नंध्वजो दग्धमथ श्मशानं दरी जलं पर्वतयज्ञघोषाः । एतेषु संयोगभयानि विन्द्यादन्यानि वा स्थानविकल्पितानि ॥७८॥ स्त्रीणां विकल्पे बृहती कुमारी व्यङ्गा विगन्धा त्वथ नीलवस्त्रा । कुस्त्री प्रदीर्घा विधवा च ताश्च संयोगचिन्तापरिवेदिकाः स्युः ॥७९॥ पच्छासु रूप्यकनकातुरभामिनीनां मेषाव्ययानमखगोकुलसंश्रयासु । न्यग्रोधरक्ततरुरोध्रककीचकाख्याश्चूतद्रुमाः खदिरबिल्वनगार्जुनाश्च ॥८०॥ (इति सर्वशाकुने मिश्रकाध्यायः प्रथमः

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥

शुक्र, इन्द्र, बृहस्पति, कपिष्ठल और गरुडके मतमें ऋषभने जो कुछ भागुरि और दवलसे कहा है उसको देखकर ॥ १ ॥ भरद्वाजके मतको निहार, उज्जयिनीके महाराजाधिराज श्रीद्रव्यवर्द्धनने जो कुछ कहा और प्राकृत व संस्कृत विरचित्त सप्तर्षियोंका मत और गर्गादि यात्राकारियोंने जो कुछ कहा है, उस सबको देखकर (मुझ) वराहमिहिरने शिष्योंकी प्रसन्नताके लिये उत्तम ज्ञानयुक्त सर्वशाकुनसंग्रह बनाया है ॥ २ ॥ ३ ॥ ४ ॥ मनुष्योंने पूर्वजन्ममें जो शुभ अशुभ कर्म किये हैं, गमनके समय पक्षी आदि उस कर्मके पाकको प्रकाशित करते हैं, यही शाकुन है ॥ ५ ॥ गांवमें रहनेवाले, वनचर, जलचर, पृथ्वीचर, आकाशचारी, दिवाचारी, निशाचारी और दिन रात्रि दोनोंमें विचरनेवाले जीवोंकी गति, दृष्टिसे, शब्दसे और उक्तिसे, स्त्री, पुरुष और नपुंसक जाने जाते हैं ॥ ६ ॥ पृथक् जाति और अनवस्थाके कारणसे इन जीवोंमें कौन पुरुष, कौन स्त्री और कौन नपुंसक है इसका प्रकाश दिखाई नहीं देता इस कारण इनके साधारण लक्षण कहकर ऋषिलोगोंने दो श्लोक बनाये हैं ॥ ७ ॥ जो जीव स्थूल, ऊंचे और विस्तीर्ण कंधवाले, विशाल गरदन, सुन्दर छातीवाले, कुछेक गंभीर स्वरवाले, स्थिरविक्रमवाले हों, सो जीव पुरुष अर्थात् नर हैं ॥ ८ ॥ दुर्बल छाती, दुर्बल मस्तक और दुर्बल गरदनवाले, छोटे मुखवाले, छोटे पांववाले, थोडे विक्रमवाले, सदा मधुर शब्द करनेवाले जीवोंको स्त्री समझना चाहिये और जिनमें स्त्री, पुरुष दोनोंके लक्षण मिलें उनको नपुंसक समझना चाहिये ॥ ९ ॥ गांवका कौनसा शकुन है, वनका कौनसा शकुन है सो लोकव्यवहारसे जान पड़ेगा. मैं संक्षेपकारी हूँ इस कारण केवल यात्राके प्रयोजनका विषय कहूंगा ॥ १० ॥ मार्गमें अपनेपर, सेनामें राजापर, पुरमें देवता (नगरस्वामी) पर और वाणिज्यमें प्रधानपर, बराबरवालोंमें जाति, विद्या और अवस्थामें जो बड़ा हो उसपर शकुनका फल होता है ॥ ११ ॥ सूर्योदयसे पहर दिन चढेतक ईशानी दिशा मुक्तसूर्या. पूर्वदिशा प्राप्तसूर्या, आग्नेयी दिशा एष्यत्सूर्या होती है, ऐसेही आठ पहरमें एक २ पहर सूर्य. उदयसे लेकर पूर्वादि दिशा-

ओंमें घूमता है, जिस दिशासे सूर्य चला आया हो, वह सूर्यसे छोडी गई दिशा अंगारिणी कहलाती है, जिसमें सूर्य स्थित हो वह प्राप्तसूर्या दिशा दीप्ता कहाती है. सूर्य जिसमें जानेवाला हो वह एष्यत्सूर्या दिशा धूमिता नामवाली है. शेष पांच दिशामें शान्ता होती हैं मुक्तसूर्यामें अपशकुन हो तो उसका फल पहले हो चुका जाने, प्राप्तसूर्यामें अशकुनका फल उसही दिन होता है, एष्यत्सूर्या में अशकुनके फलका आगे होना जानना चाहिये ।। १२ ।। अंगारितादि दिशाओंसे पांचवीं दिशाओंका शुभाशुभ समस्त फल सब कालमें बराबर होता है और शेष दो दिशाओंका फलनिकट की दिशाके अनुसार कहे ।। १३ ।। निकट और नीचे हुए शकुनका फल शीघ्र, ऊँचे और दूरपर हुए शकुनका फल विलम्बमें होता है, स्थानकी वृद्धि और उपघातके हेतु करके वैसाही फल शकुन प्रकाशित करता है, अर्थात् वह शकुन जिस स्थानपर बैठा हो और वह स्थान नित्य बढता हो जैसे वृक्ष हो तो उस शकुनका फल शुभ होता है और नित्य घटने वाले स्थान पर शकुनका बैठना अशुभ फलदायक है ।। १४ ।। क्षण, तिथि, नक्षत्र, वायु और सूर्य करके उत्तरोत्तर यह पांच देवदीप्त कहाते हैं, गति, स्थान, भाव, स्वर और चेष्टा, इनके दीप्त होनेसे क्रमानुसार क्रियादीप्त होती है, दीप्तके यह दश प्रकार हैं ।। १५ ।। ऊपर कहे हुए दश प्रकारके तृण और फल खानेवाले शकुन सौम्य और शान्त होते हैं, मांस विष्ठादिक अपवित्र पदार्थ खानेवाले शकुन रौद्र अन्न खानेवाले शकुनका नाम मिश्र (न सौम्य न रौद्र) है ।। १६ ।। महल, देवतादिके मन्दिर, पर, मंगलद्रव्य या रमणीय स्थानपर शकुन बैठे हो या मधु, रस, दूध, फल, पुष्पयुक्त वृक्षपर शकुन बैठे हों तो श्रेष्ठ होते हैं ।। १७ ।। दिनके शकुन अपने कालमें पर्वतके ऊपर अर्थात् ऊंचे पर बैठे हों. रात्रिके शकुन जलके समीप बैठे हों तो बलवान् होते हैं. इन जीवोंमें क्लीबसे स्त्री पुरुष बलवान् होते हैं ।। १८ ।। जब (गति) जाति, बल, स्थान, हर्ष, सत्त्व, और स्वरयुक्त होने पर बलवान् वा अपनी भूमिसे अनुलोम गति होनेपर और वेगादिसे हीन होनेपर बलरहित होते हैं, ।। १९ ।। मुर्गा, हाथी, पिरिली, मोर, वंजुल, छिक्कर, सिंहनाद (पक्षी) और करायिका यह समस्त शकुन पूर्वदिशामें बलवान् होते हैं ।। २० ।। क्रोष्टु (शृगाल), उल्लू, हारीत (तोता), काग, चक्रवाक, ऋक्षु, पिंगला (एक प्रकारका पक्षी), कबूतर यह सब जीव रोते हुए, और क्रूर शब्द करते हुए दक्षिण दिशामें बलवान् होते हैं ।। २१ ।। पश्चिममें गौ, खरहा, क्रौञ्चपक्षी, लोमडी, हंस, कुररपक्षी, कपिञ्जल (श्वेत तीतर),विडाल यह सब जीव और उत्सव, बाजे, गीत और हास्य बली होते हैं ।। २२ ।। शतपत्र (दार्वाघाट) पक्षी, हरिण, चूहा, मृग, घोडा कोकिल, नीलकंठ, सेह. पुण्यशब्द, शंख और घंटेके बजनेपर उत्तर दिशामें बलवान् होते हैं ।। २३ ।। गांवमें बनके शकुनका होना और वनमें ग्रामके शकुनका होना ग्रहण नहीं करना चाहिये. रात्रिमें दिनके शकुनका होना और दिनके शकुनका रात्रिमें मानना भी उचित नहीं ।। २४ ।। द्वन्द्व (नरमादाका जोडा), रोगपीडित, त्रासित, झगडा और मांसके अभिलाषी, नदीके दूसरे किनारेके और मस्त शकुनोंको कभी नहीं मानना चाहिये ।। २५ ।। रोहितमृग, बकरा, गधा, घोडा, हरिण, ऊंट, मृग और खरहा इनको शिशिरकालमें नहीं मानना चाहिये और बसन्तसमयमें काग, कोयलो निष्फल माने ।। २६ ।। भाद्रपद मासमें, शूकर, कूकर, भेडिये आदि, शरत्कालमें बगले, गौ और कौञ्च, श्रावणमासमें, हाथी और चातक अर्थात् पपीहे ग्रहण नहीं करना चाहिये ।। २७ ।। हेमन्तमें व्याघ्र, रीछ, बन्दर, चीता, भैंसा, सर्प, बालक और समस्त विकृत मनुष्य निष्फल होते हैं ।। २८ ।। पूर्व और अग्निकोणके विभागमें प्रदक्षिणाके क्रमसे कोशाध्यक्ष, अग्निजीवी (लुहारादि) और तपस्वी यह तीन स्थित हैं ।। २९ ।। दक्षिण और अग्निकोणके

मध्य विभागमें कारीगर, भिक्षुक और नंगी स्त्री यह तीन हैं. दक्षिण और नैऋत्यके मध्यवाले तीन भागमें हाथी, गोप और धार्मिक लोग विराजमान हैं ।। ३० ।। पश्चिम और नैऋत्य-दिशाके बिचले तीन भागोंमें उत्तम स्त्री, प्रसूता स्त्री और चोर, वायव्य और पश्चिमके मध्य तीन भागोंमें कलाल, चिडीमार, और हिंसाकरनेवाले स्थित हैं ।। ३१ ।। वायव्य और उत्तरके निचले तीन भागोंमें विषघातक गोस्वामी (घोषी) और इन्द्रजालका जाननेवाला यह तीन स्थित हैं. उत्तर व ईशानके मध्य तीन भागोंमें धनवान, इक्षणीक (दैवज्ञ) और माली स्थित हैं ।। ३२ ।। ईशान और पूर्वके बिचले तीन भागोंमें वैष्णव चरक (एक बौद्धोंका भेद है) और घोडोंकी रक्षा करनेवाले स्थित हैं. इस प्रकार पूर्व दिशा आदि के साथ ३२ प्रकारके भेद कहे हैं ।। ३३ ।। राजा, राजपुत्र, सेनापति, शेठ, गुप्तचर, ब्राह्मण और गजाध्यक्ष यह आठ दिशाओंमें और प्रदक्षिणाके क्रमसे क्षत्रियादि वर्ण (क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र ब्राह्मण), पूर्वादि चार दिशामें स्थित जाने ।। ३४ ।। गमन करते हुए अथवा स्थित पुरुषके जिस ओरको स्थित होकर शकुन शब्द करे, उसके द्वारा पहली कही हुई दिक्चक्रसे उत्पन्न हुई वस्तुके साथ समागम होना कहा जाता है ।। ३५ ।। भिन्न भयंकर दीन, आर्त कठोर, क्षाम और जर्जर शब्द शुभ नहीं होते, परन्तु शान्त और हृष्ट प्रकृति जीवोंसे किये जाने पर शुभ होते हैं ।। ३६ ।। बांईं ओरसे गीदडी पातकी, कलहकारिका, छछूंदर, छपकिया, शूकरी और कोकिला और पुरुषशब्द वाचक पक्षी शुभ है ।। ३७ ।। भासपक्षी, भषक, बन्दर, श्रीकर्णपक्षी, छिक्क-मृग, मोर श्रीकंठ, पिप्पीक. रुरुमृग और वाज यह स्त्रीसंज्ञक हैं, यह दक्षिणमें शुभ हैं ।। ३८ ।। क्ष्वेड (मुखका शब्द), आस्फोटित (बांह ठोंकनेका शब्द) पुण्याहवाचन शब्द, गीत, शंख वा जलका शब्द, तुरहीका नाद, पढनेका शब्द और पुरुष शकुन और समस्त स्त्रीके समान शब्द, यह सब अपनी दिशामें होनेसे शुभकारी होते हैं ।। ३९ ।। मध्यम, षड्ज और गान्धाररूप तीन ग्राम अत्यन्त शुभकारी और षड्ज मध्यम गांधार, ऋषभस्वर हितकारी हैं ।। ४० ।। भारद्वाज, बकरा और मोरोंका शब्द कीर्तन या दृष्टिके अग्रभागमें धन्य है और नेवला, नीलकंठ और गिरगिट यात्राके समय इनका आगे आना पाप-प्रद है ।। ४१ ।। जाहक, सर्प, शशक, सूअर और गोह यात्राके समय इनका नाम लेना शुभकारी है परन्तु यात्राके समय इनका रोना और दर्शन इष्टकर नहीं है, वानर और रीछका फल इससे उलटा है ।। ४२ ।। भृगुजी कहते हैं कि अपराह्णमें मृग, नेवला और अंडेसे उत्पन्न हुए जीवोंका अर्थात् शकुनोंका विषम होकर प्रदक्षिणाके भावसे स्थित होना कल्याणकारी है और नेवलेके साथ नीलकंठ पक्षीका बांईं ओर आना शुभफलका देनेवाला है ।। ४३ ।। दिनके समय दाहिनी ओर छिक्करमृग, कूटपूरी पिरिली और सब कालमें दाहिने मार्गमें सर्प और दाढवाले जीवोंका आना मंगलकारी होता है ।।४४।। पूर्वमें अश्व और चीनी, दक्षिणमें शव (मुरदा) और मांस, पश्चिमें कन्या और दही, उत्तरदिशामें गौ विप्र और साधुलोग श्रेष्ठ फल देनेवाला हैं ।।४५।। पूर्व और दक्षिणदिशामें जाल, कुक्कुरचरण, शस्त्र और घातक पश्चिममें आसव और षण्ढ, उत्तरदिशामें खल, आसन और हल शुभ नही हैं ।।४६।। कर्म, संगम और युद्धमें प्रवेश करनेके समय और हराये द्रव्यके खोजनेमें यात्रामें कही हुई विधि उलटी होय तो शुभदायी है अर्थात् यात्रामें जिनको शुभ या अशुभ नियत किया है, वह इस स्थानमें क्रमानुसार शुभ और अशुभ होंगे. उनमें विशेष कहे जाते हैं ।।४७।। हरिण, रुरु और वानरगण यात्राके विधानके समान हों तो यहां दिनके समय शुभ है, पूर्वाह्णमें नीलकंठ, वंजुल और कुक्कुट प्रस्थानवत् (यात्रातुल्य) ग्रहण किये जायंगे ।।४८।। रात्रिके

शेषभागमें नप्तृक, उल्लू और पिंगला शुभ गिनने चाहिये, परंतु स्त्रियोंके लिये सब शकुन उलटे ग्रहण करने चाहिये ।।४९।। राजाका दर्शन करनेको या गृहके प्रवेश करनेपर भी समस्त शकुन यात्राके समान ग्रहण करने चाहिये और पर्वतपर चढनेके समय, या वनमें प्रवेश करने के समय नदी उतरनेके समय भी यात्राके समान शकुनोंको देखना चाहिये ।।५०।। क्रियादीप्त शकुन दो वाम और दक्षिण दिशामें जाय तो कल्याणकर होते हैं, वह दोनोंही आगे और पीछे हो जानेपर परिघ नामवाले हो जाते हैं, जो कि यात्रा करनेवालेके विनाशका कारण है ।।५१।। परंतु जो वही दोनों शकुन यथाभागमें स्थित अर्थात् वामभागवाला बायें और दक्षिणभागवाला दाहिने स्थित होकर शांतभावसे शब्द और चेष्टा करे तब शकुनका द्वार नाम होता है और वह यात्रा करनेवालेका कार्य सिद्ध करते हैं ।।५२।। कोई कोई कहते हैं कि एक जातिके, शांत चेष्टावाले, शब्दरहित द्वारशकुन यात्रा करनेवालेके दोनों ओर स्थित हों तो शुभ हैं ।।५३।। जो एक शकुन यात्राकी आज्ञा दे और दूसरा शकुन यात्रा करनेसे रोके तो उस शकुनकी विरोध संज्ञा हो जाती है; वह गमनकारीके लिये अधिक अशुभ करनेवाला होता है ।।५४।। पहले शकुन प्रवेश करके फिर चला जाय तो सुखसे सिद्धि प्राप्त होती है, परंतु प्रवेशमें (गृहप्रवेशादि) इससे विपरीत होनेपर कार्यकी सिद्धि होती है ।।५५।। जो शकुन पहले तो यात्राकी आज्ञा दे और वही शकुन पीछे रोक ले तो गमन करनेवालेकी शत्रुके हाथसे मृत्यु अथवा शस्त्रक्लेश और रोगका विषय होता है ।।५६।। दीप्त दिशामें बाईं ओर स्थित हुए शकुन भयको प्रकाश करते हैं और आरम्भमेंही दीप्त शकुन हो तो वह एक, वर्षतक उस कार्यमें भय करता है ।।५७।। तिथि, वायु, सूर्य, नक्षत्र, स्थान और चेष्टा करके दीप्त शकुन क्रमानुसार धन, सैन्य, बल, अंग, इष्ट और कर्मोंके लिये भयंकर होते हैं ।।५८।। जो शकुन बादलकी ध्वनिसे दीप्त हो तो वायुसे भय होता है और दोनों संध्याओंमें दीप्त शकुन शस्त्रसे उत्पन्न हुआ भय करता है ।।५९।। शकुन, चिता, केश और कपालपर बैठा हो तो मृत्यु, बंधन और वध करता है, कांटेदार वृक्ष, काष्ठ या राखपर बैठा होनेसे क्लेश, श्रम और दुःख देता है ।।६०।। पूर्वोक्त समस्त दीप्त शकुन साररहीन पाषाणके ऊपर बैठे हों तो अप्रसिद्ध भट होता है परंतु शांत शकुन कहे हुए समस्त फलको थोडा करता है ।।६१।। शब्दकारी और आहारकारी शकुन क्रमसे असिद्धिप्रद और सिद्धि देनेवाले जानने चाहिये, जो शब्द करते २ अपने स्थानसे शकुन चला जाय तो यात्राको प्रगट करता है और लौटकर फिर उसी स्थानपर आवे तो किसीके आगमनका निश्चय होता है ।।६२।। स्वरदीप्त शकुन क्लेशसूचक, स्थानदीप्त विग्रहसूचक, पहले ऊंचा शब्द करके फिर नीचा शब्द शकुन करे तो यात्रा करनेवालेकी चोरी होती है ।।६३।। शकुन एक सप्ताहतक एक स्थानसे दीप्त होकर शब्दायमान हो तो ग्रामका नाश करनेवाला है और एक स्थानमें दो वर्ष, छः मास या एक वर्षतक दीप्त होकर शब्द करे तो क्रमानुसार पुर, देश और राजाओंका नाशकारी हो जाता है ।।६४।। सर्प, चूहा, विडाल और मत्स्यके सिवाय शकुनही समस्त अपनी जातिका मांस खाने लगें तो दुर्भिक्षकारी होते हैं ।।६५।। भिन्नयोनिमें (घोडी आदिसे) मनुष्यकी रतिक्रिया व खच्चरकी उत्पत्तिको छोडकर (खच्चर उत्पन्न होनेके लिये घोडीका मैथुन होता है) और शकुन और जातिमें मैथुन करें तो देशका नाश हो जाता है ।।६६।। पाद, उरु और मस्तकको अतिक्रमण करके शकुन चला जाय तो

बन्धन, घात और भयदान करता है, जल पीता हुआ शकुन दिखाई दे तो वर्षा होती है, घास खाता हुआ दिखाई देनेसे चोरी कराता है, मांस खाता हुआ शरीरमें क्षत करता है, अन्न खाता हुआ शकुन किसी बंधुसे समागम कराता है ॥६७॥ जे दीप्तादिशामें यह शकुन स्थित हो तो क्रमानुसार क्रूर, उग्र और दोष, दुष्ट हैं, धूमितादिशामें स्थित हों तो प्रधान नृप और वृत्तक, शांता दिशामें हों तो चिरकाल करके सहित पुरुषका आगमन, अंगारिणीमें यह शकुन स्थित हों तो सबके साथ वहांके मनुष्योंका आगमन सिद्ध होता है ॥६८॥ द्रव्ययुक्त और बलवान् शकुन होवे तो उस दिन द्रव्यसहित मनुष्यका आगम होता है. द्युतिमान् विनत प्रेक्षी (विनत होकर दर्शनकारी) वा सौम्य हो तो दारुण व्यापारमें भय होता है ॥६९॥ विदिशामें स्थित दीप्तशकुन बाईं ओरको जाकर अनुवाशित (शब्दित) हो तो उस दिशामें प्रसिद्ध जन्मवाले पुरुषसे स्त्रीकी प्राप्ति कहाती है ॥७०॥ जिस दिशामें कोई शांत शकुन हो वह शकुन यदि उस दिशासे पांचवीं शांतादिशामें दीप्तशकुन करके शब्दायमान हो तो विजयका देनेवाला होता है, उससे विपरीत हो तो उस दिशासे मनुष्यका आगमन करता है या दोषकारी होता है ॥७१॥ वाम और दाहिने भागमें रुतक मध्यमें अर्थात् वामभागका शकुन उसके पीछे बोले तो अपने और परायेसे भय प्रकाश करते हैं और यह समस्त बराबर स्वर करें तो मरणका प्रकाश करते हैं ॥७२॥ वृक्षके ऊपर, मध्यमें और मूलमें जो शकुन बैठे हों तो क्रमानुसार गज, अश्व और रथपर चढे हुए मनुष्यका आगमन होता है और लंबी वस्तुपर शकुन हो, कमलादि पर शकुन हो, चौकटके अग्रपर शकुन हो तो नौका और पालकीपर चढे मनुष्यका आगमन होता है ॥७३॥ पूर्वा दिशामें या विदिशामें शकटके ऊंचे स्थानमें या छायामें शकुन बैठा हो तो एक, तीन, पांच और एक सप्ताहमें छत्रसे युक्त मनुष्यका आगमन होता है ॥७४॥ इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, पवन, चंद्रमा और शंकर पूर्वादि आठ दिशाओंके यह आठ स्वामी हैं. उनमें सब दिशा पुरुष और विदिशा स्त्री हैं ॥७५॥ आठ दिशाओंका बत्तीस भेदसे भिन्न करके तरुताली, विदल, अम्बर, सलिलज, शर, चर्म और पट्टलेखा, व्यायाम, शिखी, निकूजित, क्लेश, अम्भ, निगड, मंत्र और गोशब्द, रक्त, पीत, कृष्ण, श्वेतवर्ण और कोणमें मिश्रवर्ण रचना और ध्वज, दग्ध, श्मशान, दरी, जल, पर्वत यज्ञ और रोष यह सब चिह्न क्रमानुसार रक्खे फिर तिस करके इसमें संयोगभय या और स्थानका कल्पित भय प्रकाश करता है ॥७६॥७७॥७८॥ और क्रमानुसार इशान-कोणमें बडी स्त्री और कुमारी, अंगहीन और दुर्गन्धयुक्त स्त्री अग्निकोणमें, नीले कपडोंवाली स्त्री और बुरी स्त्री नैर्ऋतकोणमें लंबी स्त्री और विधवा स्त्री वायव्यकोणमें, जिस दिशामें शकुन हो उसी दिशाकी स्त्रीसे संयोग होता अथवा वह स्त्री चिंता उत्पन्न करती है ॥७९॥ फिर इस दिक्चक्रमें क्रमानुसार रूपवान्, सुवर्ण, आतुर वा स्त्रियोंकी अथवा मेष, आवि, यान, यज्ञ, गोसमूह अथवा बड, लालवर्णका लोध, पोला बांस, आमका वृक्ष, खदिर, बेल, अर्जुन यह आठ वृक्ष दिशाओंके हैं. (जिस दिशामें शकुन हो उस ओरके वृक्षके नीचे चांदी सुवर्णादिका लाभ या हानि शकुनके अनुसार होती है) ॥८०॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां षडशीतितमोऽध्यः ॥८६॥

अथ सप्ताशीतितमोऽध्यायः

शाकुन- अंतरचक्रम्

ऐन्द्रयां दिशि शान्तायां विरुवन्नृपसंश्रितागमं वक्ति। शकुनिः पूजालाभं मणिरत्नद्रव्यसम्प्राप्तिम् ॥१॥ तदनन्तरदिशि कनकागमो भवेद्वाञ्छितार्थसिद्धिश्च। आयुधधनपूगफलागमस्तृतीये भवेद्भागे ॥२॥ स्निग्धद्विजस्य सन्दर्शनं चतुर्थे तथाहिताग्नेश्च। कोणेऽनुजीविभिक्षुप्रदर्शनं कनकलोहाप्तिः ॥३॥ याम्येनाद्ये नृपपुत्रदर्शनं सिद्धिरभिमतस्याप्तिः। परतः स्त्रीधर्माप्तिः सर्षपयवलब्धिरप्युक्ता ॥४॥ कोणाच्चतुर्थखण्डे लब्धिर्द्रव्यस्य पूर्वनष्टस्य। यद्वा तद्वा फलमपि यात्रायां प्राप्नुयाद्याता ॥५॥ यात्रासिद्धिः समदक्षिणेन शिखिमर्हिषकुक्कुटाप्तिश्च। याम्याद् द्वितीयभागे चारणसङ्गः शुभं प्रीतिः ॥६॥ ऊर्ध्वं सिद्धिः कैवर्तसङ्गमोमीनतित्तिराद्याप्तिः। प्रव्रजितदर्शनं तत्परे च पक्वान्नफललब्धिः ॥७॥ नैर्ऋत्यांस्त्रीलाभस्तुरगालङ्कारदूतलेखाप्तिः। परतोऽस्य चर्मतच्छिल्पिदर्शनं चर्ममयलब्धिः ॥८॥ वानरभिक्षुश्रवणावलोकनं नैर्ऋतात्तृतीयांशे। फलकुसुमदन्तघटितागमश्च कोणाच्चतुर्थांशे ॥९॥ वारुण्यामर्णवजातरत्नवैदूर्यमणिमयप्राप्तिः। परतोऽतः शबरव्याधचौरसङ्गः पिशितलब्धिः ॥१०॥ परतोऽपि दर्शन वातरोगिणां चन्दनागुरुप्राप्तिः। आयुधपुस्तकलब्धिस्तद्वृत्तिसमागमश्चोर्ध्वम् ॥११॥ वायव्ये फेनकचामरौर्णिकाप्तिः समेति कायस्थः। मृण्मयलाभोऽन्यस्मिन् वैतालिकडिण्डिभाण्डानाम् ॥ १२ ॥ वायव्याच्च तृतीये मित्रेण समागमो धनप्राप्तिः। वस्त्राश्वाप्तिरतः परमिष्टसुहृत्सम्प्रयोगश्च ॥१३॥ दधितण्डुललाजानां लब्धिरुदग्दर्शनं च विप्रस्य। अर्थाप्तिरनन्तरमुपगच्छति सार्थवाहश्च ॥ १४ ॥ वेश्यावटुदाससमागमः परे शुष्कपुष्पफललब्धिः। अतः परं चित्रकरस्य दर्शनं वस्त्रसम्प्राप्तिः ॥१५॥ ऐशान्यां देवलकोपसङ्गमो धान्यरत्नपशुलब्धिः। प्राक्प्रथमे वस्त्राप्तिः समागमश्चापि बन्धक्या ॥१६॥ रजकेन समायोगो जलजद्रव्यागमश्च परतोऽतः। हस्त्युपजीविसमाजश्चास्माद्धनहस्तिलब्धिश्च ॥१७॥ द्वात्रिंशत्प्रविभक्तं दिक्चक्रं वास्तुबन्धनेऽप्युक्तम्। अरनाभिस्थैरन्तः फलानि नवधा विकल्प्यानि ॥१८॥ नाभिस्थे बंधुसुहृत्समागमस्तुष्टिरुत्तमा भवति। प्रागुक्तपट्टवस्त्रागमस्त्वरे नृपतिसंयोगः ॥१९॥ आग्नेये कौसिकतक्षपरिकर्माश्वसूतसंयोगः। लब्धिश्च तत्कृतानां द्रव्याणामश्वलब्धिर्वा ॥२०॥ नेमीभागं बद्ध्वा नाभीभागं च दक्षिणे योऽरः। धार्मिकजनसंयोगस्तत्र भवेद्धर्मलाभश्च ॥२१॥ उस्राकीडककापालिकागमो नैर्ऋते समुद्दिष्टः। वृषभस्य चात्र लब्धिर्माषकुलत्थाद्यमशनं च ॥२२॥ अपरस्यां दिशि योऽरस्तत्रासक्तिः कृषीवलैर्भवति। सामुद्रद्रव्यसुसारकाचफलमद्यलब्धिश्च ॥२३॥ भारवहतक्षभिक्षुकसन्दर्शनमपि च

वायुदिक्संस्थे । तिलककुसुमस्य लब्धि सनागपुन्नागकुसुमस्य ॥२४॥ कौबेर्यां दिशि शकुनः शान्तायां वित्तलाभमाख्याति । भागवतेन समागममाचष्टे पीतवस्त्रैश्च ॥२५॥ ऐशाने व्रतयुक्ता वनिता सन्दर्शनं समुपयाति । लब्धिश्च परिज्ञेया कृष्णायोवस्त्रघण्टानाम् ॥२६॥ याम्येऽष्टांशे पश्चाद्द्विषट्त्रिसप्ताष्टमेषु मध्यफला । सौम्येन च द्वितीये शेषेष्वतिशोभना यात्रा ॥२७॥ अभ्युन्तरे तु नाम्या शुभफलदा भवति षट्सु चारेषु । वायव्यनैर्ऋतयोरुभयोः क्लेशावहा यात्रा ॥२८॥ शान्तासु दिक्षु फलमिदमुक्तं दीप्तास्वतोऽभिधास्यामि । ऐन्द्रयां भयं नरेन्द्रात् समागमश्चैव शत्रूणाम् ॥२९॥ तदनन्तरदिशि नाशः कनकस्य भयं सुवर्णकाराणाम। अर्थक्षयस्तृतीये कलहः शस्त्रप्रकोपश्च ॥३०॥ अग्निभयं च चतुर्थे भयमाग्नेये च भवति चौरेभ्यः। कोणादपि द्वितीये धनक्षयो नृपसुतविनाशः ॥३१॥ प्रमदागर्भविनाशस्तृतीयभागे भवेच्चतुर्थे च । हैरण्यककारुकयोःप्रध्वंसःशस्त्रकोपश्च ॥३२॥ अथ पञ्चमे नृप भयं मारी मृतदर्शनं च वक्तव्यम् । षष्ठे तु भयं ज्ञेयं गन्धर्वाणां सडोंबानाम् ॥३३॥ धीवरशाकुनिकानां सप्तमभागे भयं भवति दीप्ते । भोजनविघात उक्तो निर्ग्रन्थभयं च तत्परतः ॥३४॥ कलहो नैर्ऋतभागे रक्तस्रावोऽथ शस्त्रकोपश्च । अपराद्ये चर्मकृतं विनश्यते चर्मकारभयम् ॥३५॥ तदनन्तरे परिव्राट्छ्रवणभयं तत्परे त्वनशनभयम् । वृष्टिभयं वारुण्यां स्वतस्कराणां भयं परतः ॥३६॥ वायुग्रस्तविनाशः परे परे शस्त्रपुस्तवार्त्तानाम् । कोणे पुस्तकनाशः परे विषस्तेनवायुभयम् ॥३७॥ परतो वित्तविनाशो मित्रैः सह विग्रहश्च विज्ञेयः । तस्यासन्नेऽश्ववधो भयमपि च पुरोधसः प्रोक्तम् ॥३८॥ गोहरणशस्त्रघातावुदक् परे सार्थघातधननाशौ । आसन्ने च श्वभयं व्रात्यद्विजदासगणिकानाम् ॥३९॥ ऐशानस्यासन्ने चित्राम्बरचित्रकृद्भयं प्रोक्तम् । ऐशाने त्वग्निभयं दूषणमप्युत्तमस्त्रीणाम् ॥४०॥ प्रोक्तस्यैवासन्ने दुःखोत्पत्तिः स्त्रिया विनाशश्च । भयमूर्ध्वं रजकानां विज्ञेयं काच्छिकानां च ॥४१॥ हस्त्यारोहभयं स्याद्द्विरदविनाशश्च मण्डलसमाप्तौ । अभ्यन्तरे तु दीप्ते पत्नीमरणं ध्रुवं पूर्वे ॥४२॥ शस्त्रानलप्रकोपावाग्नेये वाजिमरणशिल्पिभयम् । याम्ये धर्मविनाशः परेऽन्यवस्कन्दचोक्षवधाः ॥४३॥ अपरे तु कर्मिणां भयमथ कोणे चानिले खरोष्ट्रवधः । अत्रैव मनुष्याणां विसूचिकाविषभयं भवति ॥ ४४ ॥ उदगर्थविप्रपीडा दिश्यैशान्यां तु चित्तसन्तापः । ग्रामीणगोपपीडा च तत्र नाभ्यां तथात्मवधः ॥४५॥

(इति सर्वशाकुनेऽन्तरचक्रं नामाध्यायो द्वितीयः)

इति श्रीवराहमीहिरकृतौ बृहत्सं० सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥८७॥

शांता पूर्वदिशामें शकुनि कूजन करे तो राजाके आश्रितका आगमन, पूजा लाभ और मणि रत्न द्रव्यकी प्राप्ति प्रगट करता है ॥१॥ पूर्वदिशाके अनन्तर जो प्रदक्षिण-क्रमसे द्वितीय भाग हो उसमें शकुनि कूजन करे तो सुवर्ण (सोने) का आगमन होता है और मनोकामना सिद्ध होती है, उसके तीसरे भागमें शकुनिका बोलना आयुध. धन और पूगीफलकी प्राप्ति करता है ॥२॥ चौथे भागमें शकुनि कूजन करे तो स्निग्धमूर्ति ब्राह्मण और अग्निहोत्रीका दर्शन होता है. अग्निकोणमें शकुनि बोलता हो तो सेवक आदि और भिक्षुकका दर्शन हो और सुवर्ण व लोहेकी प्राप्ति भी इस शकुनसे होती है ॥३॥ दक्षिण-दिशाके पहले भागमें शकुनि होनेसे राजकुमारका दर्शन, वांञ्छित वस्तुकी प्राप्ति सिद्धि मिलती है, दूसरे भागमें शकुनि हो तो स्त्री और धर्मकी प्राप्ति और सरसों व जौका लाभ कहा है ॥४॥ कोणके चौथे खण्डमें शकुनि शब्द करे तो पहले नष्ट हुए द्रव्यका लाभ यात्राकालमें शब्द करे तो भी थोडा बहुत फल प्राप्त होता है ॥५॥ दिनके समय शकुनि सम दक्षिणमें हो तो यात्राकी सिद्धि और मोर, महिष व कुक्कुटका लाभ होता है, दक्षिणसे दूसरे भागमें शकुनि हो तो चरणसंग, शुभ लाभ और प्रीतिलोभ होता है ॥६॥ ऊपर शकुनि हो तो सिद्धि, कैवर्तका संग और मछली तीतर आदिका लाभ होता है, उससे पीछे हो तो संन्यासीका दर्शन, पका हुआ अन्न या फलका लाभ होता है ॥७॥ नैऋतकोणमें शकुनिका शब्द हो तो स्त्रीकी प्राप्ति और अश्व, अलंकार, दूत और लिखी हुई वस्तुकी प्राप्ति हो. नैऋतके आगले भागमें शकुनि हो तो चर्म, चामरका दर्शन और चमडेके द्रव्योंकी प्राप्ति होती है नैऋतके तीसरे भागमें शकुनिका शब्द सुनाई आवे तो वानर, भिक्षुक और संन्यासीका दर्शन होता है, इस कोणके चौथे भागमें दर्शन हो तो फल, कुसुम और दांतसे बनी हुई वस्तु आवे ॥८॥९॥ पश्चिम दिशामें शकुनिका शब्द हो तो समुद्रसे उत्पन्न हुए रत्न, वैदूर्य और मणिमय द्रव्योंकी प्राप्ति होती है. पश्चिमके अगले भागमें शकुन हो तो भील, व्याध और चोरका संग हो और मांसकी प्राप्ति होवे ॥१०॥ उससे अगले भागमें दर्शन होनेसे वातरोगियोंका दर्शन और चन्दन व अगरकी प्राप्ति होती है. इससे अगले भागमें शकुनिका शब्द हो तो आयुध, पुस्तक वा इन चीजोंके बेचनेवालेका समागम होता है ॥११॥ वायव्य कोणमें शकुनिका शब्द हो तो समुद्रफेन चामर और अनेक वस्त्रोंकी प्राप्ति, कायस्थका समागम होता है. इससे अगले भागमें शकुन हो तो वैतालिक, डिंडि, भाण्ड और द्रव्योंकी प्राप्ति होती है ॥१२॥ वायव्यके तीसरे भागमें शकुनिकी ध्वनि हो तो मित्रसमागम, धनकी प्राप्ति, इससे अगले भागमें शकुनिकी ध्वनि होवे तो वस्त्र और अश्वकी प्राप्ति और श्रेष्ठ, इष्ट, सुहृद् लोगोंके साथ मिलन हो जाता है ॥१३॥ उत्तरदिशामें शकुनिकी ध्वनि हो तो दही, चालव, खीलें और ब्राह्मणका दर्शन होता है, उत्तरके पहले भागमें शकुनिका दर्शन होनेसे अर्थलाभ और बनियेके साथ समागम होता है ॥१४॥ इससे अगले भागमें शकुनिका शब्द होवे

तो वेश्या, ब्राह्मण और दासके साथ समागम व सूखे हुए फूल फलकी प्राप्ति होती है. इससे अगले भागमें शकुनिका दर्शन हो तो चित्रकारका दर्शन और वस्त्रकी प्राप्ति होती है ।।१५।। ईशान कोणमें शकुनिकी ध्वनि हो तो देवलगिरिके साथ मिलन, धान्य, रत्न, पशु और लाभ होता है, पूर्वके प्रथमभागमें शकुनिकी ध्वनि हो तो वस्त्रलाभ और बन्धकी (वेश्या) का समागम होता है ।।१६।। इसके अगले भागमें शकुनिका शब्द हो तो धोबीसे समागम, जससे उन्पन्न हुए द्रव्यका समागम होता है, इससे अगले भागमें शकुनिका शब्द हो तो हाथीसे जीविका करनेवालेके साथ समागम हो और समाज, धन व हस्तीकी प्राप्ति होवे ।।१७।। दिक्चक्रके यह बत्तीस भाग हैं ये वास्तुवन्धनमेंभी कहे हैं, इसके बीचमें आठ अरे और एक नाभि मानकर इनमें हुए शकुनके फल नौ प्रकारसे विचारने योग्य हैं, अब वे फल कहे जाते हैं ।।१८।। नाभिस्थित शकुन होवे तो बन्धु और सुहृद् लोगोंका समागम और उत्तम तुष्टि प्राप्त होती है, पूर्वदिशावाले अरेपर होनेसे लाल रेशमके वस्त्रकी प्राप्ति और राजासे समागम होता है ।।१९।। आग्नेयकोणमें शकुन हो तो जुलाहा, खाती, कारीगर, घोडा और सूतसे संयोग या इन लोगोंके बनाये हुए द्रब्योंका लाभ अथवा अश्वलाभ होता है ।।२०।। चक्रकी परिधि और चक्रके मध्यको जानकर उसमें जो दक्षिण अरा हो उस पर जो शकुन हो तो धार्मिकजनोंसे मिलाप और धर्मका लाभ होता है ।।२१।। नैर्ऋतदिशामें शकुन हो तो गोक्रीडा करनेवाले और कापालिकसे समागम होता है, वृषभका लाभ और उडद, कुलथी आदिका भोजन भी इस शकुनसे मिलता है ।।२२।। पश्चिमदिशाके अरेपर जो शकुन हो तो खेतीहारोंसे समागम हो, समुद्रसे उत्पन्न हुए द्रव्य, सुसार काच, फल और मद्यका लाभ होता है ।।२३।। वायव्यकोणवाले अरेके ऊपर शकुन हो तो भार उठानेवाले खोती व भिक्षुक लोगोंका दर्शन हो और नाग व पुन्नागपुष्पकी प्राप्ति होवे तिलकका पुष्पभी मिले ।।२४।। शान्ता व उत्तरदिशाके अरेपर शकुन हो तो वित्तके लाभको प्रगट करता है और पीतांबर व भगवद्भक्तके समागमको प्रकाश करता है ।।२५।। ईशानकोणके अरेपर शकुन हो तो व्रतवाली स्त्री दिखाई देती है, यह शकुन काला लोहा, वस्त्र और घंटेका लाभभी प्रगट करता है ।।२६।। दक्षिणके अष्टांशमें और पश्चिमके दूसरे, छठे, तीसरे, सातवें या आठवें अष्टमांशमें शकुन हो तो यात्रा मध्यम फलकी देनेवाली है. उत्तरके दूसरे भागमें और बाकी सबमें यात्रा अति शुभ फलके देनेवाली है ।।२७।। नाभिके बीचमें छः अरोंपर शकुन हो तो यात्रा शुभ फलदाई होती है. वायव्य और नैर्ऋत कोणमें अरेके ऊपर शकुन हो तो यात्रा क्लेशकी देनेवाली होती है ।।२८।। यह समस्त फल शान्त दिशाके कहे, अब दीप्तादि दिशाका विषय कहा जायगा. पूर्व दिशा दीप्त हो तो राजासे भय और शत्रुओंसे समागम होता है ।।२९।। पूर्वदिशाके अगले भागमें शकुन हो तो सुवर्ण नाश और स्वर्णकार (सुनार) लोगोंका भय होता है, पूर्वदिशाके तीसरे भागमें शकुन हो तो धनका नाश, क्लेश और

शस्त्रकोप होता है ॥३०॥ पूर्वदिशाके चौथे भागमें शकुन हो तो अग्निभय और अग्नेय-कोणमें चोरसे भय, इसी कोणके दूसरे भागमें शकुन हो तो धनक्षय और राजाके पुत्रका नाश हो जाता है ॥३१॥ आग्नेय कोणके तीसरे भागमें शकुन हो तो स्त्रियोंके गर्भका नाश और चौथे भागमें शकुन होनेसे सुनार व कारीगरका नाश और शस्त्रकोप होता है ॥३२॥ इसकेही पंचम भागमें शकुन हो तो राजासे भय और मारीसे मृतक हुए का दर्शन होगा. छठे भागमें शकुन हो तो डोम और गंधर्वोंका भय जाना जाता है ॥३॥ पूर्वदिशाके सातवें भागमें दीप्त शकुन हो तो धीवर और चिडीमारोंसे भय होता है. आठवें भागमें शकुन होनेसे भोजनका नाश और मूर्खसे भय होता है ॥३४॥ नैर्ऋत कोणमें शकुन हो तो क्लेश, रुधिरका स्राव और शस्त्रकोप, पश्चिमदिशामें शकुन हो तो चर्मसे बनी वस्तुका नाश हो और चमारसे भय हो ॥३५॥ पश्चिमदिशाके दूसरे भागमें शकुन हो तो संन्यासी और बौद्ध भिक्षुकसे भय होवे, तीसरे भागमें शकुन हो तो उपवासका भय, पश्चिमदिशामें दीप्त शकुन हो तो वृष्टिभय और उससे अगले भागमें शकुन हो तो कुत्ते और तस्करोंका भय होता है ॥३६॥ तिससे अगली दिशामें शकुन हो तो वायुसे ग्रसे हुए लोगोंका नाश और उससे अगले भागमें हो तो शस्त्र, पुस्तक और दूतोंका नाश होता है. वायुकोणमें दीप्त शकुन हो तो पुस्तकका नाश और उसके अगले भागमें शकुन हो तो विष, चोर और वायुसे उत्पन्न हुआ भय उत्पन्न होता है ॥३७॥ उससे अगले भागमें शकुन हो तो धनका नाश होता है. मित्रोंसे लडाई (झगडेका होना) जानना चाहिये इससे दूसरे भागमें शकुन हो तो अश्ववध और पुरोहितका भय प्रकट करता है ॥३८॥ उत्तरदिशामें दीप्त शकुन हो तो गोहरण और शस्त्रका प्रहार होता है. तिससे अगले भागमें शकुन होनेसे व्यापारका घात, धनका नाश होता है. उसके समीप भागमें शकुन होनेसे व्रात्य (संस्काररहीन) ब्राह्मण, दास और रंडियोंके कुत्तेसे भय होता है ॥३९॥ ईशानकोणके समीपमें शकुन हो तो चित्र, अम्बर और चित्रकृद भय होता हैं, इशानकोणमें दीप्त शकुन हो तो अग्निभय और उत्तम स्त्रियोंका दूषण होना कहा है ॥४०॥ इस दिशाके समीप ही अगले भागमें शकुन हो तो दुःखकी उत्पत्ति और स्त्रीका नाश होता है. इससे अगले भागमें शकुन हो तो धोबी और काछीसे भय जाने ॥४१॥ दिक्चक्रकी समाप्तिपर शकुन होनेसे हाथीके ऊपर चढनेका भय और हाथीका नाश होता है. मध्यमें पूर्वके अरेपर दीप्त शकुन होनेसे निश्चय स्त्रीका मरण होता है ॥४२॥ आग्नेय-दिशाके मध्य दीप्त शकुन होनेसे शस्त्र और अग्निका कोप, घोडेका मरण व कारीगरोंका भय होता है. दक्षिणमें धर्मका नाश और इसमें अगले भागमें शकुन हो तो अग्नि, अवस्कन्द और धूर्तसे मृत्यु होवे ॥४३॥ पश्चिम दिशाके अरेपर शकुन हो तो कारीगरोंको भय, वायुकोणमें गधे व ऊंटोंका वध और इसमें मनुष्योंको विसूचिका और विषसे भय होता है ॥४४॥ उत्तरदिशामें दीप्त शकुन हो तो धनका नाश, ब्राह्मणोंको पीडा और ईशान-कोणमें चित्तको संताप होता है. नाभिपर दीप्त शकुन होनेसे ग्रामीण, गोपगणोंको पीडा और यात्रा करनेवालेकी मृत्यु होती है ॥४५॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहिताया पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥८७॥

अथाष्टाशीतितमोऽध्यायः

शाकुने–शकुनरुतम्.

शामाश्येनशशघ्नवंजुलशिखिश्रीकर्णचक्राह्वयाश्चाषाण्डीरकखञ्जरीटकशुकध्वांक्षाः कपोतास्त्रयः। भारद्वाजकुलालकुक्कुटखरा हारीतगृध्रौ कपिः फेण्टः कुक्कुटपूर्णकूटकाश्चोक्ता दिवासञ्चराः ॥१॥ लोमाशिका पिङ्गलछिप्पिकाख्यौ वल्गुल्युलूकौ शशकश्च रात्रौ। सर्वे स्वकालोत्क्रमचारिणः स्युर्देशस्य नाशाय नृपांस्तदा वा ॥ २ ॥ हयनरभुजगोष्ट्रद्वीपिसिंहर्क्षगोधावृकनकुलकुरङ्गश्वाजगोव्याघ्रहंसाः। पृषतमृगभृगालश्वाविदाख्यान्यपुष्टा द्युनिशमपि बिडालः सारसः सूकरश्च ॥३॥ भषकूटपूरिकरबककरायिकाः पूर्णकूटसंज्ञाः स्युः। नामान्युलूकचेटयाः पिङ्गलिका पेचिका हक्का ॥४॥ कपोतकी च श्यामा वंजुलकः कीर्त्यते खदिरचंचुः। छुच्छुन्दरी नृपसुता बालेयो गर्दभः प्रोक्तः ॥५॥ स्रोतस्तडागभेद्येकपुत्रकः कलहकारिका च रला। भृङ्गारवच्च वाशति निशि भूमौ द्व्यंगुलशरीरा ॥६॥ दुर्बलिको भाण्डीकः प्राच्यानां दक्षिणः प्रशस्तोऽसौ। छिक्कारो मृगजातिः कृकवाकुः कुक्कुटप्रोक्तः ॥७॥ गर्ताकुक्कुटकस्य प्रथितं तु कुलालकुक्कुटो नाम। गृहगोधिकेति संज्ञा विज्ञेया कुड्यमत्स्यस्य ॥८॥ दिव्यो धन्वन उक्तः क्रोडः स्यात्सूकरोऽथ गौरुस्रा। श्वा सारमेय उक्तो जात्या चटिका च सूकरिका ॥९॥ एवं देशे देशे तद्विद्भ्यः समुपलभ्य नामानि। शकुनरुतज्ञानार्थं शास्त्रे सञ्चिन्त्य योज्यानि ॥१०॥ वंजुलकरुतं तित्तिडितिदीप्तमथ किल्किलीति तत्पूर्णम्। श्येनशुकगृध्रकङ्काः प्रकृतेरन्यस्वरा दीप्ताः ॥११॥ यानासनशय्यानिलयनं कपोतस्य पद्मविशनं वा। अशुभप्रदं नराणां जातिविभेदेन कालोऽन्यः ॥१२॥ आपाण्डुरस्य वर्षाच्चित्रकपोतस्य चैव षण्मासात्। कुंकुमधूम्रस्य फलं सद्यः पाकं कपोतस्य ॥१३॥ चिचिदिति शब्दः पूर्णः श्यामायाः शूलिशूलेति च धन्यः। चच्चेति च दीप्तः स्यात्स्वप्रिययोगाय चिक्चिगिति ॥१४॥ हारीतस्य तु शब्दो गुग्गुः पूर्णोऽपरे प्रदीप्ताः स्युः। स्वरवैचित्र्यं सर्वं भारद्वाज्याः शुभं प्रोक्तम् ॥१५॥ किष्किषिशब्दः पूर्णः करायिकायाः शुभः कहकहेति। क्षेमाय केवलं करकरेति न त्वर्थसिद्धिकरः ॥१६॥ कोटुक्लीति च क्षेम्यः स्वरः कटुक्लीति वृष्टये तस्याः। अफलः कोटिकिलीति च दिप्तः खलु गुंकृतः शब्दः ॥१७॥ शस्तं वामे दर्शनं दिव्यकस्य सिद्धिर्ज्ञेया हस्तमात्रोच्छ्रितस्य। तस्मिन्नेव प्रोन्नतस्थे शरीराद्धात्री वश्यं सागरान्ताभ्युपैति ॥१८॥ फणिनोऽभिमुखागमोऽरिसङ्गं कथयति बन्धवधात्ययं च यातुः। अथवा समुपैति सव्यभागान् न स सिद्ध्यै कुशलो गमागमेच ॥१९॥ अब्जेषु मूर्धसु च वाजिगजोरगाणां राज्यप्रदः कुशलकृच्छुचिशाद्वलेषु। भस्मास्थिकाष्ठतुषकेशतृणेषु दुःखं वृष्टः करोति खलु खञ्जनको-

ऽब्दमेकम् ॥२०॥ किलिकिलिकिलितित्तिरिस्वनः शान्तः शस्तफलोऽन्यथापरः । शशको निशि वामपार्श्वगो वाशञ्छस्तफलो निगद्यते ॥२१॥ किलिकिलिविरुतं कपेः प्रदीप्तं न शुभफलप्रदमुद्दिशन्ति यातुः । शुभमपि कथयन्ति चुग्लशब्दं कपिसदृशं च कुलालकुक्कुटस्य ॥२२॥ पूर्णाननः कृमिपतङ्गपिपीलिकाद्यैश्चाषः प्रदक्षिणमुपैति नरस्य यस्य । स्वे स्वस्तिकं यदि करोत्यथवा यियासोस्तस्यार्थलाभमचिरात् सुमहत्करोति ॥२३॥ चाषस्य काकेन विरुध्यतश्चेत् पराजयो दक्षिणभागगस्य । वधः प्रयातस्य तदा नरस्य विपर्यये तस्य जयः प्रदिष्टः ॥२४॥ केकेति पूर्णकुटवद्यदि वामपार्श्वे चाषः करोति विरुतं जयकृत्तदा स्यात् । क्रक्रेति तस्य विरुतं न शिवाय दीप्तं सन्दर्शनं शुभदमस्य सदैव यातुः ॥२५॥ अण्डीरकष्टीति रुतेन पूर्णष्टिट्टिट्टिशब्देन तु दीप्त उक्तः । फेण्टः शुभो दक्षिणभागसंस्थो न वाशिते तस्य कृतो विशेषः ॥२६॥ श्रीकर्णरुतं तु दक्षिणे क्वक्वक्केति शुभं प्रकीर्तितम् । मध्यं खलु चिक्चिकेति यच्छेषं सर्वमुशन्ति निष्फलम् ॥२७॥ दुर्बलेरपि चिरिलुचिरिल्विति प्रोक्तमिष्टफलदं हि वामतः । वामतश्च यदि दक्षिणं व्रजेत् कार्यसिद्धिमचिरेण यच्छति ॥२८॥ चिक्चिकिवाशितमेव तु कृत्वा दक्षिणभागमुपैत च वामात् । क्षेमकृदेव न साधयतेऽर्थात् व्यत्ययगो वधबन्धभयाय ॥२९॥ क्रक्रेति च सारिका द्रुतं त्रेत्रे वाप्यभया विरौति या । सा वक्ति यियासतोऽचिराद्गात्रेभ्यः क्षतजस्य विस्रुतिम् ॥ ३० ॥ फेण्टकस्य वामतश्चिरिल्विति स्वनः । शोभनो निगद्यते प्रदीप्त उच्यतेऽपरः ॥३१॥ श्रेष्ठं स्वरं स्थास्नुमुशन्ति वाममोङ्कारशब्देन हितं च यातुः । अतः परं गर्दभनादितं यत् सर्वाश्रयं तत्प्रवदन्ति दीप्तम् ॥३२॥ आकाररावी समृगः कुरङ्गः ओकाररावी पृषतश्च पूर्णः । येऽन्ये स्वरास्ते कथिताः प्रदीप्ताः पूर्णाः शुभाः पापफलाः प्रदीप्ताः ॥३३॥ भीता रुवन्ति कुकुकुक्विति ताम्रचूडास्त्यक्त्वा रुतानि भयदान्यपराणि रात्रौ । स्वस्थैः स्वभावविरुतानि निशावसाने ताराणि राष्ट्रपुरपार्थिववृद्धिदानि ॥३४॥ नानाविधानि विरुतानि हि छिप्पिकायास्तस्याः शुभाः कुलुकुलुनं शुभास्तु शेषाः । यातुर्बिडालविरुतं न शुभं सदैव गोस्तु क्षुतं मरणमेव करोति यातुः ॥३५॥ हुंहुंगुग्लुगिति प्रियामभिलषन् क्रोशत्युलूको मुदा पूर्ण स्याद्गुरुलु प्रदीप्तमपि च ज्ञेयं सदा क्स्किसि । विज्ञेयः कलहो यदा बलबलं तस्याः सकृद्वाशित दोषायैव टटट्टटेति न शुभाः शेषाश्च दीप्ताः स्वराः ॥३६॥ सारसकूजितमिष्टफलं स्यात्तद्युगपद्विरुतं मिथुनस्य । एकरुतं न शुभं यदि वा स्यादेकरुते प्रतिरौति चिरेण ॥३७॥ चिरिल्विरिल्विति स्वनैः शुभं करोति पिङ्गला । अतोऽपरे तु ये स्वराः प्रदीप्तसंज्ञितास्तु ते

॥३८॥ इशिविरुतं गमनप्रतिषेधि कुशुकुशु चेत् कलहं प्रकरोति । अभिमतकार्यगतिं च यथा सा कथयति तं च विधिं कथयामि ॥३९॥ दिनान्तसन्ध्यासमये निवासमागम्य तस्याः प्रयतश्च वृक्षम् । देवान् समभ्यर्च्य पितामहादीन् नवाम्बरैस्तं च तरुं सुगन्धैः ॥४०॥ एको निशीथेऽनलदिक्स्थितश्च दिव्येतरैस्तांशपथैर्नियोज्य । पृच्छेद्यथा-चिन्तितमर्थमेवमनेन मन्त्रेण यथा शृणोति ॥४१॥ विद्धि भद्रे मया यत्त्वमिममर्थं प्रचोदिता । कल्याणि सर्वसचसां वेदित्री त्वं प्रकीर्त्यसे ॥४२॥ आपृच्छेऽद्य गमिष्यामि वेदितश्च पुनस्त्वहम् । प्रातरागम्य पृच्छे त्वामाग्नेयीं दिशमाश्रितः ॥४३॥ प्रचोदयाम्यहं यत्त्वा तन्मे व्याख्यातुमर्हसि। स्ववेष्टितेन कल्याणि यथा वेद्मि निराकुलम् ॥४४॥ इत्येवमुक्ते तरुमूर्धगायाश्चिरिल्विरिल्वीति रुतेऽर्थसिद्धिः । अत्याकुलत्वं दिशिकारशब्दे कुचाकुचेत्येवमुदाहृते वा ॥४५॥ अवाक्प्रदाने विहितार्थसिद्धिः पूर्वोक्तदिक्चक्रफलैरथान्यत् । वाच्यं फलं चोत्तममध्यनीचशाखास्थितायां वरमध्यनीच्यम् ॥४६॥ दिङ्मण्डलेऽभ्यन्तरबाह्यभागे फलानि विद्याद्गृहगोधिकायाः । छुच्छुन्दरी चिच्चिडिति प्रदीप्ता पूर्णा तु सा तित्तिडिति स्वनेन ॥४७॥ (इति सर्वशाकुने शकुनरुताध्यायस्तृतीयः)

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

श्यामा, बाझ, शशघ्न, वंजुल, मोर, श्रीकर्ण, चकवा, नीलकंठ, अंडीरक, खञ्जन तोता, काक, तीन प्रकारके कपोत, भारद्वाज, कुलाल, मुर्गा, गधा, हरेवा, गिद्ध, बंदर फेंटपक्षी, कुक्कुट, करायिका और चटका, यह सब जीव दिनके चरनेवाले अर्थात् घूमनेवाले कहलाते हैं ॥१॥ लोमडी, पिंगल, छिप्पिका पक्षी, बागल, उल्लू और शशक यह सब जीव रात्रिमें घूमते हैं. जो शकुन अपने कालको लांघकर घूमें तो देशके नाशका कारण होता है या उस समय राजाओंका नाश होता है ॥२॥ घोडा, मनुष्य, सर्प, ऊंट चीता, सिंह, रीछ, गोह, भेडिया, नेवला, हरिण, कुत्ता, बकरा, गौ, व्याघ्र, हंस, पृषत, मृग, गीदड, सेही, कोकिल, बिडाल, सारस और शूकर यह जीव दिनरात विचरण करते हैं अर्थात् यह उभयचर हैं ॥३॥ भष, कूबपूरि, करबक और करायिका इन जीवोंकी पूर्णकूट संज्ञा है और उल्लू, कोचरी, पिंगलिका, पेचिका और हक्का नामसे कहे जाते हैं ॥४॥ कपोतकी श्यामा नामसे और वंजुलपक्षी खदिरचंचुके नामसे पुकारा जाता है, छुच्छंदरको नृपसुता और गधेको बालेय कहते हैं ॥ ५ ॥ तडागभेदी स्रोतको एकपुत्रक और कलहकारिकाको रला कहते हैं; रलाका शरीर दो अंगुलका होता है, रातमें पृथ्वीपर यह भृंगारके समान शब्द करती है ॥६॥ पूर्वदेशवालोंके मतसे दुर्बलिका भाण्डीक नाम है, इसका दाहिने आना शुभ होता है, छिक्करके शब्दसे मृगजाति और कृकवाकु कुक्कुट जाती कही जाती है ॥७॥ गर्ताकुक्कुटका नाम कुलालकुक्कुट है. गृहगोधिकाके नामसे

कुडयमत्स्य (छिपकली) को समझना चाहिये ॥८॥ क्रोड, दिव्य और धन्वन यह शूकरके नाम हैं, उस्रा कहनेसे गौको समझना चाहिये, कूकरको सारमेय और चटकजाति शूकरिका कहलाती है ॥९॥ इस प्रकार देशके रक्खे हुए नाम शकुनोंको जानकर शकुनोंका शब्द जाननेके लिये भली भांतिसे सोच विचारकर शास्त्रमें मिलावे ॥ १० ॥ वंजुलका दीप्त-शब्द 'तित्तिड' है, परंतु 'किल्किली' शब्द उसका पूर्ण स्वर है, बाज तोता, गिद्ध और कंक इनका शब्द स्वभावसे विपरीत होनेपर दीप्त कहा जाता है ॥ ११ ॥ कबूतरका वाहन, आसन, विस्तर, घरपर बैठना या घरमें प्रवेश करना मनुष्योंके लिये शुभदायी है, जाति-भेदके हेतुसे कालका और प्रकार भी बताया जाता है ॥१२॥ कुछ श्वेत रंगके कबूतरका फल एक वर्षमें, अनेक रंगके चित्तकबरे कबूतरका फल छः मासमें और कुंकुम रंगके धूम्रवर्ण कबूतरका फल शीघ्र होता है ॥१३॥ श्यामाका 'चिचित्' शब्द पूर्ण है. 'शूलि-शुल' शब्द धन्य है, 'चच्च' शब्द दीप्त है. और 'चिकचिक' शब्द अपने प्यारेसे मिलनेका कारण होता है ॥१४॥ हारीतका 'गुग्गु' शब्द पूर्ण है और दूसरे शब्द दीप्त होते हैं भारद्वाज पक्षीका सब प्रकार विचित्रस्वर शुभकारी कहा जाता है ॥१५॥ करायिकाका 'किषकिषि' शब्द पूर्ण और 'कहकह' शब्द शुभकारी और 'करकर' शब्द केवल कल्याणका कारण है, कार्यको सिद्ध नहीं करता ॥१६॥ इसका 'कोटुक्ली' शब्द क्षेमकारी और 'कटुक्ली' शब्द वृष्टिका कारण होता हैं 'कोटिकिली' शब्द विफल और 'गुकृत' शब्द दीप्त होता है ॥१७॥ बाईं ओर दिव्यकका दर्शन श्रेष्ठ होता है, परंतु वह दिव्यक एक हाथ ऊंचा उठा हो तो कार्यको सिद्ध जानना चाहिये. उसी वाम भागमें यात्रा करनेवालेसे भली एक हाथ ऊंचा दिव्यक होवे तो समुद्रतक पृथ्वी यात्रा करनेवालेके वशमें हो जाती है ॥१८॥ सन्मुख सर्पका आना यात्राकारीके लिये शत्रुसे समागम जनाता है, बंधन, वध और नाशको भी प्रकट करता है. अथवा वह सर्प बाईं ओर आवे तो यात्रा कुशल-कारी और सिद्धकारी नहीं होती ॥१९॥ अश्व, हस्ती और सर्पोंके मस्तकपर पद्मका चिह्न शुभकारी है और शुचिशाद्वल (पवित्र श्यामल सस्यभरे खेत) में बैठा हुआ खंजन-पक्षी राज्य देनेवाला और कुशलकारी होता है और भस्म हड्डी, काष्ठ, तुष, बाल और तृणोंपर खंजन बैठा हो तो दुष्ट होकर एक वर्षतक दुःख देता है ॥२०॥ तीतरपक्षीका 'किलिकिल्किली' शांत स्वर कल्याणका देनेवाला है और शशकरात्रिके समय बाईं ओर आकर शब्द करे तो कल्याणकारी कहा जाता है ॥२१॥ वानरका 'किलिकिलि' शब्द दीप्त है, यह यात्राकारीको शुभफल नहीं जनाता. परंतु कुलालकुक्कुटका वानरके समान अर्थात् दीप्त 'चुग्ल' शब्द शुभफल प्रगट करता है ॥२२॥ कीडे, पतंग या चींटी आदिको जो चोंचमें पकडे हो ऐसा नीलकंठ पक्षी जो मनुष्यकी प्रदक्षिणा करे या आकाशमें स्वस्तिक करे तो उस यात्राकी इच्छा करनेवाले मनुष्यको शीघ्र बहुतसे धनका लाभ होता है ॥२३॥ जो कागके साथ लडते २ दक्षिणभागमें गये हुए नीलकंठकी हार होवे तो वह हार उस

समय यात्रा करनेवाले मनुष्यका वध प्रगट करता है, इससे विपरीत हो तो यात्राकारीकी जय होती है ॥२४॥ जो नीलकंठ बाईं ओर पूर्णकुटवत् 'केका' शब्द करे तो जयदायी होता है, परंतु उसकी 'क्रक्र'ध्वनि जो दीप्त वह मंगलदायी नहीं है, तथापि उसका दर्शन सदाही यात्राकारीके लिये शुभदायी है ॥२५॥ अण्डीरक 'टि' शब्दसे पूर्ण और 'टिट्टिट्टि' शब्द करनेसे दीप्त कहा जाता है. फेन्ट (शृगाल) दाईं ओर होवे तो शुभ-दायी होता है, उसके शब्द करनेसे कोई विशेष फल नहीं होता ॥२६॥ यात्राकारीके दाहिने श्रीकर्णका 'क्व क्व क्व' शब्द शुभकारी माना जाता है, 'चिक्चिकि' शब्द मध्यम फली है. इस पक्षीके और सब शब्द निष्फल कहे हैं ॥२७॥ यात्राकारीके बाईं ओर भाण्डीक 'चिरिलु चिरुलु' शब्द करे तो इष्ट फलका देनेवाला कहा है. जो बाईं ओरसे दाईं ओर गमन करे तो शीघ्र कार्यकी सिद्धि होती है ॥२८॥ भांडीक 'चिक्चिकि' शब्द करके बायें भागसे दाहिने भागमें गमन करे तो क्षेमकारी होती है. परंतु कार्यकी सिद्धि नहीं करता. इससे विपरीत होनेपर वध, बंध और भयका कारण होता है ॥२९॥ जो मैना शीघ्र 'क्रक्र' शब्द या 'त्रेत्रे' करती है उसका नाम अभया है. वह मैना यह प्रगट करती है कि यात्रा करनेवालेके शरीरसे शीघ्र रुधिर निकलेगा ॥३०॥ बाईं ओरसे 'चिरुलु इरिलु' ऐसा फेंटका शब्द शुभकारी कहा है और दूसरे शब्द दीप्त कहाते हैं ॥३१॥ बाईं ओर स्थित हुआ गधेका शब्द यात्राकारीकी श्रेष्ठकामना करता है, ओंकार शब्दसे यात्रा करनेवालेका हित होता है. इसके सिवाय गधेके और सब प्रकारके शब्द दीप्त कहे जाते हैं ॥३२॥ कुरंग (मृग) 'आ' कार शब्द करे, और पृषतमृग 'ओ' कार शब्द करे तो पूर्ण शब्द है इसके सिवाय और शब्द दीप्त हैं, समस्त पूर्ण शब्द शुभफलदायी और दीप्त पापफलदायी होता है ॥३३॥ अरुणशिखा (मुरगे) भय पाकर 'कुकु-कुकु' शब्द किया करते हैं, रात्रिकालमें इस शब्दको छोडकर और समस्त शब्द भयदायी हैं, जो रात्रि बीतनेके समय स्वस्थ होकर कुक्कुट स्वाभाविक शब्द करे तो राष्ट्र, पुर और पृथ्वीकी वृद्धि होती है ॥३४॥ छिप्पिकाका शब्द अनेक प्रकारक होता है. उनमें 'कुलुकुलु' शब्दही शुभकारी है, किन्तु और शब्द शुभकारी नहीं है. बिल्लीके समस्त शब्द यात्रा करने वालेके लिये शुभकारी नहीं है. गोजातिका छींक शब्द यात्रा करनेवालेके मरणको सूचित करता है ॥३५॥ उल्लु प्रियाका अभिलाष करके आनंदके साथ 'हुंहुंगुग्लुक्' शब्द करता है. यह इसका पूर्ण शब्द है 'गुरुलु' शब्द और 'किस्किसि' शब्द सदा प्रदीप्त है, जब एकवार उसका 'बलबल' शब्द हो तब क्लेशको जानना चाहिये. 'टट्टाटा' शब्द दोषकारी है. बाकी सब शब्द दीप्त हैं और शुभदायी नहीं हैं ॥३६॥ सारसका जोडा जो एक साथ ही शब्द करे वह शब्द इष्टफलदायक होता है. एक का शब्द अशुभ है, जो एकके शब्द करनेपर बिलम्बमें प्रतिध्वनि हो तो भी शुभकारी नहीं है ॥ ३७ ॥ पिङ्गला 'चिरिलु इरिलु' शब्द करके शुभ प्रकाश करती है, इसके सिवाय और सब शब्दोंकी प्रदीप्त

संज्ञा है ॥३८॥ पिंगलाका 'इसी' शब्द गमनको रोकता है. "कुशुकुशु' शब्द क्लेश करता है. वह पिंगलिका जिस प्रकारसे अभिमत कार्यकी प्राप्तिको प्रकाश करती है, उस विधिको कहते हैं ॥३९॥ दिन बीतनेपर सांझके समय पवित्र होकर पिङ्गलाके निवासवृक्षके समीप जाय ब्रह्मादि देवताओंकी और उस वृक्षकी नये वस्त्र और सुगंधि द्रव्योंसे भली भांति पूजा करे ॥४०॥ फिर अर्द्धरात्रिके समय अकेला उस वृक्षके अग्निकोणमें खडा होकर देवतासंबंधी और लौकिक शपथ पिंगलाको दे इस मंत्रको पढकर अपना मनोरथ पिंगलासे पूछे. मंत्र ऐसे शब्दसे पढे जिससे पिंगला उसको सुन ले. मंत्र यह है ॥४१॥ "हे भद्रे ! मुझ करके जो कहा गया, तिसका जैसा अर्थ हो सो कहो. क्योंकि हे कल्याणि ! तुम सब वाक्योंके अर्थको जाननेवाली कही जाती हो परंतु आज मैं पूंछकर जाऊंगा प्रातः कालमें फिर आके अग्निकोणमें आश्रित होकर पूछूंगा, प्रश्नसे तुमको जो कुछ कहा, मेरे निकट अपनी चेष्टा करके इस प्रकारसे व्याख्या करना कि मैं आकुलरहित भावसे उसको जान सकूं" ॥४२॥४३॥४४॥ वृक्षके ऊपर बैठी हुई पिंगलासे ऐसा कहनेपर जो वह पिंगला 'चिरिलु इरिलु' शब्द करे तो कार्य होता है. या 'कुचाकुच' 'दिशिकार' शब्द उच्चारण करे तो अत्यंत व्याकुलता होती है ॥४५॥ वाग्दान न करे अर्थात् कुछ शब्द न करे तो अभीष्ट कार्य सिद्ध होता है. फिर पहले कहे हुए दिक्चक्रसे उसका फल निरूपण करे उत्तम, मध्यम और नीच शाखापर बैठी हुई पिंगलाका अन्यरूप उत्तम, मध्यम और नीच फल कहा जा सकता है ॥४६॥ दिक्चक्रके दिङ्मण्डलके भीतर और बाहरमें छपकलीक फल होता है. छछून्दरका 'चिच्चिड' शब्द प्रदीप्त और 'तित्तिड' पूर्ण कहा जाता है ॥४७॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां वृहत्सं० पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायामष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥८८॥

अथैकोननवतितमोऽध्यायः

शाकुने-श्वचक्रम्

नृतुरगकरिकुम्भपर्याणसक्षीरवृक्षेष्टकासञ्चयच्छत्रशय्यासनोलूखलानि ध्वजं चामरं शाद्वलं पुष्पितं वा प्रदेशं यदा श्वावमूत्र्याग्रतो याति यातुस्तदा कार्यसिद्धि-र्भवेदार्द्रके गोमये मिष्टभोज्यागमः शुष्कसम्मूत्रणे शुष्कमन्नं गुडो मोदकावाप्तिरेवा-थवा । अथ विषतरुकण्टकीकाष्ठपाषाणशुष्कद्रुमास्थिश्मशानानि मूत्र्यावहत्याथवा यायिनोऽग्रेसरोऽनिष्टमाख्याति शय्याकुलालादिभाण्डान्यभुक्तान्यभिरन्नानि वा मूत्रयन् कन्यकादोषकृद् भुज्यमानानि चेद्दुष्टतां तद्गृहिण्यास्तथा स्यादुपानत्फलं गोस्तु सम्मूत्रणे वर्णजः सङ्करः । गमनमुखमुपानहं सम्प्रगृह्योपतिष्ठेद्यदा स्यात्तदा सिद्धये मांसपूर्णाननेऽर्थाप्तिरार्द्रेण चास्थ्ना शुभं साग्न्यलातेन शुष्केण चास्थ्ना गृही-तेन मृत्युः प्रशान्तोल्मुकेनाभिघातोऽथ पुंसः शिरोहस्तपादादिवक्त्रे भुवो ह्यागमो वस्त्रचीरादिभिर्व्यापदः केचिदाहुः सवस्त्रे शुभम् । प्रविशति तु गृहं सशुष्कास्थिवक्त्रे

प्रधानस्य तस्मिन् वधः श्रृंखलाशीर्णवल्लीवरत्रादि वा बन्धनं चोपगृह्योपतिष्ठेद्यदा स्यात्तदा बन्धनं लेढि पादौ विधुन्वन् स्वकर्णावुपर्याक्रमंश्चापि विघ्नाय यातुर्विरोधे विरोधस्तथा स्वाङ्गकण्डूयने स्यात् स्वपंश्चोर्ध्वपादः सदा दोषकृत् ॥१॥ सूर्योदयेऽर्काभिमुखो विरौति ग्रामस्य मध्ये यदि सारमेयः। एको यदा वा बहवः समेताः शंसन्ति देशाधिपमन्यमाशु ॥२॥ सूर्योन्मुखः श्वानलदिक्स्थितश्च चौरानलत्रासकरोऽचिरेण। मन्याह्नकालेऽनलमृत्युशंसी सशोणितः स्यात्कलहोऽपराह्णे॥३॥ रुवन्दिनेशाभिमुखोऽस्तकाले कृषीवलानां भयमाशु धत्ते। प्रदोषकालेऽनिलदिङ्मुखस्तु धत्ते भयं मारुततस्करोत्थम् ॥४॥ उदङ्मुखश्चापि निशार्धकाले विप्रव्यथां गोहरणं च शास्ति। निशावसाने शिवदिङ्मुखश्च कन्याभिदूषानलगर्भपातान् ॥ ५ ॥ उच्चैःस्वाराः स्युस्तृणकूटसंस्थाः प्रासाद-वेश्मोत्तमसंस्थिता वा। वर्षासु वृष्टिं कथयन्ति तीव्रामन्यत्र मृत्युं दहनं रुजश्च ॥६॥ प्रावृट्कालेऽवग्रहेऽम्भोऽवगाह्य प्रत्यावृत्ते रेचकैश्चाप्यभीक्ष्णम्। आधुन्वन्तो वा पिवन्तश्च तोयं वृष्टिं कुर्वन्त्यन्तरे द्वादशाहात् ॥७॥ द्वारे शिरो न्यस्य बहिः शरीरं रोरूयते श्वा गृहिणीं विलोक्य ॥ रोगप्रदः स्यादथ मन्दिरान्तर्बहिर्मुखः शंसति बन्धकीं ताम् ॥८॥ कुड्यमुत्किरति वेश्मनो यदा तत्र खानकभयं भवेत्तदा। गोष्ठमुत्किरति गोग्रहं वदेद्धान्यलब्धिमपि धान्यभूमिषु ॥९॥ एकेनाक्ष्णा साश्रुणा दीनदृष्टिर्मन्दाहारी दुःखकृत्तद्गृहस्य। गोभिः सार्धं क्रीडमाणः सुभिक्षं क्षेमारोग्यं चाभिधत्ते मुदं च ॥१०॥ वामं जिघ्रेज्जानु वित्तागमाय स्त्रीभिः साकं विग्रहो दक्षिणं चेत्। ऊरुं वामं चेन्द्रियार्थोपभोगाः सव्यं जिघ्रे दिष्टमित्रैर्विरोधः ॥११॥ पादौ जिघ्रेद्यायिनश्चेदयात्रां प्राहार्थाप्तिं वाञ्छितां नीश्चलस्य। स्थानस्थस्योपानहौ चेद्विजिघ्रेत क्षिप्रं यात्रां सारमेयः करोति ॥१२॥ उभयोरपि जिघ्रणे हि वाह्वोर्विज्ञेसो रिपुचौरसम्प्रयोगः। अथ भस्मनि गोपयीत भक्षान् मांसास्थीनि च शीघ्रमग्निकोपः ॥१३॥ ग्रामे भषित्वा च बहिः श्मशाने भषन्ति चेदुत्तमपुंविनाशः। यियासतश्चाभिमुखो विरौति यदा तदा श्वा निरुणद्धि यात्राम् ॥१४॥ उकारवर्णेन रुतेऽर्थसिद्धिरोकारवर्णेन च वामपार्श्वे। व्याक्षेपमौकाररुतेन विद्यान्निषेधकृत सर्वरुतैश्च पश्चात् ॥१५॥ शंखेतिचोच्चैश्च मुहुर्मुहुर्ये रुवन्ति दण्डैरिव ताड्यमानाः। श्वानोऽभिधावन्ति च मण्डलेन ते शून्यतां मृत्युभयं च कुर्युः ॥१६॥ प्रकाश्य दन्तान्यदि लेढि सृक्किणी तदाशनं मिष्टमुशन्ति तद्विदः। यदाननं चावलिहेन्न सृक्किणी प्रवृत्तभोज्येऽपितदान्नविघ्नकृत् ॥१७॥ ग्रामस्य मध्ये यदि वा पुरस्य भषन्ति संहत्य मुहुर्मुहुर्ये। क्लेशमाख्यान्ति तदीश्वरस्य श्वारण्यसंस्थो मृगवद्विचिन्त्यः ॥१८॥ वृक्षोपगे क्रोशति तोयपातः स्यादिन्कीले सचिवस्य पीडा। वायोगृहे सस्यभयं गृहान्तः पीडा पुरस्यैव च गोपुरस्थे ॥१९॥ भयं शय्यासु तदीश्वराणांयाने भवन्तो भय दाश्च पश्चात्। अथापसव्या

जनसन्निवेशे भयं भषन्तः कथयन्त्यरीणाम् ॥२०॥ (इति सर्वशाकुने श्वचक्रं नामाध्यायश्चतुर्थः)

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामेकोननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

मनुष्य, अश्व, हस्ती, घडा, घोडे आदिकी छई, दुधारे वृक्ष, ईंटोंका ढेर, छत्र, शेज, आसन, उलूखल, ध्वज, चामर, शाद्वल (नाजका खेत) या फूलवाली जगहमें जब कुत्ते मूत्रत्याग करके आगे जाँय, तब गमनकारीके कार्यकी सिद्धि होती है अथवा इसी समय गीले गोबरके ऊपर मूत्रत्याग करके चलें तो मीठा भोजन मिलता है. सूखी वस्तुके ऊपर मूत्रत्याग करके यात्रा करनेवालेके आगे श्वान चले तो गुड और लड्डूकी प्राप्ति होती है. जो कुत्ता विषतरु (कुचला आदि) कांटेदार वृक्ष, काठ, पत्थर, सूखा हुआ वृक्ष, हड्डी और स्मशान इनपर मूत्र त्यागे और फिर लौटकर यात्राकारीके आगे चले तो यात्राकारी मनुष्यका अनिष्ट प्रगट करता है और जो नई व अभिन्न शय्या या कुम्हारके बर्त्तनपर मूत्र त्याग करे तो कन्याको दूषित करता है. जो यह शय्यादि व्यवहार की हुई तो यात्रा करनेवाली घरवालीको दोष होता है. खडाऊंका फल भी इस भांडफलके समान है. गोजातिके ऊपर कुत्ता मूत्र करके यात्रा करनेवालेके आगे चले तो वर्ण संकरकी उत्पत्ति करता है. जब कुत्ता जूतेको भली भांतिसे ग्रहण करके यात्रा करनेवालेके सामने आता है, तब यात्राकारीको कार्यकी सिद्धि प्राप्त होती है. मांस मुखमें लेकर सन्मुख आवे तो धनकी प्राप्ति और हड्डी लेकर सन्मुख आनेसे शुभ होता है. जलती लकडी और सूखी हड्डी ग्रहण करके सन्मुख आवे तो यात्राकारीकी मृत्यु होती है, जो कुत्ता पुरुषका मस्तक, हस्त, पांव और शांत यानी बुझा हुआ कोयला मुखमें लेकर आवे तो पृथ्वीका लाभ होता है और वस्त्र चीरादि मुखमें लेकर आवे तो मृत्यु प्रगट करता है. परंतु कोई २ कहते हैं कि वस्त्र लेकर कुत्तेका आना शुभ है. सूखी हड्डी मुखमें लेकर जो कुत्ता घरमें प्रवेश करे तो घरके प्रधान पुरुषकी मृत्यु होती है, जब जंजीर, कुछेक गीली वेल, हाथीके बांधनेकी रस्सी या बंधन ग्रहण करके कुत्ता गृहमें आवे तो बंधन होता है. यात्रा के समय यात्रीका पांव चाटे, कान फटफटावे, ऊपर दौडे तो यात्रा करनेवालेको विघ्न होता है, शरीर खुजाना यात्राका विरोध करे; ऊपरको पांव करके सोवे तो सदा दोषकारी होता है ॥१॥ एक या अधिक कुत्ते इकट्ठे होकर गाँवके बीचमें सूर्योदयके समय सूर्यकी ओर मुख करके रोवें तो शीघ्रही उस गांवका दूसरा जिमीनदार होता है ॥२॥ सूर्यकी ओर मुख करके अग्निकोणमें श्वान रोवें तो शीघ्रही अग्नि और चोरोंका त्रास होता है. मध्याह्नके समय सूर्यकी ओरको मुख करके श्वानका रोना अग्निभय और मृत्युभय प्रगट करता है. मध्याह्नके पीछे सूर्यकी ओरको कुत्तेको रोनेसे वह क्लेश होता है जिसमें रुधिर बहाता है ॥३॥ सूर्यास्तमें सूर्यकी ओरकी मुख करके श्वान रोवे तो किसानोंको शीघ्र भय सूचित करता है, प्रदोषकालमें वायुकोणमें श्वान सूर्यकी ओरको मुख करके रोवे तो वायु और चोरोंसे भय उत्पन्न होता है ॥४॥ आधी रातमें उत्तरकी ओर मुख करके श्वान शब्द करे तो ब्राह्मणोंको पीडा और गोहरणकी प्रार्थना करता है. रात्रिके अंतमें ईशानकोणकी ओर मुख करके श्वान रोवे तो कन्याको दूषण, अनल और गर्भका गिरना

प्रगट करता है ॥५॥ जो कुत्ता वर्षाकालके समय तिनकोंके बने छप्परादि वा उत्तम प्रासाद और गृहमें स्थित होकर ऊंचे स्वरसे शब्द करे तो तीव्र वृष्टि प्रगट करता है ॥६॥ प्रावृट्कालमें अनावृष्टि होनेपर कुत्ता जो जलमें स्नान कर लौटता हुआ जलको रेचन करे अथवा कुछ कांपता रहकर जलपान सूचित करे तो १२ दिन पीछे जल वर्षता है. यहां लौटना शब्द करवटका बदलना सूचित करता है ॥७॥ द्वारमें मस्तक और बाहिरे शरीर रखकर घरकी मालकिनको देखकर जो कुत्ता वारंवार शब्द करे तो रोग-दाई होता है, मंदिरके भीतर रहकर बाहर मुख करके शब्द करे तो मालकिनको वंध्या करनेकी प्रार्थना करता है ॥८॥ जब घरकी दीवारको छिपाईको श्वान खोदे तो उसमें खननकारीको भय होता है गौओंके रहनेके स्थानको खोदे तो गायकी चोरी होती है और उस जगहको खोदे कि जहां धान्य होते हैं तो धान्यके लाभको प्रकाश करता है ॥९॥ जो कुत्तेकी एक आंख अश्रुपूर्ण और कम दृष्टिवाले हो और जो वह कुत्ता थोडा भोजन करे तो वह घरको दुःखकारी होता है, गौओंके साथ श्वानका खेलना सुभिक्ष, क्षेम, आरोग्य और आनंद प्रकाश करता है ॥१०॥ कुत्ता बाईं जांघको सूघे तो धनका लाभ, दाहिनी जांघको सूंघे तो स्त्रियोंके साथ विग्रह, बाईं ऊरुको सूंघे तो इन्द्रियोंके लिये उपभोग और दाहिने ऊरुके सूंघनेसे अभीष्ट मित्रोंके साथ विरोध होता है ॥११॥ जो कुत्ता यात्रा करनेवालेके दोनों पांवोंको सूघे तो अयात्रा होती है और न चलते हुए पुरुषके पांवको श्वान सूंघे तो वांछित अर्थकी प्राप्तिको प्रगट करता है और आसनके ऊपर बैठे हुएकी जूतियोंको सूंघे तो शीघ्र यात्राको प्रकाश करता है ॥१२॥ दोनों बाहोंको वारंवारका सूंघना शत्रु और चोरभयको प्रकाश करता है. इसके उपरांत कुत्ता भस्ममें मांस, हड्डी खानेकी चीजें छिपावे तो शीघ्र अग्निके कोपको प्रकाशित करता है ॥१३॥ पहले गांवमें शब्द करके फिर बाहर या श्मशानमें कुत्ता शब्द करे तो वहांके उत्तम पुरुष-का नाश होता है. जब यात्रा करनेवालेके सन्मुख कुत्ता शब्द करे तो यात्राको रोकता है ॥१४॥ उकारवर्णवाले शब्दसे और बाईं ओर ओकार वर्णवाले शब्दका होना अर्थ सिद्धि औकार शब्दसे विलम्ब और पीछे किये हुए सब प्रकारके शब्दोंसे निषेध प्रकार करता है ॥१५॥ जो समस्त कुत्ते मानो दण्ड करके ताडित हो शंखके शब्दके समान वारंवार ऊंचा शब्द करें और गोल बांधकर दौडें वे शून्यता, मृत्यु भयको प्रगट करते हैं ॥१६॥ जो कुत्ता दांत निकाले, अधरप्रान्तोंको चाटे तो उसके फलको जाननेवाले मीठे भोजनकी आशा करते हैं, अधरप्रान्तोंके सिवाय मुखको भी चाटे, तब भोजनमें प्रवृत्त होनेपर भी अन्न विघ्नकारी हो जाता है ॥१७॥ जो गांव या नगरमें कुत्ते मिलकर वारं-वार शब्द करे तो नगर या गांव के प्रभुका कष्ट प्रगट करते हैं. बनैले कुत्ते मृगके समान होनेसे विचारने योग्य नहीं हैं ॥१८॥ वृक्षके निकट श्वान के भोंकनेसे वर्षा होती है, इन्द्रकीलके निकट भोंकनेसे मंत्रीको पीडा, गृहवायुकोणमें (अर्थात् वायुदिशामें) भोंकने-से सस्यभय होता है, नगरके द्वारपर भोंकनेसे पुरवासियोंको पीडा होती है ॥१९॥ शय्याके ऊपर कुत्ता भोंके तो उसके अधिकारियोंको भय होता है. सवारीमें स्थित होकर शब्द करनेसे भय, मनुष्योंके समीप बाईं ओर होकर शब्द करे तो शत्रुओंका भय प्रकाश करता है ॥२०॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचे० बृहत्सं० पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायामेकोननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

अथ नवतितमोऽध्यायः

शाकुने–शिवारुतम्

श्वभिः शृगालाः सदृशाः फलेन विशेष एषां शिशिरे मदाप्तिः । हूहूरुतान्ते परतश्च टाटा पूर्णः स्वरोऽन्ये कथिताः प्रदीप्ताः ॥१॥ लोमाशिकायाः खलु कक्क-शब्दःपूर्णः स्वभावप्रभवः स तस्याः । येऽन्ये स्वरास्ते प्रकृतेरपेताः सर्वे च दीप्ता इति सम्प्रदिष्टाः ॥२॥ पूर्वोदीच्योः शिवा शस्ता शान्ता सर्वत्र पूजिता । धूमिताभि-मुखी हन्ति स्वरदीप्ता दीगीश्वरान् ॥३॥ सर्वदिक्ष्वशुभा दीप्ता विशेषेणाह्न्य-शोभना । पुरे सैन्येऽपसव्या च कष्टा सूर्योन्मुखी शिवा ॥४॥ याहीत्यग्निभयं शास्ति टाटेति मृतवेदिका । धिग्धिग्दुष्कृतमाचष्टे सज्वाला देशनाशिनी ॥५॥ नैव दारुण-तामेके सज्वालायाः प्रचक्षते । अर्काद्यनलवत्तस्या वक्त्रं लालास्वभावतः ॥६॥ अन्यप्रतिरुता याम्या सोद्बन्धमृतशंसिनी । वारुण्यनुरुता सैव शंसते सलिले मृतिम् ॥७॥ अक्षोभः श्रवणं चेष्टं धनप्राप्तिः प्रियागमः । क्षोभः प्रधानभेदश्च वाहनानां च सम्पदः ॥८॥ फलमासप्तमादेतदग्राह्यं परतो रुतम् । याम्यायां तद्विपर्यस्तं फलं षट्पञ्चमादृते ॥९॥ या रोमाश्चं मनुष्याणां शकृन्मूत्रं च वाजिनाम् । रावा-त्त्रासं च जनयेत्सा शिवा न शिवप्रदा ॥१०॥ मौनं गता प्रतिरुते नरद्विरदवाजिनाम् । या शिवा सा शिवं सैन्ये पुरे वा सम्प्रयच्छति ॥११॥ भेभेति शिवा भयङ्करी भोभो व्यापदमादिशेच्च सा । मृतिबन्धनिवेदिनी फिफ हूहू चात्महिता शिवा स्वरे ॥१२॥ शान्ता त्ववर्णात्परमौ रुवन्ती टाटामुदीर्णामिति वाश्यमाना । टेटे च पूर्व थेथे तस्या स्वतुष्टिप्रभवं रुतं तत् ॥१३॥ उच्चैर्घोरं वर्णमुच्चार्य पूर्वं पश्चात्क्रोशेत्क्रोष्टुः कस्यानुरूपम् । या सा क्षेमं प्राह वित्तस्य चाप्ति संयोगं वा प्रोषितेन प्रियेण ॥१४॥-(इति सर्वशाकुने शिवारुतं नाम पञ्चमोऽध्यायः)

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

फलमें गीदड कुत्तेके समान है, विशेषता यह है कि शिशिर कालमें इनको मदकी प्राप्ति होती है, हूहू शब्दके पीछे 'टाटा' शब्द उनका पूर्ण शब्द है व और समस्त स्वर प्रदीप्त कहे जाते हैं ॥१॥ लोमाशिका (शृगाली–लोमडी) का 'कक्क' शब्द पूर्ण है और यही शब्द उसका स्वाभाविक शब्द है और जो शब्द स्वभावके विरुद्ध हैं, वे समस्त शब्दही दीप्त कहे जाते हैं ! पूर्व और उत्तर दिशामें स्थित हुई शृगालियें कल्याणकारी हैं. शांता-भी सर्वत्र पूजिता है, धूमिता दिशाके सन्मुख होकर शृगाली दीप्तस्वर करे तो दिशाओंके

स्वामियोंका नाश होता है ॥२॥ ॥ ३ ॥ सर्व दिशाओंमें दीप्त स्वर अशुभकारी है, विशेष करके दिनमें अशुभकारी होता है और सेनाके पीछे और नगरमें दक्षिणमें स्थित सूर्यकी ओरको मुखवाली गीदडी कष्टदायी होती है ॥ ४ ॥ शिवागण "याहि" ऐसा शब्द करें तो अग्निभय, 'टाटा' शब्द करनेसे मृतकको सूचित करती है 'धिकधिक' शब्द पापकारी है और अग्निकी लपट जिस शिवाके मुखसे निकलती है वह शिवा देशका नाश करती है ॥५॥ कोई २ पंडित कहते हैं कि ज्वालायुक्त शिवाकी दारुणता नहीं दिखाई देती, क्योंकि लालाके योगसे उसका मुख स्वभावसेही सूर्यादि या अग्निके समान दीप्यमान रहता है ॥ ६ ॥ जो शिवा दक्षिण दिशामें और शिवा करके अनुशब्दित (पहले कोई और शिवा शब्द करे) होकर शब्द करे तो फांसीसे मृत्युका सूचि करती है इस प्रकार पश्चिम दिशामें करे तो बन्धु आदिकी जलमें मृत्यु प्रकाश करती है ॥७॥ अक्षोभ, इष्ट-श्रवण, धनप्राप्ति, प्रियागम क्षोभ, प्रधानोंसे भेद (द्वेष) और वाहनोंका सम्पद् यह समस्त फल रात्रिके सप्तम अर्ध प्रहरसे होते हैं. परंतु छठ और पांचवेंके सिवाय दक्षिण दिशामें समस्त फल विपरीत होते हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥ शिवाके जिस शब्दसे मनुष्योंको रोमांच हो और आपही घोडे लीद और मूत्र कर रहें, उनको त्रास उत्पन्न करें तो वह शिवा मङ्गलदायी नहीं है ॥१०॥ मनुष्य, हस्ती और घोडेके प्रतिशब्द करनेपर जो बोलती हुई शिवा बंद हो जाय तो वह, शिवा सेना और पुरमें भली भांतीसे मंगलदान करती है ॥११॥ 'भेभा शब्द करनेसे शिवा भयङ्करी होती है. 'भोभो' शब्द करनेसे मृत्यु प्रगट करती है, 'फिफ शब्द कर तो वह शिवा मृत्यु और बंधनको प्रकाश करती है हूहू, शब्द करनेसे हित करती है ॥१२॥ परंतु शान्ता दिशामें स्थित हुई शिवा अवर्णके पीछे 'औ' शब्द करते करते फिर 'टाटा' शब्द उच्चारण और 'टेटे' फिर 'येथे' उच्चारण करे तो ये शब्द उसकी प्रसन्नताके हैं, यह शब्द शुभ हैं ॥१३॥ जो शिवा पहले ऊंचा घोर वर्ण (अक्षर) उच्चारण करके फिर शृगालके समान शब्द करे तो वह शिवा क्षेम, धन-प्राप्ति और परदेश ये प्रियजनका समागम प्रकाश करती है ॥१४॥

इति श्रीबराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायांनवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

अथैकनवतितमोऽध्यायः

शाकुने–मृगचेष्टितम्.

सीमागता वन्यमृगा रुवन्तः स्थिता व्रजन्तोऽथ समापतन्तः । सम्प्रत्यतीतैष्य-भयानि दीप्ताः कुर्वन्ति शून्यं परितो भ्रमन्तः ॥१॥ ते ग्राम्यसत्त्वैरनुवाश्यमाना भयाय रोधाय भवन्ति वन्यैः । द्वाभ्यामपि प्रत्यनुवाशितास्ते बन्दिग्रहायैव मृगा भवन्ति ॥२॥ वन्ये सत्त्वे द्वारसंस्थे पुरस्य रोधो वाच्यः सम्प्रविष्टे विनाशः । सूते मृत्युः स्याद्भयं संस्थिते च गेहं याते बन्धनं सम्प्रदिष्टम् ॥ ३ ॥ (इति सर्वशाकुने मृगचेष्टितं नाम षष्ठोऽध्यायः)

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायामेकनवतितमोऽध्यायः ॥९१॥

जो बनैले मृग ग्रामकी सीमा (हद) में आय शब्द करें या भ्रमण करते हुए टिके रहें अथवा भली भांतिसे चारों ओर दौडें तो भूत, भविष्यत् और वर्तमान समयका भय प्रकाशित करते हैं. और दीप्त शब्द युक्त होकर चारों ओर भ्रमण करें तो उस जगहको शून्य कर देते हैं ॥१॥ उन मृगोंके पीछे ग्रामके जीव शब्द करें तो भयका कारण होता है. जो वनके जीव ग्रामके जीवोंके पीछे शब्द करें तो शत्रुसे नगरादि घिर जाते हैं. बनैले और ग्राम्य दोनोंही जीव एक दूसरेकी पीछे शब्द करें तो उस नगरके मनुष्योंको शत्रु बन्दी करके ले जावें ॥२॥ बनैला जीव द्वारपर आनकर खडा हो तो नगरको शत्रु घेरें बनैला जीव भली भांतिसे घरके भीतर प्रवेश कर आवे तो पुरका नाश हो, गृहमें बनैला जीव ब्यावे तो मृत्यु हो, घरमें रहे तो भय और घरमें आनेसे गृहके स्वामीका बन्धन होता है ॥३॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य– पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायामेकनवतितमोऽध्यायः ॥९१॥

अथ द्वानवतितमोऽध्यायः

शाकुने–गवेङ्गितम्.

गावो दीनाःपार्थिवस्याशिवाय पादैर्भूमिं कुट्टयन्त्यश्च रोगान् । मृत्युंकुर्वन्त्यश्रुपूर्णायताक्ष्यः पत्युर्भीतास्तस्करानारुवन्त्यः ॥१॥ अकारणे क्रोशति चेदनर्थो भयाय रात्रौ वृषभः शिवाय । भृशंनिरुद्धा यदि मक्षिकाभिस्तदाशु वृष्टिं सरमात्मजैर्वा ॥२॥ आगच्छन्त्यो वेश्म बम्भारवेण संसेवन्त्यो गोष्ठवृद्ध्यै गवां गाः । आर्द्राङ्ग्यो वा हृष्टरोमण्यः प्रहृष्टा धन्या गावः स्युर्महिष्योऽपि चैवम् ॥३॥ (इति सर्वशाकुने गवेङ्गितं नाम सप्तमोऽध्यायः

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां द्वानवतितमोऽध्यायः ॥९२॥

जो गायें दीन हो तो वह राजाके अमंगल करनेका कारण होती हैं. गायें अपने पांवोंसे भूमिको कुरेदें तो रोग होता है. नेत्रोंमें आंसू भर रहे हों तो मृत्यु और भीत- होकर बडा शब्द करें तो तस्करोंसे भय प्रगट करती हैं ॥१॥ रात्रिमें गौका विना कारण शब्द करना भयका कारण होता है, परंतु बैल का शब्द मंगलकारी है. जो गायोंको मक्खियें या कुत्तोंके बच्चे बहुत ही घेरें तो शीघ्र वर्षा होती है ॥२॥ आती हुई गायें रम्भाशब्द करते २ अनेक गायोंके साथ घरमें आवें तो गोठकी वृद्धिका कारण होता है गायोंके अंग जलसे भीग रहे हों अथवा रोमाञ्च हो रहा हो तो वे गायें शुभ और हर्षित कही जाती हैं ऐसी भैंसे भी फलदायक हैं ॥३॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य– पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां द्वानवतितमोऽध्यायः ॥९२॥

अथ त्रिनवतितमोऽध्यायः

शाकुने–अश्वचेष्टितम्

उत्सर्गं न शुभदमासनापरस्थं वामे च ज्वलनमतोऽपरं प्रशंस्तम् । सर्वाङ्ग-ज्वलनमवृद्धिदं हयानां द्वे वर्षे दहनकणाश्च धूपनं वा ॥१॥ अन्तःपुरं नाशमुपैति मेढ्रे कोशः क्षयं यात्युदरे प्रदीप्ते । पायौ च पुच्छे च पराजयः स्याद्वक्त्रोत्तमाङ्गज्वलने जयश्च ॥२॥ स्कन्धासनांसज्वलनं जयाय बन्धाय पादज्वलनं प्रदिष्टम् ललाट-वक्षोऽभिभुजेष धूमः पराभवाय ज्वलनं जयाय ॥३॥ नासापुटप्रोथशिरोऽश्रुपात-नेत्रेषु रात्रौ ज्वलनं जयाय । पालाशताम्रासितकर्बुराणां नित्यं शुकाभस्य सितस्य चेष्टम् ॥४॥ प्रद्वेषो यवसाम्भवसां प्रपतनं स्वेदो निमित्ताद्विना कम्पो वा वदनाच्च रक्तपतनं धूमस्य वा सम्भवः । अस्वप्नश्च विरोधिता निशि दिवा निद्रालसध्यान-तासादोऽधोमुखता विचेष्टितमिदं नेष्टं स्मृतं वाजिनाम् ॥५॥ आरोहणमन्यवाजिनां पर्याणादियुतस्य वाजिनः । उपवाह्यतुरङ्गमस्य वा कल्यस्यैव विपन्न शोभना ॥६॥ क्रौञ्चवद्रिपुवधाय हेषितं ग्रीवया त्वचलया च सोन्मुखम् । स्निग्धमुच्चमनुनादि हृष्टवद् ग्रासरुद्धवदनैश्च वाजिभि ॥७॥ पूर्णपात्रदधिविप्रदेवता गन्धपुष्पफल-काञ्चनादि वा । दिव्यमिष्टमथवापरं भवेद्धेषतां यदि समीपतो जयः ॥८॥ भक्ष-पानखलिनाभिनन्दिनः पत्युरौपयिकनन्दिनोऽथवा । सव्यपार्श्वगतष्टयोथवा वाञ्छि-तार्थफलदास्तुरङ्गमाः ॥९॥ वामैश्च पादैभिताडयन्तो महीं प्रवासाय भवन्ति भर्तुः । सन्ध्यासु दीप्तामवलोकयन्तो हेषन्ति चेद्वन्धपराजयाय ॥१०॥ अतीव हेषन्ति किरन्ति बालान् निद्रारताश्च प्रवदन्ति यात्राम् । रोमत्यजो दीनखरस्वराश्च पांसून् ग्रसन्तश्च भयाय दृष्टाः ॥११॥ समुद्रवद्दक्षिणपार्श्वशायिनः पदं समुत्क्षिप्य च दक्षिणं स्थिताः । जयाय शेषेष्वपि वाहनेष्विदं फलं यथासम्भवमादिशेद्बुधः ॥१२॥ आरोहति क्षितिपतौ विनयोपपन्नो यात्रानुगोऽन्यतुरगं प्रति हेषते चावक्त्रेण वा स्पृशति दक्षिणमात्मपार्श्वं योऽश्वः स भर्तुरचिरात्प्रचिनोति लक्ष्मीम् ॥१३॥ मुहुर्मुहुर्मूत्रशकृत करोति न ताड्यमानोऽप्यनुलोमयायी । अकार्यभीतोऽश्रुविलोच-नश्च शुभं न भर्तुस्तुरगोऽभिधत्ते ॥१४॥ उक्तमिदं हयचेष्टितमत ऊर्ध्वं दन्तिनां प्रवक्ष्यामि । तेषां तु दन्तकम्पनभङ्गम्लानादिचेष्टाभिः ॥१५॥ (इति सर्वशाकुने अश्वचेष्टितं नामाध्यायोऽष्टमः)

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥९३॥

घोडोंके उत्सर्ग (विष्ठा) से ज्वलन (ज्योतिके साथ धुएँका निकलना) घोडेके आसनके पश्चिमभागमें और वामभागमें हो तो अशुभ है और जगह हो तो शुभ है, घोडोंके सब अंगोंमें ज्वलनका होना घोडोंकी बृद्धिका कारण नहीं होता. दो वर्ष तक घोडोंके

शरीरसे अग्निके कण या धुआं निकले तो भी क्षय करता है ॥१॥ अश्वका लिंग प्रदीप्त हो तो अंतःपुरका नाश, पेटके प्रदीप्त होनेसे राजाके खजानेका नाश, गुदा और पूंछके प्रदीप्त होनेसे पराजय होती है. घोडेका मुख और शिर प्रदीप्त हो तो राजाकी जय होती है ॥२॥ घोडेके स्कन्ध, आसन और अंस (स्कन्धोंके नीचे) में ज्वलन हो तो राजाको जय प्राप्त होती है. पावमें ज्वलनका होना स्वामीके बंधनका कारण है. छाती माथा, नेत्र और दोनों भुजाओंमें धूम होनेसे पराभवदायी और ज्वलन होनेसे जयदाई होता है ॥३॥ रात्रिके समय घोडेके नथने, प्रोथ, मस्तक, अश्रुपात (नेत्रोंके कोये) और नेत्रमें ज्वलनका होना जयका कारण है और पलाशवर्ण, ताम्रवर्ण, कृष्णवर्ण, कपूरवर्ण, तोतेके रंगका और श्वेतवर्ण ऐसे रंगवाले अश्वोंकी चेष्टा सदा जयदाई होती है ॥४॥ घोडोंका घास और पानीसे भली भांति द्वेष, विना कारणही पसीनेका आनागिरना और कांपना, मुखसे लोहूका निकलना, धुएंकी उत्पत्तिका होना, रात्रिमें अनिद्रा और विरोधता, दिनमें नींदका आलस्य और ध्यान, सुखी और नीचेको मुख रखना ये चेष्टायें इष्टकारी नहीं हैं ॥५॥ कसे हुए घोडेके ऊपर दूसरे घोडेका चढना या गाडीमें जुतनेवाले या सजे हुए निरोग घोडेकी विपत्तिका होना शुभकारी नहीं है ॥६॥ क्रौञ्चपक्षीके समान गरदनको स्थिर रखकर ऊंचे मुख रखे हुए घोडेका हिन हिनाना शत्रुके वधका कारण होता है. घोडोंका वदन ग्रामसे भर जावे, उनका हर्षितके समान स्निग्ध ऊंचा शब्दभी शत्रूके वधका कारण होता है ॥७॥ जो घोडा पूर्णपात्र, दही, विप्र देवता, गंधद्रव्य, पुष्प, फल और कांचनादिक समीप शब्द करे तो जयदाई होता है ॥८॥ भक्ष्य, पीनेके द्रव्य और लगामको प्रसन्न होकर ग्रहण करे अथवा स्वामीको जो भाता हो उसको थोडा आनंदसे ग्रहण करे दक्षिणपार्श्वकी ओर जिनकी दृष्टि हो ऐसे घोडे अभीष्ट फलको देते हैं ॥९॥ बांये पांवसे पृथ्वीको ताडन करनेवाले घोडे स्वामीके परदेश जानेका कारण होते हैं. संध्याकालमें दीप्ता दिशाकी ओर मुख करके घोडे शब्द करें तो स्वामीका बंधन होता है पराजयकाभी कारण होता है ॥१०॥ घोडा बहुत हिनहिनावे, रोमोंको फुलावे और सोवे तो यात्राको सूचित करता है और लोभत्यागकारी गधेके समान दीन शब्द करे और धूरि भक्षण करता हुआ घोडा भयका कारण है ॥११॥ समुद्र (पात्रविशेष) के समान दक्षिणपार्श्वको शयन करने वाला या दाहिने पांव भली भांतिसे उठाकर खडे हुए घोडे स्वामिजयका कारण होते हैं और वाहनोंके संबंधमें भी पंडित लोग यथासंभव यही फल कहते हैं ॥१२॥ राजाके चढनेपर जो घोडा विनयसंपन्न और यात्रानुगत (जिस ओरको यात्रा करनी हो उसी ओरको चले) होकर दूसरे घोडेके शब्दको सुनकर हिनहिनावे या मुखसे अपने दक्षिण पार्श्वको स्पर्श करे, वह घोडा शीघ्र अपने स्वामीको लक्ष्मी इकट्ठी कर देता है ॥१३। विना मारेभी जो घोडा वारंवार मूत्र और लीद कर रहे, टेढा चले, वृथा डरे, नेत्रोंमें उसके आंसू आ जाय तो वह अश्वपालका शुभ प्रकाश नहीं करता ॥१४॥ घोडोंकी चेष्टाका विषय कहा, अब हाथियोंके दांत कांपना, दांत टूटना और मलीनादि चेष्टासे उनके फलाफल कहता हूं ॥१५॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायांपश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥९३॥

अथ चतुर्नवतितमोऽध्यायः

शाकुने–हस्तीङ्गितम्

दन्तस्य मूलपरिधिं द्विरायतं प्रोज्झ्य कल्पयेच्छेषम् । अधिकमनूपचराणां न्यूनं गिरिचारिणां किञ्चित् ॥१॥ श्रीवत्सवर्धमानच्छत्रध्वजचामरानुरूपेषु । छेदे दृष्टेष्वारोग्यविजयधनवृद्धि सौख्यानि ॥२॥ प्रहरणसदृशेषु जयो नन्द्यावर्ते प्रनष्टदेशाप्तिः । लोष्टे तु लब्धपूर्वस्य भवति देशस्य सम्प्राप्तिः ॥३॥ स्त्रीरूपे स्वविनाशो भृङ्गारेऽभ्युत्थिते सुतोत्पत्तिः । कुम्भेन निधिप्राप्तिर्यात्राविघ्नं च दण्डेन ॥४॥ कृकालासकपिभुजङ्गेष्वसुभिक्षव्याधयो रिपुवशत्वम् । गृध्रोलूकध्वांक्षश्येनाकारेषु जनमरकः ॥५॥ पाशेऽथवा कबन्धे नृपमृत्युर्जनविपत्स्रुते रक्तं । कृष्णे श्यावे रूक्षे दुर्गन्धे चाशुभं भवति ॥६॥ शुक्लः समः सुगन्धिः स्निग्धश्च शुभावहो भवेच्छेदः । गलनम्लानफलानि च दन्तस्य समानि भङ्गेन ॥७॥ मूलमध्यदशनाग्रसंस्थिता देवदैत्यमनुजाः क्रमात्ततः । स्फीतमध्य परिपेलवंफलं शीघ्रमध्यचिरकालसम्भवम् ॥८॥ दन्तभङ्गफलमत्र दक्षिणे भूपदेशबलविद्रवप्रदम् । वामतः सुतपुरोहिते भपान् हन्ति साटविकदारनायकान् ॥९॥ आदिशेद्द्वयभङ्गदर्शनात् पार्थिवस्य सकलं कुलक्षयम् । सौम्यलग्नतिथिभादिभिः शुभं वर्धतेऽशुभमतोऽन्यथा भवेत् ॥१०॥ क्षीरवृक्षफलपुष्पपादषेष्वापगातटविघट्टितेन वा । वाममध्यदरभङ्गखण्डनं शत्रुनाशकृदतोऽन्यथापरम् ॥११॥ स्खलितगतिरकस्मात्त्रस्तकर्णोऽतिदीनः स्वसिति मृदु सुदीर्घं न्यस्तहस्तः पृथिव्याम् । द्रुतमुकुलितदृष्टिः स्वप्नशीलो विलोमो भयकृदहितभक्षी नैकशोऽसृक्छकृच्च ॥१२॥ वल्मीकस्थाणुगुल्मक्षुपतरुमथनः स्वेच्छया हृष्टदृष्टिर्यायाद्यात्रानुलोमं त्वरितपदगतिर्वक्रमुन्नाम्य चौच्चैः । कक्षासन्नाहकाले जनयति च मुहुः शीकरं बृंहितं वा तत्कालं वा मदाप्तिर्जयकृदथ रदं वेष्टयन्दक्षिणं वा ॥१३॥ प्रवेशनं वारिणि वारणस्य ग्राहेण नाशाय भवेन्नृपस्य । ग्राहं गृहीत्वोत्तरणं द्विपस्य तोयात् स्थलं वृद्धिकरं नृभर्तुः ॥१४॥ (इति सर्वशाकुने हस्तीङ्गितं नामाध्यायो नवमः)

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्सं० चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥९४॥

हाथीदांतके मूलमें जितने अंगुलका घेरा हो, मूलसे दूने परिमाणमें उतने अंगुल लम्बाईको छोडकर बाकी भागसे समस्त रचना करे परंतु अनूपचर हाथीके लिये इससे कुछ अधिक और पहाडी हाथीके लिये इससे कुछ कम कल्पना करे ॥१॥ हाथीदांतमें काटनेके समय श्रीवत्स, वर्द्धमान (मिट्टीका शिकोरा), छत्र, ध्वज और चमरके समान चिह्न दिखाई देनेसे आरोग्य, विजय, धनकी वृद्धि और सुख होते हैं ॥२॥ शस्त्राकार चिह्न होनेसे जय, नंद्यावर्त्तनामक प्रासादके आकारका चिह्न होनेसे नष्ट हुए देशकी प्राप्ति

और ढेलेके आकारका चिह्न होनेसे पहले प्राप्त देशकी संप्राप्ति होती है ॥३॥ स्त्रीरूप चिह्न होनेसे अपना नाश भृंगार (झारी) के समान चिह्न उठनेसे पुत्रकी उत्पत्ति होती है, घडेका चिह्न होनेसे रत्नकी प्राप्ति और दंडका चिह्न होनेसे यात्रामें विघ्न होता है ॥४॥ गिरगट, वानर या सर्पके समान चिह्न होनेसे दुर्भिक्ष व्याधि और शत्रुके वशमें पडना होता है. गिद्ध, उल्लू, काक और बाजके समान चिह्न होनेसे मनुष्योंमें मरी पडती है ॥५॥ हाथीदांतके काटनेपर पाश या कबंधका चिह्न निकले तो राजाकी मृत्यु, रुधिर निकलनेसे मनुष्योंपर विपत्ति और काला, श्याव (पीला काला मिला हुआ), रूखा और दुर्गन्धयुक्त होनेसे अशुभकारी होता है ॥६॥ छेद दांतका बराबर हो. श्वेत, सुगंधित या स्निग्ध हो तो शुभकारी होता है. हाथीका दांत गल जाय या मलीन हो जाय तो इसका फल दांत फूटनेके समान जानना चाहिये ॥७॥ देवता, दैत्य और मनुष्य क्रमसे हाथीदांतके मूल, मध्य और अग्र (नोक) में रहे हैं. उनके बडे, मध्य और समस्त कोमल फल, शीघ्र मध्य या चिरकाल संभव फल क्रम २ से कहता हूं ॥८॥ अब दंतभंगका फल कहा जाता है. देवता, दैत्य या मनुष्य अंशसे जो दक्षिण भागमें टूट जाय तो राजा, देश और सेनाका विद्रव उत्पन्न होता है. बायें भागमें टूट जाय तो बनचारी और विदारकगणोंके साथ पुत्र पुरोहित और हस्तिपालक (महावत) का वध करता है ॥९॥ दोनों दांत टूट जायँ तो राजाके समस्त कुलक्षयका विषय प्रगट करते हैं और लग्न, तिथि व नक्षत्रादि शुभ हों तो शुभ फल बढाते हैं, और प्रकारका फल देनेसे अशुभ फल हानि करते हैं ॥१०॥ हाथी दांत, दुधारे वृक्ष, फल, फूल और वृक्षके ऊपर या नदीके तटपर विघटित हो बायें दांतका मध्य भाग भग्न या खंडित हो जाय तो शत्रु-नाशकारी होता है. अन्यथा होनेसे विपरीत फल होता है ॥११॥ हाथीकी गति अचानक स्खलित (ठोकर) हो जाय, जिसके कान हिलनेसे बंद हो जायँ, अति दीन होकर पृथ्वी-पर शूंड डाल दे. मृदु (धीरे) और लम्बे स्वांस ले, चकित और मुकुलित दृष्टि होकर निद्रित हो जाय. टेढा चलने लगे, अहित भोजन करे, केवल रक्त या विष्ठा करे तो वह हाथी अपने स्वामीको भय करता है ॥१२॥ हाथी अपनी इच्छासे बमई, स्थाणु (शाखा-हीन वृक्ष), गुल्म, क्षुप (छोटे वृक्ष) और तरु मथन करते २ हर्षित दृष्टि कर मुख ऊंचे नीचे कर शीघ्र गतिसे टेढावेढा चले और हौदा कसनेके समय दिनमें वारंवार जल-बिन्दु उडावे या गर्जे या उसी कालमें मदयुक्त हो जावे, शूंडसे दाहिने दांतको लपेटे तो जयदायी होता है ॥१३॥ हाथीको ग्राह पकडकर जलमें लेकर घुस जावे तो राजाकी मृत्युका कारण होता है और घडियालको ग्रहण करके हाथी जलमेंसे बाहर आ जावे तो राजाकी भूमिवृद्धिका कारण होता है ॥१४॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहि० पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥९४॥

अथ पंचनवतितमोऽध्यायः

शाकुने–काकचरित्रम्

प्राच्यानां दक्षिणतः शुभदः काकः करायिका वामा। विपरीतमन्यदेशेष्ववधिर्लोकप्रसिद्धचैव ॥१४॥ वैशाखे निरुपहते वृक्षे नीडः सुभिक्षशिवदाता। निन्दितकण्टकिशुष्केष्वसुभिक्षभयानि तद्देशे ॥२॥ नीडे प्राक्छाखायां शरदि भवेत्प्रथमवृष्टिरपरस्याम्। याम्योत्तरयोर्मध्या प्रधानवृष्टिस्तरोरुपरि ॥३॥ शिखिदिशि मण्डलवृष्टिर्नैर्ऋत्यां शारदस्य निष्पत्तिः। परिशेषयोःसुभिक्षं मूषकसम्पत्तु वायव्ये ॥४॥ शरदर्भगुल्मवल्लीधान्यप्रासादगेहनिम्नेषु। शून्यो भवति स देशश्चौराना वृष्टरोगार्तः ॥५॥ द्वित्रिचतुःशावत्वं सुभिक्षदं पञ्चभिर्नृपान्यत्वम्। अण्डावकिरणमेकाण्डताप्रसूतिश्च न शिवाय ॥६॥ चौरकवर्णैश्चौराश्चित्रैर्मृत्युः सितैश्च वह्निभयम्। विकलैर्दुर्भिक्षभयं काकानां निर्दिशेच्छिशुभिः ॥७॥ अनिमित्तसंहितैर्ग्रामिमध्यगैः क्षुद्भयं प्रवाशङ्किः। क्रोधश्चक्राकारैरभिघातो वर्गवर्गस्थैः ॥८॥ अभयाश्च तुण्डपक्षैश्चरणविघातैर्जनानभिभवन्तः। कुर्वन्ति शत्रुवृद्धिं निशि विचरन्तो जनविनाशम् ॥९॥ सव्येन खेभ्रमद्भिः स्वभयं विपरीतमण्डलैश्च परात। अत्याकुलं भ्रमद्भिर्वातोद्भ्रामी भवति काकैः ॥१०॥ ऊर्ध्वमुखाश्चलपक्षाःपथि भयदाः क्षुद्भयाय धान्यमुषः। सेनाङ्गस्था युद्धंपरिमोषं चान्यभृतपक्षाः ॥११॥ भस्मास्थिकेशपत्राणि विन्यसन् पतिवधाय शय्यायाम्। मणिकुसुमाद्यवहनने सुतस्यजन्माङ्गनायाश्च ॥ १२ ॥ पूर्णाननेऽर्थलाभःसिकताधान्यार्द्रमृत्कुसुमपूर्वैः। भयदो जनसंवासाद्यदि भाण्डान्यपनयेत्काकः ॥१३॥ वाहनशस्त्रोपानच्छत्रच्छायाङ्गकुट्टने मरणम्। तत्पूजायां पूजा विष्ठाकरणेऽन्नसम्प्राप्तिः ॥१४॥ तद्द्रव्यमुपनयेत्तस्य लब्धिरपहरति चेत्प्रणाशः स्यात्। पीतद्रव्ये कनकं वस्त्रं कार्पासिके सिते रूप्यम् ॥१५॥ सक्षीरार्जुनवञ्जुलकूलद्वयपुलिनगारुवन्तश्च। प्रावृषि वृष्टि दुर्दिनमनृतौ स्नाताश्च पांसुजलैः ॥१६॥ दारुणनादस्तरुकोटरोपगो वायसो महाभयदः। सलिलमवलोक्य विरुवन् वृष्टिकरोऽब्दानुरावी वा ॥१७॥ दीप्तोद्विग्नो विटपे विकुट्टयन्वह्निकृद्वितपक्षः। रक्तद्रव्यं दग्धं तृणकाष्ठं वा गृहे विदधत् ॥१८॥ ऐन्द्र्यादिदिगवलोकी सूर्याभिमुखो रुवन् गृहे गृहिणः ॥ राजभयचोरबन्धनकलहाः स्युः पशुभयं चेति ॥१९॥ शान्तामैन्द्रीमवलोकयन् रुयाद्राजपुरुषमित्राप्तिः। भवति च सुवर्णलब्धिः शाल्यन्नगुडाशनाप्तिश्च ॥२०॥ आग्नेय्यामनलाजीविकयुवति प्रवरधातुलाभश्च। याम्ये माषकुलत्था भोज्यं गान्धर्विकैर्योगः ॥२१॥ नैर्ऋत्यां दूताश्चोपकरणदधितैलपललभोज्याप्तिः। वारुण्यां मांससुरासवधान्यसमुद्ररत्नाप्तिः ॥ २२ ॥ मारुत्यां शस्त्रायुधसरोजवल्लीफलाशनाप्तिश्च। सौम्यायां परमान्नाशनं तुरंगाम्बरप्राप्तिः

।।२३।। ऐशान्यां सम्प्राप्तिर्घृतपूर्णानां भवेदनडुहश्च। एवं फलं गृहपतेर्गृह-पष्ठसमाश्रिते भवति ।।२४।। गमने कर्णसमश्चेत् क्षेमाय न कार्यसिद्धये भवति। अभिमुखमुपैति यातुर्विरुवन्विनिवर्तयेद्यात्राम् ।।२५।। वामे वाशित्वादौ दक्षिणपार्श्वेऽनुवाशते यातुः। अर्थापहारकारी तद्विपरीतोऽर्थसिद्धिकरः ।।२६।। यदि वाम एव विरुयान्मुहुर्मुहुर्यायिनोऽनुलोमगतिः। अर्थस्य भवति सिद्धचै प्राच्यांना दक्षिणश्चैवम् ।।२७।। वामः प्रतिलोमगतिर्वाशन् गमनस्य विघ्नकृद्भवति। तत्रस्थस्यैव फलं कथयति यद्वाञ्छितं गमने ।।२८।। दक्षिणविरुतं कृत्वा वामे विरुयाद्यथेप्सितावाप्तिः। प्रतिवाश्य पुरो यायाद् द्रुतमग्रेऽर्थागमोऽतिमहान् ।।२९।। प्रतिवाश्य पृष्ठतो दक्षिणेन यायाद्द्रुतं क्षतजकर्ता। एकचरणोऽर्कमीक्षन् विरुवंश्च पुरो रुधिरहेतुः ।।३०।। दृष्टवार्कमेकपादस्तुण्डेन लिखेद्यदा स्वपिच्छानि। परतो जनस्य महतो वधमभिधत्ते तदा बलिभुक् ।।३१।। सस्योपेते क्षेत्रे विरुवति शान्ते ससस्यभूलब्धिः। आकुलचेष्टो विरुवन् सीमान्ते क्लेशकृद्यातुः ।।३२।। सुस्निग्धपत्रपल्लवकुसुमफलानम्रसुरभिमधुरेषु। सक्षीराव्रणसुस्थितमनोज्ञवृक्षेषु चार्थकरः।।३३।। निष्पन्नसस्यशाद्वलभवनप्रासादहर्म्यहरितेषु। धान्योच्छ्रयमङ्गल्येषु चैव विरुवन्धनागमदः ।।३४।। गोपुच्छस्थे वल्मीकगेऽथवा दर्शनं भुजङ्गस्य। सद्यो ज्वरो महिषगे विरुवति गुल्मे फलं स्वल्पम् ।।३५।। कार्यस्य व्याघातस्तृणकूटे वामगेऽस्थिसंस्थे वा। ऊर्ध्वाग्निप्लुष्टेऽशनिहते च काके वधो भवति ।।३६।। कण्टकिमिश्रे सौम्ये सिद्धिःकार्यस्य भवति कलहश्च। कण्टकिनि भवति कलहो वल्लीपरिवेष्टिते बन्धः ।।३७।। छिन्नाग्रेऽङ्गच्छेदः कलहः शुष्कद्रुमस्थिते ध्वांक्षे। पुरतश्च पृष्ठतो वा गोमयसंस्थे धनप्राप्तः ।।३८।। मृतपुरुषाङ्गावयवस्थितोऽभिवाशन् करोति मृत्युभयम्। भञ्जन्नस्थि च चञ्च्वा यदि वाशत्यस्थिभङ्गाय ।।३९।। रज्ज्वस्थिकाष्ठकण्टकिनिःसारशिरोरुहानने रुवति। भुजगगदर्ष्ट्रितस्करशस्त्राग्निभयान्यनुक्रमशः ।।४०।। सितकुसुमाशुचिमांसाननेऽर्थसिद्धिर्यथेप्सिताः यातुः। धुन्वन् पक्षावूर्ध्वानने च विघ्नं मुहुः क्वणति ।।४१।। यदि शृंखलां वरत्रां वल्लीं वादाय वाशते बन्धः। पाषाणस्थे च भयं क्लिष्टापूर्वाधिवकयुतिश्च ।।४२।। अन्योऽन्यभक्षसंक्रामिताननेे तुष्टिरुत्तमा भवति। विज्ञेयःस्त्रीलाभो दम्पत्योर्वाशतोर्युगपत् ।।४३।। प्रमदाशिरउपगतपूर्णकुम्भसंस्थेऽङ्गनार्थसम्प्राप्तिः। घटकुट्टने सुतविपद्घटोपहननेऽन्नसम्प्राप्तिः ।।४४।। स्कन्धावारादीनां निवेशसमये रुवंश्चलत्पक्षः। सूचयतेऽन्यस्थानं निश्चलपक्षस्तु भयमात्रम् ।।४५।। प्रविशद्भिः सैन्यादीन् सगृध्रकङ्कैर्विनामिषं ध्वांक्षैः। अविरुद्धैस्तैः प्रीतिर्द्विषतां युद्धं विरुद्धैश्च ।।४६।। वन्धःसूकरसंस्थे पङ्काक्ते सूकरे द्विकेऽर्थाप्तिः। क्षेमं खरोष्ट्रसंस्थे केचित्प्राहुर्वधं तु खरे ।।४७।। वाहनलाभोऽश्वगते विरुवत्यनुयायिनि क्षतजपातः। अन्येऽप्यनुव्रजन्तो यातारं काक-

वह्निहगाः ।।४८।। द्वात्रिंशत्प्रविभक्ते दिक्चक्रे यद्यथा समुद्दिष्टम्। तत्तथा विधेयं गुणदोषफलं यियासूनाम् ।।४९।। का इति काकस्य रुतं स्वनिलयसंस्थस्य निष्फल-प्रोक्तम् । कव इति चात्मप्रीत्यै क इति रुते स्निग्धमित्राप्तिः ।।५०।। कर इति कलहं कुरुकुरु च हर्षमथ कटकटेति दधिभक्तम् । केके विरुतं कुकु वा धनलाभं यायिनः प्राह ।।५१।। खरेखरे पथिकागममाह कखाखेति यायिनो मृत्युम् । गमनप्रतिषेधिक-माखलखल सद्योऽभिवर्षाय ।।५२।। काकेति विघातं काकटीति चाहारदूषणं प्राह । प्रीत्यास्पदं कवकवेति बन्धमेवं कगाकुरिति ।।५३।। करकौ विरुते वर्षं गुडवत्त्रासाय वडिति वस्त्राप्तिः । कलयेति च संयोगः शूद्रस्य ब्राह्मणैः साकम्।।५४।। फडिति फलाप्तिः फलवाहिदर्शनं टडिति प्रहाराः स्युः । स्त्रालाभः स्त्रीतिरुते गडिति गवां पुडिति पुष्पाणाम् ।।५५।। युद्धाय टाकुटाक्विति गुहु वह्निभयं कटेकटे कलहः । टाकुलि चिण्टिचि केकेकेति पुरञ्चेति दोषाय ।।५६।। काकद्वयस्यापि समानमेतत् फलं यदुक्तं रुतचेष्टिताद्यैः । पतत्त्रिणोऽन्येऽपि यथैव काको वन्याः श्ववच्चोप-रिदंष्ट्रिणो ये ।।५७।। स्थलसलिलचराणां व्यत्ययो मेघकाले प्रचुरसलिलवृष्टयै शेषकाले भयाय । मधु भवननिलीनं तत्करोत्याशु शून्यं मरणमपि निलीना मक्षिका मूर्ध्नि नीला ।।५८।। विनिक्षिपन्त्यः सलिलेऽण्डकानिपिपीलिका वृष्टिनिरोधमाहुः। तरुस्थलं वापि नयन्ति निम्नाद्यदा तदा ताः कथयन्ति वृष्टिम् ।।५९।। कार्यं तु मूलशकुनेऽन्तरजे तदह्नि विद्यात् फलं नियतमेवमिमे विचिन्त्याः । प्रारंभयाग-समयेषु तथा प्रवेशे ग्राह्यं क्षुतं न शुभदं क्वचिदप्युशन्ति ।।६०।। शुभं दशापाक-मविघ्नसिद्धि मूलाभिरक्षामथवा सहायान् । इष्टस्य संसिद्धिमनामयत्वं वदन्ति ते मानयितुर्नृपस्य ।।६१।। क्रोशादूर्ध्वं शकुनिविरुतं निष्फलं प्राहुरेके तत्रानिष्टे प्रथमशकुने मानयेत्पञ्च षट् च । प्राणायामान्नृपतिरशुभे षोडशैव द्वितिये प्रत्या-गच्छेत् स्वभवनमतो यद्यनिष्टस्तृतीयः ।।६२।। (इति सर्वशाकुने वायसरुतं नाम दशमोऽध्यायः)

इति श्रीवराहमिहिरकृतौ बृहत्संहितायां पञ्चनवतितमोऽध्यायः ।।९५।।

पूर्वदेशके निवासियोंको कागका दाहिने होना शुभदायी है, वामभागपर होना करा-यिकाका शुभ है. काकका बायें और करायिकाका दाहिने होना शुभ है पूर्वादि दिशाओंकी सीमा लोक प्रसिद्धसे जाने ।।१।। जो वैशाखके मासमें काक उपद्रवहीन वृक्षके ऊपर घोंसला बनावे तो सुभिक्ष और मंगलदायी होता है, परंतु निन्दित और कांटेदार वृक्षपर घोंसला बनावे तो दुर्भिक्षका भय होता है ।।२।। शरत्कालमें कागका घोंसला पूर्व दिशामें स्थित शाखापर बना हो तो पश्चिम दिशामें पहले वर्षा होती है. दक्षिण और उत्तर दिशामें वृक्षके ऊपर घोंसला हो तो प्रधान वृष्टि होती है ।।३।। अग्निकोणमें हो तो मण्डल वृष्टि, नैऋत्य दिशामें हो तो शरत्की खेती अच्छी होती है, शेष दो दिशाओंमें हो तो सुभिक्ष और वायुकोणमें कागका घोंसला हो तो चूहे भी बहुत होते हैं ।।४।। शर, दर्भ,

गुल्म, बल्ली, धान्य, प्रसाद और गुहके नीचेका घोंसला हो तो वह देश चोर अनावृष्टि और पीडित होकर देश शून्य हो जाता है ॥५॥ जो कागके २, ३, या ४ बच्चे हो तो सुभिक्षदायी हैं. परंतु पांच हों तो दूसरे राजाके अधिकारको प्रगट करते है और अंडोका ध्वंस वा एक अंडा प्रसव करें तो मंगलदायी नहीं है ॥६॥ कागके बच्चोंका रंग जो गंधद्रव्यके समान हो तो चोरभय होता है, त्रिवर्णके रंगसे मृत्यु, श्वेतवर्णसे अग्नि, भय और विकलतासे दुर्भिक्षभय होता है ॥७॥ जो काग विना कारण इकटठे हो जाँय बडा शब्द करें तो दुर्भिक्षभय और चक्र बांधकर स्थित हों तो क्रोध और वर्ग २ स्थित हों तो उपद्रव होता है ॥८॥ जो कौवे भयहीन होकर चोंच, पंख और पंजोंसे मनुष्योंको मारे तो शत्रुवृद्धि और रात्रिमें विचरण करनेसे जन विनाश हो जाता है ॥९॥ कौवे आकाशमें उडते हुए दक्षिणभागमें भ्रमण करते २ पश्चिम दिशासे विपरीत-मंडलमें जायँ तो अपनेको भय और अत्यन्त आकुल होकर भ्रमण करें तो वातोद्भ्रमण होता है ॥१०॥ ऊपरको मुख उठाये पंखोंको फटफटाते कौवे अन्नको चुरावें और मार्गमें स्थित रहें तो दुर्भिक्षभयका हेतु और भयदायी होता है, सेनाके अंगोंपर कागका बैठना युद्ध करता है, कोकिलके समान कागोंके पंख अति काले हों तो चोरी होती है ॥११॥ कौवे शय्याके ऊपर भस्म, हड्डी, लेश और पत्र डाले तो पतिके वधका कारण होता है, और मणि कुसुमादि डाले तो पुत्र कन्याका जन्म प्रगट करता है ॥१२॥ रेता, धान्य गीली मिट्टी, फूल, फलादिसे मुख भरकर काक आवे तो धनका लाभ प्रगट करता है और जो काग मनुष्योंके वासस्थानसे कुछ बर्त्तन उठा लावे तो भयदायी होता है ॥१३॥ वाहन, शस्त्र, जूता छत्र, छाया और अंग इनको काक कूटे तो मरण होता है, इनकी पूजा करे तो पूजा होती है और ऊपर वीट करे तो अन्नका लाभ होता है ॥१४॥ जो द्रव्य 'कौवा कहींसे उठाकर ले आवे उसही द्रव्यका लाभ होता है और जो द्रव्य ले जाय उसका नाश होता है, पीन द्रव्यसे सुवर्ण और कपासके बने हुए श्वेत वस्त्रसे चांदीका लाभ होता है या हानि होती है ॥१५॥ दुद्धे वृक्षपर, अर्जुन, वंजुल, नदीके दोनों किनारों और पुलिनमें बैठकर काकगण शब्द करे तो वृष्टि होती है और ऋतुओंमें जलसे धूरीसे या स्नान करे तो दुर्दिन होता है ॥१६॥ वृक्षके कोटरमें बैठकर काग दारुण शब्द करे तो महाभयदायी होता है, जलको अवलोकन करके शब्द करे वा मेघके समान शब्द करे तो वर्षाकारी होता है ॥१७॥ पंखोंको फटफटाता हुआ काग वृक्षपर बैठकर दीप्त और उद्विग्न हो अंगोंको कूटे या लाल वस्तुको घरमें ले आवे या जले हुए तृण काष्ठको रखावे तो अग्निका भय होता है ॥१८॥ गृहस्थोंके गृहमें पूर्वादि दिशाओंमें देखता हुआ सूर्यकी ओर मुख करके काग शब्द करे तो गृहस्वामीको राजभय, चोरभय, बंधन, कलह और पशुजनित भय होता है ॥१९॥ शांता पूर्व दिशाको देखता हुआ जो काग शब्द करे तो राजपुरुषकी प्राप्ति, सुवर्णका लाभ, शालिधान्य, अन्न गुड इनका भोजन प्राप्त होता है ॥२०॥ शांत आग्नेय कोणको देखता हुआ काग बोले तो अग्निसे जीविका करनेवाले सुनार लुहारादि, युवती और उत्तम धातुकी प्राप्ति होती है और दक्षिणदिशाको देखता हुआ काग बोले तो उडद व कुलथीका भोजन और गांधर्विक गानेवालेसे संयोग होता है ॥२१॥ शांत नैर्ऋतकोणको देखता हुआ काग बोले तो दूत, उपकारण, दही, तेल, मांस, और भोजनकी प्राप्ति होती है, पश्चिम दिशामें इस प्रकार शब्द करनेसे

मांस, सुरा, आसव, धान्य और समुद्रके रत्नोंकी प्राप्ति होती है ।।२२।। वायुकोणमें इस प्रकारसे शब्द करे तो शस्त्र, आयुध, कमल, लता, फल और भोजनकी प्राप्ति होती है. शांत उत्तर दिशाको देखता हुआ काग बोले तो पायस भोजन, तुरङ्ग और वस्त्रकी प्राप्ति होती है ।।२३।। शांत ईशानकोणको देखता हुआ काक शब्द करे तो घृतपूर्णपात्र और वृषकी प्राप्ति होती है. जो घरके पृष्ठपर बैठकर काग बोले तो यह समस्त फल घरके स्वामीको होते हैं ।।२४।। यात्रा करनेके समय जो कानके बराबर कौवे उडे तो कल्याणका कारण होता है, परंतु कार्यकी सिद्धि नहीं होती. यात्राकारीके सामने आकर काग किसी प्रकारका शब्द करे तो यात्रासे लौटता है ।।२५।। पहले यात्राकारीके वामपार्श्वमें शब्द करके फिर दक्षिण भागमें काक शब्द करे तो धनको हरता है. इससे उलटा होवे तो धनकी प्राप्ति होती है ।।२६।। जो काग यात्रा करनेवालेके वामभागमें शब्द करते २ वारंवार अनुलोम गतिसे गमन करे तो धनकी प्राप्ति होती है, पूर्वदिशाके निवासियोंका दक्षिणमेंही इस प्रकारका फल होता है ।।२७।। काग शब्द करता हुआ बाई दिशामें स्थित हो प्रतिलोम गतिसे अर्थात् यात्रा करनेवालेके सन्मुख आवे तो यात्रामें विघ्न करके यह कहता है कि यात्राका वांछित फल घर बैठेही हो जायेगा ।।२८।। पहले दाहिने शब्द करके फिर बांयें शब्द करे तो अभिष्ट फलकी प्राप्ति और शब्द करते शीघ्र यात्रा करनेवालेके आगे २ गमन करे तो बहुत धन प्राप्त होता है ।।२९।। प्रति शब्द करके पीठसे दक्षिणदिशाकी ओर शीघ्र चला जाय अथवा अग्रभागमें एक चरणसे खडा रहकर सूर्यको देखते २ शब्द करे तो यात्रा करनेवालेके शरीरसे रुधिर निकलता है ।।३०।। जो काग एक पांवसे खडा रहकर सूर्यको देखता हुआ मुख (चोंच) से अपने पंखोंको कुरेदे तो आगेके किसी प्रधान मनुष्यके वधको प्रगट करता है ।।३१।। धान्ययुक्त खेतकी शान्ता दिशामें जो काग अच्छा शब्द करे तो धान्ययुक्त भूमिकी प्राप्ति होती है, व्याकुल चेष्टावाला होकर जो गांवकी सीमाके अंतमें विशेष शब्द करे तो गमनकारीको क्लेशकर होता है ।।३२।। कोमलपत्ते,, पल्लव, फूल और फलों करके नम्र हुए वा सुगंधित अथवा मधुर वृक्षपर या दुधारे व्रणरहित, भली भांतिसे स्थित और रमणीक वृक्षपर बैठकर शब्द करता हुआ काग कार्यको सिद्ध करता है ।।३३।। पके हुए धान्य और नवीन तृणोंसे आच्छादित श्यामल खेत, प्रासाद, अटारी और हरे रंग के स्थानमें, धान्यके ऊंचे ढेरपर और मंगलकी वस्तुपर बैठकर काग शब्द करे तो धनका आगम होता है ।।३४।। गौकी पूंछ पर या वमईके ऊपर बैठा हुआ काग बोले तो सर्पका दर्शन होता है. महिषके ऊपर बैठकर शब्द करे तो ज्वर होता है, गुल्मपर बैठकर शब्द करे तो कम फल होता है ।।३५।। तिनकोंके ढेरपर बैठा हुआ या हड्डीपर बैठा हुआ काग बाईं ओर हो तो कार्यमें विघ्न डालता है, ऊपरसे अग्नि द्वारा जले हुए या बिजलीसे हत हुए वृक्षादिके ऊपर काग बैठकर बोले तो वध होता है ।।३६।। कांटेदार उत्तम वृक्षपर काग बैठा हो तो कार्यकी सिद्धि कलहके साथ होती, है, कांटेदार वृक्षपर बैठा हुआ शब्द करे तो कलह होता है जिस वृक्षपर बेल लिपट रहा हो उसपर बैठकर काग शब्द करे तो बंधन होता है ।।३७।। ऊपरसे छिन्न हुए स्थानमें बैठकर शब्द करे तो यात्रा कारीका अंग काटता है, सूखे वृक्षपर बैठकर शब्द करे तो क्लेश और सामने या पीछे गोबर पर बैठकर शब्द करे तो धनकी प्राप्ति होती है ।।३८।। मृतक पुरुषके अंगपर या शरीर पर बैठकर काग शब्द करे तो मृत्युभय

होता है, जो चोंचसे हड्डीको तोडे तो हड्डीके टूटनेका कारण होता है ॥३९॥ रस्सी, हड्डी, काठ, कांटोंवाली वस्तु साररहित वस्तु और बालोंको मुखमें रखकर शब्द करे तो क्रमानुसार भुजंग, रोग, दाढवाले जीवोंका, चोर, शस्त्र और अग्निसे उत्पन्न हुआ भय यात्रा करनेवालोंको होता है ॥४०॥ काग, श्वेत पुष्प और अपवित्र मांस मुखमें लेकर बोले तो यात्राकारीका अभीष्ट सिद्ध करता है और पंख कंपाते २ ऊपरको मुख करके वारंवार शब्द करे तो विघ्नकारी होता है ॥४१॥ जंजीर वरत्रा (हाथीकी कक्ष-रज्जु) या वेलको ग्रहण करके काग शब्द करे तो बन्धन होता है. पत्थरपर बैठकर शब्द करनेसे भय और क्लेश होनेके अतिरिक्त अपूर्व यात्रीके साथ मिलाप होता है ॥ ४२ ॥ जो दो काग एक दूसरेके मुखमें भोजन देते हों तो यात्रा करनेवालेको उत्तम संतोष होता है. नर और मादा दोनों इकट्ठे होकर शब्द करें तो स्त्रीलाभको प्रगट करते हैं ॥४३॥ स्त्रीके शिरपर जलसे भरा हुआ घडा रखा हो और उसपर काग बैठे तो स्त्री और धनकी प्राप्ति होती है. घडेको चोंचसे कूटे तो पुत्र पर विपत्ति और घडेपर वीट कर दे तो अन्न प्राप्त होता है ॥४४॥ पंख चलाता हुआ काग छावनी डालनेके समय शब्द करे तो और स्थानकी सूचना करता है कि यहां नहीं और स्थानपर सेनाका ठहरना होगा, परंतु अचलपंख काग शब्द करे तो केवल भय प्रगट करता है ॥४५॥ गिद्ध और कंकयुक्त कागगण विना मांस लिये सेनादिमें प्रवेश करते २ विना विरोधके हो तो शत्रुओंकी प्रसन्नता और विरुद्ध हो तो युद्ध होता है ॥४६॥ शूकरके ऊपर काग बैठा हो तो बंधन और कीचसे लिपटे हुए दो शूकरोंपर बैठा हो तो धनकी प्राप्ति होती है गधे व ऊंटपर बैठा हो तो मंगल होता है, कोई २ कहते हैं कि गधेपर बैठा हो तो यात्रा करनेवालेकी मृत्यु होती है ॥४७॥ घोडेपर बैठकर काग शब्द करे तो सवारीकी प्राप्ति और पीछे जाकर शब्द करे तो रुधिर गिरता है और यात्रा करनेवालेके पीछे २ और पक्षी शब्द करें तो उनका फल भी कागके समान जानना चाहिये ॥४८॥ ३२ भागमें बंटे हुए दिक्चक्रमें जिसमें जैसा फल कहा है, तिसमें वैसाही दोषगुणयुक्त फल फलता है ॥४९॥ अपने घोसलेमें स्थित कागका 'का' शब्द निष्फल कहा है. और 'कब' शब्द अपनी प्रीतिके लिये होता है और 'क' शब्द होनेपर स्निग्ध द्रव्य और मित्रकी प्राप्ति होती है ॥ ५० ॥ 'कर' शब्द क्लेश, 'कुरुकुरु' शब्दसे हर्ष, 'कटकट' शब्दसे दही खानेको मिलता है और 'केके' या 'ककु' शब्द से यात्राकारीको काग धनका लाभ प्रगट कराता है ॥५१॥ काग अपने घोंसलेमें 'खरेखरे' शब्द करे तो पथिकका आगमन, 'कखाखा' शब्द करे तो यात्राकारीकी मृत्यु और 'खलखल' शब्द बोलनेसे उसी दिन वर्षा होती है. 'आ' शब्द काग बोले तो यात्रामें विघ्न करता है ॥ ५२ ॥ 'काका' शब्द बोले तो यात्राकारीका नाश, 'काकटि' शब्दसे आहारका दूषण 'कवकव' शब्दसे किसीके साथ प्रीति और 'कगाकु' शब्दसे बन्धन होता है ॥ ५३ ॥ 'करकौ' शब्दसे वर्षा, 'गुड' शब्दसे त्रास, 'वट्' शब्दसे वस्त्रकी प्राप्ति और 'कलय' शब्द काग बोले तो ब्राह्मणके साथ शूद्रका संयोग प्रगट करता है ॥ ५४ ॥ 'फट्' शब्दसे फलकी प्राप्ति वा फलवाहक लोगोंका दर्शन, 'टटू' शब्दसे प्रहार, 'स्त्री' शब्दसे स्त्रीका लाभ 'गडित्ति' शब्दसे गायें और 'पुडिति' शब्द काग बोले तो पुष्पोंका लाभ होता है ॥ ५५ ॥ जो काग, 'टाकुटाकु' शब्द करे तो युद्धका कारण, 'गुहु' शब्दसे अग्निभय, 'कटकट' शब्दसे क्लेश होता है, 'और 'टाकुलि' 'चिन्टिचि' 'केकेके' और 'पुरं' शब्द दोषकारी होता है ॥ ५६ ॥ रुत (शब्द) और चेष्टादि

करके जो समस्त फल कहे हैं, कागोंके लिये भी यह फल समान है और पक्षिगण भी कागके समान व और जितने बनैले या गांवके दाढवाले जीव हैं तिनका फलभी श्वानके समान है ।। ५७ ।। वर्षाके समयमें जो स्थलचारी जीव जलमें प्रवेश करें और जलचारी जीव स्थलपर आवें तो बहुत वर्षा होती है, परन्तु शेष कालमें भय होता है. जो मधुमक्खियां गृहमें शहतका छत्ता लगावें तो शीघ्र भवन शून्य हो जाता है. जो नीले रंगकी मक्खी शिरपर बैठे तो मृत्यु होती है ।। ५८ ।। जो चेंटियां अपने अपने अंडोंको पानीमें डालें तो वर्षा रुक जाती है. जो अपने अंडोंको नीचेसे वृक्षपर ले जावें तो शीघ्र वर्षा होती है ।। ५९ ।। गमनादिकार्योंके आरम्भसमयमें सबसे पहले जो शकुन दिखलायी दिया है, उस कार्यके अन्ततक वही शकुन फल देगा; उस कार्यके बीचमें जो और शकुन दिखाई दे तो वह उस दिनही फल देगा. इस प्रकार समस्त शकुनोंका विचार करना चाहिये. किसी कार्यके आरम्भमें या गृहप्रवेशादिके समयमें छींकका होना शुभ नहीं माना गया ।। ६० ।। शकुन शास्त्रके जाननेवाले पंडितलोग इस प्रकारसे शकुनको निरूपण करके सन्मान दाता राजाके लिये शुभ दशापाक, विघ्नरहित सिद्धि, मूलस्थानकी रक्षा, सहाय, इष्टसिद्धि और निरोगिता इन सबको भली भांतिसे प्रकाशित करें ।। ६१ ।। कोई २ पंडित अर्थात् कश्यपादि मुनिलोग कहते हैं कि एक कोश चले जानेके पीछे शकुनका शब्द होना निष्फल होता है, जो तिनमें सबसे पहला अशुभ शकुन हो तो पांच या छ प्राणायाम करे, दूसरा अशकुन हो तो १६ प्राणायाम[1] करे. तीसरा शकुनभी अशुभ हो तो यात्रा न करके अपने घरको लौट आवे ।। ६२ ।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां पंचनवतितमोऽध्यायः ।।९५।।

अथ षण्णवतितमोऽध्यायः

शाकुने–उत्तराध्यायः

दिग्देशचेष्टास्वरवासरर्क्षमुहूर्तहोराकरणोदयांशान् । चिरस्थिरोन्मिश्रबलाबलं च बुद्वा फलानि प्रवदेद्वतज्ञः ।।१।। द्विविधं कथयन्ति संस्थितानामागामिस्थिर-संज्ञितं च कार्यम् । नृपदूतचरान्यदेशजातान्यविघातःस्वजनादि चागमाख्यम् ।।२।। उद्बद्धसंग्रहणभोजनचौरवह्निवर्षोत्सवात्मजवधाःकलहो भयं चावर्गः स्थिरोऽय-मुदयेन्दुयुते स्थिरर्क्षे विद्यात् स्थिरं चरगृहे च चरं यदुक्तम् ।।३।। स्थिरप्रदेशोपल-मन्दिरेषु सुरालये भूजलसन्निधौ च । स्थिराणि कार्याणि चराणि यानि चलप्रदेशा-दिषु चागमाय ।।४।। आप्योदयर्क्षक्षणदिग्जलेषु पक्षावसानेषु च ये प्रदीप्ताः । सर्वेऽपि ते वृष्टिकरा रुवन्तः शान्तोऽपि वृष्टिं कुरुतेऽम्बुचारी ।।५।। आग्नेयदिग्ल-ग्नमुहूर्तदेशेष्वर्कप्रदीप्तोऽग्निभयाय रौति । विष्टचां यमर्क्षोदयकण्टकेषु निष्पत्रव-

---

१–व्याहृतिके साथ गायत्री और उसके उपरान्त "आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्" इतने मंत्रके नियमानुसार पूरक, कुम्भक और रेचकको प्राणायाम कहते हैं. पूरकसे चौगुणा कुंभकसे आधे रेचक इनका अनुलोप और विलोमही क्रम है ।

ल्लीषु च मोषकृत्स्यात् ।।६।। ग्राम्यः प्रदीप्तः स्वरचेष्टिताभ्यामुग्रोरुवन् कण्टकिनि स्थितश्च । भौमर्क्षलग्ने यदि नैर्ऋतौ च स्थितोऽभितश्चेत्कलहाय दृष्टः।।७।। लग्नेऽथवेन्दोभृगुभांशसंस्थे विदिक्स्थतोऽधोवदनश्च रौति । दीप्तः स चेत्संग्रहणं करोति योग्या तया या विदिशि प्रदिष्टा ।।८।। पुंराशिलग्ने विषमे तिथौ च दिक्स्थः प्रदीप्तः शकुनो नराख्यः । वाच्यं तदा संग्रहणं नराणां मिश्रे भवेत्खण्डकसम्प्रयोगः ।।९।। एवं रवेः क्षेत्रनवांशलग्ने लग्ने स्थिते वा स्वयमेव सूर्ये । दीप्तोऽभिदत्ते शकुनो विवासं पुंसः प्रधानस्य हि कारणं तत् ।।१०।। प्रारभ्यमाणेषु च सर्वकार्येष्वर्कान्विताद्भाद्गणयेद्विलग्नम् । सम्पद्विपच्चेति यथाक्रमेणसम्पद्विपद्वापि तथैव वाच्या ।।११।। काणेनाक्ष्णा दक्षिणेनैति सूर्ये चन्द्रे लग्नाद्द्वादशे चेतरेण । लग्नस्थेऽर्के पापदृष्टेऽन्ध एव कुब्जः स्वर्क्षे श्रोत्रहीनो जडो वा ।।१२।। क्रूरः षष्ठे क्रूरदृष्टो विलग्नाद्यस्मिन्राशौ तद्गृहाङ्के व्रणः स्यात् । एवं प्रोक्तं यन्मया जन्मकाले चिह्नं रूपं तत्तदस्मिन्विचिन्त्यम् ।।१३।। व्यक्षरं चरगृहांशकोदये नाम चास्य चतुरक्षरं स्थिरे । नामयुग्ममपि च द्विमूर्तिषुत्र्यक्षरं भवति चास्य पञ्चभिः ।।१४।। काद्यास्तु वर्गाः कुजशुक्रसौम्यजीवार्कजानां क्रमशः प्रदिष्टाः । वर्णाष्टकं यादि च शीतरश्मे रवेरकारात्क्रमशः स्वराः स्युः ।।१५।। नामानि चाग्न्यम्बुकुमारविष्णुशेक्रन्द्रपत्नीचतुराननानाम् । तुल्यानि सूर्यात्क्रमशो विचिन्त्य द्वित्रादिवर्णैर्घटयेत् स्वबुद्ध्या ।।१६।। वयांसि तेषां स्तनपानबाल्यव्रतस्थिता यौवनमध्यवृद्धाः । अतीव वृद्धा इति चन्द्रभौमज्ञशुक्रजीवार्कशनैश्चराणाम् ।।१७।। (इति शकुनोत्तराध्यायः

इति श्रीवराहमि० बृहत्सं० षण्णवतितमोऽध्यायः ।।९६।।

शब्दको जाननेवाले पंडितलोग दिक्, चेष्टा, देश, स्वर, दिवस, नक्षत्र, मुहुर्त. होरा, करण, उदयांश, चिर, स्थिर, व्यात्मक इन सबके वलाबलको जानकर सब फलोंको प्रकाश करे ।।१।। समस्त शकुन संस्थित (वर्तमान) के सम्बन्धमें आगामी (होनहार) और स्थिरसंज्ञावाले कार्यफलको करके प्रकाश करते हैं और तिसमें नृप, दूत, चर और देशोंसे उत्पन्न हुए सबही वर्त्तमान हैं. यह स्वजनादि और आगमनामसे प्रसिद्ध हैं ।। २ ।। संलग्न, संग्रहण, भोजन, चोर अग्नि, वर्षा, उत्सव, आत्मज, वध, क्लेश और भय यह सब स्थिर वर्ग हैं. स्थिरराशि चंद्रमाके साथ हो वा उदित हो तो स्थिर कार्य स्थिर हो जाते हैं, जो चर कहाते हैं सो चरगृहमें निर्णीत होते हैं ।। ३ ।। निश्चलस्थान, पत्थर, मन्दिर, देवालय, भूमि और जलके निकट शकुन हो तो स्थिर कार्य और चलदेशमें हो तो चर कार्य करने चाहिये ।। ४ ।। आप्य (जलचर नामके) लग्न, नक्षत्र, क्षण, दिकमें स्थित तथा जलके समीपमे और पक्षके अंतमें जो शकुन प्रदीप होते हैं, वे समस्त वृष्टिकारी होते हैं. जलचारी जीवका शान्त शब्द भी वृष्टि करता है ।। ५ ।। आग्नेय दिशामें लग्न, मुहूर्त और अग्नियुक्त देशमें शकुन सूर्यदीप्त होकर शब्द करे तो अग्निभयका कारण होता है, विष्टिकरण, कुम्भ और मकरका उदय, कांटेदार वृक्ष और पत्ररहित वेलमें बैठकर जो शकुन शब्द करे तो चोरी होती है ।। ६ ।। कांटेदार वृक्षपर बैठे हुए गांवके शकुन जो स्वर चेष्टा

करके प्रदीप्त होकर शब्द करें और जो भौमराशि (मेष और वृश्चिक) लग्नमें नैऋतदिशामें स्थित या अभिमुखी हो तो कलहका कारण दिखाई देता है ।। ७ ।। कर्कलग्नमें अथवा वृष और तुलाके नवांशमें विदिक्स्थित होकर शकुन नीचेको मुख करके शब्द करे और वह शकुन दीप्त हो तो उस दिशामें जिस स्त्रीकी उत्पत्ति कह आये हैं, उसहीके साथ मेल होता है ।। ८ ।। जब पुरुषराशि लग्नमें प्रतिपदा तृतीया आदि विषम तिथि हो और उसमें दिविस्थत प्रदीप्त नर शकुन शब्द करे तब मनुष्योंका संग्रहण विषम कहा जा सकता है; पुरुषराशि आदि मित्र हों तो नपुंसकसे समागम होता है ।। ९ ।। इस प्रकारसे सूर्यका क्षेत्र (सिंह) नवांश या लग्नमें स्थित हो अथवा स्वयं सूर्यही उसमें स्थित हो तो उसके लिये प्रधान पुरुषका आगमन शकुन प्रकाश करते हैं ।। १० ।। समस्त प्रारम्भ किये कार्योंमें सूर्ययुक्त राशिसे लग्न गिने; क्रमानुसार (१।२ क्रमसे) सम्पत् और विपत् संज्ञाकी गिनती करके सम्पत् अथवा विपत् कहना चाहिये ।। ११।। तिस कालकी लग्नसे बारहवां सूर्य हो (शकुन करके तिसके साथ मिले वह) दाहिनी आंखसे काना हो, लग्नसे बारहवें चन्द्रमा हो तो बाईं आँखसे काना हो, लग्नके सूर्यको पापग्रह देखता हो तो अन्धा और सिंहराशिमें स्थित हुए सूर्यके ऊपर जो पापकी दृष्टि हो तो कुबडा, बहरा और जड होगा ।। १२ ।। तिस कालकी लग्नसे छठे स्थानमें पापग्रहसे देखा हुआ पापग्रह (वा मंगल) हो, अथवा जो राशि पापग्रहसे देखे हुए पापग्रहसे युक्त हो तो उसके अंगोंगा विभाग करनेपर उस राशिमें जो अंग पडे उस पुरुषके उसी अंगमें व्रण होगा इसी प्रकारसे जन्मकालीन समस्त फल जो मैंने निरूपित किये हैं, इस स्थानमें उन सबका विचार करना चाहिये ।। १३ ।। चरलग्न और चर नवांश होवे तो योज्य पुरुषका नाम दो अक्षरका है, स्थिरमें चार अक्षरका, द्विमूर्तिमें दो नाम होता है ।।१४।। या पांच पञ्चक (पांच अक्षरवाले) वर्ग, क्रमसे मंगल, शुक्र. बुध, बृहस्पति और शनिके हैं, यकार आदि आठ अक्षर चन्द्रमाके हैं और आकारादि १६ वर्ण सूर्यके हैं ।। १५ ।। सूर्य और चन्द्रादि सात ग्रहके अधीनमें हैं, क्रमानुसार अग्नि, जल, कार्तिक, विष्णु, इन्द्र, शची और ब्रह्मा स्थित हैं, बस, प्रयोजनीय पदार्थका नाम जानना हो तो इन सब देवताओंके नाम ठीक मिलावे, परन्तु पहले कहे अक्षरविन्यासके अनुसार दो अक्षरवाले, तीन अक्षरवाले नाम इत्यादि समस्त तिन २ देवताओंके अनुसार करके अपनी बुद्धिसे जान ले ।। १६ ।। चन्द्रमा, मंगल, बुध, शुक्र, बृहस्पति, रवि और शनिकी अवस्थाके अनुसार शकुनमें कहे हुए मनुष्य क्रमानुसार दूध पीता हुआ बालक, बालक, व्रतस्थित (कौमार) युवा, मध्य, वृद्ध और अत्यन्त वृद्ध अवस्थावाला होता है ।। १७ ।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां षण्णवतितमोऽध्यायः ।।९६।।

इति सर्वशाकुन समाप्तम्

अथ सप्तनवतितमोऽध्यायः

पाकविचारः

पक्षाद्भानोः सोमस्य मासिकोऽङ्गारकस्य वक्रोक्तः । आ दर्शनाच्च पाको बुधस्य जीवस्य वर्षेण ॥१॥ षड्भिः सितस्य मासैरब्देन शनैः सुरद्विषोऽब्दाधात् । वर्षात्सूर्यग्रहणे सद्यः स्यात्त्वाष्ट्रकीलकयोः ॥२॥ त्रिभिरेव धूमकेतोर्मासः श्वेतस्य सप्तरात्रान्ते । सप्ताहात्परिवेषेन्द्रचापसन्ध्याभ्रसूचीनाम् ॥३॥ शीतोष्णविपर्यासः फलपुष्पमकालजं दिशां दाहः । स्थिरचरयोरन्यत्वं प्रसूतिविकृतिश्च षण्मासात् ॥४॥ अक्रियमाणककरणं भूकम्पोऽनुत्सवो दुरिष्टं च । शोषश्चाशोष्याणां स्रोतोऽयत्वं च वर्षार्धात् ॥५॥ स्तम्भकुसूलार्चानां जल्पितरुदितप्रकम्पितस्वेदाः । मासत्रयेण कलहेन्द्रचापनिर्घातपाकाश्च ॥६॥ कीटाखुमक्षिकोरगबाहुल्यं मृगविहङ्गमरुतं च । लोष्ठस्य चाप्सु तरणं त्रिभिरेव विपच्यते मासैः ॥७॥ प्रसवः सुनामरण्ये वन्यानां ग्रामसम्प्रवेशश्च । मधुनिलयतोरणेन्द्रध्वजाश्च वर्षात् समाधिकाद्वा ॥८॥ गोमायुगृध्रसंघा दशाहिकाः सद्य एव तूर्यरवः । आक्रुष्टं पक्षफलं वल्मीको विदरणं च भुवः ॥९॥ अहुताशप्रज्वलनं घृततैलवसादिवर्षणं चापि । सद्यः परिपच्यन्ते मासेऽध्यर्धे च जनवादः ॥१०॥ छत्रचितियूपहुतवहबीजानां सप्तभिर्भवति पक्षैः । छत्रस्य तोरणस्य च केचिन्मासात् फलं प्राहुः॥११॥अत्यन्तविरुद्धानां स्नेहः शब्दश्च वियति भूतानाम् । मार्जारनकुलयोर्मूषकेण सङ्गश्च मासेन ॥१२॥ गन्धर्वपुरं मासाद्रसवैकृत्यं हिरण्यविकृतिश्च । ध्वजवेश्मपांसुधूमाकुला दिशश्चापि मासफलाः ॥१३॥ नवकैकाष्टदशकैकषट् त्रिकत्रिकसंख्यमासपाकानि । नक्षत्राण्यशिवनिपूर्वकाणि सद्यः फलाश्लेषा ॥१४॥ पित्र्यान्मासः षट् षट् त्रयोऽर्धमष्टौ व त्रिषडेकैकाः मासचतुष्केऽषाढे सद्यः पाकाभिजित्तारा ॥१५॥ सप्ताष्टावध्यर्धं त्रयस्त्रयः पञ्च चैव मासाः स्युः । श्रवणादीनां पाको नक्षत्राणां यथासंख्यम् ॥१६॥ निगदितसमये न दृश्यते चेदधिकारं द्विगुणे प्रपच्यते तत् । यदि न कनकरत्नगोप्रदानैरुपशमितं विधिवद्द्विजैश्च शान्त्या ॥१७॥

इति श्रीवराहमि ० बृहत्सं० पाकाध्यायो नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥९७॥

सूर्यका फल एक पक्षमें, चन्द्रमाका एक मासमें, मंगलका वक्रके अनुसार दिनोंमें, बुधका फल उदय रहनेतक और बृहस्पतिका फल एक वर्षमें पकता है ।। १ ।। शुक्रका फल छः मासमें शनिका एक वर्षमें सुरद्वेषी, (राहु) (चन्द्रग्रहण) का आधे वर्षमें, सूर्यग्रहणका एक वर्षमें, त्वष्टा नामक ग्रहका फल और तामस कीलकोंका फल शीघ्र होता है ।।२।। धूमकेतुका फल तीन मासमें, श्वेत धूमकेतुका सात रात्रियोंमें, पौष (परिवेष), इन्द्रधनुष, सन्ध्या और अभ्रसूचीका फल ७ दिन (सप्ताह) में होता है ।। ३ ।। शीत उष्णमें विपर्यय (जाडेमें गरमी और गरमीमें जाडेका पडना), अकालमें उत्पन्न हुए फल फूलादि, दिग्दाह, स्थिर और चरका अन्यत्व (स्थिर पदार्थ चले, अस्थिर न चले), दिग्दाह और प्रसूति विकृतिका फल छः मासमें होता है ।। ४ ।। अक्रिय-माणक कार्यका करना (जो कभी नहीं किया तिसका करना वा अनिच्छासे करना अथवा हठात् करना) भूमिकम्प, अनुत्सव, अनिष्टका होना, नहीं सूखनेवाले सरोवर आदिका सूख जाना, नदी आदि प्रवाहोंका उलटा बहना इन बातोंका फल छः मासमें होता है ।। ५ ।। खंभ, मिट्टी आदिकी बनाई कुटिया, पूजाकी प्रतिमा, रुदित, प्रकम्पित और स्वेद अथवा कलह, इन्द्रधनुष और उपद्रव इनका फल तीन मासमें पकता है ।। ६ ।। कीडे, चूहे, मक्खियें और सर्पोंकी बहुतायत, मृग व पक्षियोंके शब्द, हवाका चलना अथवा जलमें ढेलेका तरना इन सबका फल तीन मासमें पकता है ।। ७ ।। वनमें कुत्तोंका प्रसव, बनैले जीवोंका गांवमें घुस आना, शहतके छत्तका लगना, तोरण व इन्द्रध्वजमें किसी प्रकारका उत्पात होना इन सबका फल एक वर्षमें या वर्षसे कुछ अधिक समयमें होता है ।।८।। शृंगाल और गिद्धसमूहका फल दश दिनमें बिना बजाये तुरंहीके बजनेका फल शीघ्रही पकता है. शाप (बददुआ) वमई और भूमिके फटनेका फल एक पक्षमें जाना जा सकता है ।। ९ ।। बिना अग्निके अग्निका जलना और घी, तेल व चर्बी आदि वर्षनका फल शीघ्र पाकको प्राप्त होता है और जनापवाद (अफवाह) का फल डेढमासमें पकता है ।।१०।। छत्र, चिति, थंभ, अग्नि और बोये हुए बीजोंका पाक सात पक्षमें होता है, कोई २ कहते हैं कि छत्र और तोरणका फल एक महीनेमें प्रगट होता है ।। ११ ।। अत्यन्त वैर करनेवाले जीवोंका पर-स्पर स्नेह, आकाशमें प्राणियोंका शब्द और बिलाव व नेवलेका चूहेके साथ मेल इन बातोंका फल एक मासमें होता है ।।१२।। गन्धर्वनगरका दिखाई देना, रसमें विकार, सुवर्णमें विकार इनका फल एक मासमें होता है और समस्त दिशायें ध्वज, आलय, धूरी और धूमसे ढक जाय तो इनका फल एक मासमें होता है ।। १३ ।। अश्विनीसे लेकर पुष्यतक नक्षत्रोंमें उपद्रवका फल क्रमसे नौ, एक, अठारह, एक, एक, छः तीन और तीन मासके पीछे पाकको प्राप्त होता है, आश्लेषाके तारेमें कुछ उत्पात हो तो शीघ्रही फल होता है ।। १४ ।। माघसे लेकर मूलतकके नक्षत्रोंमें कुछ उपद्रव हो तो क्रम २ से एक छः छः, तीन, अर्ध, आठ, तीन, छः, एक और एक मासमें इनका फल पकता है, पूर्वाषाढा व उत्तराषाढाका फल चार मासमें और अभिजितके तारेका फल शीघ्र होता है ।। १५ ।। श्रवणादि नक्षत्रोंका फल क्रमसे सात, आठ, अध्यर्द्ध (साढे तीन दिन), तीन, तीन और पांच मासमें पाकको प्राप्त होता है ।। १६ ।। जो कहे हुए समयमें फल दिखाई न दे तो

उससे दूने समयमें अधिक प्राप्त होता है, परन्तु सुवर्ण रत्न और गोदानादि शान्तिसे ब्राह्मणों करके जो विधिपूर्वक उपशमित न हो, तबही दूने समयमें फलका पाक होगा ॥ १७ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद-वास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥९७॥

अथाष्टनवतितमोऽध्यायः

नक्षत्रगुणः

शिखिगुणरसेन्द्रियानलशशिविषयगुणर्तुपञ्चवसुपक्षाः । विषयैकचन्द्रभूतार्णवग्निरुद्राश्विवसुदनाः ॥१॥ भूतशतपक्षवसवो द्वात्रिंशच्चेति तारकामानम् । क्रमशोऽश्विन्यादीनां कालस्ताराप्रमाणेन ॥२॥ नक्षत्रजमुद्वाहे फलमब्दैस्तारकामितैः सदसत् । दिवसैर्ज्वरस्य नाशो व्याधेरन्यस्य वा वाच्यः ॥३॥ अश्वियमदहनकमलजशशिशूलभृददितिजीवफणिपितरः । योन्यर्यमदिनकृत्त्वष्टृपवनशक्राग्निमित्राश्च ॥४॥ शक्रो निर्ऋतिस्तोयं विश्वे ब्रह्मा हरिर्वसुर्वरुणः । अजपादोऽहिर्बुध्न्यः पूषा चेतीश्वरा भानाम् ॥५॥ त्रीण्युत्तराणि तेभ्यो रोहिण्यश्च ध्रुवाणि तैः कुर्यात् । अभिषेकशांतितरुनगरधर्मबीजध्रुवारम्भान् ॥ ६ ॥ मूलशिवशक्रभुजगाधिपानि तीक्ष्णानि तेषु सिद्धयन्ति । अभिघातमंत्रवेतालबन्धवधभेदसम्बन्धाः ॥७॥ उग्राणि पूर्वभरणीपित्र्याण्युत्सादनाशशाठयेषु । योज्यानि बन्धविषदहनशस्त्रघातादिषु च सिद्धयै ॥८॥ लघु हस्ताश्विनिपुष्याःपण्यरतिज्ञानभूषणकलासु । शिल्पौषधयानादिषु सिद्धिकराणि प्रदिष्टानि ॥९॥ मृदुवर्गस्त्वनुराधाचित्रापौष्णैन्दवानि मित्रार्थे । सुरतविधिवस्त्रभूषणमङ्गलगीतेषु च हितानि ॥१०॥ हौतभुजं सविशाखं मृदुतिक्ष्णं तद्विमिश्रफलकारि। श्रवणात्त्रयमादित्यानिले च चरकर्मणि हितानि ॥११॥ हस्तात्त्रयं मृगशिरः श्रवणात्त्रयं च पूषाश्विशक्रगुरुभानानि पुनर्वसुश्च। क्षौरे तु कर्मणि हितान्युदये क्षणे वा युक्तानि चोडुपतिना शुभतारया च ॥१२॥ न स्नातमात्रगमनोत्सुकभूषितानामभ्यङ्गभुक्तरणकालनिरासनानाम् । संध्यानिशोः कुजयमार्कदिने च रिक्ते क्षौरं हितं न नवमेऽह्नि न चापि विष्टयाम् ॥१३॥ नृपाज्ञया ब्राह्मणसम्मते च विवाहकाले मृतसूतके च । बद्धस्य मोक्षे क्रतुदीक्षणासु सर्वेषु शस्तं क्षुरकर्म भेषु ॥१४॥ हस्तो मूलं श्रवणा पुनर्वसुर्मृगशिरस्तथा पुष्यः । पुंसञ्ज्ञितेषु कार्ये-

श्वेतानि शुभानि धिष्ण्यानि ॥१५॥ सावित्रपौष्णानिलमैत्रतिष्ये त्वाष्ट्रे तथा चोडुगणाधिपर्क्षे । संस्कारदीक्षाव्रतमेखलादि कुर्याद्गुरौ शुक्रबुधेन्दुयुक्ते ॥१६॥ लाभे तृतीये च शुभैः समेते पापैर्विहीने शुभराशिलग्ने । वेध्यौ तु कर्णौ त्रिदशेज्यलग्ने तिष्येन्दुचित्राहरिरेवतीषु ॥१७॥ शुद्धैर्द्वादशकेन्द्रनैधनगृहैः पापैस्त्रिषष्ठायगैर्लग्ने कन्द्रगतेऽथवा सुरगुरौ दैत्येन्द्रपूज्येऽपि वा । सर्वारम्भफलप्रसिद्धिरुदये राशौ च कर्तुः शुभे सग्राम्यस्थिरभोदये च भवनं कार्यं प्रवेशोऽपि वा ॥१८॥

इति श्रीवराहमि० बृहत्सं० नक्षत्रगुणो नामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥९८॥

शिखि (३), गुण (३), रस (६), इन्द्रिय (५), अनल (३), शशी (१), विषय (५), गुण (३), ऋतु (६), पञ्च (५), वसु (८), पक्ष (२), विषय (५), एक (१) चन्द्र (१), भूत (१४), अर्णव (४), अग्नि (३), रुद्र (११), अश्वि (१), वसु (८), दहन (३) भूत (१४) शत (१००), पक्ष (२), वसु (८) और बत्तीस यह तारोंका परिणाम है अर्थात् अश्विनी आदि नक्षत्रोंके यह योगतारे हैं. अश्विनी आदि नक्षत्रका फल क्रमसे तारोंके प्रमाणके अनुसार होगा ॥ १ ॥ ॥ २ ॥ विवाहमें नक्षत्रका शुभाशुभ फल उतने वर्षोंमें फलता है कि जितने तारे होते हैं. जितने तारे हों उतने दिनमें ज्वरका या और व्याधिका नाश कहा जाता है ॥ ३ ॥ अश्विनीकुमार, यम, अग्नि, ब्रह्मा, चन्द्रमा, रुद्र, अदिति, बृहस्पति, सर्प, पितृगण, योनि, अर्यमा, सूर्य, त्वष्टा, पवन, इन्द्राग्नि, मित्र, ॥ ४ ॥ इन्द्र, निर्ऋति, जल, विश्व, विरञ्चि, हरि, वसु, वरुण, अजपाद, अहिर्बुध्न्य और पूषा यह क्रमानुसार अश्विनी आदि नक्षत्रोंके २८ देवता हैं ॥ ५ ॥ उनमें रोहिणी व उत्तरा ध्रुवसंज्ञक हैं, ध्रुवगणमें अभिषेक, शान्ति, वृक्ष, नगर, धर्म, बीज और ध्रुवकार्यका आरम्भ करना उचित है ॥ ६ ॥ मूल, आर्द्रा और ज्येष्ठा, आश्लेषा इन नक्षत्रोंके स्वामी तीक्ष्ण हैं इनमें अभिघात, मन्त्रसाधन, बैताल, बन्ध, वध और भेदसम्बन्धी कार्य सिद्ध होते हैं ॥ ७ ॥ तीनों पूर्वा, भरणी, और मघा ये पांच नक्षत्र उग्रगण हैं, ये नक्षत्र उजाडना, नाश करना, शठता करना, बन्धन, विष, दहन और शस्त्रघात आदिकी सिद्धिके लिये ठीक हैं ॥ ८ ॥ हस्त, अश्विनी और पुष्य यह तीन नक्षत्र लघु गणवाले हैं, इनमें पण्य, रति, ज्ञान भूषण और कला, शिल्प, औषधि व यानादि कार्यकी सिद्धि होती है ॥ ९ ॥ अनुराधा, चित्रा, रेवती और मृगशिरा यह चार नक्षत्र मृदु वर्ग हैं, यह नक्षत्रगण सुरत-विधि, वस्त्र, भूषण, मंगल, गति और मित्रविषयमें हितकारी होते हैं ॥ १० ॥ विशाखा और कृत्तिका नक्षत्र मृदु तीक्ष्ण गण हैं इनका फल मिश्रित होता है, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुनर्वसु और स्वाती इन पांच नक्षत्रोंमें चरकर्म हितकारी होता है ॥ ११ ॥ हस्त, चित्रा और स्वाती, मृगशिरा, श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा, रेवती, अश्विनी, ज्येष्ठा, पुष्य और पुनर्वसु, ये नक्षत्र कर्म करनेवालेके शुभ तारा और शुभ चन्द्रमासे युक्त हों तो इनके उदयमें और कार्य

हितकारी होता है ।। १२ ।। स्नान कर चुका हो, जानेकी इच्छा किये हो, भूषित हो, तैलाभ्यंग किये हो, भोजन कर चुका हो, युद्धके समय, बिना आसनके और सन्ध्या और निशाकालमें, मंगल, शनि और इतवारके दिन, रिक्ता तिथिमें, नववें दिन और विष्टि करणमें क्षौर कर्म नहीं कराना चाहिये ।।१३ ।। राजाओंकी आज्ञासे, ब्राह्मणोंकी सम्मतिसे, विवाहकालमें मृत और सूतक जनित अशौचके अन्तमें, बँधे हुए (कैदी) के मोचन अर्थात् छूटनेमें यज्ञादिकी दीक्षामें क्षौर कर्म सब नक्षत्रोंमें कर लेना चाहिये ।। १४ ।। हस्त, मूल, श्रवण, पुनर्वसु, मृगशिरा और पुष्य इन सब नक्षत्रोंकी पुरुष संज्ञा है, इनमें पुरुषसंज्ञक कामोंका करना शुभ है ।। १५ ।। हस्त, रेवती, स्वाती, अनुराधा, पुष्य, चित्रा और मृगशिरा नक्षत्रमें, चन्द्रवार, बुध, बृहस्पति, शुक्रवारमें संस्कार दीक्षा, व्रत और मेखला आदि कर्म करने चाहिये ।। १६ ।। लग्नसे तीसरे और ग्यारहवें स्थानमें अशुभ ग्रह हों, राशि और लग्न शुभ ग्रहके क्षेत्रमें हो, लग्न और राशिमें पापग्रह न हो, अथवा बृहस्पतिकी राशि अर्थात् धन और मीन लग्न होनेपर, पुष्य. मृगशिर, चित्रा, श्रवण और रेवती नक्षत्रमें कर्णछेदन करना चाहिये ।। १७ ।। लग्नसे बारहवें, केन्द्र अर्थात् । १ । ४ । ७ । १० । और अष्टम शुद्ध हो, पापग्रह तीसरे छठें और ग्यारहवें स्थानमें हों, बृहस्पति और शुक्र लग्न या केन्द्रमें हों, कर्त्ता अर्थात् कर्मफलभागीकी राशि (जन्मराशि) उदित (लग्न) हो, अथवा ग्राम्य राशि (मिथुन कन्या, तुला, धन, वृश्चिक, कुम्भ) और स्थिर राशि (वृष, सिंह, वृश्चिक, कुम्भ), लग्न होने पर समस्त कार्योंका आरम्भ करनाही शुभकारी होता है और इसमें गृहारंभ व गृहप्रवेश शुभदायी है ।। १८ ।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायांपश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबाद वास्तव्य पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायामष्टनवतितमोऽध्यायः ।।९८।।

अथ नवनवतितमोऽध्यायः

तिथि-करणगुणः

कमलजविधातृहरियमशशाङ्कषड्वक्त्रशक्रवसुभुजगाः । धर्मेशसवितृमन्मथ-कलयो विश्वे च तिथिपतयः ।।१।। पितरोऽमावाकार्याः । नन्दा भद्रा विजया रिक्ता पूर्णा च तास्त्रिविधाः ।।२।। यत् कार्यं नक्षत्रे तद्दैवत्यासु तिथिषु तत् कार्यम् । करण-मुहूर्तेष्वपि तत् सिद्धिकरं देवतासदृशम् ।।३।। बवबालवकौलवतैतिलाख्यगरवणि-जविष्टिसंज्ञानाम् । पतयः स्युरिन्द्रकमलजामित्रार्यमभूश्रियः सयमाः ।।४।। कृष्ण-चतुर्दश्यर्धाद् ध्रुवाणि शकुनिश्चतुष्पदं नागम् । किंस्तुघ्नमिति च तेषां कलिवृष-फणिमारुताः पतयः ।।५।। कुर्याद्बवे शुभचरस्थिरपौष्टिकानि धर्मक्रिया द्विजहितानि

च बालवाख्ये । सम्प्रीतिमित्रवरणानि च कौलवे स्युः सौभाग्यसंश्रयगृहाणि च तैतिलाख्ये ॥६॥ कृषिबीजगृहाश्रयजानि गरे वाणिजि ध्रुवकार्मवणिग्युतयः नहि विष्टिकृतं विदधाति शुभं परघातविषादिषु सिद्धिकरम् ॥७॥ कार्यं पौष्टिकमौषधादि शकुनौ मूलानि मंत्रास्तथा गोकार्याणि चतुष्पदे द्विजपितॄनुद्दिश्य राज्यानि च । नागे स्थावरदारुणानि हरणं दौर्भाग्यकर्माण्यतः किंस्तुघ्ने शुभमिष्टपुष्टिकरणं मङ्गल्यसिद्धि क्रियाः ॥८॥

इति श्रीवराहमि० बृहत्सं० तिथिकरणगुणो नामैकोनशततमोऽध्यायः ॥९९॥

ब्रह्मा, विधाता, हरि, यम, शशांक, षडानन, इन्द्र, वसु, सर्प, धम, ईश, सविता, मन्मथ और कलि यह समस्त देवता प्रतिपदादि तिथियोंके क्रमानुसार स्वामी हैं। ॥ १ ॥ अमावस्याके स्वामी पितृगण हैं. स्वामियोंकी संज्ञाके समान क्रियायें उक्त २ तिथियोंमें साधन करना चाहिये वह समस्त तिथि नन्दा, भद्रा, विजया, रिक्ता और पूर्णा भेदसे तीन प्रकारकी हैं ॥ २ ॥ जिस नक्षत्रमें जो कर्म करना चाहिये वह कार्य उस नक्षत्रके देवताकी तिथिमें करना उचित है और कारण या मुहूर्तमें भी उसी देवताके समान कर्म हो तो सिद्धिकारी होता है. जैसे रोहिणी नक्षत्र और प्रतिपदा तिथि ॥ ३ ॥ बव, बालव, कौलव, तैतिल, गर वणिज और विष्टि संज्ञक कारणोंके स्वामी क्रमसे इन्द्र, ब्रह्मा, मित्र, अर्यमा, भूमि, श्री और यम हैं ॥ ४ ॥ कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके शेषार्धसे शकुनि, चतुष्पद, नाग और किंस्तुघ्न यह चार स्थिर करण हैं, यह ध्रुव अर्थात् निश्चल हैं और इनके स्वामी क्रमसे कलि, वृक्ष, सर्प और पवन हैं ॥ ५ ॥ बव, करणमें शुभ चर स्थिर और पौष्टिककर्म करने चाहिये, बालव नामक करणमें धर्मक्रिया और ब्राह्मणोंके हितकारी कार्य करने चाहिये, कौलव करणमें भलीभांतिसे प्रीति, मित्र और समस्त वरण और तैतिल नामक करणमें सौभाग्य, संश्रय और गृह संकल्पादि कार्य करने चाहिये ॥ ६ ॥ गर करणमें खेती, बीज, गृह और आश्रय जातकार्य और वणिज करणमें वणिक संयोग और ध्रुव कार्य करने चाहिये, विष्टि करण शुभ फल नहीं देता, परन्तु शत्रुघात और विष आदि प्रयोग करनेमें सिद्धकारी होता है ॥ ७ ॥ शकुनिमें पौष्टिक औषधादि मूल और मंत्रोंका ग्रहण करना, चतुष्पदमें गोकार्य, द्विज और पितृगणके उद्देशसे किया राज्य करना कर्त्तव्य है. नागमें स्थावर, दारुण, कर्म, हरण और दुर्भाग्यजनित कर्म करने चाहिये. किंस्तुघ्नमें शुभ, इष्ट, पुष्टिकरण और मंगल कार्योंकी सिद्धि करनेवाली क्रियाका उचित है ॥ ८ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटी० नवतितमोऽध्यायः ॥९९॥

अथ शततमोऽध्यायः

वैवाहिकनक्षत्र-लग्नम्

रोहिण्युत्तररेवतीमृगशिरोमूलानुराधामघाहस्तस्वातिषु षष्ठतौलिमिथुनेषूद्यत्सु पाणिग्रहः। सप्ताष्टान्त्यबहिः शुभैरुडुपतावेकादशद्वित्रिगे क्रूरैस्त्र्यायषडष्टगैर्न तु भृगौ षष्ठे कुजे चाष्टमे ॥१॥ दम्पत्योर्द्विनवाष्टराशिरहिते चारानुकूलेरवौ चन्द्रे चार्ककुजार्किशुक्रवियुते मध्येऽथवा पापयोः। त्यक्त्वा च व्यतिपातवैधृतिदिनं विष्टिं च रिक्तां तिथिं क्रूराहायनचैत्रपौषविरहेलग्नांशके मानुषे ॥२॥
इतिश्रीवराह० बृहत्सं० विवाहनक्षत्रलग्ननिर्णयोनामशततमोऽध्यायः ॥१००॥

रोहिणी, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपदा, रेवती, मृगशिर, मूल, अनुराधा, मघा, हस्त और स्वाती नक्षत्रमें, कन्या, तुला और मिथुन लग्न उदित होनेपर, इसी लग्नके सातवें, आठवें और बारहवें भिन्न स्थानमें शुभ ग्रह बैठे हों, विवाहलग्नके दूसरे तीसरे, या ग्यारहवें स्थानमें चन्द्रमा हो, पापग्रह इस लग्नके तीसरे, ग्यारहवें, छठे आठवें स्थानमें हों और षष्ठ शुक्र और आठवेंमें मंगल न हो तो उस दिन विवाह हो सकता है ॥ १ ॥ दंपत्ति अर्थात् वर कन्या इन दोनोंकी जन्मराशि परस्पर दूसरी, नववीं और आठवीं न होनेसे अर्थात् मेलक विचारमें द्विर्द्वादश, नव, पंचम, वा षडष्टक मेलक न हो, दोनोंका रविवार शुक्र अर्थात् गोचरशुक्र होनेसे चन्द्र रवि, शनि, मंगल और शुक्रके साथ युक्त न हो, अथवा दो पापग्रहोंके बीचमें न होवे, व्यतिपात और वैधृति भिन्न योगमें, विष्टिभिन्न करणमें, रिक्ताभिन्न तिथिमें, शुभ ग्रहके वारमें उत्तरायणमें, चैत्र और पौष मासके सिवाय व दूसरी निन्दनीय लग्नमें मनुष्यराशि (मिथुन, कन्या, तुला) का नवांश हो तो विवाहका होना श्रेष्ठ है ॥ २ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्य विरचि० बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां शततमोऽध्यायः ॥१००॥

अथैकशततमोऽध्यायः

नक्षत्रजातकम्

प्रियभूषणः सुरूपः सुभगो दक्षोऽश्विनीषु मतिमांश्च। कृतनिश्चयसत्यारुग् दक्षः सुखितश्च भरणीषु ॥१॥ बहुभुक् परदाररतस्तेजस्वी कृत्तिकासु विख्यातः। रोहिण्यां सत्यशुचिः प्रियंवदः स्थिरसुरूपश्च ॥२॥ चपलश्चतुरो भीरुः पटुरुत्साही धनी मृगे भोगी। शठगर्वितचण्डकृतघ्नहिंस्रः पापश्च रौद्रर्क्षे ॥३॥ दान्तः सुखी सुशीलो दुर्मेधा रोगभाक् पिपासुश्च। अल्पेन च सन्तुष्टः पुनर्वसौ जायते मनुज ॥४॥ शान्तात्मा सुभगः पण्डितो धनी धर्मसंश्रित पुष्ये। शठसर्वभक्षपापः कृतघ्न-

धूर्तश्च भौजङ्गे ।।५।। बहुभृत्यधनो भोगी सुरः पितृभक्तो महोद्यमः पित्र्ये । प्रियवाग्दाता द्युतिमानटनो नृपसेवको भाग्ये ।।६।। सुभगो विद्याप्तधनो भोगी सुखभाग् द्वितीयफल्गुन्याम् । उत्साही धृष्टः पानपोऽघृणी तस्करो हस्ते ।।७।। चित्राम्बरमाल्यधरः सुलोचनाङ्गश्च भवति चित्रायाम् । दान्तो वणिक् कृपालुः प्रियवाग्धर्माश्रितः स्वातौ ।।८।। ईर्ष्युर्लुब्धो द्युतिमान् वचनपटुः कलहकृद्विशाखासु । आढ्यो विदेशवासी क्षुधालुरटनोऽनुराधासु ।।९।। ज्येष्ठासु न बहुमित्रः सन्तुष्टो धर्मकृत् प्रचुरकोपः । मूले मानी धनवान् सुखी न हिंस्रः स्थिरो भोगी ।।१०।। इष्टानन्दकलत्रो वीरो दृढसौहृदश्च जलदेवे । वैश्वे विनीतधार्मिकबहुमित्रकृतज्ञसुभगश्च ।।११।। श्रीमाञ्छ्रवणे श्रुतवानुदारादारो धनान्वितः ख्यातः । दाताढ्यशूरगीतप्रियो धनिष्ठासु धनलुब्धः ।।१२।। स्फुटवाग्व्यसनी रिपुहा साहसिकः शतभिषक्षु दुर्ग्राह्यः । भद्रपदासूद्विग्नः स्त्रीजितधनपटुरदाता च ।।१३।। वक्ता सुखी प्रजावान् जितशत्रुर्धार्मिको द्वितीयासु । सम्पूर्णाङ्गः सुभगः शूरःशुचिरर्थवान् पौष्णे ।।१४।।

इति श्रीवराहमि० बृहत्सं० नक्षत्रजातकं नामैकोत्तरशततमोऽध्यायः ।।१०१।।

जिस मनुष्यका जन्म अश्विनी नक्षत्रमें हो वह प्रियभूषण, सुरूपवान्, सौभाग्य, चतुर और मतिमान् होता है, भरणीमें जन्मनेवाला कृतनिश्चय, सत्यवादी रोगहीन चतुर और सुखी होता है ।। १ ।। कृत्तिकामें जन्म लेनेसे मनुष्य बहुत भोजन करनेवाला पराई स्त्रीमें रत, तेजस्वी, विख्यात होता है और रोहिणीमें जन्म लेनेसे सत्यवादी, पवित्र, प्रिय वचन कहनेवाला, स्थित और सुन्दर होता है ।। २ ।। मृगशिर नक्षत्रमें जन्म लेनेसे चंचल, चतुर, भीरु, दक्ष, उत्साही, धनी और भोगी होता है. आर्द्रा नक्षत्रमें जन्म लेनेसे शठ, गर्वित, कृतघ्न, हिंसक और पापरत होता है ।। ३ ।। पुनर्वसु नक्षत्रमें जिस मनुष्यका जन्म हो वह दसगुणयुक्त, सुखी, सुशील, दुष्टबुद्धि, रोगी, तृषासे पीडित और थोडेहीमें संतोषी होता है ।।४।। पुष्य नक्षत्रमें जन्म ग्रहण करनेसे मनुष्य शान्तिवाला, सुभग, पंडित धनी और धर्ममें स्थित होता है. आश्लेषानक्षत्रमें जन्म ग्रहण करनेसे शठ, सब कुछ खानेवाला, पापी, कृतघ्न और धूर्त्त होता है ।। ५ ।। मघा नक्षत्रमें जन्म ग्रहण करनेसे बहुतसे सेवकवाला, बहुत धनवाला, भोगी, देव पितरका भक्त और महा उद्यमी होता है. पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमें प्रियवादी, दाता, द्युतिमान्, भ्रमणकारी और राजाका सेवक होता है ।।६।। उत्तराफाल्गुनीमें जन्म ग्रहण करनेसे मनुष्य सुभग, विद्याधनसे आय करनेवाला, भोगी और सुखी होता है. हस्तमें जन्म ग्रहण करनेसे उत्साही, ढीठ, पानकारी, घृणारहित और तस्कर होता है ।। ७ ।। चित्रा नक्षत्रमें जन्म लेनेवाला पुरुष चित्र विचित्र वस्त्र, मालाधारी, श्रेष्ठ नेत्र और सुन्दर अंगवाला होता है. स्वातीमें दान्त, वणिक्, कृपालु, प्रिय वचन कहनेवाला और धार्मिक होता है ।। ८ ।। विशाखा नक्षत्रमें जन्म लेनेवाला मनुष्य ईर्षा करनेवाला,

लोभी, द्युतिमान् वचन कहनेमें चतुर और कलहकारी होता है. अनुराधामें जन्म लेनेसे विदेशवासी, भूंखका न सहनेवाला और भ्रमणशील होता है ॥ ९ ॥ ज्येष्ठा नक्षत्रमें जन्म लेनेवाला सन्तुष्ट, धर्मकारी, महाक्रोधी, मित्रोंसे रहित होता है. मूल नक्षत्रमें जन्मा हुआ पुरुष मानी, धनवान्, सुखी, अहिंसक, स्थिर और भोगी होता है ॥ १० ॥ पूर्वाषाढा नक्षत्रमें जन्म हो तो इष्टके अनुरूप आनन्द और स्त्रीसे युक्त, वीर और स्थिर स्नेहवाला होता है और उत्तराषाढामें उत्पन्न हुआ पुरुष विनीत, धार्मिक, बहुत मित्रवाला, कृतज्ञ और सुभग होता है ॥ ११ ॥ श्रवण नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ पुरुष श्रीमान् श्रुतवान्, उदार स्त्रीवाला, धनी, विख्यात होता है, धनिष्ठामें उत्पन्न हुआ पुरुष धनका लोभी, दाता, धनवान्, शूर और गीतप्रिय होता है ॥१२॥ शतभिषा नक्षत्रमें जन्म हो तो स्पष्ट बोलनेवाला, व्यसनी, शत्रुघातक, साहसी, दुर्ग्राह्य (दु:खसे आराधन करनेके योग्य) होता है. पूर्वाभाद्रपदामें उत्पन्न हुआ पुरुष उद्विग्न, स्त्रीजित (जिसका धन स्त्री जीत ले), दक्ष और अदाता होता है ॥ १३ ॥ उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ मनुष्य वक्ता (व्याख्यान देनेवाले), सुखी, संतानयुक्त, शत्रुओंको जीतनेवाला और धार्मिक होता है, रेवती नक्षत्रमें उत्पन्न हुआ पुरुष सर्वाङ्गसुन्दर, शूर, पवित्र और धनवान् होता है ॥ १४ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तर देशीयमुरादाबादवास्तव्य–पण्डितबलदेवप्रसाद मिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायामेकाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०१॥

अथ द्व्युत्तरशततमोऽध्यायः

राशिविभागः

अश्विन्योऽथ भरण्यो बहुलपादेश्च कीर्त्यते मेषः। वृषभो बहुलाशेषं रोहिण्यर्धं च मृगशिरसः ॥१॥ मृगशिरसोऽर्धं राद्रं पुनर्वसोश्चांशकत्रयं मिथुनम्। पादश्च पुनर्वसोःसतिष्योऽश्लेषा च कर्कटकः ॥ २ ॥ सिंहोऽथ मघा पूर्वा च फल्गुनी पाद उत्तरायाश्च। तत्परिशेषो हस्तश्चित्राद्यर्धं च कन्याख्यः ॥३॥ तौलिनि चित्रान्त्यार्धं स्वातिः पादत्रयं विशाखायाः। अलिनि विशाखापादस्तथानुराधान्विता ज्येष्ठा ॥४॥ मूलमषाढा पूर्वा प्रथमश्चाप्युत्तरांशको धन्वी। मकरस्तत्परिशेषं श्रवणः पूर्वं धनिष्ठार्धम् ॥५॥ कुम्भोऽन्त्यधनिष्ठार्धं शतभिषगंशत्रयं च पूर्वायाः। भाद्रपदायाः शेषं तयोत्तरा रेवती च झषः ॥६॥ अश्विनीपित्र्यमूलाद्या मेषसिंहहयादयः। विषमर्क्षान्निवर्तन्ते पादवृद्ध्या यथोत्तरम्। ॥७॥

इति श्रीवराह० बृहत्सं० राशिप्रविभागो नामद्व्युत्तरशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥

अश्विनी, भरणी और कृत्तिकाके प्रथम पादसे मेषराशि, कृत्तिकाके शेष तीनपाद, रोहिणी और मृगशिराके दो पाद वृष राशि है ।। १ ।। मृगशिराके शेष दो पाद, आर्द्रा और पुनर्वसुके तीन पादसे मिथुन और पुनर्वसुके शेष एक पादसे पुष्य और आश्लेषासे कर्क राशि कहाती है ।। २ ।। फिर सिंह राशि मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनीके प्रथम पादतक और उत्तराफाल्गुनीके बचे हुए अंश हस्त और चित्राका प्रथमार्द्ध कन्या राशिके नामसे प्रसिद्ध है ।।३ ।। तुलामें चित्राका अपरार्द्ध, स्वाति और विशाखाके तीन पाद और वृश्चिकमें विशाखाका एक पाद और अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्र विराजमान है ।। ४ ।। मूल पूर्वाषाढा और उत्तराषाढाके प्रथम पादसे धन राशि और मकर राशि उत्तराषाढाके तीन पाद श्रवण और धनिष्ठाका पूर्वार्द्ध है ।। ५ ।। धनिष्ठाका अपरार्ध शतभिषा और पूर्वाभाद्रपदाके पूर्व त्रिपादमें कुम्भ राशि और पूर्वाभाद्रपदाके शेष पाद, उत्तराभाद्रपदा और रेवतीसे मीन राशि होती है ।। ६।। (इसका संक्षेप) अश्विनी, मघा और मूलनक्षत्रके आदिमें ही क्रमानुसार मेष, सिंह और धन राशि आरब्ध हैं. परंतु यह विषम नक्षत्र अर्थात् तीसरे २ नक्षत्रकी पादवृद्धिकरके समाप्त होते हैं ।। ७।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१०२।।

अथ त्र्युत्तरशततमोऽध्यायः

विवाहपटलः

मूर्तौ करोति दिनकृद्विधवां कुजश्च राहुर्विपन्नतनयां रविजो दरिद्राम् । शुक्रः-शशाङ्कतनयश्च गुरुश्च साध्वीमायुःक्षयं प्रकुरुतेऽथ विभावरीशः ।।१।। कुर्वन्ति भास्करशनैश्चरराहुभौमा दारिद्र्यदुःखमतुलं नियतं द्वितीये। वित्तेश्वरीमविधवां गुरुशुक्रसौम्या नारीं प्रभूतनयां कुरुते शशाङ्कः ।।२।। सूर्येन्दुभौमगुरुशुक्रबुधास्तृतीये कुर्युः सदा बहुसुतां धनभागिनीं च । व्यक्तं दिवाकरसुतः सुभगां करोति मृत्युं ददाति नियमात् खलु सैंहिकेयः।।३।।स्वल्पं पयःस्रवति सूर्यसुते चतुर्थे दौर्भाग्यमुष्णकिरणः कुरुते शशी च । राहुः सपत्न्यमपि च क्षितिजोऽल्पवित्तां दद्याद्भृगुः सुरगुरुश्च-बुधश्चसौख्यम् ।।४।। नष्टात्मजां रविकुजौ खलु पञ्चमस्थौ चन्द्रात्मजो बहुसुतां गुरुभार्गवौ च । राहुर्ददाति मरणं शनिरुग्ररोगं कन्याप्रसूतिमचिरात् कुरुते शशाङ्कः ।।५।। षष्ठाश्रिताः शनिदिवाकरराहुजीवाः कुर्युः कुजश्च सुभगां श्वशुरेषु भक्ताम् । चन्द्रः करोति विधवामुशना दरिद्रामृद्धां शशाङ्कतनयः कलहप्रियां च ।।६।। सौरार-जीवबुधराहुरवीन्दुशुक्राः कुर्युः प्रसह्य खलु सप्तमराशिसंस्थाः । वैधव्यबन्धन-

वंशक्षयमर्थनाशं व्याधिप्रवासमरणानि यथाक्रमेण ॥७॥ स्थानेऽष्टमे गुरुबुधौ नियतं वियोगं मृत्युं शशी भृगुसुतस्य तथैव राहुः। सूर्यः करोत्यविधवां सरुजं महीजः सूर्यात्मजो धनवतीं पतिवल्लभां च॥८॥ धर्मे स्थिता भृगुदिवाकरभूमिपुत्रा जीवश्च धर्मनिरतां शशिजस्त्वरोगाम्। राहुश्च सूर्यतनयश्च करोति वन्ध्यां कन्याप्रसूतिमटनं कुरुते शशाङ्कः॥९॥ राहुर्नभस्तलगतो विधवां करोति पापे रतां दिनकरश्च शनैश्चरश्च। मृत्युं कुजोऽर्थरहितां कुलटां च चन्द्रः शेषा ग्रहा धनवतीं सुभगां च कुर्युः॥१०॥ आये रविर्बहुसुतां धनिनीं शशाङ्कः पुत्रान्वितां क्षितिसुतो रविजो धनाढ्याम्। आयुष्मतीं सुरगुरुः शशिजः समृद्धां राहुः करोत्यविधवां भृगुरर्थयुक्ताम् ॥११॥ अन्ते गुरुर्धनवतीं दिनकृद्दरिद्रां चन्द्रो धनव्ययकरीं कुलटां च राहुः। साध्वीं भृगुः शशिसुतो बहुपुत्रपौत्रां पानप्रसक्तहृदयां रविजः कुजश्च ॥१२॥ गोपैर्यष्ट्याहतानां खुरपुटदलिता या तु धूलिर्दिनान्ते सोद्वाहे सुन्दरीणां विपुलधनसुता रोग्यसौभाग्यकर्त्री। तस्मिन् काले न चर्क्षं न च तिथिकरणं नैव लग्नं न योगः ख्यातः पुंसां सुखार्थं शमयति दुरितान्युत्थितं गोरजस्तु ॥१३॥

इति श्रीवराहमि० बृहत्सं० विवाहपटलं नाम त्र्युत्तरशततमोऽध्यायः॥१०३॥

जिस समय स्त्रियोंका विवाह होता है, उस समयकी लग्नमें सूर्य या मंगल हों तो वह नारी विधवा होती है. लग्नमें राहु हो तो सन्तानको विपत्ति, शनि हो तो कन्या दरिद्र हो. शुक्र, बुध या बृहस्पति हो तो साध्वी और विवाहलग्नमें चंद्रमा हो तो आयुका क्षय होता है ॥ १ ॥ विवाहलग्नकी दूसरी राशिमें सूर्य, शनि राहु या मंगल होतो निरन्तर अत्यन्त दरिद्र करता है, बृहस्पति, बुध वा शुक्र होवे तो पतियुक्त और धनवती होती है और विवाहलग्नके दूसरे स्थानमें चन्द्रमा हो तो स्त्रीको अत्यन्त संतानवती करता है ॥ २ ॥ विवाहलग्नके तीसरे स्थानमें सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति होनेसे स्त्री सदा बहुत सन्तानवाली और धनवती होती है. शनैश्चर दूसरे स्थानमें होनेसे सुभगा होती है और राहुके विद्यमान होनेसे कन्याकी मृत्यु होती है ॥ ३ ॥ जो विवाहलग्नके चौथे स्थानमें शनि हो तो उस स्त्रीके स्तनोंमें साधारण दूध निकलता है. सूर्य या चन्द्रमा हों तो दुर्भाग्यवाली होती है. राहु हो तो कन्या सौतवाली होती है, मंगल हो तो अल्प धनवाली और बुध, बृहस्पति या शुक्र हो तो सुखी होती है ॥ ४ ॥ विवाहलग्नके पांचवे स्थानमें जो रवि या मंगल हों तो उसकी सन्तान जीवित नहीं रहती. बुध, बृहस्पति, शुक्र हो तो अत्यन्त पुत्रवती होती है. राहु होनेसे मृत्यु, शनिसे उग्र रोग, चन्द्र हो तो स्त्रीको शीघ्र कन्याकी जननी करता है ॥ ५ ॥ जो विवाहकी लग्नके छठे स्थानमें शनि, रवि, राहु, बृहस्पति या मंगल हो तो सुन्दरी और श्वशुरमें भक्ति रखनेवाली होती है. चन्द्रमा होनेसे विधवा और शुक्र होनेसे दरिद्रा होती है और बुध छठे स्थानमें हो तो स्त्री धनवती और कलहकारिणी होती है ॥ ६ ॥ विवाहलग्नके सातवें स्थानमें शनि, मंगल, बुध, बृहस्पति, राहु, सूर्य, चन्द्रमा या शुक्र हो तो स्त्री ग्रहोंके

क्रम फलसे विधवा, बन्धन, वध, क्षय, धननाश, व्याधि, प्रवास और मरणको पाती है ॥७॥ विवाहलग्नके आठवें स्थानमें बुध और बृहस्पति हो तो सदा पतिसे वियोग रहता है, चंद्रमा, शुक्र या राहु होनेसे मृत्यु होती है, सूर्यके होनेसे स्त्री पतियुक्त होती है, मंगल हो तो रोगी और शनि हो तो धनवती और पतिकी प्यारी होती है ॥ ८ ॥ जो विवाहलग्नके नववें स्थानमें शुक्र, सूर्य, मंगल या बृहस्पति हो तो वह स्त्री धार्मिका होती है, बुध हो तो रोगरहित, राहु और शनिके होनेसे बांझ होती है, चन्द्रमा हो तो कन्याकी माता और घूमने (फिरने) वाली होती है ॥ ९ ॥ जो राहु किसी स्त्रीकी विवाहलग्नसे दशमें स्थानमें हो तो वह स्त्री विधवा होती है. रवि या शनि हो तो पापमें रत होती है. मंगल हो तो मृत्यु, चन्द्रमा हो तो दरिद्रा, कुलटा और इनके अतिरिक्त जो और ग्रह दशमस्थानमें हों तो धनवती और सुभगा होती है ॥ १० ॥ जिस स्त्रीकी विवाहलग्नके ग्यारहवें सूर्य हो तो वह अत्यन्त पुत्रवती होती है. चन्द्रमा हो तो धनवती, मंगल हो तो पुत्रवती और शनि होवे तो धनवाली होती है. विवाहलग्नके ग्यारहवें स्थानमें बृहस्पति हो तो आयुष्मती कन्या होवे. बुध हो तो समृद्धिवती होती है. राहु हो तो पतियुक्त और शुक्रके होनेसे धनयुक्त होती है ॥ ११ ॥ जिस कन्याकी विवाहकालीन लग्नके बारहवें स्थानमें बृहस्पति विद्यमान हो वह स्त्री धनवाली होती है, सूर्य हो तो दरिद्रा होती है, चन्द्रमा हो तो धनकी खर्च करनेवाली, राहु हो तो कुलटा, शुक्र हो तो साध्वी, बुध हो तो अत्यन्त पुत्र पौत्रवती और शनि या मंगल हो तो उसका हृदय पानमें आसक्त रहता है ॥ १२ ॥ दिनके पिछले भागमें जब ग्वाले लकडीसें हांकते २ गायोंको घरमें लौटा लाते हैं उस कालमें उन ग्वालोंकी लकडीसे ताडित हुई गायोंके खुर करके दलित हो आकाशमार्गमें जो धूरि उडती है उसे गोधूलि कहते हैं. इस गोधूलिमें जिन सुन्दरियोंका विवाह होता है वे अत्यन्त धनवती, पुत्रवती आरोग्ययुक्त और सौभाग्यशालिनी होती हैं. गोधूलिसमयमें नक्षत्र, तिथि, करण, लग्न, योग किसीका भी विचार नहीं किया जाता है, इसकी प्रसिद्धि ऐसी है कि, गोधूलि[1] उठकर पुरुषोंकी पापराशिका नाश करती है ॥ १३ ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसाद मिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०३॥

अथ चतुरधिकशततमोऽध्यायः

गोचरफलम्.

प्रायेण सूत्रेण विनाशकृतानि प्रकाशरन्ध्राणि चिरन्तनानि । रत्नानि शास्त्राणि च योजितानि नवैर्गुणैर्भूषयितुं क्षमाणि ॥ १ ॥ प्रायेण गोचरो व्यवहार्योऽतस्तत्फलानि वक्ष्यामि । नानावृत्तेस्तन्नो मुखचपलत्वं क्षमन्त्वार्याः ॥ २ ॥ माण्डव्यगिरं

---

१ गोरजो धान्यधूलिश्च पुत्रस्यालिंगने रजः । विप्रपादरजो राजन् हन्ति दारुण-दुष्कृतम् ॥ महाभारते ।

श्रुवा न मदीया रोचतेऽथवा नैवम् । साध्वी तथा न पुंसां प्रिया यथा स्याज्जघनचपला ।। ३ ।। सूर्यः षट्त्रिदशस्थितस्त्रिदशषट्सप्ताद्यगश्चन्द्रमा जीवः सप्तनवद्विपञ्चमगतो वक्रार्कजौ षट्त्रिगौ । सौम्यः षड्द्विचतुर्दशाष्टमगतः सर्वेऽप्युपान्ते शुभाः शुक्रः सप्तमषड्दशर्क्षसहितः शार्दूलवत्त्रासकृत् ।। ४ ।। जन्मन्यायासदोऽर्कः क्षपयति विभवान् कोष्ठरोगाध्वदाता चित्तभ्रंशं द्वितीये दिशति च न सुखं वञ्चनां दृग्रुजं च । स्थानप्राप्ति तृतीये धननिचयमुदाकल्यकृच्चारिहन्ता रोगान्धत्ते चतुर्थे जनयति च मुहुः स्रग्धराभोगविघ्नम् ।।५।। पीडाः स्युः पञ्चमस्थे सवितरि बहुशो रोगादिजनिताः षष्ठेऽर्को हन्ति रोगान् क्षपयति च रिपूञ्छोकांश्च नुदति । अध्वानं सप्तमस्थो जठरगदभयं दैन्यं च कुरुते रुक्कासौ चाष्टमस्थे भवति सुवदना न स्वापि वनिता ।। ६ ।। रवावापद्दैन्यं रुगिति नवमेचित्तचेष्टाविरोधी जयं प्राप्नोत्युग्रं दशमगृहगे कर्मसिद्धि क्रमेण । जयं स्थानं मानं विभवमपि चैकादशे रोगनाशं सुवृत्तानां चेष्टा भवति सफला द्वादशे नेतरेषाम् ।। ७ ।। शशी जन्मन्यन्नप्रवरशयनाच्छादनकरो द्वितीये मानार्थौ ग्लपयति सविघ्नश्च भवति । तृतीये वस्त्रस्त्रीधननिचयसौख्यानि लभते चतुर्थेऽविश्वासः शिखा रिणि भुजङ्गेन सदृशः ।।८।। दैन्यं व्याधिं शुचमपि शशी पञ्चमे मार्गविघ्नं षष्टे वित्तं जनयति सुखं शत्रुरोगक्षयं च । यानं मानं शयनमशनं सप्तमे वित्तलाभं मन्दाक्रान्ते फणिनि हिमगौ चाष्टमे भीर्न कस्य ।। ९ ।। नवमगृहगो बन्धोद्वेगश्रमोदररोगकृद्दशमभ वने चाज्ञा कर्मप्रसिद्धिकरः सदा । उपचयसुहृत्संयोगार्थप्रमोदमुपान्त्यगो वृषभचरितान्दोषानन्ते करोति हि सव्ययान् ।। १० ।। कुजेऽभिघातः प्रथमे द्वितीये नरेन्द्रपीडा कलहारिदोषैः । भृशं च पित्तानलरोगचोरैरुपेन्द्रवज्रप्रतिमोऽपि यः स्यात् ।। ११ ।। तृतीयगश्चौरकुमारकेभ्यो भौमः सकाशात् फलमादधाति । प्रदीप्तिमाज्ञां धनमौर्णिकानि धात्वाकराख्यानि किलापराणि ।। १२ ।। भवति धरणिजे चतुर्थगे ज्वरजठरगदासृगुद्भवः । कुपुरुषजनिताच्च सङ्गमात् प्रसभमपि करोति चाशुभम् ।। १३ ।। रिपुगदकोपभयानि पञ्चमे तनयकृताश्च शुचो महीसुते । द्युतिरपि नास्य चिरं भवेत् स्थिरा शिरसि कपेरिव मालतीकृता ।। १४ ।। रिपुभयकलहैर्विवर्जितः सकनकविद्रुमताम्रकागमः । रिपुभवनगते महीसुते किमपरवक्त्रविकारमीक्षते ।। १५ ।। कलत्रकलहाक्षिरुग्जठररोगकृत् सप्तमे क्षरत्क्षतजरूक्षितः क्षयितवित्तमानोऽष्टमे । कुचे नवमसंस्थिते परिभवार्थनाशादिभिर्विलम्बितगतिर्भवत्यबलदेहधातुक्लमैः ।। १६ ।। दशमगृहगते समं महीजे विविधनाप्तिरुपान्त्यगे जयश्च । जनपदमुपरि स्थितश्च भुङ्क्ते वनमिव षट्चरणः सुपुष्पिताग्रम् ।। १७ ।। नानाव्ययैर्द्वादशगेमहीसुते सन्ताप्यतेऽनर्थशतैश्च मानवः । स्त्रीकोपपित्तैश्चसनेत्रवेदनैर्योऽपीन्द्रवंशाभिजनेन गर्वितः ।। १८ ।। दुष्टवाक्यपिशुनाहितभेदैर्बन्धनैः सकलहैश्च हृतस्वः । जन्मगे शशिसुते पथि गच्छन् स्वा-

गतेऽपि कुशलं न शृणोति ॥ १९ ॥ परिभवो धनगते धनलब्धिः सहजगे शशिसुते सुहृदाप्तिः ।नृपतिशत्रुभयशङ्कितचितो द्रुतपदं व्रजतिदुश्चरितैः स्वैः ॥२०॥ चतुर्थगे स्वजनकुटुम्बवृद्धयो धनागमो भवति च शीतरश्मिजे । सुतस्थिते तनयकलत्रविग्रहो निषेवते न च रुचिरामपि स्त्रियम् ॥ २१ ॥ सौभाग्यं विजयमथोन्नतिं च षष्ठे वैवर्ण्यं कलहमतीव सप्तमे ज्ञः । मृत्युस्थे सुतजयवस्त्रवित्तलाभो नैपुण्यं भवति मतिप्रहर्षणीयम् ॥ २२ ॥ विघ्नकरो नवमः शशिपुत्रः कर्मगतो रिपुहा धनदश्च । सप्रमदं शयनं च विधत्ते तद्गृहदोऽथ कुथास्तरणं च ॥ २३ ॥ धनसुखसुतयोषिन्मित्रवाह्याप्तितुष्टिस्तुहिनकिरणपुत्र लाभगे मृष्टवाक्यः । रिपुपरिभवरोगैः पीडितो द्वादशस्थे न सहति परिभोक्तुं मालिनीयोगसौख्यम् ॥ २४ ॥ जीवे यन्मन्यपगतधनधीः स्थानभ्रष्टो बहुकलहयुतः । प्राप्यार्थेऽर्थान् व्यरिरपि कुरुते कान्तास्याब्जे भ्रमरविलसितम् ॥ २५ ॥ स्थानभ्रंशात्कार्यविघाताच्च तृतीये नैकैः क्लेशैर्बन्धुजनोत्थैश्च चतुर्थे । जीवे शान्ति पीडितचित्तश्च स विन्देनैव ग्रामे नापि वने मत्तमयूरे ॥ २६ ॥ जनयति च तनयभवनमुपगतः परिजनशुभसुतकरितुरगवृषान् । सकनकपुरगृहयुवतिवसनकृन्मणिगुणनिकरकृदपि विबुधगुरुः ॥ २७ ॥ न सखीवदनं तिलकोज्ज्वलं न भवनं शिखिकोकिलनादितम् । हरिणप्लुतशावविचित्रितं रिपुगते मनसः सुखदं गुरौ ॥ २८ ॥ त्रिदशगुरुः शयनं रतिभोगं धनमशनं कुसुमान्युपवाह्यम् । जनयति सप्तमराशिमुपेतो ललितपदां च गिरं धिषणां च ॥ २९ ॥ बन्धं व्याधिं चाष्टमे शोकमुग्रं मार्गक्लेशं मृत्युतुल्यांश्च रोगान् । नैपुण्याज्ञापुत्रकर्मार्थसिद्धिं धर्मे जीवः शालिनीनां च लाभम् ॥ ३० ॥ स्थान कल्यधनहा दशर्क्षगस्तत्प्रदो भवति लाभगो गुरुः । द्वादशेऽध्वनि विलोमदुःखभाग्याति यद्यपि नरो रथोद्धतः ॥ ३१ ॥ प्रथमगृहोपगो भृगुसुतः स्मरोपकरणैः सुरभिमनोज्ञगन्धकुसुमाम्बरैरुचयय् । शयनगृहासनयुतस्य चानुकुरुतेसमदविलासिनीमुखसरोजषट्चरणताम् ॥ ३२ ॥ शुक्रे द्वितीयगृहगे प्रसवार्थधान्यभूपालसन्नतिकुटुम्बहितान्यवाप्य । संसेवते कुसुमरत्नविभूषितश्च कामं वसन्ततिलकद्युतिमूर्द्धजोऽपि ॥। ३३ ॥ आज्ञार्थमानास्यपदभूतिवस्त्रशत्रुक्षयान् दैत्यगुरुस्तृतीये । धत्ते चतुर्थश्च सुहृत्समाजं रुदेन्द्रवज्रप्रतिमां च शक्तिम् ॥ ३४ ॥ जनयति शुक्रः पञ्चमसंस्थो गुरुपरितोषं बन्धुजनाप्तिम् । सुतधनलब्धि मित्रसहायाननवसितत्वं चारिबलेषु ॥ ३५ ॥ षष्ठे भृगुः परिभवरागतापदः स्त्रीहेतुकं जनयति सप्तमेऽशुभम् । यातोऽष्टमं भवनपरिच्छदप्रदो लक्ष्मीवतीमुपनयति स्त्रियं च सः ॥ ३६ ॥ नवमे तु धर्मवनितासुखभाग्यभृगुजेऽर्थवस्त्रनिचयश्च भवेत् । दशमेऽवमानकलहान्नियमात् प्रमिताक्षराण्यपि वदन् लभते ॥ ३७ ॥ उपान्त्यगो भृगोः सुतः सुहृद्धनान्नगन्धदः । धनाम्बरागमोऽन्त्यगे स्थिरस्तु नाम्बरागमः ॥ ३८ ॥ प्रथमे रविजे विषवह्निहतः

स्वजनैर्वियुतः कृतबन्धवधः। परदेशमुपेत्य सुहृद्भवनो विमुखार्थसुतोऽटकदीन-मुख ॥ ३९ ॥ चारवशाद्द्वितीयगृहगे दिनकरतनये रूपसुखापवर्जिततनुर्विगत-मदबलः। अन्यगुणैः कृतं वसुचयं तदपि खलु भवत्यम्बिव वंशपत्रपतितं न बहु न च चिरम् ॥ ४० ॥ सूर्यसुते तृतीयगृहगे धनानि लभते दासपरिच्छदोष्ट्रमहिषा-श्वकुञ्जरखरान्। सद्मविभूतिसौख्यममितं गदव्युपरमं भीरुरपि प्रशास्त्यधिरिपूंश्च वीरललितैः ॥ ४१ ॥ चतुर्थं गृहं सूर्यपुत्रेऽभ्युपेते सुहृद्वित्तभार्यादिभिर्विप्रयुक्तः। भवत्यस्य सर्वत्र चासाधुदुष्टं भुजङ्गप्रयातानुकारं च चित्तम् ॥ ४२ ॥ सुतधन-परिहीनः पञ्चमस्थे प्रचुरकलहयुक्तश्चार्कपुत्रे। विनिहतरिपुरोगः षष्ठयाते पिबति च वनितास्यं श्रीपुटोष्ठम् ॥ ४३ ॥ गच्छत्यध्वानं सप्तमे चाष्टमे च हीनः स्त्रीपुत्रैः सूर्यजे दीनचेष्टः। तद्वद्धर्मस्थे वैरहृद्रोगबन्धैधर्मोऽप्युच्छिद्यद्वैश्वदेवीक्रियाद्यः ॥४४॥ कर्मप्राप्तिर्दशमेऽर्थक्षयश्च विद्याकीर्त्योः परिहाणिश्च सौरे। तैक्ष्ण्यं लाभे परयो-षार्थलाभा अन्त्ये प्राप्नोत्यपि शोकोर्मिमालाम् ॥ ४५ ॥ अपि कालमपेक्ष्य च पात्रं शुभकृद्विदधात्यनुरूपम्। न मधो बहुकं कुडवे च विसृजत्यपि मेघवितानः ॥ ४६ ॥ रक्तैः पुष्पैर्गन्धैस्ताम्रैः कनकवृषबकुलकुसुमैर्दिवाकरभूजौ भक्त्या पूज्याविन्दुर्धेन्वा सितकुसुमरजतमधुरैः सितश्च मदप्रदैः। कृष्णद्रव्यैः सौरिः सौम्यो मणिरजततिल-ककुसुमैर्गुरुः परिपीतकैः प्रीतैः पीडा न स्यादुच्चाद्यदि पतति विशति यदि वा भुजङ्गविजृंभितम् ॥ ४७ ॥ शमयोद्गतामशुभदृष्टिमपि विबुधविप्रपूजया। शान्ति-जपनियमदानदमैः सुजनाभिभाषणसमागमैस्तथा ॥ ४८ ॥ रविभौमौ पूर्वार्धे शशिसौरौ कथयतोऽन्त्यगौ राशेः। सदसल्लक्षणमार्या गीत्युपगीत्योर्यथासंख्यम् ॥ ४९ ॥ आदौ यादृक् सौम्यः पश्चादपि तादृशो भवति। उपगीतेर्मात्राणां गणव-त्सत्सम्प्रयोगो वा ॥ ५० ॥ आर्याणामपि कुरुते विनाशमन्तर्गुरुर्विषमसंस्थः। गण इव षष्ठे दृष्टश्च सर्वं लघुतां गतो नयति ॥५१॥ अशुभनिरीक्षितः शुफलो बलिना बलवानशुफलप्रदश्च शुभदृग्विषयोपगतः। अशुभशुभावहि स्वफलयोर्व्रजतः समतामिदमपि गीतकं च खलु नर्कुटकं च यथा ॥ ५२ ॥ नीचेऽरिभेऽस्तेचारिदृष्टस्य सर्वंवृथा यत्परिकीर्तितम्। पुरतोऽन्धस्येव भामिन्याःसविलासकटाक्षनिरीक्षणम् ॥ ५३ ॥ सूर्यसुतोऽर्कफलसमश्चन्द्रसुतश्छन्दतः समनुयाति। यथा स्कंधक मार्य-गीतिर्वैतालीयं च मागधी गाथार्याम् ॥ ५४ ॥ सौरोऽर्करश्मिरागात् सविकारो लब्धवृद्धिरधिकतरम्। पित्तवदाचरति नृणां पथ्यकृतां न तु तथार्याणाम् ॥ ५५ ॥ यादृशेन ग्रहेणेन्दुर्युक्तस्तादृग्भवेत्सोऽपि। मनोवृत्तिसमायोगाद्विकार इव वक्त्रस्य ॥ ५६ ॥ पञ्चमं सर्वपादेषु सप्तमं द्विचतुर्थयोः। यद्वच्छ्लोकाक्षरं तद्वल्लघुतां याति दुःस्थितैः ॥५७॥ प्रकृत्यापि लघुर्यश्च वृत्तबाह्ये व्यवस्थितः। सयाति गुरुतां लोके यदा स्युःसुस्थिताः ग्रहाः ॥ ५८ ॥ प्रारब्धमसुस्थितैर्ग्रहैर्यत् कर्मात्मविवृद्धयेऽबुधैः।

विनिहन्ति तदेव कर्म तान् वैताली यमिवायथाकृतम् ॥ ५९ ॥ सौस्थित्यमवेक्ष्य यो ग्रहेभ्यः कालेप्रक्रमणं करोति राजा । अणुनापि स पौरुषेण वृत्तस्यौपच्छन्दसि कस्य याति पारम् ॥ ६० ॥ उपचयभवनोपयातस्य भानोर्दिनेकारयेद्धेमताम्राश्वकाष्ठास्थिचर्मोर्णिकाद्रिद्रुमत्वग्नखव्याल चौरीयुधीयाटवी क्रूरराजोपसेवाभिषेकौषधक्षौमपण्यादिगोपालकांतारवैद्याश्मकूटावदाताभिविख्यातशूराहवश्लाघ्ययाज्याग्निकार्याणि सिध्यंतिलग्नस्थि ते वा रवौ । शिशिरकिरणवासरे तस्यवाप्युद्गमेकेन्द्रसंस्थेऽथवा भूषणं शंखमुक्ताब्जरूप्याम्बुयज्ञेक्षुभोज्याङ्गनाक्षीरसुस्निग्धवृक्षक्षुपानूपधान्यद्रवद्रव्यविप्राश्वशीतक्रियाशृङ्गिकृष्यादिसेनाधिपाक्रंदभू पालसौ भाग्यनक्तञ्चरश्लष्मिकद्रव्यमातङ्गपुष्पाम्बरारम्भसिद्धिर्भवेत् । क्षितितनयदिनेप्रसिध्यन्ति धात्वाकरादिनि सर्वाणि कार्याणि चामीकराग्निप्रवालायुधक्रौर्यचौर्याभिघाताटवीदुर्गसेनाधिकारास्तथा रक्तपुष्पद्रुमारक्तमन्यच्चतिक्तकटुद्रव्यकूटाहिताशार्जितस्वाः कुमारा भिषक्छाक्यभिक्षुक्षपावृत्तिकौशेयशाठ्यानिसिध्यन्ति दम्भस्तथा । हरितमणिमहीसुगन्धीनि वस्त्राणि साधारणं नाटकं शास्त्रविज्ञानकाव्यानि सर्वाः कला युक्तयो मन्त्रधातुक्रियावादनैपुण्यपण्यव्रता योगदूतास्तथायुष्यमायानृतस्नानह्रस्वानि दीर्घाणि मध्यानि च च्छन्दतश्चण्डवृष्टिप्रयातानुकारीणि कार्याणि सिध्यन्ति सौम्यस्य लग्नेऽह्नि वा ॥ ६१ । सुरगुरुदिवसे कनकं रजतं तुरगाः करिणो वृषभा भिषगोषधयः । द्विजपितृसुरकार्यपुरः स्थितधर्मनिवारणचामरभूषणभूपतयः । विबुधभवनधर्मसमाश्रयमङ्गलशास्त्रमनोज्ञबलप्रदसत्यगिरः । व्रतहवनधनानि च सिद्धिकराणि तथा रुचिराणि च वर्णकदण्डकवत् ॥ ६२ ॥ भृगुसुतदिवसे च चित्रवस्त्रवृष्यवेश्यकामिनीविलासहासयौवनोपभोगरम्यभमयः । स्फटिकरजतमन्मथोपचारवाहनेक्षशारदप्रकारगोवणिक्कृषीवलौषधाम्बुजानि च । सवितृसुतदिने च कारयेन्महिष्यजोष्ट्रकृष्णलोहदासवृद्धनीचकर्मषक्षिचौरपाक्षिकान् । च्युतविनयविशीर्णभाण्डहस्त्यपेक्षविघ्नकारणानि चान्यथा न साधयेत् समुद्रगोऽप्यपां कणम् ॥ ६३ ॥ विपुलामपि बुद्ध्वाछन्दोविचितिं भवति कार्यमेतावत् । श्रुतिसुखदवृत्तसंग्रहमिममाह वराहमिहिरोऽतः ॥ ६४ ॥

इति श्रीवराह० बृ० ग्रहगोचराध्यायो नाम चतुरधिकशततमो[1]ऽध्यायः ॥ १०४ ॥

जिन प्राचीन रत्नोंके छिद्र प्रकाशित हुए हैं, जो वह भी विना सूतके धारण किये जायँ अर्थात् सुन्दर धातु आदि करके बांधे जायँ ऐसा होनेसे वह जिस प्रकार नवीन २ गुणोंसे भूषित करनेमें समर्थ होते हैं, तैसेही प्रकाशित छिद्र प्राचीन शास्त्र भी विना सूत्रके निबद्ध होनेपर नये २ गुणों करके बहुधा शोभित करनेमें समर्थ होते हैं इस कारण ग्रहगणोंका गोचरफल अत्यन्त व्यवहृत

१ इतः प्रभृति ग्रन्थपरिसमाप्ति यावदध्यायद्वयं क्वचिदादर्शेषु न दृश्यते टीकाकृता भट्टोत्पलेन च नैवोल्लिखितं न वा व्याख्यातम् ।

होनेके कारणमें अनेक प्रकारके वृत्त (छन्द) करके उसे समस्त गोचरफलको प्रकाशित करता हूं अतएव आर्य पंडितगण मेरे 'मुखचपलत्व' के प्रधान चापल्यको क्षमा करें. (मैं इस ग्रन्थमें अनेक प्रकारके छन्द प्रकाशित करूंगा. परन्तु तिनके सूत्र प्रायही नहीं होंगे) ।। १ ।। २ ।। जिन्होंने माण्डव्य ऋषिके वाक्य सुने हैं, हमारे वाक्य उनको अच्छे न लगेंगे, अथवा इस बातका कहना भी उचित नहीं कारण जिस प्रकारसे पुरुषोंको 'जघनचपला' चञ्चल नितम्बवाली स्त्री प्यारी होती है उसी प्रकारसे साध्वी स्त्री प्यारी नहीं होती ।।३।। (जन्मराशि अर्थात् जन्मकालमें चन्द्रमा जिस राशिमें हो, उस स्थानसे गोचरका विचार करना चाहिये), जो जन्मराशिसे सूर्य छठे, तीसरे या दशवें स्थानमें हों, जो चन्द्रमा तीसरे, दशवें, छठे, पहले या सातवें स्थानमें हो, जो गुरु सातवें, नववें, दूसरे या पांचवें स्थानमें हो. जो शनि और मंगल तीसरे या छठे स्थानमें हों, बुध दूसरे, चौथे, छठे, आठवें या दशवें स्थानमें हो और चाहे जो कोई ग्रह ग्यारहवें हो तो वह शुभदायी होते हैं और शुक्र जो सातवें, छठे या दशवें स्थानमें हो तो 'शार्दूल' के समान (शार्दूलविक्रीडित) त्रासकारी होता है ।। ४ ।। गोचरके बीच यदि जन्मराशिमें हो तो खेद, वित्तका नाश, उदररोग और मार्ग भ्रमण होता है. दूसरे स्थानमें सूर्य हो तो धनका नाश, असुख, धोखा और नेत्ररोग होता है, तीसरे स्थानमें सूर्य हो तो स्थानकी प्राप्ति, धनसंचय, हर्ष, मंगल और शत्रुका नाश होता है. चौथे स्थानमें सूर्य हो तो रोग और 'स्रग्धरा' भोगमाला और पृथ्वीके भोग करनेमें विघ्न करता है ।। ५ ।। पांचवें स्थानमें सूर्य हो तो अनेक प्रकारके रोगोंसे और शत्रुसे पीडा होती है, छठें स्थानमें हो तो रोग, शोक और शत्रुका नाश होता है, सातवें स्थानमें हो तो मार्गभ्रमण, उदररोग और दीनता होती है, आठवें स्थानमें हो तो रोग और खांसी होती है और अपनी स्त्री भी 'सुवदना' नहीं रहती अर्थात् अपनेसे मुख टेढा रखती है ।। ६ ।। नववें स्थानमें सूर्य हो तो आपत्ति, दीनता, रोग और धनकी चेष्टामें विरोध होता है, दशम स्थानमें सूर्य हो तो अत्यन्त जय और कामकी सिद्धि होती है, ग्यारहवें स्थानमें हो तो 'सुर्वृत्त' चेष्टा (सदाचार) सुव्यवहारकी चेष्टा होती है, बारहवें स्थानमें सूर्य हो तो दुर्वृत्त चेष्टा होती है ।।७।। जन्मका चन्द्रमा हो तो अन्न, उत्तम शय्या और ओढनेको वस्त्र देता है, दूसरा चन्द्रमा हो तो मान और धनकी ग्लानि और विघ्न करता है, तीसरा चन्द्रमा हो तो वस्त्र, स्त्री, धनसमूह और सुखलाभ होता है, चौथा चन्द्रमा हो तो 'शिखरिणि' मोरवाले पर्वतपर जैसे सर्पका अविश्वास है, वैसा ही अविश्वास होता है ।।८।। पांचवा चन्द्रमा हो तो दीनता, व्याधि, शोक और मार्गका विघ्न उत्पन्न होता है, छठा चन्द्रमा हो तो धन, सुख देता और शत्रु व रोगका क्षय करता है, सातवां चन्द्रमा हो तो यान, मान, शयन, अशन और धनका लाभ होता है, आठवां चंद्रमा हो तो सर्पद्वारा 'मन्दाक्रांता' अर्थात् थोडे दबाये हुए सर्पसे सबको भय होता

---

१ इस अध्यायके मध्य (' ') इस चिह्नमें जो शब्द हों उसको छंदका नाम समझना चाहिये. अर्थात् श्लोक उसी छंदसे बनाया है, ऐसे लघुगुरुविन्यासयुक्त होनेपरही वह छंद होगा, जितने छंद इस अध्यायमें नामयुक्त हैं तिनकी गति और गणोंके साथ लघुगुरुविन्यास इस अध्यायकी परिशिष्टमें लिखा जायगा ।

है ।। ९ ।। नवम चन्द्रमा हो तो बन्धन, उद्वेग, श्रम और उदररोग देता है, दशवां हो तो आज्ञा और कर्मकी सिद्धि करता है, उपान्तगत (एकादशस्थित) हो तो वृद्धि, मित्रके संयोगसे हुआ आनन्द और अन्तस्थित (बारहवां) हो तो व्ययुक्त 'वृषभचरित' (मत्त बैलकी भांति) समस्त दोष करता है ।। १० ।। जन्ममें मंगल हो तो उपद्रव, दूसरा हो तो क्लेश, शत्रु और दोषसे राजपीडा और जो 'उपेन्द्रवज्र' के समान भी अर्थात् बडा कठोर भी हो तो भी अत्यंत पित्त, अनलसे उत्पन्न हुए रोगोंसे और चोरों करके अत्यन्त पीडित होता है ।।११।। तीसरा मंगल हो तो चोर और कुमारोंसे यह सब फल होते हैं, यथा प्रदीप्ति आज्ञा, पालन, धन ऊनवस्त्र, धातु और खानसे पैदा हुए द्रव्य व और सब द्रव्योंका लाभ होता है. यह 'उपजाति' छंद है ।।१२।। चौथा मंगल हो तो ज्वर और जठररोग, असृगुद्भव (रक्तोद्भ्रध) पीडा होती है और बलपूर्वक कुपुरुषके संगमसे अ 'भद्रिका' (अशुभ) करता है ।।१३।। पांचवां मंगल हो तो लोकका रिपु, रोग और कोपसे भय और पुत्रकृत शोक प्राप्त होता है और उसकी द्युति वानरके मस्तकपर स्थित हुई 'मालती' की फूलमालाके समान सदा स्थिर नहीं रहती ।।१४।। छठा मंगल हो तो संसारमें शत्रुभयहीन, कलहरहित होता है और कनक विद्रुम व तांबेका लाभ होता है और उसको क्या 'अपर-क्त्र' (पराये मुखका विकार) देखना पडता है ।।१५।। सातवें मंगल पडा हो तो स्त्रीके साथ क्लेश, नेत्र-रोग और जठररोग देता है, आठवां मंगल हो तो मनुष्य टपकते हुए रुधिरसे लिप्त और धनको खर्च करनेवाला होता है, नववां मंगल हो तो लोकमें अनादर, धनका नाश आदिसे बलहीन देहवाला और धातुक्षय करके 'विलम्बगति' (मंदगति) हो जाता है ।।१६।। दशवें मंगल हो तो मनुष्यको विविध प्रकारके धनकी प्राप्ति होती है ग्यारहवें होनेसे जयकी प्राप्ति होती है और वह 'पुष्पिताग्र' (अत्यन्त फुलाने) पुष्पिताग्र बनमें भ्रमरके समान ऊंचे पदपर स्थित होकर देशका भोग करता है ।।१७।। बारहवें मंगल हो तो मनुष्य अनेक प्रकारके खर्च करता है और सैकडों अनर्थोंसे सन्तापित होता है और वह पुरुष 'इंद्रवंश' (जननेमें प्रधान कुलमें उत्पन्न हुआ) का कहकर गर्वित हो और वह स्त्रीकोप, पित्त, नेत्रवेदनायुक्त होता है ।।१८।। जन्मस्थानमें बुध हो तो मनुष्य चुगुलखोरों करके भेदको प्राप्त हो बंधन और कलहद्वारा सब कुछ खो देता है और मार्गमें गमन करता २ 'स्वागत' (सुखागत) विषयमें भी कुशल श्रवण नहीं कर सकता ।।१९।। दूसरा बुध हो तो अनादर और धनका लाभ होता है, तीसरे स्थानमें बुध हो तो मित्रकी प्राप्ति होती है. परंतु वह राजा और शत्रुके भयसे शंकित चित्त हो अपने बुरे चरित्रके हेतुसे 'द्रुतपद' से (शीघ्रतासे गमन) करता है ।।२०।। बुध चौथे स्थानमें हो तो स्वजन और कुटुम्बकी वृद्धि और धनागम होता है. पांचवां बुध हो तो पुत्र और स्त्रीके साथ लडाई होती है और लोकमें 'रुचिरा' (सुंदरी स्त्री) से भोग नहीं करता ।।२१।। बुध छठा हो तो सौभाग्य, विजय और उन्नतिको करता है. सातवां बुध हो तो अत्यन्त क्लेश

और बिकलता होती है, आठवां बुध हो तो सुत, जय, वस्त्र और धनका लाभ होनेके सिवाय बुद्धि 'प्रहर्षणी' (हर्ष देनेवाली) निपुणता प्राप्त होती है ॥२२॥ नववां बुध हो तो विघ्नकारी, दशवां हो तो शत्रुका नाश धन और दांत (हाथीदांत) के बने हुए गृहमें चित्रकम्बलमय आस्तरण (बिछौने) से युक्त शय्यापर प्रमदायुक्त शयनविधान करता है. यह 'दोधकछंद' है ॥२३॥ ग्यारहवें बुध हो तो धन, सुख, सुत, स्त्री, मित्र और वाहनकी प्राप्ति से संतोष और शुद्धवाक्यकी प्राप्ति होती है., बारहवां बुध हो तो मनुष्य शत्रुहार और रोगसे पीडित होकर 'मालिनी' (माला धारण करनेवाली स्त्री) के संयोगका सुख नहीं भोग सकता है ॥२४॥ जन्मका बृहस्पति हो तो मनुष्यकी बुद्धि और धनका नाश, स्थानभ्रष्ट और बहुतसे क्लेशोंसे क्लेशित होकर रहता है, दूसरी राशिमें गुरु हो तो मनुष्य लोकमें शत्रुहीन हो धनलाभ करता है और रमणीय भार्याके मुखपद्म अर्थात् मुखरूपी कमलमें 'भ्रमरविलसित' की (भ्रमरके तुल्य विलास) नांई विलास करता है ॥२५॥ तीसरा बृहस्पति हो तो मनुष्य स्थानसे चलायमान होता है, उसके कार्योंमें विघ्न पडता है, चौथे बृहस्पति हो तो मनुष्य बंधुजनोंकरके उत्पन्न हुए अनेक प्रकारके क्लेशोंसे पीडित-चित्त हो क्या ग्राममें क्या 'मत्तमयूर' युक्त वनमें, कहीं भी शान्तिका भोग नहीं कर सकता ॥२६॥ बृहस्पति पांचवां हो तो मनुष्यको परिजन, कल्याण, पुत्र, हस्ती, अश्व और बैलका लाभ होता है और सुवर्णयुक्त, पुर, गृह, युवती वस्त्र और 'मणिगुणनिकर' (मणिके समान गुणोंको) प्राप्त करता है ॥२७॥ छठा बृहस्पति हो तो सखीका वदन तिलकसे उज्ज्वल नहीं होता, समस्त भवन मोर और कोयलोंके शब्दसे शब्दायमान नहीं होते और 'हरिण-प्लुत' शाव अर्थात् कूदता फांदता मृगछौना भी हो तो भी वह विचित्रभवन उस मनुष्यके मनमें सुख देनेको समर्थ नहीं होता अर्थात् उसका गृह वनसा हो जाता है ॥२८॥ सातवें बृहस्पति हो तो शयन रतिभोग, धन, भोजन, फूल, सवारी और बुद्धियुक्त 'ललितपदा' (ललितपदोंवाले) वाक्य उत्पन्न करता है ॥२९॥ आठवां बृहस्पति हो तो उस मनुष्यका बंधन होता है. व्याधि, उग्रशोक, मार्गक्लेश व मृत्युके समान रोग उसको उत्पन्न होते हैं. नवम बृहस्पति हो तो निपुणता, आज्ञा, पुत्र, कर्म, धनकी सिद्धि और 'शालिनी' (सुंदरी) का लाभ होता है ॥३०॥ बृहस्पति दशवें स्थानमें हो तो मनुष्यके स्थान, कल्याण और धनका नाश करते हैं, ग्यारहवें हो तो इन सबको देते हैं और बारहवें स्थानमें हो तो चाहे मनुष्य 'रथोद्धत' रथ पर भी चढकर जाय तो भी मार्गमें उसको प्रतिकूल दुःख मिलते हैं ॥३१॥ मनुष्यकी जन्मराशिके पहले स्थानमें शुक्र हो तो मनोहर सुगंधवाले पुष्प, वस्त्रादि कामदेवके उपकरणको बढाते हैं और शयन, गृह, आसन व भोजनयुक्त उस पुरुषको मदमाती 'विलासिनी' स्त्रियोंके मुखरूपी कमलमें भ्रमरपनका अनुकरण यह शुक्रग्रह करता है ॥३२॥ दूसरा शुक्र हो तो पुत्र, धन, धान्य, राजमान्य, कुटुंब और समस्त हित प्राप्त करके संसारमें 'वसंत-तिलक, वसन्तकालके तिलकपुष्पकी शोभाके समान शोभायमान

केशोंवाला होकर और कुसुम व रत्नोंसे भूषित हो भली भांतिसे कामदेवता सेवन करता है ॥३३॥ तीसरे स्थानमें शुक्र हो तो आज्ञा, धन, मान, संपत्ति, पुत्र, वस्त्र और शत्रु-क्षयका लाभ होता है. चौथे शुक्र हो तो मित्रोंसे मिलाप और रुद्र वा 'इन्द्रवज्र' अर्थात् इंद्रके वज्रकी शक्ति करता है ॥३४॥ शुक्र पांचवें स्थानमें हो तो मनुष्यको बहुत संतुष्ट करता है, बंधुजनकी प्राप्ति, पुत्र और धनका लाभ, मित्र व सहायका मिलना और शत्रु-बलसे 'अनवंसित' पन (असमाप्तता) करता है ॥३५॥ छठे शुक्र हों तो मनुष्यको पराभव, रोग और संताप देते हैं. सातवें हो तो स्त्रीके हेतुसे अशुभ देते हैं और आठवें स्थानमें हो तो मनुष्यको भवन और पोशाक देते हैं और वह मनुष्य 'लक्ष्मीवती' (धनभाग्य-शालिनी) स्त्रीको पाता है ॥३६॥ नववां शुक्र हो तो लोकमें धर्म और स्त्रीका सुखका भोगी होकर धन और वस्त्रोंको प्राप्त करता है, दशवें शुक्र हों तो अपमान और कलहका नियम कहते भिक्षासे 'प्रमिताक्षर' साधारण भाषण प्राप्त करता है ॥३७॥ शुक्र ग्यारहवें हो तो मित्र, धन और गंधदान करते हैं. बारहवें हो तो मनुष्यको धन और वस्त्रका लाभ होता है, परंतु 'स्थिर' हो (अधिक दिन रहे) तो वस्त्रका लाभ नहीं होता ॥३८॥ मनुष्यके जन्मकालीन चंद्रमाके अधिष्ठान स्थानके पहले स्थानमें शनि स्थित हो तो वह मनुष्य विष ओर अग्निसे हत होता है, स्वजनोंसे उसका वियोग होता है, बंधनयुक्त और वध होता है, पराये देशमें गमन, मित्रके साथ वास करके सुत (पुत्र) और धनमें स्पृहाहीन हो भी 'सुतोऽटक' याचकके समान होकर भ्रमण करता है ॥३९॥ शनैश्चर गतिके क्रमसे गोचरके दूसरे गृहमें हो तो संसारमें रूप और सुखसे हीन शरीर व मद और बलसे भी हीन होता है. यद्यपि और गुणसे वह पुरुष किसी समयमें धन इकट्ठा करता है वहभी तिस कालमें 'वंशपत्रपतित' बांसके पत्तेपर पडे हुए जलके समान थोडे समयतक स्थित रहता है ॥४०॥ शनैश्चर तीसरेमें हो तो बहुत धन, दास, परिच्छद, ऊंट, भैंस, घोडे, हाथी और गर्दभोंका लाभ होता है. घर, ऐश्वर्य और बहुत सुखलाभ करके रोगहीन होता है और स्वयं डरपोक होनेपरभी शत्रुओंको 'धीरललित' (शूरचरित्र) द्वारा शासन करता है ॥४१॥ चौथा शनैश्चर हो तो मनुष्य मित्र, धन और भार्या आदिसे वर्जित होता है और उसका चित्त सदा असाधु दुष्ट और 'भुजङ्गप्रयात' अनुकारी अर्थात् सांपकी चालके समान कुटिल होता है ॥४२॥ शनैश्चर पांचवा हो तो मनुष्य पुत्र और धनहीन और बहुतसे क्लेशसे युक्त होता है. छठे स्थानमें हो तो शत्रु और रोगहीन होकर स्त्रीके मुखमें 'श्रीपुट' अधर पान करता है ॥४३॥ शनैश्चर सातवें स्थानमें हो तो मनुष्य मार्गमें गमन करता फिरता है, आठवें हो तो स्त्रीपुत्रहीन और दीनके समान चेष्टा करता है. नववां हो तो शत्रुता, हृद्रोग और बंधनसे 'वैश्वदेवी' (धर्मकार्यविशेष) आदि कार्य संपन्न समस्त धर्मकार्य उच्छिन्न करता है ॥४४॥ दशवां शनि हो तो मनुष्यको कर्मकी प्राप्ति, धनक्षय और विद्या व कीर्तिकी हानि होती है. ग्यारहवां शनि हो तो मनुष्यको

अत्यन्त लाभ, परस्त्री और धनका लाभ होता है. बारहवें स्थानमें शनि हो तो शोकसागरकी 'उर्मिमाला' (तरंगें) प्राप्त होती हैं ।।४५।। जिस प्रकार मेघसमूह वसंतकालके समय कुडवमें (एक काठका पात्र जिसमें पावभर अन्न आ सकता है) बहुत जल वर्षण नहीं कर सकते, तैसेही यह ग्रह (शनि) शुभकारी होनेपर भी काल और पात्रकी अपेक्षा करके तैसाही फल विधान करता है ।।४६।। सूर्य और मंगलकी शांतिके लिये पूजा करनी हो तो लाल रंगके फूल, गंध, तांबा, सुवर्ण; वृष मौलसिरीके फूल इन सबसे भक्तिके साथ पूजा करे गोदान श्वेत फूल, चांदी और मधुर द्रव्यसे चंद्रमाको और श्वेत पुष्पादि और मदप्रद (पुष्टिकर) द्रव्य करके शुक्रकी पूजा करे. शनैश्चरको काले पादार्थोंसे, बुधको मणि, चांदी और तिलकके फूलोंसे और बृहस्पतिकी पीले द्रव्योंसे भक्ति के साथ पूजा करे. जब ग्रह पुजासे प्रसन्न हो जाते हैं तब यदि ऊंचेसे गिरे अथवा भुजङ्गविजृम्भित' (सर्पके विस्तारित ग्राससे) प्रवेश करे तो भी उस मनुष्यको पीडा नहीं होती ।।४७।। जिस प्रकार अशुभ दृष्टिके 'उद्‌गता' (उपस्थित) होनेपर देवता और ब्राह्मणोंकी पूजा करके उसको शांत किया जाता है वैसे ही शांति जप, दान, दम, गुण सुजनका भाषण, सुजनोंके समागमसे समस्त गोचरजनित दोषोंका नाश किया जा सकता है ।।४८।। आर्यावृत्तके अंतर्गत 'गीति' और 'उपगीति' नामक दो आर्या हैं जैसे आर्या लक्षणका पूर्वार्द्ध और परार्द्ध बराबर होता है, वैसे ही सूर्य, मंगल, चंद्रमा और शनिग्रह गोचरमें राशीके पूर्वार्द्ध (राशिप्रवेश) और राशिके परार्द्धमें (राशित्यागकालमें) गोचर फल देते हैं ।।४९।। आर्थालक्षणके 'उपगीति' नामक भेदके मात्रा विन्यासका गणसंख्यान जिस प्रकार पूर्वार्द्ध और परार्द्धमें समभावापन्न अर्थात् दोनों स्थानोंमें बराबर फल देता है, वैसे ही बुधग्रह राशिके पूर्वार्द्ध और परार्द्धमें बराबर फल देता है ।।५०।। आर्यावृत्तके मध्यमें मध्यगुरु गण विषम गणमें पतित हो तो वह गण जैसे आर्याछंदका नाश करता है और वह गण (मध्यगुरु गण) जो छठे स्थानमें गिरनेसे जैसे उसको सर्वलघुत्व (चारलघु) प्राप्ति कराता है, वैसेही गुरु (बृहस्पति) विषमराशिमें जानेपर 'आर्य' गणोंके बीचमें भी नाश फैलाता है, परंतु गणदेवताके समान, जन्म राशिका छठा स्थान बृहस्पतिसे देखा जाय या आक्रान्त हो तो मनुष्योंको सर्व-लघुत्व (गौरवहीन) सबमें प्राप्ति कराता है ।।५१।। जैसे 'नकुर्टक'[१] गीत सदाही समान है, वैसे ही जन्मकालीन अशुभ फलदायी या शुभ फलदायी ग्रह जो क्रमानुसार बलवान शुभ ग्रह या, अशुभ ग्रहोंसे देखे जायँ तो भी वह शुभ या अशुभ होनेपर भी परस्पर बराबर (सम) फल देते हैं ।।५२।। अंधके निकट कामिनीका स-'विलास' कटाक्षका देखना जैसे निष्फल होता है वैसे ही नीचस्थान, शत्रुक्षेत्र या अस्तंगत ग्रहके ऊपर जो शत्रुग्रहकी

---

१ संस्कृत और प्राकृतभाषामें जिस गानका वाक्य समान होता है वह नर्कुटक है

दृष्टि हो तो समस्त फल वृथा होता है ।।५३।। जैसे छंदशास्त्रमें स्कन्धकछन्द [१]आर्यागीतिका अनुगमन करता है 'वां' मागधी जैसे वैतालीय छंदका अनुसरण करता है अथवा गाथा-छंद जैसे आर्या छंदका अनुसरण करता है, तैसेही सूर्यका पुत्र शनि सूर्यका अनुगमन करता है और चंद्रमाका पुत्र बुध चंद्रके अनुसार फल देता है ।।५४।। शनैश्चर सूर्यकी किरणोंके रंगके हेतु विकारयुक्त और अधिकतर बढकर मनुष्योंके लिये पित्तके समान आचरण करता है, परंतु 'पथ्य' सुपथ्यकारी आर्यलोगोंको (साधुपुरुषोंको) वैसा फल नहीं देता ।।५५।। जैसे मनकी वृत्तीके अनुसार 'वक्त्र' मुखका विकार होता है, वैसेही ग्रह जैसे चंद्रमाके साथ मिलते हैं, गोचरमें तैसाही फल करते हैं ।।५६।। 'श्लोक' के सर्व पादोंका पांचवां अक्षर और दूसरे व चौथे पादका सातवां अक्षर जैसे लघु होता है, तैसे ही ग्रहगण अशुभ स्थानोमें स्थित हों तो मनुष्य लघुताको प्राप्त होता है ।।५७।। जो स्वभावसे ही लघु माने गये हैं, सोही जैसे वृत्तके बाहरे (पादान्तमें) गुरुता प्राप्त होता है, तैसे ही ग्रहत सुस्थित हो तो मनुष्य सब जगह गुरुताको प्राप्त होता है ।।५८।। समस्त ग्रह अशुभ हो तो अनसमझ लोग जो कर्म अपनी बढतीके लिये आरंभ करते हैं, अयथाकृत 'वैतालीय' वेतालसंबंधी कार्यके समान वह कर्म उनकाही नाश करता है ।।५९।। ग्रहोंका शुभ स्थानमें स्थित होना देखकर उस कालमें जो राजा प्रक्रमण (आक्रमण) करता है, वह थोडे पौरुषवाली भी हो तो भी 'औपच्छन्दसिक' (अनुरोधके सहित) व्यापारका पराया धन पाता है ।।६०।। उपचय (त्रि, लाभ, रिपु, कर्म) में गये वा लग्नके सूर्यके दिनके (रविवारमें) सुवर्ण, ताम्र, अश्व, काष्ठ, अस्थि, चर्म, और्णिक (पशमीना), पर्वत वृक्ष त्वचा, नखून, व्याल, चोर, अटवी, क्रूरकर्म, राजसेवा, अभिषेक, औषध, क्षौमवस्त्र, (असलीका वस्त्र), पुण्यादिद्रव्य (खरीदने बेचनेकी वस्तु), गोपालन, दुर्गम मार्ग, वैद्योचित कार्य, पाषाणकूट, सत्कुलज कर्म, विख्यात शूरका कार्य, युद्धमें श्लाघ्यपद (संग्राममें स्तुतिके योग्य), यश और समस्त अग्निकार्य सिद्ध होते हैं. सोमवारमें चंद्रमाका उद्गम हो तो अथवा वह केन्द्रमें स्थित हो तो मनुष्यको भूषण, शंख, मुक्ता, पद्म, चांदी, जल; यश, ईख, भोजन, अंगना, दुधारे निर्मल वृक्ष, क्षुप (अखरोट आदिके वृक्ष), अनूपधान्य (जलप्रायदेश), द्रवद्रव्य. विप्रोचित कार्य, अश्वक्रिया, शीतक्रिया, शृंगिद्वारा कर्षणीय कार्य (खेतीके कार्य), सेनापतिका कार्य, आक्रन्द, राजकार्य, सौभाग्य, निशाचरका कार्य, श्लेष्मा करनेवाले द्रव्य, मातंगपुष्प और वस्त्रका आरंभ सिद्ध होता है. मंगलवारमें धातु, आकारादिका सर्व प्रकार कार्य भली भांतिसे सिद्ध होता है और सुवर्ण, अग्नि, प्रवाल (मूंगा), आयुध, क्रूरपन, चोरी, उपद्रव. अटवी (वन) के कार्य दुर्गका कार्य, सेनाधिकारकार्य और समस्त लाल फूलके वृक्ष व लालरंगके कटुद्रव्य, कूटद्रव्यका कूट (मरिचादि), सर्प और

---

१ संस्कृतमें जो आर्यागीति है, प्राकृतमें वही स्कन्धका है, ऐसे ही संस्कृतमें जो वैतालीय है, प्राकृतमें वही मागधी है और आर्याको प्राकृतमें गाथा कहते हैं ।

फांसीसे कमाया हुआ धन है जिनके पास, ऐसे कुमार वैद्य शाक्य (बुद्ध) का और भिक्षुक (संन्यासी) का कार्य, रात्रिमें वृत्ति करनेवाले, रेशमके वस्त्रके समस्त कार्य, शठता और दम्भके कार्य सिद्ध होते हैं. बुधकी लग्नमें या बुधके दिन हरितमणि, पृथ्वी और सुगंधित वस्त्र संबंधी कार्य साधारण नाटक, विज्ञान, शास्त्र, काव्य, समस्त कला युक्ति, मंत्रकार्य, धातुकार्य, झगडा, निपुणता, पुण्य, चण्डवृष्टिप्रपात (अर्थात् अत्यन्त वृष्टिपातका) व्रत, योग, दूत, आयुष्य, करकार्य, माया, झूंठ, स्नान, ह्रस्व, दीर्घ, छंद और समस्त अनुकरण-कारी कार्य सिद्ध होते हैं ।।६१।। बृहस्पतिवारको सुवर्ण, चांदी, घोडा, हाथी, वृषभ, वैद्य व औषध समस्त कार्य, ब्राह्मण, पितृ, देवगण, पुरवासी, धर्म-निषेध, चामर, भूषण और राजाके कार्य, देवालय, धर्मसमाश्रय कार्य, मंगलकारी शास्त्र, मनमाने बल, देवकार्य और सत्यवाक्य, व्रत, होम और धनसंबंधी रुचिके कार्य 'वर्णदण्डक' वर्णसे मनोहर दंडके समान अर्थात् वर्णयुत्त लकडी जैसे मनोहर होती है, तैसे यह कार्य सिद्ध होते हैं ।।६२।। शुक्रवारको वस्त्रोंका चीतना, वीर्यकारी औषधियोंका बनाना, वेश्या कामिनीका विलास, हास्य यौवनके भोगनेको रमणीक भूमि, स्फटिक और चांदीके मन्मथसंबंधी द्रव्य, वाहन ईख, शारद प्रकार अर्थात् शरदऋतुमें उत्पन्न हुए, धान्यादि, गो, वणिक, किसान, औषधि व जलसंबंधी कार्य सिद्ध होते हैं. शनिवारको भैंस, छाग, ऊंट, काला लोहा, दास और वृद्धासंबंधी नीच कर्म, पक्षी चोर और पाशके व्यवहारका कार्य और विनयच्युति, टूटा हुआ पात्र, हाथीकी अपेक्षा रखनेवाले कार्य और समस्त विघ्नकारी कार्य सिद्ध होते हैं. अन्यथा 'समुद्रग' (समुद्रभाण्ड) समुद्रमें गये हुए जलकणके समान सिद्ध नहीं होते ।।६३।। छंदोंका प्रस्तार अत्यन्त 'विपुल' अर्थात् विस्तारवाला है उसमें उत्तम ज्ञान अर्थात् प्रस्तार भली भांति जाना रहनेमें यह कार्य अर्थात् छंद ज्ञान सरलतासे हो सकता है. इसी कारण वराहमिहिरने यह श्रवणसुखकारी वृत्तसंग्रह किया है ।। ६४ ।।

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचि० बृहत्संहितायांपश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां चतुरधिकशततमोऽध्यायः ।।१०४।।

अथ पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

नक्षत्रपुरुषव्रतम्

पादौ मूलं जंघे च रोहिणी तथाश्विन्यः । ऊरू चाषाढाद्वयमथ गुह्य फल्गुनी-युग्मम् ।। १ ।। कटिरपि च कृत्तिका पार्श्वयोश्च यमला भवंति भद्रपदाः । कुक्षिस्था रेवत्यो विज्ञेयमुरोऽनुराधा च ।। २ ।। पृष्ठं विधिधनिष्ठां भुजौ विशाखां स्मृतौ करौ हस्तः । अंगुल्यश्च पुनर्वसुराश्लेषासंज्ञिताश्च नखाः ।। ३ ।। ग्रीवा ज्येष्ठा

श्रवणौ श्रवणः पुष्यो मुखं द्विजाः स्वातिः । हसितं शतभिषगथ नासिकामघा मृगशिरो नेत्रे ॥ ४ ॥ चित्राललाटसंस्था शिरो भरण्यः शिरोरुहाश्चार्द्रा । नक्षत्रपुरुषकोऽयंकर्तव्योरूपमिच्छद्भिः ॥ ५ ॥ चैत्रस्यबहुलपक्षे ह्यष्टम्यां मूलसंयुक्ते चन्द्रे । उपवासःकर्तव्योविष्णुं सम्पूज्य धिष्ण्यं च ॥ ६ ॥ दद्याद्व्रते समाप्ते घृतचूर्णं सुवर्णयुतम् । विप्राय कालविदुषे सरत्नवस्त्रं स्व शक्त्या वा ॥ ७ ॥ अन्नैः क्षीरघृतोत्कटैः सहगुडैर्विप्रान् समभ्यर्चयेद्दद्यात्तेषु तथैव वस्त्ररजतं लावण्यमिच्छन्नरः । पादर्क्षात्प्रभृति क्रमादुपवसन्नङ्गर्क्षनामस्वपि कुर्यात्केशवपूजनं स्वविधिना धिष्ण्यस्य पूजां तथा ॥ ८ ॥ प्रलम्बबाहुः पृथुपीनवक्षाः क्षपाकरास्यः सितचारुदन्तः । गजेन्द्रगामी कमलायताक्षः स्त्रीचित्तहारी स्मरतुल्यमूर्तिः ॥ ९ ॥ शरदमलचूर्णचन्द्रद्युतिसदृशमुखी सरोजदलनेत्रा । रुचिरदशना सुकर्णा भ्रमरोदरसन्निभैः केशैः ॥ १० ॥ पुंस्कोकिलसमवाणी ताम्रोष्ठी पद्मपत्रकरचरणा । स्तनभारानतमध्या प्रदक्षिणावर्तया नाभ्या ॥ ११ ॥ कदलीकाण्डनिभोरूः सुश्रोणी वरकुकुन्दरा सुभगा । सुश्लिष्टांगुलिपादा भवति प्रमदा मनुष्यो वा ॥ १२ ॥ यावन्नक्षत्रमाला विचरति गगने भूषयन्तीह भासा तावन्नक्षत्रभूतो विचरति सह तैर्ब्रह्मणोऽह्नोऽवशेषम् । कल्पादौ चक्रवर्ती भवति हि मतिमांस्तत्क्षणाच्चापि भूयः संसारे जायमानो भवति नरपतिर्ब्राह्मणो वा धनाढ्यः ॥ १३ ॥ मृगशीर्षाद्याः केशवनारायणमाधवाः सगोविन्दाः । विष्णुमधुसूदनाख्यौ त्रिविक्रम वामनश्चैव ॥ १४ ॥ श्रीधरनामा तस्मात् सहृषीकेशश्च पद्मनाभश्च । दामोदर इत्येते मासाः प्रोक्ता यथासंख्यम् ॥ १५ ॥ मासनाम समुपोषितो नरो द्वादशीषु विधिवत प्रकीर्तयन् । केशवं समभिपूज्य तत्पदं याति यत्र नहि जन्मजं भयम् ॥ १६ ॥

इति श्रीवराहमिहिरकृता० बृहत्संहितायां नक्षत्रपुरुषव्रतं नाम पञ्चाधिकशततमोध्यायः ॥ १०५ ॥

नक्षत्रपुरुषके दोनों पांव मूल नक्षत्र, दोनों जांघ रोहिणी और अश्विनी, दोनों ऊरु पूर्वाषाढा व उत्तराषाढा, गुह्यदेश उत्तराफाल्गुनी और पूर्वाफाल्गुनी हैं ॥१॥ कृत्तिका उन पुरुषकी कमर, उत्तराभाद्रपदा और पूर्वभाद्रपदा दोनों पार्श्व, रेवती कोख और अनुराधाको छाती जानना चाहिये ॥२॥ धनिष्ठाको तिसकी पीठ, विशाखाको दोनों भुजा और हस्तको दोनों कर जानना चाहिये. पुनर्वसु उनके हाथकी उंगलियें और हाथके नख आश्लेषा हैं ॥३॥ ज्येष्ठाको उसकी गर्दन, श्रवण दोनों कान, पुष्प नक्षत्र मुख, स्वाति नक्षत्र दन्त, शतभिषा उसका हास्य, मघा नासिका और मृगशिरा नेत्र हैं ॥४॥ चित्रा उनका कपाल, भरणी मस्तक और आर्दा उनके शिरके बाल हैं. सुंदरताके अभिलाषी मनुष्योंको चाहिये कि नक्षत्रपुरुषको इस प्रकारसे गठन करे ॥५॥ चैत्रमासकी कृष्ण अष्टमीमें जब चंद्रमा मूल नक्षत्रसे युक्त हो तब विष्णु और सब नक्षत्रोंकी पूजा करके उपवास करना चाहिये ॥६॥ जब व्रत समाप्त हो जाय तब अपनी शक्तिके अनुसार समयकी

विद्या जाननेवाले ब्राह्मणको सुवर्णयुक्त घृतपूर्ण पात्र रत्नयुक्त वस्त्रके साथ दान करे ॥७॥ लावण्यप्राप्तिकी इच्छा करनेवाला पुरुष दूध और घृतसे युक्त अन्न और गुणको दान करके ब्राह्मणोंको पूजे और इसी प्रकारसे उनको चांदीके वस्त्र दान करे और नक्षत्रपुरुषके पांवके नक्षत्रसे आरंम्भ करके क्रमानुसार मास २ में उपवास करके उसके अंगवाले सब नक्षत्रोंमें अपनी विधिके अनुसार विष्णु और उस नक्षत्रकी पूजा करे ॥८॥ इस पूजाके करनेसे मनुष्य लंबी बाहोंवाला, चौडा दृढ छातीवाला, चंद्रमाके समान वदन, मनोहर श्वेत रंगके दांत, गजेन्द्रके समान चाल, कमलदलके समान बडे नेत्र और कामदेवके समान मूर्ति धारण करके स्त्रीके चित्तको हरण कर सकता है ॥९॥ स्त्रियां इस व्रतको करें तो शरत्कालके निर्मल पूर्ण चंद्रमाकी द्युतिके समान द्युतिमान् मुख, कमलदलके समान बडे नेत्रवाली, सुंदर दांत, शोभायमान कर्ण, मस्तकपर भ्रमरके उदरके समान काले केशवाली ॥१०॥ नरकोकिलके समान मीठीवाणी बोलनेवाली तांबेके समान अधरोंकी लालीसे युक्त, कमलपत्रके समान कोमल हाथवाली, ऐसेही पांवोंसे युक्त, स्तनोंके बोझसे कुछएक मध्यमें झुकी हुई, गहरी और गोल नाभिवाली ॥११॥ केलेके खंभके समान ऊरुवाली, सुंदर नितम्बवाली, नितम्बके सुंदर कप हैं जिसके सुभग और सुश्लिष्ट उंगलियोंदार जिसके पांव होते हैं ॥१२॥ जितने दिनतक नक्षत्रमाला अपनी दीप्तिसे इस लोकको शोभायमान करती हुई आकाशमें विचरण करती है, वह उतने दिनतक अर्थात् कल्पके अन्ततक नक्षत्र होकर इस ब्रतका करनेवाला पुरुष आकाशमें विचरण करता है, वह मतिमान् दूसरे कल्पके आरंभमें चक्रवर्ती राजा होता है ॥१३॥ मृगशीर्षाद्य (अगहन आदि) समस्त मासोंमें क्रमानुसार केशव, नारायण, माधव, गोविंद, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन ॥१४॥ श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ और दामोदर इन समस्त नामोंसे विष्णुजीकी पूजा करे ॥१५॥ जो मनुष्य द्वादशीके दिन विधिवत् उपवास करके महीनेके नामका (जिसे मासमें विष्णुजीकी जो नाम हो) कीर्त्तन करते २ केशवकी पूजा करे तो वह उनका पद (केशवपद) को प्राप्त होता है. उस पदके प्राप्त कर लेनसे फिर जन्मनेका भय नहीं रहता ॥१६॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्सं० पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पण्डितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायां पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०५॥

अथ षडधिकशततमोऽध्यायः

उपसंहारः

ज्योतिःशास्त्रसमुद्रं प्रमथ्य मतिमन्दराद्रिणाथ मया । लोकस्यालोककरः शास्त्र-शशाङ्कः समुत्क्षिप्तः ॥ १ ॥ पूर्वाचार्यग्रन्था नोत्सृष्टाः कुर्वता मया शास्त्रम् । तानवलोक्येदं च प्रयतध्वं कामतः सुजनाः ॥ २ ॥ अथवा भृशमाप सुजनः प्रथयति-

दोषार्णवाद्गुणं दृष्ट्वा । नीचस्तद्विपरीतः प्रकृतिरियं साध्वसाधूनाम् ॥ ३ ॥ दुर्जनहुताशतप्तं काव्यसुवर्णविशुद्धमायाति । श्रावयितव्यं तस्माद्दुष्टजनस्य प्रयत्नेन ॥ ४ ॥ ग्रन्थस्य यत् प्रचरतोऽस्य विनाशमेति लेख्याद्बहुश्रुतमुखाधिगमक्रमेण । यद्वा मया कुकृतमल्पमिहाकृतं वा कार्यं तदत्र विदुषा परिहृत्य रागम् ॥ ५ ॥ दिनकरमुनिगुरुचरणप्रणिपातकृतप्रसादमतिनेदम् । शास्त्रमुपसंगृहीतं नमोऽस्तु पूर्वप्रणेतृभ्यः ॥ ६ ॥ इत्युपसंहारः ॥

शास्त्रोपनयः पूर्वं सांवत्सरसूत्रमर्कचारश्च । शशिराहुभौमबुधगुरुसितमन्दशिखिग्रहाणां च ॥ १ ॥ चारश्चागस्त्यमुनेः सप्तर्षीणांच कूर्मयोगश्च । नक्षत्राणांव्यूहोग्रहभक्तिर्ग्रहविमर्दश्च ॥२॥ ग्रहशशियोगः सम्यग्गृहवर्षफलं ग्रहाणां चाभ्रृंगाटसंस्थितानां मेघानां गर्भधारणं चैव ॥ ३ ॥ धारणवर्षणरोहिणिवायव्याषाढभाद्रपदयोगाः । क्षणवृष्टिःकुसुमलताःसन्ध्याचिह्नं दिशां दाहः ॥ ४ ॥ भूकम्पोल्कापरिवेषलक्षणं शक्रचापखपुरं च । प्रतिसूर्यो निर्घातः सस्यद्रव्यार्घकाण्डं च ॥ ५ ॥ इन्द्रध्वजनीराजनखञ्जनकोत्पातबर्हिचित्रं च । पुष्याभिषेकपट्टप्रमाणमसिलक्षणं वास्तु ॥ ६ ॥ उदकार्गलमारामिकममरालयलक्षणं कुशिललेपः । प्रतिमा वनप्रवेशः सुरभवनानां प्रतिष्ठा च ॥ ७ ॥ चिह्नं गवामथ शुनां कुक्कुटकूर्माजपुरुषचिह्नं च । पञ्चमनुष्यविभागः स्त्रीचिह्नं वस्त्रविच्छेदः ॥ ८ ॥ चामरदण्डपरीक्षा स्त्रीस्तोत्रंचापि सुभगकरणं च । कान्दर्पिकानुलेपनपुंस्त्रीकाध्यायशयनविधिः ॥ ९ ॥ वज्रपरीक्षा मौक्तिकलक्षणमथपद्मरागमरकतयोः । दीपस्य लक्षणं दन्तधावनं शाकुनं मिश्रम् ॥ १० ॥ अन्तरचक्रं विरुतं श्वचेष्टितं विरुतमथ शिवायाश्च । चरितं मृगाश्वकरिणां वायसविद्योत्तरं च ततः ॥११॥ पाको नक्षत्रगुणास्तिथिकरणगुणाः सधिष्ण्यजन्मगुणाः । गोचरस्तथा ग्रहाणां कथितो नक्षत्रपुरुषश्च ॥ १२ ॥ शतमिदमध्यायानामनुपरिपाटिक्रमादनुक्रान्तम् । अथ श्लोकसहस्राण्याबद्धा न्यूनचत्वारि ॥ १३ ॥ इति ग्रंथानुक्रमणिका ॥ इति श्रीवराहमि० बृहत्सं० उपसंहारो नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥ इति वाराहीसं० समाप्ता ।

मैंने बुद्धिरूप मंदरपर्वतद्वारा ज्योतिषशास्त्ररूप समुद्रको भली भांतिसे मथ करके संसारमें प्रकाश करनेवाला शास्त्ररूपी चंद्रमा निकाला है ॥१॥ मैंने इस ग्रंथके बनानेमें पूर्वकालीन आचार्यलोगोंके ग्रंथोंको छोडा नहीं है, वरन ज्योतिषके उन सब शास्त्रोंको देखकर यह ग्रंथ बनाया है, हे सुजनगण ! इच्छाके साथ इस ग्रंथमें यत्न प्रगट कीजिये ॥२॥ या सुजन पुरुष तो दोषरूप समुद्रमें साधारणसा गुण भी देखते हैं तो उसकी अत्यन्त सुख्याति करते हैं, परंतु नीच आदमियोंका व्यवहार इससे विपरीत है, यही साधु और असाधुके स्वभावका लक्षण है ॥३॥ काव्यरूप सुवर्ण दुर्जनरूप अग्निसे तपाये जानेपर ही शुद्धिको प्राप्त होता

है, इसी कारणसे यह ग्रंथ यत्नके साथ दुर्जन मनुष्योंको श्रवण कराना उचित है ॥४॥ इस प्रचारोंन्मुख ग्रंथमें लिखनेके दोषसे जो अंग रह जाय सो पढे हुएके मुखसे भली भांति जानकर शुद्ध कर लें अथवा इस ग्रंथमें मैंने जो सामान्य भी कुकृत (प्रमादसे किया हुवा भ्रम) किया है, हे विद्वद्वर्ग ! तिसपर कुछ ध्यान न देकर इस ग्रंथमें अनुराग प्रगट कीजिये ॥५॥ सूर्यभगवान्, मुनिगण और गुरुजीके चरणोंमें प्रणाम करके प्रसन्नमतिवाला होकर मैंने इस शास्त्रका संग्रह किया है. इस समय (अब) पूर्वाचार्योंको नमस्कार करता हूँ ॥६॥ इति उपसंहार।

पहले शास्त्रोपनयन, फिर संवत्सरसूत्र, सूर्य, चंद्र, राहु, मंगल, बुध, शुक्र, शनि और केतु इन ग्रहोंका चार (भ्रमण), अगस्त्यचार, सप्तर्षिचार, कूर्मयोग, नक्षत्रोंको व्यूह, ग्रहभक्ति, ग्रहविमर्दन, ग्रहशशियोग, ग्रहवर्षफल, गृहशृङ्गाटक, मेघोंका गर्भ, गर्भधारण, वर्षण, रोहिणी, स्वाती, आषाढी और भाद्रपदयोग, क्षणवृष्टि, कुशुमलता, संध्या, दिग्दाह, भूमिका कांपना, उल्का और परिवेषके लक्षण, इन्द्रायुध, गंधर्वनगर, प्रतिसूर्य, निर्घात, सस्यकाण्ड, द्रव्यकाण्ड, अर्घ्यकाण्ड, इन्द्रध्वज, नीराजन, खञ्जनलक्षण, उत्पात, मयूरचित्रक, पुष्पाभिषेक, पट्टप्रमाण, असिलक्षण, वास्तुलक्षण, उदकार्गल, आराम, देवालयलक्षण, वज्रलेप, प्रतिमालक्षण, वनप्रवेश, देवता और देवालयोंकी प्रतिष्ठा, गौ, कुत्ते, कछुए, बकरे, पुरुष, पंचमहापुरुष, स्त्रीवस्त्रच्छेद, चामरदण्ड और भद्रका लक्षण, स्त्रीप्रशंसा, सुभगकरण, कान्दर्पिक, अनुलेपन, स्त्री और पुरुषसंयोग, शय्यालक्षण, वज्रपरीक्षा, मौक्तिकलक्षण, पद्मरागलक्षण, मरकतलक्षण, दीपलक्षण, दन्तधावन, शाकुनमिश्रण, अन्तरचक्र, शिवाविरुत, कुक्कुटचेष्टित, मृगचरित, अश्वचरित, हस्तिचरित, वायसविद्या, उत्तरशकुन, पाक, नक्षत्रगुण, तिथि और करणगुण, नक्षत्रजातक, ग्रहोंका गोचरफल और नक्षत्र-पुरुष-व्रत यह सब विषय इसमें कहे गये हैं. इस ग्रंथमें एक शत अध्याय हैं. जो परिपाटीके क्रमसे लिखे हैं, सब अध्यायोंमें क्रमसे सर्व समेत (प्रायः) चार कम हजार श्लोक लिखे हैं. [वातचक्र रजोलक्षण आदि इस प्रकार छः अध्याय जो अनुक्रमणिकाके हैं सो उपरोक्त हिसाबमें नहीं लगाये हैं] ॥१-१३॥ इतिग्रंथानुक्रमणिका ॥

इति श्रीवराहमिहिराचार्यविरचितायां बृहत्संहितायां पश्चिमोत्तरदेशीयमुरादाबादवास्तव्य-पंडितबलदेवप्रसादमिश्रविरचितायां हिन्दीटीकायांषडधिकशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

इति हिन्दीटीकासहिता वाराहीसंहिता समाप्ता।

श्रीः

पौषमास पावन परम, दिवसनायको वार।
शुक्ला सुभग त्रयोदशी, तिथि जानो निरधार ।। १ ।।

उन्नीससौ बावन वरष, विक्रमसंवत मान।
कियो ग्रंथ भाषा ललित, अपनावहु जन जान ।। २ ।।

सब शुभदायक श्रेष्ठ अति, सेठ शिरोमणि धीर।
अति उदार, अनुपम चरित, जपत सदा रघुवीर ।। ३ ।।

कृष्णदास-सुत वैश्यवर, गंगाविष्णु महान।
तिन आज्ञासों हौं करी, टीका अतिसुखदान ।। ४ ।।
सर्व सत्व या ग्रंथके, दिये यंत्रपति हाथ।
याहि कोउ छापै नहीं, कहूं नाय निज माथ ।। ५ ।।

गौरीपति गिरिजासुवन, चरणकमल हिय लाय।
कृष्णप्रफुल्ल वदन पदम, वार वार शिर नाय ।। ६ ।।

विनवत हौं गुनियन निकट, अजहुँ बहोरि बहोरि।
भूल चूक होइहैं बहुत, दीजो मोंहि न खोरि ।। ७ ।।

पितु माताको नाय शिर, ज्येष्ठ भ्रात्त शिर नाय।
विनय यही मो दासकी, सुरति विसर जिन जाय ।। ८ ।।

दीनदयालपुरा शुभग, नगर मुरादाबाद।
वसत रामगंगा निकट, हौं बलदेव प्रसाद ।। ९ ।।

१०४ अध्यायका परिशिष्ट

छन्दोविज्ञान

भली भांतिसे लघुगुरुविन्यास करनेका नाम छंद है। छंद दो प्रकारके हैं गद्य और पद्य। जिसके चार चरण हों वह पद्य और इससे भिन्न गद्य है। वृत्त और जाति नामक

दो प्रकारके पद्य हैं। जिसमें अक्षरोंकी संख्या नियत हो सो वृत्त और जो मात्रासे घटित हो वह जाति है। वृत्त तीन प्रकारके हैं—सम, विषम और अर्धसम। जिसके चारों चरणोंमें बराबर अक्षर हों, वही समवृत्त है, जिसका प्रथम और तीसरा चरण और दूसरा व चौथा चरण समान हो, वही अर्द्धसम है और जिसके चारों चरण अलग २ हों उसको ही विषमवृत्त कहते हैं।

गुरु—आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ, औ, अं, अः यह वर्ण हैं; इन स्वरोंसे युक्त वर्ण और संयुक्त वर्णका पूर्ववर्ण गुरु और पादान्त वर्ण विकल्पसे गुरु होता है।

लघु—गुरुभिन्न वर्ण ही लघु वा ह्रस्व है।

यति—जीभका विश्राम अर्थात् थामनेका—स्थान यति है।

मात्रा—ह्रस्ववर्ण एकमात्र, गुरुवर्ण द्विमात्र और प्लुतवर्ण त्रिमात्र है।

गण—वृत्तमें जो गण होता है सो तीन २ वर्णोंमें होता है, जातिमें जो गण होता है सो चार २ मात्राका होता है। यथा-तीन गुरुसे मगण और तीन लघुसे नगण होता है। भ—आदिगुरु; य—आदिलघु, ज—मध्यगुरु, र—मध्यलघु, स—अन्त्यगुरु, त—अन्त्यलघु ग—एक गुरु और ल—एक लघु। हम गुरु चिह्न (२) और लघु चिह्न (१) देकर बतावेंगे।

यथा, म—२२२; न—१११; भ—२११; य—१२२; ज—१२१; र—२१२; स—११२; त—२२१, ग—२ और ल—१।

इन गणोंमें म, स, ज, भ यह चार अर्थात् सर्वगुरु, अन्त्यगुरु, मध्यगुरु और आदिगुरु, यह चार हैं। और सर्वलघु = सर्वसमेत यह पांच गण—जातिवृत्तमें आते हैं। परंतु पहले जैसे प्रत्येक गण २ अक्षरोंसे हुआ है, सो यहांपर २ मात्रा होगा, बस इतनाही भेद है। तिनके चिह्न क्रमानुसार यथा—

(मात्रावृत्त होनेसे) (२२) (११२) (१२१) (२११) (११११)

ग्रंथकारने क्रमशः जो छंद लिखे हैं श्लोकांक देकर अब उनके लक्षण कहे जाते हैं।

२–३। इस अध्यायमें—पहले छंदका नाम कहनेमें ग्रंथकारने "मुखचपलत्वं क्षमन्त्वार्याः" यह कहकर 'मुखचपला' आर्याका नाम लिखा है। बस सबसे पहले आर्याके लक्षणही कहे जाते हैं।

आर्या—जिस छंदमें सब ५७ मात्रा अर्थात् १४। सवा चौदह गण हों सो आर्या है। तिसके प्रथमार्द्धमें ३० मात्रा (७॥ गण) हों और द्वितीयार्द्धमें सत्ताईस मात्रा परंतु साढे सात गण हों। (इस गणके गिननेसे द्वितीयार्द्धका छठा गण एक लघु अर्थात् एक लघुही षष्ठ गण होगा)।

आर्यामें अयुग्मगण १।३।५।७ मध्यगुरु (ज) नहीं होगा, युग्मगण इच्छाके अनुसार होंगे, परंतु प्रथमार्द्धमें, छठा गण (ज) मध्यगुरु वा (न ल) सर्व लघु हो सकता है।

आर्याके नौ भेद हैं। १ पथ्या, २ विपुला, ३ चपला, ४ मुखचपला, ५ जघन चपला, ६ गीति, ७ उपगीति, ८ उद्गीति, ९ आर्यागीति।

पथ्या–जिसके प्रथमार्द्ध और द्वितीयार्द्धके मध्य ३ गणोंमें पाद हो अर्थात् यति हो वही पथ्या है।

विपुला–जिसके मध्य तीन गणोंमें पाद हो और यति न हो वही विपुला है।

चपला–जिसके दोनों अर्द्धोंमें द्वितीय और चतुर्थगण (ज) गुरु मध्यमें हो वही चपला है।

मुखचपला–चपलाके लक्षणसे युक्त प्रथमार्द्ध होनेसे मुखचपला आर्या होती है।

जघनचपला–दूसरा अर्द्ध चपलाके लक्षणसे युक्त होनेपर जघनचपला आर्या होती है।

गीति–आर्याके आद्ये अर्द्धके तुल्य द्वितीयार्द्ध होनेसे गीति आर्या होती है।

उपगीति–आर्याके अंतार्द्धके तुल्य प्रथमार्द्ध होनेसे उपगीति होती है।

उद्गीति–जिस आर्याका द्वितीयार्द्धके तुल्य प्रथमार्द्ध और प्रथमार्द्धके तुल्य द्वितीयार्द्ध हो अर्थात् प्रथमार्द्धमें २७ मात्रा और द्वितीयार्द्धमें ३० मात्रा होती सो उद्गीति है।

आर्यागीति–जिसके पूर्वार्द्ध और परार्द्धमें आठवां गण चतुर्मात्र होता अर्थात् जो ३२ मात्रा करके ६४ मात्रामें पूर्ण हो सो ही आर्यागीति है।

४ शार्दूलविक्रीडित–म स ज स त त ग– १२, ७ यदि। २ २ २, १ १ २, १ २ १, १ १ २, २ २ १, २ २ १, २।

५ स्रग्धरा–म र भ न य य य–७, ७, ७ यति।

६ सुबदना–भ र भ न य भ ल ग–७, ७, ६ यति।

७ सुवृत्ता वा मेघविस्फूर्जिता–य म न स र र ग, ६, ६, ७ यति।

८ शिखरिणी–य म न स भ ल ग–६, ११ यति।

९ मन्दाक्रांता–म भ न त त ग ग–६, ७ यति।

१० वृषभचरित वा हरिणो,–न स म र स ल ग–६, ४, ७ यति।

११, १२ उपेन्द्रवज्रा,–ज त ज ग ग।

१३ प्रसभ,–न न र ल ग–इसका दूसरा नाम भद्रिका है।

१४ मालती,–न ज ज र।

१५ अपरवक्त्र,–१ । ३ चरणमें,–न न र ल ग, २ ।४ पादमें न ज ज र ।

१६ विलम्बितगति,–ज स ज स य ल ग–८, ९ यति । इसका दूसरा नाम पृथ्वी है ।

१७ पुष्पिताग्रा,–१ पादमें न न र ज, २।४ पादमें न ज ज र ग ।

१८ इंद्रवंशा,– त त ज र ।

१९ स्वागता,–र न भ ग ग ।

२० द्रुतपद,–न भ भ र । इसका दूसरा नाम द्रुतविलम्बित है ।

२१ रुचिरा,–ज भ स ज ग–४, ९ यति ।

२२ प्रहर्षिणी,–म न ज र त–३, १० यति ।

२३ दोधक,–भ भ भ ग ग ।

२४ मालिनी,–न न म य य–८, ७ यति

२५ भ्रमरविलसित,–म ग न न ग ।

२६ मत्तमयूर,–म त य स ग–४, ९ यति ।

२७ मणिगुणनिकर,–न न न न न–८, ७ यति ।

२८ हरिणप्लुता,–यह द्रुतविलम्बितके समान है, परंतु पहले और तीसरे चरणका सबसे पहला अक्षर हीन होना चाहिये ।

२९ ललितपदा,–न ज ज य । इसका दूसरा नाम तामरस है ।

३० शालिनी,–म त त ग–४, ७ यति ।

३१ रथोद्धता,–र न र ल ग ।

३२ विलासिनी,–न ज भ ज ल ग ।

३३ वसन्ततिलक,–त भ ज ज ग ग–कालिदासके मतसे ८, ६ यति ।

३४ अनवसित,–न य भ ग ग ।

३५ लक्ष्मीवती,– त भ स ज ग ।

३६ प्रमिताक्षरा–स ज स स ।

३७ स्थिर,–ज ल, ग । इसका दूसरा नाम प्रमाणिका है ।

३८ तोटक,–स स स स । कालिदासके मतसे ९ । ३ यति ।

३९ वंशपत्रपतित,–भ र न भ न ल ग–१०, ७ यति ।

४० धीरललित,–भ र न र न ग।

४१ भुजङ्गप्रयात,–य य य य।

४२ श्रीपुट;–न न म य–८, ४ यति।

४३ वैश्वदेवी,–म म य य–५, ७ यति।

४४ ऊर्मिमाला,–भ भ त ग ग। इसका दूसरा नाम वातोर्मी है।

४५ मेघवितान,–स स स ग।

४६ भुजङ्गविजृम्भित,–म म त न न न र स ल ग–८, ११, ७ यति।

४७ उद्गता,–प्रथम पादमें स ज स ल, दूसरे पादमें न स ज ग, तीसरे पादमें भ न ज ल ग, चतुर्थ पादमें–स ज स ज ग। (यही विषमवृत्त है)।

५२ नर्क्कुटक,–न ज भ ज ज ल ग–७, १० यति। दूसरा नाम नर्द्दटक है।

५३ विलास– उपजाति,–अलौकिक प्रयोग। जिसके चारों चरणोंमें बराबर छंद नहीं होता सोही उपजाति है।

५६ वक्त्र,–जिसके प्रत्येक चरणमें आठ अक्षर हों, आदिके अक्षरसे लेकर नगण और सगण न हों और अक्षरके पीछे यगण हो, और (अक्षरका नियम नहीं है) सोही वक्त्र है।

५९ वैतालीय,–यही मात्रावृत्त है। जिसके प्रथम और तीसरे पादमें १४ चौदह मात्रा और द्वितीय और चतुर्थ पादमें १६ मात्रा होती हैं, यही वैतालीय है। परंतु इसमें विशेषता यह है कि इसकी मात्रामें केवल लघु या केवल गुरु होकर मिश्र होंगी और समस्त युग्म मात्रा मात्रा पराश्रिता नहीं होंगी, अर्थात् ३।५।७ इत्यादि मात्रा युक्तवर्ण होकर पूर्वमात्राकी गुरु न करेंगी और इसके चरणके पीछे र ल और गगण, अवश्य ही रखना चाहिये।

६० औपच्छन्दसिक;–वैतालीय छंदके पीछे एक अधिक गुरुवर्ण लगा देनेसे औपच्छन्दसिक नामक वृत्त होता है।

६१ चण्डवृष्टिप्रयात, (दण्डकभेद) २७ अक्षरका रहना दंडकका साधारण नियम हैं, १–तिसमें दो न गण और उसके पीछे सात रगण होते हैं। इस प्रकार गण रखनेके पीछे इच्छाके अनुसार रगण रखनेसे भी चण्डवृष्टिप्रयात दंडक होगा इसमें कितने अक्षर हों, इसका कोई नियम नहीं है (इस श्लोकके प्रत्येक चरणमें १०२ अक्षर हैं। दंडक एक प्रकारका इच्छानुसारी छंद है।

६२ वर्णदंडका,–न न भ भ भ भ भ भ भ ग।

६३ समुद्रदण्डक,–न न र ज र ज र ज र ज र ल ग।

अब छंदोविचिति अर्थात् प्रस्तारका विषय संक्षेपसे कहा जाता है।

प्रस्तार, नष्ट, उद्दिष्ट, एकव्द्यादिलगक्रिया, संख्या और अध्वयोग, यह छः छंदकी मूल हैं।

१ प्रस्तार–क्रमानुसार लघु और गुरु वर्णके विन्याससे छंदवृद्धि करनेका नाम प्रस्तार है अर्थात् यह बतलाना कि प्रति चरणमें कितने अक्षर हों, किंतु लघुगुरुके रखनेसे उतने अक्षरोंका चरण छंद कितने प्रकारका हो सकता है, यह ज्ञान जिस करके हो उसका ही नाम प्रस्तार है।

उसका नियम यह है कि चरणमें जितने अक्षर हों पहले उतने ही गुरु चिह्न पीछे २ हों। तदुपरान्त पहले जो गुरु हो, तिसके नीचे एक लघुचिह्न रक्खे और ऊपर गुरु, वा लघु जिसके पीछे जो है, सबको ठीक वैसेही रक्खे। फिर उससे नीचेकी पंक्तिमें एक लघुचिह्न दे, फिर ऊपरके समान चिह्न देने चाहिये। ऐसे ही दिये हुए लघुचिह्नके पहले वर्ण न हो (जिसके नीचे चिह्न हो उसके पहले) जितने लघु चिन्ह ऊपरके भागमें थे, उतने गुरुचिन्ह देने चाहिये। इसके उपरांत फिर प्रथम गुरुके नीचे ऐसे ही लघुचिन्ह देकर ऐसे ही परवर्ती चिन्ह लगावे। इस प्रकार जबतक समस्त लघुचिन्ह न रक्खे जाँय, तबतक इसी प्रकारसे रखने चाहिये तदुपरांत जितने प्रकार हुए हैं, उतनेही भेद होंगे। यथा;–

त्र्यक्षरपाद-छंद तीन गुरुचिन्ह–२२२। इसके पहले गुरुके नीचे एक लघु देकर पादको उचित रीतिसे सब चिन्ह लगाओ। १२२। इसके पहले गुरुके (२ के) नीचे एक लघु रखकर पीछेके ऊपरके समान स्थापन करे। तदुपरांत प्रथम स्थान खाली है, इसके लिये उसके स्थानमें एक गुरु रक्खो–२१२। इस प्रकारके सर्व लघुचिह्न होनेतक साधन करो। यथाः–

१	म–२२२–म	गण
२	य–१२२–य	गण
३	य–२१२–र	गण
४	र्थ–११२–स	गण
५	म–२२१–त	गण
६	ष्ठ–१२१–ज	गण
७	म–२११–भ	गण
८	म–१११–न	गण

इस प्रकार प्रस्तार काटकर छंदभेद जानना हो तो भूल होनेकी अत्यंत संभावन है, उसका सहज उपाय यह है कि जितने अक्षरवाला चरण हो उसके प्रथम अक्षरसे उत्तरोत्तर दूने २ अंक उसके ऊपर रक्खे, उसके पिछले अंकको दूना करनेसे जो हो उतने प्रकारके भेद हों। यथा,–त्र्यक्षर १।२।४ पिछला अंक चार है। इसको दूना करनेसे आठ हुए कारण त्र्यक्षरवृत्तिमें आठ प्रकारके भेद होंगे। परंतु कितने गुरु वा लघुयुक्त कितने भेद होंगे, यह जानना हो तो भास्कराचार्यकृत लीलावतीके "एकाद्येकोत्तरा अंका व्यस्ता भाज्याः क्रमस्थितैः" इत्यादि नियमके अनुसार अंक करके जाने। अत्यंत विस्तारके भयसे इस समस्तका यहाँपर वर्णन नहीं किया। और मेरु, खण्डमेरु वा पताकाद्वारा भी इसका ज्ञान होता है, किंतु–सो भी अत्यन्त विस्तृत है, इस कारण नहीं लिखा।

२ नष्ट–जो कोई पूछे कि इतने अक्षरयुक्त चरण छंदके इतने संख्याके छंद किस प्रकार लघुगुरु विशिष्ट हुए, जिसके द्वारा उसका उत्तर जाना जाय, सोही नष्ट है।

इसका नियम यथा,–जितनी संख्या कहे, वह अंक सम २।४।६।८।१० इत्यादि हों, तो प्रथम एक लघुचिन्ह रक्खे। फिर इस अंकको आधा करे वह भी सम हो तो फिर लघु, तिसके आधे अंक सम हों तो भी लघु रहेगा। जो विषम अर्थात् १।३।५।७ इत्यादि हों तो गुरुचिह्न रक्खे। फिर इन विषम अंकमें १ योग मिलाकर उसका आधा करे, वह भी जो विषम हो तो गुरु, और सम हो तो लघुचिह्न रक्खे। जबतक चरणके परिणामके अक्षर पूर्ण न हों, तबतकही ऐसा करे.

यथा,–त्र्यक्षरावृत्तिकी ४र्थ संख्या कैसी है, इस समय ४ सम अंक, इसलिये लघु, चारके आधे २ यह भी सम है, और एक लघु है। दोका आधा १ यह विषम है। बस १ गुरु हुआ। इस प्रकार १ १ २ यह हुआ। यही त्र्यक्षरावृत्तिका चौथा भेद है और जो कोई कहै कि सातवां किस प्रकारका है? तब ७ अयुग्म, इस कारण एक गुरु; उसमें १ मिलानेसे ८ होते हैं, उसका आधा ४ सम हुआ, इसलिये १ लघु, उसका आधा दो सम हुआ, इस कारण और एक लघु, यह सातवां भेद हुआ –२११.

उद्दिष्ट–जो कोई कहे कि इस प्रकार लघुगुरुयुक्त चरण इतने संख्याके अक्षर-युक्त चरणछंदके कितने भेद हैं? जिसके द्वारा वह संख्या जानी जाती है सोही उद्दिष्ट है। इसका नियम यही है उस छंदके चरणमें जितने अक्षर हैं, उसके ऊपरही उत्तरोत्तर दूने २ अंक रक्खे। उसके उपरान्त उन नीचेके समस्त लघु चिह्नोंके ऊपर जितने अंक हैं सबको जोडे। फिर उस समष्टिमें एक मिलाकर जो कुछ हो उस छंदके उतने संख्याके प्रस्तारमें ऐसे लघुगुरुचिन्ह मिलेंगे।

यथा–त्र्यक्षरावृत्ति १ १ २ इस प्रकारके छंदका कितना प्रस्तार है? इसके प्रथमसे लेकर दुगुने अंक १ २ ४ इत्यादि रक्खे। फिर पहले दो लघुके ऊपरवाले अंकोंके जोडनेसे

३ होते हैं, उसमें एक मिलानेसे ४ होते हैं इसलिये जाना गया कि, वह त्र्यक्षरावृत्तिका ४ अर्थ भेद है, इत्यादि।

एकब्यादिलगक्रिया, संख्या और अध्वयोग और मात्राप्रस्तार, मात्रामेरु,, मेरु, खण्डमेरु और पताका आदि छंदःशास्त्रका विचित्रतायुक्त वृत्तान्त समझना हो तो समस्त छंदःशास्त्रका अनुवाद करना पडे और इस अनुवादकी वेदपाठियोंको अत्यन्त आवश्यकता है, सर्व साधारणको विशेष आवश्यकता नहीं। बस यह समझकर और विस्तारके भयसे यहां-पर अधिक लिखना उचित नहीं समझा।

-बलदेवप्रसाद मिश्र.

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन
बम्बई - ४